







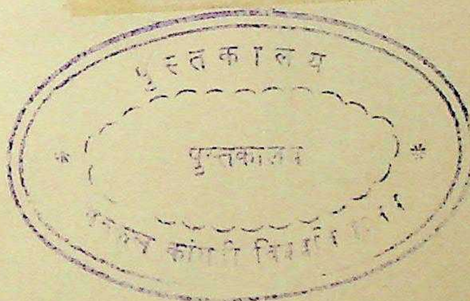


साहित्य भवन [प्रा] लिमिटेड
के.पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११००३



[तीन]





अनुवादक | ओंकार शरद
सम्पादक |

बंकिम ग्रन्थावली

[तीन खण्डों में]

कापीराइट

प्रकाशक



प्रथम संस्करण : १९७४



प्रकाशक

साहित्य भवन प्रा० लि०

९३, के० पी० कक्कड़ रोड,

इलाहाबाद

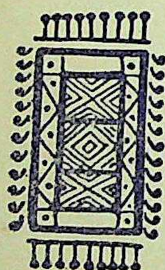


मुद्रक

इलाहाबाद प्रेस

रानीमंडी, इलाहाबाद





मूल्य : तीनों खण्ड का

एक सौ पचीस रु० मात्र



प्रकाशकीय

'बंकिम ग्रन्थावली' का यह तीसरा खण्ड पाठकों को भेंट करते हुए हमें बड़ी प्रसन्नता हो रही है।

'बंकिम ग्रन्थावली' के पहले व दूसरे खण्डों में बारह उपन्यास संकलित हुए हैं और इस तीसरे खण्ड में बंकिमचन्द्र के चार बड़े उपन्यास हैं।

'बंकिम ग्रन्थावली' का हिन्दी के पाठकों ने जैसा उत्साहवर्धक स्वागत किया है, उसे देख कर लगा कि हमारा प्रयास सफल हुआ है।

अपनी इस सफलता के लिए हम पाठकों व हिन्दी के प्रेमियों के आभारी हैं।

—गिरीश टण्डन



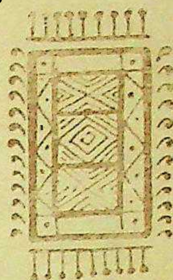
निवेदन

'बंकिम ग्रन्थावली' के पहले व दूसरे खण्ड में उनके बारह उपन्यास थे। इस तीसरे खण्ड में उनके चार उपन्यास हैं—देवी चौधरानी, आनन्दमठ, सीताराम और राजसिंह। ये चारों उपन्यास उनकी अन्य कृतियों की अपेक्षा आकार में बड़े हैं।

'बंकिम ग्रन्थावली' के तीनों खण्डों में संग्रहीत उनके समस्त, सोलहो उपन्यासों को उनके रचनाकाल के कालक्रम से संजोया गया है।

बंकिम के सभी उपन्यास हम इस 'ग्रन्थावली' के रूप में देने में समर्थ हुए हैं, हमारा प्रयास पाठकों के लिए आनन्ददायी सिद्ध हो, यही कामना है।

—ओंकार शरद



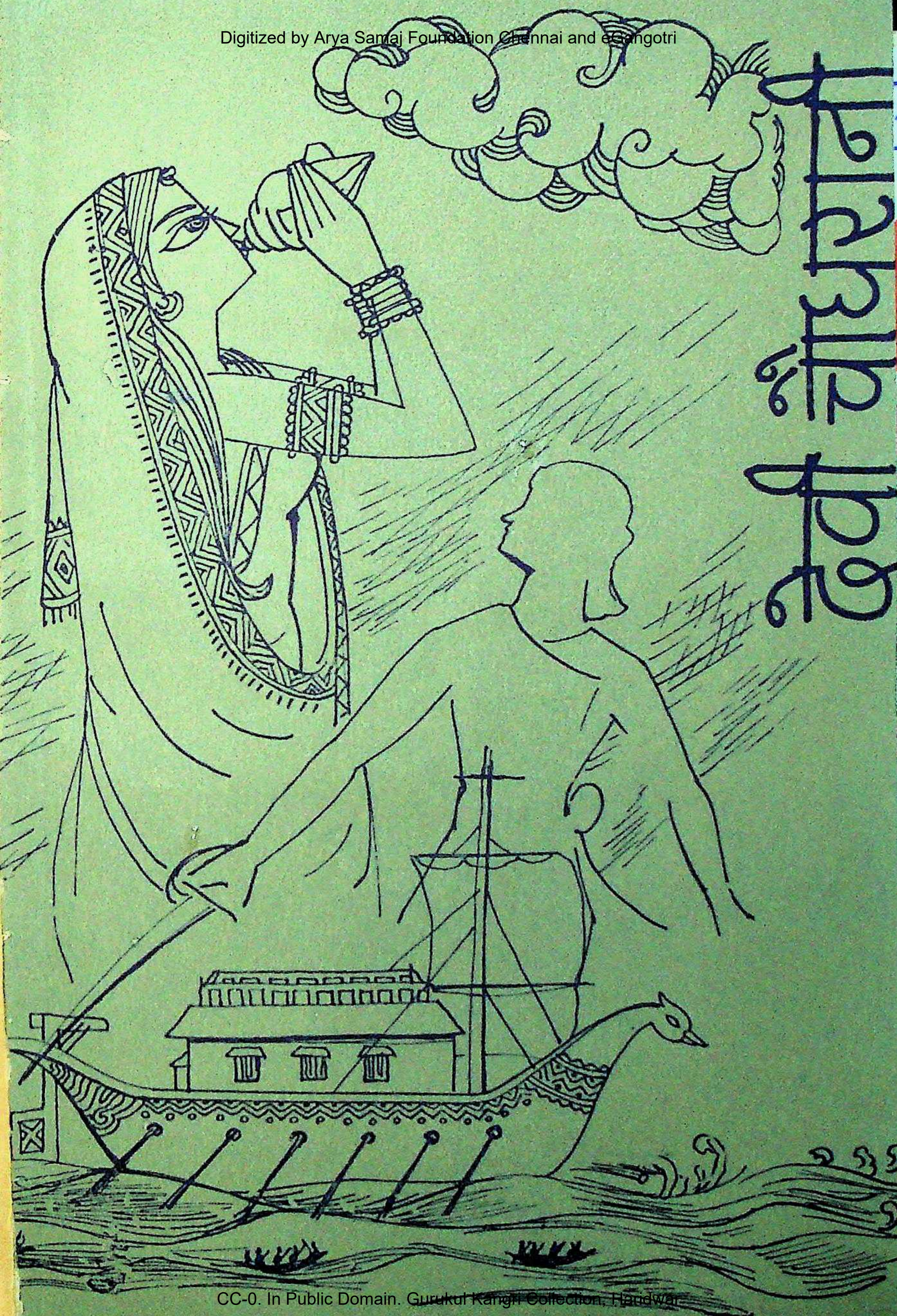
क्रम

१.	देवी चौधरानी ...	१३
२.	आनन्दमठ ...	१५७
३.	सीताराम ...	२७५
४.	राजसिंह ...	४०३



[तीन]




देवी चौधरानी

देवी चौधरानी

□

[रचनाकाल : सन् १८८२]

□

बंकिमचन्द्र के उपन्यासों में 'देवी चौधरानी' सम्भवतः सब से अधिक प्रभावकारी और रोचक कथा-कृति है।

'देवी चौधरानी' को यदि ऐतिहासिक पात्र न भी माना जाय, तो भी बंगाल में प्रचलित, उसके सम्बन्ध में अनेकानेक किंवदन्तियाँ उसे ऐतिहासिक महत्व प्रदान करती हैं।

बंगाल के 'Statistical Account' में देवी चौधरानी का इस प्रकार उल्लेख मिलता है :

'We catch a glimpse from the Lieutenant's report of a female dacoit by name Devi Chaudhurani, also in league with (Bhawani) Pathak, She lived in boats, had a large force of barkandases in her pay, and committed dacoities on her own account, besides receiving a share of the booty obtained by Pathak. Her title of Chaudhurani would imply that she was a Zamindar, probably a petty one, else she need not have lived in boats for fear of capture.'

'देवी चौधरानी' एक प्रेरक चरित्र है। डकैत है, लेकिन उस पर श्रद्धा होती है। भवानी ठाकुर आदर के पात्र दिखते हैं। अंग्रेजों की जोर जबरदस्ती और न्याय के नाम पर अन्याय और जमींदारों की कापुरुषता का सजीव वर्णन मिलता है।

'देवी चौधरानी' को ऐतिहासिक उपन्यास की श्रेणी में न गिना जाय, ऐसा स्वयं बंकिमचन्द्र का मत था। वे ऐतिहासिक मापदण्ड पर 'आनन्दमठ' को खरा उतरता पाते थे लेकिन 'देवी चौधरानी' को नहीं।

'देवी चौधरानी' तत्कालीन बंगाल की परिस्थितियों को देखने के लिए आईने का काम देगी।

पहला भाग

|१|

'अरे पि—अरे पिपि—अरे प्रफुल्ल—ओ मुँहजली !'

'आई माँ ।'

माँ ने पुकारा और पास आ कर बेटी ने पूछा, 'क्या है माँ ?'

माँ बोली, 'जा न, घोष लोगों के घर से एक बैंगन तो माँग ला ।'

प्रफुल्लमुखी ने कहा, 'मुझसे यह न होगा । किसी से कुछ माँगने में मुझे बड़ी लज्जा लगती है ।'

'तब फिर खाये गी क्या ? आज तो घर में कुछ भी नहीं है ।'

'तो सिर्फ भात खा लें गे । रोज-रोज माँग कर क्या खाना !'

'जैसा पूर्वजन्म का कर्म करके आई है । हम कंगालों को माँगने में भला कैसी लज्जा ?'

प्रफुल्ल चुप लगा गई । माँ ही बोली, 'अच्छा तो, तब तक तू भात चढ़ा दे, मैं जाती हूँ, किसी तरकारी की व्यवस्था करूँ गी ।'

प्रफुल्ल ने कहा, 'तुम्हें मेरे सिर की कसम । किसी से माँगने मत जाना । घर में चावल है, नमक है, हरी मिर्च फली है । हम औरतों के लिए इतना काफी है ।'

अंत में प्रफुल्ल की बात माँ ने मान ली । भात के लिए अदहन चढ़ा था । माँ चावल निकालने गई । टोकरी में चावल कम देख कर माँ ने माथा पीट लिया । बोली, 'चावल कहाँ है ?' प्रफुल्ल को टोकरी दिखा कर बोली, 'सिर्फ आधी मुट्ठी चावल है, इससे तो एक आदमी का आधा पेट भी नहीं भरे गा ।'

माँ टोकरी उठा कर बाहर निकली । प्रफुल्ल ने पूछा, 'कहाँ चलीं ?'

मां ने कहा, 'किसी से चावल उधार माँग लाऊँ। नहीं तो रूखा भात भी नहीं मिल सकता।'

'हम लोग कितना तो उधार ला-ला कर खा चुके, वही अभी तक वापस नहीं किए, तुम और उधार लाने मत जाओ।'

'अभागिन लड़की, फिर खाये गी क्या ? घर में तो एक भी पैसा नहीं है।'

'तो उपवास करूँ गी।'

'उपवास करे गी तो कै दिन जिन्दा रहे गी ?'

'न हो गा, मर जाऊँ गी।'

'मैं जब मर जाऊँ गी तब जो जी में आए गा करना। मेरे जीते जी तू उपवास कर के मरे, यह मुझसे तो देखा न जाय गा। जैसे भी हो गा, भीख माँग कर भी तुझे खिलाऊँ गी।'

'भीख क्या माँगो गी ? एक दिन के उपवास से आदमी मर नहीं जाता। आओ आज हम दोनों माँ-बेटी मिल कर आज जनेऊ तैयार कर लें। कल बेच कर पैसे ले आवें गे।'

'जनेऊ बनाने को सूता कहाँ है ?'

'क्यों चरखा तो है !'

'कपास कहाँ है ?'

अब प्रफुल्लमुखी सिर झुका कर रोने लगी। माँ फिर टोकरी उठा कर चावल उधार माँगने को चली। तब प्रफुल्ल, माँ के हाथ से टोकरी छीन कर भीतर रख आई और बोली, 'माँ, हम माँग कर क्यों खायें ? हमारे पास तो सब कुछ है।'

माँ ने गीली आँखों को पोंछ कर कहा, 'हाँ, बेटी सब कुछ तो है, लेकिन समय पर कुछ काम न आए, तब रहने से क्या ?'

'क्या काम नहीं आए गा माँ ? मैंने क्या अपराध किया है कि मेरे श्वसुर के घर में अन्न रहते मैं भूखी रहूँ गी ?'

'इस अभागिन के पेट से पैदा हुई है, यही अपराध—और तेरा फूटा भाग्य ! नहीं तो तुझे आज भूखा क्यों रहना पड़ता ?'

'सुनो माँ ! आज मैंने मन में निश्चय किया है कि श्वसुर के घर का अन्न खाने को मिले गा, तभी खाऊँ गी नहीं तो भूखी रहूँ गी। तुम उधार माँग कर या भीख माँग कर जैसे भी पाओ ला कर खा लो। फिर खा कर, तुम मुझे साथ चल कर मेरे ससुराल पहुँचा दो।'

'यह क्या बेटी ! ऐसा भी कहीं होता है ?'

'क्यों नहीं होता माँ ?'

'कोई बुलाने न आवे, और खुद ससुराल जाना क्या उचित है ?'

'दूसरे के घर से माँग-माँग कर खाना और बिना बुलाये अपनी ही ससुराल न जाना ?'

'वे लोग तो कभी तेरा नाम भी नहीं लेते ।'

'न लें । इसमें मेरा कोई अपमान नहीं है । जिन पर मेरे भरण-पोषण का भार है, उनसे माँग कर खाने में मेरा अपमान नहीं है । अपना धन आप ही माँग कर खाऊँ गी । इसमें मुझे भला लज्जा कैसी ?'

माँ चुप हो गई । फिर रोने लगी । प्रफुल्ल ने कहा, 'तुम्हें अकेली छोड़ कर मैं नहीं जाना चाहती । लेकिन मेरा दुख दूर होगा तो तुम्हरा दुख भी कम होगा, यही सोच कर मैं जाना चाहती हूँ ।'

फिर माँ-बेटी में बहुत सी बातें हुईं । अन्त में माँ ने सोचा कि बेटी का कहना ही ठीक है । तब माँ ने, जो भी चावल घर में था, वही सिझाया, लेकिन प्रफुल्ल ने बहुत कहने पर भी कुछ न खाया । इसीलिए माँ ने भी नहीं खाया । प्रफुल्ल बोली, 'अब और समय बिताने से क्या लाभ है ? दूर जाना है ।'

तब माँ ने कहा, 'आ, तेरे बाल तो सँवार दूँ ।'

प्रफुल्ल ने कहा, 'नहीं, ठीक हैं । रहने दो ।'

'रुको भी, लेकिन मेरी बेटी बिना शृंगार के ही अच्छी लगती है ।'

प्रफुल्ल ने सोचा—'जैसी हूँ, वैसी ही ठीक हूँ । सज कर क्या किसी को रिझाने जाना है ? छि !'

तब दोनों, माँ और बेटी, मलिन वेश में ही घर से निकल पड़ीं ।

|२|

वरेन्द्र भूमि जिले में भूतनाथ नामक एक गाँव है । वहीं प्रफुल्ल की ससुराल है । प्रफुल्ल की स्थिति चाहे जैसी हो पर उसके श्वसुर हरबल्लभ बाबू एक नामी रईस थे । उनके पास पर्याप्त सम्पत्ति थी । अनेक गावों की मिलकियत थी । दोमंजिला मकान, बैठक, ठाकुरबाड़ी, नाचघर, कचहरी, फुलवाड़ी और छोटा सा तालाब, सब एक ही अहाते के भीतर थे । चारों ओर चहरदीवारी थी । यह गाँव प्रफुल्लमुखी के नैहर से छः कोस दूर था । बिना कुछ भी खाये-पिये, छः कोस का रास्ता पैदल चल कर प्रफुल्ल और उसकी माँ, दोनों, दिन के तीसरे पहर धनी हरबल्लभ बाबू के घर पहुँचीं ।

प्रफुल्ल के ससुराल के भीतर घुसते समय प्रफुल्ल की माँ चम्पा के पाँव काँपने लगे। प्रफुल्ल को एक निर्धन की कन्या समझ कर हरवल्लभ बाबू उससे घृणा करते हों, ऐसी बात न थी। लेकिन विवाह के बाद एक दुर्भाग्य आ गया। हरवल्लभ ने चम्पा की निर्धन स्थिति को जानते हुए भी बेटे का ब्याह प्रफुल्ल के साथ कर दिया था। लड़की अद्वितीय सुन्दरी थी। ऐसी खूबसूरत लड़की और नहीं मिल सकती थी, इसीलिए प्रफुल्ल के साथ बेटे का ब्याह किया था। इधर प्रफुल्ल की गरीब माँ ने भी यह देख कर कि बेटी बड़े आदमी के घर जा रही है, बड़े उत्साह से घर में जो कुछ था, उसे खर्च कर दिया था। एक प्रकार से उस विवाह में उसका सर्वस्व लग गया। और उसी दिन से वह कंगाल हो गई। इस शादी ने ही बेचारी अनाथ विधवा को पूरी तरह बरबाद कर दिया था। अपना सर्वस्व खर्च कर के भी वह सब ओर के व्यवहारों को ठीक-ठीक नहीं संभाल सकी। बरातियों को तो उसने खूब पूरी मिठाई खिलाई, किन्तु अपने जाति भाइयों के चूड़ा-दही ही खिला सकी। इसे जाति भाइयों ने अपना अपमान समझा। उन लोगों ने ढंग से भोजन नहीं किया। वे पाँत से उठ कर चले गये। इसलिए उनसे चम्पा का झगड़ा हो गया। चम्पा ने भी उन लोगों को बड़ी गालियाँ दीं। बाद में पड़ोसियों ने भी इसका भरपूर बदला लिया।

पाकस्पर्श के दिन हरवल्लभ बाबू ने समधी के भाई बन्धुओं को भी नेवता दिया, लेकिन कोई भी भोजन करने नहीं गया। एक आदमी से कहला भेजा, 'जो स्त्री कुलटा है, जाति-भ्रष्टा है, उसके घर आपने संबंध किया है। आप बड़े आदमियों को सब शोभा देता है। हम गरीबों के लिए जाति ही सब कुछ है। हमलोग जाति-भ्रष्टा की लड़की के हाथ का अन्न-जल नहीं ग्रहण कर सकते।'

भरी सभा में यह बात कही गई। विधवा चम्पा को लड़की के सिवा अपना कोई न था। उम्र भी अभी बहुत नहीं हुई थी। इसलिए उस पर लगाए गये अभियोग पर और लोगों ने भी विश्वास किया और हरवल्लभ बाबू को भी यह तत्काल याद आ गया कि विवाह की रात पड़ोसियों ने विधवा चम्पा के घर भोजन नहीं किया था। पड़ोसी भला झूठ क्या बोलेंगे ? हरवल्लभ ने अभियोग पर विश्वास किया। सभी ने विश्वास किया। इसलिए निमंत्रित लोग बाद में आए तो, लेकिन किसी ने नववधू के हाथ की रसोई न खाई। फिर दूसरे ही दिन हरवल्लभ बाबू ने प्रफुल्ल को उसके नैहर भेज दिया। उसके बाद उन्होंने प्रफुल्ल और उसकी माँ को त्याज्य समझ कर कभी उनकी खोज-खबर तक न ली। बेटे को भी कभी उसकी ससुराल नहीं जाने दिया। यही नहीं, उसका दूसरा ब्याह भी कर दिया। प्रफुल्ल की माँ ने एक-दो बार कुछ सौगात भेजी थी, उसे भी उन्होंने लौटा दिया था। इसीलिए, यह सब याद कर के आज उनके घर में प्रवेश करते हुए चम्पा के पैर काँप रहे थे।

लेकिन जब चम्पा आ ही गई थी तो किसी से बिना मिले भला कैसे लौट जाती ? हिम्मत कर के माँ बेटी दोनों ही भीतर गईं। उस समय घर के मालिक भीतर कोठी में सो रहे थे। घर की मालकिन यानी प्रफुल्ल की सास पाँव फैला कर बैठी अपने सिर के पके बाल नुचवा रही थीं। तभी प्रफुल्ल को साथ लिए चम्पा वहाँ आई। प्रफुल्ल ने चेहरे पर घूँघट खींच रखा था। इस समय उसकी उम्र अट्ठारह वर्ष की थी।

मालकिन ने इन्हें देखते ही पूछा, 'तुम लोग कौन हो ?'

चम्पा ने लंबी सांस खींच कर कहा, 'अपना परिचय क्या कह कर दूँ ? कैसे बताऊँ कि कौन हूँ ?'

'क्यों, इसमें, परिचय बताने में दिक्कत क्या है ?'

'हम आप के रिश्तेदार हैं।'

'रिश्तेदार ! कैसे रिश्तेदार ?'

इसी समय घर की पुरानी नौकरानी पन्ना की माँ वहाँ आ गई। प्रफुल्ल के विवाह के बाद कई बार वह उसके घर जा चुकी थी। वही बोली, 'अरे, इन्हें तो मैं खूब पहचानती हूँ।'

मालकिन ने प्रश्न-भरी निगाह से उसकी ओर ताका।

पन्ना की माँ बोली, 'नहीं पहचाना ?···समधिन।'

मालकिन ने थोड़े आश्चर्य से पूछा, 'समधिन ? कौन समधिन ?'

पन्ना की माँ ने स्पष्ट किया, 'माँ, ये दुर्गापुर वाली समधिन हैं। आप के बड़े बेटे की पहली सास।'

अब मालकिल समझ गईं। उनके चेहरे का रंग बदल गया। फिर अपने को सम्हाल कर बोली, 'बैठो, समधिन बैठो।'

प्रफुल्ल खड़ी ही रही। तब उसकी ओर इशारा कर के मालकिन ने पूछा, 'यह लड़की कौन है ?'

चम्पा ने कहा, 'आपकी बड़ी बहू।'

सुनते ही मालकिन का मुँह फूल आया। कुछ देर यों ही बैठी रहने के बाद पूछा, 'तुम लोग यहाँ कहाँ आई थीं ?'

'यहीं आप के यहाँ आई हैं।'

प्रफुल्ल की सास गिन्नी ने पूछा, 'क्यों ?'

चम्पा बोलीं, 'क्यों क्या ? क्या मेरी बेटी को अपने ससुराल नहीं आना चाहिए ?'

'क्यों नहीं आना चाहिए, लेकिन जब सास-ससुर बुलावें, तब। अच्छे घर को बहू-बेटी क्या अपने से आ कर गले पड़ती हैं?'

'सास-ससुर अगर सात जनम नाम न लें तब?'

'जब नाम ही न लें तो आना भी नहीं चाहिए।'

'तो खाये क्या? कौन खाना-कपड़ा देगा? मैं ठहरी अनाथ विधवा। मेरे पास इतने रुपये-पैसे भी नहीं हैं। तुम्हारी बहू को मैं कब तक और कहाँ से खिलाऊँ?'

'जब खिला नहीं सकतीं तो पैदा क्यों किया था?'

'क्या तुमने खाने पहनने का हिसाब कर के ही अपने बेटे को पैदा किया था? अब बेटे के साथ पतोहू के खाने पहनने की व्यवस्था क्यों नहीं करतीं?'

'लगता है, मुझसे झगड़ा करने की ठान कर आयी हो।'

'नहीं, झगड़ा करने नहीं आई हूँ। तुम्हारी पतोहू अकेली नहीं आ सकती थी, इसी से उसे पहुँचाने चली आई हूँ। अब लो सम्हालो, अपनी पतोहू। तुम्हारी पतोहू तुम्हारे घर आ गई। अब मैं जाती हूँ।'

कह कर चम्पा उठ कर चली गई। किसी ने उससे खाने पीने को भी न पूछा। बेचारी भूखी ही चली गई।

माँ चली गई, लेकिन बेटी रह गई। वह जैसी घूँघट खींच कर खड़ी थी वैसी ही खड़ी रही। थोड़ी देर के बाद सास ने कहा, 'तुम क्यों खड़ी हो? तुम्हारी माँ गई, तुम भी जाओ।'

प्रफुल्ल बोली नहीं। वैसी ही खड़ी रही।

'जाती क्यों नहीं?'

प्रफुल्ल फिर भी चुप।

'क्यों जला रही हो? तुम्हें पहुँचाने के लिए क्या कोई आदमी साथ भेजना हो गा?'

अब प्रफुल्ल ने चेहरे पर से घूँघट हटाया। लगा जैसे एकाएक पूर्णिमा का चाँद बदली के पीछे से निकल आया है। उसकी आँखों से लगातार आँसू बह रहे थे। सास ने मन ही मन कहा—आह! ऐसी सुन्दर बहू को अपने घर में नहीं रख पाई!

प्रफुल्ल का चेहरा देख कर गिन्नी जरा मुलायम पड़ी।

प्रफुल्ल ने धीरे से कहा, 'जाने के लिए नहीं आई हूँ।'

गिन्नी बोली, 'बेटी, मैं क्या करूँ? क्या मेरा मन नहीं होता है तुम्हें अपने घर में रखूँ? लेकिन क्या करूँ? सब आदमी सब तरह की बातें करते हैं। जाति-च्युत करने की धमकी देते हैं। इसीलिए विवश हो कर तुम्हारा त्याग करना पड़ा है।'

'माँ, जाति-च्युत होने के डर से कोई अपनी सन्तान को नहीं छोड़ देता। क्या मैं आप की बेटी नहीं हूँ?'

गिन्नी और भी पिघलीं। बोलीं, 'क्या कहती हो बेटी ? जाति जाने का भय साधारण भय नहीं है। सुना है न—सब तें कठिन जाति अपमाना।'

प्रफुल्ल पहले जैसी गंभीरता से बोली, 'लोग मुझे अजाति ही समझें। आप के घर में कितने ही अजातीय नौकर-चाकर सेवा-टहल के लिए हैं। मैं भी यदि उनकी ही तरह आप के घर में सेवा-टहल करूँ तो क्या हर्ज है ?'

गिन्नी से और सहा न गया। मन ही मन बोली—कैसी लक्ष्मी जैसी लड़की है। जैसा सुन्दर रूप, कैसी ही सुन्दर बातें भी। एक बार न हो, स्वामी के पास जाकर कह कर, देखूँ वे क्या कहते हैं ! यही सोच कर बोली, 'बेटी, तुम यहाँ बैठो, बैठो।'

प्रफुल्ल सिमट-सिकुड़ कर बैठ गई। उसी समय, किवाड़ की आड़ के पीछे से एक चौदह वर्षीय सुन्दर बालिका, जो मुँह पर घूँघट डाले थी, ने हाथ के इशारे से प्रफुल्ल को बुलाया।

प्रफुल्ल ने सोचा, 'यह हमारी कौन है ?' फिर उठ कर बालिका के पास चली गई।

३

जब गृहणी हिलती-डुलती हाथ के कंगन की पेंच कसती हुई, स्वामी के शयनागार में पहुँची, तब तक स्वामी की नींद उचट चुकी थी। वे कुल्ला कर के पानी से आँख-मुँह धो कर पोंछ रहे थे। स्वामी का मन अपनी ओर आर्कषित करने के अभिप्राय से गिन्नी ने कहा, 'किसने आप को कच्ची नींद से जगा दिया ? मैं कितना ही कहती रहती हूँ, पर मेरी तो कोई सुनता ही नहीं।'

स्वामी महाशय ने मन ही मन कहा—'नींद में बाधा तो तुम्हीं डालती हो। आज अवश्य ही कोई मतलब गाँठना है। फिर प्रकट बोले, 'नहीं, किसी ने भी नहीं जगाया। मैं काफी सो चुका हूँ। कुछ कहना है क्या ?'

गिन्नी ने ओठों पर हँसी ला कर कहा, 'आज एक काण्ड हो गया है। वही बताने आई हूँ।'

इस प्रकार भूमिका बाँध कर, नाक की नथ को हिलाते हुए और हाथ के कंगन को घुमाते हुए—और ऐसा क्यों न करती ? अभी पैंतालिस वर्ष की ही तो उम्र है—गिन्नी ने प्रफुल्ल और उसकी माँ के आने और उनके साथ हुई बातचीत का विस्तृत वृत्तांत शुरू से ले कर अंत तक सब कह सुनाया। फिर प्रफुल्ल के चाँद से चेहरे तथा

मीठी बातों को याद कर के उसकी खूब ही सिफारिश की। लेकिन गिन्नी का एक भी मन्त्र-तन्त्र काम न आया। सब कुछ सुन कर हरवल्लभ के चेहरे पर बैशाख के काले बादल छा गये। बोले, 'उसकी ऐसी शोखी ? अजाति की बेटी क्या मेरे घर में रहे गी ? अभी झाड़ू मार कर उसे निकाल बाहर करो।'

गिन्नी ने कहा, 'छिः छिः ! कैसी बातें करते हो ? कुछ भी हो, आखिर है तो अपनी बहू ही। और फिर वह अजाति की बेटी भी कैसे हुई ? लोगों के कहने से क्या होता है ?'

गिन्नी ठकुरानी हार की बाजी ले कर जम कर बैठ गईं। तरह-तरह से बदरंग की चालें चलने लगी। तरह-तरह की युक्ति लड़ाई। लेकिन कोई नतीजा न निकला। आखिर वही हुक्म बहाल रहा—अजाति की बेटी को अभी झाड़ू मार कर बाहर निकाल दो।

अंत में क्रोध दिखा कर गिन्नी ने कहा, 'ठीक है, तो झाड़ू ही मारना हो तो आप अपने हाथों ही मारिए। अब से मैं आप के घर की इन सब बातों में कुछ नहीं बोलूँ गी।' कहती हुई क्रोध से थर-थर काँपती हुई वह वहाँ से उठ कर चली गई।

गिन्नी ठकुरानी ने वापस आकर देखा कि प्रफुल्ल को वह जहाँ बैठा गई थी, वहाँ वह नहीं थी।

प्रफुल्ल उसी सुन्दर बालिका के बुलाने पर उसके पास गई थी। प्रफुल्ल को कमरे के भीतर कर के बालिका ने दरवाजा भीतर से बन्द कर लिया था।

प्रफुल्ल ने पूछा, 'दरवाजा क्यों बन्द किया ?'

'ताकि कोई आ न सके। तुमसे बातें करनी हैं न !'

'तुम्हारा नाम क्या है ?'

'बहन, मेरा नाम है सागर।'

'तुम कौन हो ?'

'मैं···मैं तुम्हारी सौत हूँ।'

'क्या तुम मुझे पहचानती हो ?'

'नहीं, पर अभी यहाँ छिप कर मैंने सब बातें सुनी हैं।'

'तब तो तुम्हीं गृहणी, मालकिन···'

'नहीं बहन, मैं भी तुम्हारी ही तरह खोटे भाग्य की हूँ। मैं भला मालकिन क्यों होने ल गी ? मेरे न तो उतने बड़े दाँत हैं और न ही मेरा रंग उतना काला है।'

'क्या मतलब ? किसके दाँत···'

'किसके ? उसी के जो···'

'वह कौन है ?'

'नहीं जानती ? भला जानो गी भी किस तरह ? कभी तो यहाँ आई ही नहीं हो। हमारे एक और भी सौत हैं, उसे क्या नहीं जानतीं ?'

'मैंने उनके और एक ब्याह होने की बात जरूर सुनी थी। समझा था, वह तुम्हीं हो।'

'नहीं, तुमने उसी की बात सुनी हो गी। मेरा ब्याह हुए तो यही तीन साल हुए हैं।'

'क्या वह बहुत कुरूपा है ?'

'उसकी शक्ल देख कर तो डर लगता है।'

'लगता है, इसी से उन्होंने फिर तुम्हारे साथ ब्याह किया है।'

'नहीं यह बात नहीं है। तुमसे बताती हूँ। किसी और से मत कहना।' सागर ने बहुत धीरे-धीरे कहना शुरू किया, 'मेरे बाप के पास बहुत रुपये हैं। मैं अपने बाप की अकेली सन्तान हूँ। सिर्फ रुपयों के लिए…'

'मैं सब समझ गई। और कुछ कहने की जरूरत नहीं। मैं पूछती हूँ कि तुम तो बड़े घर की बेटी हो, देखने में भी सुन्दर हो, फिर तुम्हारे रहते वह कुरूपा घर की प्रधान कैसे हो गई ?'

'मैं अपने बाप की अकेली संतान हूँ। वे मुझे यहाँ नहीं आने देते। उनके साथ ससुर जी की पटरी नहीं खाती। इसीलिए मैं यहाँ नहीं रहती। काम-काज पड़ने पर ये लोग बुलवा लेते हैं। अभी भी दो-चार दिन के लिए ही आई हूँ। जल्दी ही चली भी जाऊँ गी।'

प्रफुल्ल ने देखा कि सागर सचमुच में सुशीला है। सौत समझ कर भी उस पर ईर्ष्या नहीं होती। प्रफुल्ल ने पूछा, 'मुझे क्यों बुलाया ?'

'कुछ खाओ गी ?'

प्रफुल्ल को हँसी आ गई। बोली, 'वाह, यह कोई खाने का समय है ?'

'तुम्हारा मुँह सूखा है। बहुत दूर से पैदल चल कर आई हो। तुम्हें जरूर भूख लगी हो गी। किसी ने अभी तक तुमसे खाने को नहीं पूछा। इसीलिए तुम्हें यहाँ बुलाया है।'

सचमुच प्रफुल्ल ने अभी तक कुछ खाया न था। भूख-प्यास के मारे ओंठ तक सूख गये थे। तो भी उसने धीरज धर कर कहा—'सासुजी मालिक के पास गई हैं, मेरे ही संबंध में कुछ पूछताछ करने। मैं जब तक अपने भाग्य का फैसला न सुन लूँ गी, यहाँ का कुछ न खाऊँ गी। अगर मेरे भाग में झाड़ू खाना ही लिखा होगा तो वही खाऊँ गी और कुछ नहीं।'

'नहीं, नहीं, यहाँ की कोई चीज तुम्हें खाने की जरूरत नहीं है। मेरे बाप के घर का बना संदेश है, बहुत अच्छे संदेश हैं।'

यह कह कर सागर एक तश्तरी में कई संदेश ला कर जबरदस्ती प्रफुल्ल के मुँह में ठूँसने लगी। लाचार हो कर प्रफुल्ल को कुछ खाने ही पड़े। सागर ने ला कर ठण्डा पानी दिया। खा-पी कर प्रफुल्ल का मन व बदन प्रफुल्लित हुआ। तब प्रफुल्ल ने कहा, 'मैं तो खा-पी कर शीतल हुई। लेकिन मेरी माँ यदि कूछ न खाये गी तो वह मर ही जाए गी।'

'तुम्हारी माँ कहाँ गईं?'

'क्या पता? शायद सड़क पर खड़ी हों गी।'

'एक काम करूँ?'

'क्या?'

'ददिया सास को उनके पास भेज दूँ।'

'वह कौन हैं?'

'रिश्ते में वे अपने ससुर जी की बुआ होती हैं। इसी घर में रहती हैं और सब लोग उन्हें बूढ़ी माई कहते हैं।'

'वे क्या करें गी?'

'तुम्हारी माँ को खिला-पिला देंगी।'

'लेकिन मेरी माँ तो इस घर का कुछ खायें गी ही नहीं।'

'क्या मैं यहाँ का खाने को कह रही हूँ? किसी ब्राह्मण के घर जा कर कुछ खा लेंगी।'

'जो ठीक समझो, करो। माँ की तकलीफ अब देखी नहीं जाती।'

सागर झटपट ददिया सास के पास गई और उन्हें समझा कर सब बताया। वह बोलीं, 'बेटी, ठीक तो कहती हो। गृहस्थ के घर आ कर भूखी रहें गी तो बड़ा पाप लगे गा।' कह कर बूढ़ी माई प्रफुल्ल की माँ की खोज में बाहर निकल गईं।

लौट आ कर सागर ने यह बात प्रफुल्ल से बतायी। प्रफुल्ल बोली, 'बहन, अभी जो बात कह रही थीं, वहीं कहो।'

'कौन सी बात? मैं तो यहाँ रहती नहीं। शायद रहने भी न पाऊँ गी। मेरा भाग्य तो मिट्टी के आम जैसा है, सिर्फ देखने का। कभी देवता के भोग के काम नहीं आने का। तुम आ गई हो, जैसे भी बन पड़े, तुम यहाँ रहो। मैं उस कालो-कलूटी को देखना भी नहीं चाहती।'

'रहने के लिये ही तो आई हूँ, लेकिन जब रहने पाऊँ गी तब न!'

'अच्छा, सुनो, एक बात कहे देती हूँ। अगर ससुर जी की राय तुम्हें रखने की न भी हो, तो तुम फौरन ही चली मत जाना।'

'क्यों ? तब क्या करूँ गी ? यहाँ कैसे रह सकूँ गी ? हाँ, रह सकती हूँ, यदि...'

'यदि क्या ?'

'अगर तुम मेरे जन्म को सार्थक बना सको ?'

'सो कैसे ?'

प्रफुल्ल फिर हँस पड़ी। फिर हँसी दबा कर, आँखों में आँसू भर कर बोली, 'मेरा मतलब तुम नहीं समझीं शायद।'

सागर समझ गई। जरा सोच कर बोली, 'साँझ होने के बाद तुम यहीं आ कर बैठना। दिन में तो खैर भेंट होगी ही नहीं।'

'मेरे भाग्य का क्या विचार होता है, पहले यह मालूम हो जाने दो, फिर मैं तुमसे मिलूँ गी। भाग्य में चाहे जो बदा हो, पर एक बार स्वामी से मिल कर, उनकी राय जान कर ही यहाँ से जाऊँ गी।' कह कर प्रफुल्ल कमरे से बाहर निकली। देखा, सासुजी उसे ही खोज रही थीं। प्रफुल्ल को देखते ही पूछा, 'किधर चली गई थीं, बेटी ?'

'जरा घर-द्वार देख रही थी।'

'यह घर-द्वार सब तुम्हारा ही है बेटी, पर बेटी ! मुझे बताओ, मैं क्या करूँ ? तुम्हारे ससुर तो किसी तरह भी राजी नहीं होते।'

प्रफुल्ल के सिर पर जैसे बज्राघात हुआ। वह सिर पर हाथ रख कर बैठ गई। पर रोई नहीं, चुप ही रही। उसे देख कर सास को बड़ी दया आई। उसने मन ही मन संकल्प किया कि एक बार फिर स्वामी से कह कर देखूँ गी। लेकिन मन की यह बात उसने प्रकट नहीं की। सिर्फ इतना कहा, 'अब आज कहाँ जाओ गी ? आज यहीं रहो। कल सबेरे चाहे चली जाना।'

प्रफुल्ल ने सिर उठा कर कहा, 'अच्छा आज नहीं जाऊँ गी। पर क्या आप एक बात बाबूजी से पूछें गी ? मेरी माँ सूत कात कर गुजर करती है, उससे एक आदमी का एक साँझ का खाना भी पूरा नहीं होता। फिर मेरा निर्वाह कैसे होगा ? मैं चाहे अजाति की या कुजाति की कन्या होऊँ, लेकिन हूँ तो उन्हीं की पतोहू। उनकी पतोहू क्या धंधा कर के गुजर-बसर करे ?'

सास ने कहा, 'जरूर पूछूँ गी।'

फिर प्रफुल्ल वहाँ से उठ कर चली गई।

|४|

साँझ के बाद, उसी कमरे में किवाड़ बन्द कर के सागर और प्रफुल्ल धीरे-धीरे बातचीत कर रही थीं।

ठीक इसी समय किसी ने आ कर बाहर से किवाड़ खटखटाया। सागर ने पूछा, 'कौन है ?'

'मैं हूँ।'

सागर ने प्रफुल्ल को चिकोटी काट कर धीरे से कहा, 'अब बोलना मत। वही कलूटी आई है।'

'कौन ? वही सौत ?'

'हाँ, चुप !'

बाहर से वही बोली, 'कमरे में कौन है ? बातचीत क्यों बंद कर दी ? क्या मैंने सागर-बहू के गले की आवाज नहीं सुनी है ?'

सागर ने कहा, 'तुम कौन हो ? क्या मैं नाइन बहू की आवाज नहीं पहचानती ?'

'आह ! मरती क्यों नहीं ? क्या मैं नाइन हूँ ?'

'फिर तू कौन है ?'

'तेरी सौत, सौत ! सौत ! नाम है मेरा नयन बहू।'

(उसका नाम था नयनतारा—लोग उसे 'नयन बहू' कहते और सागर को 'सागर- बहू' कहते थे।)

तब सागर ने झूठी घबराहट के स्वर में कहा, 'कौन ? अरे बहन, तुम हो ? तुम भला नाइन बहू कैसे हो सकती हो ? वह तो फिर भी तुमसे गोरी है। देखने में भी कहीं ज्यादा अच्छी है।'

'मैं मर क्यों नहीं जाती ? क्या मैं उससे भी बदसूरत हूँ ? सौतें ऐसी ही होती हैं। उस पर तू तो अभी सिर्फ चौदह साल की ही है। जो जी में आये, कह ले।'

'चौदह वर्ष की होने से क्या होता है ? तुम भी तो सत्रह साल की हो। तुम्हारा रूप, यौवन, भाग्य क्या किसी से कम है ?'

'मैं चाहे काली-कलूटी होऊँ पर इस घर की प्रधान बहू हूँ। तुम अपने रूप-यौवन को अपने बाप के घर बैठ कर धो-धो कर पीना। यह तो मेरा ही दोष है कि मैं तुझसे कोई बात कहने आई हूँ।'

'अरे बहन, क्या कहने आई हो ? कुछ कहो भी तो ?'

'तुमने दरवाजा तक तो खोला नहीं। कहूँ भी तो कैसे ? आज साँझ से ही दरवाजा क्यों बन्द कर लिया है ?'

'बहन, छिप कर मैं संदेश खा रही हूँ। क्या तुम भी खाओ गी ?'

'खाओ, लेकिन इसके लिए दरवाजा बन्द करने की भला क्या जरूरत थी ? (नयन को मिठाई बहुत अच्छी लगती थी।) तुमसे मैं पूछने आई थी कि फिर एकजन आई है क्या ?'

'एकजन और कौन ? दूसरा स्वामी ?'

'मर जा तू। ऐसा भी कहीं होता है ?'

'ऐसा ही होता तो अच्छा होता। हम दोनों बाँट लेते। कमर के नीचे का हिस्सा तुम्हें लेती और ऊपर का मैं लेती।'

'छिः, छिः ! यह सब बात किस मुँह से कहती है ?'

'मुँह से नहीं, मन से !'

'भाई, तुम्हारे मन में जो आये, तुम बोलो।'

'तो भाई, क्या पूछना है ? समझा कर जब तक नहीं कहो गी, मैं उत्तर कैसे दूँगी ?'

'कहती हूँ, क्या एक और बहू आई है ?'

'कैसी बहू ?'

'वही चमारिन बहू।'

'चमारिन ? कौन ? मैंने तो नहीं सुना।'

'चमारिन न सही, अजाति की बेटी।'

'यह भी नहीं सुना।'

'क्या कभी सुना नहीं कि हमारे एक जातिभ्रष्टा सौत भी है ?'

'नहीं, कभी नहीं सुना।'

'तू बड़ी दुष्ट है। वही, पहले विवाह वाली।'

'वह तो ब्राह्मण की बेटी है।'

'हाँ, ब्राह्मण की बेटी ! तो फिर उसे इस घर में क्यों नहीं रखा गया ?'

'कल यदि तुम्हें ही विदा कर के मुझे ले कर घर बसावें तो क्या तुम अजाति की बेटी हो जाओगी ?'

'तू मुझे गाली क्यों देती है ? मुँह सम्हाल कर बोल।'

'तो तू भी किसी को गाली क्यों देती है ? तू भी मुँह सम्हाल कर बोल।'

'तू मर जा ! मैं ठकुरानी माँ से जा कर कहती हूँ कि तू बड़े बाप की बेटी है, इसीलिए तेरे मुँह में जो भी आता है, बकती रहती है।'

कह कर नयनतारा शरीर पर लादे गहनों को झमर-झमर बजाती हुई लौट गई। सागर ने उसका प्रमाद देखा। पुकार कर कहा, 'रूठो मत, भूल हुई मुझसे। रूठो मत। मेरा अपराध क्षमा करो। मेरे सिर की कसम। लो मैं दरवाजा खोल देती हूँ।'

नयनतारा चिढ़ कर क्रोधित हो गई थी। वह लौट आने वाली न थी। लेकिन कमरे का दरवाजा बन्द कर के सागर क्या मिठाई खा रही है, यह देखने की इच्छा को वह दबा न सकी। इसीलिए पलट पड़ी। कमरे में घुस कर देखा—सन्देश नहीं थे—एक औरत बैठी थी। पूछा, 'यह कौन है ?'

'प्रफुल्ल।'

'यह कौन ?'

'वही चमारिन बहू।'

'इतनी सुन्दर !'

'तुम्हारे जैसी तो नहीं है।'

'और मत जलाओ। मुझसे ज्यादा भले न हो। तुमसे ज्यादा तो सुन्दर है !'

|५|

इधर मालिक हरवल्लभ बाबू पहर रात बीते जनान-खाने में आये। गृहिणी गिन्नी ने खाने की थाली सामने ला कर रखी। पास ही बैठ गईं। रात को मक्खियाँ नहीं रहतीं। फिर भी स्त्री-धर्म की रक्षा के लिए गिन्नी ठकुरानी पंखा ले कर हिलाने लगीं। हाय ! किस पापी नराधम ने यह परम नारी-धर्म बनाया ? घर में पाँच-पाँच दासियाँ हैं, लेकिन स्वामी की सेवा के लिए कोई और नहीं आ सकता।

खाना खाते-खाते स्वामी ने पूछा, 'वह अजाति की बेटी गई न ?'

गृहिणी ने मक्खी उड़ाते हुए नथ हिला कर कहा, 'इतनी रात में बेचारी कहाँ जाती भला ? रात में कोई मेहमान आता है तो उसे क्या आप भगा देते हैं ? क्या मैं ब्याही बहू को रात में ही भगा देती ?'

'क्या वह मेहमान है ? तब उसे अतिथिशाला में रखो न ! यहाँ क्यों है ?'

गिन्नी ठकुरानी ने सरोष कहा, 'मैं नहीं भगा सकूँ गी, मैंने कह दिया। निकालना हो तो आप ही निकाल दीजिए। इतनी सुन्दर बहू है, लेकिन…...'

'कुजाति के यहाँ भी एक दो सुन्दर मिल जाएँ गी। अच्छा, तो मैं ही उसे निकालूँ गा। ब्रज को बुलाओ तो।'

ब्रज उनके बेटे का नाम है। एक नौकरानी जा कर ब्रजेश्वर को बुला लाई। ब्रजेश्वर की आयु इक्कीस बाईस की होगी। खूब सुन्दर पुरुष। पिता के सामने विनीत भाव से आ खड़ा हुआ। क्यों बुलाया है, यह पूछने का उसे साहस न हुआ।

देख कर हरवल्लभ बाबू ने कहा, 'बाबू, तुम्हारे तीन व्याह हुए हैं, मालूम है न !'

ब्रज चुपचाप रहा ।

'पहला व्याह याद है ? वही जो एक अजाति की लड़की से हुआ था ?'

ब्रज चुप रहा । तब का बाइस साल का बेटा, हीरा की धार के समान तेज होने पर भी पिता के सामने सवाल-जवाब नहीं कर सकता था । आज के लड़के जितने अधिक मूर्ख होते हैं, माँ-बाप के सामने उतनी ही लम्बी-चौड़ी स्पीच झाड़ते हैं ।

हरवल्लभ बाबू बोले, 'वही अजाति-कन्या आज यहाँ आई है । वह जबरदस्ती यहाँ रहना चाहती है । इसीलिए मैंने तुम्हारी माँ से कहा कि उसे झाड़ू मार कर निकाल दो, पर एक स्त्री क्या दूसरी स्त्री को गरदनिया दे सके गी ? यह काम तुम्हारा है, तुम्हारा अधिकार भी है । दूसरा कोई उसे छू नहीं सकता । अगर आज ही रात में उसे झाड़ू मार कर नहीं निकालो गे तो मुझे रात भर नींद नहीं आये गी ।'

गिन्नी ठकुरानी बोलीं, 'छिः ! स्त्री पर हाथ मत उठाना । इनकी बात मानो गे और मैंने जो तुम्हें नौ महीने पेट में रखा, मेरी नहीं सुनो गे ? जो करना हो करो, अच्छी बात कह कर ही विदा कर देना ।'

ब्रज ने पिता को उत्तर दिया, 'जैसी आपकी आज्ञा', और माता से कहा, 'अच्छा ।' कह कर भी ब्रजेश्वर खड़ा रहा । तभी गिन्नी ठकुरानी ने पति से पूछा, 'आप जो बहू को निकाले दे रहे हैं, लेकिन वह खाए गी क्या ? उसे कौन खाने को देगा ? वह क्या धँधा कर के पेट भरे गी ?'

'जो उसके जी में आवे, सो करे ! चोरी करे, डकैती करे, भीख माँगे ।'

गिन्नी ठकुरानी ने बेटे से कह दिया, 'पूछ लो इसका उत्तर और घर से निकालते समय जवाब बहू को बता देना । उसने इस सवाल का जवाब माँगा था ।'

पिता के पास से हट कर ब्रजेश्वर बूढ़ी माई के पास चला गया । देखा, वे ध्यान-मग्न हो दाहिने हाथ में ले कर माला जप रही थीं । और बायें हाथ से मच्छर भगा रही थीं ।

ब्रजेश्वर ने धीरे से पुकारा, 'माई जी !'

'क्या है बाबू ?'

'आज एक नई खबर है ।'

क्या नई खबर ? यही न कि सागर ने मेरा चरखा तोड़ दिया है । वह अभी बच्ची है, तोड़ दिया, तोड़ दिया । चरखा कातने का उसे शौक हुआ था, इसी से......'

'यह नहीं, यह नहीं—कहता हूँ, सुनो तो आज...'

'सागर को कुछ मत कहना । तुम लोग जीते रहोगे तो बहुत चरखे हो जायेंगे । मैं अब बूढ़ी......'

'कहता हूँ कि मेरी बात सुनो...।'

'मैं बूढ़ी हुई, कब हूँ, कब नहीं हूँ। दो जोड़ा जनेऊ तैयार कर के किसी ब्राह्मण को देती, नहीं दूँ गी और क्या। यह झंझट तो··· ···,'

'मेरी बात तो सुनो। नहीं तो तुम्हारे और जितने चरखे हैं मैं सबको ही तोड़ दूँगा।'

'क्या कहते हो ? चरखा की बात नहीं है ?'

'नहीं, मेरे दो स्त्रियाँ हैं, जानती हो न ?'

'माँ माँ माँ ! एक स्त्री नयन बहू, एक स्त्री सागर बहू। मेरी जान तो छोड़ो। सिर्फ रूपकथा कहो—रूप कथा कहो—रूपकथा कहो! भाई इतनी रूपकथाएँ कहाँ मिलें गी कि तुम्हें सुनाऊँ ?'

'रूपकथा अभी रहने दो।'

'क्या कहा, रहने दूँ ! क्या इससे ही मैं चुप हो जाऊँ गी ? क्या तुम कहानी सुने बिना ही चले जाओ गे ? सुग्गे-सुग्गी की कहानी सुनी है ? सुनो, कहती हूँ, एक जंगल में सेमर का एक बहुत बड़ा पेड़ था। उस पर एक सुग्गा और एक सुग्गी रहती थी···'

'सर्वनाश ! बूढ़ी माँ क्या करती हो ? पहले मेरी कहानी सुनो।'

'तेरी कौन-सी कहानी ? मैं समझी, तुम कहानी सुनने ही आये हो।'

ब्रजेश्वर ने मन ही मन कहा, यह बुढ़िया कब मरेगी ? फिर जोर से बोला, 'मेरी दो स्त्रियाँ तो ब्राह्मणी और एक अजाति। वही अजाति आज शायद यहाँ आई है ?'

'हाय, हाय ! अजाति कैसे ? वह तो ब्राह्मण-कन्या है।'

'तो आई है क्या ?'

'हाँ।'

'कहाँ है ? क्या उससे एक बार भेंट हो सकती है ?'

'हाँ, मैं भेंट करा कर तेरे माँ-बाप की आँखों का काँटा बनूँ ? तुम चाहो तो सुग्गा-सुग्गी की कहानी सुन लो।'

'कोई डर नहीं है। बाप-माँ ने मुझे बुला कर उसे निकाल देने को कहा है। बिना देखे उसे कैसे निकालूँ गा ? तुम बूढ़ी माई हो, तुम्हारे पास संसार भर की खबर रहती है।'

'भाई, मैं ठहरी बुढ़िया। कृष्ण नाम का जाप करती हूँ, और अरवा चावल खाती हूँ। कहानी सुनो तो सुना दूँगी। मैं न तो अजाति कन्या की कहानी जानती हूँ न ब्राह्मण-कन्या की।'

'हाय, हाय ! इस बूढ़ी उम्र में तुम न जाने कब डाकुओं के हाथ पड़ो गी ?'

'बेटा, ऐसी बात मत बोल। मुझे डाकुओं का डर नहीं है। डर है मुझे बड़े डाकू का। क्या तुम नई बहू को देखो गे ?'

'नहीं तो क्या तुम्हारा माला फेरना देखने आया हूँ ?'

'तो सागर-बहू के पास जाओ।'

'क्या सौत-सौत को दिखाए गी ?'

'तुम जाओ तो ! सागर-बहू ने तुम्हें बुलाया है। उसी के कमरे के भीतर वह बैठी है। ऐसी लड़की और कहीं देखने को न मिले गी।'

'चरखा तोड़ दिया है, इसीलिए। नयन से कह दूँ गा, वह भी एक चरखा तोड़ दे गी।'

'हाँ, हाँ, कह देना। अभी तो जा न !'

'वहाँ क्या उस अजाति कन्या से भेंट हो गी ?'

'बूढ़ी की बात तो सुनते नहीं। कैसी झंझट में आज पड़ी हूँ ? मेरा माला-जाप भी पूरा नहीं हुआ। तेरे परदादा के तिरसठ ब्याह हुए थे। उसमें कोई चाहे चौदह बरस की रही हो, चाहे चौहत्तर बरस की। उनमें जिस किसी ने कभी बुलाया, कभी नहीं नहीं किया।'

'परदादा को अक्षय स्वर्ग मिले। मैं तो चौदह वर्ष वाली के पास जाता हूँ। लौट कर फिर चौहत्तर वर्ष वाली को देखूँ गा।'

'जा जा, जा ! मेरा माला-जाप बन्द करा दिया। मैं नयनतारा से कहूँ गी—तू बड़ा शैतान हो गया है।'

'कह देना। खुश हो कर थोड़े से भूने चने भेज दे गी।'

कह कर ब्रजेश्वर सागर के पास चला गया।

|६|

ससुराल में सागर को रहने के लिये दो कमरे मिले थे। एक नीचे और दूसरा ऊपर। नीचे के कमरे में बैठ कर सागर पान लगाती थी, सखी-सहेलियों के साथ खेलती और गप-शप किया करती थी। ऊपर वाले कमरे में रात को सोती थी। दिन में जब ऊँघती तो किवाड़े बन्द कर के उसी कमरे में सोती थी। इसीलिये बूढ़ी माई की कहानी से पिण्ड छुड़ा कर ब्रजेश्वर ऊपर वाले कमरे में ही सीधे गया।

उस समय वहाँ सागर न थी। कोई और दूसरी औरत बैठी थी। उसने अंदाज से जाना कि यह वही उसकी पहली पत्नी है।

बड़ी उलझन वाली समस्या आ उपस्थित हुई। दोनों के सम्बन्ध अत्यन्त निकट के थे। पति-पत्नी, दोनों ही एक दूसरे के अर्द्धांग होते हैं। संसार में पति-पत्नी का का सम्बन्ध और सभी सम्बन्धों की अपेक्षा घनिष्ट होते हैं, लेकिन यहाँ तो कभी की भेंट-मुलाकात नहीं, कभी की बातचीत भी नहीं। क्या कह कर वार्तालाप शुरू करें या पहले कौन बोले ? उस पर स्थिति यह कि एक व्यक्ति दूसरे को निकालने आया है और एक व्यक्ति वहाँ से अपमानित हो कर निकल जाने के लिए आया है।

उचित चाहे जो कुछ हो लेकिन इस समय उचित रीति से कुछ भी नहीं हुआ। पहले तो बड़ी देर तक दोनों चुप रहे। किसी से कोई कुछ न बोला। अंत में मुस्करा-कर प्रफुल्ल ने ही अपने गले में आँचल लपेटा और ब्रजेश्वर के पैरों पर सिर रख कर प्रणाम किया।

अपने पिता की भाँति ब्रजेश्वर कठोर न था। उसने मन ही मन आशीर्वाद दे कर, कुछ सकुचाते हुए, प्रफुल्ल की बाँहों को पकड़ कर उठाया और पलंग पर उसे बिठाकर आप भी उसके पास ही बैठ गया।

धिक्कार है इस क्षण को ! प्रफुल्ल को पलंग पर बिठाते समय उसके मुँह पर से घूंघट जरा-सा खिसक गया। ब्रजेश्वर ने देख लिया कि प्रफुल्ल रो रही है। ब्रजेश्वर बोला, 'छिः, छिः ! यह क्या करती हो ? रोती क्यों हो ? डबडबाई बड़ी-बड़ी आँखों से आँसू टपक कर गाल पर से नीचे की ओर बहा जा रहा था, ब्रजेश्वर ने हठात् उसे चूम लिया।......उस क्षण निर्बोध बालिका प्रफुल्ल ने मन ही मन सोचा कि इस मुख-चुम्बन से बढ़ कर पवित्र व पुण्यमय कार्य इस संसार में और कुछ नहीं है। ठीक इसी समय बाहर से कमरे के भीतर आता किसी का चेहरा दिखा। उस चेहरे पर हँसी की झलक थी। उसके हाथ के गहनों से कुछ आहट हुई। उसे सुन कर उस अभिनव-विह्वल-क्षण में भी ब्रजेश्वर के कान उस ओर खिंच गये। उसने सतर्क हो कर उस ओर ताका। बड़ा ही खूबसूरत चेहरा। सिर पर गुँथी हुई चोटी, उस पर आँचल और घूँघट के भीतर कमल जैसे दो बड़ी-बड़ी आँखें। और पके बिम्बफल जैसे दो पतले लाल ओंठ थे। ऊपर से इतनी मीठी मुस्कान, सब कुछ की सुन्दरता द्विगुणित कर रही थी।

ब्रजेश्वर ने पहचान लिया, यह चेहरा सागर का था। सागर ने दूर से, वहीं से पति को एक ताला और चाभी दिखाई। सागर की उम्र अभी कच्ची थी, इसलिए अपने पति से वह अधिक बातचीत नहीं करती थी। ब्रजेश्वर उसके इस इशारे का कुछ मतलब न समझा। लेकिन क्षण भर बाद सब समझ गया, जब सागर ने बाहर से किवाड़ बन्द कर के कुण्डी चढ़ाई और ताला लगा दिया और वहाँ से भाग गई। तब घबरा कर ब्रजेश्वर ने पुकार कर कहा, 'सागर, यह क्या करती हो ? दरवाजा क्यों बन्द कर दिया ? दरवाजे खोल कर जाना।' सागर ने उसकी बात अनसुनी कर के छम-छम करती हुई, सीढ़ी के नीचे उतर कर सीधे बूढ़ी माई के बिस्तर पर जा कर लेट गई।

बूढ़ी माई ने चौंक कर पूछा, 'क्यों री, सागर बहू, आज क्या बात है ? यहाँ आ कर क्यों सो गई ?'

सागर ने कोई जवाब नहीं दिया ।

बूढ़ी माई ने फिर पूछा, 'क्या व्रज ने तुम्हें निकाल दिया ?'

'नहीं तो मैं तुम्हारे आश्रय में क्यों आती ? आज तो तुम्हारे साथ ही सोऊँ गी ।'

'अरे सुन, अभी ही वह फिर बुलावे गा ? तेरे ददिया ससुर भी इसी तरह बारहो महीने, तीसो दिन मुझे भगा दिया करते थे, लेकिन फिर फौरन ही बुला लेते थे । मैं रूठ कर जाना नहीं चाहती थी, लेकिन स्त्री का मन बहुत ही मुलायम होता है, आखिर में जाना ही पड़ता था । और एक दिन···'

'माई जी, कोई कहानी कहो ।'

'कैसी कहानी कहूँ री ! क्या सुग्गे की कहानी कहूँ ? लेकिन क्या अकेले ही सुने गी ? नई बहू जो आज आई है, वह कहाँ ? उसे भी बुला ले न ?'

'पता नहीं वह कहाँ है ? अब उसे कहाँ खोजने जाऊँ ? तुम कहो न, में अकेली ही सुनूँगी ।'

तब सागर के पास ही लेट कर बूढ़ी माई सुग्गा-सुग्गी की कहानी कहने लगी । और कहानी शुरू होते ही सागर गहरी नींद में सो गई । वह सो गई है, यह बूढ़ी माई जान न सकी । वह अपने आप ही काफी देर तक बड़बड़ाती रही । बाद में जब उसने जाना कि एकमात्र सुनने वाली सो गई है तब बड़े दुखी मन से उसे बीच में ही कहानी खत्म कर देनी पड़ी ।

सबेरा होने के पहले ही उठ कर सागर ने रात को बन्द किआ कमरे का ताला खोल दिया था । वहाँ से लौट कर, किसी से कुछ न कह कर, बूढ़ी माई का टूटा चरखा ले कर सोती बुढ़िया के कान के पास घनर-घनर करने लगी ।

ताला और कुण्डी खुलने की हल्की सी आवाज हुई । प्रफुल्ल बैठी थी, सुन कर उठ खड़ी हुई । बोली, 'सागर, दरवाजा खोल कर भाग क्यों गई ? मैं अब जाती हूँ ।'

ब्रजेश्वर से कहा, 'पत्नी के रूप में चाहे आप भले ही मुझे ग्रहण न करें, दासी मान कर तो मुझे याद कीजिए गा ?'

ब्रज ने कहा, 'अभी मत जाओ । मैं बाबू जी से पूछ आऊँ ।'

'आप के पूछने से क्या उनका मन बदल जाये गा ?'

'न बदले, पर मैं अपना कर्त्तव्य तो करूँगा ही । बिना कारण ही तुम्हें त्याग कर मैं अधर्म का भागी क्यों बनूँ ?'

'आप ने मेरा त्याग नहीं किया । आपने तो मुझे ग्रहण किया है । मात्र एक दिन के लिए ही आप ने अपनी शय्या पर मुझे जो स्थान दिया, यही मेरे लिए

बहुत हुआ। मैं अब बस यही प्रार्थना करती हूँ कि मुझ जैसी अभागिनी के लिए आप अपने पिता जी से व्यर्थ ही विवाद न करें। वैसा होगा तो सुखी नहीं हो सकूँ गी।'

'चाहे और कुछ न कर सकूं पर कम से कम तुम्हारी परवरिश के लिए कुछ खर्च भेज दिया करें, इसका प्रयत्न तो मुझे करना ही पड़े गा।'

'जब उन्होंने मेरा त्याग ही कर दिया है तब मैं उनकी दी हुई भिक्षा भी क्यों लूं गी ? हाँ आप जो कुछ दीजिए गा, जरूर लूँ गी।'

'मेरे पास तो कुछ भी नहीं है। बस यही एक मात्र अँगूठी है। अभी तो यही ले जाओ। इस अँगूठी के दाम से ही थोड़ा कुछ कष्ट दूर हो सके गा। इसके बाद मैं जिससे दो पैसे कमा सकूँ, ऐसे किसी रोजगार के करने का प्रयत्न करूँ गा। जैसे भी हो गा, मैं तुम्हारा भरण-पोषण जरूर करूँ गा।'

कहते हुए ब्रजेश्वर ने अपनी उँगली से हीरे की कीमती अँगूठी उतार कर प्रफुल्ल को दे दी। उसे ले कर अपनी उँगली में पहनते-पहनते प्रफुल्ल ने कहा, 'अगर आप मुझे भूल जायें ?'

'सारी दुनिया को भूल जाऊँ, यह तो हो सकता है, पर तुम्हें कभी नहीं भूल सकता।'

'अगर फिर कभी भेंट होने पर मुझे आप न पहचानें ?'

'क्या तुम्हारा यह प्रफुल्ल चेहरा कभी भूल सकता हूँ ?'

'मैं यह अंगूठी नहीं बेचूँगी। यह प्रेमोपहार है। चाहे अन्न के बिना मर जाऊँ गी पर इसे तो कभी नहीं बेचूँ गी। यदि आप मुझे कभी जब पहचान न पाएँ गे तो यह अँगूठी आप को दिखा ऊँ गी। इसमें क्या लिखा है ?'

'मेरा नाम।'

फिर कुछ देर तक दोनों आँसू बहाते रहे फिर प्रेमालिगन के बाद दोनों कमरे से बाहर निकले।

प्रफुल्ल जब नीचे गई तो सागर और नयन से उसकी भेंट हुई। नयन ने पूछा, 'बहन रात में कहाँ सोई थीं ?'

उत्तर दिया सागर ने, 'भाई, तीर्थ कर के कोई तीर्थ की बात अपने मुँह से नहीं कहता।'

नयन ने आश्चर्य से पूछा, 'तीर्थ क्या ?'

'नहीं समझी ? कल रात मे मुझे मेरे कमरे से निकाल कर यह मेरे ही पलंग पर इन्द्र की शची हो कर बैठी थी। यह देखो, पतिदेव ने सुहाग रात की स्मृति में यह अँगूठी भेंट की है।'

सागर ने नयन को प्रफुल्ल के हाथ में पड़ी ब्रजेश्वर की अँगूठी दिखाई। देखते

ही नयन मन ही मन जल कर राख हो गई। बोली, 'बहन, ससुर जी ने क्या गिर्णय किया है। सो तो सुना ही हो गा ?'

ब्रजेश्वर का प्रेम पा कर अब प्रफुल्ल ससुर के कठोर शब्दों को भूल गई थी। उसने पूछा, 'क्या निर्णय किया है ?'

'तुमने पूछा था न, कि कैसे गुजारा करूँ गी ? क्या खाऊँ गी ?'

'इस बात का निर्णय ?'

'उन्होंने कहा है, चोरी डकैती कर के, भीख माँग कर खाने को कहो।'

'देखा जाय गा।' कह कर प्रफुल्ल वहाँ से चली गई।

प्रफुल्ल ने फिर और किसी से कोई बात न की। सीधे खिड़की की राह से बाहर निकल गई। खिड़की तक सागर उसके पीछे-पीछे गई। प्रफुल्ल से बोली, 'बहन, आज मैं यहाँ से चली। इस घर में फिर कभी नहीं आऊँगी। तुम जब अपने नैहर जाओ गी तब तुमसे भेंट हो गी।'

'तुम मेरे मायके आओ गी ?'

'वहाँ आने में मुझे क्या लज्जा है ?'

'तुम मेरा मायका जानती हो ?'

'नहीं जानती तो जान ही लूँगी।

'तुम्हारी माँ तुमसे भेंट करने को खड़ी हैं।'

बगीचे के फाटक पर सचमुच प्रफुल्ल की माँ खड़ी थी। सागर ने दिखा दिया। प्रफुल्ल माँ के पास चली गई।

।७।

प्रफुल्ल माँ के साथ ही घर लौट आई। इतनी दूर जाने-आने में चम्पा को बड़ा कष्ट हुआ था। शारीरिक कष्ट से भी अधिक मानसिक कष्ट हुआ था। हर समय हर बात नहीं सही जा सकती। घर वापस आते ही चम्पा को बुखार आ गया। पहले तो बुखार हल्का था, इसलिए उसकी अधिक चिन्ता नहीं की। जैसी अच्छी रहने पर स्नान ध्यान करती थी, वैसे ही करती रही। खाने-पीने में भी कोई परहेज नहीं किया। जिस दिन, जब भी जो खाने को मिल जाता, वही खा लेती। अड़ोस-पड़ोस के लोग दया करके जो दे दिया करते, उसी से माँ-बेटी किसी तरह निबाह करतीं। धीरे-धीरे बुखार बढ़ता गया। आखिर में बहुत निर्बल हो जाने पर चम्पा ने खाट पकड़ ली। उन दिनों

आज की तरह गाँवों में चिकित्सा की सुविधा न थी। बुखार जब बहुत बढ़ा तो वायु का प्रकोप बढ़ा। चिकित्सा नहीं हो सकी। अंत में प्रफुल्ल की माँ समस्त सांसारिक दुखों से मुक्त हो गई।

पड़ोस के लोगों ने ही, जिन्होंने उसके सम्बन्ध में झूठा कलंक फैलाया था, आ कर उसका दाह-कार्य किया। हिन्दू लोग स्वभावतः ऐसे समय में समस्त विरोध भूल जाते हैं। हिन्दुओं में—विशेषकर बंगाली ब्राह्मणों में यह गुण अवश्य है।

अब प्रफुल्ल अकेली हो गई।

तब चार पड़ोसियों ने आ कर कहा, 'त्रिरात्राशौच के बाद चौथे दिन तुम्हें श्राद्ध करना हो गा।'

प्रफुल्ल बोली, 'इच्छा तो विधिपूर्वक पिंडदान करने की है, लेकिन घर में कुछ है ही नहीं, माँगूंगी भी किससे ? देगा भी कौन ?'

तब पड़ोसियों ने कहा, 'तुम इसकी चिन्ता मत करो। हम लोग सब प्रयत्न कर लें गे।'

फिर किसी ने नगदी दी, किसी ने समान दिया। इस प्रकार श्राद्ध और ब्राह्मण भोज की व्यवस्था हो गई। पड़ोसियों ने ही समस्त आयोजन कर लिया।

एक पड़ोसी ने पूछा, 'एक बात पर विचार कर लेना हो गा। तुम्हारी माता का श्राद्ध है, तुम्हारे ससुर को निमन्त्रण देना उचित है या नहीं ?'

'निमन्त्रण देने जाये गा कौन ?'

मुहल्ले के दो जन जाने को तैयार हुए। दो नामी आदमी। सभी कामों में वे ही अगुआ होते थे, उन्हें ऐसे कामों का रोग था। प्रफुल्ल ने कहा, 'तुम लोग जाओ गे ? तुम्हीं लोगों ने तो हमारे नाम पर झूठा कलंक प्रचारित कर के उनसे हमरा नाता तुड़वाया है ?'

उन लोगों ने कहा, 'अब यह दुख भी मन से निकाल दो। उस कलंक को भी हमीं लोग धो डालें गे। तुम्हारा अब कोई रक्षक नहीं है। तुम इस समय हर तरह से अनाथिनी हो गई हो। अब तुम्हारे साथ हम लोगों का कोई झगड़ा नहीं है, कोई शिकायत नहीं है।'

प्रफुल्ल की ही सहमति से वही दोनों व्यक्ति हरबल्लभ बाबू को को निमन्त्रण देने गये।

सुन कर हरवल्लभ बाबू ने कहा, 'महाशय, आप ही लोगों ने तो हमारी समधिन को जाति-भ्रष्टा कह कर उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया था। फिर आप ही लोगों के मुँह से उसके श्राद्ध का निमंत्रण सुन रहा हूँ ?'

तब उन दोनों ने कहा, 'शायद आप को असली बात नहीं मालूम है। टोले-

मुहल्ले में हो गए विरोध के कारण ही अधिकातर इस तरह की बातें पैदा होती हैं। ऐसी बातें गाँव में, टोले में होती रहती हैं। लेकिन क्या यह सब ध्यान देने की बातें हैं ?'

लेकिन हरवल्लभ बड़े ही शक्की मिजाज के आदमी थे। सोचा—यह सब धोखे-बाजी है। सब मिल कर उन्हें धोखा दे रहे हैं। इन बदमाशों ने उस कुलल्छनी, जाति-भ्रष्ट बालिका से कुछ रुपया झटका हो गा। पर उस कंगाल के रुपये कहाँ, से आएँ गे ?

यही सोच कर हरवल्लभ ने निमंत्रण पर ध्यान न दिया। उनका मन प्रफुल्ल के प्रति और भी कठोर और क्रुद्ध हो उठा।

ब्रजेश्वर ने भी यह सब बातें सुनीं। उसने सोचा, एक दिन रात को छिप कर जाऊँ गा और प्रफुल्ल से मिल कर उसी रात लौट आऊँ गा।

प्रफुल्ल के गाँव के जो दो जन निमंत्रण देने गये थे, वे खाली हाथ ही लौट आये। प्रफुल्ल ने माता का विधिपूर्वक श्राद्ध कर के पड़ोसियों की सहायता से ब्राह्मण-भोज भी किया।

ब्रजेश्वर, प्रफुल्ल के पास जाने का मौका खोजने लगा।

|८|

प्रफुल्ल के घर के पास ही फूलमणि नाइन का घर था। माँ की मृत्यु के बाद प्रफुल्ल घर में अकेली ही रहने लगी, लेकिन घर में अकेले रहने में डर भी था और बदनामी की आशंका भी थी। अत: अवश्यक हो गया कि रात को साथ में सोने के लिए एक स्त्री खोजी जाय। बहुत सोच विचार के बाद प्रफुल्ल ने इसके लिए फूलमणि को राजी कर लिया। फूलमणि के एक और बहन थी अलकमणि। दोनों ही विधवा थीं। दोनों ही बहनें अक्सर प्रफुल्ल की माँ के घर के कामकाज में हाथ बँटाती रहती थीं। फूलमणि रात को प्रफुल्ल के साथ सोने को तैयार हो गई।

प्रफुल्ल फूलमणि के स्वभाव व चरित्र के बारे में ज्यादा न जानती थी। फूलमणि प्रफुल्ल से लगभग दस वर्ष बड़ी थी। देखने-सुनने में भी बुरी न थी। वह काफी साफ-सुथरी रहती और यथासाध्य गहने कपड़े पहन कर अपना सौंदर्य बनाए रखने का प्रयत्न भी करती थी। लेकिन फूलमणि एक तो थी छोटी जाति की, दूसरे बाल-विधवा। वह अपने चरित्र को पवित्र न रख सकी थी। गाँव के जमींदार का नाम था प्राण चौधरी। उनका एक गुमाश्ता दुर्लभ चक्रवर्ती कभी-कभी गाँव में आ कर

कचहरी करता था। फूलमणि दुर्लभ के यहाँ चौका-बरतन करती थी। लोगों का कहना था कि दुर्लभ फूलमणि पर विशेष अनुग्रह रखता है, या यों कहा जाय कि दुर्लभ पर फूलमणि बहुत प्रसन्न रहा करती थी। ये सभी बातें प्रफुल्ल भी सुन चुकी थी, लेकिन इस दुर्दिन में फूलमणि को अपने घर में साथ सुलाने की उसकी मजबूरी थी। और कोई दूसरी स्त्री अपना घर-बार छोड़ कर आ कर रहने को तत्पर भी न थी। अत: प्रफुल्ल ने अपने मन को समझा दिया कि फूलमणि चाहे जैसी भी हो, अपने से क्या मतलब? यदि मैं खुद खराब नहीं हूँ गी तब किसी के किए वह खराब क्यों होने लगी?

प्रारम्भ में तो फूलमणि नियमपूर्वक समय से प्रफुल्ल के पास सोने आती। लेकिन श्राद्ध आदि समाप्त हो जाने के बाद वह क्रमशः देरी कर के आने लगी। एक दिन शाम होने के बाद वह प्रतिदिन की भाँति प्रफुल्ल के घर सोने जा रही थी। रास्ते में आम की बगिया से लगा एक जंगल था। उस जंगल में वह घुसी। उसे मालूम था कि जंगल में पहले ही से छिप कर दुर्लभ उसकी प्रतीक्षा कर रहा था।

फूलमणि के पहुँचते ही दुर्लभ ने देखा कि फूलमणि खूब सजी-सँवरी एक अभिसारिका सी लग रही थी। उसे देख कर प्रसन्न होते हुए दुर्लभ ने पूछा, 'कहो, क्या आज वह काम हो सके गा?'

फूलमणि ने कहा, 'हाँ, आज ही। तुम आधी रात के सब पालकी ले कर पहुँच जाना। आना तो बाहरी दरवाजे पर उँगली से आवाज करना। मैं फौरन आ कर दरवाजा खोलूँ गी। लेकिन सब काम बहुत खामोशी से करना होगा। तकि शोर-शराबा न हो।'

'ठीक है, शोर नहीं हो गा। लेकिन वह तो नहीं चीखे चिल्लाए गी?'

'इसके लिए तो उपाय करना पड़े गा। मैं बहुत धीरे से किवाड़े खोलूँ गी और तुम भी बहुत दबे पाँवों भीतर आना ताकि उसकी नींद खुलने न पावे। फिर जब वह सोती रहे गी तभी उसके मुँह में कपड़ा ठूँस कर दूसरे कपड़े से उसका मुँह कस कर बाँध देना, फिर देखूँ गी कि कैसे चीखती चिल्लाती है?'

दुर्लभ ने तनिक शंकित स्वरों में कहा, 'इस तरह जबरदस्ती उठा कर ले जाने से भला कितने दिनों वह टिक सके गी?'

'तुम इसकी चिन्ता मत करो। एक बार ले जाने भर से सब काम हो जाये गा। जिसके कुल में कोई नहीं, आगे-पीछे भी कोई नहीं, जो एक-एक दाने के लिए तरस रही है, वह जब तुम्हारा सहारा पाये गी, अच्छा खाना-कपड़ा और गहने पाये गी, रुपये-पैसे भी पाये गी, आदर-मान भी पाये गी, तब खुश हो कर रहे गी नहीं तो करेगी क्या? यह सब मुझ पर छोड़ दो। लेकिन मेरे हिस्से के रुपये देना मत भूल जाना।'

इत तरह बातचीत निश्चित हो जाने के बाद दुर्लभ वापस चला गया। और

फूलमणि प्रफुल्ल के घर गई। प्रफुल्ल को अपने लिए रचे गये इस सर्वनाश का कुछ भी पता न था। उस दिन वह अपनी माँ की बात सोचते-सोचते गहरी नींद में सो गई। प्राय: प्रतिदिन ही वह सोते समय माँ को याद कर के एक बार रो लेती थी। आज भी रो-धो कर सो गई थी।

फूलमणि के साथ किए गए निश्चय के अनुसार आधी रात के लगभग आ कर दुर्लभ ने धीरे-धीरे दरवाजा खटखटाया। फूलमणि के कान पहले से ही सतर्क थे। उसने आ कर धीरे से खोल दिया। पूर्व निश्चय के अनुसार ही प्रफुल्ल के सोते रहते ही दुर्लभ ने उसके मुँह में कपड़ा ठूँस कर उसका मुँह बाँध दिया। फिर उसे उठा ला कर पालकी पर लादा। कहार चुपचाप पालकी उठा कर प्राण बाबू की नाट्यशाला की ओर चल पड़े। फूलमणि भी साथ-साथ चली।

इस घटना के करीब आधे घंटे बाद ही प्रफुल्ल की खोज-खबर लेने को ब्रजेश्वर आ पहुँचा। लेकिन उसे घर में कोई न दिखा। घर सूना पड़ा था। वह अपने पिता से छिपा कर रात में चुपचाप प्रफुल्ल के देखने भागा आया था। पर यहाँ तो कोई न था।

उधर पालकी में पड़ी प्रफुल्ल को ले कर कहार आगे बढ़ते जा रहे थे। कहार सभी चुपचाप दबे पाँवों बढ़ रहे थे क्योंकि उन दिन उधर डाकुओं का बड़ा जोर था। आए दिन डाकुओं का उपद्रव होता रहता था। सर्वत्र अराजकता फैली थी। मुसलमानों के हाथ से राज्य निकल चुका था। अंग्रेजों के राज्य की व्यवस्था ठीक नहीं हो पाई थी। इस क्षेत्र में देवीसिंह की ठीकेदारी थी। सात समुन्दर पार, लंदन के वेस्ट मिंस्टर हाल में खड़े हो कर प्रसिद्ध वक्ता एडमण्ड बर्क साहब उस देवीसिंह को अमर बना चुके थे। ज्वालामुखी पर्वत से भभकती अग्नि-शिखा की तरह ज्वालामय वाक्यों के धारा प्रवाह से बर्क साहब देवीसिंह के दु:सह अत्याचार को अन्तकाल के लिए संसार के सामने रख रहे थे। उनके मुँह से देववाणी की तरह उन सभी सच्चीं बातों को सुन कर शोक से, असह्य वेदना से कितनी ही अंग्रेज स्त्रियाँ मूर्छित हो गई थीं। आज सौ बरसों बाद भी बर्क साहब की उस वक्तृता को पढ़ने से सारा शरीर रोमांचित हो उठता है। किसी का भी हृदय काँपने लगता है। उस भयानक अत्याचार ने इस वरेन्द्र-भूमि को एक प्रकार से गारत कर दिया था। बहुत से लोगों को भोजन भी नहीं मिल पाता था, यही नहीं, कितनों के लिए रहने को घर भी न थे। जिनके पास खाने को न था वे दूसरों से लूट-छीन कर खाते। इसलिये आजकल गाँवों में चोर डाकुओं के दल निर्द्वन्द्व हो कर घूमते-फिरते थे। उनसे भिड़ने की किसी में हिम्मत न थी। उन दिनों उडलैण्ड साहब रंगपुर के प्रथम कलक्टर थे। फौजदारी मुहकमा के वे ही मालिक थे। वे झुण्ड के झुण्ड सिपाहियों को चोर-डाकुओं को पकड़ने के लिये भेजा करते। लेकिन सिपाही उन डाकुओं

का बाल बाँका भी न कर सके। फलस्वरूप डाकू लोग बहुत प्रबल हो उठे थे। एक तरह से उनका ही राज था।

दुर्लभ प्रफुल्ल को चुरा कर लिए जा रहा था। इसीलिये वह मन ही मन खूब डर भी रहा था। उसे डाकुओं और सिपाहियों दोनों का डर था। पालकी देख कर डाकू सहज ही धावा कर सकते थे। इसी डर के कारण कहार बिना शब्द किये चुपचाप पालकी लिए जा रहे थे। सहायता करने के लिए साथ में अधिक लोग भी न थे। इस प्रकार मन ही मन डरे हुए सबों के साथ दुर्लभ और फूलमणि ने किसी प्रकार चार कोस का रास्ता पार किया। अब तक वे लोग जितनी दूर चल कर आ गए थे, उसके आगे उन्हें एक बड़े घने जंगल के भीतर से हो कर जाना था। हिम्मत करके वे सब जंगल में घुस कर आगे बढ़े। तभी कहारों ने देखा कि दो जन सामने से चले आ रहे थे। गहरी रात का समय था। गहरा अँधेरा भी था। सिर्फ आकाश के टिमटिमाते तारों की धुँधली रोशनी का सहारा था। रास्ता भी ठीक से दिखाई न पड़ता था। इसलिए सामने से आने वाले दो जनों का पहनावा क्या है, समझ में न आया। थोड़ा पास जाने पर कहारों ने देखा कि जैसे दो यमदूत सामने से चले आ रहे हैं। डर कर एक कहार ने दूसरे से कहा, 'इन दोनों को देख कर तो सन्देह होता है।' दूसरे ने कहा, 'जब रात को जंगल घूम रहे हैं तो इनके भले आदमी होने का तो प्रश्न ही नहीं उठता।' तीसरे ने कहा, 'बड़े तगड़े जवान मालूम हो रहे हैं।' चौथा बोला, 'उनके हाथ की ऊँची लाठियाँ नहीं देखते क्या ? देखें दुर्लभ बाबू क्या कहते हैं ? अब तो इनसे बचने का कोई उपाय नहीं दिखता। शायद इन्हीं डाकुओं के हाथ जान गँवानी पड़े गी।'

कहारों की बातें सुन कर दुर्लभ ने कहा, 'ठीक कहते हो। लगता है, अब भारी मुसीबत सिर पर आ गई है। जिस बात का डर था, आखिर वही हुआ।'

तभी सामने से आते दोनों दैत्याकार लोगों ने इन लोगों को देख कर ललकारा—'कौन है रे ?'

उनकी यह ललकार सुनते हीं सभी कहार डर कर पालकी जमीन पर धर कर 'अरे बाप रे' कहते हुए भाग गये और जा कर जंगल में छिप गये। उन्हें भागता देख कर दुर्लभ भी उधर ही भागा। फूलमणि भी 'मुझे अकेली छोड़ कर कहाँ भागे जा रहे हो ? कहती, चिल्लाती दुर्लभ के पीछे-पीछे भागी।

यह जो दो व्यक्ति आ रहे थे, जिन्हें देख कर दस लोग डर कर भाग खड़े हुए, वे न तो चोर थे न डाकू, बल्कि मुसाफिर थे। दोनों भोजपुरिया जवान थे और दोनों के हाथों में ऊँचे-ऊँचे लट्ठ थे। ये दोनों नौकरी की तलाश में दिनाजपुर के जमींदार के यहाँ जा रहे थे। पूरब की ओर सफेदी छाई देख कर सबेरा होने के अंदाज से उन्होंने राह चलना आरम्भ किया था। उनकी ललकार पर कहारों को इस प्रकार भागना देख-

कर दोनों ही खूब हँसे। फिर वे अपनी राह चलते हुए आगे बढ़ गए। लेकिन डर से काँपते कहार, दुर्लभ और फूलमणी ने पीछे मुड़ कर भी नहीं देखा।

पालकी में बैठी-बैठी इतनी देर में प्रफुल्ल ने मुँह पर का बंधन खोल लिया था, फिर धीरे-धीरे उसने पाँव के भी खोल डाले। उसने सोचा कि इस बियाबान जंगल में आधी रात को चिल्लाने से भी क्या होगा ? यही सोच कर वह चुप रही, चिल्लाई नहीं। गुमसुम पालकी में ही बैठी रही। उसे भी इस बात का डर था कि कहीं चिल्लाने से डाकुओं के हाथ न पड़ जाय ! फिर डाकुओं का सामना भी कौन करेगा ?

पहले तो डर व आतंक के कारण प्रफुल्ल एक प्रकार से सुन्न रह गई थी, लेकिन बाद में उसने सोचा कि हिम्मत किए बिना बचने का कोई उपाय नहीं है। वह यह सब सोच ही रही थी कि जब कहार भी पालकी छोड़ कर भाग गये तो वह मन ही मन सोचने लगी कि अब यह कौन सी नयी मुसीबत आ गई। तब उसने साहस बटोर कर धीरे से पालकी का पल्ला हटाया। सिर बाहर निकाल कर देखा कि सामने से दो आदमी चले आ रहे हैं। उन्हें देख कर उसने पालकी के दरवाजे का पल्ला फिर बन्द कर लिया। लेकिन पल्ले कीं फाँक से वह लगातार बाहर देखतीं रही। उसने देखा वे दोनों आदमीं भलेमानुसों कीं तरह चुपचाप अपनी राह आगे बढ़ गये। फिर सन्नाटा होने पर वह पालकी से बाहर निकली। चारों ओर निगाह दौड़ाई तो देखा कि आसपास कोई नहीं है।

प्रफुल्ल कुछ देर खड़ी सोचती रही फिर भी जंगल में उसी ओर चली जिधर कहार गये थे। उधर जाते हुए प्रफुल्ल यही सोच रही थी कि उसे जो चुरा कर लाया है वह अभी थोड़ी देर बाद अवश्य आए गा और उसे फिर से पकड़ ले गा। इसलिए रात भर जंगल में छिपा रहना ही ठीक हो गा, फिर सबेरा होने पर जैसा उचित समझ में आए गा वह करे गी।

जंगल में जाने पर उसकी किसी से भेंट नहीं हुई। जंगल के भीतर जा कर वह एक झुरमुट में छिप कर खड़ी हो गई। वहाँ वह रात भर छिपी रही फिर सबेरा हुआ।

सबेरा होने पर प्रफुल्ल पहले तो जंगल में इधर उधर घूमती रही। जिस रास्ते से वह रात को आई थी, उस ओर जाने की उसे हिम्मत न पड़ी। उसे एक ओर पगडंडी पर मनुष्य के पाँवों के निशान भी दिखे। उसने सोचा कि इसी रास्ते पर आगे जाने से शायद कुछ सफलता मिले। उसे डर था कि वह यदि घर की ओर लौटी तो शायद उसे रास्ते में डाकू पकड़ लें। वह सोचती थी कि चाहे उसे जंगल में बाघ-सिंह खा जायें, वही ठीक हो गा पर वह किसी तरह भी डाकुओं से बचना ही चाहती थी।

इसीलिए वही पगडंडी पकड़े वह काफी दूर चली गयी। दिन के करीब दस

बज गए, पर उसे कहीं कोई गाँव दिखाई न पड़ा। थोड़ी दूर के बाद वह पगडंडी भी खतम हो गई। तब प्रफुल्ल घबरा गई। तभी उसे थोड़े फासले पर तीन-चार ईंटें पड़ी मिलीं। ईंटों को देख कर उसे कुछ धीरज हुआ और उसने सोचा कि जब यहाँ ईंटें हैं तो आसपास में कोई मकान भी जरूर होगा।

थोड़ा और आगे बढ़ने पर उसे बहुत सी ईंटें बिखरी पड़ी मिलीं। फिर सामने और भी घना जंगल दिखने लगा। विवश वह घने जंगल में घुसी। थोड़ी देर बाद ही उसे वहाँ गिर पड़े एक मकान का खण्डहर दिखाई पड़ा। ईंटों की ढेर पर चढ़ कर उसने चारो ओर देखा। देखा कि उस खण्डहर में अभी भी दो-एक कमरे बने हैं। उसे विश्वास हो गया कि इसमें जरूर आदमी रहते हों गे। फिर हिम्मत कर के वह खण्डहर के भीतर गई। देखा कि सभी कमरों के दरवाजे खुले पड़े हैं। लेकिन कहीं किसी आदमी का नाम निशान न था। लेकिन ऐसा लगता था कि वहाँ आदमी जरूर रहते हैं। दो-ही चार मिनट बाद प्रफुल्ल को वहाँ किसी बूढ़े के कराहने की आवाज सुनाई पड़ी। जिस कोठरी से आवाज आ रही थी, प्रफुल्ल उसी में गई। देखा कि वहाँ सचमुच एक बूढ़ा पड़ा हुआ ऊपर को साँस खींच रहा था। बूढ़े का शरीर बिलकुल जर्जर था, हड्डी का ढाँचा मात्रा, ओंठ सूखे और आँखे गढ़े में धँसी हुई। साँस भी तेज थी। प्रफुल्ल ने सोचा कि यह बूढ़ा शायद जल्दी ही मरने वाला है। वह उसके पास जा कर खड़ी हो गई।

उसे देख कर बूढ़े ने रूखे कण्ठ से पूछा, 'बेटी तुम कौन हो? क्या कोई देवी हो? क्या मेरा उद्धार करने आई हो?'

प्रफुल्ल ने कहा, 'मैं एक अनाथ और निराश्रिता हूँ। रास्ता भूल कर इधर आ गई हूँ। लगता है तुम भी निस्साहाय हो। क्या मैं तुम्हारी कोई सेवा कर सकती हूँ?'

बूढ़े ने कहा, 'इस समय तो तुम मेरा बहुत उपकार कर सकती हो। ईश्वर की कृपा से एक आदमी का चेहरा तो देखने को मिला। मुझे बड़ी प्यास लगी है। क्या तुम मुझे थोड़ा पानी पिला सकती हो?'

प्रफुल्ल ने देखा कि कमरे में एक घड़ा रखा था, उसमें पानी भी था और वहीं एक लोटा और एक गिलास भी रखा था। लेकिन पानी देने वाला वहाँ कोई न था। प्रफुल्ल ने पानी उँडेल कर बूढ़े को पिलाया।

पानी पी कर बूढ़ा तनिक स्वस्थ हुआ। लेकिन ऐसे निर्जन स्थान में, घने जंगल के बीच, एक मरणासन्न वृद्ध को अकेला पड़ा देख कर प्रफुल्ल बहुत आश्चर्य कर रही थी। बूढ़े की स्थिति ऐसी थी कि उठने बैठने की बात ही क्या, वह ठीक से बोल भी नहीं सकता था। इसीलिए चाह कर भी प्रफुल्ल उस बूढ़े का पूरा परिचय न पा सकी। रुक-रुक कर बूढ़े ने जितना कुछ बताया उससे प्रफुल्ल बस इतना ही जान सकी कि वह बूढ़ा

एक वैष्णव है। उसके कोई नहीं है। साथ में एक वैष्णवी थी, वह बूढ़े की मृत्यु निकट जान कर, उसके पास जो कुछ रुपये-पैसे थे, ले कर भाग गई थी।

बूढ़े ने वैष्णवी से अपनी इच्छा प्रकट की थी कि वह वैष्णवी है, मरने के बाद उसका दाह न हो, समाधि हो। इसीलिए बूढ़े की इच्छानुसार वैष्णवी ने वहीं आँगन में बूढ़े की समाधि के लिए एक गढ़ा खोद कर तैयार भी किया था। उस ताजे खुदे गढ़े के पास ही खन्ती और कुदाली अभी तक पड़ी थी। वृद्ध ने इस समय भी प्रफुल्ल से अपनी इच्छा व्यक्त थी। कहा कि मेरे मरने पर मुझे उसी समाधि में रख कर ऊपर से मिट्टी भर देना।

प्रफुल्ल ने बूढ़े की बात मान ली। तब बूढ़े ने कहा, 'मेरे पास कुछ और रुपये-पैसे हैं। वैष्णवी को इसका पता न था, होता तो वह यह सब भी ले भागती। और जब तक अपनी ओर से यह सब मैं किसी को सौंप न जाऊँ गा तब तक मेरी जान ही न निकले गी। यह किसी को दिए बिना ही मैं मर जाऊँगा तो यक्ष बन कर मुझे इन रुपयों की रखवाली करनी पड़े गी। मेरी सद्गति न हो गी। मेरी इच्छा थी कि यह सब मैं वैष्णवी को ही दे जाता। लेकिन वह तो खुद ही जो पाया ले कर भाग गई तो तुम्हारे अलावा मेरी किसी अदमी से भेंट न हो गी, अतः यह सब रुपये पैसे मैं तुम्हें ही दिए जाता हूँ। मेरे बिछावन के नीचे लकड़ी के कुछ तख्ते पड़े हैं। उन तख्तों को हटाने पर एक सुरंग दिखाई दे गी। उसमें नीचे उतरने को सिढ़ियाँ बनी हुई हैं। तुम उन सीढ़ियों से निडर हो कर नीचे उतर जाना। रोशनी साथ लेते जाना। तनिक भी मत डरना। वहाँ कोई डर या खतरा नहीं है। तुम्हें सीढ़ियों के नीचे एक तहखाना मिलेगा। उसी तहखाने के भण्डार में रुपये रखे हैं। थोड़ा खोजने से ही मिल जायेंगे।'

कह कर बूढ़ा चुप हो गया। प्रफुल्ल भी निर्लिप्त भाव से बूढ़े की सेवा में लग गई। थोड़ी देर बाद बूढ़े ने कहा, 'देखो, इस मकान में एक गोशाला भी है, उसमें गायें है, तुम यदि वहाँ से दूध दुह कर ला सको, तो ले आओ। थोड़ा दूध मुझे देना और तुम भी पीना।'

प्रफुल्ल बूढ़े के बताए अनुसार दूध ले आई। दूध लाते समय वह देखती आई थी कि बूढ़े के लिए समाधि खुदी हुई है और खन्ती व कुदाली भी वहीं पड़ी है।

उसी दिन, तीसरे पहर, सूरज डूबने के पहले ही बूढ़े का प्राणान्त हो गया। उसके शव को समाधि देने में सहायता के लिए प्रफुल्ल ने इधर-उधर देखा, लेकिन वहाँ कोई उसे दिखाई न पड़ा। फिर प्रफुल्ल ने अकेले ही सब काम करना निश्चय किया। प्रफुल्ल ने बूढ़े को उठाना चाहा। वह अत्यन्त दुबला-पतला तो था ही, उसका शव भी बहुत हलका था। प्रफुल्ल को उसे उठाने में अधिक परिश्रम नहीं करना पड़ा। उसने वृद्ध के शव को ले जा कर समाधि के लिए तैयार गढ़े में लिटाया और ऊपर से मिट्टी डाल कर उसे ढंक दिया। यह सब काम पूरा कर के घर के पास के कुएँ पर जा कर

उसने स्नान किया। लेकिन उसके पास नहा कर बदलने के लिए दूसरे कपड़े भी न थे। अतः उसने आधा गीला पहन कर आधे को धूप में सुखाया। फिर ठीक से कपड़े सुखा कर पहन कर वह खन्ती-कुदाली ले कर बूढ़े के बताए हुए रुपये की खोज में चली। बूढ़ा तो मरते समय अपनी ही इच्छा से उसे सब रुपये दे गया है, अतः उन्हें लेने में प्रफुल्ल को कोई दोष समझ में नहीं आया। वह तो जन्म की ही दरिद्र थी। रुपये ले लेने में उसे प्रसन्नता ही हुई।

।९।

बूढ़े के शव को समाधि देने के पहले ही प्रफुल्ल उसकी मृत्युशय्या व गंदे कपड़ों को उठा कर जंगल में फेंक आई थी। उसके बिछावन के नीचे सचमुच उसे लकड़ी के तख्ते पाटे नजर आए। वे तख्ते लगभग तीन हाथ लम्बे थे और पाटन उतनी ही चौड़ी थी। खन्ती के सहारे उन तख्तों को उखाड़ने में कोई परेशानी नहीं हुई। आसानी से तख्तों को उखाड़ कर उसने अलग किया। फिर उसे अँधेरी गुफा दिखाई पड़ी। नीचे उतरने के लिए सीढ़ी भी दिखी।

जंगल में लकड़ी की कमी तो थी नहीं। थोड़ी सूखी लकड़ियाँ आँगन में भी पड़ी थीं। उन्हें उठा ला कर प्रफुल्ल ने सुरंग में इकट्ठा किया। फिर उन्हें सुलगाने के लिए वह आग या सलाई खोजने लगी। प्रफुल्ल को याद आया कि बूढ़ा तमाखू पीता था। सर वाल्टर रौस के आविष्कार के बाद भला कौन ऐसा बूढ़ा हुआ हो गा जिसने तम्बाकू पिए बिना यह जीवन नष्ट किया हो। यदि कोई बूढ़ा बिना तम्बाकू पिए रहा हो गा तो अवश्य ही उसका जीवन व्यर्थ गया हो गा। बूढ़े के तम्बाकू-हुक्के की जगह पर खोजते ही प्रफुल्ल को एक दियासलाई मिल गई। बस वह भाग कर गई और गोशाला से थोड़े से सूखे पुआल उठा लाई। पुआल को सलाई से जला कर उसी रोशनी के सहारे वह सुरंग में नीचे उतरी। नीचे उतर कर उसने देखा कि वहाँ एक सुन्दर-सी छोटी-सी कोठरी है। फिर उसने ला कर जमा की हुई लकड़ी में पुआल के सहारे आग लगाई। आग जलते ही वहाँ काफी उजाला हो गया। उसी उजाले में निश्चित जगह खोज कर वह खन्ती से मिट्टी खोदने लगी।

करीब एक-डेढ़-फुट खोदने के बाद 'ठन' से आवाज हुई। आवाज सुनते ही प्रफुल्ल का शरीर रोमांचित हो उठा। वह समझ गई कि किसी धातु के घड़े पर खन्ती की चोट पड़ी।

मृतक वृद्ध का नाम था कृष्णगोविन्द दास। वह जाति का कायस्थ था। उसने अपना सारा जीवन स्वच्छन्दतापूर्वक सुख से बिताया था लेकिन प्रौढ़ावस्था में आ कर वह एक वैष्णवी के चक्कर में पड़ गया था। उस वैष्णवी के गाने पर लट्टू हो कर उसने भी वैष्णव रूप धारण कर के श्री वृन्दावन की यात्रा की थी। उसके सुन्दर रूप व शरीर को देख कर तथा उसके मुँह से गीतगोविन्द का मधुर गान सुन कर और श्रीमद्भागवत में उसका पूर्ण पांडित्य जान कर कृष्णगोविन्द की वैष्णवी उसके चरण-कमलों में तन-मन से अर्पित हो कर धर्म-अधर्म बटोरने लगी। यह देख कर कृष्णगोविन्द वैष्णवी को साथ ले कर, वृन्दावन त्याग कर, अपने देश लौट आया। तब वह इतना सम्पन्न न था। जीविका की खोज में वह मुर्शिदाबाद गया। वहीं उसे एक अच्छी-सी नौकरी मिल गई। उसकी वैष्णवी बड़ी सुन्दरी थी, यह खबर किसी तरह नवाब के महल तक पहुँची। एक खोजा हबशी वैष्णवी को बहका कर नवाब के हरम में ले जाने के लिए वहाँ आने-जाने लगा। वैष्णवी भी खोजा की बातों में लालच में आ कर राजी हो गई। जब कृष्ण गोविन्द ने वैष्णवी का यह रंग-ढंग देखा तो एक रात वह वैष्णवी को ले कर वहाँ से भागा। लेकिन बेचारा भाग कर जाता भी कहाँ ? वह बड़ी चिन्ता में पड़ा। अपनी वैष्णवी के रूप की अमूल्य सम्पत्ति ले कर वह किसी के यहाँ निर्भयतापूर्वक रह भी नहीं सकता। अपनी इस सम्पत्ति के लुट जाने का उसे हर समय खतरा बना रहता था। यही सोच कर सुरक्षा के लिए पद्मा नदी के उस पार जा कर वह कोई गुप्त स्थान खोजने लगा। जंगल में काफी इधर-उधर भटकने के बाद उसे इसी खण्डहर में जगह मिली। इस स्थान के सन्नाटे में उसे सुरक्षा दिखी। यहाँ वह लोगों की नजर से बच कर अपनी वैष्णवी की रूपराशि की सुरक्षा कर सकता था। अतः वह वैष्णवीं के साथ वहीं रहने लगा। वह वैष्णवी को वहाँ से बाहर न जाने देता। घर-गृहस्थी की चीजों की व्यवस्था के लिए बस एक सप्ताह में एक बार वह खुद बाजार चला जाता।

एक दिन कृष्णगोविन्द इसी घर से आँगन में मिट्टी खोद कर चूल्हा बना रहा था। वहीं मिट्टी खोदते-खोदते उसे एक मोहर मिल गई। मोहर पा कर कृष्णगोविन्द के मन में इस आशा का उदय हुआ कि इस खण्डहर में अवश्य ही प्रचुर मात्रा में धन गड़ा है। कृष्णगोविन्द ने पूरा आँगन खोद डाला। अन्त में एक जगह उसे एक बड़े घड़े में गड़ा खूब सारा रुपया मिला। यदि इतना रुपया न मिलता तो इस जंगल में उसका रहना किसी प्रकार भी सम्भव न था। अब वह बड़े चैन से अपने दिन बिताने लगा। लेकिन तभी कृष्णगोविन्द के सिर पर एक दूसरा ही भूत सवार हुआ। रुपये मिलने के बाद वह सोचने लगा कि ऐसे पुराने खण्डहरों में कितने ही लोग जमीन में गड़ा धन पाते हैं। उसका विश्वास था कि यहाँ अभी और भी धन गड़ा होगा। अब वह रोज-रोज गड़े धन की खोज करने लगा। इसी तरह उसने अनेक सुरंग व तहखाने खोज निकाले। कृष्णगोविन्द पागल की तरह वहाँ धन की खोज करने लगा, लेकिन उसे

और कहीं कुछ न मिला। एक वर्ष तक इसी प्रकार खोज करने के बाद कुछ न पाने पर वह अपने आप शांत हो गया। लेकिन तो भी वह नीचे सुरंग वाली कोठरी में जा कर कभी-कभी गड़े धन की खोज करता था। एक दिन अचानक ही उसने देखा कि अंधेरे तहखाने के एक कोने में कुछ चमक रहा है। लपक कर उसने उसे हाथ में उठा कर देखा। यह तो अशर्फी थी। शायद चूहे ने वहाँ मिट्टी खोदी थी और वह अशर्फी दिखाई पड़ने लगी थी।

अब कृष्णगोविन्द ने एक चाल चली। वह बिल्कुल शांत रहने लगा। शांत रह कर वह बाजार के दिन की प्रतीक्षा करने लगा। बाजार का दिन आने पर उसने वैष्णवी से कहा कि उसकी तबियत अच्छी नहीं है। अतः वैष्णवी ही आज बाजार चली जाय। वैष्णवी बड़ी प्रसन्नता से बाजार चली गई। कृष्णगोविन्द जानता था कि बहुत दिनों बाद वैष्णवी को घर से बाहर जाने का अवसर मिला है इसलिए वह जल्दी नहीं लौटे गी। अतः वैष्णवी को बाजार भेज कर वह उसी कोने में जहाँ अशर्फी मिली थी, मिट्टी खोदने लगा। काफी खोदने के बाद उसे वहाँ बीस घड़ों में भरा धन मिला।

पूर्वकाल में बंगाल के उत्तरी भाग में नीलध्वज-वंशीय प्रबल पराक्रमी राजा राज करते थे। उसी वंश के अंतिम राजा का नाम था, नीलाम्बर देव। नीलाम्बर देव ने कई नगरों में अनेक राजभवन निर्मित कराये थे। इस जंगल का खण्डहर भी उनके प्राचीन राजभवनों में एक था। अपने राजकाल में नीलाम्बर देव साल में दो-एक सप्ताह के लिए यहाँ आ कर एकान्तवास करते थे। गौड़ के नवाब ने एक बार उत्तर बंगाल जीतने के लिए नीलाम्बर देव पर आक्रमण करने को सेना भेजी थी। तभी यह सोच कर कि कहीं महलों पर पठानों का अधिकार हो ही गया तो पूर्वजों की संचित अतुल सम्पत्ति उनके हाथों में जा पड़े गी, अतः राजभवन से सब धन ला कर उसने इसी जंगल भवन के नीचे जमीन खोद कर गाड़ दिया था। इस लड़ाई के अन्त में नीलाम्बर देव की ही हार हुई और गौड़ नवाब के सैनिकों ने उन्हें बन्दी बना लिया। उनके गाड़े धन का किसी को कोई अन्दाज न था। वही गड़ा धन बाद में कृष्णगोविन्द के भाग्य से उसे मिला। कृष्णगोविन्द को जो सम्पत्ति मिली उसमें रुपयों के अलावा प्रचुर मात्रा में हीरे, मोती, अशर्फियाँ और अनेक बहुमूल्य रत्न मिले।

उसी धन को वैष्णवी से छिपा कर कृष्णगोविन्द ने भी गाड़ रखा था। कृष्ण गोविन्द स्वभाव से ही बड़ा कंजूस था। उस गाड़े धन से निकाल कर उसने कभी एक अशर्फी भी खर्च न की थी। पहले मिले घड़े के रुपयों के सहारे ही उसने कृपणता से अपने दिन काटे थे। उसकी छिपाई वही अतुल धनराशि बाद में प्रफुल्ल को मिली। प्रफुल्ल ने भी उन घड़ों को पाने के बाद उसी तहखाने की मिट्टी खोद कर वहीं पूर्ववत गाड़ कर छिपा दिया।

इतना सब कर के, उस दिन थक कर प्रफुल्ल फटी चटाई पर ही लेट कर सोई थी।

|१०|

जब पालकी छोड़ कर कहार भागे थे और उनके पीछे ही दुर्लभ भी भाग गया था तब फूलमणि नाइन भी हिरनी की तरह छलाँग मारती हुई, जान ले कर भागी थी। डाकुओं के डर से दुर्लभ आगे-आगे भागा जा रहा था और फूलमणि उसके पीछे-पीछे। इस तरह जान ले कर दुर्लभ भागा था कि एक बार पीछे घूम कर उसने फूलमणि की ओर देखा भी न था। दुर्लभ के पीछे भागती हुई फूलमणि जितना भी चिल्ला कर कहती, 'खड़े रहो, रुको, मुझे छोड़ कर मत जाओ।' दुर्लभ भी उतना ही चिल्ला कर कहता था, 'अरे बाप रे! देखो, डाकू आए हैं। मार डालें गे।' जंगल में कंटीली झाड़ियों को लाँघता-फाँदता दुर्लभ भागा जा रहा था। वह इतना बदहोश था कि उसकी धोती खुल गई, जूता भी जाने कहाँ उतर गया, उसकी चादर भी काँटों से लग कर बुरी तरह फट गई थी और उसकी वीरता भी पताका की भाँति हवा में लहरा रही थी। अंत में फूलमणि ने चिल्ला कर कहा, 'अरे निगोड़े, एक पराई औरत को भगा ला कर इस तरह से डाकुओं के हाथों सौंप कर भागने में ही क्या तू अपनी बहादुरी समझता है?'

फूलमणि की बात सुन कर दुर्लभ ने सोचा कि जरूर ही डाकुओं ने फूलमणि को पकड़ लिया है। अतः उसकी बात का कोई जवाब न दे कर वह और भी तेजी से भागने लगा। फूलमणि गालियाँ बकती हुई रह-रह कर पुकारते हुए उसका पीछा करती रही। और आगे घने जंगल के कारण दुर्लभ उसकी आंखों से ओझल हो गया। तब उसे पुकारना छोड़ कर वह रोने लगी। रोते हुए दुर्लभ के माँ-बाप का नाम ले-ले कर वह गालियाँ देने लगी। थोड़ी देर रोने के बाद जब फूलमणि ने देखा कि एक भी डाकू अभी तक दिखाई नहीं पड़ा, तो रोना बन्द कर के वह चुप हो रही और सोचने लगी कि अब वह क्या करे, कहाँ जाय? दुर्लभ भी वापस नहीं आया। तब फूलमणि ने सोचा कि वहाँ जंगल में रहना ठीक नहीं है, उसे वहाँ से चला जाना चाहिए। जंगल से बाहर जाने का मार्ग खोजते-खोजते वह जंगल से बाहर राजपथ पर पहुँच गई। वहाँ भी आसपास किसी को न देख वह अपने घर की ओर लौटी। वह मन ही मन दुर्लभ पर बहुत नाराज हो गई थी। लेकिन कर भी क्या सकती थी? किसी तरह काफी दिन चढ़ आने के बाद वह वापस अपने घर पहुँची। वहाँ उसने देखा कि उसकी बहन अलकमणि घर पर नहीं थी। शायद नहाने गई थी। फूलमणि बहुत डरी, थकी, परेशान थी। झटपट किवाड़ बन्द कर के वह घर के भीतर जा कर सो रही। रात भर की थकी, जगी और परेशान थी, अतः लेटते ही उसे नींद भी आ गई।

काफी देर बाद उसकी बहन ने आ कर उसे जगाया। फिर पूछा, 'तुम क्या अभी आई हो?'

फूलमणि ने कहा, 'क्यों, मैं कहाँ गई थी ?'

'जाती कहाँ ? प्रफुल्ल के घर सोने गई थी न ! आज आने में बहुत देर हुई, इसीलिए पूछ रही थी ।'

'तेरी आँख में तो जाला छा गया है । उसका इलाज भी क्या है ? तड़के ही तो मैं तेरे सामने ही आई थी । नींद लगी थी, इसलिए आते ही सो गई । क्या तू ने देखा नहीं ?'

'तू भला कह क्या रही है, बहन ? मैं सबेरे से तीन बार प्रफुल्ल के घर जा कर तुझे खोज आई लेकिन न तुझे ही देख पाई, न ही कोई और दिखा । क्या बात है ? प्रफुल्ल आज रात कहाँ गई थी ?'

सुनते ही फूलमणि प्राणप्रण से काँप उठी । बोली, 'चुप ! चुप ! ऐसी बात मुँह से निकालना भी मत ।'

'क्यों क्या हुआ है ?'

फूलमणि ने फिर कहा, 'अच्छा अब तू चुप रह । यह बात मुँह पर लाने की भी नहीं है ।'

'क्यों भला ?'

'हम लोग ठहरी छोटी जाति की औरतें । इन ब्राह्मणों के बारे में हमें क्यों चर्चा करनी चाहिये ?

'तो साफ-साफ बताओ न कि प्रफुल्ल कहाँ है ?'

'अब प्रफुल्ल कहाँ है ?'

'क्या कहती हो ? मेरे कुछ समझ में नहीं आता ।'- बहन ने कहा ।

तब फूलमणि ने बहुत धीरे से कहा, 'किसी से कहना मत । कल रात उसकी माँ आ कर उसे लिवा ले गई ।'

सुनते ही अलकमणि थर-थर काँपने लगी । बोली, 'अरे, यह तो बड़े अचरज की बात है ।'

फूलमणि ने फिर किस्सा गढ़ कर बताया, 'कल आधी रात के बाद मैंने प्रफुल्ल के बिस्तरे पर उसकी माँ को बैठे देखा । थोड़ी देर के बाद मालूम हुआ जैसे घर के भीतर आँधी आ गई हो । फिर कोई कहीं नहीं दिखा ।' इतना कहते-कहते फूलमणि मूर्छित हो कर गिर पड़ी, उसके दाँत लग गए । फिर अनेक उपचार करने के बाद ही वह होश में आ सकी ।

होश आने पर फूलमणि ने बहन को सावधान करते हुए कहा, 'खबरदार, यह सब बातें किसी से भी मत कहना । तुझे मेरी कसम है ।'

अलकमणि बोली, 'भला ऐसी बातें किसी से कहने की होती हैं ? और इतना कह कर वह उसी क्षण चावल धोने के बहाने बर्तन हाथ में लिए बाहर निकली और एक

सांस में ही सारे मुहल्ले में घूम आई। हर घर में जा कर नमक-मिर्च लगा कर उस घटना को व्याख्या सहित सुना कर सब को सावधान कर दिया कि यह बात कोई जान न पाये, किसी से कहना मत।

इस प्रकार बात की बातों से इस घटना की चर्चा अलकमणि ने चारों ओर फैला दी। लेकिन प्रफुल्ल के ससुराल पहुँचते न पहुँचते इस घटना ने एक दूसरा ही रूप धारण कर लिया।

| ११ |

सबेरे नींद खुलने पर प्रफुल्ल ने सोचा कि अब क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? ऐसे घोर जङ्गल में रहना तो असम्भव था फिर अकेले तो वहाँ रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। उसे डर था कि यदि वह फिर घर वापस जाए गी तो फिर डाकू आ कर उसे पकड़ ले जायें गे। कहीं जाए भी तो इतना धन भी कैसे ले जाये? कहारों-मजदूरों से ढुला कर ले जाना भी संभव नहीं है। डाकू आ कर छीन लें गे। फिर ढो कर ले जाने वाले यहाँ मिलेंगे कहाँ? अगर मान लो कोई मिल भी जाय तो क्या उस पर विश्वास किया जा सकता है? मुझे ही मार कर लूट ले जाने में भला उन्हें कितनी देर लगे गी? इस राशि-भण्डार को देख कर भला कौन नहीं ललचाए गा?

बड़ी देर तक प्रफुल्ल यही सब सोचती-विचारती रही। अंत में उसने निश्चय किया कि भाग्य में चाहे जो हो। अब वह दरिद्रता के दुखों को नहीं सह सकती। यहीं रहे गी। मेरे लिए जैसा दुर्गापुर वैसे यह जंगल। दोनों ही बराबर हैं। डाकू तो मुझे घर से ही उठा लाए थे, न होगा यहाँ से भी पकड़ ले जाएँ गे।

मन में यही सब सोच कर प्रफुल्ल तैयार हुई। झाड़-बुहार कर घर-द्वार को साफ किया। गोशाला की सफाई की। गाय की सेवा की। फिर वह चूल्हा जलाने का यतन करने लगी। लेकिन वहाँ रसोई का कोई सामान न था। बर्तन, अनाज कुछ भी नहीं था। तब एक मोहर ले कर वह बाजार की खोज में निकली। प्रफुल्ल स्वभाव से साहसी थी ही, अतः उसे कोई भय न था।

इस महाशून्य जङ्गल में बाजार कहाँ? प्रफुल्ल ने मन ही मन सोचा कि जहाँ भी हो गी खोज ही लेंगे। यही सोच कर वह बाहर निकली। वनपथ पर उसे आदमी के चलने के चिह्न दिखे। उन्हीं चिह्नों का अनुसरण कर के वह चली। थोड़ी दूर आगे जाने पर घने जंगल के बीच उसे एक ब्राह्मण दिखाई पड़ा। वह रामनामी चादर ओढ़े था, माथे पर चंदन का तिलक था। सिर के बाल मुड़े थे। रंग गोरा-चिट्टा था, उम्र भी

पचास के लगभग थी। प्रफुल्ल को देख कर वह चकित हुआ और पूछा, 'बेटी, कहाँ जाओ गी ?'

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया, 'मैं बाजार जाऊँ गी।'

'बाजार जाने का रास्ता इधर तो नहीं है।'

'तो बाजार किधर है ?'

'तुम कहाँ से आ रही हो ?'

'इसी जंगल से।'

'क्या तुम यहीं रहती हो ?'

'जी हाँ।'

'तो बाजार का रास्ता नहीं मालूम ?'

'जी नहीं, मैं यहाँ नई आई हूँ।'

'इस जङ्गल में कोई खुशी से आ कर नहीं रहता। तुम कैसे आ गई ?'

'अभी मुझे जरा बाजार का रास्ता बता दीजिए।'

'यहाँ के बाजार का रास्ता बहुत ही बीहड़ है। तुम वहाँ अकेले जा भी न सको गी। रास्ते में चोर-डाकुओं का बड़ा डर है। तुम्हारे साथ क्या कोई और भी है ?'

'नहीं, और कोई नहीं।'

ब्राह्मण क्षण-भर गौर से प्रफुल्ल के चेहरे की ओर देखता रहा। फिर मन में सोचा कि यह कन्या तो सभी सुलक्षणों से युक्त दिखाई पड़ती है। फिर कुछ सोच कर वह बोला, 'तुम अकेली बाजार मत जाओ नहीं तो तुम संकट में पड़ सकती हो। यहीं मेरी एक दुकान है। चाहो तो वहीं से चावल-दाल आदि आवश्यक चीजें खरीद लो।'

प्रफुल्ल भी थोड़ा प्रसन्न हो कर बोली, 'तो ठीक है, अगर मुझे यहीं चावल-दाल मिल जाते हैं तो बाजार फिर क्यों जाऊँगी ? लेकिन आप तो कोई ब्राह्मण-पण्डित जान पड़ते हैं ?'

'ब्राह्मण-पंडित भी तो कई प्रकार के होते हैं। तुम चाहे मुझे जो समझो। मेरे पीछे आओ।'

यह कह कर प्रफुल्ल के साथ ले कर पंडित ब्राह्मण और भी घने जंगल में घुसा। प्रफुल्ल पहले तो मन ही मन डरी, लेकिन इस जंगल में डर कहाँ न था ?

ब्राह्मण के पीछे-पीछे जा कर वह एक ऐसी जगह ठहरी जहाँ एक कमरे में ताला लगा था। लेकिन वहाँ भी आस-पास कोई दिखाई नहीं पड़ता था। ब्राह्मण ने ताला खोला। वहाँ रसोई का सब इन्तजाम था—हाँड़ी, घड़ा, चावल-दाल, नमक, घी, तेल, मसाले आदि सभी चीजें उपलब्ध थीं। ब्राह्मण ने कहा, 'तुम अपने आप जो भी लाद कर ले जा सको वही ले लो।'

प्रफुल्ल ने अपनी समझ से जो-जो चाहा, लिया। फिर पूछा, 'दाम क्या हुआ ?'

'एक आना।'

'मेरे पास फुटकर तो नहीं है।'

'क्या रुपया है ? लाओ भुना देता हूँ।'

'रुपया भी नहीं है।'

'तो फिर क्या ले कर बाजार करने निकली हो ?'

'एक मोहर है।'

'मोहर ? लाओ देखूँ तो जरा।'

प्रफुल्ल ने ब्राह्मण को मोहर दिखा दी। उसे देख कर ब्राह्मण ने वापस देते हुए कहा, 'इसे भुनाने भर के रुपए तो मेरे पास नहीं हैं। चलो, मैं तुम्हारे साथ तुम्हारे घर पर चलता हूँ। तुम घर से ही मेरे पैसे मुझे दे देना।'

'लेकिन घर पर भी खुदरा पैसा नहीं है।'

'तो क्या सब मोहरें ही हैं ? जो भी हो, चलो, मैं चल कर तुम्हारा घर देख आता हूँ। जब तुम्हारे पास पैसे आ जायें, तभी दे देना। मैं बीच में कभी भी आ कर ले लूँ गा।'

'सब मोहरें ही हैं।' ब्राह्मण की बात से प्रफुल्ल चौंकी। वह समझी कि यह ब्राह्मण ताड़ गया है कि उसके पास मोहरें हैं। और शायद इसी लालच में वह घर भी देख लेना चाहता है। अतः प्रफुल्ल ने जो कुछ सामान लिया था, सब वहीं रख कर बोली, 'मुझे बाजार तो जाना ही पड़े गा। कुछ कपड़ा भी लेना है। आप इन चीजों को रख लीलिए।'

प्रफुल्ल की बात पर ब्राह्मण हँस कर बोला, 'बेटी, तुम सोचती हो कि तुम्हारा घर देख कर मैं तुम्हारे मोहर छीन लूँगा ! छिः छिः ! यह तुमने क्या सोच लिया ? क्या बाजार जाने से ही तुम मुझे अपना घर देखने से रोक सको गी ? मेरी ऐसी ही नियत होगी तो मैं छिप कर भी तुम्हारा पीछा कर सकता हूँ।'

सर्वनाश ! यह तो बड़ी मुसीबत हुई। प्रफुल्ल का शरीर डर से काँपने लगा। तब ब्राह्मण ने कहा, 'तुम मुझे ब्राह्मण समझो या चाहे जो समझो। लेकिन मैं डाकू-सरदार हूँ। मेरा नाम भवानी ठाकुर है।'

प्रफुल्ल की तो सुन कर साँस ही रुक गई। उसने दुर्गापुर में भी भवानी ठाकुर का नाम सुना था। भवानी ठाकुर एक नामी डाकू था। सारी वरेन्द्र भूमि उसके नाम से काँपती थी। प्रफुल्ल के मुँह से एक भी शब्द न निकला।

तब भवानी ठाकुर ने कहा, 'तुम्हें विश्वास न हो तो अपनी आँखों से ही देखो न !' कह कर घर से भीतर से एक नगाड़ा निकाल लाया, फिर उस पर उसने तीन-चार चोटें कीं। और देखते ही देखते पचास-साठ हट्टे-कट्टे जवान हाथों में लाठी, बल्लम, गंड़ासे लिए आ पहुँचे। उनमें से एक ने भवानी से पूछा, 'क्या आदेश है ?'

भवानी ठाकुर ने रोबीले स्वर में कहा, 'तुम सब लोग इस लड़की को पहचान लो। मैंने इसे बेटी कहा है। यह मेरी बेटी हुई। तुम लोग इसे बहन कहो गे और बहन की तरह ही इसे मानो गे। इसे कोई कष्ट न होने पावे। बस, अब तुम लोग जाओ।'

जितने डाकू आये थे, सभी देखते ही देखते गायब हो गये।

प्रफुल्ल चकित हो गई। वह समझदार तो थी ही। समझ गई कि इस डाकू सरदार की शरण को स्वीकार किए बिना अब कोई और चारा नहीं है। बोली, 'चलिए, मैं आप को अपने घर लिवाये ले चलती हूँ।'

प्रफुल्ल ने जो सामान रख दिया था, फिर उठा लिया। वह आगे-आगे चली, पीछे-पीछे चला भवानी ठाकुर।

थोड़ी देर बाद दोनों उस खण्डहर के सामने आ कर रुके। सामान को एक ओर रख कर प्रफुल्ल ने भवानी ठाकुर को बैठने को एक फटा-सा कुशासन दिया। वैष्णव के इस्तेमाल का वह पुराना कुशासन अभी तक वहीं था।

|१२|

भवानी ठाकुर ने पूछा, 'क्या इसी खण्डहर में तुम्हें मोहर मिली थी?'

प्रफुल्ल बोली, 'जी हाँ!'

'कितनी?'

'बहुत।'

'ठीक-ठीक बता दो, कितनी। अगर झूठ बोलो गी तो हमारे आदमी आ कर सारा घर खोद डालें गे।'

'झूठ क्यों बोलूँ गी। बीस घड़े मिले हैं।'

'इतना सब ले कर भला तुम क्या करो गी?'

'अपने घर ले जाऊँ गी।'

'क्या रख सको गी?'

'आप की सहायता रहे गी तो जरूर रख सकूँ गी।'

'बेटी, मेरा तो इसी जंगल में अधिकार है। इस जंगल के बाहर मेरी उतनी धाक नहीं है। इस जंगल के बाहर तुम इतना धन ले जाओ गी तो मैं रक्षा नहीं कर सकूँ गा।'

'तो मैं सब ले कर इसी जंगल में रहूँ गी। यहाँ तो आप मेरी रक्षा कर सकेंगे न ?'

'जरूर। पर तुम इतना धन ले कर करोगी क्या ?'

'और लोग धन ले कर भला क्या करते हैं ?'

'धन का भोग करते हैं।'

'मैं भी वही करूँगी।

यह सुन कर भवानी ठाकुर ठठा कर हँस पड़े। प्रफुल्ल लजा गई। हँसी थमने पर भवानी ठाकुर ने कहा, 'बेटी तू ने एक पगली लड़की की तरह बात कही, इसी से हँसी आ गई। तुम्हारे कोई नहीं है, यह तो तू ने खुद ही बताया है। फिर किसे लेकर यह धन भोगेगी ? धन क्या अकेले ही भोगा जाता है ?'

'प्रफुल्ल सिर झुकाए चुपचाप रही। भवानी ठाकुर ने फिर कहा, 'सुनो, धन पा कर कोई भोग करता है, कोई धरम-करम के काम करता है, और कोई नरक का रास्ता तैयार करता है। तुम्हें भोग करने का अवसर नहीं है, क्योंकि तुम्हारे और कोई नहीं है। तुम या तो धरम-करम में लगा सकती हो, या तो नरक का रास्ता तैयार कर सकती हो। बोलो, दोनों में कौन सा काम करोगी ?'

प्रफुल्ल निडर हो कर बोली, 'आप की यह सब बातें तो डाकू-सरदार जैसी नहीं हैं।'

'तुम मुझे सिर्फ डाकू-सरदार ही मत समझो। कम से कम तेरे लिए तो मैं डाकू-सरदार नहीं ही हूँ। तुम्हें मैंने बेटी कहा है। बेटी के साथ बाप का जैसा व्यवहार रहता है, वही तुम्हारे साथ रहे गा। इसलिए तुम्हारे लिए जो ठीक हो गा, वही मैं करूँ गा। धन का भोग तुम नहीं कर सको गी, क्योंकि तुम्हारे और कोई नहीं है। हाँ, इस धन से तुम मनमाना पाप या पुण्य बटोर सकती हो। अब तुम्हीं निर्णय करो कि इन दोनों में तुम किस पथ पर जाना चाहती हो ?'

'यदि कहूँ कि पाप के पथ पर तो…?'

'तो मैं तुम्हारे साथ मजदूरों द्वारा तुम्हारा धन इस जंगल के बाहर भेज दूँ गा। इस जंगल में मेरे बहुतेरे ऐसे आदमी हैं, जो तुम्हारे इतने धन के लोभ में तुम्हारे साथ ब्याह करने को भी तैयार हो जायें गे। यों तुम्हें यदि यह मंजूर हो गा तो मैं तुम्हें उसी क्षण यहाँ से बिदा कर दूँ गा। इस जंगल का मालिक मैं ही हूँ।'

'जब आप मजदूरों द्वारा मेरे साथ ही मेरा धन भिजवा दीजिएगा तो इसमें मेरी क्या हानि है ?'

'क्या रक्षा कर सको गी ? नई व कच्ची उम्र है, भगवान ने भरपूर रूप भी दिया है। कदाचित् डाकुओं के हाथ से बच भी जाओगी, लेकिन इस रूप-यौवन के हाथों बचना कठिन है। ये ही तुम्हें जबरदस्ती ढकेल कर नरक के रास्ते ले जायें गे।

फिर तमाम लालसा समाप्त होते न होते धन समाप्त हो जाय गा। और धन चाहे जितना भी क्यों न हो, पर उसे उड़ाने से बात-की बात में उड़ जाये गा। धन के बरबाद होने में अधिक समय नहीं लगता। उसके बाद फिर क्या करो गी ?'

'उसके बाद क्या ?'

'हाँ, उसके बाद तो फिर वही एकमात्र नरक का रास्ता ही बच रहे गा - लालसा व तृष्ण रहे गी पर उसे पूरी करने की व्यवस्था व साधन न हों गे। यही है नरक का रास्ता। क्या पुण्य संचय करो गी ?'

'मैं गृहस्थ की बेटी हूँ। पाप किसे कहते हैं, मैं नहीं जानती। सो मैं पाप के पथ पर क्यों जाऊँगी ? मैं हूँ जन्म की दुखियारी। मुझे सिर्फ खाने-पहनने के मिल जाय, बस यही मेरे लिए बहुत है। मैं धन नहीं चाहती। केवल अपना जीवन बीताना चाहती हूँ। यह सब धन आप ले लीजिए। मैं धर्म के मार्ग पर चल कर, जिसमें एक मुट्ठी अन्न भर मिल जाय, इसी की व्यवस्था आप मेरे लिए कर दें।'

भवानी ठाकुर ने प्रसन्न हो कर मन ही मन प्रफुल्ल को बहुत धन्यवाद दिया। फिर कहा, 'नहीं धन तुम्हरा है, मैं नहीं लूँ गा।

प्रफुल्ल को बड़ा तज्जुब हुआ। उसके मन का भाव ताड़ कर भवानी ने कहा, 'तुम सोचती हो, जो डाका डालता है, दूसरे का धन लूट कर खाता है, वह ऐसी मक्कारी क्यों करे गा, लेकिन यह सब सोचने की तुम्हें आवश्यकता नहीं है। यदि तुम पाप का रास्ता अपनाओ गे, तो तुम्हारा यह धन लूट भी सकता हूँ। लेकिन अभी यह धन नहीं लूँगा। मैं एक बार फिर तुमसे पूछता हूँ कि यह धन ले कर तुम क्या करो गी ?'

'आप बहुत ज्ञानी हैं। आप ही मुझे सिखा दीजिए कि धन ले कर मैं क्या करूँ ?'

'सिखाने में तो कई वर्ष निकल जायें गे। मगर अगर सीखो तो मैं सिखा भी सकता हूँ। बस शर्त यही है कि तुम उतने दिनों यह धन नहीं छुओ गी। तुम्हें किसी तरह की भी तकलीफ नहीं हो गी। उसकी व्यवस्था मैं करूँ गा। लेकिन मैं जो कहूँ गा, तुम्हें वही करना पड़े गा। उसमें किसी प्रकार का व्यतिक्रम नहीं हो गा। बोलो, मंजूर है ?'

'रहूँ गी कहाँ ?'

'यहीं इस खण्डहर की मरम्मत मैं करा दूँ गा। रहने योग्य कर दूँ गा।'

'तो क्या यहाँ अकेली ही रहूँगी ?'

'नहीं मैं दो औरतों को तुम्हारे लिए भेज दूँ गा। वे दोनों तुम्हारे पास ही रहें गी। डर की कोई बात नहीं है। इस जंगल का मालिक मैं हूँ। मेरे रहते तुम्हारा कभी कोई अनिष्ट न कर सके गा ?'

'तो आप कैसे और क्या सिखाइये गा ?'

'तुम पढ़ना-लिखना तो जानती हो न ?'

'नहीं ।'

'तो पहले लिखना पढ़ना ही सिखाऊँ गा ।'

प्रफुल्ल राजी हो गई । ऐसे दुर्दिन में ऐसे सशक्त सहायक को पा कर वह हो मन मन प्रसन्न ही हुई ।

तब भवानी ठाकुर उस खण्डहर से बाहर आया । उसने इधर-उधर निगाह दौड़ाई । एक व्यक्ति उसकी प्रतीक्षा में खड़ा था । वह एक हट्टा-कट्टा जवान था । भवानी ने पूछा, 'रंगराज, यहाँ कैसे ?'

रंगराज बोला, 'आप की ही खोज में था लेकिन आप यहाँ कैसे ?'

भवानी ठाकुर ने कहा, 'इतने दिनों से जिसे खोज रहा था, उसे पा गया ।'

'राजा ?'

'नहीं, रानी ।'

'लेकिन अब राजा-रानी को खोजना नहीं पड़े गा । अंगरेज अब राजा हो रहे हैं । सुना है कि कलकत्ता में शायद कोई हेस्टिन नाम का अंगरेज राजा होने वाला है ।'

'मैं वैसा राजा नहीं खोजता । मैं क्या चाहता हूँ, सो तो तुझे मालूम ही है ।'

'तो क्या आपने मन चाहा पा लिया ?'

'असली रूप में जो पाना चाहता हूँ सो तो नहीं, पर जो पाया है उसे ही मन लायक बनाना होगा । ईश्वर ने लोहा बनाया है, आदमी उसी से तो कड़ाही बना लेता है । मुझे भी अच्छा ही इस्पात मिला है । अभी तो पाँच-सात साल उसे गढ़ने-बनाने में लगें गे । देखना, इस घर में मेरे सिवा और कोई आने-जाने न पावे । लड़की युवती और सुन्दरी है ।'

'जो आज्ञा ! हाल ही में इजारेदार के लोगों ने रंगपुर को लूट लिया है । इसीलिये मैं इतनी देर से आप को खोज रहा था ।'

'चलो, तब इजारेदार की कचहरी हम लोग लूट कर गाँव वालों का धन गाँव वालों को वापस कर दें । गाँव वालों को इस तरह अपने पक्ष में किया जा सकता है ।'

'लगता है, इसमें हम लोग सफल हों गे ।

---

१. वारेन हेस्टिंग्स

|१३|

भवानी ठाकुर ने दो औरतों को साथ रहने के लिए प्रफुल्ल के पास भेज दिया था। तय कर दिया कि उनमें से एक बाहर का काम-काज करे गी। और एक सदा प्रफुल्ल के पास रहे गी। दोनों औरतें दो तरह की थीं। जो बाहर के काम-काज के लिए भेजी गई थीं। उसका नाम था, गोबर की माँ। यही तिरसठ बरस की उम्र थी। खूब काली। बुढ़ापे के कारण शरीर का काला रंग और गहरा गया था। सारे शरीर में झुर्रियाँ पड़ी थीं। अक्सर वह कान से सुन न पाती थी, तब जोर से चिल्ला कर कहने से भी नहीं सुन पाती थी, पर वही बात धीमी आवाज में बोलने पर सुन लेती थी। इसलिए कब वह क्या सुन पाये गी, क्या नहीं सुने गी, यह सदा ही एक समस्या रहती थी।

और जो प्रफुल्ल के पास रहने को आई थी, वह पहली वाली से हर तरह से भिन्न प्रकृति की स्त्री थी। आयु में वह प्रफुल्ल से पाँच-सात साल ही बड़ी थी। न तो बहुत गोरी थी, न ही काली। उज्ज्वल श्याम-वर्ण। वर्षा-काल के नव-पल्लव जैसा रंग। रूप भी लावण्यमय था यानी उसे कुरूपा नहीं कहा जा सकता था।

दोनों ही औरतें एक साथ आईं। जैसे, पूर्णिमा, अमावश्या का हाथ पकड़े आई हो। गोबर की माँ ने प्रफुल्ल को प्रणाम किया। प्रफुल्ल ने पूछा, 'तुम्हारा नाम क्या है ?'

गोबर की माँ सुन न पायी। तब दूसरी ने कहा, 'यह थोड़ी बहरी है। इसे सब लोग गोबर की माँ कह कर पुकारते हैं।'

प्रफुल्ल ने फिर पूछा, 'गोबर की माँ, तुम्हारे कितने बच्चे हैं ?

गोबर की माँ बोली, 'मैं और कहाँ थी ? घर पर ही तो थी !'

'तुम किस जाति की हो ?'

'खूब आ-जा सकूँगी। जहाँ कहो गी वहीं जा सकूँ गी।'

'पूछती हूँ कि तुम कौन लोग हो ?'

'और लोगों से तुम्हें काम ही क्या है माँ ? मैं अकेले ही तुम्हारा सब काम कर दूँ गी। हाँ, सिर्फ एक दो काम मैं नहीं कर सकूँ गी।

'क्या नहीं कर सको गी ?'

'और कुछ नहीं, मेरे शरीर में अब अधिक दम नहीं है, इसलिए पानी नहीं भर सकूँ गी। और कपड़े भी नहीं कचार सकती। हो सके तो यह काम तुम खुद ही कर लेना।'

'हिसाब तो ठीक से समझा दिया तुमने । और सब तो कर सको गी न !'

'हाँ माँ, मैं बहुत बूढ़ी हूँ । बर्तन बासन भी नहीं माँज सकूँ गी । यह काम भी तुम्हें अपने ही हाथों करना पड़े गा ।'

'यह भी नहीं कर सको गी तो फिर करो गी क्या ?

'यह सब काम भी मुझसे न हो गा । घर का झाड़ना बुहारना भी मुझसे पार न लगे गा ।'

'तब तुमसे क्या पार लगे गा ? तुम कौन सा काम कर सको गी ?'

'और जो भी कहो गी, करूँ गी । रोटी पकाऊँ गी, पानी दे दूँ गी, अपनी जूठी पत्तल फेंक आऊँ गी और जो असल काम है, हाट बाजार जाऊँ गी ।'

'सौदा सुलुक ला सको गी ? बनियों से हिसाब कर के दाम दे सको गी ?'

'नहीं, नहीं वह सब मुझसे नहीं हो सके गा ! मैं अब बूढ़ी हुई, ऊपर से कान की बहरी हो गई हूँ । सौदा जो कहो गी, ला दूँ गी, पर हिसाब-किताब करना मैं नहीं जानती । जो भी रुपया पैसा दो गी, सब खर्च कर आऊँ गी पर तुम यह कभी न कह सको गी कि इतना खर्च हुआ और इतना बचा ।'

'तुम्हारी जैसी तो दूसरी गुणवती मिलनी कठिन है ।'

'माँ, चाहे जो कहो, पर तुम अपने गुण मुझमें कैसे पाओ गी ?'

तब प्रफुल्ल ने दूसरी औरत से पूछा, 'तुम्हारा क्या नाम है ?'

दूसरी सुन्दरी औरत ने कहा, 'सो तो भाई, मैं नहीं जानती ।'

प्रफुल्ल हँस कर बोली, 'क्या मतलब ? क्या माँ-बाप ने तुम्हारा नाम ही नहीं रखा ?'

'शायद रखा हो गा । लेकिन मुझे नहीं पता ।'

'ऐसा कैसे हो सकता है ?'

'होश सम्हालने के पहले ही माँ-बाप को विधाता ने छीन लिया था । फिर बचपन में ही मुझे एक चोर चुरा ले गया था ।'

'ठीक है, पर उसने भी तो तेरा कोई नाम रखा ही हो गा ?'

'उसने तो बहुत से नाम रखे थे ।'

'क्या, क्या ?'

'यही मुँहजली, कलमुँही, अभागिनी, छछूँदरी···।'

उस क्षण गोबर की माँ बिलकुल बहरी बनी बैठी थी । इन अनेक गुणवाचक शब्दों की झंकार से उसके कान सजग हो उठे । वह बोली, 'जो मुझे अभागिनी कहे वह खुद अभागिनी, जो मुझे छछूँदरी कहे, वह खुद छछूँदरी, जो मुझे चोरनी कहे वह खुद चोरनी ।'

ब्रह्मणी ने हँस कर कहा, 'तुम्हें चोरनी तो मैंने नहीं कहा ।'

'तू ने कहा हो या न कहा हो, पर तू मुझे चोरनी क्यों कहे गी ?'

प्रफुल्ल ने हँस कर कहा, 'तुमसे यह नहीं कह रही, यह मुझसे कह रही हैं।'

तब लम्बी साँस खींच कर गोबर की माँ ने कहा, 'इसका सिर! मुझे नहीं कहाँ ? तुमसे कहा ? लेकिन जाने दो माँ, नाराज मत होना। यह ब्राह्मण की बेटी है लेकिन यह मुँह की बड़ी खराब है। जो भी मुँह में आता है, कह लेती है। इस पर क्रोध मत करना।'

गोबर की माँ के मुँह से इस प्रकार वीर रस और साथ ही शांत रस की बातें सुन कर प्रफुल्ल और सुन्दरी दोनों हँसने लगीं। फिर ठहर कर प्रफुल्ल ने पूछा, 'ब्राह्मणी ? यह तुमने इतनी देर तक क्यों नहीं बताया ? मैंने अभी तक तुम्हें प्रणाम भी नहीं किया।' कह कर प्रफुल्ल ने प्रणाम किया।

सुन्दरी ने आशीर्वाद दे कर कहा, 'में ब्राह्मण की बेटी हूँ, ऐसा मैंने सुना है, लेकिन मैं ब्राह्मणी नहीं हूँ।'

'क्या मतलब ?'

'ब्राह्मण की स्त्री ब्राह्मणी कहलाती है, लेकिन अभी तक मुझे ब्राह्मणी बनने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ।'

'क्यों ? क्या विवाह नहीं हुआ है ?'

'बहुत छोटे उम्र की थी न, सो विवाह कैसे होता ?'

'क्या तुम चिरकाल तक छोटे उम्र को ही रहो गी ?'

'नहीं, जो मुझे चुरा कर ले गया था, उसने मेरा ब्याह नहीं किया।'

'क्या तुम उसके घर में बहुत दिनों तक रही हो ?'

'नहीं, उसने मुझे ले जा कर एक राजा के यहाँ बेच दिया था।'

'क्या राजा ने भी तुम्हारा विवाह नहीं करा दिया ?'

'राजा की इच्छा तो थी, लेकिन वह गंधर्व विधि से ब्याह करना चाहते थे।'

'क्या वह स्वयं तुमसे ब्याह करना चाहते थे ?'

'सो भी कितने दिनों के लिए, मैं नहीं कह सकती।'

'फिर ?'

'उसकी ऐसी चेष्टा देख कर मैं वहाँ से भाग गई।'

'फिर ?'

'रानी ने कुछ गहने दिए थे। गहना ले कर ही मैं भागी थी। तभी रास्ते में उन डाकुओं के हाथों पड़ गई। जिस डाकू दल के दलपति हैं भवानी ठाकुर। उन्होंने मेरी कहानी सुन कर मेरे गहने नहीं लिये, बल्कि कुछ अपने पास से भी दिए। अपने घर में मुझे आश्रय भी दिया। मैं उनकी बेटी जैसी हूँ और वे मेरे लिए पितातुल्य। एक प्रकार से वे मेरा दान कर चुके हैं।

'एक प्रकार से, कैसे ?'

'श्रीकृष्ण, मेरे सर्वस्व हैं ।'

'सो कैसे ?'

'रूप, यौवन, प्राण, सब उन्हें ही अर्पित है ।'

'तो वे ही तुम्हारे स्वामी हैं ?'

'हाँ, क्यों नहीं, वे सम्पूर्ण रूप से मुझ पर अधिकार रखते हैं । वे ही मेरे स्वामी हैं ।'

एक लंबी साँस छोड़ कर प्रफुल्ल ने कहा, 'कह नहीं सकती । कभी तुम्हारी स्वामी से भेंट नहीं हुई, इसीलिए ऐसा कहती हो । यदि एक बार स्वामी से भेंट हो जाती तो क्या फिर श्रीकृष्ण में मन लगता ?'

मूर्ख व्रजेश्वर प्रफुल्ल के मन की इस गहराई को नहीं जानता था ।

सुन्दरी ने कहा, 'श्रीकृष्ण तो सभी स्त्रियों के मन में बसते हैं । क्योंकि उनका रूप अनन्त है, यौवन अनन्त है, ऐश्वर्य अनन्त है, गुण अनन्त हैं ।'

यह युवती तो भवानी ठाकुर की शिष्या थी, लेकिन प्रफुल्ल निरक्षर थी—इन बातों का उत्तर वह नहीं दे सकती थी । हिन्दू-धर्म के प्रणेतागण इसका उत्तर जानते होंगे । कहते हैं ईश्वर अनन्त है । लेकिन अनन्त को छोटे से हृदय पिंजर में बाँध कर नहीं रख सकते । जो शान्त है, उसे ही रख सकते हैं । हिन्दू के हृदय पिंजर में शान्त श्रीकृष्ण का ही निवास होना संभव है । स्वामी तो और भी परिष्कृत रूप में शान्त है । इसीलिए प्रेम पवित्र होने से, स्वामी ही ईश्वर प्राप्ति की पहली सीढ़ी है । इसीलिए हिन्दू स्त्री के लिए पति देवता है । और सब समाज, हिन्दू समाज के इस अंश के सामने बहुत पिछड़े हुए हैं ।

प्रफुल्ल ठहरी मूर्ख स्त्री । कुछ समझ नहीं पाती । बोली, 'भाई, मैं तो यह सब बातें समझ नहीं पाती । तुम्हारा नाम क्या है, अभी तक तुमने यही नहीं बताया ।'

ब्राह्मणी बोली, 'भवानी ठाकुर ने मेरा नाम रखा है निशि, मैं दिवा की बहन हूँ, निशि । दिवा को एक दिन तुम्हारे पास बातें करने को लिवा लाऊँगी । लेकिन अभी मैं जो कह रही हूँ, बस तुम वही सुनो । ईश्वर ही परमस्वामी हैं । स्त्री जाति के लिए पति ही देवता है, श्रीकृष्ण सब के देवता । फिर दो देवता क्यों ? भाई ! क्या दो ईश्वर हैं ? इस क्षुद्र प्राण की क्षुद्र भक्ति को दो भागों में बाँट कर कब तक रहा जा सकता है ?'

प्रफुल्ल बोली, 'दुर ! स्त्री जाति में भक्ति का क्या कोई अंत है ?'

निशि ने कहा, 'स्त्री जाति के प्रेम का अन्त जरूर नहीं है । लेकिन भक्ति भिन्न चीज है । प्रेम दूसरी चीज है ।'

'मैं तो आज भी कुछ नहीं जानती । मेरे लिए तो यह दोनों ही चीजें नई ही हैं ।'

इतना कहते-कहते प्रफुल्ल की आँखों से झर झर आँसू गिरने लगे। तब निशि ने कहा, 'मैं समझ गई, बहन, शायद तुम्हें जीवन में बहुत दुख मिला है।' कह कर निशि ने प्रफुल्ल को कस कर गले से लिपटा लिया और उसके चेहरे पर से आँसू के दाग पोंछने लगी। फिर बोली, 'मैं इतना नहीं जानती थी।'

निशि को आज ही पता लगा कि ईश्वर भक्ति के लिए पति-भक्ति ही प्रथम सीढ़ी है।

|१४|

जिस रात में दुर्लभ चक्रवर्ती प्रफुल्ल को उसके माँ के घर से बाँध कर उठा ले गया था, दैवयोग से उसी रात को ब्रजेश्वर दुर्गापुर में प्रफुल्ल के घर जा उपस्थित हुआ था। ब्रजेश्वर का अपना एक घोड़ा था। घुड़सवारी में ब्रजेश्वर खूब ही प्रवीण था। जब उसके घर में सभी लोग गहरी नींद सो गये थे, तब चुपचाप घोड़े की पीठ पर सवार हो कर ब्रजेश्वर अँधेरे में ही दुर्गापुर के लिए रवाना हुआ था। जब वह प्रफुल्ल के घर पर पहुँचा, तब उस घर में कोई न था। घर जन-शून्य था, अंधकारमय था। प्रफुल्ल तो तब डाकुओं के हाथों फँस गई थी। उस रात को ब्रजेश्वर की प्रफुल्ल के किसी अड़ोसी-पड़ोसी से भी भेंट नहीं हो सकी। इसी से वह किसी से कुछ पूछ न सका, न कुछ जान ही सका।

पहले तो प्रफुल्ल के घर में उसे न पा कर ब्रजेश्वर ने समझा कि प्रफुल्ल शायद इस घर में अकेली न रह सकने के कारण अपनी किसी जान-पहचान की औरत के घर चली गई हो गी। अतः ब्रजेश्वर वहाँ ठहर न सका और रात को ही अपने घर वापस चला गया।

इसके बाद कुछ दिन यों ही बीते। हरवल्लभ बाबू के घर का काम पूर्ववत चलता रहा। सभी लोग खाते, पीते और घर का काम भी करते। सिर्फ ब्रजेश्वर के कार्यक्रम में गड़बड़ी आ गई। लेकिन यह बात जल्दी मोई समझ न सका। सब से पहले इस ओर उसकी माँ का ध्यान गया। उसने देखा कि बेटे के आगे दूध का कटोरा यों ही पड़ा रह जाता है। वह उसे छूता तक नहीं। मछली मांस खाना भी छोड़ दिया है। अतः एक दिन 'तबियत अच्छी नहीं है क्या?' पूछ कर माँ चिन्तित हुई। माँ ने मन में सोचा कि शायद बेटे को मन्दाग्नि हुई है। पहले उसने भोजन के पहले ब्रजेश्वर को खाना खाने के पहले अदरक-नमक खिलाने की व्यवस्था की। फिर वैद्य से हिंगास्टक चूर्ण बनवा कर

खिलाया। लेकिन इन दवाओं से जब कोई लाभ समझ में न आया तो वैद्य को बुलाने की बात तय हुई। सुना तो हँस कर ब्रजेश्वर ने यह बात उड़ा दी। उसने इधर-उधर की बातें बना कर माँ को बहला दिया। लेकिन वह किसी तरह भी बूढ़ी माई को बहका न सका। एक दिन ब्रजेश्वर को अकेले पा कर बूढ़ी माई ने उसे मन की बातें कहने को विवश कर दिया। बूढ़ी ने पूछा, 'क्यों ब्रजेश्वर, साफ-साफ बता, अब तू नयन बहू की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखता। आखिर क्या बात है ? बता क्या कारण है ?'

तब ब्रजेश्वर ने हँस कर कहा, 'एक तो उसका चेहरा ही अमावश्या की रात जैसा है। उसमें न बादल, न आँधी, न तूफान, कुछ भी देखने की जैसे जिज्ञासा ही नहीं रहती।'

'अच्छा जाने दे। भाड़ में जाय बहू। तू यह बता कि आजकल तू ठीक से खाना-पीना क्यों नहीं करता ?'

'आजकल भोजन तुम बनाती हो, इसीलिए।'

'मैं तो सदा से ही पकाती हूँ।'

'आजकल शायद हाथ बिगड़ गया है।

'अच्छा तो दूध क्यों नहीं पीता ? उसमें भी क्या मेरे पकाने का दोष है ?'

'बुरी वास खाने से कभी-कभी गाय के दूध का स्वाद भी खराब हो जाता है।'

'अच्छा, यह बता कि तू दिन रात क्या सोचता रहता है ?'

'बस यही कि तुम्हें गंगा कब ले जाऊँ गा।'

'अच्छा, बहुत बातें मन बना। यह सब गप्पें रहने दे। आखिर में तू मुझे इसी नीम के पेड़ के नीचे ही मुझे गंगा-लाभ कराए गा। तुलसी का पौधा भी शायद ही देखने को मिले ! पर इसके लिए तुझे चिन्ता करनी है। जो होने वाला हो गा वह तो हो कर ही रहे गा। क्या तू मेरे गंगा-लाभ के बारे में सोच-सोच कर ही इतना दुबला हो रहा है ?'

'यह भी क्या कोई साधारण चिन्ता की बात है ? कहते हैं कि 'चिन्ता की ज्वाला शरीर बन दाया लगि लगि जाय। पकट धुआँ नईं देखिए, अर अन्तर धुधुआय।'

'तो कल नहाने के पहले रसोईघर में बैठ कर क्या सोच रहा था ? क्या सोच-सोच कर आँखों से आँसू बहा रहा था ?'

'यहीं सोच रहा था कि नहाते ही तुम्हारे हाथ की रसोई खानी पड़े गी। इसी दुख की कल्पना कर के आँखों में आँसू आ गये थे।'

'तो सागर बहू आ कर रसोई बना दे गी। तब तो खुशी से खाए गा न ?'

'क्यों वह तो रोज ही रसोई बनाती है। उसके घरौंदे में किसी दिन जा कर जरा देखो तो ! मिट्टी की दाल, भात, तरकारी, कीचड़ का दही, बालू की चीनी। एक दिन तुम खुद ही खा कर देखो न ! पहले तू खा आ, फिर मुझे खाने को कहना।'

'तो क्या प्रफुल्ल आ कर तेरे लिए खाना पकावे गी ?'

जैसे कोई लालटेन ले कर जब अँधेरे में चलता हैं तो रास्ते में आसपास के मकानों पर जब रोशनी पड़ती है तो जैसे एक बार क्षण भर को हँसने के बाद वे मकान फौरन ही अँधेरे में लुप्त हो जाते हैं, उसी तरह प्रफुल्ल का नाम आते ही एक बार ब्रजेश्वर का चेहरा खिल उठा। लेकिन तत्क्षण ही उसने कहा, 'लेकिन वह तो जाति-भ्रष्टा है न ?'

'वह जाति-भ्रष्टा नहीं है। सभी जानते हैं कि यह उसकी झूठी बदनामी है। सिर्फ तुम्हारा बाप शक्की मिजाज का है और समाज से डरता है। लेकिन बेटे की खुशी से बढ़ कर समाज का डर नहीं होता। तू कहे तो मैं उससे इस बात की चर्चा करूँ ?'

'नहीं, मेरे कारण समाज में मेरे पिता का अपमान हो, यह मैं कभी नहीं चाहता।'

फिर उस दिन इससे अधिक बातें नहीं हो सकीं। बूढ़ी माई भी ब्रजेश्वर के मन की कोई बात ठीक से नहीं समझ सकीं। ब्रजेश्वर ने भी सीधे ढंग से बातें नहीं की थीं। बात भी इतनी सीधी स्पष्ट न थी कि सहज ही बूढ़ी की समझ में आ जाती। प्रफुल्ल अद्वितीय सुन्दरी थी। एक तो सुन्दरता के ही कारण वह ब्रजेश्वर के हृदय पर अधिकार जमाए बैठी थी, फिर उस एक दिन की भेंट में ही ब्रजेश्वर ने उसे ठीक से देख लिया था। समझ गया था कि प्रफुल्ल बाहर से जितनी सुन्दर थी, भीतर से और भी अधिक सुन्दर और मधुर थी। यदि प्रफुल्ल बधू या विवाहिता स्त्री का उचित अधिकार पा कर नयन बहू की तरह यहाँ उसके पास रह पाती तो उन्माद पैदा करने वाली यह भावना सुस्निग्ध प्रेम में बदल जाती। शायद रूप का मोह मिट जाता और गुण की चाह ही स्थाई हो जाती। लेकिन वैसा नहीं हो सका। प्रफुल्ल वर्षा काल की बिजली की तरह एक बार चमक कर चिरकाल के लिए अंधकार में विलीन हो गई है। इसलिए उसके प्रति मोह भी सौगुना बढ़ गया है। यह तो एक सीधी और स्पष्ट बात थी लेकिन इससे बढ़ कर एक कठिन बात भी थी। वह बात और कुछ नहीं, वह थी—प्रफुल्ल के ऊपर दया करना। वास्तव में झूठे अपवादों पर उस स्वर्ण-प्रतिमा को उसके वास्तविक अधिकारों से वंचित कर के, अपमानित कर के, झूठा कलंक लगा कर चिरकाल के लिए उसे घर से निकाल दिया गया था। इस समय वह एक-एक दाने अन्न के लिए तरस रही हो गी। खाना बिना भूखों मर रही हो गी। प्रगाढ़ अनुराग के कारण ब्रजेश्वर के हृदय में प्रेम व ममता की जगह असीम दया ने स्थान बना लिया था। ब्रजेश्वर का हृदय एक प्रकार से प्रफुल्लमय हो गया था। उसके हृदय के समस्त स्थान पर प्रफुल्ल का ही अधिकार हो गया था, किसी और के लिए वहाँ जगह न थी। बेचारी बूढ़ी माई भला इन बातों को क्या जानें !

कुछ दिनों बाद फूलमणि नाइन द्वारा प्रचारित प्रफुल्ल के गायब होने का समाचार हरवल्लभ बाबू के घर तक पहुँच गया। दुनिया का नियम है कि अफवाह

सदा अपना रूप बदलती रहती है। हरवल्लभ बाबू के कानों तक यह समाचार इस रूप में पहुँचा कि बात ज्वार, कफ हो जाने के कारण प्रफुल्ल मर गयी है। मरने से पहले उसकी मृतक माँ से उसकी भेंट हुईं थी। ब्रजेश्वर ने यह सब बातें सुन रखी थी।

हरबल्लभ बाबू ने अशौचस्नान किया। लेकिन श्राद्ध नहीं किया और बोले कि क्या अजाति की कन्या का श्राद्ध एक ब्राह्मण के घर पर हो गा ? नयन बहू ने भी स्नान किया फिर सिर के बाल सुखा कर पोंछती हुई बोली, 'चलो, एक पाप तो कम हुआ। अगर किसी तरह दूसरा भी समाप्त हो जाता तभी कलेजा शान्त होता।'

इसी प्रकार काफी दिन बीत गये। क्रमशः दुबले-पतले शरीर वाले ब्रजेश्वर ने बीमार हो जाने पर खाट पकड़ ली। बीमारी वैसे कोई खास न थी, मात्र हल्का बुखार लगने लगा था। अपने ज्वर से वह अत्यन्त ही खिन्न हो उठा था। वह दिन-रात चारपाई पर पड़ा रहता। वैद्य ने भी देखा, दवा-दारू भी हुई, बुखार घटने की जगह रोग बढ़ता गया। आखिर में सब लोग कहने लगे—'ब्रजेश्वर अब न बचे गा।'

सब बात बहुत दिनों तक छिपी भी नहीं रहती। यह बात भी छिपी न रही। सब से पहले यह बात बूढ़ी ने सुना, फिर ब्रजेश्वर की माँ ने जाना। ऐसी सब बातें पहले स्त्रियों ही सुनती हैं। माँ को मालूम हुआ तो पिता ने भी सुना। तब हरवल्लभ के हृदय में बर्छी सी चुभ गई। वे रो पड़े। रोते-रोते बोले, 'हाय मैंने यह क्या किया ? अपने हाथों से ही मैंने अपने पैरों में कुल्हाड़ी मार ली। गिन्नी ने प्रतिज्ञा कर ली कि यदि मेरे बेटे को कुछ हो जाय गा तो मैं जहर खा लूँगी। हरबल्लभ ने भी प्रतिज्ञा की कि इस बार भगवान ब्रजेश्वर को बचा लें तो मैं उसकी सलाह लिए बिना और उसकी मरजी के खिलाफ कभी कोई काम न करूँ गा।

और भगवान की ही कृपा से ब्रजेश्वर बच गया। क्रमशः वह स्वास्थ्य-लाभ करने लगा। अब वह विशेष कमजोर भी नहीं है। एक दिन हरबल्लभ बाबू के बाप का वार्षिक श्राद्ध था। हरबल्लभ पितृ-कर्म में व्यस्त थे। ब्रजेश्वर किसी काम से जा कर वहीं बैठ गया। उसने पुरोहित को यह मन्त्र पढ़ते सुना—

पिता स्वर्गः पिता धर्मः पिताहि परमतमः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता ॥

ब्रजेश्वर ने इस श्लोक को कंठस्थ कर लिया। प्रफुल्ल के लिए जब मन में बड़ा उद्वेग आता था तब मन को समझाने के लिए वह बार-बार इसी श्लोक को दुहराता।

इस प्रकार ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को भूलने की चेष्टा करने लगा। ब्रजेश्वर जब-जब सोचता कि उसके बाप ही प्रफुल्ल की मृत्यु के कारण हैं, तब वह 'पिता स्वर्गः, पिता धर्मः, पिताहि परमतमः' श्लोक को दुहरा कर अपने मन को शान्त करता। वह हर प्रकार से अपने को धैर्य देता। प्रफुल्ल जैसी स्त्री-रत्न चली गई।

लेकिन इतना होने पर भी पिता पर व्रजेश्वर की भक्ति अटल रही।

|१५|

प्रफुल्ल की शिक्षा शुरू हुई। निशि ठकुरानी ने पहले तो राजा के घर में फिर बाद में भवानी ठाकुर से पढ़ना-लिखना सीखा था। निशि ने ही प्रफुल्ल को वर्णाक्षरों का ज्ञान कराया फिर अक्षर और अंक लिखना सिखाया। इसके बाद खुद भवानी ठाकुर ने शिक्षक का पद सम्हाला। सब से पहले व्याकरण शुरू किया। शुरू करने के दो चार दिनों बाद ही अध्यापक बने भवानी ठाकुर को आश्चर्य हुआ। प्रफुल्ल की बुद्धि बड़ी तेज थी, ऊपर से प्रबल इच्छा-शक्ति भी थी। वह बहुत जल्दी-जल्दी पाठाभ्यास पूरा करने लगी। उसकी लगन व परिश्रम देख कर निशि भी विस्मित थी हर। समय प्रफुल्ल अपना पाठ ही रटती रहती। खाने-पीने, आराम करने में भी एक मिनट का समय व्यर्थ न जाने देती। निशि ने समझा कि प्रफुल्ल उन दोनों नए भावानुभवों (प्रेम और भक्ति) को भूलने के लिए एकाग्रचित्त हो कर पढ़ाई में जुट गई है। बहुत कम दिनों में ही उसने व्याकरण कठण्स्थ कर लिया। फिर वह भट्टीकाव्य को तो पानी की तरह तैर कर पार कर गई। रघुवंश, कुमारसंभव, नैषध, शकुन्तला आदि काव्य एवं नाटक ग्रंथों को भी उसने भलीभाँति पढ़ लिया। फिर सांख्य, वेदान्त और न्याय भी पढ़ा। इस सब शास्त्रों के बाद प्रफुल्ल ने योगशास्त्र का विशेष रूप से अध्ययन किया और अन्त में उपनिषद का सारांश श्रीमद्भागवत गीता पढ़ी। इस प्रकार शिक्षा पूरी करने में पाँच वर्ष बीत गये।

भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल के लिए पठन-पाठन के अलावा भी और प्रकार की शिक्षा देने की पूरी व्यवस्था की थी। गोबर की माँ कुछ काम न करती थी, बस कभी-कभी बाजार चली जाती थी, वह भी भवानी ठाकुर के आदेश पर। निशि भी विशेष सहायता न करती थी। अतः एक प्रकार से प्रफुल्ल को ही गृहस्थी के सब काम खुद ही करने पड़ते थे। काम करने में उसे विशेष कष्ट न होता था। माँ के घर में भी तो सब काम वह अपने ही हाथों करती ही थी। भवानी ठाकुर ने शिक्षा-काल के प्रथम वर्ष में प्रफुल्ल के लिए भोजनार्थ मोटे चावल, सेंधा नमक, घी और कच्चे केले की व्यवस्था की थी, और उसे कुछ खाने को न मिलता। निशि के लिए भी वही भोजन। प्रफुल्ल को इसमें भी कोई कष्ट नहीं हुआ। माँ के घर में तो नियम पूर्वक सब दिन इतना भी खाने को नहीं मिलता था। सिर्फ एक विषय में ही वह भवानी ठाकुर के

साथ सहमत नहीं हुई कि उन्होंने एकादशी व्रत करने को कहा था, बस वही वह स्वीकार न कर सकी। एकादशी को वह कुछ न कुछ आमिष जरूर खा लेती थी।

दूसरे वर्ष भी निशि के भोजन की व्यवस्था वही, पूर्ववत रही, लेकिन प्रफुल्ल के लिए सिर्फ भात, नमक और मिर्च ! इसमें भी प्रफुल्ल ने कोई आपत्ति नहीं की।

तीसरे वर्ष में निशि को आज्ञा मिली कि वह सभी प्रकार की मिठाइयाँ, दूध, घी, दही, पूरी, तरकारी, भात, दाल, फलादि जो चाहे खा सकती है। लेकिन प्रफुल्ल के लिए यही भात, नमक और मिर्च। और यह भी कि दोनों एक साथ बैठ कर भोजन करें गी।

भोजन के समय प्रफुल्ल और निशि दोनों खूब हँसती थीं। निशि भी मिठाई आदि अधिक सामग्री बहुत कम ही खाती। अधिकांश वह सब कुछ गोबर की माँ को दे देती। इस परीक्षा में भी प्रफुल्ल पूरी तरह खरी उतरी

चौथे वर्ष प्रफुल्ल को उपादेय भोजन करने की आज्ञा मिली। उसने वही खाया।

पाँचवें वर्ष उसे इच्छानुसार भोजन करने का आदेश मिला। लेकिन प्रफुल्ल ने पूर्ववत संयमित भोजन को ही अपनाया।

भवानी ठाकुर ने अपनी सुयोग्य शिष्या के लिए, सोने, पहनने व स्नान के संबंध में भी नियम निर्धारित कर दिये थे। प्रथम वर्ष में पहनने के लिये सिर्फ चार धोतियाँ, दूसरे वर्ष में दो, तीहरे वर्ष में गरमी के मौसम में पहनने को एक मोटी धोती और जाड़े में ढाका की महीन मलमल। चौथे वर्ष में पन्द्रह-पन्द्रह हाथ की दो हाथ की बुनी धोतियाँ मिलीं। प्रफुल्ल ने उन्हें फाड़ कर छोटा कर लिया था। पाँचवें वर्ष में इच्छानुसार कपड़े पहनने को आज्ञा मिली। लेकिन प्रफुल्ल ने मोटे कपड़े पहनने की आदत ही जारी रखी।

केशविन्यास के सम्बन्ध में भी नियम बने थे। पहले वर्ष में तेल लगाना मना था, रूखे बाल बाँधने पड़ते थे। दूसरे वर्ष में बाल बाँधने की भी मनाही। दिन रात रूखे बाल खुले रहते। तीसरे वर्ष में उसे गुरु के आदेशानुसार सिर मुड़ाना पड़ा। चौथे वर्ष में नये बालों में सुगंधित तेल लगाने की आज्ञा मिली। पाँचवे वर्ष में स्वेच्छापूर्वक बाल संवारने व इच्छानुसार तेल लगाने का आदेश मिला। लेकिन पाँचवें वर्ष में भी प्रफुल्ल ने न तो बालों को सँवारा न जूड़ा ही बाँधा।

पहले वर्ष में प्रफुल्ल को सोने के लिये तोशक व तकिया मिला। दूसरे वर्ष में कुश की चटाई व पुआल की तकिया। तीसरे वर्ष में मात्र भूमि-शय्या। चौथे साल में कोमल शय्या। पाँचवें साल में मन चाहा विस्तर। लेकिन प्रफुल्ल ने आराम की शय्या न ली।

पहले साल में रात दस बजे से, सवेरे छ बजे तक आठ घंटे सोने की आज्ञा थी। दूसरे साल में दस बजे से चार बजे तक, पानी छ घंटे और तीसरे साल दो रातों

का अन्तर दे कर एक रात पूर्ण जागरण। चौथे साल में आदेश था कि जब निद्रा का आवेग हो तभी सोवे और पाँचवे साल में इच्छानुसार सोने की आज्ञा दी गई। लेकिन प्रफुल्ल रात-रात भर जग कर पढ़ती।

प्रफुल्ल ने इस बीच अपने आप रोशनी, पानी, हवा, धूप और आग का उत्ताप सहने का भी अभ्यास किया। भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल को दूसरे वर्ष एक और आदेश दिया था—थोड़ा शारीरिक व्यायाम भी करने का। इसे सुन कर प्रफुल्ल थोड़ा लज्जित हुई थी, पर भवानी ठाकुर ने कहा, 'बेटी, यह तो करना ही हो गा।'

'क्यों, स्त्री भला पहलवानी सीख कर क्या करे गी ?'

'इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये। दुर्बल शरीर से इन्द्रियों को नहीं जीता जा सकता। इन्द्रियों पर विजय पाने के लिये व्यायाम ही एक मात्र उपाय है।'

'तो मुझे मल्लविद्या कौन सिखाए गा ? पुरुषों से तो मैं व्यायाम नहीं ही सीख सकती।'

'निशि सिखाए गी। वह जब चोर के घर में थी, तभी बाल्यावस्था में उसने व्यायाम का अभ्यास किया था। आदमी के बच्चों की चोरी करने वाले चोर ताकतवर बच्चों को ही अपने दल में रखते थे।* यह सब बातें सोच-विचार कर ही मैंने निशि को तुम्हारे पास रहने को भेजा है।'

प्रफुल्ल ने चार वर्षों तक व्यायाम और मल्लविद्या का भी अभ्यास किया। पहले साल भवानी ठाकुर प्रफुल्ल के मकान में किसी पुरुष को जाने नहीं देते थे। और न प्रफुल्ल को ही घर से बाहर जाने की तथा बाहर के किसी पुरुष से बातें करने की इजाजत थी। दूसरे वर्ष प्रफुल्ल की बातें करने की मनाही तो न रही पर उसके घर में किसी पुरुष के आने की आज्ञा न थी। तीसरे वर्ष जब प्रफुल्ल ने सिर मुड़ाया तो भवानी ठाकुर अपने छोटे-छोटे शिष्यों को साथ ले कर प्रफुल्ल के पास जाने लगा। प्रफुल्ल भी घुटे सिर पर कपड़ा ढँक कर उन शिष्यों के साथ शास्त्रीय विषयों पर चर्चा करती थी। चौथे वर्ष प्रफुल्ल को योग-क्रिया का उपदेश दिया गया। पाँचवे वर्ष वह इन नियमों के बँधन से मुक्त कर दी गई। लेकिन वह पूर्ववत् नियम मानती ही रही। बिना मतलब वह कभी किसी पुरुष से बात न करती थी। जिन दो चार पुरुषों से वह बातें भी करती थी उन्हें वह भाई या पुत्र समझ कर ही व्यवहार करती थी।

इस प्रकार भवानी ठाकुर ने अतुल सम्पत्ति की मालकिन प्रफुल्ल को इस प्रकार सुशिक्षिता बना कर अपने धन का ऐश्वर्य भोग करने योग्य बना दिया था।

प्रफुल्ल ने भी भवानी ठाकुर के सभी नियमों और उपदेशों को मानते हुए भी दो बातों में अपना ही हठ कायम रखा। एक तो उसने एकादशी व्रत करना स्वीकार

---

* यह बात वारेन हेस्टिंग्स ने खुद ही लिखी है।

नहीं किया, दूसरे भवानी ठाकुर के पूछने पर भी उसने अपना ठीक व पूरा परिचय कभी नहीं बताया।

| १६ |

पाँच वर्षों की शिक्षा की अवधि पूरी हो जाने पर भवानी ठाकुर ने प्रफुल्ल से कहाँ, 'पाँच साल पहले तुम्हारी शिक्षा शुरू हुई थी। अब समाप्त हुई। अब तुम अपने अधिकार के धन को मनमाना खर्च करो। अब मैं तुम्हें नहीं रोकूँ गा। मैं मात्र सलाह देता रहूँ गा। मानना न मानना भी तुम्हारी इच्छा पर ही है। अब से अपने खाने-पीने का प्रबन्ध भी तुम्हें स्वयं ही करना हो गा। अब अपनी सभी व्यवस्था तुम खुद ही करो गी। एक बात मैं तुमसे फिर पूछता हूँ, कई बार पहले भी पूछ चुका हूँ, अब अंतिम बार साफ-साफ बता दो कि किस मार्ग पर चलना चाहो गी?'

प्रफुल्ल ने कहा, 'कर्म करूँ गी। मेरे समक्ष ज्ञान असिद्ध के लिये उपादेय नहीं है।'

'बहुत ठीक, सुन कर मैं सुखी और संतुष्ठ हुआ। लेकिन कर्म भी अनासक्त भाव से ही करना होगा। याद है न, भगवान श्रीकृष्ण ने कहा है—

तस्मादसक्तः सततं कार्यं कर्म समाचर
असक्तो ह्याचरन् कर्म परमाप्नोति पुरुषम्॥

अनासक्ति यहाँ क्या है? यही जान लो, इसका प्रथम लक्षण है, इन्दिय संयम। इन पाँच वर्षों में तुम्हें जो कुछ सिखलाया है उससे अधिक इस संबंध में और कुछ कहना बाकी नहीं रहा। दूसरा लक्षण है, निरहङ्कार, अहंकार का त्याग किए बिना धर्माचरण नहीं हो सकता। भगवान ने कहा है—

प्रकृतेः क्रियमाणानि, गुणैः कर्म्माणि सर्वशः।
अहंकार-विमूढ़ात्मा कर्ताहमिति मन्यते॥

इन्द्रिय आदि से जो सब कर्म किए जाते हैं, वे मैंने ही किए हैं। इसी ज्ञान का नाम है अहंकार। चाहे जो काम करो, पर मैंने इसे किया है यह कभी मत समझो। ऐसा समझने से पुण्य-कर्म भी बन्धन सहृश्य ही हो जाता है अतः तीसरा लक्षण यही है कि सभी कर्मों को श्रीकृष्ण मे अर्पण करना। श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन से कहा है—

यत् करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासियत्।
यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदार्पणम्॥

अब बताओ बेटी, तुम अपने इस धन को ले कर क्या करो गी ?'

प्रफुल्ल बोली, 'जब मैंने अपने सब कर्मों को श्रीकृष्ण को अर्पित कर दिया, तब इस धन को भी मैं उन्हीं के चरणों में अर्पित कर दूँ गी ।'

'सब ?'

'हाँ, सब ।'

'सब सम्पत्ति अर्पण कर देने से भी अनासक्त कर्म न हो सके गा । अपने भोजन के लिए यदि तुम्हें उद्योग करना पड़े गा, तो आसक्ति उत्पन्न हो गी । तो क्या तुम भिक्षा-वृत्त से निर्वाह करो गी या इसी धन से काम चलाओ गी ? भिक्षा में आसक्ति है, इस लिए थोड़ा सा रख कर बाकी सब श्रीकृष्ण को अर्पित कर दो । लेकिन श्रीकृष्ण के चरण-कमलों तक यह धन पहुँचे गा किस तरह ?'

'कैसे पहुँचे गा, यह मैं जानती हूँ । वे सर्वभूतस्थित हैं । इसलिए सब जीवों के उपकारार्थ इस धन का उपयोग करूँ गी ।'

'ठीक है । भगवान ने कहा भी है—

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्वाहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।
सर्वभूतस्थितं यो मां भजत्येकत्वामस्थितः ।
सर्वथा वर्तमानोऽपि सा योगी मयि वर्तते ।।
आत्मौपम्येन सर्वत्र सम पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुखं स योगी परमो मतः ।।

किन्तु इस सर्वप्राणिनिमित्तक दान के लिए बहुत कष्ट और श्रम की आवश्यकता है । क्या तुम वह सब सहन करने में समर्थ हो सको गी ?'

'सहन करने में समर्थ नहीं, तो इतने दिनों सीखा क्या है ?'

'मैं उस कष्ट की बात नहीं कहता, कभी-कभी कुछ आडम्बर भी करना हो गा । वेश विन्यास करने और कुछ भोग विलास का ठाठ भी सजाने का प्रयोजन हो गा । यही कष्ट है, उसे क्या सह सको गी ?

'कैसा आडम्बर ?'

'मैं पहले ही कह चुका हूँ कि मैं डकैत हूँ ।'

'तो एक बात कहूँ गी । मेरे पास भगवान को अर्पित जो धन है, उसमें से कुछ आप के पास भी रहे । वही धन ले कर आप भी धर्माचरण करें । दुष्कर्म का पथ आप भी त्याग दें ।'

'धन की न मुझे लालच है, न प्रयोजन, न आवश्यकता । मैं धन के लिए डकैती नहीं करता ।'

'तो फिर किस लिए ?'

'मैं राज्य-शासन करता हूँ।'

'डकैती करना भला राज्य शासन कैसे हो सकता है ?'

'जिसके हाथ में राजदण्ड हो, वही तो राजा है न ?'

'राजदण्ड तो राजा के हाथ में रहता है।'

'लेकिन इस देश में कोई राजा नहीं है। मुसलमानों की अमलदारी समाप्त हो गई। अब अंगरेज आये हैं। वे राज्य-शासन करना नहीं जानते, करते भी नहीं। वे तो व्यापारी हैं। व्यापार ही उनका प्रधान कार्य है। और मैं दुष्टों का दमन और सज्जनों का पालन करना हूँ। यही राज्य-धर्म है।'

'क्या डकैती कर के ?'

'हाँ ! तुम्हें समझाए देता हूँ।'

तब भवानी ठाकुर ने अपनी सम्पूर्ण ओजस्विता के स्वर में देश की दयनीय स्थिति का परिचय दिया। रियाया के प्रति जमींदारों के घोर अन्याय का जिक्र किया। बताया कि कचहरी के कर्मचारी किस प्रकार बाकी मालगुजारी के नाम पर रियाया का घर लूट लेते हैं, छिपाए धन की खोज में पूरा घर खोद डालते हैं, रुपया मिलने पर एक की जगह हजार वसूलते हैं, रुपया न मिलने पर बाँधकर चालान करते हैं, कोड़े से पीटते हैं, जिन्दा ही आग में झोंक देते हैं, कुछ नहीं होता तो घरों में आग लगा देते हैं, बेकसूर ही किसी-किसी को जान से मार डालते हैं, पूजा घर में सिंहासन पर से शालिग्राम को उठा कर फेंक देते हैं, बच्चों की टाँगे पकड़ कर जमीन पर पटक देते हैं, युवकों की छाती पर लाठी रख कर दबाते हैं, बूढ़ों की आँखों के भीतर चींटियाँ डाल देते हैं, और नाभी में पतंग जला कर बाँध देते हैं, युवती स्त्रियों को भरी कचहरी में ले जा कर सब के सामने नंगी करते हैं, मारते हैं और उनके स्तन काट लेते हैं और स्त्री जाति का जो अन्तिम अपमान है—सब के सामने ही उस पर पाशविक अत्याचार करते हैं, इन भयानक, अमानुषिक, दुर्व्यवहारों का वर्णन भवानी ठाकुर ने एक सिद्ध कवि के रूप में करते हुए कहा कि मैं ऐसे ही दुरात्मा और पापियों को ही दण्ड देता हूँ। अनाथों, दुर्बलों और दीन-दुखियों की रक्षा करता हूँ। यह सब में कैसे करता हूँ, यह तुम कभी भी दो दिनों मेरे साथ रह कर देख सकती हो।

देशवासियों, गरीब जनों की यह हृदय विदारक विपद्कथा सुन कर प्रफुल्ल का हृदय रो उठा। उसने भवानी ठाकुर के प्रति मन ही मन श्रद्धा से प्रणाम कर के कहा, 'मैं साथ चलूँ गी। धन खर्च करने का अधिकार जब मुझे मिला है तब कुछ धन मैं अपने साथ ले चलूँ गी और बाकी दुखीजनों को दे आऊँ गी।'

भवानी ठाकुर ने कहा, 'इसी काम के लिए आडम्बर की मैं बात कह रहा था। अगर मेरे साथ चलो गी तो कुछ ठाठ बाट से चलना हो गा। सन्यासिनी के वेष में चलने से इस काम में सिद्धि नहीं हो गी।'

'जब मैंने अपना कर्म भी श्रीकृष्ण में अर्पित कर दिया है तब मेरा सारा कर्म भी उन्हीं का है, मेरा कुछ भी नहीं। कार्य-सिद्धि के लिए जो भी सुख-दुख हो गा, वह भी मेरा नहीं, उन्हीं का हो गा। बस मैं तो उनके काम के निमित्त जो कुछ करना हो गा, वही करूँ गी।'

भवानी ठाकुर की मनोकामना पूरी हुई। वे जब दलबल के साथ डकैती करने के लिए निकले तो प्रफुल्ल भी मोहरों से भरा एक घड़ा ले कर साथ-साथ चली। निशि भी साथ गई।

भवानी ठाकुर का चाहे जो भी उद्देश्य रहा हो, उन्हें एक तेज धार वाले हथियार की जरूरत थी। इसी की पूर्ति के लिए उन्होंने प्रफुल्ल को पाँच सालों तक शान पर रगड़ कर खूब तेज अस्त्र बना दिया था। पुरुष होता तो और अच्छा होता लेकिन प्रफुल्ल की तरह अनेक गुण-सम्पन्न कोई पुरुष नहीं मिला। फिर भी जितना धन उसके पास था, उतना किसी पुरुष के पास नहीं। धन की, वैभव की धार बड़ी तेज होती है। भवानी ठाकुर को एक ऐसे ही अस्त्र की आवश्यकता थी। पर उनसे एक भारी भूल हो गई कि उन्होंने इस बात का तनिक भी पता नहीं लगाया था कि प्रफुल्ल एकादशी व्रत न कर के उसी दिन आमिष भोजन[1] करती है? प्रफुल्ल को शास्त्रिय शिक्षा तो मिल ही चुकी थी पर व्यवहारिक शिक्षा नहीं मिल पायी थी। इन पाँच वर्षों में उसे कर्म-शिक्षा भी खूब ही मिली।

---

१. बंगाल में सधवा स्त्रियाँ एकादशी का व्रत कर के उस दिन मछली भात खाती हैं और निर्जल उपवास तो मात्र विधवा स्त्रियाँ ही करती हैं।

दूसरा भाग

। १ ।

पाँच-पाँच यानी दस वर्ष बीत गये। जिस दिन प्रफुल्ल को कुजाति-कन्या कह कर हरवल्लभ ने डाँट कर घर से निकाल दिया था, उस दिन को आज दस वर्ष बीत गये। यह दस वर्ष हरवल्लभ के लिए अच्छे नहीं बीते। देश की तत्कालीन दुर्दशा की बात तो मालूम ही है। इजारेदार देवीसिंह के अत्याचार तो थे ही, उसके ऊपर थे डाकुओं के अत्याचार। एक बार हरवल्लभ के ताल्लुके से रुपया चालान आ रहा था कि उसे रास्ते में डाकुओं ने लूट लिया। इस कारण उस वर्ष हरवल्लभ देवीसिंह को मालगुजारी न दे सके। तब देवीसिंह ने हरवल्लभ का एक मौजा बेच लिया। यद्यपि देवीसिंह को वसूली के लिए किसी की जमींदारी या गाँव बेचने का अधिकार न था, लेकिन अंग्रेज शासक वारेन हेस्टिंग्स साहब और गंगागोविन्द सिंह की कृपा से उस समय के सभी सरकारी कर्मचारी देवीसिंह के आज्ञाकारी थे। ऐसी खरीद-बिक्री के संबंध में जो देवी सिंह करता व चाहता था वही होता था। हरवल्लभ का दस हजार रुपये कीमत के मौजे को खुद देवीसिंह ने सिर्फ ढाई सौ रुपये में खरीद लिया। उतने से यानी बिक्री के ढाई सौ रुपयों से खजाने की बाकी रकम का एक अंश भी नहीं पटा। अतः करजा क्रमशः बढ़ता ही गया। देवीसिंह को नाराजी और उसके बिगड़ जाने पर भयानक नुकसान के डर से हरवल्लभ ने विवश हो कर अपना एक और मौजा गिरवी रख कर खजाने का कुल करजा पाट दिया। इस प्रकार हरवल्लभ के हाथ से दे-दो मौजे निकल जाने से उनकी जमींदारी की आमदनी बहुत घट गई। लेकिन खर्च वह घटा न सका। खानदानी चाल और पुरानी आदतें एकबएक छूट भी तो नहीं सकती थीं। प्रायः ऐसे सभी लोगों को एक न एक दिन ऐसी ही परिस्थिति का सामना करना ही पड़ता है जब लक्ष्मी कलप कर कहती है, 'या तो यह खर्चीली आदतें छोड़ो, नहीं तो मुझे छोड़ो।' तब कितने ही लोग

कहते हैं, 'माँ ! तुम्हें ही छोड़ सकता हूँ पर खर्चीली आदतें और पुरानी चाल नहीं छोड़ी जाती।' ऐसे ही लोगों में एक हरवल्लभ भी था। देवीपूजा, दुर्गोत्सव, क्रिया-कर्म, दान-ध्यान, मारपीट, मामला-मुकदमा सब कुछ पूर्ववत ही चलता रहा। बल्कि जब से डाकुओं ने चालानी रुपये लूटे थे तब से किराए को लठैतों का खर्च और बढ़ गया है। एक प्रकार से खर्च का रुपया भी पूरा न जुटता था। हर किश्त पर खजाने का रुपया बाकी रह जाता। इस प्रकार सरकारी कर्ज बढ़ने लगा। अब तक जो भी आमदनी और सम्पत्ति बाकी बची थी, खजाने से सरकारी कर्ज के लिए उसके भी बिक जाने की नौबत आ गई। अब सब बिक जायगा, शायद कुछ भी न बचेगा। कर्ज जब रुक जाता है तो वह बढ़ता ही रहता है। सूद-ब्याज की रकम असल से भी अधिक हो जाती है। कर्ज पर कर्ज चढ़ने लगता है। अब उधार रुपया मिलना भी मुश्किल हो गया।

इस तरह देवीसिंह का ही बाकी पचास हजार रुपया हो गया। हरवल्लभ कुछ भी अदा न कर सके। अंत में हरवल्लभ राय को गिरफ्तार करने के लिए कचहरी के आदमी निकल पड़े। उन दिनों किसी को गिरफ्तार करने के लिए बहुत आइन-कानून की छान बीन करने की आवश्यकता नहीं होती थी, वहाँ तब तक अंग्रेजों का कानून चालू नहीं हुआ था। सब बातें गैर-कानूनी ही होती रहती थीं।

|२|

चारों ओर खूब धूम मची। व्रजेश्वर ससुराल आया है। कौन सी ससुराल ? सागर के बाप के घर। उस जमाने में ससुर के घर दामाद का आना कोई बहुत साधारण बात तो थी नहीं। फिर व्रजेश्वर जैसा जमाई, जो ससुराल बहुत ही कम यानी शायद ही कभी आता हो। पोखर-पोखर, तालाब-तालाब, बड़ी मछली के लिए मछुओं ने बड़े-बड़े जाल डाल कर सब पानी को मैला कर डाला। इस हंगामें के साथ हो रहे मछली पकड़ समारोह का तमाशा देखने के लिए लड़कों ने भी स्कूल में नागा कर के भीड़ बना कर मजा लिया। दही, दूध, मक्खन, मलाई, घी की फरमाइश के कारण ग्वालों का दिमाग चक्कर खाने लगा। वे घबराहट में सेर भर पानी मिलाने की जगह तीन सेर और तीन सेर की जगह दो सेर ही मिला बैठते थे। कपड़े बेचने वाले बजाजों को भाँति-भाँति के कपड़े ले जाने और वापस ले आने में बड़ी झंझट व हैरानी उठानी पड़ी। बार-बार आने-जाने में चलते-चलते उनके तो पाँव ही घिस गये। टोले-मोहल्ले, आस-

पड़ोस के घरों में, विशेष कर स्त्रियों में बड़ी ही हलचल मच गई। जिस औरत के पास जो गहने थे, उन्हे साफ करवाने, कलई करवाने और रेशम के नये सूत में गुँथवाने में वह व्यस्त हो गयी। जिन औरतों के पास कोई गहने न थे, उन्होंने नयी-नयी चूड़ियाँ पहन कर और दूसरी स्त्रियों या सखियों से सोने-चाँदी के गहने माँग कर सजने-बजने का इन्तजाम किया। इतना सब किये बिना भला वे गाँव जमाई को देखने भी कैसे जातीं ? जो औरतें हँसी-दिल्लगी करने के लिये विख्यात थीं, उन्हींने हँसी दिल्लगी की कई पुरानी बातों को याद कर के मन में ताजा किया। बात-चीत और मजाक तो बाद में हो गा, पहले भोजन करते समय जमाई को छकाने की तैयारी करने के लिये कई घरों में औरतों की गोष्ठियाँ बैठीं। तरह-तरह की नकली खाने की चीजें, चटनी, अचार, मुरब्बे और फलाहार तैयार होने लगे। सभी औरतों की ओंठों पर हल्की-हल्की और मीठी-मीठी मुस्कान खेलने लगी। आज बहुत दिनों बाद मौका पा कर सभी औरतें अपने दिल का हौसला निकलने का इन्तजाम करने लगीं।

लेकिन जिसके लिये इतना सब इन्तजाम हो रहा था, उसके मन में तनिक भी उत्साह या प्रसन्नता न थी। ब्रजेश्वर आमोद-प्रमोद के लिये ससुराल नहीं आया था। उसके बाप की गिरफ्तारी का परवाना निकला था, और रक्षा का कोई उपाय नहीं था। कोई रुपया उधार देने को तैयार नहीं था। ससुर के पास काफी रुपया है, रुपये की कमी नहीं है। ससुर तो रुपये उधार दे ही सकते हैं। इसीलिये ब्रजेश्वर ससुर के पास आया था।

ससुर बोले, 'बेटा, हमारे पास जो रुपये हैं, सब तुम्हारे ही हैं। हमारा और कौन है, बोलो ? लेकिन रुपया जितने दिन मेरे हाथ में है, तभी तक हमारा है, तुम्हारे पिता को देने से क्या वह बचा रहे गा ? सब महाजन खा जाये गा। इसलिए अपना धन अपने से ही क्यों नष्ट करना चाहते हो ?'

ब्रजेश्वर बोला, 'हो सकता है, लेकिन मैं धन नहीं चाहता। अपने बाप को गिरफ्तारी से बचाना ही इस समय मेरा एकमात्र उद्देश्य है।'

ससुर ने तनिक रुखाई के साथ कहा, 'तुम्हारे बाप को बचाने से मेरी लड़की को क्या ? मेरी लड़की का तो रुपया रहने से ही दुःख दूर हो गा। ससुर को बचाने से उसका दुःख घटे गा नहीं।'

ससुर की यह बातें सुन कर ब्रजेश्वर को बड़ा गुस्सा आया। ब्रजेश्वर बोला, 'तब अपनी लड़की और रुपया ले कर रहिये। मैं समझ गया कि दामाद से आप को कोई मतलब नहीं है। अब मैं जन्म भर के लिए आप के यहाँ से विदा होता हूँ।'

तब सागर के पिता ने दोनों आँखें लाल कर के ब्रजेश्वर का खूब तिरस्कार किया। ब्रजेश्वर ने भी कड़ा-कड़ा उत्तर दिया। फिर ब्रजेश्वर उसी क्षण वापस जाने की तैयारी करने लगा। यह सब सुन कर, सागर के सिर पर जैसे बज्र गिर पड़ा।

तब सागर की माँ ने दामाद को बुलवाया। बुला कर तरह-तरह से समझाया। लेकिन दामाद का गुस्सा ठण्डा न हुआ। तब सागर की बारी आई।

ससुराल में रहते हुए दिन में स्त्री की स्वामी से भेंट होनी जितनी मुश्किल होती है, उतनी पिता के घर में नहीं। सागर ने ब्रजेश्वर को बुला कर एकान्त में भेंट की। वह पति के पैरों पर गिर कर बोली, 'और एक दिन ठहरिए। मैंने तो कोई अपराध नहीं किया है ?'

ब्रजेश्वर पर उस समय गुस्सा सवार था। गुस्से के कारण ही उसने अपने पैर खींच लिए। गुस्से के समय शरीर की सभी क्रियाएँ जोर-जोर से होने लगती हैं। हाथ-पैर की गति भी स्वाभाविक नहीं रह जाती। चित्त जब विकृत रहता है तब कुछ करते कुछ हो जाता है। इसी कारण से, और कुछ सागर की व्यस्तता के कारण कुछ ऐसा हुआ कि ब्रजेश्वर ने जब अपना पाँव खींचा तो सागर को जरा-सी चोट लग गई। सागर ने समझा कि स्वामी ने क्रोध कर के मुझे लात मारी है। तब स्वामी के पैर छोड़ कर चोट खाई नागिन की तरह सागर झटके से उठ खड़ी हुई। बोली, 'क्या ? मुझे लात मारा है ?' वास्तव में ब्रजेश्वर ने लात नहीं मारी थी और न ऐसी उसकी इच्छा ही थी। जोर से पाँव खींचने से उसे थोड़ी सी चोट जरूर लग गई थी। साधारण रूप से इतना कहने से ही बात खत्म हो जाती, लेकिन ब्रजेश्वर खुद ही खिसिआया हुआ था और जब सुशीला भी चमक कर खड़ी हो गई तो ब्रजेश्वर का गुस्सा और बढ़ गया। बोला, 'अगर मारी भी तो क्या हुआ ? तुम तो बड़े आदमी की बेटी हो न ! लेकिन ये पाँव तो मेरे ही हैं, जिन्हें बड़े आदमी-बाप ने एक दिन पूजा था।'

गुस्से के कारण सागर का दिमाग ठीक न था। बोली, 'उन्होंने जो गलती की थी, उसी का अब मैं प्रायश्चित करूँ गी।'

'तो क्या बदले में मुझे भी लात मारो गी ?'

'मैं इतनी अधम नहीं हूँ। लेकिन अगर मैं ब्राह्मण की बेटी हूँ तो तुम मेरे पैर'—सागर की बात पूरी हो भी न पाई थी कि पीछे की खिड़की से किसी ने धीरे से कहा, 'मेरे पैर गोदी में ले कर नौकर की तरह दाबो गे ?'

सागर के मुँह से ऐसी बात नहीं निकल सकती थी। गुस्से के कारण बिना सोचे समझे, बिना पीछे घूम कर देखे, सागर ने आवेश में वही बात दुहरा दी, 'मेरे पैर ...गोदी में लेकर नौकर की तरह दाबोगे ?'

गुस्से से पागल ब्रजेश्वर ने सातवें आसमान पर दिमाग चढ़ा कर कहा, 'मैं भी यही कहता हूँ। जब तक मैं नौकर की तरह तुम्हारा पाँव न दबाऊँ गा, तब तक अब मैं तुम्हारा मुँह नहीं देखूँ गा। यदि मेरी यह प्रतिज्ञा न निभी तो समझूँ गा कि मैं ब्राह्मण नहीं।'

कह कर गुस्से से फूलता फुँफकारता ब्रजेश्वर वहाँ से चला गया। सागर पाँव

पसार कर रोने लगी। जिस समय सागर कमरे में रो रही थी, एक दासी ब्रजेश्वर को गया जान कर कमरे में सागर की हालत देखने आई और कोई काम न होने पर भी झूठ-मूठ बहाना करके कुछ काम करने लगी। उसी क्षण सागर को याद आया कि खिड़की के पीछे से किसी ने कुछ कहा था। उसने दासी से पूछा, 'क्या तू ने खिड़की के पीछे से कुछ कहा था ?'

दासी बोली, 'नहीं तो।'

'तो जरा देख खिड़की के पास कौन है ?'

उसी समय साक्षात् भगवती की तरह रूपवती और तेजस्विनी एक स्त्री ने कमरे के भीतर पाँव रक्खा और बोली, 'खिड़की के पास मैं थी।'

सागर ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'क्या तुम मुझे नहीं पहचानती ?'

'नहीं, तुम कौन हो ?

तब उस स्त्री ने कहा, 'मैं देवी चौधरानी हूँ।'

दासी के हाथ में पान का डब्बा था, झन-झन कर के गिर पड़ा। वह आँ-आँ-आँ-आँ करके चिल्लाती हुई रोने लगी और जमीन पर लेट गई। उसका आँचल भी गिर कर फैल गया।

देवी चौधरानी उसकी ओर देख कर डाँट कर बोली, 'चुप रह, हरामजादी! खड़ी रह।'

दासी रोते-रोते उठ कर खड़ी हुई और स्तुति करने की तरह हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई। सागर भी डर से पसीने-पसीने हो गई। सागर के मुँह से आवाज न निकली। जो नाम अभी उसके कान में पड़ा था, उसे बच्चे से ले कर बूढ़े तक कोई ऐसा न था जिसने न सुना हो। वह नाम बड़ा भयानक था।

लेकिन थोड़ी देर बाद ही सागर एकाएक हँस पड़ी। तब देवी चौधरानी भी हँस पड़ी।

| ३ |

वर्षा काल। चाँदनी रात। चाँदनी उतनी उज्जवल न होने पर भी बड़ी मधुर थी। बादलों से ढँके हल्के अंधकारमय आकाश के कारण लगता था जैसे पृथ्वी स्वप्नमय आवरण से ढँकी है। बरसाती बाढ़ से त्रिस्रोता नदी के किनारे तक लबालब भरे थे।

चन्द्रमा की किरणें उस तीव्र-गति-नदी-जल पर नाच रही थीं। नदी की कलकल ध्वनि कानों को बड़ी मधुर लग रही थी। किनारों पर जो पेड़ थे, उनकी जड़ों में पानी आ गया था, पेड़ों की छाया पड़ने से नदी के पानी पर गहरा अंधेरा छा गया था।

अँधेरे में ही पेड़ों से गिरे पत्तों को त्रिस्रोता की धारायें तेजी से बहाये लिए जा रही थीं। नदी के किनारे एक बजरा बँधा है। बजरे के पास ही एक बड़े से इमली के पेड़ की छाँव में एक ओर नाँव बँधी है। बजरा बहुत रंगों से रंगा हुआ था। कई चित्र भी बने थे। उसकी सजावट तारीफ करने लायक थी। लेकिन यह सब होते हुए भी बजरे में गहरा सन्नाटा छाया हुआ था। नाविक लोग तख्तों पर एक ओर पाल बिछा कर सोये थे। कोई जाग रहा हो, ऐसी कोई आहट न थी। सिर्फ बजरे की छत पर एक आदमी बैठा था। अपूर्व दृश्य !

छत के ऊपर एक छोटा-सा गलीचा बिछा था। गलीचा दो अंगुल मोटा, बड़ा मुलायम, तरह-तरह के चित्रों से चित्रित। गलीचे के ऊपर एक स्त्री बैठी थी। उसकी उम्र का अनुमान करने से लगता था—पच्चीस वर्ष से कम उम्र में वैसी यौवनपूर्ण और सुगठीत देह देखने में नहीं आती। पच्चीस वर्ष से ज्यादा आयु में यौवन का वैसा लावण्य नही पाया जाता। उम्र चाहे जो हो, वह स्त्री परम सुन्दरी थी, इसमें कोई संदेह नहीं। वह सुन्दरी दुबली नहीं, मोटी कहने से भी उसकी निन्दा हो गी। वस्तुत: उसके सभी अंग सोलहों कलाओं से सम्पूर्ण थे। आज त्रिस्रोता जिस तरह लबालब भरी थी, वैसे ही उसका शरीर भी हर ओर के भरा-पूरा था। जिस तरह नदी का पानी उमड़-उमड़ कर किनारों को ढहाना चाहता था उसी तरह उस सुन्दरी की यौवन-श्री भी रूप की सीमा को तोड़ देना चाहती थी। लेकिन पानी किनारे से टकरा कर अस्थिर हो जाता है। पानी अस्थिर, किन्तु नदी अस्थिर नहीं। लावण्य चंचल, किन्तु वह लायण्यमयी चंचला नहीं—निर्विकार। वह शान्त, गम्भीर, मधुर और आनन्दमयी !

आजकल ढाके के कपड़े की उतनी मर्यादा नहीं, किन्तु सौ साल पहले वहाँ का कपड़ा बहुत अच्छा होता था, और उसकी मर्यादा भी थी। वह स्त्री ढाके की एक महीन सफेद साड़ी पहने थी, जिस पर जरी के फूल कढ़े थे। हीरा, मूँगा, मोती खंचित आँचल झक-मक कर रहा था। हीरा, पन्ना-मणि, सोने से परिपूर्ण मण्डित देह। चाँदनी की रोशनी में सब कुछ बड़ा झक-मक कर रहा था। नदी के पानी में जिस तरह चक-मक होती थी वैसी ही उसके शरीर पर थी। चाँदनी से चमकते नदी-जल की तरह उस स्त्री की सफेद साड़ी भी झल-मल-झल-मल कर रही थी। सफेद साड़ी पर हीरा, मूँगा, माणिक की चमक झल-मल कर रही थी। नदी के किनारे के पेड़ों की सघन छाया का अंधकार जैसे नदी जल की शोभा बढ़ा रहा था उसी तरह स्त्री की खूब काली केशराशि उसके समस्त सौंदर्य को और भी बढ़ा रही थी। घुँघराले बालों की टेढ़ी-मेढ़ी लटें, पीठ, बाँह, कँधे, छाती पर नागिन की तरह लटक रही थी। उसकी कोमल, स्निग्ध-छटा

देख कर चन्द्रमा की किरणों भी थिरक-थिरक कर खेल रही थीं, उसके सुगन्धपूर्ण केशराशि की सुगन्धि से आकाश भी परिपूरित हो रहा था। जुही की कलीयों की एक लड़ी उन केश-लटों से लिपटी हुयी थी।

छत के ऊपर बिछे गलीचे पर बैठी वह बहुरत्नमण्डिता रूपवती मुर्तीवती सरस्वती की तरह हाथ में वीणा लिये बजा रही थी। चन्द्रमा की रोशनी में उसके शरीर का गोरा रंग मिल कर जैसे एक रंग हो गया था। नदी की कल-कल ध्वनि के के साथ वीणा की मधुर ध्वनि मिल गयी थी। वही कभी वीणा के तार छेड़ती, कभी तान लेती, कभी राग रागनीयों को उँगलीयों पर नचाती। झम झम, छन छन, खनन् खनन्, छनम् छनन्, दम दम, हम हम, के कितने प्रकार के शब्द वीणा से निकल रहे थे कहना मुश्किल है। वीणा कब रोयी, कब गा उठी, कब नाची, कब गरज उठी, कब हँस उठी कहना कठीन है। झीझोंटी, खम्माज, सिन्धु-कितनी मीठी रागनी निकली, केदारा, हमीर, विहाग कितनी गम्भीर रागिनी निकली, कानाड़ा, साहाना, बागेश्वरी-कितनी कठिन रागिनी निकली, सब मधुर ध्वनि फूलों की तरह नदी के चंचल प्रवाह में बह गयी। इसके बाद एक दो खूँटी ऐंठ कर उस स्त्री ने तार पर ऊंगली फेरी और तार झनझन कर उठे। उसके कान की बालियाँ हिल उठीं। माथे पर नागिन सी हिलती केश-लटें खुल कर नीचे सरक आयीं। वीणा की नटरागिनी बजने लगी। तब एक ओर पाल बिछा कर सोने वाले लोगों में से एक आदमी चुपचाप उठ कर उस सुन्दरी के पास आ कर खड़ा हुआ।

वह व्यक्ति पुरुष। दीर्घकाय और बलीष्ठ गठन। खूब लम्बी मूछें थीं। गले में जनेऊ। उसने पास आ कर पूछा, 'क्या हो रहा है?'

'क्या दीख नहीं रहा है?'

'क्या आ रहें हैं?'

गलीचे पर एक छोटी सी दूरबीन रक्खी थी। दूरबीन तब भारतवर्ष में नयी-नयी ही आयी थी। दूरबीन उठा कर सुन्दरी ने उस आदमी के हाथ मे दे दिया, कुछ बोली नहीं। उस आदमी ने दूरबीन आँखों से लगा कर नदी के चारो ओर गौर से देखा। अन्त में एक ओर एक बजरा आता देख कर बोला, 'देख रहा हूँ, बजरा, वही है क्या?'

'इस नदी में आजकल और कोई बजरा आने की बात नहीं है।'

वह आदमी फिर से दूरबीन लगा कर देखने लगा।

युवती वीणा बजाते-बजाते बोली, 'रंगराज!'

रंगराज बोला, 'आज्ञा?'

'क्या देखा?'

'देख रहा हूँ, कितने लोग है?'

'कितने लोग है ?'

'ठीक समझ में नहीं आता। लेकिन ज्यादा नहीं हैं। नाव खुले गी क्या ?'

'खोलो, अंधेरे में चुपचाप जाना।'

तब रंगराग वहीं से पुकार कर बोला, 'नाव खोलो।'

|४|

बजरे के पास ही इमली के पेड़ के नीचे एक और डोंगी अँधेरे में बँधी थी। वह साठ हाथ लम्बी थी, लेकिन चौड़ाई तीन हाथ से ज्यादा न थी। पचास आदमी उसमें जाने के लिये नियुक्त थे। रंगराज की आवाज सुनते ही वे पचासों लठैत एक साथ उठ बैठे। उन लोगों ने कोई विशेष हथियार न ले कर सिर्फ एक-एक लाठी ले ली। मल्लाह चुपचाप डोंगी खोल कर बजरे के पास लाया। तब पाँचों हथियार से लैस हो कर रंगराज उस डोंगी पर सवार होने चला। तभी सुन्दरी ने पुकार कर कहा, 'रंग-राज, मेरी बातें तुम्हें याद हैं तो ?'

'याद हैं।' कह कर रंगराज डोंगी में जा कर बैठा। डोंगी बड़ी सावधानी से किनारे-किनारे चल पड़ी। रंगराज ने दूरबीन से जिस बजरे को देखा था, वह नदी की तेज धारा में तीर की तरह बढ़ता आ रहा था। डोंगी को बहुत दूर नहीं जाना पड़ा। बजरा पास आ गया तो डोंगी किनारा छोड़ कर उसकी ओर बढ़ी। डोंगी पर पचास लठैत सवार होने पर भी कोई आवाज नहीं।

बजरे की छत पर आठ हिन्दुस्तानी पहरेदार थे। कम से कम इतने आदमियों को साथ लिये बिना उन दिनों कोई रात में नाव से यात्रा करने का साहस नहीं करता था। उन आठ आदमियों में दो हथियार बन्द थे जो सिर पर लाल पगड़ी बाँधे छत के ऊपर बैठे थे। बाकी छः आदमी ठण्डी हवा का आनन्द लेते हुए चाँदनी रात में दरी बिछा कर गाढ़ी नींद में खुर्राटें भर रहे थे। दो जगे लोगों में से एक ने देखा कि एक नाव बजरे की तरफ आ रही है। उसने पुकार कर कहा, 'देखो, नाव बजरे से भिड़ने न पावे।'

रंगराज ने जवाब दिया, 'मेरी नाव तो नहीं हटती। तुम जरूरत समझो तो अपना बजरा हटा लो।'

पहरेदार ने उसे बेवकूफ समझा। डर दिखाने को बन्दूक की एक झूठी आवाज की। सुन कर रंगराज हँसा, बोला, 'पांड़े महाराज, क्या छर्रें लाना भूल गये ? कहो तो मैं उधार दूँ ?'

रँगराज ने बन्दूक उठा कर पहरेदार के सिर का निशाना साधा। फिर कुछ सोच कर, बन्दूक रख कर धीरे से बोला, 'इस बार तुम्हारा सिर न उड़ा कर सिर्फ तुम्हारे सिर की पगड़ी उड़ाऊँ गा।' तब रंगराज ने धनुष तान कर खूब जोर से तीर छोड़ा। पहरेदार के सिर की पगड़ी उड़ गई। वह डर के मारे सीताराम-सीता राम जपने लगा।

और देखते-देखते नाव बजरे के पीछे आ लगी। दस-बारह लठैत नाव से कूद कर बजरे पर चले गये। जो छ: आदमी नींद में सोये थे, वे बन्दूक की आवाज से जाग उठे, लेकिन नींद में ऐसे मतवाले थे कि उनकी कुछ समझ में न आया। नाव से आए लठैतों ने उन्हें पल भर में ही बाँध डाला। दो लोग जो पहले से जगे थे, आक्रमण करने वालों से उन्होंने थोड़ी देर तो लड़ाई की, लेकिन वे जल्दी ही हार गये। लठैतों ने उनके भी हाथ-पाँव बाँध कर एक ओर डाल दिये। तब नाव के लोग बजरे के भीतर घुसने की कोशिश करने लगे, लेकिन बजरे का दरवाजा बन्द था।

बजरे पर ब्रजेश्वर था। ससुराल से नाराज हो कर वह घर लौट रहा था। रास्ते में ही उस पर यह मुसीबत पड़ी थी। यह सब उसके गुस्से का नतीजा था। लोग इस तरह रात में बजरा खोलने की हिम्मत नहीं करते।

रंगराज ने किवाड़ पर धक्का दे कर कहा, 'महाशय, किवाड़ खोलिये।'

भीतर से अभीं-अभी जाग कर उठे ब्रजेश्वर ने जवाब दिया, 'कौन है? इतना हल्ला क्यों हो रहा है?

'हल्ला-वल्ला नहीं, बजरे में डाका पड़ा है।'

कुछ देर चुप रह कर ब्रजेश्वर ने पुकरा, 'पांड़े, पाठक जी, भीमसिंह, निर्भय चौधरी।'

छत पर से भीमसिंह की आवाज आई, 'बाबू साहब, साले डाकुओं ने हम सब को बाँध दिया है।'

ब्रजेश्वर ने हँस कर व्यंग्य से कहा, 'बड़े दुख की बात है कि तुम जैसे वीरों को हलुआ-पूरी खाने के लिये न दे कर, बाँध दिया। डाकुओं ने बड़ी गलती की, बड़ा अन्याय किया है। लेकिन चिन्ता मत करो, कल से ही तुम लोगों की तनख्वाह बढ़ा दूँ गा।'

सुन कर रंगराज ने भीं हँस कर कहा, 'मेरीं भी यहीं राय है, लेकिन आप किवाड़ खोलने में देरी न करें।'

ब्रजेश्वर ने पूछा, 'तुम कौन हो?'

'मैं डाकू दल का आदमी हूँ। किवाड़ खोल दीजिये, बस यही कहना है।'

'क्यों खोलूँ?

'आप के पास जो धन-दौलत है, वह लूटने के लिये।

'क्यों ? मुझे क्या हिन्दुस्तानी भेंड़ा समझते हो ? मेरे हाथ में दो नली बन्दूक है। खबरदार, जो मेरी कोठरी में घुसे गा उसे जान गँवानी पड़े गी।'

'एक नहीं, कई आदमी एक साथ घुसें गे। आप कितनों को मारिये गा ? आप भी ब्राह्मण हैं, मैं भी ब्राह्मण हूँ। बेकार ही ब्रह्म-हत्या क्यों लीजियेगा ?'

'अगर न मानो गे तो मुझे ब्रह्महत्या ही करनी पड़े गी। इसलिये—' ब्रजेश्वर की बात पूरी भी न हुई थी कि एक डाकू किवाड़ तोड़ कर कमरे में घुस गया। देखते ही ब्रजेश्वर ने बन्दूक का कुन्दा घुमा कर उसे मारा। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। इतने में रंगराज में भी किवाड़ पर दो तीन गहरी चोटें कीं, किवाड़ टूट गया। रंगराज कमरे के भीतर घुसा। ब्रजेश्वर ने फिर बन्दूक घुमा कर रंगराज पर हमला करना चाहा कि रंगराज ने झपट कर ब्रजेश्वर के हाथ की बन्दूक पकड़ ली। दोनों बल में बराबर थे, लेकिन रंगराज फुर्ती में उससे तेज था। ब्रजेश्वर ठीक से संभल भी न पाया था कि रंगराज ने उसकी बन्दूक छीन ली। तब ब्रजेश्वर ने कस कर मुट्ठी बाँधा और रंगराज के माथे पर घूसा मारने जा ही रहा था कि रंगराज ने उसका हाथ पकड़ लिया। कमरे में एक ओर खूटियों में बहुत से हथियार लटक रहे थे, ब्रजेश्वर ने उनमें से झट से एक तलवार ले कर हँसते हुए कहा, 'देखो ब्राह्मण देवता, मुझे ब्रह्महत्या का डर नहीं है', कहते हुए उसने रंगराज पर तलवार का वार करना चाहा। इसी समय चार-पाँच लोग एक साथ भीतर घुस कर ब्रजेश्वर की देह से लिपट गये और एक ने उसका तलवार वाला हाथ पकड़ लिया। एक आदमी ने रस्सी ले कर पूछा, 'क्या तुम्हारे भी हाथ-पाँव बाँधने हों गे ?'

ब्रजेश्वर बोला, 'नहीं, मुझे बाँधने की जरूरत नहीं है। मैंने हार मान ली। अब बोलो क्या चाहते हो ? कहो मैं दिये देता हूँ।'

रंगराज ने कहा, 'तो आप के पास जो कुछ है सब दे दीजिये। कुछ भी नहीं छोड़ूँ गा, सब ले जाऊँ गा। पहले चाहे कुछ छोड़ भी देता, लेकिन जो तलवार मुझ पर चलाई थी, उससे तो मेरा सिर ही कट जाता। अब तो एक पैसा भी नहीं छोड़ सकता।'

'बजरे में जो कुछ है, सब ले जाओ। मैं रोकूँ गा नहीं।'

लेकिन ब्रजेश्वर के यह कहने के पहले ही रंगराज के आदमियों ने बजरे का सब सामान ढो कर नाव में रखना शुरू कर दिया था। यों बजरे में कुछ ज्यादा सामान था नहीं, सिर्फ पहनने के कपड़े थे। बिछौना और पूजा का सामान, ऐसी ही कुछ और भी छोटी-मोटी चीजें। थोड़ी ही देर में सब सामान नाव पर पहुँच गया। तब ब्रजेश्वर ने रंगराज से कहा, 'सब कुछ तो ले लिया, अब तुम अपनी राह लो, हम अपने रास्ते जायें।'

रंगराज बोला, 'जाता हूँ, लेकिन आप को भी हमारे साथ चलना हो गा।'

'सो क्यों ? मुझे कहाँ जाना होगा ?'

'हमारी रानी के पास ।'

'तुम्हारी कौन-सी रानी ?'

'हमारी राजरानी ।'

'वह कौन हैं ? डाकुओं की राजरानी के बारे में तो कभी नहीं सुना ।'

'देवी रानी का नाम कभी नहीं सुना ?'

'ओ हो ! तुम्हारा देवी चौधरानी का दल है ?'

'दल-वल कैसा ? हम रानी जी के कारपरदाज हैं ।'

'जैसी रानी, वैसे कारपरदाज ! तो मुझे रानी के दर्शन करने क्यों जाना होगा ? मुझे कैद कर के कुछ और वसूलने का मतलब है क्या ?'

'जरूर है । बजरे में तो कुछ मिला नहीं । आप को रखने से शायद कुछ मिल जाय ।'

'मेरी भी यही इच्छा है—सुना है, तुम्हारी राजरानी देखने की चीज हैं । क्या वह युवती हैं ?'

'वह हमारी माँ है—संतान माँ की उम्र का हिसाब नहीं रखती ।'

'सुना है बड़ी रूपवती हैं ।'

'हमारी माँ भगवती-रूपा हैं ।'

'चलो, तब भगवती के दर्शन पाऊँ गा ।'

कह कर ब्रजेश्वर रंगराज के साथ कमरे के बाहर आया । देखा, बजरा के माँझी-मल्लाह सब डर के मारे पानी में कूद कर भागे जा रहे थे । ब्रजेश्वर ने उन्हें पुकार कर कहा, 'तुम लोग आकर बजरे में बैठो, अब कोई डर नहीं है । यहाँ बैठ कर अल्लाह का नाम लो । तुम लोगों की जान, माल इज्जत सब सुरक्षित है ।'

तब एक-एक करके माँझी लोग बाजरा पर आने लगे । ब्रजेश्वर ने रंगराज से पूछा, 'क्या अब मेरे नौकरों को खोल दोगे ?'

'खोल सकता हूँ । लेकिन हाथ खुलने पर यदि ये लोग हम पर आक्रमण करें गे, तो हम आप का सिर काट दें गे । यह इन लोगों से कह दीजिये ।'

ब्रजेश्वर ने अपने नौकरों को उसी तरह समझा दिया । और भरोसा दिलाया कि तुम लोगों ने जैसी बहादुरी दिखायी है, तुमलोगों की जल्दी ही तन्खाह बढ़ा दी जाये गी। तब ब्रजेश्वर ने नौकरों से कहा, 'तुम लोग बिना किसी डर के बजरा ले कर यहीं रहना । कहीं जाना मत न और कुछ करना । मैं जल्दी ही लौट आऊँ गा ।' यह कह कर वह रंगराज के साथ डोंगी पर चढ़ गया । डोंगी के मल्लाहों ने 'देवी रानी की जय' का नारा लगा कर नाव खोल दी ।

| ५ |

जाते-जाते ब्रजेश्वर ने रंगराज ने पूछा, 'मुझे कितनी दूर ले जाओ गे—तुम्हारी रानी जी कहाँ हैं ?'

'वह बजरा नहीं देख रहे हो ? वह बजरा उन्हीं का है।'

'वह बजरा ? मैंने मन में समझा, वह अंग्रेजों का बजरा है—रंगपुर लूटने आया है। नहीं तो इतना बड़ा बजरा क्यों आता ?'

'रानी को रानी की तरह रहना पड़ता है। उसमें सात कमरे है।'

'इतने कमरों में कौन रहता है ?'

'एक में दरवार, एक में रानी सोती हैं, एक में दासियाँ रहती हैं, एक स्नानघर, एक रसोई घर, एक में भोजन। एक कैदीयों के लिये। लगता है आपको आज उसी में रहना होगा।'

इसी तरह बातें हो रही थीं, तब तक नाव बजरे के पास पहुँच गई। देवी चौधरानी इस समय बजरे की छत पर न थीं। जब तक उनके आदमी इधर उधर रहे, तब तक वे चाँदनी रात में छत पर बैठी बीणा बजाती रहीं। लेकिन उस दिन मन माफिक बजाना नहीं बन सका, सब कुछ बेसुरा होता जा रहा था। देवी का मन-चित्त अशांत था। इसलिए ज्यों ही नाव वापस ले कर रंगराज आया, वैसे ही वह कमरे के भीतर चली गई।

इधर नाव से उतर कर कमरे के द्वार पर आ कर रंगराज ने 'रानी जी की जय' कह कर अपने आने की सूचना दी। दरवाजे पर रेशमी परदा लगा था, भीतर का कुछ दिखाई न पड़ता था। रंगराज की आवाज सुन कर रानी ने भीतर से ही पूछा, 'क्या खबर है ?'

'सब कुशल है।'

'क्या तुम लोगों में कोई घायल भी हुआ है ?'

'नहीं, कोई नहीं।'

'उनका कोई आदमी मरा तो नहीं ?'

'नहीं माँ, सब काम आप की आज्ञा के अनुसार ही हुआ है।'

'उनके आदमियों में कोई जख्मी तो नही हुआ ?'

'दो पहरेदारों को चोट लगी है।'

'माल-सामान ?'

'सब ले आये हैं, लेकिन सामान ज्यादा न था।'

'और बाबू ?'

'बाबू को पकड़ लाया हूँ।'

'तो हाजिर करो।'

तब रंगराज ने इशारे से ब्रजेश्वर को बुलाया। वह नाव से उतर कर बजरे के दरवाजे के पास, वहीं आ कर खड़ा हुआ जहाँ रंगराज खड़ा था।

देवी ने अपनी स्वाभाविक आवाज को थोड़ा बिगाड़ कर पूछा, 'आप कौन हैं ?'

ब्रजेश्वर का डर नाम की चीज से कभी का परिचय न था। जिस देवी चौधरानी के नाम से बंगाल प्रदेश काँपता था, उसके निकट आ कर भी ब्रजेश्वर को हँसी आ गई। उसने मन-ही-मन सोचा—एक औरत से भला पुरुष डरे। ऐसा तो कभीं नहीं सुना। औरत चाहे जो है, लेकिन है वह पुरुष का दासी ही। फिर उसने हँस हँस कर देवी के प्रश्न का उत्तर दिया, 'परिचय पूछ कर क्या कीजिए गा ? आप का तो मेरे धन से मतलब था, सो वह तो आप को मिल ही चुका है। मेरे नाम बताने से तो रुपया मिले गा नहीं।'

देवी ने पहले की ही भाँति स्वर बदल कर कहा, 'चाहे न मिले, पर आप किस दरजे के आदमी हैं, वह पता लगने पर रुपयों का भी अंदाज मिले गा।'

'तो क्या इसीलिए मुझे पकड़वा मँगाया है ?

'नहीं तो यहाँ आप की क्या जरूरत थी ?'

देवी रानी परदे की आड़ में थीं। सब बातें कहते हुए वह अपने बहते आँसू पोंछती जा रही थीं, यह किसी ने न देखा।

तभी ब्रजेश्वर ने कहा, तो अगर मैं अपना नाम बताऊँ, 'दुखीराम चक्रवर्ती' तो क्या आप मान लें गी ?'

'नहीं।'

'तब भला पूछने से क्या लाभ ?'

'आप ठीक-ठीक बताते हैं या नहीं, यही देखने के लिए।'

'तो मेरा नाम है कृष्ण गोबिन्द घोषाल !'

'नहीं।'

'दयाराम बख्शी।'

'नहीं।'

'ब्रजेश्वर राय ?'

'यह हो सकता है।'

इसी समय एक और स्त्री आ कर देवी के पास चुपचाप बैठ गई। धीरे से पूछा, 'आवाज क्यों बदली गई है ?'

अब देवी की आँखों के आँसू न थमे। बरसात में खिले फूलों में जिस तरह पानी अटक जाता है और डाल को तनिक सा हिला देने से पानी झर-झर करके गिरने

लगता है, वैसे ही देवी की आँखों में पानी भर आया था और तनिक सा हिलने पर गिरने लगा। तब देवी ने उस स्त्री के कान के पास मुँह ले जा कर कहा, 'अब मुझसे और मजाक नहीं किया जाता। अब तू बातें कर, सब कुछ तो जानती ही है।'

कह कर देवी उठ कर दूसरे कमरे में चली गई। तब वह स्त्री देवी की जगह बैठ कर ब्रजेश्वर से बातें करने लगी। यह स्त्री और कोई नहीं, भवानी ठाकुर के यहाँ की अविवाहिता ब्राह्मणी है—निशि ठकुरानी।

निशि बोली, 'अब ठीक कह रहे हो—तुम्हारा नाम ब्रजेश्वर राय है।'

ब्रजेश्वर के मन में कुछ सन्देह हुआ। परदे के उधर से कुछ दिखाई नहीं पड़ता था, लेकिन आवाज बदली सुन कर ही उसे सन्देह हुआ था कि अब जो बात कर रही है, वह पहले वाली नहीं है। पहले वाली की आवाज में जितनी मिठास थी, उतनी इस वाली आवाज में नहीं है। जो भी हो, ब्रजेश्वर को उत्तर तो देना ही था। सो उसने कहा, 'अगर मेरा परिचय आप जानती हैं, तो अब आप को मुझसे जो कुछ लेना हो, ले लीजिए, मैं अपने घर जाऊँ। बताइए, क्या ले कर मुझे मुक्त कीजिए गा।

निशि बोली, ' एक कानी कौड़ी ले कर। आप अपनी यही कीमत समझिये। अगर लिए हों तो दे कर चले जाइए।'

'अभी तो तेरे पास नहीं है।'

'क्या बजरे पर से ला कर दीजिए गा ?'

'बजरे में जो कुछ था, सो तो आप के आदमी पहले ही लूट लाये हैं, अब तो एक फूटी कौड़ी भी मेरे पास नहीं है।'

'तो, न हो, माँझियों से ही उधार माँग लीजिये।'

'उनके पास भी फूटी कौड़ी न हो गी।'

'तो जितने दिन आप अपनी कीमत नहीं चुकाएँ गे, उतने दिनों तो आप को कैद में रहना ही पड़े गा।'

तभी ब्रजेश्वर को लगा कि जैसे उस कमरे के भीतर और भी कोई है। आवाज से वह भी कोई स्त्री ही लगी। वह देवी रानी से कह रही थी, 'रानी जी, अगर इस पुरुष की कीमत एक कानी कौड़ी है, तो मैं एक कानी कौड़ी देती हूँ, इसे मेरे ही हाथ बेंच दीजिये।'

रानी ने जो उत्तर दिया सो भी ब्रजेश्वर ने सुना। रानी ने कहा, ठीक है, लेकिन तुम इसे ले कर क्या करो गी ? यह ब्राह्मण है, इससे भला तुम क्या काम लो गी ? न यह पानी ला सकता है, न जलावन के लिए लकड़ी ही काट सकता है।'

वह स्त्री-कण्ठ बोला, 'मुझे एक रसोइए की जरूरत है। यह मेरे लिए खाना पकाया करे गा।'

तब निशि ने ब्रजेश्वर से पुकार कर कहा, 'सुन लिया ? आप बेच दिए गये।

मैं कौड़ी पा गई। जिसने कौड़ी दे कर आप को खरीदा है, आप उसी के साथ चले जाइए। रसोई बनानी हो गा।'

'वे कौन हैं ?'

'वे स्त्री हैं। बाहर नहीं निकलतीं। आप भीतर आइए।'

| ६ |

परदा उठा कर ब्रजेश्वर कमरे के भीतर गया। वहाँ जो कुछ देखा, देख कर भौंचक्का रह गया। कमरे की काठ की दीवालों पर बहुत से चित्र लगे थे। जैसे आश्विन के महीने में दशभुजा देवी की प्रतिमा की पूजा करने के लिए भक्त लोग मंदिर में तरह-तरह के चित्र लटकाते हैं, यहाँ भी वैसे ही चित्र थे। शुम्भ-निशुम्भ का युद्ध, महिषासुर का युद्ध, दस अवतार, अष्टनायिका, सप्तमातृका, दसमहाविद्या, कैलाश, वृन्दावन, लँका, राम-रावण युद्ध, इन्द्र सभा, चीर हरण, गौरीशंकर आदि कितने ही दृश्य अंकित थे। कमरे में चार अंगुल मोटा गलीचा बिछा था, उस पर भी कितने ही चित्र बने थे। गलीचे पर जरीदार मखमल की चादर बिछी थी, दो ओर दो खूब ऊँचे मसनद और मखमली तकिये थे। सोने के इत्रदान, गुलाबपाश, पानदान, कटौरा, फूलदानी और उसमें तरह-तरह के सुगंधित फूल सजा कर रखे थे। दो ओर चाँदी की बनी परियों के माथे पर कपूर की बत्तियाँ जल रही थीं। छत से, सोने की जंजीर में एक छोटी सी सुन्दर हाँड़ी लटक रही थी। चारो कोनों में चाँदी की चार पुतलियों के हाथों में मोमबत्तियाँ थीं। मसनद के सहारे एक स्त्री मुँह पर ढाके की कामदार महीन चादर डाले सोयी थी। चादर से ढँके रहने के कारण चेहरा स्पष्ट दिखाई नहीं पड़ता था, लेकिन तपे सोने जैसा गौरवर्ण और काले घुंघराले बालों की शोभा स्पष्ट थी। कानों के गहने की चमक ऊपर से चमक रही थी। बड़ी-बड़ी, चमकदार आँखों का भी आभास मिल रहा था। वह स्त्री लेटी थी, जगी थी, सोई नहीं थी।

उस दरबार जैसे कमरे में जा कर ब्रजेश्वर ने उस लेटी सुन्दरी से पूछा, 'रानी जी को क्या कह कर आशीर्वाद दूँ ?'

उत्तर मिला, 'मैं रानी जी नहीं हूँ।'

आवाज सुन कर ब्रजेश्वर ने सोचा कि अभी तक जिससे बातें हो रही थीं यह निश्चय ही उसकी आवाज नहीं है। हो सकता है, यही पहले बातें कर रही हो, और बार-बार यही अपनी आवाज बदल लेती हो। देवी चौधरानी जरूर ही मायाविनी

औरत है। जो इतना छल-प्रपंच न जानती हो, वह स्त्री हो कर डाकुओं की रानी कैसे बनती ? यही सब सोच कर उसने पूछा, 'अभी तक जिनके साथ बातें कर रहा था, वे कहाँ गयीं ?'

तुम्हें भीतर आने की आज्ञा दे कर वे सोने चली गयीं। लेकिन रानी से तुम्हें क्या काम है ?'

'तो तुम कौन हो ?'

'तुम्हारी स्वामिनी।'

'मेरी स्वामिनी ?'

'भूल गये क्या ? अभी-अभी मैंने तुम्हें एक कानी कौड़ी में खरीदा है।'

'तो ठीक है, तब बताओ कि क्या कह कर तुम्हें आशीर्वाद दूँ ?'

'क्या तुम्हें यह भी नहीं मालूम कि किसे क्या कह कर आशीर्वाद देते हैं ?'

'स्त्रियों के लिए तो ऐसा ही विधान है कि सधवा को एक तरह से, विधवा को एक तरह से और पुत्रवती को······'

'मुझे तो आशीर्वाद दो कि मैं जल्दी मरूँ।'

'ऐसा आशीर्वाद तो मैं किसी को नहीं देता। तुम्हारी एक सौ तीन साल की आयु हो।'

'लेकिन मेरी उम्र तो अभी पचीस वर्ष की है। तो ठीक है, अठहत्तर साल तक तुम्हें मेरी रसोई करनी होगी।'

पहले एक दिन मेरे हाथ की रसोई खा तो लो। पसन्द आवे गी, तब न अठहत्तर साल तक बनवावो गी।'

तो 'ठीक है, कैसी रसोई बनाते हो, नमूना दिखाओ।'

तब व्रजेश्वर जा कर उसी मुलायम गलीचे पर बैठ गया। तब सुन्दरी ने पूछा, तुम्हारा नाम क्या है ?'

'यह तो तुम जान चुकी हो। मेरा नाम है—व्रजेश्वर। पर तुम्हारा नाम क्या है ? आवाज बदल कर बातें क्यों कर रही हो ? कहीं तुमसे पहले तो भेंट नहीं हुई ?'

'मैं तुम्हारी स्वामिनी हूँ। मुझे 'आप' कहा करो।'

'बहुत अच्छा। आप का शुभ नाम ?'

'मेरा नाम है पंचकौड़ी। लेकिन तुम मेरे नौकर हो। तुम मेरा नाम नहीं ले सकते। कहो तो, मैं भी तुम्हारा नाम न लूँ।'

'तो आप क्या कह कर मुझे पुकारें गी ?'

'मैं तुम्हें रामधन कह कर पुकारूँ गी। तुम मुझे 'सरकार ठकुरानी' कहो गे। अब तुम अपना परिचय दो। घर कहाँ है ?'

'सिर्फ एक कौड़ी दे कर जिसे खरीदा है, उसके परिचय का क्या प्रयोजन है ?'

'ठीक है, मत कहो। रंगराज से पूछ लूँ गी। लेकिन यह तो बताओ कि कौन ब्राह्मण हो ? राढ़ी, या वारेन्द्र या वैदिक ?'

'मै कोई भी ब्राह्मण होऊँ पर मेरे हाथ का भात तो खाइए गा ही ?'

'अगर तुम मेरी श्रेणी के न होगे तो तुमसे दूसरा कोई काम लूँगी।'

'दूसरा कौन सा काम ?'

'पानी भरना, लकड़ी चीरना। काम की कोई कमी है क्या ?'

'मैं राढ़ी हूँ।'

'तुम राढ़ी हो और मैं वारेन्द्र हूँ। तुम्हें पानी भरना हो गा, लकड़ी चीरना हो गा।—कुलीन या वंशज ?'

'यह जानने की जरूरत तो सिर्फ विवाह के समय होती है। क्या मेरा कहीं संबंध भी कीजिए गा क्या ? मैं विवाहित हूँ।'

'विवाहित हो ? कितने ब्याह किए ?'

'पानी भरूँ गा, पर इतना परिचय न दूँ गा।'

तब सुन्दरी ने देवी रानी को पुकार कर कहा, 'रानी जी, ब्राह्मण ठाकुर तो बड़ा हठी है। बात का जवाब नहीं देता।'

निशि ने दूसरे कमरे से कहा, 'बेंत लगाओ।'

तभी देवी रानी की एक दासी झमक कर एक पतला सा बेंत पंचकौड़ी के बिछावन पर रख कर चली गई। बेंत पा कर पंचकौड़ी ने रूमाल से ढँके होठों से दबा कर बेंत को बिछौने पर दो-एक बार पटका। ब्रजेश्वर से कहा, 'देखते हो ?'

ब्रजेश्वर हँस पड़ा। बोला, 'आप जो चाहें, कर सकती हैं। क्या पूछती हैं, पूछिये, कहता हूँ।'

'तुम्हारे परिचय की जरूरत नहीं। परिचय जान कर क्या होगा ? तुम्हारा बनाया तो खा नहीं सकती। तुम और कौन सा काम कर सकते है। बोलो ?'

'आज्ञा दीजिए।'

'पानी भरना जानते हो ?'

'नहीं।'

'लकड़ी चीरना जानते हो ?'

'नहीं।'

'बाजार से सामान ला सकते हो ?'

'मोटे-मोटे रूप में·········'

'मोटा-मोटी से काम नहीं चले गा। पंखा झल सकते हो ?'

'हूँ।'

'अच्छा, तो यह चँवर उठाओ और डुलाओ।'

ब्रजेश्वर चँवर ले कर डुलाने लगा। तब पंचकौड़ी ने पूछा, 'अच्छा बोलो, एक काम जानते हो ? पैर दबाना ?'

ब्रजेश्वर ने यह बात सुन कर पंचकौड़ी के मुंह की ओर ताका। एक बार तो मजाक करने का जी चाहा। लेकिन इस समय वह डाकुओं की इस सरदारिन को खुश कर के जल्दी ही छुटकारा पाना चाहता था। अतः पंचकौड़ी के प्रश्न के उत्तर में उसने कहा, 'तुम जैसी सुन्दरियों के पाँव दबाऊँ, ऐसे भाग्य कहाँ ?'

'तो फिर दबाओ न !' कहते हुए पंचकौड़ी ने महावर से रंगा अपना पैर झट से ब्रजेश्वर की जाँघ पर रख दिया।'

ब्रजेश्वर लाचार था—उसने खुद ही पाँव दबाने की लालसा प्रकट की थी। अतः बेचारा क्या करता ? दोनों हाथों से वह पाँव दबाने लगा। लेकिन उसे मन में बड़ी ग्लानि हुई। मन ही मन कहा, 'यह काम तो अच्छा नहीं हुआ ! इसके लिए तो प्रायश्चित करना पड़े गा। अभी तो सब से पहले इनसे उद्धार हो, बस।'

इसी समय दुष्ट पंचकौड़ी ने पुकारा, 'रानी जी ! एक बार इधर तो आइये !'

देवी रानी आ रही हैं—ब्रजेश्वर को आहट मिल गई। उसने पंचकौड़ी के पाँव को अपनी जाँघ पर से हटा दिया। तब हँस कर पंचकौड़ी बोली, 'ऐसा क्यों, रामधन ? पीछे क्यों हटते हो ?'

यह बात पंचकौड़ी ने अपने असली स्वर में कही थी। सुन कर ब्रजेश्वर बड़ा ही विस्मित हुआ। सोचा, 'यह क्या ? यह कंठ-स्वर तो पहचाना हुआ है।' तब खूब साहस कर के ब्रजेश्वर ने पंचकौड़ी के चेहरे पर पड़ी चादर को खींच लिया। पंचकौड़ी खिल-खिल करके हँस उठी।

विस्मय में डूब कर ब्रजेश्वर ने पूछा, 'यह क्या ? यह क्या ? तुम सागर ?'

पंचकौड़ी बोली, 'मैं सागर हूँ। गंगा नहीं, यमुना नहीं, बिल्ली नहीं, भालू नहीं, साक्षात सागर हूँ। तुम्हारा दुर्भाग्य क्यों ? जब तुमने मुझे परायी स्त्री समझा, तब बड़ी प्रसन्नता से पाँव दबाने लगे, और जब मैंने घर की स्त्री हो कर पाँव दबाने को कहा, तब तुम नाराज हो कर चले गये ? मेरी ओर एक बार घूम कर देखा तक नहीं।—न देखो ! मेरी प्रतिज्ञा तो पूरी हो गई। तुमने मेरा पाँव दबाया है, अब तुम मेरा मुँह भी देख ही सकते हो। अब चाहे तुम मुझे त्याग दो या अपने चरणों में लिपटा लो। अब जान गये न कि, मैं सच्चे ब्राह्मण की बेटी हूँ।'

| ७ |

ब्रजेश्वर काफी देर तक विस्मय में डूबा रहा। बाद में पूछा, 'सागर तुम यहाँ कैसे ?'

सागर बोली, 'सागर के स्वामी, तुम यहाँ कैसे ?'

मैं तो कैदी हूँ। क्या तुम भी कैदी हो ? मुझे तो पकड़ कर लाए हैं। क्या तुम्हें भी पकड़ कर लाए है ?'

'मैं कैदी नहीं हूँ। न कोई मुझे पकड़ कर ही लाया है। मैंने अपनी ही इच्छा से देवी रानी की शरण में आई हूँ। तुमसे पैर दबवाने के लिये ही देवी रानी के राज्य में आई हूँ।'

तभी निशि वहाँ आई। ब्रजेश्वर ने उसके कपड़ों व गहनों की चमक व तड़क-भड़क देख कर समझा कि यही है देवी चौधरानी। ब्रजेश्वर उसके सम्मान में उठ खड़ा हुआ। तब निशि ने कहा, 'हम स्त्रियाँ डकैत हैं, हमारे लिए इतने आदर सम्मान की जरूरत नहीं हैं। आप बैठिए। अब आप समझे कि आप के बजरे पर हमें क्यों डाका डालना पड़ा ? इस सागर की प्रतीज्ञा से इसे उद्धार करने को। इसकी प्रतीज्ञा पूरी हुई। अब आप से हमलोगों को कोई मतलब नहीं है। अब आप चाहें तो अपने बजरे पर खुशी से जा सकते हैं, कोई नहीं रोके गा। आप का यहाँ जो भी सामान है, सब आप के बजरे में भिजवाए देती हूँ। लेकिन यह जो एक अनमोल रत्न है—यह मुँह जली सागर, इसका क्या होगा ? यह क्या अपने पिता के घर लौट जाए, या इसे आप साथ ले जायें गे ? यदि रखिए गा—आप इसके एक कौड़ी के खरीदे हुए गुलाम हैं।'

विस्मय पर विस्मय ! ब्रजेश्वर विह्वल हो उठा। तो क्या यह डाका सिर्फ नाटक था ? ये सब क्या डकैत नहीं ! ब्रजेश्वर सोचने लगा। अन्त में बोला, तुम लोगों ने मुझे खूब बेवकूफ बनाया। मैं तो यही समझता था कि देवी चौधरानी के दल के डाकुओं ने मेरे बजरे पर डाका डाला है।'

तब निशि ने कहा, 'सच तो यही है कि यह देवी चौधरानी का ही बजरा है। और यह भी सच है कि देवी रानी डाका डालती हैं।'

बात पूरी होते न होते ब्रजेश्वर ने कहा, 'अगर यह सत्य है कि देवी रानी डाके डालती है—तो क्या आप देवी रानी नहीं है ?'

मैं देवी नहीं हूँ। आप यदि रानी जी को देखना चाहते हैं तो वे आप को दर्शन दे सकती हैं। लेकिन जो बात मैं कह रही हूँ, पहले उसे आप सुन लीजिये। यह सच है कि हमलोग डाके डालती हैं, लेकिन आप पर डाका डालने का और कोई

उद्देश्य न था। सिर्फ सागर की प्रतिज्ञा की रक्षा करनी थी। लेकिन अब सागर घर कैसे जाय गी ? प्रतीज्ञा की रक्षा तो हो गई।'

'वह आई कैसे ?'

'रानी जी के साथ।'

'मैं भी तो सागर के मायके गया था। वहीं से लौट रहा हूँ, लेकिन वहाँ तो रानी जी को नहीं देखा ?'

'आप के आने पर रानी जी वहाँ गई थीं।'

'तो इतनी ही देर में यहाँ कैसे आ गईं ?'

'हमारी डोंगी देखी है न ? पचास लोग बैठ सकते हैं।'

'तो आप सागर को नाव पर ही क्यों नहीं वापस भेज देतीं ?'

'उसमें एक दिक्कत है। सागर घर में किसी से कुछ कहे-सुने बिना ही रानी जी के साथ चली आई। इस समय दूसरे के साथ वापस जाने से सभी पूछें गे कि कहाँ गई थी ? लेकिन आप के साथ जाने से कोई कुछ न पूछे गा।'

'ठीक है, तो वही हो गा। आप कृपा कर के नाव वालों को आदेश दे दें।'

'अच्छा।' कह कर निशि वहाँ से चली गई।

तब सागर को एकान्त में पा कर ब्रजेश्वर ने कहा, 'सागर ? तुमने ऐसी प्रतिज्ञा क्यों की थी ?'

मुंह में आँचल भर कर—इस बार ढाका की चादर नहीं—सागर रोने लगी। वह मुँह में कपड़ा ठूंस-ठूंस कर देर तक सिसक-सिसक कर रोती रही—ताकि देवी न सुन लें।

रुलाई थमने पर सागर से ब्रजेश्वर से पूछा, 'तुमने मुझे बुला क्यों नहीं लिया ? एक बार बुला लेतीं तो शायद इतनी झंझट न होती।'

बड़े प्रयत्न से रुलाई बन्द कर के सागर ने आँखें पोंछी और बोली, 'भाग्य में इतना कष्ट लिखा था, इसी से मैंने नहीं बुलाया, लेकिन आप खुद क्यों नहीं चले आये ?'

'मुझे तो तुमने भगा दिया था ! फिर बिना बुलाये कैसे आता ?

इस तरह मान-मनौवल की बातें हो जाने पर ब्रजेश्वर ने पूछा, 'सागर ! तुम इन डाकुओं के साथ क्यों कर आईं ?'

'देवी रानी रिश्ते में मेरीं बहन होती हैं। उनसे मेरी बहुत पुरानी जान-पहचान है। आप के जाने पर वह मेरे नैहर में मेरे पास आई थीं। उस समय मुझे रोती देख कर बोलीं, 'बहन, क्यों रोती हो ? तुम्हारे अमावश्या के चाँद को मैं पकड़ कर ला दूँ गी। तुम मेरे साथ सिर्फ दो दिनों के लिए चली चलो।' बस, मैं उनके साथ चली आई। देवी पर इतना विश्वास करने का विशेष कारण है। चलते समय मैं दासियों

से कह आई थी कि मैं उन्हीं के साथ जा रही हूँ। आप के लिए यह गुड़गुड़ी, सटक आदि चीजें मैंने पहले से ही ठीक कर रखी है। बस, थोड़ी सी तम्बाकू पी लीजिए तब जाइये गा।'

'जो मालकिन हैं, वे तो कुछ कहती ही नहीं।'

'तब सागर ने देवी को पुकारा। लेकिन देवी नहीं आई। निशि ही हँसती हुई आई।

निशि को देख कर ब्रजेश्वर ने कहा, 'अब आप नाव वालों से कह दें तो मैं चला जाऊँ।'

निशि बोली, 'नाव तुम्हारी ही है। लेकिन जरा सोचो तो, तुम रानी जी के बहनोई हो। मेहमान के घर आने पर भी हमने अभी उसका कोई आदर-सत्कार नहीं किया—अभी तक तो सिर्फ अपमान ही किया है। इससे हम लोग बहुत दुखी हैं। डाकू होने पर भी तो हम लोग हिन्दू ही हैं।'

'तो अब आप लोग क्या चाहती हैं?'

'पहले ठीक से, आराम से बैठो।' कह कर निशि ने एक तकिया उसकी ओर बढ़ा दिया। ब्रजेश्वर तब गलीचे पर बैठा था। बोला, 'मैं बड़े मजे में बैठा हूँ।'

तब निशि ने सागर से कहा, 'अब अपने देवता को तू ही गद्दी पर बैठा। मैं दूसरे की सम्पत्ति नहीं छूती।' फिर हँस कर बोली, 'सोना—चाँदी भर छोड़ कर।'

'तो क्या मैं पीतल-काँसा हूँ?'

'मैं तो यही समझती हूँ। स्त्रियों के लिए पुरुष पीतल के बर्तन जैसे ही हैं। उनके बिना घर का काम नहीं चलता, इसी से रखना पड़ता है। बात-बात में वे अशुद्ध हो जाते हैं। उन्हें हर समय माँज-धो कर घर में रखते-रखते जान मुसीबत में रहती है। अरे सागर! तू अपना यह जूठा बर्तन यहाँ से हटा, कहीं छू न जाय?'

'एक तो पीतल-काँसा, और उस पर से खोटा! क्या यह उन घड़ों में भी गिना जाने लायक नहीं है?'

'मैं ठहरी वैष्णवी। मैं भला पीतल-काँसा की बात क्या जानूँ? मेरी पहुँच तो सिर्फ मिट्टी के बर्तनों तक ही है। पीतल-काँसा की बात तो सागर से ही पूछो।'

तब सागर बोली, 'मेरी समझ में तो पुरुष धातु के बने घड़े हैं। हमेशा ही अन्तःशून्य रहते हैं। गुणवती होने के कारण हम स्त्रियाँ उन्हें रस (जल) से भर दिया करती हैं।'

निशि बोली, 'ठीक कहती हो। तभी तो स्त्रियाँ इस घड़े को गले में बाँध कर संसार-समुद्र में डूब मरती हैं। और भाई, तेरा घड़ा है, तू अपने घड़े को ऊँचे पर रख।'

ब्रजेश्वर ने कहा, 'किसी को रखने की जरूरत नहीं है। यह घड़ा अपने आप ही ऊँचे आसन पर जा रहा है।'

कह कर ब्रजेश्वर खुद उठ कर गद्दी पर मसनद के सहारे जा बैठा। तभी अचानक दोनों ओर से दो युवती सुन्दरी दसियों ने जो खूब गहने पहने थीं, तथा खूब भड़कीले कपड़े पहने थीं, सोने की मूढ़वाले चँवरों को हाथ में ले कर ब्रजेश्वर के अगल-बगल आ कर खड़ी हो गईं और चँवर हिलाने लगीं। तब निशि ने सागर से कहा, 'जा, तू अपने स्वामी के लिए अपने हाथ से तमाखू भर ला।'

सागर झटपट सुगंधित तमाखू भर कर चिलम ले आई और हुक्के पर रख दिया। ब्रजेश्वर बोला, 'मुझे नया हुक्का, निगाली लगा कर दो।'

निशि ने कहा, 'यह हुक्का नया ही है। यहाँ और कोई नहीं पीता।'

'जब कोई नहीं पीता तो यहाँ हुक्का क्यों है ?'

'यह रानी जी की अमीरी का एक सामान है।'

'लेकिन जब मैं आया था, तब तो तमाखू भरी थी। वह किसने पी ?'

'वह सिर्फ दिखाने के लिए थी।'

वह हुक्का उसी दिन नया निकाला गया था। खास कर सागर के स्वामी के ही लिए। ब्रजेश्वर ने गौर से हुक्के को देखा, नया ही मालूम पड़ा। तब वह तमाखू का आनन्द लेने लगा।

निशि ने सागर से कहा, 'तू यहाँ खड़ी-खड़ी क्या देख रही है ? क्या ये तुझे देखे बिना तमाखू नहीं पी सकते ? जा दो-चार बीड़े पान लगा ला। पर अपने ही हाथ से लगाना। हो सके तो उसमें जड़ी-बूटी भी डाल देना।'

सागर बोली, 'अगर मैं जड़ी-बूटी ही जानती होती तो आज मेरी यह दुर्दशा होती ?' कह कर सागर सोने के पानदान में सुवासित पान भर लाई।

निशि ने कहा, 'तू ने आज अपने स्वामी को बहुत तंग किया है। जा कर इनके लिए कुछ जलपान ले आ।'

ब्रजेश्वर परेशान हो कर बोला, 'इतनी रात को जलपान ? क्षमा कीजिए।'

लेकिन उसकी किसी ने न सुनी। सागर ने झटपट कमरे में अपने हाथ से चौका लगा कर एक मोटा सा आसन बिछा दिया और चाँदी की तस्तरियों में तरह-तरह के मेवे व मिठाइयाँ सजा लाई। सोने के गिलास में खूब ठण्डा और सुवासित जल भी भर कर रखा। तब ब्रजेश्वर से निशि ने कहा, 'उठिए।'

तब ब्रजेश्वर ने हाथ जोड़ कर कहा, 'मुझे पकड़ कर कैद किया, यह अत्याचार तो किसी तरह सह गया, पर इतनी रात को यह दूसरा अत्याचार सहना कठिन होगा। इसके लिए क्षमा करें।'

लेकिन स्त्रियों के आगे ब्रजेश्वर की एक भी न चली। लाचार हो कर उसे थोड़ा

सा खाना ही पड़ा। उसके खा लेने के बाद निशि से सागर ने कहा, 'ब्राह्मण भोजन करा कर कुछ दक्षिणा भी देनी पड़ती है। क्या इतना भी नहीं जानती ?'

'दक्षिणा तो रानी जी ही देंगी। चलो। रानी जी के दर्शन करने चलो।' कह कर ब्रजेश्वर को दूसरे कमरे में लिवा ले गई।

।८।

निशि ब्रजेश्वर को देवी रानी के शयन-कक्ष में ले गई। वहाँ जा कर ब्रजेश्वर ने देखा कि शयनागार तो दरबार के कमरे से भी ज्यादा सजा हुआ है। उसमें एक ओर रत्न-जटित हाँथी दाँत का एक सुन्दर सा पलंग बिछा है। लेकिन ब्रजेश्वर की आँखें उन चीजों की ओर न थीं। उसकी आँखें तो इस ऐश्वर्य की मालकिन देवी रानी को ही खोज रही थीं। उसने देखा कि कमरे के भीतर काठ की एक चौकी पर एक स्त्री मुँह पर घूँघट डाले चुपचाप बैठी हैं। निशि व सागर की चँचलता और शोखी का यहाँ नाम-निशान भी न था। वह स्त्री गंभीर मुद्रा में सिर झुकाए बैठी थी। जिस ठाठ-बाट से सागर व निशि थी, और जैसे गहने-कपड़े वे पहने थीं, वैसी भी इस स्त्री में न दिखा। यह स्त्री एक साधारण सी साड़ी पहने थी। हाथों में सिर्फ चूड़ियाँ थीं। बड़ी साधारण पोशाक थी।

उस कमरे में ब्रजेश्वर को पहुँचा कर निशि फौरन ही वहाँ से चली गई। तब देवी ने उठ कर ब्रजेश्वर को प्रणाम किया। ब्रजेश्वर विस्मय में डूब गया। अभी तक यहाँ और किसी ने उसे प्रणाम न किया था।

देवी घूँघट हटा कर ब्रजेश्वर के सामने आ खड़ी हुई। ब्रजेश्वर तो देवी की दिव्य-मूर्ति देख कर दंग रह गया। ऐसा रूप ? क्या ऐसा भी सौंदर्य हो सकता है ? उसे याद आया—हाँ, एक बार उसने ऐसा रूप देखा था। वह रूप शायद और भी मधुर, और भी आकर्षक था। क्योंकि वह रूप तब तक एक किशोरी का था, ब्रजेश्वर भी तब नवयुवक था। हाय ! यह मूर्ति यदि वही होती ? यह रूप व चेहरा देख कर ब्रजेश्वर को वही रूप, वही चेहरा याद आ गया। लेकिन गौर से देखा तो पाया कि इस और उस चेहरे में अन्तर है। फिर गौर से देखा, बहुत कुछ उसी चेहरे जैसा है। ब्रजेश्वर स्थिर-दृष्टि से देवी की ओर निहारने लगा। हाय ! वह तो बहुत दिन हुए मर गई ! किसी-किसी के रूप व चेहरे में सचमुच इतनी समानता होती है कि एक को देख कर दूसरे की याद आ जाती है।

जाने क्यों, ब्रजेश्वर की आँखों में आँसू आ गये, पर गिरे नहीं। देवी ब्रजेश्वर के आँसू न देख सकी। देख पाती तो शायद एक नया ही काण्ड हो जाता! दोनों आँखों में मेघ व बिजली भरी थी।

प्रणाम कर के अपनी आँखें झुका कर देवी ने कहा, 'आज मैंने आप को जबर-दस्ती पकड़वा मँगा कर बड़ा कष्ट दिया। लेकिन ऐसा कुकर्म क्यों किया, यह तो आप सुन ही चुके हैं। मेरे अपराध को भूल जाइए।'

ब्रजेश्वर बोला, 'मेरा तो आप ने उपकार ही किया है।'

और कुछ कहने की ब्रजेश्वर में शक्ति भी न थी।

देवी बोली, 'आपने दया कर के जलपान ग्रहण किया, इससे मेरी मर्यादा बढ़ी है। आप कुलीन हैं, आप की मर्यादा रखना मेरा भी कर्तव्य है। आप हमारे कुटुम्ब के हैं। आप की मर्यादा व सम्मान के लिए मैं आप को जो दे रही हूँ उसे ग्रहण कीजिए।'

'स्त्री से बढ़ कर कौन दूसरा धन है ? आप ने वही धन तो मुझे दिया है। अब और अधिक क्या दीजिए गा ?'

ऐ ब्रजेश्वर ! क्या कह गये ? स्त्री से बढ़ कर और धन नहीं ? तब बाप-बेटे ने मिल कर प्रफुल्ल को क्यों निकाल दिया था ?

पलंग के पास चाँदी का एक घड़ा रखा था। उसे खींच कर देवी ने ब्रजेश्वर के सामने रखा और कहा, 'इसे ग्रहण करना होगा ?'

'आप के बजरे में सोने-चाँदी का इतना सामान है, यह घड़ा लेने में सागर आपत्ति करे गी। लेकिन एक बात है—'

वह बात देवी समझ गई—बोली, 'मैं शपथ-पूर्वक कह रही हूँ कि यह चोरी-डकैती का नहीं है। मेरी अपनी थोड़ी-सी सम्पत्ति है। उसके बारे में आप सुनें गे ही। अतएव इसे ग्रहण करने में संकोच न करें।'

ब्रजेश्वर तैयार हो गया। कुलीन और अध्यापक भट्टाचार्य को विदाई और सम्मान-स्वरूप कोई भी चीज लेने में उस समय कोई लज्जा न थी, शायद अब भी नहीं है। घड़ा खूब वजनदार था, ब्रजेश्वर उठा न सका। बोला, 'अरे', यह क्या ? घड़ा ठोस है क्या ?'

'अभी खींचा था तो भीतर आवाज हुई थी, अतः ठोस नहीं है।'

'तब इसमें क्या है ?' कह कर ब्रजेश्वर ने घड़े में हाथ डाल कर देखा—मोहर ! मोहरों से भरा घड़ा !

ब्रजेश्वर ने पूछा, 'इसे उँडेल कर कहाँ रख दूँ ?'

'उँडेल कर क्यों रखें गे ? यह सब आप को दिया है।'

'क्या ?'

'क्यों ?'

'कितनी मोहरें हैं ?'

'तेंतिस सौ ।'

'तेंतिस सौ मोहरें, पचास हजार से अधिक रुपयों की हुईं । क्या सागर ने आप से रुपये की बात कही है ?'

'सागर से ही सुना है कि आप को पचास हजार रुपयों की जरूरत है ।'

'इसीलिए दे रही हैं ?'

'यह धन मेरा नहीं है, न मुझे देने का अधिकार ही है । यह धन तो भगवान का है । मैं इस देव-सम्पत्ति को आप को कर्ज के रूप में दे रही हूँ ।'

'हाँ मुझे इतने रुपयों की बड़ी जरूरत है । चोरी-डकैती करने पर भी यदि इतना मैं पा सकता तो वह करने को भी विवश था । इतने रुपयों के लिए इस समय कुछ भी करना मैं अधर्म न मानता, क्योंकि इतना रुपया न होने पर मेरे पिता की इज्जत नहीं बच सके गी । मैं यह रुपया लेता हूँ, लेकिन इसे कब तक चुकाना हो गा ।'

'मैंने कहा न कि यह देव-सम्पत्ति है । कभी भी देवता को वापस मिल जानी चाहिये । मेरी मृत्यु के बाद असल रुपया और सूद-रूप में एक मोहर आप देश-सेवा में खर्च कर के ऋण-मुक्त हो सकें गे ।'

'यह तो एक प्रकार से आप को धोखा देना हुआ ।'

'तो जैसे आप को अच्छा लगे, उस तरह वापस कीजिए गा ।'

'तो जब भी मैं रुपया जुटा सकूँ गा आप को भेज दूँ गा ।'

'लेकिन आप का कोई आदमी मेरे पास न आवे । कोई मुझ तक आ नहीं सकता ।'

'तो मैं खुद रुपये ले कर आऊँ गा ।'

'कहाँ आइएगा ? मैं एक जगह तो रहती नहीं ।'

'आप जहाँ आने को कहें गी, वहीं आऊँगा ।'

'तो रुपया लौटाने की ठीक तिथि मालूम होने से मैं बता सकूँगी कि कहाँ रहूँ गी ।'

'मैं फागुन तक रुपये जुटा लूँ गा । लेकिन कुछ और समय हाथ में रखना ही ठीक हो गा, अतः मैं रुपये बैशाख में जरूर दे सकूँ गा ।'

'तो ठीक है, बैशाख महीने के शुक्ल पक्ष की सप्तमी को, रात को आप यहीं रुपया लाइए गा । मैं सबेरा होने के पहले तक आप को यहीं मिलूँगी ।'

ब्रजेश्वर ने स्वीकार किया ।

तब देवी ने दासियों को आदेश दिया, 'यह घड़ा उठा कर नाव पर रख आओ ।'

तब जब ब्रजेश्वर देवी रानी को आशीर्वाद दे कर जाने लगा, तब देवी ने रोक

कर कहा, 'एक बात और है। यह तो मैंने कर्ज दिया है। आप की मर्यादा के लिए कुछ नहीं दिया।'

'यह चाँदी का घड़ा तो है ही।'

'नहीं, यह आप की मर्यादा के योग्य नहीं। जो दूँगी, आप की मर्यादा के अनुकूल ही होगी।' कह कर देवी ने अपनी उँगली से एक अँगूठी उतारी। ब्रजेश्वर ने अँगूठी लेने के लिए हाथ बढ़ाया। तब देवी ने खुद ही ब्रजेश्वर का हाथ पकड़ कर उसकी उँगली में अँगूठी पहना दी।

ब्रजेश्वर का मन एकाएक क्यों चंचल हो उठा, यह वह खुद नहीं समझ पाया। उसके शरीर में काँटे उग आये। लेकिन साथ ही हृदय में जैसे अपूर्व आनन्द का स्रोत बहने लगा। वह इतना बेसुध हो गया कि अपना हाथ खींचना भी भूल गया।

ब्रजेश्वर की इस मानसिक अवस्था को सोच कर अँगूठी पहनाते समय देवी की आँखों से दो बूँद आँसू ब्रजेश्वर के हाथ पर टपक पड़े।

ब्रजेश्वर ने देखा कि देवी का पूरा चेहरा आँसुओं से भींग गया है। यह देख कर उसे ऐसी ही एक रात और एक चेहरे की खूब याद आई। शायद उस रात को भी वह चेहरा इसी तरह आँसुओं से छा गया था। भावावेश में, बड़े प्यार से ब्रजेश्वर ने उस चेहरे के आँसुओं को पोंछ दिया था, यह भी उसे अच्छी तरह याद आया। तो यह चेहरा भी वही तो नहीं है? बहुत कुछ तो वैसा ही मालूम देता है। अगर यह चेहरा वही नहीं है तो इसकी भी रुलाई उस जैसी ही क्यों है? लेकिन नहीं, वह देवी कैसे हो सकती है? इसी उधेड़-बुन में वह कुछ भी विश्वास न कर सकने पर भी न मालूम क्यों, किस भावावेश में, या किस शक्ति से, उसने देवी के कंधे पर अपना एक हाथ रख दिया। दूसरे हाथ से उसका चेहरा ऊपर उठा कर गौर से देखा, लगा, जैसे वह ठीक प्रफुल्ल का ही चेहरा है। हाँ, ठीक है, तनिक भी शक नहीं, यह तो प्रफुल्ल का ही चेहरा है। क्या यह प्रफुल्ल ही है, या उसकी प्रतिच्छवि, आत्मा!

ब्रजेश्वर सुध-बुध खो बैठा। उससे अपने को रोका न गया। उसने जैसे किसी विवशता के दबाव से उस आँसुओं से भींगे चेहरे के ओंठों को···! छिः, छिः! ब्रजेश्वर! यह क्या कर रहे हो?

ब्रजेश्वर के सिर पर जैसे आकाश फट पड़ा। क्या कर बैठा? यह क्या प्रफुल्ल है? उसे मरे भी दस साल से अधिक हो गये! ब्रजेश्वर साँस ऊपर खींच कर वहाँ से एकाएक बेतहाशा भाग कर नाव पर जा खड़ा हुआ। सागर को साथ नहीं ले गया। सागर 'पकड़ो! पकड़ो! असामी भागा!' चिल्लाती हुई, पीछे-पीछे दौड़ती हुई जा कर उसी नाव पर चढ़ गई। नाव खुली और ब्रजेश्वर अपने दो रत्नों एक सागर, एक मोहर भरा घड़ा—को ले कर अपने बजरे पर पहुँचा।

इसी समय इधर निशि ने देवी के कमरे में जा कर देखा, देवी एक तख्ते पर

पड़ी फूट-फूट कर रो रही है। निशि ने देवी को पकड़ कर उठा कर बैठाया। उसकी आँखों के आँसुओं को पोंछा—उसे सुस्थिर किया। तब निशि बोली, 'माँ, क्यों यही तुम्हारा निष्काम धर्म है ? क्या यही सन्यास है ? गीता का ज्ञान क्या यही है, माँ ?'

देवी चुप रही। निशि बोली, 'वह सब साधना स्त्रियों के लिए नहीं है। स्त्रियों के लिए यह पथ सुगम करना हो तो, मेरी तरह हो कर रहना पड़े गा। मुझे रुलाने के लिए कोई ब्रजेश्वर नहीं है। मेरे लिए ब्रजेश्वर और परमेश्वर-दोनों एक ही हैं।'

देवी ने आँखों को सुखा कर कहा, 'तुम यम के घर जाओ।'

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन मुझ पर यम का भी अधिकार नहीं है। मेरा तो कहना है कि तुम संन्यास त्याग कर घर चली जाओ।'

'यदि वह पथ मेरे लिए खुला रहता तो मैं इस पथ पर कभी न जाती। खैर, अब बजरा खोल देने व पाल उठा देने को कहो।'

बजरा खोल दिया गया, पाल भी तान दिये गये। बजरा पक्षी की गति से उड़ चला।

|९|

अपने बजरे में आ कर ब्रजेश्वर गंभीर हो कर बैठ गया। वह सागर से भी नहीं बोल रहा था। देखा कि देवी रानी का बजरा और पाल खुला और पक्षी गति से उड़ने लगा। तब ब्रजेश्वर ने सागर से पूछा, 'बजरा कहाँ जा रहा है ?'

'यह बात देवी के अलावा और कोई नहीं जानता। यह सब बातें देवी और किसी से नहीं बतातीं।'

'देवी कौन हैं ?'

'देवी, देवी !'

'तुम्हारी कौन है ?'

'बहन।'

'बहन कैसे ?'

'जाति व गाँव-घर की।'

ब्रजेश्वर फिर चुप हो रहा। फिर माँझियों से पुकार कर कहा, 'क्या तुम लोग भी उस बड़े बजरे के साथ जा सकते हो ?'

मांझियों ने कहा, 'किसमें इतनी सामर्थ्य है ? वह तो हवा से बातें करता है।'

ब्रजेश्वर फिर चुप हो गया।

सागर को नींद आ गई।

सबेरा हुआ। ब्रजेश्वर ने बजरा खोलने को कहा।

फिर ब्रजेश्वर ने सागर से पूछा, 'देवी क्या डाके डालती है ?'

'तुम्हें क्या लगता है ?'

'रंग-ढंग तो डाकुओं जैसा ही देखा। करना चाहे तो डाके डाल भी सकती है। लेकिन मन में यह विश्वास नहीं होता कि वह डाके डालती है।'

'विश्वास क्यों नहीं होता ?'

'नही कह सकता। बस लगता है कि अगर डकैती नहीं करती तो इतना धन कहाँ से आया ?'

'कोई कहता हैं कि देवी ने देवता के वरदान से इतना धन पाया है। कोई कहता है कि जमींन में गड़ा धन पाया है। कोई कहता है कि वे सोना बनाना जानती हैं।'

'लेकिन उनका स्वयं क्या कहना है ?

'कहती है कि मेरी तो एक कौड़ी भी नहीं है। सभी धन दूसरे का है।'

'दूसरे का इतना धन कैसे पाया ?'

'यह मैं नहीं जानती।'

'दूसरों के धन पर यदि इतना भोग-विलास करतीं तो धन वाला कुछ बोलता नहीं ?

'लेकिन देवी तो भोग–विलास नहीं करतीं। फल-फूल ही खाती हैं। जमीन पर सोती हैं। मोटे कपड़े पहनती हैं। कल आप ने जितना कुछ भी देखा, वह सब सिर्फ मेरे और आप के कारण बाहरी ठाक था, भीतर से वह सन्यासिनी हैं। लेकिन आप के हाथ में यह क्या है ?' सागर ने ब्रजेश्वर के हाथ में नई अँगूठी देख कर पूछा।

'कल मैंने देवी के बजरे पर जलपान किया था न ! इसीलिये मेरे सम्मान में देवी ने यह अँगूठी दी थी।'

'देखूँ ?'

ब्रजेश्वर ने अँगूठी उतार कर दे दो। सागर ने उसे बार–बार उलट-पुलट कर देखा, फिर कहा, 'इसमें शायद देवी रानी का नाम भी खुदा है।'

'कहाँ ?'

'भीतर देखो फारसी अक्षरों में हैं।'

'यह क्या ? यह तो मेरा नाम है। यह अंगूठी भी मेरी है। सागर ! तुम्हें मेरी कसम है। झूठ मत बोलना। ठीक-ठीक बताओ, देवी कौन है ?'

'अगर तुम नहीं पहचान सके तो इसमें भला मेरा क्या दोष है ? मैंने तो एक ही मिनट में पहचान लिया था।'

'जल्दी बताओ, देवी कौन है ?'

'प्रफुल्ल !'

सुनते ही ब्रजेश्वर अवाक रह गया। सागर ने लक्ष्य किया कि नाम सुनते ही ब्रजेश्वर का सारा शरीर रोमांचित हो उठा। उसके रोम-रोम में आनन्द का ज्वार उठने लगा। उसके चेहरे पर एक अपूर्व आनन्द की झलक आ गई। आँखों में आनन्द के आँसू छलछला आये। शरीर भी जैसे चमकने लगा। लेकिन क्षण भर बाद ही देखा कि जैसे सूरज को काले-बादलों ने ढँक लिया। खुशी पर अँधेरा छा गया। जहाँ आनन्द की प्रभा थी, वहाँ विवाद की कलिमा छा गई। ब्रजेश्वर निश्चेष्ट हो गया। वह न कुछ बोला, न ही उसने पलक गिराई।

ब्रजेश्वर बड़ी देर तक सागर की ओर ताकता रहा ,फिर अचानक आँखें बन्द कर के सागर की जाँघ पर सिर रख कर सो रहा। सागर ने चिन्तित हो कर अनुनय-विनय भरी कितनी ही बातें कहीं, लेकिन ब्रजेश्वर चुप ही रहा। बहुत देर बाद सिर्फ एक बार बोला, 'प्रफुल्ल ! डाकुओं की सरदारिन ! छिः !'

|१०|

ब्रजेश्वर और सागर को देवी चौधरानी ने विदा कर दिया–हाय ! कहाँ गई देवी ? कहाँ गया वह वेश भूषा, ढाका की साड़ी, सोने के गहने, हीरा-मूंगा-पन्ना —सब कहाँ गया ? देवी ने सब त्याग दिया। सब कुछ एकबारगी ही अर्न्तध्यान हो गया। अब देवी, गाढ़े की एक धोती भर पहने हैं, हाथ में सिर्फ चूड़ियाँ, बजरे में एक तख्ते पर चटाई बिछाकर सोई हुई है। वह जगी है या नींद में है, पता नहीं।

सवेरे बजरे को निर्दिष्ट स्थान पर लगा देख, देवी ने उतर कर नदी में स्नान किया। स्नान के बाद भी वही गीले कपड़े पहने रही। फिर सिर पर और हृदय पर गंगा की मिट्टी लगाई। तेल-हीन गीले बालों को सूखने के लिए खोल दिया। देवी का अब जो सौंदर्य दिखने लगा, वह गत रात की सजावट से मेल न खाता था। जो देवी कल हीरा-मोती से जगमग करती रानी की तरह दिखती थी, वह आज गंगा की मिट्टी पोत कर सचमुच ही देवी लग रही थी। जो खुद सुन्दर है। वह शोभा के लिए मिट्टी छोड़ हीरा क्यों पहने ?

देवी इसी अनुपम वेश में एक दूसरी स्त्री को साथ ले कर किनारे-किनारे चली, बजरा वहीं छोड़ दिया। बहुत दूर जा कर वह एक जंगल में घुसी।

जिस समय की यह कथा है। उस समय यह देश सचमुच जंगलों से भरा था। अभी भी इस प्रान्त में कहीं-कहीं भयानक जंगल है। डकैती की तो बात ही करना व्यर्थ है।

यह तो सर्वाविदित बात है कि भारत के डाकुओं के दमन के लिए मार्क्विस आफ हेस्टिंग्स को जैसी सामरिक तैयारी करनी पड़ी थी, पंजाब की लड़ाई के पहले और कभी वैसी तैयारी नहीं करनी पड़ी थी। उस अराजकता के काल में सामर्थ्यवान लोग डकैती करने को ही अपना मुख्य व्यवसाय बनाये थे। जो लोग दुर्बल या सीधे-सादे थे वे डकैती करने में अयोग्य होने के कारण भले आदमी माने जाते थे। वास्तव में उस युग में ड़कैती करना कोई नीच या निन्दनीय काम नहीं माना जाता था।

जंगल में घुस कर देवी काफी दूर चली गई। एक पेड़ के नीचे आ कर उसने अपनी सहचरी से कहा, 'दिवा, तू यहीं बैठ, मैं आती हूँ। इस वन में बाघ-भालू ज्यादा नहीं है। अगर वे आवें भी तो तू डरना मत। लोग पहरे पर हैं।'

कह कर देवी वहाँ से और भी घने जंगल में घुसी। उस वन के भीतर एक सुरंग थी। उसमें उतरने के लिए पत्थर की सीड़ियाँ थीं। सुरंग के भीतर पत्थर का ही घर था। उसमें एक दिया टिमटिमा रहा था। उन्हीं सीढ़ियों से उतर कर देवी तहखाने में पहुँची।

तहखाने में एक शिव-लिंग स्थापित था। उसके सामने ही बैठा एक ब्राह्मण शिव जी की पूजा कर रहा था। देवी शिव-लिंग को प्रणाम कर के ब्राह्मण से जरा हट कर बैठ गई। तब पूजा समाप्त करके ब्राह्मण देवी से बातें करने लगा।

ब्राह्मण ने पूछा, 'बेटी, कल रात तुमने क्या किया ? क्या कहीं डकैती की ?'

'आप का क्या विश्वास है ?'

'कुछ नहीं कह सकता।'

यह ब्राह्मण और कोई नहीं, अपने पूर्व परिचित भवानी ठाकुर हैं। देवी ने कहा,

'कुछ कह क्यों नहीं सकते ? आप क्या मुझे जानते नहीं ? दस वर्षों से बराबर डाकुओं के साथ-साथ घूमती हूँ। लेकिन एक दिन भी मैंने कहीं डाके में प्रत्यक्ष रूप से भाग नहीं लिया। यह सब आप जानते हैं, फिर भी आप सन्देह करते हैं ?'

'गुस्सा क्यों होने लगीं ? हम लोग जिस मतलब से डकैती करते हैं, उसे हम कभी बुरा नहीं मानते। मानते तो एक दिन भी वह काम कभी न करते। तुम भी शायद इस काम को बुरा नहीं समझतीं, नहीं तो इस प्रकार दस वर्ष…'

'इस संबंध में अब मेरा मत वदल रहा है। मैं इतने दिनों तक आप की बातों में भूली रही, लेकिन अब और अधिक कदापि नहीं भूलूँगी। यदि दूसरों के धन का अपहरण पाप वहीं है तो फिर पाप क्या है? आप लोगों से अब कोई सम्बन्ध मैं नहीं रखूँगी।'

'क्यों? इतने दिनों से जो कुछ भी समझाता रहा हूँ, क्या वही फिर समझाना होगा? अगर इन डकैतियों से आए धन में से एक कौड़ी भी मैं अपने काम में लाता तो यह आवश्य ही महापाप था। लेकिन तुम तो जानती हो कि हम केवल दूसरों के लिए ही डकैती करते हैं। हम उन्हें देने के लिए धन लाते हैं जो धर्मात्मा हैं और जो सनमार्ग में रह कर धन कमाते हैं पर उन्हें 'भरण-पोषण' के लिए भी दिक्कत उठानी पड़ती है। रांगरज या हम कभी उसका एक पैसा भी नहीं लेने। जो जुआरी हैं, दगाबाज हैं, जो दूसरों का धन ठग कर या जबर्दस्ती छीन कर अपना लेते हैं, हम उन्हीं के घर में डाका डालते हैं। लूट कर भी खुद एक पैसा नहीं लेते। जिन निर्बलों का धन दुष्ट जन ठग कर ले आते हैं उन्हें हम फिर वापस कर देते हैं। यह सब क्या तुमसे छिपा है? देश में आज अराजकता का राज्य है। कोई शासन व्यवस्था करने वाला नहीं। इसीलिए दुष्टों को दण्ड नहीं मिलता। जो जिसका, जो भी धन पाता है, छीन लेता है। इसीलिए हम लोग तुम्हें रानी बना कर राज काज चला रहे हैं। तुम्हारे नाम से हम लोग दुष्टों का दमन और भले आदमियों का पालन करते हैं। क्या यह सब पाप ही है?

'राजा-रानी जिसे भी बनाना चाहें गे, वही बने गा। लेकिन अब मुझे छुट्टी दीजिए। मैं अब इस रानी पद को नहीं चाहती।'

'और किसी को यह पद शोभा न देगा। और न ही किसी के पास इतना धन है, तुमसे धन पा कर सभी लोग तुम्हारे अधीन हैं।'

'मेरा जो कुछ भी धन है, सभी मैं आप को देती हूँ। मैं उस धन को जिस प्रकार सात्विक रूप से खर्च करती हूँ, आप भी वैसे ही खर्च करें गे। मैंने तो अब काशी-वास का ही संकल्प कर लिया है।'

'लेकिन केवल धन के ही कारण सब तुम्हारे अधीन हों, ऐसी भी बात नहीं है—तुम गुण से भी उनकी रानी होने लायक हो। वे सभी तुम्हें साक्षात भगवती ही मानते हैं, क्योंकि 'तुम सन्यासिनी हो, माता की तरह दूसरों का सदा मंगल मनाती रहती हो। हाथ खोल कर धन-दान करती हो, फिर भगवती की तरह रूपवती भी हो। इसीलिए तुम्हारे नाम से हम लोग इस राज्य का शासन चला पाते हैं। नहीं तो हम लोगों की बात भला कोई सुनता?'

'तभी तो दूसरे मुझे डाकुओं की सरदारिन ही जानते हैं। क्या मेरी यह बदनामी मरने पर भी मिट सके गी?'

'कैसी बदनामी? इस वरेन्द्र भूमि में आज ऐसा कौन है जो तुम्हारे नाम को

गौरव के साथ न लेता हो ? लेकिन यह बात भी छोड़ो। बताओ, धर्म के काम में सुयश की जरूरत क्या है ? बदनामी की बात मन में आने से निष्काम कर्म नहीं होता। यदि तुम अपयश से डरती हो, तो तुमने सिर्फ स्वार्थ को ही देखा, परमार्थ को नहीं। तुम्हें आत्म-विस्मृति हो गई है क्या ?

'देखिए, तर्क में मैं आप का मुकाबला नहीं कर सकती। आप तो महामहोपाध्याय हैं। मैं ठहरी आप की शिष्या—एक साधारण स्त्री-मात्र। मेरी बुद्धि में जो आता है, वही कहती हूँ। लेकिन मैं अब इस रानी पद से छुटकारा पाना चाहती हूँ। अब यह बोझ मुझसे सहा नहीं जाता।'

'तो फिर कल रंगराज को डाका डालने को क्यों भेजा था ? मुझसे कोई बात नहीं छिपी हैं।'

'तब तो आप यह भी जानते ही होंगे कि रंगराज ने कल डाका नहीं डाला। सिर्फ डाका का अभिनय किया गया था।

'क्यों किया था, यही मैं जानता नहीं, इसी लिए तो पूछ रहा हूँ।'

'एक आदमी को पकड़ लाने के लिए।'

'कौन आदमी ?'

देवी नाम लेने से झिझकी। लेकिन नाम बताए बिना भी नहीं चलेगा। भवानी ठाकुर के सामने सच बोलना ही उचित समझ कर उसने कहा, 'उसका नाम ब्रजेश्वर राय है।'

'मैं तो उसे अच्छी तरह जानता हूँ। उससे तुम्हें क्या मतलब था ?'

'मतलब था। उन्हें कुछ देना था। उनके पिता इजारेदार के हाथों कैद होने वाले थे। कुछ रुपये दे कर उनकी इज्जत बचानी थी।'

'लेकिन तुमने यह ठीक नहीं किया। हरवल्लभ बड़ा ही दुष्ट और खोटा आदमी है। उस नीच ने अपने समन्धी की इज्जत नष्ट की थी—उसकी इज्जत का नष्ट होना ही ठीक था।

'सो क्यों ?'

'उसकी एक पतोहू थी, जिसके कोई न था। सिर्फ एक विधवा माँ थी। हरबल्लभ ने उस बेचारी विधवा पर जाति-भ्रष्टा का अपवाद लगा कर उसकी बेटी, अपनी पतोहू को घर से निकाल दिया था। शोक के मारे बहू की माँ मर गई।'

'और बहू ?'

'सुना है कि वह भी बिना खाये पिये-भूख से मर गई।'

'हो सकता है, लेकिन हमें इन बातों से क्या मतलब ? हमने तो परोपकार व्रत ग्रहण किया है। जिसे भी दुखी देखूँगी, उसका दुख दूर करूँगी।'

'बात तो ठीक है, लेकिन इस समय बहुतेरे लोग दरिद्र हो गये हैं। इजारेदारों

के अत्याचार से सभी लोग सर्वस्व खो कर कंगाल हो गये हैं। अभी सहारा पा कर वे शक्तिशाली होंगे। फिर लाठी के बल से अपनी खोई सम्पत्ति भी वापस पा सकेंगे। जल्दी ही एक दिन दरबार कर के उनकी रक्षा करो।'

'तो खबर करा दीजिए कि आगामी सोमवार को यहीं दरबार होगा।'

'लेकिन यहाँ तुम्हारा और रहना ठीक न होगा। अंग्रेजों को तुम्हारे यहाँ रहने की खबर मिल गई है। सुना है कि इस बार कोई अंग्रेज सेनापति पाँच सौ सिपाही ले कर तुम्हारी खोज में आ रहा है। इसलिए यहाँ दरबार करना ठीक न होगा। वैकुण्ठपुर के जंगल में दरबार होगा। इसकी खबर मैंने करवा दी है। सोमवार को दरबार होना तय है। उस जंगल में घुसने की हिम्मत सिपाही नहीं करेंगे। करेंगे तो फिर बचेंगे नहीं। जरूरत भर के रुपये ले कर न हो, तुम आज ही वैकुण्ठपुर के जंगल के लिए रवाना हो जाओ।'

'अच्छा, चली जाती हूँ, पर इसके बाद मैं काम करूँगी या नहीं, इसमें संदेह है। इस काम में अब मेरा तनिक भी मन नहीं लगता।'

कह कर देवी अपने बजरे पर लौट गई। बजरे में पहुँच कर रंगराज को बुलाकर खूब धीरे-धीरे समझा कर सावधान किया, 'आगामी सोमवार को वैकुण्ठपुर के जंगल में दरबार होगा। बजरा खोल दो, वहीं चलो। बरकन्दाजों को भी खबर दे दो। देवीगढ़ हो कर चलना। रुपया भी ले चलना होगा। साथ में तो बहुत थोड़ा ही रुपया है।'

फिर शुभ-मुहूर्त में बजरा खुला। पाल तान दिये गये। डोंगी बजरे के साथ बाँध दी गई। उस पर साठ जवान हाथ में पतवार ले कर बैठे और 'रानी जी की जय' के नारे के साथ नाव खोल दी गई। नाव तीर की तरह उड़ चली।

उधर देखा गया कि बहुसंख्यक लोग पैदल यात्रियों की तरह नदी के किनारे-किनारे जंगल के भीतर-भीतर, बजरे के साथ दौड़े जा रहे हैं। उनके हाथों में सिर्फ एक-एक लाठी थी। लेकिन बजरे के भीतर ढाल, तलवार, और बंदूकों की कमी न थी। वे लोग सब देवी की बरकन्दाज सेना थी।

फिर सब सामान ठीक देख कर देवी अपना खाना अपने हाथों बनाने को पाकशाला में जा कर व्यस्त हो गई।

आह! देवी! तुम्हारा यह कैसा सन्यास है?

|११|

सोमवार को सबेरे सूरज के उगते ही उस एकान्त जंगल में देवी रानी का 'दरबार' या 'इजलास' लगा। इस इजलास में कोई मुकदमा-मामला नहीं होता। राजकाज के नाम पर सिर्फ एक काम होता है—दान !

घना जंगल—लेकिन जंगल के भीतर लगभग तीन सौ बीघा जमीन साफ की गई है। बड़े-बड़े पेड़ नहीं काटे गये। उन्हीं की छाया में लोग बैठेंगे। उसी साफ की गई जमीन में आज करीब दस हजार लोग इकट्ठे हुए हैं। उनके बीच में है देवी चौधरानी का आसन। पेड़ों की डालों में बाँध कर एक खूब बड़ा सा शामियाना ताना गया है। उसके नीचे ही चाँदी के खम्भों पर एक मखमली कपड़े पर बना चन्दोवा टाँगा गया है। उसमें मोतियों की झालर लटक रही है। उस शामियाने के नीचे चन्दन की चौकी पर खूब मोटा गलीचा बिछा है। गलीचे के ऊपर एक छोटा सा सोने का सिंहासन है। उसी पर एक रत्नजड़ित मसनद रखा है। देवी ने आज बहुमूल्य आभूषण और कपड़े पहने। गले में मोती की माला और माथे पर रत्न-जड़ित मुकुट। आज देवी का शरत् ऋतु की देवी की प्रतिमा की तरह रूप सँवरा है। यह सब देवी का राजसी रूप है। सिंहासन के दोनों ओर दो-दो युवती दासियाँ खड़ी हो कर सोने के मूठदार चँवर डुला रही हैं। आसपास कितने ही चोबदार और बल्लमबरदार भड़कीली पोशाक पहने कन्धे पर सोने-चाँदी के आसे और बल्लम-बर्छे लिए मुस्तैद खड़े हैं। पाँच सौ पैदल सिपाही हथियारों से सुसज्जित हो, देवी के दोनों ओर कतार बाँध कर खड़े हैं। सभी ने सिर पर लाल पगड़ी, लाल अंगरखा, लाल धोती और पैरों में चमरौधे जूते पहने है और ढाल-तलवार लिए हैं। चारों ओर लाल-लाल झंडे फहरा रहे हैं।

देवी आ कर सिंहासन पर बैठीं। दस हजार कण्ठों ने एक साथ 'देवी रानी की जय' के नारे लगाये। फिर दस सजे-सजाये युवकों ने आगे बढ़ कर देवी की प्रशस्ति में गीत गाये। फिर उन दस हजार लोगों के बीच से रंगराज एक-एक भिक्षार्थी को देवी के सिंहासन के पास लाने लगा। उन लोगों ने आकर देवी को साष्टांग प्रणाम किया। आयु में जो बड़े ब्राह्मण थे, उन्होंने भी देवी के आगे सिर झुकाया, क्योंकि उन सबों का विश्वास था कि देवी भगवती का अंश हैं, लोगों के उद्धार के लिए जन्म लिया है इसीलिए कोई भी व्यक्ति देवी का पता अंग्रेजों को नहीं बताता था, न ही कोई उनकी गिरफ्तारी में अंग्रेजों की मदद करने को तैयार होता था। देवी ने मीठे कण्ठ से सबों को संबोधित कर के उनकी दशा व हालचाल पूछा। जिसकी जैसी स्थिति थी, उसी के अनुसार एक-एक को दान देने लगीं। पास ही रुपयों से भरे कई घड़े रखे थे।

इस तरह सबेरे से शाम तक देवी ने गरीबों में रुपये बाँटे। जब एक पहर रात

बीती, तब जा कर यह दान-कर्म समाप्त हुआ। इसके बाद ही देवी ने अन्न-जल ग्रहण किया।

यही थी देवी रानी की डकैती। और किसी प्रकार की डकैती नहीं होती थी।

कुछ दिनों बाद रंगपुर के गुडलैंड साहब के पास यह खबर पहुँची कि वैकुण्ठपुर के जंगल में देवी चौधरानी का डाकू-दल जमा है—कितने डाकू हैं, यह किसी को नहीं मालूम। फिर यह बात सुनने में आई कि बहुतेरे डाकू वहाँ से ढेर के ढेर रुपये ले कर लौटे हैं। अतः यह निश्चित है कि उन्होंने कहीं बड़ी डकैती की है। जिन लोगों ने देवी से दान-स्वरूप रुपये पाये थे उन्होंने घर आ कर रुपये छिपा दिए। नहीं तो रुपये होने की शंका होते ही इजारेदार के सिपाही रुपये छीन ले जाते। फिर भी लोग आवश्यकतानुसार खर्च-वर्च तो कर ही रहे थे। इससे सबों को विश्वास हो गया था कि देवी चौधरानी ने इस बार डकैती में भारी रकम पायी है।

|१२|

यथासमय पिता के सामने उपस्थित हो कर ब्रजेश्वर ने उनके पाँव छुए।

हरवल्लभ ने थोड़ी इधर-उधर की बातों के बाद प्रश्न किया, 'असली खबर क्या है? रुपयों का क्या हुआ?'

ब्रजेश्वर ने कहा, 'स्वसुर जी तो रुपये नहीं दे सके।'

सुन कर जैसे हरवल्लभ के सिर पर बज्र गिर पड़ा। तब चीत्कार कर के हरवल्लभ ने पूछा, 'क्या, रुपये नहीं मिले?'

'मेरे ससुर तो रुपये नहीं दे सके, लेकिन और एक जगह से रुपये मिल गये हैं।'

'मिला है? तो पहले वही क्यों नहीं बताया? दुर्गा! दुर्गा! बच गया।'

'जहाँ से रुपया मिला है, उसे लेना चाहिए था या नहीं, यही समझ में नहीं आता।'

'किसने दिया है?'

ब्रजेश्वर ने सिर झुका कर सिर हिलाते हुए कहा, 'उसका नाम तो नहीं मालूम। एक स्त्री, जो डाकू-सरदारिन के नाम से प्रसिद्ध है।'

'कौन? देवी चौधरानी?'

'वही।'

'उससे रुपया कैसे पाया?'

ब्रजेश्वर के प्राचीन नीति-शास्त्र में लिखा हैं कि ऐसी स्थिति में पिता के सामने झूठ बोलने में कोई दोष नहीं होता। बोला, 'बिल्कुल संयोगवश ही रुपया मिल गया है।'

'खोटे जन का रुपया। लिखा-पढ़ी कैसी की ?'

'लिखा-पढ़ी कुछ नहीं हुई।'

बाप इस सम्बन्ध में और पूछ-ताछ न करें, इसलिए उस बात को दबा कर ब्रजेश्वर ने कहा, 'जो पाप का धन लेता है, वह भी पाप का भागी होता है। इसीलिए रुपया लेने का मेरा मन न था।'

हरवल्लभ ने नाराज हो कर कहा, 'न लेते रुपये, तो क्या मैं जेल जाता ? कर्ज लेने में भला कैसा पाप-पुण्य ! अरे बाबा, आज कल जप-तप का रुपया कहाँ मिले गा ? ऐसा सब सोचने से काम नहीं चले गा। असली बात तो यह है कि रुपया डाकू का है, फिर कोई लिखा-पढ़ी भी नहीं हुई। इसी बात का डर है कि वापस करने में देरी होगी तो वे सब घर-द्वार भी लूट ले जायँगे।'

ब्रजेश्वर कुछ बोला नहीं, चुप रहा। तब पिता ने पूछा, 'तो कब तक रुपये चुकाने का वायदा है ?'

'अगले वैशाख की शुक्ला सप्तमी की आधी रात के भीतर।'

'वे सब तो डाकू हैं। एक जगह तो रहते नहीं। फिर किस पते पर उन्हें रुपये भेजे जायँ गे ?'

'उसी तिथि को शाम के बाद वह डाकू-सरदारिन सन्धानपुर के देवीघाट पर बजरा ले कर रहे गी। वहीं रुपया पहुँचाना हो गा।'

'ठीक है, तो उस दिन वहीं रुपया भेज दिया जाय गा।'

फिर ब्रजेश्वर वहाँ से चला गया।

तब हरवल्लभ ने मन ही मन अपनी तिकड़मी बुद्धि लड़ा कर इस बात पर खूब सोच-विचार कर के मन में निश्चय किया—उस हरामजादी को अब रुपया वापस करने जाऊँ गा भला ? उसे तो बल्कि पकड़वा देने से ही सारा बखेड़ा मिट जाये गा। उसी तिथि को, वैशाख शुक्ला सप्तमी के शाम के बाद ही कप्तान साहब अगर पलटन के साथ उसके बजरे की तालाशी न लें, तो मेरा नाम हरवल्लभ नहीं। उसे मुझसे रुपये लेने का मौका ही कैसे आये गा ?'

हरवल्लभ ने अपने इन उच्च-विचारों को अपने मन में ही छिपा रखा। ब्रजेश्वर पर विश्वास न होने से उन्होंने उससे भी कुछ न बताया।

इधर सागर ने बूढ़ी माँ के पास जा कर यह गप्प उड़ाई कि—'एक रानी के जहाज पर जा कर मेरे स्वामी ने उसके साथ विवाह कर लिया है। मैंने उन्हें बहुत रोका, लेकिन मेरी उन्होंने एक न सुनी। वह जाति की मल्लाहिन है। इसके पहले भी वह दो

ब्याह और कर चुकी है। इसलिए मेरे स्वामी अब जाति में नहीं रहे। मैं अब उनका छुआ न खा सकूँ गी।'

तब बड़ी माँ ने व्रजेश्वर से यह बात पूछी। व्रजेश्वर मजाक समझ गया। अपराध स्वीकार कर के बोला, 'रानी की जाति ठीक है। वह मेरे दादा की रिश्तेदार है। और व्याह—सो मेरे भी तीन विवाह हो चुके हैं, उसके भी।'

बूढ़ी समझ गई कि सब बातें झूठी हैं। लेकिन उनसे सागर के कहने का आशय था कि बूढ़ी यह बात नयनतारा को सुनावे। इस विषय में कोई देरी न हुई। एक तो नयन सागर को देख कर यों ही जलती थी, दूसरे यह सुन कर कि स्वामी ने एक बूढ़ी-कन्या से विवाह कर लिया है, नयन तारा एकबारगी ही जल कर खाक हो गई। इसीलिए कुछ दिनों तक व्रजेश्वर नयन के पास जाने की हिम्मत ही नहीं कर सका। वह सागर के महल का इजारेदार बन कर ही रहा।

सागर का मतलब सिद्ध हुआ। लेकिन नयन ने खूब गुल-गपाड़ा मचाया। अपनी सास गिन्नी के पास जा कर नालिश की। गिन्नी ने कहा, 'तुम तो बेटी, बिल्कुल पागल हो। क्या ब्राह्मण का लड़का मल्लाह लड़की से ब्याह कर सकता है? तुम्हें सब लोग चिढ़ाते हैं। तुम भी चिढ़ाओ।'

नयन-बहू की समझ में फिर भी न आया। बोली, 'अगर सचमुच ही ब्याह कर लिया हो तब?'

गिन्नी बोली, 'अगर सच ही हो, तो बहू को बुला कर घर में रखूँ गी। बेटे की बहू को निकाल तो न दूँ गी?'

उसी समय व्रजेश्वर वहाँ आ गया। देखते ही नयन-बहू उठ कर भाग गई। व्रजेश्वर ने पूछा, 'माँ, क्या कह रही थी?'

'यही कह रही थी कि अगर तुम फिर ब्याह करो गे, तो मैं बहू को ला कर घर में रखूँ गी।'

व्रजेश्वर अनमना हो कर, बिना कुछ बोले, चुपचाप चला गया।

शाम को जब हरवल्लभ खाना खा रहे थे तो गिन्नी ठकुरानी ने पंखा झलते-झलते इस बात की चर्चा की।

स्वामी ने पूछा, 'तुम्हारे मन में क्या है?'

'मैं क्या कहूँ? सागर-बहू से घर तो चले गा नहीं। नयन बहू, बेटे के योग्य नहीं है। सो अगर एक अच्छी सी बहू देख कर यदि व्रज ब्याह कर के घर का भार उठा ले, तो मैं सुखी होऊँ गी।'

'तो, अगर लड़के का वैसा मन समझना तो मुझे बताना। मैं घटक से कह कर अच्छा सम्बन्ध देखूँ गा।'

'अच्छा, मैं उसका मन टटोल कर देखूँ गी।'

मन टटोलने का भार बूढ़ी माँ पर पड़ा। बूढ़ी माँ ने विरह-संतप्त और विवाह-सम्बन्धी राजकुमारों की कई कहानियाँ व्रज को सुनाईं। वह व्रज के मन की थाह न पा सकी। तब बूढ़ी ने साफ-साफ पूछा। तब भी कुछ पता न लग सका। व्रजेश्वर ने बस यही कहा, 'बाप-माँ मुझे जो भी आज्ञा दें गे, मैं उसी का पालन करूँ गा।'

तीसरा भाग

| १ |

वैशाख शुक्ला सप्तमी आ गई। लेकिन देवी रानी के ऋण-वापसी का कोई प्रयास नहीं किया। हरवल्लभ चाहते तो आसानी से रुपये जुटा कर देवी का ऋण चुका दे सकते थे। इस ओर से उन्हें नितान्त निश्चेष्ट देख कर ब्रजेश्वर ने दो चार बार इसकी चर्चा चलाई। लेकिन हरवल्लभ ने समय आने पर देखा जाय गा—कह कर टाल दिया। अब वैशाख शुक्ला सप्तमी को जब दो-चार ही दिन रह गये तो ब्रजेश्वर पिता को तंग करने लगा। हरवल्लभ ने कहा, 'ठीक है, परेशान मत हो। मैं रुपयों के जुगाड़ में ही जा रहा हूँ। छठ को मैं लौट आऊँगा।' कह कर हरवल्लभ पालकी पर सवार हो, रसोइया, नौकर और दो मजबूत सिपाहियों को साथ ले कर रवाना हुए।

हरवल्लभ रुपये की खोज में जाने की बात कह गये थे, लेकिन उनके मन में कुछ और ही था। वह सीधे रंगपुर गये और कलक्टर साहब से मिले। उन दिनों कलक्टर ही शांतिरक्षक थे। हरवल्लभ ने उनसे कहा, 'मेरे साथ सिपाही भेजिए, मैं देवी चौधरानी को पकड़वा दूँगा। और अगर मैं उसे पकड़वा दूँ तो क्या पुरस्कार दीजिएगा, बताइए।'

सुन कर साहब प्रसन्न हो उठा। वह समझता था कि देवी चौधरानी डाकू-दल की नेत्री है। उसे पकड़ने से और सभी डाकू अपने आप पकड़ जाएँ गे। उन्होंने देवी को पकड़ने का कई बार निरर्थक प्रयास किया था। अत: हरबल्लभ से देवी को पकड़वाने की बात सुन कर साहब बहुत ही प्रसन्न हुए। उन्होंने हरबल्लभ को पुरस्कार देने की बात कही। तब हर बल्लभ ने कहा, 'मेरे साथ पाँच सौ सिपाहियों को जाने का हुक्म दीजिये।' साहब ने स हर्ष सिपाहियों को आदेश दिया। लेफ्टिनेंट ब्रेनन साहब, हरबल्लभ और सिपाहियों के साथ देवी को पकड़ने चल पड़े।

हरबल्लभ को ब्रजेश्वर द्वारा निश्चित रूप से पता लग चुका था कि देवीघाट पर देवी का बजरा रहे गा और उसमें देवी भी रहे गी। लेफ्टिनेंट उसे पकड़ने के लिये, पलटन ले कर, नाव पर सवार हो, उस घाट की ओर चल पड़े। उनके साथ जाने वाले पाँच जहाज सिपाहियों से भरे थे। लेफ्टिनेंट ने कुछ सिपाहियों को जंगल-जंगल छिप कर जाने को कहा। देवी की नाव कहाँ रहेंगी, इसका पता हरबल्लभ ने बता दिया था। वह अगर वहाँ नाव से उतर कर पास के जंगल में घुसने की चेष्टा करे गी तो उसे सिपाही घेर कर पकड़ लें गे। और भी दो-एक अड्डों पर लेफ्टिनेंट ने कुछ और भी सेना तैनात कर दी थी, ताकि किसी भी तरह देवी बच कर भाग न सके।

इस तरह एक सन्यासिनी—स्त्री को पकड़ने के लिये इतना विशाल आयोजन किया गया। अंग्रेज लोग ऐसे आडम्बर-आयोजन को व्यर्थ नहीं समझते थे। देवी सन्यासिनी हो या कुछ हो, उसके अधीन हजारों योद्धा हैं। कई बार कम्पनी के सिपाहियों को उनकी लाठी की चोट खा कर भागना पड़ा था। लोगों में ऐसा ही प्रचार था।

हाय, लाठी! तुम्हारे दिन चले गये! तुम साधारण बाँस के वंश की हो, लेकिन होशियार के हाथ में पड़ कर तुम न कर सको, ऐसा कोई काम नहीं। तुमने कितनी ही तलवारों के दो टुकड़े कर डाले हैं, कितनी ही ढालों के टुकड़े-टुकड़े कर दिये हैं! लेकिन हाय! बन्दूकें और संगीनें तुम्हारी चोट से योद्धाओं के हाथों से गिर पड़ी हैं। योद्धा घायल हाथ ले कर भागे हैं। लाठी! तुमने बंगाल की आबरू-इज्जत रखी है, मान रखा है, धन रखा है, धान रखा है, जन रखा है, मत रखा है। दुष्ट मुसलमान तुम्हारे भय से त्रस्त रहते थे, डाकू-लुटेरे तुम्हारी ज्वाला से घबराते थे, नीलहे भी तुम्हारे भय से निरस्त रहते थे। तुम्हीं उस जमाने की पिनलकोड थीं—तुम्हीं पिनलकोड की भाँति दुष्टों का दमन करती थीं। पिनलकोड की ही भाँति शिष्टजनों की भी खबर लेती थीं और पिनलकोड की ही तरह राम के अपराध के लिए श्याम का सिर भी तोड़ती थीं। तब पिनलकोड से तुम्हारा महत्व ज्यादा था क्योंकि तुम्हारे ऊपर कोई अपील नहीं चलती थी। हाय! अब तुम्हारी वह महिमा नहीं रही! तुम्हें हटा कर पिनलकोड ने तुम्हारी जगह ले ली है। समाज-शासन का भार तुम्हारे हाथ से निकल कर उसके हाथ में चला गया है। तुम लाठी! अब लाठी नहीं रही, अब तुम बाँस-खण्ड-मात्र ही! अब तुम्हें छड़ित्व प्राप्त हो गया है। अब तुम सियार-कूकुरों से डरने वाले बाबू-वर्ग के हाथ की शोभा हो गई हो। अब तुम्हारी पहले वाली महिमा नहीं है। सुनता हूँ, कि उन दिनों तुम एक अच्छी दवा भी थीं। मानसिक रोग के उत्तम चिकित्सकों के मुँह से सुना है, 'मूर्खस्य लठ्यौषधम्।' अब तो मूर्खों की दवा है, 'बाबू' 'भैया'—इस पर भी अब रोग ठीक नहीं होता। तुम्हारे सगोत्र और सपिण्ड लोगों में अनेक गुण सुनता हूँ, जिन्हें सभी जानते हैं। लाठी! तुम्हारे जैसा और कोई नहीं। लेकिन अब तुम नहीं हो, अन्तर्हित हो चुकी हो। शायद तुम्हें अक्षय स्वर्ग प्राप्त हो गया है। तुम शायद इन्द्रलोक में जा कर

नन्दनकानन की पुष्प-भार से झुकी पारिजात की डाली का सहारा बन गई हो, और शायद देव-कन्यायें तुम्हारी ही सहायता से कल्पवृक्ष से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष, चारों फल तोड़ती हैं। एकाध फल कभी-कभी धरती पर भी लुढ़क आता है।

|२|

जिसकी लाठी के डर से इतने सिपाही आ कर इकट्ठे हुए थे, उसके पास एक भी लाठी न थी। पास में एक भी लठैत न था। देवी रानी उसी घाट पर, जहाँ बजरा रोक कर उस दिन ब्रजेश्वर को बंदी बना कर रखा था, शाम होने से पहले ही आ पहुँची। वही बजरा था और वैसी ही सजावट थी। लेकिन उस दिन और आज में एक अन्तर था कि उस दिन बजरे के साथ जो डोंगी थी और जिस पर पचास लठैत बैठे थे, आज वह डोंगी न थी, न ही आज लठैत साथ थे। आज बजरे पर कोई पुरुष न था। मांझी, मल्लाह, रंगराज कोई न था। लेकिन बजरे का मस्तूल खड़ा था और हवा चलने के कारण पाल मस्तूल से लगा कर बाँध दिये गये थे। लंगर भी नहीं डाला गया था। सिर्फ नाव को किनारे के दो मजबूत खूँटों से बाँध दिया गया था।

देवी रानी आज उस दिन की भाँति कीमती आभूषणों व वस्त्रों से सजी न थीं। लेकिन आज एक दूसरे ही प्रकार की शोभा थी। ललाट, गाल, बाँह, वक्षस्थल आदि सभी अंग सुगंधित चंदन-चर्चित थे। चंदन-चर्चित ललाट पर सुगंधित फूलों की एक माला लिपटी थी और अपूर्व शोभा बढ़ा रही थी। हाथों में भी मात्र फूलों के कंगन थे, और कोई आभूषण न था। वह एक मोटी साड़ी पहने थी।

आज देवी उस दिन की तरह छत पर अकेली न थी—पास ही दो और स्त्रियाँ बैठी थीं। एक निशि और एक दिवा। इन्हीं तीनों स्त्रियों में बातें हो रही थीं।

दिवा अशिक्षिता थी बोली, 'हाँ, परमेश्वर को क्या प्रत्यक्ष देखा जा सकता है ?'

देवी ने कहा, 'नहीं, प्रत्यक्ष नहीं देखा जा सकता। मैं प्रत्यक्ष देखने की बात भी नहीं कह रही थी, मैं तो प्रत्यक्ष करने की बात कह रही थी। प्रत्यक्ष छ प्रकार का है। तुम जिस प्रत्यक्ष देखने की बात कहती हो, वह चाक्षुष प्रत्यक्ष है। यानी आँखों के सामने। मेरे गले की आवाज तुम सुन पा रही हो, मेरे गले की आवाज तुम्हारे लिए श्रवण-प्रत्यक्ष है, अर्थात कान से प्रत्यक्ष का आभास। मेरे हाथों के फूलों की सुगंध तुम्हारे नाक में जा रही है या नहीं ?'

८

दिवा बोली, 'हाँ।'

देवी ने कहा, 'यह तुम्हारा घ्राणज प्रत्यक्ष है। और अगर मैं तुम्हारे गाल पर एक तमाचा मारूँ, तुम मेरे हाथ को प्रत्यक्ष देखोगी—यह है त्वचा प्रत्यक्ष। और निशि अगर तुम्हारा दिमाग चाटे तो यह उसका रसना-प्रत्यक्ष होगा।'

दिवा ने कहा, 'सूक्ष्म प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। परमेश्वर को न तो देखा जा सकता है, न सुना जा सकता है, न सूँघा जा सकता है, न छुआ जा सकता है, न खाया जा सकता है। फिर उसे किस तरह प्रत्यक्ष कहा जा सकता है?'

निशि बोली, 'यह तो हुए सिर्फ पाँच प्रत्यक्ष। छ प्रकार के प्रत्यक्ष की बात कही है, क्योंकि आँख, कान, नाक, जीभ और त्वचा के अलावा और भी एक ज्ञानेन्द्रिय है, जानती हो?'

दिवा ने पूछा, 'क्या दाँत?'

निशि बोली, 'दूर हो मुँहजली! मन करता है कि ईंट से तेरे यह दाँत ही तोड़ दूँ।'

देवी ने हँस कर कहा, 'आँख आदि पाँच ज्ञानेद्रियाँ हैं, हाथ-पाँव आदि पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं और इन्द्रियों में श्रेष्ठ मन भी उभयेन्द्रिय है, यानी मन ज्ञानेद्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों है। मन के ज्ञानेन्द्रिय होने के कारण, उसके द्वारा जो प्रत्यक्ष—ज्ञान होता है, वह है मानस-प्रत्यक्ष। ईश्वर भी मानस-प्रत्यक्ष का विषय है।'

निशि ने कहा, 'ईश्वरासिद्धेः—प्रमाणाभावात्।'

जिसने भी सांख्यप्रवचन सूत्र और भाष्य पढ़ा है, वे निशि की इस व्यंग्योक्ति का मर्म समझें गे।

निशि प्रफुल्ल की एक तरह से सहपाठिनी थी।

प्रफुल्ल ने उत्तर दिया, 'सूत्रकारस्योमयेन्द्रियशून्यत्वात्—न तु प्रमाणभावात्।'

दिवा बोली, 'रखो अपने हवात-भवात को। मैं तो कभी परमेश्वर को मन के भीतर भी नहीं देख पाती।'

प्रफुल्ल ने कहा, 'अब फिर देखता। आँखों से प्रत्यक्ष देखना—और कोई प्रत्यक्ष देखना नहीं है क्या? क्या मानस-प्रत्यक्ष से नहीं देखा जा सकता? चाक्षुष-प्रत्यक्ष का विषय है—रूप, वहिर्विषय, मानस-प्रत्यक्ष का विषय—अन्तर्विषय। मन के द्वारा ईश्वर-प्रत्यक्ष हो सकता है। ईश्वर को देखा नहीं जा सकता।'

दिवा बोली, 'क्यों? तो ईश्वर को कभी भी मन के भीतर किसी तरह भी प्रत्यक्ष नहीं कर पाती।'

प्रफुल्ल ने कहा, 'मनुष्य की स्वाभाविक प्रत्यक्ष शक्ति बहुत क्षीण है, किसी सहायता या अवलम्बन के बिना सब चीजों को प्रत्यक्ष नहीं किया जा सकता।'

दिवा बोली, 'प्रत्यक्ष के लिए और किसी सहायता की क्या जरूरत है? देखो,

यह नदी, जल, पेड़-पालो, तारे, सभी को तो बिना किसी सहायता के ही मैं प्रत्यक्ष देख पा रही हूँ।'

'सभी नहीं। इसका एक उदाहरण दूँ ?'

प्रफुल्ल ने हँस कर कहा, उसे हँसते देख कर निशि ने पूछा, 'क्या हुआ ?'

प्रफुल्ल कहने लगी, 'अंग्रेजों के सिपाही आज मुझे पकड़ने आ रहे हैं, जानती हूँ ?'

दिवा दीर्घ निश्वास छोड़ कर बोली, 'सो तो जानती हूँ।'

प्रफुल्ल ने कहा, 'सिपाही को तो प्रत्यक्ष देख रही हो।'

दिवा ने कहा, 'नहीं अभी नहीं, लेकिन आने पर देखूँ गी।'

प्रफुल्ल बोली, 'लेकिन मैं कहती हूँ। आ गया है, लेकिन बिना सहायता के प्रत्यक्ष रूप में नहीं देख सकतीं। यही सहायता स्वीकार करो।'

कह कर प्रफुल्ल ने प्रभा को दूरबीन पकड़ा दी। ठीक किस ओर देखना हो गा, उस ओर भी दिखा दिया। दिवा ने देखा।

देवी ने पूछा, 'क्या देखा ?'

दिवा बोली, 'एक डोंगी। उस पर बहुत से आदमी बैठे दिख रहे हैं।'

देवी ने कहा, 'वे सब सिपाही हैं। देखो।'

इस तरह देवी ने दिवा को चारो ओर विभिन्न स्थानों पर डोंगियाँ दिखलाईं। निशि ने भी देखा। निशि ने पूछा, 'नावों को चारो ओर ही देख रही हूँ। जब वे हमें पकड़ने आ रहे हैं, तब हमारे पास न आ कर फिर क्यों नावों को किनारे पर लगा दिया है ?'

देवी बोली, 'लगता है, जंगल के रास्ते जो सब सिपाही आ रहे हैं। वे अभी नहीं आए हैं। नावों के सिपाहियों को उनके आने की प्रतीक्षा है। जंगल-पथ से आने वाले सिपाहियों के आने के पहले, नाव के सिपाहियों के आगे आ जाने से, मैं जंगल के रास्ते भाग जा सकती हूँ, इसी शंका से वे आगे नहीं आ रहे हैं।'

दिवा बोली, 'लेकिन हम तो उन्हें देख ही पा रहे हैं। मन में आए तो अभी भी भाग सकते हैं।'

देवी ने कहा, 'यह तो वे नहीं जानते कि हमारे पास दूरबीन भी है।'

निशि बोली, 'बहन, प्राण बचे रहेंगे तो एक न एक दिन स्वामी के साथ जरूर ही भेंट हो गी। आज जंगल में चल कर प्राण रक्षा करो। अभी तक यदि जंगल पथ से सिपाही नहीं आए हैं तो अभी भी जंगल में चलने से प्राण रक्षा का उपाय है।'

देवी बोली, 'अगर मुझे प्राणों का इतना मोह रहता तो मैं सब बातें जान कर भी यहाँ भला क्यों आती ? अगर आई हूँ, तो फिर सभी लोगों को क्यों विदा कर दिया ? हमारे हजारों बरकंदाज हैं—उन सब को दूसरे स्थान पर क्यों भेज दिया ?'

दिवा ने कहा, 'यदि मैं यह बात पहले से जानती तो चाहे जो भी होता, तुम्हें ऐसा काम कभी न करने देती।'

देवी बोली, 'तुम्हारी इतनी शक्ति नहीं, दिवा, कि तुम मुझे रोक लेतीं। मैं जो निश्चय करती हूँ, उसे अवश्य ही पूरा करती हूँ। आज स्वामी के दर्शन करूँगी, स्मामी की अनुमति ले कर, जन्मान्तर में उन्हीं को पाने की कामना कर के, प्राण समर्पण करूँगी। तुम दोनों मेरी बातें सुनो, दिवा, निशि ! मेरे स्वामी जब लौट कर जाने लगें, तो उनकी नाव में बैठ कर तुम दोनों उन्हीं के साथ चली जाना। मैं अकेली ही गिरफ्तार होऊँ गी। अकेली ही फाँसी चढ़ूँगी। इसीलिए मैंने बजरे से सब लोगों को विदा कर दिया है। तुम दोनों तब नहीं गई। लेकिन मुझे यही भिक्षा दो—कि तुम दोनों मेरे स्वामी की नाव पर चढ़ कर चली जाना।'

निशि ने कहा, 'जब तक प्राण हैं, तुम्हें नहीं छोड़ूगी। मरना हो गा तो साथ ही मरूँ गी।'

'अच्छा, यह सब बातें अभी छोड़ो। मैं जो कह रही थी, पहले उसे खतम कर लूँ। जो तुम आँखों से नहीं देख सकतीं, उसे दूरबीन की सहायता से देख लिया, उसी तरह ईश्वर को मानस प्रत्यक्ष करने के लिए भी दूरबीन चाहिए।'

दिवाने पूछा, 'वह दूरबीन कैसी हैं ?'

'योग।'

'क्या, वही न्यास, प्राणायाम, कुम्भक, आसन···?'

'मैं इन्हें योग नहीं कहती। योग अभ्यास मात्र है। लेकिन सभी अभ्यास भी योग नहीं है। तुम अगर दूध-घी खाने का अभ्यास करो, उसे तो योग नहीं कहेंगे न ! तीन तरह के अभ्यास को ही योग कहते हैं।'

'तीन कौन-कौन ?'

'ज्ञान, कर्म, भक्ति। ज्ञानयोग, कर्मयोग, भक्तियोग।'

तब तक निशि दूरबीन लेकर इधर-उधर देख रही थी। देखते-देखते बोली, 'अभी तो मैं नया योग देख रही हूँ।'

'कैसा नया योग ? क्या देखा ?'

निशि बोली, 'एक डोंगी आ रही हैं। लगता है अंग्रेजों के अदमी हैं।'

प्रफुल्ल ने निशि के हाथ से दूरबीन ले कर डोंगी को देखा। बोली, 'यही मेरा सुयोग है, वे ही आ रहे हैं। तुम लोग नीचे आओ।'

निशि और दिवा नीचे कमरे में चली गईं। डोंगी आ कर बजरे से लगी। उस डोंगी में था ब्रजेश्वर। वह डोंगी से बजरे पर आया। नाव को वहीं बाँध रखने का आदेश दिया। मल्लाहों ने वही किया।

ब्रजेश्वर पास आया, प्रफुल्ल ने उठ कर, सिर झुकाए हुए उसकी पदधूलि ली। फिर दोनों बैठ गये तो ब्रजेश्वर बोला, 'आज रुपये नहीं ला सका हूँ, लगता है दो-चार दिनों बाद दे सकूँ गा। दो-चार दिनों बाद तुमसे कहाँ भेंट हो सके गी, यही जानना चाहता हूँ।'

आह ! छि:, छि: ! ब्रजेश्वर ! दस वर्ष के बाद मिलने पर प्रफुल्ल से यह कैसी बातें ?

देवी ने उत्तर दिया, 'मुझसे अब भेंट नहीं हो सके गी···' कहते-कहते देवी का गला रुँध गया। देवी ने एक बार आँखें पोंछ कर कहा, 'मुझसे अब भेंट नहीं होगी, लेकिन मेरा धन लौटाने का दूसरा भी उपाय है। जब सुविधा हो, यह धन गरीब-दुखियों में बाँट देना। बस, समझना मैं पा गई।'

ब्रजेश्वर ने देवी का हाथ पकड़ लिया। बोला, 'प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया···'

खाक रुपया ! बात पूरी नहीं हुई। मुँह की बात मुँह में ही रह गई। ब्रजेश्वर ने 'प्रफुल्ल' कह कर हाथ पकड़ा, तभी प्रफुल्ल का दस साल का बँधा बाँध टूट गया, आँखों से आँसू की धारा बहने लगी। ब्रजेश्वर की रुपये की बात उसी धारा में बह गई। तेजस्विनी देवी रानी छोटे बच्चे की तरह बिलख कर रो पड़ी। उस क्षण ब्रजेश्वर बड़ा विपन्न हो उठा। उसके मन में हो रहा था—यह पापीयसी डाके डाल कर खाती है, इसके लिए एक बूँद आँसू भी नष्ट न करूँगा, लेकिन आँसुओं को इतनी विधि व्यवस्था मालूम न थी, वे अनायास ही आ कर ब्रजेश्वर की आँखों में छलछला उठे। ब्रजेश्वर ने सोचा, हाथ उठा कर आँखें पोंछने से भेद खुल जायगा। इसी से उसने आँखें नहीं पोंछी। आँखें जब नहीं पोंछी तो तालाब उमड़ चला, गालों पर धाराएँ बह चलीं, प्रफुल्ल के हाथ पर भी गिरीं।

बालू का बाँध टूट गया। ब्रजेश्वर सोच कर आया था कि डाके डालने के लिए वह प्रफुल्ल का खूब ही तिरस्कार करे गा। उसे पापीयसी कहे गा। और भी दो-चार लम्बी-चौड़ी बातें कह कर फिर उसे जन्म भर के लिए त्याग कर चला आए गा। लेकिन रो कर जिसका हाथ भिगा दिया, उससे क्या अब लम्बी-चौड़ी बात कही जा सकती है ?

तब आँखें पोंछ कर ब्रजेश्वर ने कहा, 'देखो प्रफुल्ल ! तुम्हारा रुपया, मेरा रुपया—उन्हें लौटाने के लिए मैं क्यों दुखी होऊँ ? लेकिन मैं बहुत दुखी हुआ हूँ। मैं दस वर्ष से तुम्हारी ही चिन्ता में डूबा रहा हूँ। मेरे और भी दो स्त्रियाँ हैं, लेकिन उन्हें मैंने कभी स्त्री समझ कर मन में जगह नहीं दी, तुम्हें ही अपनी स्त्री माना है। ऐसा क्यों समझता हूँ, यह तुम्हें नहीं समझा सकता। सुना था कि तुम नहीं हो। लेकिन तुम मेरे मन में सदा बनी रही हो। इतने पर भी मेरे मन में सदा यही था कि तुम्हीं मेरी स्त्री हो, मन में और किसी का स्थान न था। कहने का मन नहीं था, लेकिन कहने में भी कोई हानि नहीं। यह सुन कर कि तुम मर गई हो, मैंने भी मरने का निश्चय किया था। अब सोचता हूँ, मरना ही ठीक था, तुम मर जातीं तो ही ठीक था। चाहे तुम नहीं भी

मरीं, तो मैं ही क्यों नहीं मर गया ? अब जो कुछ सुना है, समझा है, सो तो न सुनना पड़ता, न समझना पड़ता। आज दस वर्षों बाद खोया धन तुम्हें पाया है। तुम्हें पा कर मुझे स्वर्ग-सुख से अधिक सुख मिलता। सो न हो कर, प्रफुल्ल, आज तुम्हें पाकर मर्मन्तक यन्त्रणा हुई है।' इतना कह कर थोड़ा रुक कर, एक आँसू टपका कर, सिर पर हाथ रख कर ब्रजेश्वर बोला, 'मन मंदिर के भीतर सोने की प्रतिमा गढ़ रखी थी—मेरी वही प्रफुल्ल—उस प्रफुल्ल की यह वृत्ति !'

'क्या ? डकैती करती हूँ ?'

'क्या नहीं करती हो ?'

उसके उत्तर में प्रफुल्ल बात कह सकती थी। जब ब्रजेश्वर के पिता ने प्रफुल्ल को जन्म भर के लिए घर से निकाल दिया था, तब प्रफुल्ल ने कातर हो कर श्वसुर से पुछवाया था—'मैं क्या खाऊँगी ?' तब श्वसुर ने उत्तर दिया था—'चोरी डकैती कर के खाना।' प्रफुल्ल मेधाविनी—यह बात कभी भूल न पाई। भूलने लायक बात भी न थी। आज ब्रजेश्वर डकैतिन कह कर प्रफुल्ल की भत्सना कर रहा है, आज प्रफुल्ल वही उत्तर देती। उसके पास उत्तर था—'मैं डकैतिन हूँ, तो इसके लिए इतनी भर्त्सना क्यों ? तुम्हीं लोगों ने तो चोरी-डकैती कर के खाने को कहा था। मैं तो गुरूजनों की ही आज्ञा का पालन कर रही हूँ।' लेकिन इस उत्तर को रोक रखना ही यथार्थ पुण्य था। प्रफुल्ल ने वही पुण्य-संचय किया—वह उत्तर मुँह पर नहीं आने दिया। प्रफुल्ल ने स्वामी के सामने हाथ जोड़ कर यह उत्तर दिया, बोली, 'मैं डकैत नहीं हूँ। मैं तुम्हारे सामने शपथ के साथ कहती हूँ कि मैंने कभी डकैती नहीं की। न डकैती का कभी एक पैसा भी छुआ है। तुम मेरे देवता हो और देवाताओं की पूजा करना मैंने सीखना चाहा, पर सीख न सकी। तुम्हीं ने सभी देवाताओं के स्थानों पर अधिकार कर रखा था, तुम्हीं मेरे एकमात्र देवता हो। मैं तुम्हारे सामने शपथ पूर्वक कहती हूँ—मैं डकैत नहीं हूँ। लोग मुझे डाकू कहते हैं। क्यों कहते हैं, यह भी जानती हूँ। यही बातें आज तुम्हें मुझसे सुननी पड़ें गी। यही बात कहने के लिए आज मैं यहाँ आई हूँ। आज नहीं सुनो गे तो फिर और कभी भी न सुन, सको गे। सुनो मैं कहती हूँ।'

जिस दिन ससुराल से प्रफुल्ल निकाल दी गई थी, उस दिन से आज तक की उसने अपनी समस्त कहानी कही। सुन कर ब्रजेश्वर विस्मित लज्जित, अतिशय आल्हादित, और महिमामयी स्त्री के सामने कुछ डरा। प्रफुल्ल ने बात समाप्त कर के पूछा, 'मेरी कथा पर विश्वास किया या नहीं ?'

अविश्वास की जगह न थी—प्रफुल्ल की कथा ब्रजेश्वर के हाड़-हाड़ में बह गई। ब्रजेश्वर कोई उत्तर न दे पाया—लेकिन उसके चेहरे की आनन्दपूर्ण कांति देख कर प्रफुल्ल ससझी, विश्वास हुआ है। तब प्रफुल्ल कहने लगी, 'अब पाँवों की धूल दे कर इस जन्म के लिए मुझे विदा कीजिए। अब इसमें तनिक भी देरी मत कीजिए।

सामने विघ्न उपस्थित है। आप को दस वर्षों बाद पा कर भी बस इतनी ही प्रार्थना कर के विदा हो रही हूँ, आप समझ जाएँ गे कि विघ्न साधारण नहीं है। मेरी दो सखियाँ इसी बजरे में हैं। वे बड़ी गुणवती हैं, उन्हें मैं खूब प्यार करती हूँ। अपनी नौका पर उन्हें लिए जाना। घर पहुँच कर वे जहाँ जाना चाहें भिजवा देना। हमारे मन में जिस तरह बसे रहे हो, उसी तरह बसे रहना।'

ब्रजेश्वर थोड़ी देर तक चुपचाप सोचता रहा। फिर बोला, 'मैं कुछ भी नहीं समझता कि यह सब क्या कह रही हो ? प्रफुल्ल ! मुझे समझाओ। तुम्हारे पास इतने लोग थे, सब कहाँ गये ? बजरे के मांझी तक नहीं हैं। सिर्फ दो स्त्रियाँ हैं उन्हें भी तुम विदा कर रही हो। कहती हो कि विघ्न पास ही आ गया है। मुझे भी रुकने के मना करती हो। कहती हो कि अब इस जन्म में भेंट न हो गी। यह सब क्या है ? कौन विघ्न है, सो नहीं कहा, मैं अब नहीं जाऊँ गा। विघ्न क्या है, सुन लेने पर भी चला ही जाऊँ गा कह नहीं सकता।'

प्रफुल्ल बोली, 'यह सब बातें आप के सुनने की नहीं हैं।'

'तो मैं तुम्हारा कोई नहीं हूँ।'

ठीक इसी समय 'द्रुम' की आवाज से गोली छूटने की आवाज आई।

|३|

द्रुम से बन्दूक की आवाज आई। ब्रजेश्वर के मुँह की बात मुँह में ही रही, दोनों जन चौंक कर सामने देखने लगे। देखा—दूर पर पाँच जहाज आ रहे थे, चाँदनी में चमकते जल पर स्पष्ट दिखा। फिर देखा कि पाँचों जहाजों सिपाहियों से भरे हैं। जंगल-मार्ग से भी सिपाही आ गये है, इसी के संकेत-हेतु यह बन्दूक की आवाज थी। सुन कर पाँचों जहाज खुल पड़े। देख कर प्रफुल्ल ने कहा, 'अब तुम यहाँ एक पल की भी देरी मत करो। जल्दी से अपनी नाव पर बैठ कर चले जाओ।'

'क्यों ? जहाज किसके हैं ? बन्दूक कैसी ?'

'क्या बिना सुने नहीं जाइए गा ?'

'किसी तरह भी नहीं।'

'इन जहाजों में कम्पनी के सिपाही हैं। यह बन्दूक की आवाज जंगल-मार्ग से आने वाले सिपाहो लोगों ने की है।'

'इतने सिपाही इधर क्यों आ रहे हैं ? तुम्हें पकड़ने ?'

प्रफुल्ल चुप रही। ब्रजेश्वर ने पूछा, 'तुम्हारी बातों से तो जान पड़ता है कि तुम यह पहले से ही जानती हो।'

'जानती हूँ—मेरे चर सर्वत्र फैले हैं।'

'इस घाट पर आ कर जाना, कि पहले से मालूम था ?'

'पहले से ही मालूम था।'

'तब जान-बूझ कर, यहाँ क्यों आई ?'

' एक बार और तुम्हें देखने के लिए।'

'तुम्हारे सब आदमी कहाँ हैं ?'

'सब को विदा कर दिया। मेरे लिए वे सब क्यों मरें ?'

'तो सचमुच पकड़ जाओ गी, तय कर लिया हैं ?'

'और बच कर भी क्या होगा ? तुम्हें देख लिया, तुमसे मन की बात कह ली, तुम मुझे प्यार करते हो, यह भी सुन लिया। मेरे पास जो थोड़ा सा धन था, वह भी बाँट कर समाप्त कर चुकी। और यहाँ रह कर क्या करूँ गी, या कौन सी साध मिटाऊँ गी ? और बचूँ क्यों ?'

बच कर मेरे घर चलो, मेरा घर करो।'

'सच कहते हो ?'

'तुमने मेरे सामने शपथ ली है, मैं भी तुम्हारे सामने शपथ लूँगा। यदि तुम आज अपने प्राण बचा लो तो मैं तुम्हें अपनी घरनी, गृहिणी बनाऊँ गा।'

'ससुर जी क्या कहें गे ?'

'अपने बाप से मैं निपट लूँ गा।'

'हाय ! यह बात कल क्यों नहीं सुन सकी ?'

'कल सुनतीं तो क्या होता ?'

'तब किसकी सामर्थ्य थी जो मुझे पकड़ने का साहस करता ?'

'अब ?'

'अब कोई उपाय नहीं ; तुम मांझी को पुकारो और निशि व दिवा को ले कर जल्दी से चले जाओ।'

ब्रजेश्वर ने अपने माँझी को पुकारा। वह भाग कर निकट आया। ब्रजेश्वर ने कहा, 'तुम लोग जल्दी से भागो। यह देखो कम्पनी का जहाज आ रहा है, तुम्हें देखेंगे तो बेगार में पकड़ लें गे। जल्दी भागो। मैं नहीं जाऊँ गा, यहीं रहूँ गा।'

डोंगी के माँझी महाशय ने कुछ सवाल जवाब न करके झटपट नौका खोली और भाग खड़े हुए। ब्रजेश्वर उनकी पहचान का था, रुपये की उन्होंने चिन्ता न की।

डोंगी चली गई देख कर प्रफुल्ल ने पूछा, 'तुम नहीं गये ?'

'क्यों ? तुम मरना जानती हों, मैं नहीं जानता क्या ? तुम मेरी स्त्री हो, मैं

तुम्हारा सौ वार त्याग कर सकता हूँ। लेकिन मैं तुम्हारा स्वामी हूँ—विपत्ति आने पर धर्मतः तुम्हारा रक्षक हूँ। मैं चाहे तुम्हारी रक्षा न कर सकूँ—तो भी क्या विपत्ति के समय तुम्हें छोड़ कर चला जाऊँ?

'तब मैं स्वीकार करती हूँ कि प्राण-रक्षा का यदि कोई भी उपाय होगा तो मैं करूँ गी।' यह कहते-कहते प्रफुल्ल ने आकाश की ओर देखा। वहाँ कुछ ऐसा दिखा, जिससे उसे कुछ आशा बँधी। फिर कुछ सोच कर बोली, लेकिन मेरे प्राण रक्षा में और भी एक अमंगल है।'

'क्या?'

'यह बात तुमसे कहने का मन नहीं होता। लेकिन अब बिना कहे चले गा भी नहीं। इन सिपाहियों के साथ मेरे ससुर आये हैं। यदि मैं पकड़ी नहीं जाऊँ गी तो वे विपत्ति में फँसें गे।'

ब्रजेश्वर सिहर उठा। उसने अपना सिर पीट लिया। बोला, 'क्या वही गोइन्दा हैं?'

प्रफुल्ल चुप हो रही। ब्रजेश्वर को समझने को कुछ बाकी न रहा। आज की रात में यहाँ देवी चौधरानी से भेंट हो गी, यह बात ब्रजेश्वर से ही हरवल्लभ ने सुनी थी। यह बात बाप के अलावा ब्रजेश्वर ने और किसी से नहीं कही है। देवी की बात और किसी के जनाने की संभावना भी न थी। फिर देवी के इस घाट पर आने के पहले ही कम्पनी के सिपाहियों ने रंगपुर से यात्री की थी, इसमें भी सन्देह नहीं, नहीं तो इतनी ही देर में वे सब यहाँ नहीं पहुँच सकते थे। इसके अलावा हरवल्लभ अपने बाहर आने का कोई खास कारण बताये बिना ही घर से निकले थे और अभी तक लौटे न थे। इन बातों का मतलब इतना गूढ़ न था कि ब्रजेश्वर की समझ में न आवे। इसीलिए हरवल्भ ने रुपये लौटाने का भी प्रयत्न नहीं किया। यद्यपि ब्रजेश्वर भूला न था—

'पित धर्मः पिता स्वर्गः पिताहि परमतपः।
पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः॥

ब्रजेश्वर प्रफुल्ल से बोला, 'मैं मर जाऊँ तो कोई हानि नहीं। तुम मरो गी, तो मेरे मरने से ज्यादा हानि कर होगा, लेकिन वह सब देखने को मैं नहीं रहूँ गा। तुम्हें अपनी आत्मरक्षा के पहले, मेरे तुच्छ प्राण की रक्षा के पहले, मेरे पिता की रक्षा करनी हो गी।'

'इस बारे में कोई चिन्ता नहीं। मेरी रक्षा नहीं हो सकती और उन पर कोई संकट नहीं आवे गा। वे चाहें तो आप की रक्षा हो सकती है। मैं यह वायदा करती हूँ कि उनके प्राण बचाने में सफल न होने तक मैं अपनी रक्षा का कोई उपाय नहीं करूँ गी। आप के कहने पर भी नहीं करूँ गी। आप निश्चिन्त रहें।'

यह बात देवी ने अन्तरतम से कही थी। हरवल्लभ ने ही प्रफुल्ल का सर्वनाश

किया था, अब भी उसका सर्वनाश करने में वे लगे हैं। फिर भी देवी उनकी मंगलाकाँक्षी है। क्योंकि प्रफुल्ल निष्काम है। उसका धर्म निष्काम है, किसका मंगल करना है, इसका विचार नहीं। मंगल हो सके तो जरूर हो।

लेकिन इसी समय किनारे के जंगल से गंभीर तूर्य-ध्वनि हुई।

दोनों ही चौंक उठे।

|४|

देवी ने पुकारा, 'निशि ?''

निशि छत पर आई।

देवी ने पूछा, 'यह तूर्य-नाद कैसा ?

'लगता है कि दाढ़ी वाले बाबा जी की…'

'रंगराज ?'

'लगता तो है।'

'ऐसा क्यों ? मैंने तो सबेरे रंगराज को देवीगढ़ भेजा था।'

'लगता है, रास्ते से लौट आये हैं।'

'तो रंगराज को पुकारो।'

ब्रजेश्वर बोला, 'तूर्य-नाद तो बहुत दूर पर हुआ है। यहाँ से पुकारने पर उसे सुनाई नहीं पड़े गा। मैं नीचे जा कर उसे खोज लाता हूँ।'

देवी ने कहा, 'सो सब आप को नहीं करना हो गा। तुम जरा नीचे जा कर निशि का कौशल देखो।'

निशि और ब्रज नीचे आये। नीचे जा कर निशि ने एक बाँसुरी निकाली। निशि संगीत में खूब पटु है। इसकी शिक्षा उसे राजवाड़ी में मिली थी। निशि ने ही देवी को वीणा सिखाई थी। निशि ने बंशी बजा कर मल्हार तान निकाली। सुनते ही रंगराज ने बजरे पर आ कर देवी को आर्शीवाद दिया।

इसी समय ब्रजेश्वर ने निशि से कहा, 'तुम छत पर जाओ। तुम्हारे सामने, वे लोग कोई बात नहीं छिपायें गे। क्या बातें हो रही हैं, सब सुन कर, आ कर मुझे बताना।'

निशि स्वीकृति में सिर हिला कर कमरे से बाहर गई। फिर बाहर से वापस आ कर ब्रजेश्वर से बोली, 'आप जरा बाहर आ कर देखिए।'

ब्रजेश्वर ने खिड़की से सिर निकाल कर देखा। देखा कि जंगल के भीतर से अनगिनत लोग निकलते आ रहे हैं। निशि से पूछा, 'ये लोग कौन हैं, सिपाही ?'

'लगता है सब उनके बरकन्दाज हैं। रंगराज लाये होंगे।'

देवी भी जंगल से निकलते आदमियों को देख रही थीं, तभी रंगराज ने आ कर आर्शीवाद दिया। देवी ने पूछा, 'तुम यहाँ कैसे, रंगराज ?

पहले तो रंगराज ने कोई उत्तर न दिया। देवी ने फिर पूछा, 'मैंने तो तुम्हें सवेरे देवीगढ़ भेजा था। वहाँ क्यों नहीं गये ? मेरी बात क्यों नहीं मानी ?'

'मैं देवीगढ़ जा रहा था—रास्ते में ठाकुर जी से भेंट हो गई।'

'भवानी ठाकुर ?'

'उन्हीं से सुना कि कम्पनी के सिपाही आप को पकड़ने आ रहे हैं। तब हम दोनों ही बरकन्दाज लोगों को जुटा कर ले आये। बरकन्दाजों को जंगल में छिपा कर मैं किनारे पर आया। जहाज आते देख कर मैंने तूर्य-नाद से संकेत दिया।'

'उस ओर, जंगल में कम्पनी के सिपाही हैं ?'

'हम लोगों ने उन्हें घेर रखा हैं।'

'ठाकुर जी कहाँ हैं ?'

'वे बरकन्दाजों के साथ आ रहे हैं।'

'तुम कितने बरकन्दाज लाये हो ?'

'लगभग हजार होंगे।'

'सिपाही कितने हैं ?'

'सुना हैं, पाँच सौ।'

'इन पन्द्रह सौ लोगों में लड़ाई हो तो कितने मरें गे ?'

'तब भी दो-चार सौ तो मर ही जायें गे।'

'ठाकुर जी से जा कर कहो, तुम भी सुनो, तुम लोगों के काम से आज मुझे मर्मांतक पीड़ा हुई है।'

'क्यों माँ ?'

'एक स्त्री की प्राणरक्षा के लिए तुमने इतने लोगों को मरवाने का प्रबन्ध कर दिया। तुम लोगों को क्या कुछ भी धर्म-ज्ञान नहीं है ? मेरी आयु पूरी हो चुकी है। मैं अकेली मरूँगी—मेरे लिए चार सौ आदमी क्यों मरें ? क्या तुम लोगों ने मुझे इतनी स्वार्थी समझा है कि इतने लोगों की जान ले कर मैं सपनी जान बचाऊँ गी ?'

'आप के बचने से ही अनेक लोगों की प्राण रक्षा हो सके गी।'

देवी क्रोध और घृणा से अधीर हो कर बोली, 'छि।'

इस धिक्कार से रंगराज ने सिर झुका लिया। सोचा—धरती फट जाये और मैं उसमें समा जाऊँ।

आँखें फाड़ कर देखते हुए, घृणा से ओठ फड़काते हुए, कहने लगी, 'सुनो, रंगराज, ठाकुर जी से जा कर कहो कि इसी समय सभी बरकन्दाजों को वापस भेज दें। क्षण भर भी देरी हो गी तो इसी पानी में कूद कर मैं जान दे दूँ गी, तुम भी न बचा सको गे।

रंगराज का दिल बहुत छोटा हो गया, बोला, 'मैं जाता हूँ। ठाकुर जी से यही सब बातें कहूँ गा। वे जो ठीक समझें गे, करें गे। मैं आप दोनों का आज्ञाकारी हूँ।

रंगराज चला गया। निशि छत पर खड़ी-खड़ी सब सुन रही थी। रंगराज चला गया तो देवी से बोली, 'ठीक है, अपनी जान के लिए तुम्हारी जो इच्छा हो करो। लेकिन और किसी को रोकने का तुम्हारा क्या अधिकार है ? आज तुम्हारे स्वामी हैं, उनका तो कोई ख्याल करो।'

'ख्याल किया है, बहन ! लेकिन सोच कर भी कुछ नहीं कर सकती। सिर्फ जगदीश्वर का भरोसा है। जो होना होगा, सो तो होगा ही, लेकिन चाहे जो हो निशि एक बात है कि अपने स्वामी के प्राण बचाने के लिए इतने लोगों के प्राण लेने का मुझे अधिकार नहीं है। मेरे स्वामी मेरे बड़े आदर के हैं—उनका कौन है ?'

मन ही मन निशि देवी को 'धन्य-धन्य' कह उठी। सोचा—इसी ने सार्थक निष्काम धर्म सीखा है। इसके साथ मरने में भी सुख है।

निशि ने जा कर सब बातें ब्रजेश्वर से बताईं। अब ब्रजेश्वर प्रफुल्ल को अपनी स्त्री के रूप में देखने का साहस न कर सका। मन ही मन सोचा—सचमुच यह देवी है। मैं तो नराधम हूँ। मैं इसे डाकू कह कर इसका तिरस्कार करने गया था !

इसी समय पाँच ओर से पांच जहाज बजरे के पास आ गये। प्रफुल्ल ने उनकी ओर आँख भी नहीं उठाई। पत्थर की मूर्ति की तरह बिना हिले-डुले छत पर बैठी रही। प्रफुल्ल न तो जहाजों को देख रही थी, न ही अपने बरकन्दाजों को। उसकी आँखें आकाश में दूर पर कुछ देख रही थीं। आकाश में दूर पर एक छोटा सा बादल का टुकड़ा था, काफी देर से दिखाई पड़ रहा था। प्रफुल्ल उसे ही देख रही थी। देखते-देखते उसे लगा कि वह धीरे-धीरे बढ़ रहा है। 'तब जय जगदीश्वर !' कह कर प्रफुल्ल छत से उतर कर नीचे आई।

प्रफुल्ल को भीतर आते देख कर निशि ने पूछा, 'अब क्या करो गी ?'

प्रफुल्ल ने कहा, 'अपने पति को बचाऊँ गी।'

'और तुम ?'

'मेरी बात अब मत पूछो। मैं जो कुछ बोलूँ, जो कुछ करूँ, उस पर तुम खूब ध्यान देना। हमारे तुम्हारे भाग्य में जो लिखा हो, लेकिन स्वामी को बचाना है,

दिवा को बचाना है, ससुर को बचाना है।' कह कर देवी ने एक शंख उठा कर फूँका !

निशि बोली, 'ठीक है।'

देवी बोली, 'ठीक हो या बेठीक, सोच कर देखना। जो करना है, सब तुम्हें बताए देती हूँ। तुम पर ही सब कुछ निर्भर है।'

|६|

चींटियों की पंक्तियों की भाँति बरकन्दाजों का दल त्रिस्त्रोता के जंगलों से बाहर निकलने लगा। सबों के सिर पर लाल पगड़ी, जाँघिया पहने, नंगे पाँव—पानी में घुस कर लड़ना होगा, सोच कर कोई जूता पहन कर नहीं आया। सभी के हाथों में ढाल-तलवार है, किसी-किसी के पास बन्दूक भी है लेकिन बंदूक की संख्या कम ही है। सभी की पीठ पर लाठी बँधी है—यही है बंगाल का जातीय हथियार। बंगाली ही इसका व्यवहार जानते हैं। अब लाठी को छोड़ कर बंगाली निर्जीव हो गये हैं।

बरकंदाजों ने देखा कि कम्पनी के जहाज बजरे के पास आ गये हैं। जहाज अब बजरा घेरने ही वाले हैं। तब बहुत से बरकन्दाज दौड़ कर बजरे के पास पहुँच कर, 'रानी जी की जय' का नारा लगा कर चारो ओर से बजरे को घेर कर खड़े हो गये।

जहाजों ने पास आ कर बजरे और बरकन्दाजों को भी घेर लिया।

जब प्रफुल्ल ने शंख फूँका था, तभी कितने ही बरकन्दाज आ कर बजरे पर डट गये थे। वे लोग अधिकांश में माँझी-मल्लाह थे, नाव खेते थे और जरूरत होने पर लाठी-भाला भी चलाते थे। उन लोगों वे अपनी ओर से लड़ाई की न तो कोई प्रवृत्ति दिखाई न ही चेष्टा की। कोई पतवार, कोई लग्गी, कोई पाल की रस्सी ले कर अपनी-अपनी जगह जा बैठे। इनके अलावा और भी बहुत से लठैत बजरे पर आ जुटे थे।

घाट पर तीन-चार सौ बरकन्दाज डटे रहे। वे लोग वहीं से कम्पनी के सिपाहियों पर तीर चलाने लगे। यह देख, बहुत से सिपाहियों ने जहाज से उतर कर, बंदूक, बर्छी ले कर उन पर आक्रमण करना शुरू किया और कुछ सिपाही बजरे के रक्षक बरकन्दाजों पर टूट पड़े। दोनों ओर से लड़ाई छिड़ गई। दोनों दल गुत्थमगुत्था करने लगे। मार-काट मच गई। 'मारो-मारो' 'पकड़ो-पकड़ो' की अवाजा से नदी का खामोश

किनारा व वन भूमि गूँज उठी। उधर तलवारें चल रही हैं। उधर बंदूकें गरज रही हैं, लठियाँ खटखटा रही हैं। किसी को किसी की बात नहीं सुनाई पड़ती, ऐसा शोर मचा। कोई आगे बढ़ता, कोई पीछे हटता, कोई घायल हो कर, चोट खा कर कहराता, कोई सदा के लिए त्रिस्त्रोता में जल-समाधि ले लेता है।

दूर से वार करने वाली लड़ाई में, सिपाहियों की बंदूकों के आगे लठैत लोग ज्यादा देर नहीं टिक पाते, क्योंकि दूर की लड़ाई में लाठी ज्यादा काम नहीं देती। लेकिन जहाज पर व बजरे पर, खुले में मुठभेड़ होने पर कम्पनी के सिपाहियों को बड़ी असुविधा हुई। जो लठैत नदी के किनारे लड़ रहे थे, सिपाही उन्हें बन्दूक और बर्छी की मार से हराने लगे, लेकिन जो पानी में लड़ रहे थे, वे बरकन्दाजों की लाठी और भाले की मार के आगे ठहर न पा कर पीछे हटने लगे थे।

प्रफुल्ल के छत पर से नीचे आने के कुछ देर बाद ही यह काण्ड शुरू हो गया था। प्रफुल्ल ने समझा कि शायद भवानी ठाकुर को मेरा सन्देश नहीं मिला या संदेश पा कर भी उन्होंने मेरी बात नहीं मानी। उन्होंने सोचा हो गा, मैं मर नहीं सकती। ठीक है, अब हमारा काम देखना।

देवी में साधना के कारण कितने ही चमत्कारी गुण पैदा हो गये थे। वह उन चीजों को अक्सर अपने पास रखती थीं, जिन्हें रखना वह जरूरी समझती थीं। इनके इस गुण का परिचय लोगों को पहले ही हो चुका था। देवी को अपने हाथ के पास ही एक सफेद झंडा मिल गया। वह उस झंडे को ले कर बाहर निकलीं और उसे ऊपर उठा कर खड़ी हो गईं। झंडा देखते ही एकदम से लड़ाई बन्द हो गई। जो जहाँ था, वह वहीं पर हथियार रोक कर खड़ा रह गया। लगा कि क्षण भर में ही वह भयानक हंगामा और तूफान शान्त हो गया।

देवी ने देखा कि ब्रजेश्वर उसके पास ही खड़ा है। जब युद्ध होते समय देवी बाहर निकली तो ब्रजेश्वर उसके पीछे-पीछे आ गया था। देवी ने कहा, 'आप इस झंडे को इसी तरह हाथ में ले कर खड़े रहें। मैं अभी भीतर से निशि व देवी से कुछ सलाह करके आती हूँ। रंगराज अगर आवे तो उससे कहिए गा कि वह दरवाजे के पास आ कर मेरी बात सुने।'

ब्रजेश्वर को झंडा पकड़ा कर देवी चली गई। ब्रजेश्वर झंडा लिए खड़ा रहा। ठीक तभी वहाँ रंगराज आ गये। ब्रजेश्वर के हाथ में सफेद झंडा देख कर उसने डपट कर कहा, 'तुमने किसके आदेश से यह सफेद झंडा दिखाया?'

ब्रजेश्वर बोला, 'रानी जी के आदेश से।'

'रानी जी का आदेश? तुम कौन हो?'

'क्या मुझे नहीं पहचानते?'

रंगराज ने ब्रजेश्वर के चेहरे को गौर से देख कर कहा, 'पहचान लिया।

व्रजेश्वर बाबू ! तुम यहाँ क्यों आये ? क्या बाप-बेटा दोनों एन ही काम से ? कोई है ? इसे फौरन बाँधो।'

रंगराज को व्रजेश्वर को देख कर यही संदेह हुआ कि हरवल्लभ की भाँति यह भी देवी को पकड़वाने के लिए किसी तिकड़म से बजरे पर चढ़ आया है। उसकी आवाज पर तत्काल ही दो आदमी व्रजेश्वर को बाँधने के लिए आये। व्रजेश्वर ने न तो कोई विरोध किया, न ही कोई आपत्ति की। कहा, 'मुझे बाँधो, इसके लिए मैं रोकूँ गा नहीं, लेकिन एक बात जरा मुझे समझा दो कि यह सफेद झंडा दिखाते ही यह लड़ाई क्यों बन्द हो गई ?'

रंगराज ने घुड़का, 'तुम तो बिल्कुल बच्चों की तरह बातें करते हो ? क्या इतना भी नहीं जानते कि सफेद झंडा दिखाने से अंगरेज लड़ाई नहीं करते ?'

'मैं यह सब क्या जानूँ ? फिर जानने या न जानने से कोई अन्तर भी नहीं पड़ता। मैंने अपने मन से यह काम किया है या रानी जी की आदेश से, यह तुम्हें जा कर उनसे पूछ लेना चाहिए। तुम्हारे लिए भी उनका आदेश है कि दरवाजे के पास जा कर रानी की बात सुन लो।'

रंगराज सीधे कमरे के दरवाजे पर जा खड़ा हुआ। कमरे का दरवाज भीतर से बन्द देख कर उसने बाहर से पुकरा, 'रानी जी ! क्या हुक्म है ?'

भीतर से जवाब आया, 'कौन है, रंगराज ?'

'जी हाँ ! एक सफेद झंडा अपने बजरे पर से दिखाया गया है, इसलिए लड़ाई बन्द हो गई है।'

भीतर से देवी की आवाज आई, 'वह मेरे आदेश से हुआ है। अब तुम यह सफेद झंडा ले कर कम्पनी के लेफ्टिनेंट साहब के पास जाओ और उनसे कहो कि और लड़ाई करने की जरूरत नहीं है, यों ही आ कर मुझे पकड़ लें।'

रंगराज ने कहा, 'माँ, शरीर में प्राण रहते मुझसे वह काम कभी न हो गा।'

'लेकिन रंगराज ! अब तुम लोग प्राण दे कर भी मेरी रक्षा नहीं कर सको गे।'

'तो भी आप के लिए जान दे दूँगा।

'सुनो, मूर्खों की जिद मत करो। अपनी जान दे कर भी अब मुझे नहीं बचा सको गे। इन सिपाहियों की दोनाली बन्दूक के मुकाबले तुम्हारा लाठी-सोंटा क्या करे गा ?'

'क्यों नहीं करे गा ? इस लाठी की बदौलत सब कुछ हो सकता है।'

'जाओ, जो जी में आवे, करो। अब अगर एक बूँद भी खून बहा तो मैं तत्काल अपनी हत्या कर लूँगी। बाहर बन्दूक की गोली के सामने जा खड़ी होऊँ गी। तुम लोग मेरी रक्षा नहीं कर सको गे। बल्कि अभी मैं पकड़ जाऊँ गी तो बाद में छूट जाने की भी आशा है। अच्छा होगा कि अभी हम लोग किसी भी तरह अपनी जान

बचा कर इस बात को यत्न करना चाहिए कि इनके चंगुल से छुटकारा मिले। मेरे पास बहुत रुपये हैं और कम्पनी के सभी नौकर रुपये के गुलाम है। इनके बंधन से मुक्ति पाने में कोई कठिनाई नहीं होगी। तुम इसकी चिन्ता मत करो।'

देवी ने भूल से भी कभी इस बात को मन में जगह नहीं दी कि वह घूस दे कर दुश्मन से छुटकरा पाना चाहती है। इस तरह भागने की भी उसकी इच्छा न थी। केवल रंगराज को बहकाने के लिए ही उसने यह बात कही थी। रंगराज की भला क्या मजाल कि वह रानी के मन की बात जान सके। रंगराज से रानी ने भेद की बात नहीं बताई। वह सीधे अपने को अंग्रेजों को सौंप दे गी, यही सब से बताया। लेकिन वह यह भी जानती थी कि अंग्रेज अपनी ही बेवकूफी से सब कुछ खो बैठें गे। उसने मन ही मन यह भी निश्चय कर रखा था कि वह शत्रु का कोई नुकसान न करे गी, बल्कि उन्हें सतर्क कर दे गी। इसके अलावा स्वामी, ससुर और सखियों के उद्धार के लिए जो भी आवश्यक कर्तव्य हो गा, वह भी अवश्य करे गी। जो कुछ भी करना है, देवी मानो सब कुछ अपने नख-दर्पण में देख रही थी।

रंगराज ने कहा, 'जो कुछ दे कर आप कम्पनी के नौकरों को अपने वश में करें गी, वह सब तो बजरे में ही है। आप को पकड़ने के साथ ही तो अंग्रेज लोग बजरे पर भी कब्जा कर लेंगे।

वह सब कुछ मत लेने देना। उनसे कहना कि देवी आत्मसमर्पण करें गी, लेकिन बजरा व बजरे में जो कुछ है, कुछ नहीं दें गी। बजरे में और भी जो लोग हैं, उनमें से किसी को वे गिरफ्तार नहीं कर सकें गे। बस इसी शर्त पर वह आत्मसमर्पण करने को राजी हैं।'

'अगर लेफ्टीनेंट मेरी बात न सुने तब ? अगर वह बजरा लूटने आवे ?'

'तो उसे रोक देना, ताकि वह बजरे में न आने पावे और बजरा न लूट सके। कहना कि बजरा छूने से ही अंग्रेज विपत्ति में फँस जायें गे। यदि वह इस बजरे पर आवे गा तो वह गिरफ्तार कर लिया जाय गा। जिस क्षण भी वह बजरे पर आने का प्रयत्न करेगा, उसी क्षण फिर लड़ाई छिड़ जाये गी। अगर वह मेरी बातें मानें तो कहना उसको यहाँ आने की जरूरत नहीं है, मैं ही उसके जहाज पर चली जाऊँ गी।'

रंगराज समझ गया। रानी की बातों में जरूरी ही कोई रहस्य है। वह दूत बन जाने को तैयार हुआ। देवी ने पूछा, 'भवानी ठाकुर कहाँ हैं ?'

'वे घाट पर बरकन्दाजों को साथ ले कर लड़ाई कर रहे हैं। मेरी बात शायद उन्होंने नहीं सुनी, इसीलिए अभी भी वहीं हैं।'

'तो पहले उन्हीं के पास जाओ और उनसे कहो कि सभी बरकन्दाजों को ले कर नदी के किनारे—किनारे वापस चले जायँ। मेरे बजरे पर थोड़े से लोगों का रहना ही काफी है। मेरी रक्षा के लिए अब युद्ध करने की जरूरत नहीं है। मेरी

प्राण-रक्षा का अब भगवान ने उपाय कर दिया है। अगर इतने पर भी वे आपत्ति करें तो उनसे आकाश की ओर देखने को कह देना, वे समझ जायेंगे।'

तब एक बार रंगराज ने स्वयं आकाश की ओर देखा। देखा कि वैसाख के नये काले बादलों से आकाश में अंधेरा छाता जा रहा था।

रंगराज ने कहा, 'एक निवेदन और है। हरवल्लभ गोइन्दा हो कर आया है। उसके पुत्र व्रजेश्वर को भी बजरे पर देखा है। लगता है कि वह भी किसी बुरी ही नियत से आया है। मैं उसे बाँध कर रखना चाहता हूँ।'

निशि और दिवा दोनों ही ठठा कर हँसीं। देवी ने कहा, 'नहीं बाँधना मत। अभी उन्हें छत पर जा कर चुपचाप बैठने को कहना। बाद में जब दिवा नीचे उतरने का आदेश देगी, तब वे अपने आप ही उतर आवेंगे।'

देवी के आदेनुसार रंगराज ने पहले व्रजेश्वर को छत पर बिठाया, फिर भवानी ठाकुर से जा कर सब कहा जो देवी ने कहा था। रंगराज ने उन्हें आकाश में छा छा रहे बादलों को दिखाया। भवानी ठाकुर ने देखा। फिर कोई आपत्ति न कर के सभी बरकन्दाजों को जुटा कर, उन्हें साथ लेकर त्रिस्त्रोता के किनारे-किनारे वापस लौटने को तैयार हुए।

इस समय निशि व दिवा बाहर आईं और मल्लाहों के रूप में बैठे लठैतों से खुसफुस जाने क्या कह गईं।

|६|

भवानी ठाकुर को समझा कर के रंगराज सफेद झंडा हाथ में ले कर कम्पनी के जहाज पर लेफ्टीनेंट साहब के पास गया। हाथ में सफेद झंडा देख कर कोई कुछ न बोला। साहब ने उसे आते देख कर पूछा, 'तुम सफेद झंडा लेकर आ रहे हो, क्या अधीनता स्वीकार करते हो?'

'हम अधीनता क्यों स्वीकार करें गे? आप जिन्हें पकड़ने आये हैं वे ही अधीनता स्वीकार करेंगी। मैं तो उन्हीं की बात कहने आया हूँ।'

'क्यों देवी चौधरानी आत्म-समर्पण करें गी?'

'हाँ, करेंगी। यही मुझसे कहलाया है।'

'और तुम लोग?'

'हम लोग कौन ?'

'देवी चौधरानी के दल वाले ।'

'नहीं, हम लोग आत्म-समर्पण नहीं करेंगे ।'

'हम तो देवी को उसके दल के साथ पकड़ने आये हैं ।'

'आप को दल से क्या मतलब ? क्या इन हजार बरकन्दाजों में, आप या कोई पहचान सकता है कि कौन देवी के दल का है और कौन नहीं ?'

जिस समय साहब और रंगराज में ये बातें हो रही थीं, उस समय तक भवानी ठाकुर गये न थे, बस जाने की तैयारी में थे । साहब ने कहा, 'ये सभी बरकन्दाज डाकू हैं । वे डाकुओं का पक्ष ले कर सरकार से लड़ रहे हैं ।'

'वे तो देखिए, वापस जा रहे हैं ।'

बरकन्दाजों को वापस जाते देख कर साहब एकाएक चिल्ला उठा । पूछा, 'क्या तुम लोग सफेद झंडा दिखा कर भागने की कोशिश कर रहे हो ?'

'आप ने उन्हें पकड़ा ही कब है, जो वे भागें गे ? अगर आप का ऐसा हौसला है, तो अभी भी कोई नहीं भागा है । हथियार उठाओ, मैं यह झंडा फेंके देता हूँ ।' कह कर रंगराज ने झंडा फेंक दिया ।

साहब का इशारा पा कर उसके सिपाही चुपचाप बैठे रहे । साहब सोच रहा था—इन लोगों का पीछा करना बेकार है । इनके पीछे दौड़ने से कोई लाभ नहीं है । ये तो गहरे व अंधेरे जंगल में घुस जायेंगे । एक तो रात का समय, फिर आकाश में भी बादल छा गये हैं । जंगल में जरूर अंधेरा होगा । फिर मेरे सिपाहियों को जंगल का रास्ता भी तो नहीं मालूम । इसीलिए इन्हें पकड़ पाना सिपाहियों के लिए संभव नहीं है । अतः साहब ने उन बरकन्दाजों को पकड़ने का इरादा त्याग दिया । कहा, 'जाने दो, मैं उन्हें गिरफ्तार भी नहीं करना चाहता । जो बात हो रही थी, बस उसी का निबटारा हो जाय । तुम लोग तो जो लोग देवी के संगी-साथी और मददगार हो तुम तो गिरफ्तार हो गे ही ।'

'नहीं, एक आदमी भी नहीं, सिर्फ देवी ।'

'हिस ! अब भला कौन लड़ेगा ? तुम लोग तो बस गिनती के ही रह गये हो । क्या तुम लोग हमारे पाँच सौ सिपाहियों का मुकबाला कर सकते हो ? देखता हूँ तुम्हारी फौज तो जंगल के भीतर चली गई ।'

'मैं यह सब नहीं जानता । मेरी देवी रानी ने मुझे जो कुछ कहने को कहा है वही कहे देता हूँ । बजरा नहीं मिलेगा । बजरे में जो थोड़ा बहुत सामान हे वह भी नहीं मिलेगा । हममें से भी किसी को आप नहीं पा सकेंगे ।'

'क्यों ?'

'मैं यह भी नहीं जानता ।'

'तुम जानो या मत जानो। यह बजरा तो हमारा हुआ। उसे हम अपने कब्जे में रखेंगे।'

'साहब आप लोग उस बजरे में पाँव मत रखना, न उसे छूना। नहीं तो आप लोग बड़ी विपत्ति में फँस जाओगे।'

'मेरे पाँच सौ सिपाहियों के रहते भला तुम चार-पाँच लोग हमारा क्या बिगाड़ सकते हो? कह कर साहब ने अपने आदमियों का आदेश दिया, 'बजरे को घेर लो।'

साहब के आदेश पर कम्पनी के पाँचों जहाज आगे बढ़े, और उन्होंने चारो ओर से बजरे को घेर लिया। तब साहब ने कहा, 'बजरे पर के सभी बरकन्दाजों के हथियार छीन लो।'

साहब ने लगभग गरजते हुए यह बात कही थी। उसे सुन कर देवी ने भी बजरे के भीतर से खूब बुलन्द आवाज में कहा, 'बजरे पर जिसके हाथ में भी हथियार हो, सब पानी में फेंक दो।'

सुनते ही जितनों के हाथों में जो हथियार थे, उन्होंने तत्काल उन्हें पानी में फेंक दिए। रंगराज ने भी हाथ की तलवार फेंक दी। यह देख कर साहब का चेहरा खिल उठा। बोले, 'चलो अब देखूँ, बजरे पर क्या है?'

रंगराज ने कहा, 'साहब आप मना करने पर भी बजरे पर जा रहे हो। बाद में मुझे दोष मत देना।'

'तुम्हें क्यों दोष दूँगा।' कहते हुए एक सिपाही को साथ ले कर साहब बजरे पर चले गये।

साहब बिल्कुल निडर गए, क्योंकि बजरे पर देवी के जो भी लठैत थे उन्होंने पहले ही अपने हथियार पानी में फेंक दिए थे। उन्होंने यह नहीं समझा कि देवी की स्थिर बुद्धि में महास्त्र है। उसे किसी और अस्त्र की जरूरत नहीं है।

रंगराज को साथ लिए साहब बजरे पर कमरे के दरवाजे पर आये। दरवाजा खुल गया और दोनों भीतर गये। भीतर जा कर उन्होंने जो कुछ देखा, उनके आश्चर्य की सीमा नहीं रही। दोनों ही चकित रह गये।

जिस दिन ब्रजेश्वर कैद हो कर बजरे में आया था, उस दिन कमरे की जैसी शोभा व सजावट थी, वैसी ही आज भी थी। आज भी दीवारों पर वैसे ही चित्र टँगे थे। वैसा ही सुन्दर गलीचा भी था, वैसे ही इत्रदान और गुलाबपाश थे, वैसी ही फूलदानों में फूल भी सजे थे, यानी सब कुछ उसी दिन की तरह था। फर्क सिर्फ इतना था कि आज एक की जगह दो मसनद थे। दोनों मसनदों के सहारे दो सुन्दरी, युवती स्त्रियाँ खूब गहने पहने, खूब सज बज कर बैठी थीं। साहब उन दोनों को नहीं जानते, लेकिन रंगराज ने देखते ही दोनों को पहचान लिया। एक निशि थी, एक दिवा।

साहब के लिए चाँदी की एक ऊँची कुरसी रखी थी। साहब उसी पर बैठे। रंगराज की दृष्टि चारों ओर देवी को खोजने लगी। उसने देखा कि कमरे के एक कोने में देवी खूब साधारण कपड़े पहने दुबकी खड़ी हैं। मोटे कपड़े की साड़ी और हाथ में मामूली चूड़ियाँ, बस। बाल भी खुलें। बदन पर गहनों या शृंगार के नाम पर कुछ भी नहीं।

साहब ने बैठते ही पूछा, 'देवी चौधरानी कौन हैं ? किससे बातें करूँ ?'

निशि बोली, 'मेरे साथ बातें कीजिए, मैं ही देवी चौधारानी हूँ।'

दिवा हँस कर बोली, 'अंग्रेज समझ कर क्यों तू इनके साथ मजाक करती है ? यह क्या हँसी-मजाक करने का मौका है ? कप्तान साहब ? मेरी इस बहिन की इसी तरह हँसी-मजाक की आदत है, समय-कुसमय भी नहीं देखती। आप मुझसे बातें कीजिए। मैं हूँ देवी चौधरानी।'

निशि ने कहा, 'तू मर जा ! क्या तू मेरे बदले खुद ही फाँसी चढ़ना चाहती है ?' फिर साहब की ओर संकेत कर के कहा, 'मेरी जान बचाने के लिए यह आप को भरमा रही है, लेकिन मैं क्यों चाहूँ गी कि मेरे बदले मेरी बहन फाँसी चढ़े ? क्या मैं बहन को मरवा कर खुद बचना चाहूँ गी ? यह मुझसे न होगा। फ़िर मेरी जान की कीमत ही क्या है ? हम हैं ब्राह्मण की बेटी, समय आने पर कभी भी जान दे सकती हूँ। चलिए, मुझे कहाँ ले चलिए गा, मैं तैयार हूँ। आप विश्वास कीजिए, मैं ही देवी चौधरानी हूँ।'

दिवा ने कहा, 'साहब, मैं आप के क्रिस्तान धर्म की दोहाई दे कर कहती हूँ कि आप इसे मत ले जाइए, यह निरपराध है। आप की अपराधिनी तो मैं हूँ।'

साहब नाराज हो कर रंगराज की ओर देख कर बोले, 'तुम सब क्या खेल कर रही हो ? बताओ, तुम दोनों में देवी चौधरानो कौन है ? ठीक-ठीक बताओ।'

रंगराज इस रहस्य का कोई मतलब नहीं समझ पाया। सिर्फ इतना ही समझ सका कि इस खेल के भीतर कुछ न कुछ कौशल जरूर है। अतः उसने दिवा की ओर दिखा कर कहा, 'हजूर, यही असली देवी हैं।'

तब कोने में खड़ी देवी ने दबी जुबान कहा, 'आप लोगों के बीच में बिना आज्ञा बोलना तो अपराध है, लेकिन मेरे न बोलने से भारी अनर्थ हो सकता है। क्या पता, बाद में बात खुले तो मुसीबत आवे, इसलिए कह रही हूँ। यह आदमी भी गलत बता रहा है। यह देवी नहीं है। यह आदमी देवी को माँ से बढ़ कर मानता और प्यार करता है। अतः असली देवी की जान बचाने को यह दूसरे को देवी कह रहा है।'

साहब ने खीझ कर देवी से पूछा, 'तो बताओ, देवी कौन है ?'

'देवी तो मैं ही हूँ।'

देवी के कहने पर और साहब को झंझट में पड़ा देख, रंगराज, निशि, दिवा,

सभी में भारी कोलाहल मचा। निशि कहती मैं हूँ देवी, दिवा कहती मैं हूँ देवी, रंगराज दिवा को देवी बताता और देवी कहती कि मैं देवी हूँ।

साहब के सामने बड़ी विषम समस्या उठ खड़ी हुई।

साहब ने सोचा कि इस झंझट का निवटारा कर ही डालना ठीक है। बोला, 'तुम्हीं दोनों में एक देवी है। वह तो नौकरानी है, वह देवी नहीं हो सकती। लेकिन तुम लोग यह हँगामा कर के मुझे असली देवी को पहचानने नहीं दे रही हो। लेकिन इस प्रकार तुम लोग मुझे बहका नहीं सकोगी। इस हँसी-मजाक का आखिर में यही नतीजा होगा कि मैं तुम दोनों को पकड़ ले जाऊँगा। फिर तुम दोनों में जो देवी पहचानी जायेगी, उसे फाँसी होगी। अगर तब भी ठीक से पहचान न हो गी तो दोनों को ही फाँसी दी जायेगी'

यह सुन कर निशि व दिवा दोनों ने कहा, 'इतना सब झंझट-वखेड़ा करने की भला क्या जरूरत है ? क्या आप के साथ कोई गोइन्दा नहीं है ? अगर हो तो उसे ही बुलवाइए, वही आप को बता देगा कि असली देवी चौधरानी कौन है।'

इस प्रस्ताव का प्रधान उद्देश्य था—हरवल्लभ को बजरे पर बुलवाना। हरवल्लभ की प्राण-रक्षा किए बिना देवी को अपनी रक्षा करना कभी स्वीकार न था। उसे अपने बजरे पर लाए बिना, उसकी रक्षा हो सकेगी—इसमें देवी को संदेह था।

निशि व दिवा की बात साहब को उचित ही जँची। उनके साथ-साथ जो एक सिपाही आया था, उससे साहब ने कहा, 'गोइन्दा को बुलाओ।'

सिपाही ने जहाज के एक जमादार को पुकार कर कहा, 'गोइन्दा को भेजना।'

बस, जहाज पर गोइन्दा के खोज की धूम मच गई। चारो ओर—गोइन्दा, गोइन्दा —की पुकार शुरू हो गई। कौन गोइन्दा है, कहाँ गोइन्दा है, यह किसी को नहीं मालूम। बस बिना जाने-बूझे ही सिपाही लोग—'गोइन्दा हाजिर, गोइन्दा हाजिर'—की पुकार करने लगे।

|७|

वस्तुतः हरवल्लभ राय महाशय युद्ध-क्षेत्र में ही उपस्थित थे, किन्तु अपनी इच्छा से नहीं, बल्कि संयोगवश। फिर पहले तो वह बहुत डरे। 'शृङ्गीणां चक्रपाणीनाम्' आदि चाणक्य के कहे सदुपदेश स्मरण कर के वे सिपाही के साथ बजरे में गये। एक दूसरी ही अलग नाव पर से, कप्तान साहब को दूर से [ही] बजरा दिखा कर, आधा

कोस दूर भाग कर जान बचाई थी। फिर जब देखा कि आकाश में काली घटा छा गई है, तब सोचा कि कहीं गहरे से पानी बरसा तो नाव अभी ही डूब जायगी। तब रुपये के लोभ में जान गँवानी पड़ेगी और सद्गति भी न हो गी। यही सोच कर राय महाशय नाव से उतर कर घाट पर आये। लेकिन जब वहाँ भी किसी को न देखा तो उन्हें बड़ा डर लगा। साँप का कर, बाघ का डर, चोर-डाकुओं का डर और भूत का भी डर लगने लगा। तब मन ही मन हरवल्लभ ने कहा—'मैं क्यों अपने आप यह आफत बुलाने गया था ? उसकी आँखों में आँसू आ गये। उनका मन रोने लगा।

इसी समय एकाएक बन्दूकों की आवाजें और सिपाही तथा बरकन्दाजों का शोर भी बन्द हो गया। हरवल्लभ ने समझा, जरूर ही कम्पनी के सिपाही जीत गए होंगे। वह डाकू सरदारनी भी पकड़ी गई होगी, तो नहीं लड़ाई कभी बन्द न होती। मन ही मन यही सब भरोसा पा कर हरवल्लभ युद्ध-स्थान की ओर जाने के लिए आगे बढ़े। लेकिन इस रास्ते में, इस अन्धकार में, इस घने जंगल में आगे बढ़ना मुश्किल जान कर उन्होंने माँझीं से पूछा, 'हाँ भाई माँझी, बताओ तो जरा! उधर जाने के लिए कैसे जाना होगा ?'

माँझी ने कहा, 'इसमें क्या सोचना है ? डोंगी में आइए न! मैं ले चलता हूँ। पर सिपाही लोग तो न मारेंगे या पकड़ें गे। और अगर लड़ाई छिड़ जाये ?'

हरवल्लभ बोले, 'सिपाही लोग हमसे नहीं बोल सकते। और अब लड़ाई भी नहीं होगी। डाकू लोग सब पकड़ गये हैं। लेकिन यह जिस तरह बादलों को देख रहा हूँ, कहीं बरसने लगे तो डोंगी ही डूब जा सकती है।'

'पानी बरसने से डोंगी नहीं डूबे गी।'

हरवल्लभ पहले तो माँझी की बात का विश्वास ही नहीं हुआ, लेकिन लाचार हो कर वे डोंगी पर चढ़े। माँझी से खूब किनारे-किनारे डोंगी ले चलने को कहा। मांझी ने वैसा ही किया। थोड़ी ही देर में डोंगी बजरे के पास आ गई। हरवल्लभ को सिपाहियों की संकेत-भाषा मालूम थी। सुन कर सिपाहियों ने कोई आपत्ति नहीं की। उसी समय वहाँ 'गोइन्दा-गोइन्दा' की पुकार हो रही थी। हरवल्लभ ने बजरे पर पैर रखते ही सामने के अर्दली से कहा, 'गोइन्दा की खोज हो रही है ? मैं हूँ गोइन्दा।'

अर्दली ने कहा, 'तुम्हें कप्तान साहब बुला रहे हैं।'

'वे कहाँ हैं ?'

'कमरे के भीतर। तुम भी कमरे के भीतर जाओ।'

हरवल्लभ के आने की सूचना पा कर देवी ने वहाँ से हट जाने के विचार से कहा, 'कप्तान साहब के लिए कुछ नाश्ता-पानी की व्यवस्था करूँ जा कर।' कह कर वह दूसरे कमरे में चली गई।

इसी समय हरवल्लभ कमरे की ओर गये। कमरे के द्वार पर ठहर कर उन्होंने

कमरे की सजावट और ऐश्वर्य, दिवा और निशि का रूप और शृङ्गार देख कर विस्मित हुए। उन्होंने साहब कों सलाम करने जा कर भूल से निशि को सलाम किया। तब निशि ने हँस कर कहा, 'बन्दगी खाँ साहब ! मिजाज शरीफ ?'

इसी समय दिवा बोंली, 'बन्दगी खाँ साहब ! आप ने मुझे सलाम नहीं किया ? मैं यहाँ की रानी हूँ।'

तभी साहब ने हरवल्लभ से कहा, 'धोंखा देने के लिए यह दोंनों ही कहती हैं कि हम देवी चौधरानी हैं। लेकिन कौन असली देवी है, यह पता नहीं चलता। तुम्हें इसीलिए बुलाया है। बताओ इनमें देवी कौन है ?'

हरवल्लभ भारी झंझट में पड़े। उनके पुरखों में भी किसी ने देवी कों न देखा था। क्या करते, अंदाज से पहचान कर निशि की ओंर उँगली उठा दी। तब दिवा खिलखिला कर हँस उठी। घबरा कर, 'भूल हों गई,' कह कर हरवल्लभ ने दिवा कों दिखाया। यह देख कर साहब एकबारगी गुस्सा हो गया, हरवल्लभ से कहा, 'तुम बडजाद-शुअर ! तोंम पहछाना नई ?'

तब दिवा बोंली, 'साहब नाराज न हों ? यह नहीं पहचानते। इनका लड़का पहचानता है। इनका लड़का बजरे की छत पर बैठा है, उसे बुलाइए, वही पहचानेगा।'

सुन कर हरवल्लभ तो आकाश से गिर पड़े। बोंले, 'मेरा लड़का ?'

दिवा बोली, 'सुना तों ऐसा ही है।'

'ब्रजेश्वर ?'

'हाँ, वही।'

'कहाँ ?'

'छत पर।'

'ब्रज यहाँ क्यों आया ?'

'यह वही कहेगा।'

साहब ने हुक्म दिया, 'उसे बुलाओ।'

दिवा ने रंगराज को इशारा किया। रंगराज ने छत पर जा कर ब्रजेश्वर से कहा, 'चलो, देवी ठकुरानी का हुकुम है।'

ब्रजेश्वर छत से उतर कर कमरे में आया। देवी की आज्ञा से यह बात पहले से बता दी गई थी कि वह हुकुम मिलने पर ही छत से उतरे। यह देवी की ही व्यवस्था थी।

साहब ने ब्रजेश्वर से पूछा, 'तुम देवी चौधरानी को पहचानते हों।'

'पहचानता हूँ।' ब्रजेश्वर ने कहा।

'यहाँ क्या देवी है ?'

'नहीं।'

अब साहब क्रोधांध हो उठा, बोला, 'यह क्या, क्या इन दोनों में कोई भी देवी चौधरानी नहीं है ?'

'यह दोनों ही उनकी दासियाँ हैं।'

'ओह ! तुम देवी को पहचानते हो ?

'अच्छी तरह।'

'यदि इनमें कोई देवी नहीं है तो जरूर ही देवी इसी बजरे में कहीं छिपी होगी। लगता है वह नौकरानी ही देवी है। मैं बजरे की तालाशी लूँगा, तुम्हें ही शिनाख्त करनी होगी। आओ मेरे साथ।'

'साहब, आप को बजरे की तालाशी लेनी हो तो लीजिए, मैं भला शिनाख्त क्यों करूँगा ?' ब्रजेश्वर ने कहा।

साहब पहले तो विस्मित हुए, फिर गरज कर बोले, 'क्यों वडजाद ! तोम गोंइन्दा नहीं ?'

'नहीं।' कह कर ब्रजेश्वर ने साहब के गाल पर कस कर एक तमाचा जमा दिया।

'क्या करते हो ? क्या करते हो ? सर्वनाश किया तुमने ?' कह कर हरवल्लभ रो उठा।

तभी बाहर से जमादार चिल्लाया, 'हुजूर ! तूफान उठा है !'

सों-सों कर के आकाश भयंकर वेग से आँधी के साथ गर्जन करने लगा।

कमरे के भीतर ठीक उसी घड़ी—उसी क्षण साहब के गाल पर ब्रजेश्वर का तमाचा पड़ा, ठीक उसी क्षण शंख बजा। फिर एक बार शंख बजा।

बजरा दो खूँटियों पर ही बँधा था—खूँटियों के पास दो मल्लाह भी बैठे थे। जैसे ही शंख बजा, वैसे ही खूँटियों से रस्सी खोल कर वे दोनों मल्लाह कूद कर बजरे पर सवार हो गये। किनारे पर जो सिपाही बजरा घेर कर खड़े थे, उन्होंने दोनों मल्लाहों पर बन्दूक उठाई—लेकिन उनके हाथों की बन्दूकें उनके हाथों में ही रह गईं। पलक झपकते ही एक भयानक काण्ड हो गया। देवी के कौशल से एक पल में ही कम्पनी के पाँच सौ सिपाही परास्त हो गये।

सब व्यवस्था पहले से ही थी। बजरे का पाल खोल दिया गया। निशि व दिवा मल्लाहों को पहले से ही तब समझा दिया था। उसी अनुसार दोनों मल्लाह खूँटियाँ पकड़ कर बैठे थे। चार मल्लाह और भी तैयार बैठे थे। शंख-ध्वनि सुनते ही सब सतर्क हो गए और चारो ओर पाल तान दिया। बजरा चल-पड़ा !

देवी का बजरा कैसे, किधर हो कर, कहाँ निकल गया, यह सिपाहियों को जैसे मालूम ही नहीं हो सका। हवा की तेजी, अंधेरी रात का सन्नाटा, देवी का बजरा देखते

देखते गायब हो गया । बजरा के भगाने की व्यवस्था देवी ने पहले से ही कर दी थी। किसी तरह का कोई गोल-माल नहीं हो पाया ।

साहब एकाएक क्या हो गया, कुछ समझ न पाया । ब्रजेश्वर के थप्पड़ के बदले साहब ने घूँसा मारने को हाथ उठाया, पर उसका साथ उठा का उठा रह गया । एक पल में ही यह सब काण्ड हो गया । हवा के झोंके और तीव्र गति के कारण बजरा ज्यों ही टेढ़ा हुआ कि मारने को उठाए हाथ के साथ ही साहब कुर्सी से लुढ़क कर दिवा सुन्दरी के पैरों पर जा गिरा । ब्रजेश्वर साहब को पीठ पर जा गिरा । और रंगराज उसके ऊपर गिरा । हरबल्लभ पहले तो लुढ़क कर निशि के पाँवों पर गिरा फिर वहाँ से जो लुढ़का तो सीधे जा कर रंगराज के चमरौधे जूते से आ लगा । उसने समझा कि बजरा डूब गया और सब लोग मर गये । अब दुर्गा-नाम जप कर भी क्या होगा ?

लेकिन नाव डूबी नहीं । टेढ़ी हो कर फिर सीधी हो गई और अनुकूल हवा पा कर तीर की तरह बढ़ चली । जो लोग लुढ़क कर गिरे थे, सभी संभल कर उठ बैठे । साहब ने ब्रजेश्वर पर घूँसा ताना । तभी शोर मच गया और वे मार न सके । साहब के जो सिपाही बजरा घेर कर पानी में खड़े थे, उनके माथे पर से हो कर बजरा सर्र से निकल गया । कुछ सिपाहियों ने पानी में गोता लगा कर प्राण-रक्षा की, कुछ बजरा आता देख कर भाग गये, कुछ बजरे से ठोकर खा कर घायल भी हुए । लेकिन कोई मरा नहीं । सिपाहियों की डोंगी, बजरा से धक्का खा कर डूब गयी । वहाँ पर पानी बहुत गहरा न था, न पानी का बहाव ही तेज था, इसी से सभी बच गये । लेकिन बजरा कहाँ गया, किधर गया, इसका किसी को पता नहीं लगा । अंग्रेजी सेना तितर-बितर हो गई ।

शत्रु-दल की आँखों में धूल झोंक कर देवी अपना बजरा ले कर उड़ गई । लेफ्टीनेंट साहब और हरबल्लभ दोनों ही देवी के यहाँ बन्दी बन गये । पलक झपकते ही युद्ध में देवी की जीत हो गई ।

तब आकाश की ओर देख कर देवी ने कहा, 'हमारी रक्षा का उपाय भगवान ही कर रहे हैं ।'

।८।

बजरा पानी को चीरता नक्षत्र-वेग से निकल गया । भयानक शब्द । पानी की लहरों के टकराने से भयानक आवाज । लेकिन बजरा बना था खूब मजबूत, नाविक भी दक्ष । बजरे में चारों ओर पाल तने थे, वह निर्विघ्न बहता गया । बजरे पर

सवार लोग, कद्दू-कोंहड़े की तरह जो लुढ़क रहे थे, अब स्थिर हो कर बैठ गये थे। हरबल्लभ राय महाशय अँगूठे में यज्ञोपवीत लपेट कर दुर्गा-नाम का जप करने लगे कि वे फिर न डूबें। लेफ्टीनेंट साहब ने देर से मुलतबी किये घूसे का प्रयोग करने को ज्यों ही हाथ उठाया, त्यों ही व्रजेश्वर ने उनका हाथ पकड़ लिया। हरबल्लभ ने बेटे को डाँटा, 'यह क्या करते हो ? अँग्रेज पर हाथ उठाते हो ?'

व्रजेश्वर बोला, 'मैं अँग्रेज पर हाथ उठा रहा हूँ या अंग्रेज मुझ पर हाथ चला रहा हूँ ?'

हरबल्लभ ने साहब से कहा, 'हुजूर ! यह बच्चा है। इसके अकल नहीं है, आप इसके अपराध पर ध्यान न दें माफ कीजिये।'

साहब बोले, 'यह बड़ा बदमाश है। यह यदि हाथ जोड़ कर मुझसे माफी माँगे तभी मैं माफ कर सकता हूँ।'

हरबल्लभ ने अपने बेटे से कहा, 'व्रज, वही करो बेटा ! हाथ जोड़ कर साहब से कहो, मुझे माफ कीजिये।'

व्रजेश्वर ने कहा, 'हम लोग हिन्दू हैं, साहब ! पिता की आज्ञा का हम कभी भी उल्लंघन नहीं करते। मैं आप से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करता हूँ कि हमें माफ कर दीजिए।'

साहब व्रजेश्वर की पितृभक्ति देख कर प्रसन्न हुआ। उसका हाथ पकड़ कर हिलाया। व्रजेश्वर के सात पुश्तों में भी कोई न जानता था कि 'शेकहैण्ड' क्या होता है। अत: व्रजेश्वर भौंचक्का सा रह गया। मन में सोचा—'क्या पता, अगर फिर झगड़ा हो जाय।' यही सोच कर वह बाहर जा कर बैठ गया। बाहर सिर्फ आँधी थी, वर्षा नहीं थी—भींगने का डर न था।

रंगराज भी बाहर आ कर कमरे का दरवाजा बन्द कर के किवाड़ से पीठ सटा-कर बैठ गया। दोनों ओर पहरेदार थे। वह विशेष सतर्क था क्योंकि इस समय बजरा बहुत तेजी से जा रहा था और हठात् कोई दुर्घटना हो जानी असंभव न थी।

दिवा उठ कर देवी के पास गई। बाहर के कमरे में रहना अब उसने जरूरी नहीं समझा। निशि बैठी ही रही—उसका कुछ और ही मतलब था। सर्वस्व तो उसका श्रीकृष्ण को अर्पित था, अत: अगाध साहस था।

साहब फिर चाँदी की कुर्सी पर जम कर बैठ गया था। वह सोच रहा था, अब डाकुओं के हाथ से कैसे छुटकारा हो ? जिसे पकड़ने आया था, उसी ने पकड़ लिया—स्त्री से पराजित होना पड़ा, अंग्रेजों के सामने अब क्या मुँह दिखाऊँगा ? अब तो मेरा न लौटना ही ठीक है।'

हरबल्लभ कहीं बैठने की जगह न पा कर निशि के मसनद के पास ही बैठ गया। देख कर निशि बोली, 'आप को क्या नींद आ रही है ?'

हरबल्लभ ने कहा, 'अब आज नींद क्या आयेगी ?'

'आज यदि नहीं आये गी तो फिर आये गी भी नहीं।'

'सो क्यों ?'

'और फिर सोने का समय कब पाइयेगा ?'

'क्यों ?'

'आप देवी चौधरानी को पकड़वाने आये थे न ?'

'यह···यह···कैसे जानती हो···'

'पकड़ जाती तो देवी का क्या होता, जानते हो ?'

'आ···ऐसा क्या ?'

'और कुछ नहीं, फाँसी !'

'तो···नहीं···ऐसा···ऐसा क्यों···?'

'देवी ने तो तुम्हारा कोई अनिष्ट नहीं किया। बल्कि भारी उपकार ही किया है—जब तुम्हारी जान जा रही थी, तब पचास हजार रुपये नगद दिए, तब तुम्हारी रक्षा की। इसके बदले तुमने उनकी फाँसी की चेष्टा की। तुम्हारे इस पाप के लिए दण्ड दिया जाय गा ?'

हरबल्लभ चुप ही रहा।

निशि ने फिर कहा, 'इसी से कह रही हूँ, इसी समय सो लो—और रात तुम्हें देखने को नहीं मिले गी। जानते हो बजरा कहाँ जा रहा है ?'

हरबल्लभ में बोलने की शक्ति ही न थी।

निशि ने कहा, 'डाकिनी श्मशान नाम का एक बहुत बड़ा श्मशान है। हम लोग जिसे प्राण-दण्ड देती हैं, वहीं ले जा कर उसे हम मारती हैं। इस समय बजरा वहीं जा रहा है। वहीं साहब की फाँसी दी जाय गी, रानी जी का आदेश हो चुका है। और तुम्हारे बारे में क्या आदेश हुआ है—जानते हो ?'

हरबल्लभ रोने लगा। हाथ जोड़ कर बोला, 'मेरी रक्षा करो।'

निशि बोली, 'तुम्हारी रक्षा करे, ऐसा पाखण्डी पामर कौन है ? तुम्हें शूली पर चढ़ाने का आदेश हुआ है।'

हरबल्लभ फुक्का फाड़ कर रो पड़ा। आँधी का भयानक शोर, इसलिए उसके रोने का शब्द ब्रजेश्वर व देवी कोई न सुन पाया। साहब ने सुना। साहब ने और कोई बात नहीं सुनी। सिर्फ रोना ही सुना, साहब ने डाँट कर कहा, 'रो मत, उल्लू। मरना तो एक रोज है ही !'

साहब की डाँट पर ध्यान न दे कर, निशि के सामने हाथ जोड़ कर वृद्ध ब्राह्मण रोने लगा। बोला, 'क्या ? मेरी रक्षा नहीं कर सकता ?'

'तुम जैसे नराधम को बचा कर कौन पाप का भागी बने गा ? हमारी रानी

दयामयी हैं, लेकिन तुम जैसे के लिए उनके पास दया की भिक्षा माँगने कौन जाय ?'

'मैं एक लाख रुपया दूँगा।'

'मुँह से कहते लज्जा नहीं आती ? पचास हजार रुपयों के लिये तो तुमने यह नीच काम किया, अब एक लाख रुपया ?'

'मुझे जो कहो गी, मैं वही करूँगा।'

'तुम जैसों से भला क्या काम हो सकता है, जो तुमसे कुछ करने को कहा जाय ?'

'अति-क्षुद्र से भी उपकार होता है, कहो न क्या करना होगा, मैं प्राणप्रण से करूँगा, मुझे बस बचा लो।'

निशि ने सोच कर कहा, 'तुमसे मेरा एक उपकार हो सकता है, लेकिन तुम्हारे जैसे आदमी से वह उपकार न हो तो ही अच्छा है।'

'मैं तुम्हारे सामने हाथ जोड़ता हूँ, तुम्हारे पाँव पकड़ता हूँ।' कह कर बहुत विह्वल हो कर हरवल्लभ ने निशि का पाँव पकड़ने को हाथ बढ़ाया, लेकिन सतर्क निशि ने अपने को सम्हाल लिया, पीछे खिसक गई, बोली, 'सावधान ! यह शरीर श्रीकृष्ण को समर्पित है। लेकिन तुम्हें पाँव पकड़ने की जरूरत नहीं है, लेकिन यदि तुम इतने कातर हो रहे हो तो जिससे तुम्हारी प्राण-रक्षा होगी वही उपाय करूँ गी। लेकिन जो कहूँ गी, तुम वही करो गे, ऐसा विश्वास नहीं होता। तुम धोखेबाज, कृतघ्न, कायर हो, गोइन्दागीरी करते हो, तुम्हारी बात का क्या विश्वास ?'

'जो भी कहो, मैं कसम खा लूँगा।'

'तुम्हारी कसम का क्या ठिकाना ? तुम क्या कसम खाओ गे ?'

'गंगाजल, ताँबा, तुलसी दो। मैं छू कर कसम खाऊँ गा।'

'तो ब्रजेश्वर के सिर पर हाथ रख कर कसम खाओ।'

हरवल्लभ गरज उठा। बोला, 'तुम्हारी जो इच्छा हो करो मैं यह कसम नहीं खाऊँ गा।'

लेकिन यह गर्मी क्षण-मात्र की ही थी। हरवल्लभ ने फौरन ही हाथ मलते हुए कहा, 'जो भी कसम खाने को कहो गी, वही खाऊँ गा, बस मेरी रक्षा करो।'

'अच्छा, कसम मत खाओ। तुम तो हमारे ही हाथ में हो, सुनो मैं कुलीन की बेटी हूँ। हमारे यहाँ वर मिलना बड़ा कठिन है। मेरे लिये किसी तरह एक पात्र जुटा था, लेकिन मेरी छोटी बहन के लिये नहीं जुट पाया। आज भी वह कुँवारी ही है।'

'क्या उम्र होगी ?'

'पच्चीस-तीस।'

'इस उम्र की तो बहुत कुलीन कन्यायें अविवाहित रहती हैं।'

'रहती हैं, लेकिन विवाह न होने से वे कुएँ में कूद कर जान दे दें, तो कोई आश्चर्य

नहीं है। तुम मेरे पिता की तरह हो ! तुम यदि मेरी बहन से विवाह कर लो, तो मेरे पिता का कुल बचे। तब मैं रानी जी से कह कर तुम्हारे प्राणों की उनसे भीख माँगू।'

हरवल्लभ को लगा कि उसके सिर पर से पहाड़ का बोझ उतर गया, सोचा, और एक विवाह कर लूँ तो हानि क्या है ? कुलीन के लिए यह कठिन काम नहीं है। निशि उससे जिस उत्तर की आशा करती थी, हरवल्लभ ने ठीक वही उत्तर दिया, बोला, 'यह कौन-सी बड़ी बात है ? कुलीन की मर्यादा कुलीन ही रखे गा। हाँ, एक बात जरूर है कि मैं बूढ़ा हो गया हूँ, मेरी अब विवाह की उम्र नहीं रही। यदि मेरा लड़का विवाह करे तो क्या नहीं होगा ?'

'वह राजी होगा ?'

'मैं कहूँ गा तो हो जाय गा।'

'तब कल सुबह उसे समझा कर लाइए गा। मैं आप के जाने के लिए पालकी-कहार का इन्तजाम कर दूँ गी और आप को घर भिजवा दूँ गी। आप पहले जा कर बहू-भात की व्यवस्था कीजिए गा। मैं यहाँ से विवाह करा के बहू के साथ आप के बेटे को भेजूँ गी।'

हरवल्लभ के हाथ में स्वर्ग आ गया। कहाँ तो शूली चढ़ रहे थे, कहाँ अब बहू-भात की स्थिति आ गई। हरवल्लभ से अब विलम्ब सहा न जा रहा था। बोला, 'तो तुम जा कर सब बातें रानी जी से कहो।'

'जाती हूँ !' कह कर वह दूसरे कमरे में चली गई।

निशि चली गई तो साहब ने पूछा, 'यह स्त्री तुमसे क्या कह रही थी ?'

'कोई खास बात नहीं।'

'तो फिर रो क्यों रहे थे ?'

'कहाँ, रो कहाँ रहा था ?'

'क्यों, रोये नहीं हो ?'

'बंगाली ऐसे ही झूठे होते हैं।'

निशि के वहाँ जाते ही देवी ने पूछा, 'मेरे ससुर से क्या बातें कर रही थीं ?'

'देख रही थी कि तुम्हारी सास बन सकती हूँ या नहीं !'

'निशि ठकुरानी ! तुम्हारा मन-प्राण, जीवन-यौवन सर्वस्व श्रीकृष्ण को समर्पित है, सिर्फ हँसी-मजाक नहीं है। उसे तुमने अपने निजी व्यवहार के लिए रख छोड़ा है।'

'देवता को अच्छी चीजें ही देनी चाहिये। रद्दी चीज क्यों दूँ ?'

'तुम नरक भोगतीं तो ठीक रहता।'

|९|

आँधी रुकी, बजरा भी रुका। बजरे की खिड़की से बाहर की ओर देखा देवी ने, प्रभात हो रहा था। देवी बोली, 'निशि ! आज सुप्रभात !'

निशि ने कहा, 'सुप्रभात !'

'तुम्हारा अवसान, मेरा सुप्रभात !'

'जिस दिन मेरा अवगान होगा, उसी दिन मैं सुप्रभात कहूँगी। इस अंधकार में अवसान नहीं। आज समझा कि देवी चौधरानी का आज सुप्रभात है। क्योंकि, आज ही देवी चौधरानी का अवसान भी है।'

'यह कैसी बातें कहती है रे, मुँहजली ?'

'बात तो ठीक ही कहती हूँ। देवी मर गई। प्रफुल्ल ससुराल चली।

'अभी इसमें बहुत देरी है। जो कहती हूँ सो ही करो, बजरा बाँधने को कहो।'

निशि ने हुकुम जारी किया। माँझियों ने किनारे लगा कर बजरा बाँधा। इसके बाद देवी ने कहा, 'रंगराज से पूछो, हम लोग कहाँ आ गये ? रंगपुर कितनी दूर हैं ? भूतनाथ कितनी दूर है ?'

रंगराज ने कहा, 'एक रात में चार दिनों का रास्ता तय करके आये हैं। रंगपुर का यहाँ से कई दिनों का रास्ता है। जंगल-पथ से भूननाथ यहाँ से एक दिन का रास्ता है।'

'पालकी-कहार मिलेंगे ?' देवी ने पूछा।

'मैं प्रयत्न कर के सब की व्यवस्था कर लूँगा।'

तब देवी ने निशि से कहा, 'तुम मेरे ससुर से स्नान-ध्यान करने को कहो।'

दिवा ने पूछा, 'इतनी जल्दी काहे की है ?'

निशि बोली, 'ससुर का पुत्र सारी रात बाहर ही बैठा रहा है, देख नहीं रहीं हो ? बाप के सामने बेटा समुद्र लाँघ कर भी लंका में नहीं घुस सकता !'

निशि ने रंगराज को पुकारा, हरवल्लभ के सामने ही कहा, 'साहब को फाँसी दे ही दी जायगी। लेकिन अब ब्राह्मण को सूली देना नहीं होगा। उसे पहरे में रख कर नहाने-धोने को कहो।'

हरवल्लभ बोला, 'क्या मेरे लिए कोई हुक्म हुआ है ?'

निशि ने आँख दबा कर कहा, 'मेरी प्रार्थना मंजूर हो गई। तुम स्नानादि कर के जल्दी आओ।'

फिर निशि ने रंगराज के कान में धीरे-धीरे कहा, 'पहरा के मतलब, नहलाने वाले नौकर।'

तब रंगराज ने आदेशानुसार सभी व्यवस्था कर के हरवल्लभ को स्नानादि के लिए भेज दिया।

देवी ने निशि से कहा, 'साहब को छोड़ देने को कहो। साहब से रंगपुर चले जाने को कहना। रंगपुर यहाँ से काफी दूर है। उसे राह खर्च के लिए एक सौ मोहरें देना, नहीं तो इतना रास्ता वह कैसे पूरा करेगा?'

निशि ने एक सौ मोहरें रंगराज को दे कर उसके कान में कुछ कहा। शायद देवी की आज्ञा के अलावा भी कुछ और कहा था।

तब दो बरकंदातों को ले कर रंगराज गया और साहब को पकड़ा। बोला, 'उठो।'

साहब ने पूछा, 'अब कहाँ जाना होगा?'

रंगराज बोला, 'तुम कैदी हो। ऐसा नहीं पूछ सकते।'

बहस न कर के साहब रंगराज और दो बरकन्दाजों के पीछे-पीछे चुपचाप चल पड़े। घाट पर हरवल्लभ स्नान कर रहा था, उसी घाट से वे सब साहब को ले कर जाने लगे।

हरवल्लभ ने पूछा, 'साहब को कहाँ लिए जा रहे हैं?'

रंगराज ने कहा, 'जंगल में।'

'क्यों?'

'जंगल के भीतर उसे फाँसी पर लटकाया जायगा।'

हरवल्लभ के प्राण काँप उठे। वे संघ-तर्पण के मंत्र भी भूल गये। संध्यादि भी ठीक से न कर सके।'

साहब को जंगल में ले जा कर रंगराज ने कहा, 'हम लोग किसी को फाँसी नहीं देते। तुम अपने घर अपने बाल-बच्चों में जाओ। फिर कभी हमारे पीछे मत पड़ना। तुम्हें छोड़ दिया गया।'

साहब पहले तो चकित-विस्मित हुआ, फिर सोचा, 'अंग्रेज को फाँसी दें, बंगालियों में इतना साहस कहाँ है?'

तब रंगराज ने कहा, 'साहब! रंगपुर बहुत दूर है। कैसे जाओगे?'

साहब बोला, 'जैसे भी होगा।'

'नाव किराये की ले लो या गाँव में जा कर घोड़ा ले लो—या तो पालकी कर लो। हमारी रानी ने तुम्हें एक सौ मोहरें राह-खर्च के लिए दी हैं।'

रंगराज मोहरें गिन कर साहब को देने लगा। साहब ने सिर्फ पाँच मोहरें ले ली, और नहीं लीं। बोला, इतनी 'काफी होंगी। यह मैंने तुमसे कर्ज लिया।'

'अच्छा, मैं अगर तुमसे माँगने आऊँ तो देना। अगर तुम्हारा सिपाही घायल हो तो उसे दे देना। यदि कोई मर जाय, तो उसके घर वालों के पास भेज देना।'

'क्यों ?
'ऐसी अवस्था वालों की रानी सदा सहायता करती हैं ।'
साहब को विश्वास नहीं हुआ । भला-बुरा कुछ न कह कर वह वहाँ से चला गया ।
तब रंगराज पालकी-कहारों की खोज में चला गया ।

|१०|

एकान्त देख कर, ब्रजेश्वर धीरे-धीरे आ कर देवी के पास बैठ गया ।
देवी ने कहा, 'अच्छा किया जो दर्शन दिया । आज का सब काम आप के कहे-नुसार ही हुआ है । आपने प्राण-रक्षा के लिए कहा था, प्राण-रक्षा हो सकी । देवी मर गई । देवी चौधरानी अब नहीं है । लेकिन अब यहाँ प्रफुल्ल है । अब प्रफुल्ल रहे या देवी के साथ जाये ?'
ब्रजेश्वर ने बड़े आदर से प्रफुल्ल का मुँह चूम लिया । बोला, 'तुम मेरे घर चलो, मेरा घर प्रकाश से चमक उठे गा । तुम नहीं जाओगी तो मैं भी नहीं जाऊँगा ।'
प्रफुल्ल नें कहा, 'मैं जाऊँ गी तो मेरे ससुर क्या कहेंगे ?'
'यह मेरा जिम्मा है । तुम व्यवस्था करा दो और उन्हें ही पहले भेज दो । हम लोग बाद में चलें गे ।'
'पालकी-कहार लाने तो भेजा है ।'
पालकी-कहार जल्दी ही आ गये । हरवल्लभ संक्षेप में संध्यादि कर के जल्दी से नाव पर जा बैठे । देखा कि निशि ठकुरानी एक थाली में खीर, मक्खन, केला आदि फल-मेवे और अन्य चीजें सजा रही थी । उसने विनती-अनुनय कर के हरबल्लभ को आसन पर बिठाया । बोली, 'अब आप हमारे संबंधी-कुटुम्बी हुए । बिना जलपान किये जा कैसे सकते हैं ?'
हरवल्लभ ने कहा, 'ब्रजेश्वर कहाँ है ? कल रात को जब वह बाहर गया है, तब से उसे नहीं देखा ।'
'वे तो मेरे बहनोई हो गये । आप अब उनकी चिन्ता न करें । वे यहीं हैं, आप जलपान करें । मैं उन्हें बुलाती हूँ । वह बात आप उनसे कहते जाइए ।'
हरबल्लभ जलपान के लिए बैठे । निशि ब्रजेश्वर को बुला लाई । भीतर के कमरे से ब्रजेश्वर को निकलते देख कर हरबल्लभ थोड़ा सकुचाये । और पिता को देख कर

ब्रजेश्वर का सिर अपने आप झुक गया। हरवल्लभ ने सोचा कि मेरे चाँद से मुखड़े वाले बेटे को देख कर डाकिनी देवी भी सुध-बुध खो बैठी है। चलो, अच्छा ही है।

हरवल्लभ ने ब्रजेश्वर से कहा, 'बेटा, तुम यहाँ कैसे आ गये ? मैं कुछ समझ नहीं पाया। खैर, अभी यह जानने का जरूरत भी नहीं है। इस समय मैं एक अनुरोध कर रहा हूँ, तुम वह अनुरोध रखो गे। यह कुलीन घर की लड़की है। इनके पिता भी हमारे ही श्रेणी के कुलीन ब्राह्मण हैं। इनकी एक छोटी कुँवारी बहन है। उसके लिए वर नहीं मिल रहा है। अयोग्य पात्र से कुल जाता है। कुलीन कुल की रक्षा करना कुलीन का ही काम है। अब तुम और एक विवाह करो। यही मेरी इच्छा है। तुम्हारी माँ की भी ऐसी ही इच्छा है। खास कर बड़ी बहू के परलोकवास के बाद से हम दोनों बहुत ही दुखी हैं। इसी से कहता हूँ, यह मेरा अनुरोध मानो, यही तुम्हारा कर्तव्य भी है। मैं अनुमति देता हूँ कि तुम इनकी बहन से विवाह करो।'

ब्रजेश्वर ने धीरे से कहा, 'जैसी आज्ञा !'

निशि को खूब हँसी आ रही थी, लेकिन वह हँसी नहीं। हरबल्लभ कहते रहे, 'मेरे लिये पालकी-कहार आ गये हैं। मैं पहले से पहुँच कर बहू-भात की व्यवस्था करूँगा। तुम शास्त्र-विधि-अनुसार विवाह कर के, बहू को ले कर घर आना।'

'जो आज्ञा !'

'और मैं तुमसे क्या कहूँ ? अब तुम बच्चे नहीं हो। कुल, शील, जाति मर्यादा सब ठीक से देख-सुन कर विवाह करना। (फिर स्वर को धीमा कर के कहा) और हम लोगों के यहाँ लेन-देन की जो प्रथा है सो भी तुम्हें मालूम ही है।'

'जी हाँ, जानता हूँ।'

फिर जलपान कर के हरबल्लभ विदा हुए। ब्रजेश्वर व निशि ने उनकी पदधूलि ली। वे पालकी पर चढ़ कर दुर्गा नाम का जप करते हुये जान बचाने की सोचते रहे। मन में सोचा, 'लड़का डाकिनी के हाथ में फँसा रह गया। लेकिन उसके लिये कोई भय नहीं है। बेटा अपना रास्ता जानता है। चाँद से मुखड़े की सर्वत्र जय ही होती है।'

हरबल्लभ के जाने के बाद, ब्रजेश्वर ने निशि से पूछा, 'यह तुमने कौन सा नया जाल रचा ? तुम्हारी छोटी बहन कौन है ?'

'क्या पहचानते नहीं हो ? उसका नाम है प्रफुल्ल !'

'ओहो ! समझ गया ! इसके लिए मेरे बाप को कैसे राजी किया ?'

'स्त्रियों के पास कौशल की कमी नहीं है। छोटी बहन की सास बनने में दोष है, नहीं तो उन्हें और भी एक संबंध के लिए राजी कर लेती।'

तब दिवा कुढ़ गई, बोली, 'तुम्हें जल्दी मौत आये। लज्जा-शर्म कुछ नहीं है ? क्या पुरुष से इस तरह की बातें की जाती हैं ?'

'पुरुष किसे कहती हो ? ब्रजेश्वर को ? कल सब देख लिया गया है कि कौन पुरुष

१०

है और कौन स्त्री !'

ब्रजेश्वर ने कहा, 'आज भी देखना। तुम लोग स्त्री के सिवा और कुछ नहीं हो। स्त्रियों की स्वभावगत मोटी बुद्धि से ही तुमने भी काम लिया है।'

'कैसा काम ?'

'बाप को कैसा धोखा दिया जाता है ? क्या मैं बाप की आँखों में धूल झोंक कर तुम्हारे रचे प्रपंच के अनुसार इस स्त्री को ले कर घर बसाऊँगा ? यदि अपने बाप को ही धोखा दिया तो फिर दुनिया में छोड़ा किसे ?'

निशि सकुचा गई, मन ही मन स्वीकार किया, ब्रजेश्वर पुरुष है। सिर्फ लट्ठबाजी में वह पुरुष नहीं है। पूछा, 'अब क्या उपाय है ?'

'उपाय है। चलो, प्रफुल्ल को घर ले चलें। वहाँ पिता से सब बातें खोल कर कहूँगा, कुछ भी छिपाने की जरूरत नहीं है।'

'तो क्या समझते हो, तुम्हारे पिता, देवी चौधरानी को घर में घुसने दें गे ?'

देवी ने कहा, 'देवी चौधरानी कौन ? देवी चौधरानी तो मर गई। उसका नाम अब इस धरती पर कभी मत लेना। प्रफुल्ल की बात करो।'

निशि बोली, 'प्रफुल्ल को क्या वे घर में जगह दें गे ?'

ब्रजेश्वर ने कहा, 'कहा न कि यह जिम्मा मेरा है।'

प्रफुल्ल संतुष्ट हुई। समझा कि ब्रजेश्वर में भार ढोने की सामर्थ्य है। यदि ऐसा न होता तो वह भार अपने ऊपर कभी न लेता।

|११|

भूतनाथ जाने का उद्योग प्रारंभ हुआ। रंगराज को वहीं से विदा कर देने की बात तय हुई। क्योंकि, ब्रजेश्वर के घर के दरबानों ने एक दिन उसके हाथ से लाठी खाई थी, अगर वे इसे देखें गे तो पहचान लेंगे। रंगराज को बुला कर सब बातें समझा दी गईं। कुछ तो निशि ने समझाया, कुछ प्रफुल्ल ने।

रंगराज रोने लगा, बोला, 'माँ हमें त्याग देंगी, यह कभी नहीं सोचा था।' सब ने मिल कर रंगराज को सांत्वना दी। देवीगढ़ में प्रफुल्ल का घर-द्वारा, देवालय, देव-सम्पत्ति थी। वह सब प्रफुल्ल ने रंगराज को दे कर कहा, 'वहीं जा कर रहो। देवता की सेवा करना, प्रसाद पा कर दिन बिताना। अब कभी लाठी मत छूना। तुम जिसे परोपकार कहते हो, वह वास्तव में है परपीड़न। लाठी से किसी का उपकार नहीं

होता। दुष्टों का दमन यदि राजा न करें तो ईश्वर करेंगे—तुम और हम क्या हैं ? सज्जन को पालने का भार जरूर उठाना, लेकिन दुष्ट दमन का भार ईश्वर पर छोड़ देना। यह सब बातें तुम मेरी ओर से भवानी ठाकुर से भी कहना, उन्हें मेरा कोटि-कोटि प्रणाम कहना।'

रंगराज रोते-रोते चला गया। दिवा और निशि साथ-साथ भूतनाथ घाट तक गयीं। उसी बजरे से लौट कर दोनों देवी गढ़ जायें गी और वहीं रह कर दोनों भगवत्-भजन करें गी। बजरे पर देवी का जो भी ठाट-बाट वाला सामान था, उनकी कीमत खूब ज्यादा थी। प्रफुल्ल ने वह सब दिवा और निशि को दे दिया। कहा, 'यह सब बेच देना और इसका जो दाम मिले उसे आवश्यकतानुसार खर्च करना और जो बचे वह गरीबों में बाँट देना। यह सब मेरा नहीं है। मैं इसमें से कुछ भी नहीं लूँगी।' कह कर प्रफुल्ल ने अपने बहुमूल्य वस्त्रादि भी सब दिवा व निशि को दे दिया।

निशि ने पूछा, 'बहन, क्या खाली अंग ससुराल जाओगी ?'

प्रफुल्ल ने ब्रजेश्वर की ओर इशारा कर के कहा, 'स्त्री के लिए यही आभूषण सभी आभूषणों से बढ़ कर है। और किसी आभूषण का भला क्या जरूरत है ?'

निशि बोली, 'आज तुम पहली बार ससुराल जा रही हो। आज मैं तुम्हें आशीर्वाद के साथ कुछ और भी दूँगी। तुम मना मत करना, यही मेरी अंतिम साध है, साध मिटाने देना।'

यह कह कर निशि बहुत से गहने पहना कर प्रफुल्ल को सजाने लगी। निशि पहले एक रानी के पास थी। रानी ने उसे बहुत से गहने दिए थे। यह वही सब थे। देवी ने उसे नये-नये गहने दिए थे, इसलिए वह पुराने नहीं पहनती थी। इस समय उसने वही सब गहने प्रफुल्ल को पहना दिए। फिर उसके पास और कोई काम नहीं रह गया। फिर तीनों मिल कर रोने बैठीं। निशि ने तो गहने पहनाते समय ही सुर चढ़ाया था। फिर दिवा भी रोने लगी। फिर क्या था, प्रफुल्ल की आँखें भी बरसने लगीं। रोने की बात ही क्या थी ? तीनों एक दूसरे को हृदय से प्यार करती थीं। लेकिन इस समय प्रफुल्ल का मन आह्लादित था। निशि जानती थी कि प्रफुल्ल का मन खुशी से भरा था। दिवा भी प्रफुल्ल के सुख से सुखी हुई। फिर तीनों अधिक देर तक न रो सकीं।

यथा समय बजरा भूतनाथ घाट पर पहुँचा। वहाँ निशि व दिवा को गले से लगा, प्रफुल्ल ने उनसे विदा ली। दोनों रोती हुई उसी बजरे से देवीगढ़ लौटीं। माँझी, बकरन्दाजों का वेतन-हिसाब कर दिया और उन्हें जवाब दे दिया गया। इस बजरे को रखना ठीक नहीं, क्योंकि यह बजरा पहचाना हुआ था। प्रफुल्ल ने पहले ही सहेजा था, 'इसे मत रखना।'

निशि ने बजरे को तुड़वा कर, उसकी लकड़ी चिरवा कर दो वर्ष तक जलाया।

। १२ ।

भूतनाथ घाट पर प्रफुल्ल का बजरा लगते ही, जाने कैसे, गांव भर में यह बात फैल गई कि ब्रजेश्वर एक और विवाह कर के बहू ले कर आया है। बहू उससे बड़ी है। अत: बच्चे, बूढ़े, काना, लंगड़ा, सभी बहू को देखने दौड़े। जो स्त्री रसोई बना रही थी, वह हाँड़ी फेंक कर भागी। जो मछली काट रही थी, मछली छोड़ कर दौड़ी, जो नहा रही थी, वह भींगे कपड़ों में ही दौड़ी, जो खाना खाने बैठी थी, वह आधे पेट ही खाना छोड़ कर भागी, जो झगड़ा कर रही थी, उसका सहज ही शत्रु से मेल हो गया, जो बच्चा गोद में लिए थी, लिए हुए ही बहू देखने दौड़ी, किसी का पति खाने बैठा था, आधी रसोई परोसी जा चुकी थी, मछली परोसना बाकी था, तभी बहू के आगमन की सूचना मिली, और वह सब यों ही छोड़ कर चल पड़ी। उस दिन शायद पति के भाग्य में मछली खाना नहीं लिखा था। एक वृद्ध स्त्री अपनी नतिनी से रो कर कह रही थी, 'बेटी, अगर तू मेरा हाथ पकड़ कर नहीं ले जाए गी तो मैं अकेली बहू देखने कैसे जा सकूँ गी ?' उसी समय शोर मचा कि बहू आ गई है। नतिनी नानी को छोड़ कर अकेली ही बहू देखने भाग गई। नानी भी किसी तरह लकड़ी टेकती हुई वहाँ तक पहुँची। एक घरघुमनी बड़े उम्र की लड़की माँ से फटकार सुन कर कसम खा रही थी कि वह अब कभी वह घर से बाहर नहीं जायेगी। ठीक उसी समय बहू के आने की खबर आई। फिर क्या था ? उसी पल कसम टूट गई। वह फौरन बहू देखने भागी। माँ बच्चे को छोड़ कर दौड़ी, बच्चा माँ के पीछे-पीछे रोता हुआ दौड़ा। जेठ—स्वामी बैठे हैं, बहू ने उनकी चिन्ता न की और घूँघट में मुँह छिपा कर सामने से चली गई। भागते-दौड़ते समय कितनी ही स्त्रियों के सिर का कपड़ा नीचे गिर पड़ा, लेकिन उसे सम्हालने की उन्हें फुरसत न थी। बेहोशी में किधर खींचना चाहिये और किधर कपड़े खींचती हैं। इसका भी कोई ठिकाना नहीं। किसी को अपना ही होश नहीं है। लज्जा देवी भी लजा कर भाग गईं।

वर-वधू आ कर वेदी पर खड़े हुए, गिन्नी माँ वरण कर रही हैं। बहू का मुँह देखने के लिए और-और स्त्रियाँ चारों ओर से जुटती आ रही हैं। लेकिन भला बहू भी अपनी चाल कैसे छोड़ देती ? उसने भी डेढ़ हाथ लम्बा घूँघट खींच रखा था, कोई भी उसका चेहरा नहीं देख पातीं। सास ने वरण-रीति के समय एक बार घूँघट खिसका कर बहू का मुँह देखा। चौंक उठी, लेकिन कुछ बोली नहीं। सिर्फ कहा, 'बहू अच्छी है।' उसकी आँखों में आँसू आ गये।

वरण की रस्म पूरी हुई। बहू घर में गई। सास ने अपनी सखियों और पड़ो-

सिनों से कहा, 'बहन, हमारे बहू-बेटे बहुत दूर से आ रहे हैं, भूख-प्यास से व्याकुल हैं। मैं अभी उन्हें कुछ खिला-पिला लूँ, बहू कहीं जायेगी तो नहीं, घर में ही तो रहे गी, तुम लोग तो रोज ही देखो गी। अभी अपने घर जाओ, जा कर खाना-पीना करो।'

गिन्नी की इस बात से नाराज हो कर पड़ोसिनें उसकी निन्दा करती हुई अपने-अपने घर चली गईं। दोष तो सास का था लेकिन निन्दा बहू की ही अधिक हुई। क्यों न होती, बहू का एक बार भी मुँह नहीं देख पाईं। सबों ने उसे बड़ी उम्र की कह कर घृणा प्रदर्शित किया। बोलीं, 'कुलीन के घर ऐसा तो रोज ही होता है।' तब जिस-जिस नेकिसी भी कुलीन के घर में बूढ़ी बहू देखी थी, उन्हीं की चर्चा होने लगी। गोविंद मुखोपाध्याय ने पचास वर्ष की एक लड़की से विवाह किया, रवि चाटुर्या सत्तर वर्ष की एक कुमारी को घर ले आये, मनू बाड़ज्या ने एक बुढ़िया कुमारी के सिर में मरते समय सिन्दूर डाल कर व्याह किया, इसी तरह के उदाहरण देतीं, सब रास्ता पार करने लगीं। इसी प्रकार एक बार आन्दोलित हो कर गाँव का वातावरण ठण्डा हो गया।

गोलमाल मच गया। गिन्नी माँ ने ब्रजेश्वर को अकेले में बुलाया। ब्रज ने आ कर पूछा, 'क्या माँ ?'

'बेटा, यह बहू कहाँ मिली, बेटा ?'

'यह नया विवाह नहीं है, माँ !'

'तो बेटा, यह खोया धन तुम्हें कहाँ मिल गया ?'

गिन्नी की आँखों से आँसू झरने लगे।

ब्रजेश्वर बोला, 'माँ, विधाता ने दया कर के फिर दिया है। अभी माँ, तुम पिता जी से कुछ मत कहना। उन्हें एकान्त में पा कर मैं सब कुछ समझा कर कह दूँ गा।'

'तुम्हें अब कुछ कहना न होगा। मैं ही सब कह दूँगी। पहले बहू-भात हो जाने दो। तुम कुछ सोच-विचार मत करना। अभी किसी से कुछ मत कहना।'

ब्रजेश्वर ने हामी भरी। माँ ने यह कठिन कार्य अपने ऊपर ले लिया। ब्रज बच गया। उसने किसी से कोई बात न की।

बहू-भात का भोज निर्विघ्न हो गया। बहुत आडम्बर भी नहीं किया गया था। मात्र निकटतम नाते-रिश्तेदारों और कुटुम्बियों को आमंत्रित कर के हरबल्लभ ने एक प्रकार से रस्म पूरी की थी।

इसके पश्चात गिन्नी ने सब बातें सच-सच हरबल्लभ को बताया। कहा, 'यह कोई नया विवाह नहीं है, वही बड़ी बहू है।'

हरबल्लभ चौंक उठे, जैसे किसी सोये बाघ को किसी ने तीर मारा हो। बोले, 'आंय, वही बड़ी बहू—कौन कहता है ?'

'मैं पहचानती हूँ। और व्रज ने भी मुझसे कहा है।'

'सो तो दस बरस पहले ही मर गई थी।'

'तो क्या मरा आदमी भी कभी लौटता है ?'

'तो इतने दिनों वह लड़की कहाँ, किसके पास थी ?'

'सो तो मैंने ब्रजेश्वर से नहीं पूछा। पूछूँगी भी नहीं। जब उसे व्रज घर ले आया है, तब बिना समझे-बूझे नहीं लाया होगा।'

'तो मैं उससे पूछूँगा।'

'मेरे सिर की कसम, तुम कुछ भी बात नहीं करोगे। तुमने एक बार बात की थी, उससे मैं एक तरह से अपने बेटे को खो चुकी थी। मेरे एक ही तो लड़का है। तुम्हें मेरे सिर की कसम हैं, तुम एक बात भी नहीं बोलो गे। अगर तुमने कोई बात की तो मैं फाँसी लगा लूँगी।'

हरवल्लभ सहम कर चुप हो गये। कुछ बोले नहीं। सिर्फ कहा, 'तव और लोगों से नए विवाह की ही बात कहना।'

गिन्नी ने कहा, 'वही कहूँ गी।'

फिर गिन्नी ने व्रजेश्वर को यह सुसंवाद सुनाया। कहा, 'मैंने तुमसे कहा था न कि वे कुछ नहीं कहें गे। अब उन बातों को उठाने से कोई लाभ नहीं है।'

ब्रजेश्वर ने प्रसन्न हो कर प्रफुल्ल को खबर दी।

मानना पड़े गा कि गिन्नी ने इस बार बड़ा बड़प्पन दिखाया। जिस घर की गृहिणी अपना कर्तव्य ठीक से निभाती है, उस घर में किसी को मन की पीड़ा नहीं होती। मल्लाह जब नाव को पकड़ ले तब नाव के लिए कोई डर नहीं रहता।

| १३ |

प्रफुल्ल सागर से मिलना चाहती थी। व्रजेश्वर का इशारा पा कर गिन्नी ने सागर को बुलाने भेजा। गिन्नी की भी साध थी कि तीनों बहुएँ इकट्ठी हों।

जो आदमी सागर को बुलाने गया था, उसके मुँह से सागर ने सुना कि स्वामी ने और एक विवाह किया है, बूढ़ी बहू। सागर को बड़ी घृणा लगी। 'छि ! बूढ़ी बहू।' खूब गुस्सा आया, 'फिर ब्याह किया ? हम क्या स्त्री नहीं हैं ?' दुख लगा, 'हाय ! विधाता ने मुझे गरीब की लड़की क्यों नहीं बनाया। मैं उनके पास रहती तो वे शायद दूसरा ब्याह न करते।'

इस तरह कुछ क्रोध और उदासी और भय ले कर सागर ससुराल आई। आते ही सब से पहले नयन बहू के पास गई। नयन बहू सागर की आँखों की काँटा थी और सागर भी नयन बहू की आँखों में गड़ती रहती थी, लेकिन आज दोनों सौतें मिल कर एक हो गईं। क्योंकि दोनों की विपत्ति एक ही थी। यही सोच कर सागर नयन तारा के पास गई।

साँप को हाँड़ी में बन्द करने से वह जैसे फुँफकारता है, प्रफुल्ल के आने से नयनतारा भी उसी तरह फुँफकार रही थी। उसकी सिर्फ एक बार व्रजेश्वर से भेंट हुई थी। गाली सुनते ही व्रजेश्वर भाग गया था, फिर उधर मुँह भी नहीं घुमाया उसने। प्रफुल्ल भी उससे मिलने गई थी, लेकिन उसकी भी वैसी ही दुर्गति हुई। स्वामी और सौत की बात क्या, अड़ोस-पड़ोस की स्त्रियाँ भी कई दिन तक नयनतारा के पास न सकीं। नयनतारा के कितने ही लड़के-लड़कियाँ थीं। उन्हीं पर ज्यादा आफत आई। इन कई दिनों से मार खाते-खाते उनकी तो जान ही निकली जा रही थी।

उस देवी के श्रीमंदिर में सागर ही उससे मिलने गई। देखते ही नयनतारा बोली, 'आओ, आओ! तुम्हीं क्यों बाकी रहोगी? कोई और हिस्सेदार भी है?'

सागर बोली, 'क्या? सुना है फिर ब्याह किया है?'

'क्या पता, ब्याह किया है या निकाह, मुझे कुछ खबर नहीं।'

'ब्राह्मण की लड़की से क्या निकाह होता है?'

'बाभन, कि शूद्र, कि मुसलमान, क्या मैं देखने गई हूँ?'

'ऐसी बात मुँह से मत निकालो। अपनी जाति बचा कर ही बात करनी होगी।'

'जिसके घर में इतनी ज्यादा उम्र की दुलहिन आई है, उसकी जाति का क्या ठिकाना?'

'दुलहिन की उम्र क्या है? हमलोगों की उम्र की होगी?'

'तुम्हारी माँ की उम्र की।'

'बाल पके हैं?'

'बाल नहीं पके तो दिन-रात सिर पर कपड़ा क्यों लपेटे रहती है?'

'दाँत टूटे हैं?'

'बाल पक गये, भला दाँत नहीं टूटेंगे?'

'तब तो वह स्वामी से भी बड़ी होगी?'

'तो फिर तूने सुना क्या?'

'ऐसा भी कहीं होता है?'

'कुलीन के घर में यही सब होता है।'

'देखने में कैसी है?'

'रूप की ध्वजा है ! लटके गालों वाली गोविन्द की माँ जैसी ।'

'जिसने यह विवाह किया है, उससे कुछ नहीं कहा ?'

'क्या उसे देख पाती हूँ ? वह भी क्या दिखाई देता है ? उसी के लिए यह झाड़ू सहेज कर रखा है ।'

'तब मैं पहले उस सोने की प्रतिमा को देख आऊँ !'

'जाओ, जन्म सार्थक कर लो ।'

नई दुल्हन को खोजते हुए सागर ने उसको तालब के किनारे के घाट पर पकड़ा । प्रफुल्ल इधर पीठ किए बर्तन माँज रही थी । सागर ने पीछे से ही पूछा, 'क्या तुम्हीं नई बहू हो ?'

'क्या सागर आई है ?' कहती हुई नई बहू सामने घूमी ।

सागर चौंक पड़ी । विस्मय में डूब कर पूछा, 'देवी रानी ?'

प्रफुल्ल बोली, 'चुप ! देवी मर चुकी है ।'

'प्रफुल्ल ?'

'प्रफुल्ल भी मर गई ।'

'तब तुम कौन ?'

'मैं नई बहू हूँ ।'

'यह सब कैसे क्या हुआ ? मुझे सब बताओ ?'

'यह बताने की जगह नहीं है । मुझे एक कमरा मिला है । वहीं चलो, तब बताऊँ गी ।'

कमरे का दरवाजा बन्द कर के दोनों बैठ कर बातें करने लगीं । प्रफुल्ल ने सागर से सब बताया । सुन कर सागर ने पूछा, 'क्या यहाँ गृह-कार्य में मन लगेगा ? चाँदी के सिंहासन पर बैठने के बाद, हीरे का मुकुट पहनने के बाद, रानी का जीवन बिताने के बाद, अब क्या बर्तन माँजने, घर बटोरने में अच्छा लगेगा ? योग-शास्त्र के बाद क्या बूढ़ी माँ की रूपकथा अच्छी लगेगी ? जिसकी आज्ञा से दो हजार लोग सदा हाजिर रहते थे, अब क्या उसे दूसरे की हुकूमत अच्छी लगेगी ?'

'सब अच्छा लगेगा, तभी तो आई हूँ । यही तो स्त्री का धर्म है, राज-काज स्त्री का धर्म नहीं है । यह गृहस्थ-धर्म उससे कठिन है, इससे बढ़ कर और कौन योग कठिन है ? देखो, कितने निरक्षर, स्वार्थी, अनभिज्ञ लोगों से मुझे रोज व्यवहार करना है । किसी को कोई कष्ट न हो, सभी सुखी रहें, यहीं व्यवस्था करनी होगी । इससे बढ़ कर कौन संन्यास कठिन है ? मैं यही संन्यास अब निभाऊँ गी ।'

'तो कुछ दिनों तुम्हारे पास रह कर तुम्हारी शिष्या बनूँ गी ।'

जब सागर के साथ प्रफुल्ल की यह बातचीत हो रही, तब बूढ़ी माँ के पास व्रजेश्वर भोजन करने बैठा था ।

बूढ़ी ने पूछा, 'ब्रज, अब रसोई कैसी बनाती है ?'

'अच्छी ।'

'अब गाय का दूध कैसा होता है ? खराब क्या ?'

'अच्छा दूध है ।'

'दस बरस दो गये—मुझे तू गंगा नहीं ले गया ?'

'भूल गया था ।'

'तू ने मुझे गंगा नहीं मिलने दिया, अब जाति-भष्ट होने पर ··'

'बूढ़ी माँ, चुप ! यह बात नहीं !'

'तो मुझे तू गंगा क्यों नहीं ले गया ? मैं और बात नहीं करूँगी । लेकिन भाई देखना, मेरा कोई चरखा-वरखा न तोड़े ।'

|१४|

कई महीने रह कर सागर ने देखा कि प्रफुल्ल ने जो कहा था, वह कर दिखाया । उसने सबों को प्रसन्न कर लिया । सास भी प्रफुल्ल से इतनी खुश हुई कि उसी को गृहस्थी का पूरा भार सौंप दिया । और खुद सागर के बच्चे को गोद में लेकर इधर-उधर घूमतीं । धीरे-धीरे ससुर भी प्रफुल्ल के गुणों की चर्चा सुनने लगे । यहाँ तक हुआ कि प्रफुल्ल जो काम न करती, वह काम उन्हें ठीक ही नहीं लगता । उसकी चतुराई और तेज बुद्धि पर वृद्ध की इतनी ममता और गुणों की चर्चा, सुनी उस पर उनकी श्रद्धा बढ़ गई । बूढ़ी माँ ने रसोई का काम उसी पर लाद दिया था । अब बूढ़ी से रसोई-पानी का काम नहीं होता । अब तो तीनों बहुएँ मिल कर रसोई का काम कर लेती हैं । लेकिन जिस दिन प्रफुल्ल चौके में नहीं जाती उस दिन किसी को खाना अच्छा नहीं लगता । प्रफुल्ल खाते समय जिसे नहीं परोसती, उसका पेट ही नहीं भरता । अंत में नयन बहू भी उसी के वश में हो गई । अब प्रफुल्ल से नहीं झगड़ती, बल्कि प्रफुल्ल के डर से वह किसी और से भी झगड़ा नहीं करती । अब तो वह भी प्रफुल्ल से सलाह लिए बिना कोई काम नहीं करती । नयनतारा के बच्चों की जितनी चिन्ता प्रफुल्ल करती है उतना वह खुद नहीं कर पाती । एक प्रकार से अपने बाल-बच्चों को प्रफुल्ल को सौंप कर वह निश्चिंत हो गई है । सागर इस बार मायके जा कर भी बहुत दिनों नहीं रह सकी । जल्दी ही

वापस ससुराल चली आई। अब तो प्रफुल्ल के पास रहने में उसे जितना सुख मिलता है, उतना और कहीं नहीं मिलता।

यह सब बातें दूसरों के लिए चाहे आश्चर्य की हों, पर प्रफुल्ल के लिए नहीं, क्योंकि वह निष्काम धर्म का महत्व जान गई थी। इसका उसने पहले से ही अभ्यास कर रखा था। प्रफुल्ल ने इस घर में आते ही सच्ची संन्यासिनी का व्रत ग्रहण किया। उसे किसी चीज की भी इच्छा न थी, वह सिर्फ काम करती थी। दूसरों को सुखी रहने का प्रयत्न और अपने लिए कुछ न पाने की इच्छा, इसी लिए वह सच्ची सन्यासिनी थी। वह भवानी ठाकुर के हाथ के तेज तलवार थी, यह बात हरवल्लभ के घर में कोई नहीं जानता था। प्रफुल्ल इतनी विदुषी है वहाँ कोई नहीं जानता था, लोग तो यह भी नहीं जानते थे कि उसे अक्षर ज्ञान भी है। गृहस्थी के कामों में विद्वता दिखाने को अवसर नहीं आता। घरेलू कामों को पढ़े-लिखे लोग ही अच्छी तरह कर सकते हैं, लेकिन विद्वता-प्रदर्शन का कोई अवसर नहीं मिलता। वहाँ जो विद्वता दिखावे वह मूर्ख माना जाता है और जो अपनी विद्वता को छिपाए रखता है, वही यथार्थ में पंडित समझा जाता है।

प्रफुल्ल का जो भी विवाद था, वह मात्र व्रजेश्वर के साथ ही था। प्रफुल्ल कहती, 'मैं अकेली तुम्हारी स्त्री नहीं हूँ। तुम्हारे लिए जैसे मैं हूँ, वैसी ही सागर व नयनबहु भी है। मैं अकेली तुम पर दखल नहीं रखना चाहती। स्त्रियों के लिए स्वामी ही देवता हैं। फिर वे आप की पूजा क्यों नहीं करने पातीं?' लेकिन व्रजेश्वर यह सब कुछ नहीं सुनता। उसका हृदय तो प्रफुल्लमय हो चुका था। प्रफुल्ल करती, 'मुझे जितना प्यार करते हो, उन्हें इतना प्यार न करने से मेरे ऊपर वह प्रेम पूर्ण नहीं कहा जा सकता। उन्हें भी मेरे ही समान समझो।' लेकिन व्रजेश्वर इन बातों को नहीं समझता।

धीरे-धीरे जमींदारी का काम भी प्रफुल्ल के हाथ में आने लगा। जमींदारी में कोई झंझट भी आती तो हरवल्लभ अपनी पत्नी से कहते, 'नई बहू से पूछो कि क्या करना चाहिए? उसी से पूछो। प्रफुल्ल की सलाह से काम करने से दिन पर दिन श्रीवृद्धि होने लगी है।'

इस प्रकार अन्न-धन और परिजन-परिवार से परिपूर्ण हो कर यथासमय हरवल्लभ ने परलोक-यात्रा की।

अब व्रजेश्वर ही मालिक हुआ। प्रफुल्ल के गुणों से व्रजेश्वर के हाथ में खूब नगद रुपये भी आने लगे। तब एक दिन व्रजेश्वर ने कहा, 'मेरा वह पचास हजार रुपया जो कर्ज लिया था, अब दे दो।'

'क्यों, तुम रुपये ले कर क्या करोगी?'

'मैं कुछ नहीं करूँगी। लेकिन वह रुपया मेरा नहीं था—श्रीकृष्ण काथा

—कंगालों-गरीबों का था। उन्हीं दीन-दुखियों में बाँट देना होगा।'

'सो कैसे ?'

'उन्हीं रुपयों से एक अतिथि-शाला बनवाऊँगी।'

व्रजेश्वर ने अतिथिशाला बनवाई। उसके मध्य एक अन्नपूर्णा की मूर्ति स्थापित कर के अतिथिशाला का नाम रखा—देवी निवास।

यथासमय पुत्रों पौत्रों से भरी-पूरी प्रफुल्ल ने स्वर्गारोहण किया। तब देश के लोग कहने लगे—हम लोग मातृहीन हो गये।

रंगराज, दिवा और निशा में देवीगढ़ ने रह कर भगवान श्रीकृष्ण का प्रसाद पा कर सुख से जीवन बिताया और परलोक की यात्रा की।

लेकिन भवानी ठाकुर के भाग्य में यह सब नहीं लिखा था।

अंग्रेजों ने राज्य-शासन का भार ग्रहण किया। राज्य सुशासित हुआ। इस लिए भवानी ठाकुर ने भी डकैती बन्द कर दी।

तब भवानी ठाकुर ने सोचा, 'अब मुझे प्रायश्चित करना है।'

यही सोच कर भवानी ठाकुर ने अपने को अंग्रेजों से गिरफ्तार कराया। सभी डकैतियों की बात को कबूल किया। उपयुक्त सजा के लिए प्रार्थना की।

अंग्रेजी सरकार ने आदेश दिया, 'आजीवन काले पानी की सजा।'

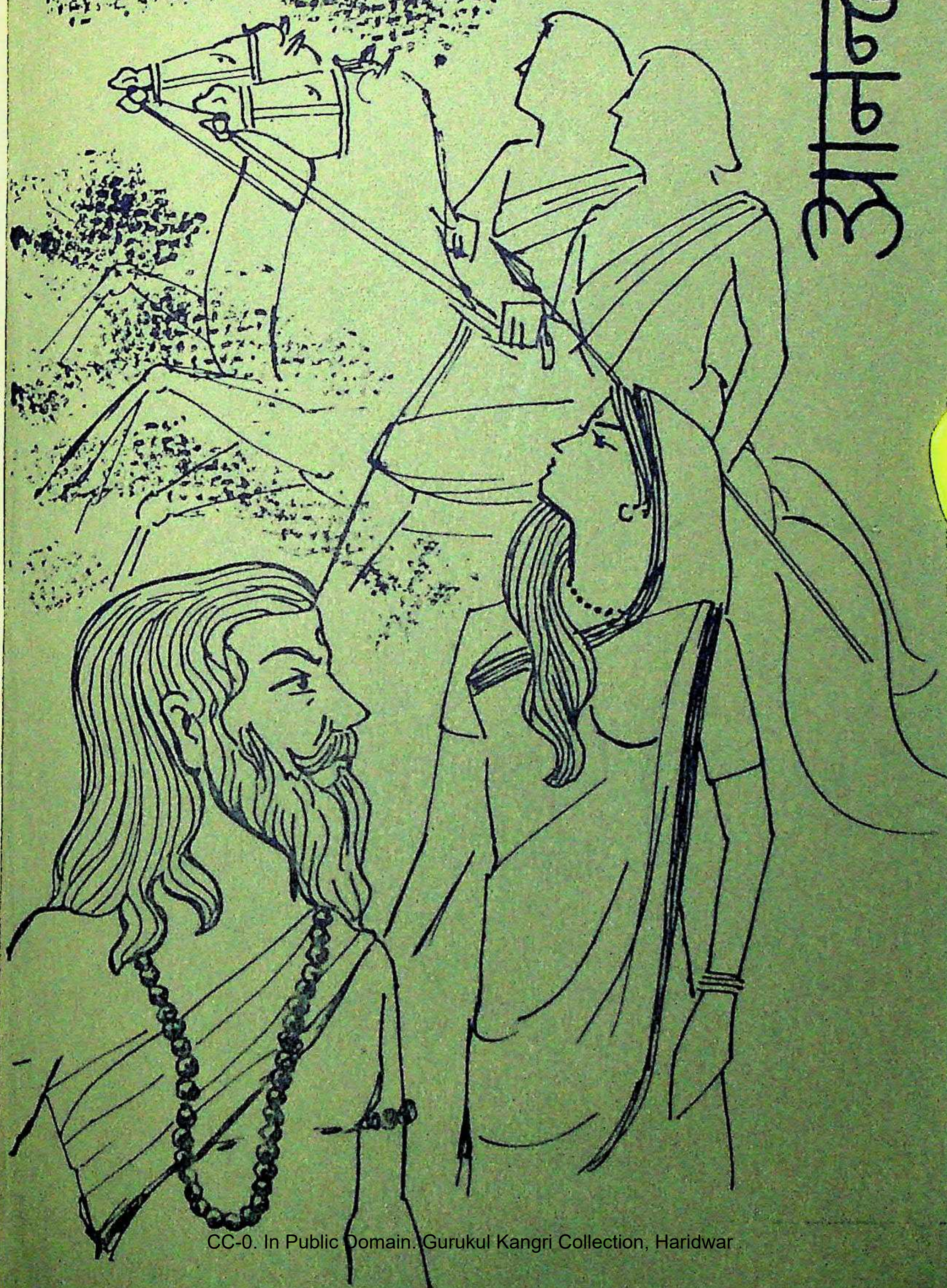
प्रफुल्लमन से भवानी ठाकुर दूसरे द्वीप में चले गये।

एक बार आओ, प्रफुल्ल !

एक बार इस देश-समाज के सामने खड़ी हो कर देखो। एक बार इस समाज की ओर मुँह कर के कहो, 'मैं नई नहीं हूँ, मैं पुरातन हूँ। मैं मात्र एक वाक्य हूँ, कितनी बार मैं आई हूँ। तुम लोग मुझे भूल गये हो। इसी से एकबार मैं फिर आई हूँ—

परित्रानाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मंसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे-युगे ॥'




आनन्दमठ

आनन्दमठ

□

[रचनाकाल : सन् १८८२]

□

बंगाल के जातीय-जीवन के संगठन में 'आनन्दमठ' का अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान है। एक समय था जब राष्ट्रकर्मियों के एक हाथ में गीता रहती थी और एक हाथ में 'आनन्दमठ' की प्रति। बंगाल के राष्ट्रीय-इतिहास में संन्यासी सम्प्रदाय का अलग महत्व रहा है और संन्यासी सम्प्रदाय की प्रेरणा थी—'आनन्दमठ' की कथा। सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय गीत 'वन्दे-मातरम्'—'आनन्दमठ' के अन्तर्गत ही रचा गया।

गत शताब्दी के अन्तिम चरण में भारतवर्ष का जातीय-जीवन अत्यन्त ही संघर्षमय रहा है। कलकत्ता तब था भारतवर्ष का शासन-केन्द्र, वही था समस्त राष्ट्रीय आन्दोलनों का केन्द्र भी।........उसी समय समसामयिक परिस्थितियों से प्रेरित हो कर ही बंकिमचन्द्र ने 'आनन्दमठ' की रचना की।

'आनन्दमठ' के सम्बन्ध में उस युग के प्रमुख साप्ताहिक पत्र The Liberal ने लिखा :

'The leading idea of the plot is this—should the national mind feel justified in harbouring violent thoughts against the British Government? or to present the question in another form, is the establishment of English supermacy providential in any sense? or to put it in a still more final and conclusive form, with what purpose and with what immediate end in view did providence send the British to this country? The immediate object is to put an end to Moslem tyranny and anarchy in Bengal........'

'इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका' में 'बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्याय' शीर्षक-प्रबन्ध में लिखा गया :

'Of all his works, however, by far the most important, from its astonishing political consequences was the 'Anandmath' which was published in 1882, about the time of the agitation arising, out of the Ilbert Bill. The story deals with the Sanyasi rebellion of 1772

near Purnea, Tirhut and Dinapur, and its culminating episode is a crushing victory won by the rebels over the united British and Mussalman forces, a success which was not, however, followed up, owing to the advice of a mysterious 'Physician' who, speaking as a divinely-inspired prophet, advises Satyananda, the leader of 'the Children of the Mother,' to abondon further resistance, since a temporary submission to the British rule is a necessity, for Hinduism has become too speculative and unpractical, and the mission of the English in India is to teach Hindus how to reconcile theory and speculation with the facts of science.........But though the 'Anandmath' is in form an apology for the royal acceptance of British rule, it is none the less inspired by the ideal of the restoration, sooner or later, of a Hindu kingdom in India. This is especially evident in the occasional verses in the book, of which the 'Bandematram' is the most famous.'

श्री अरविन्द ने 'वन्देमातरम्' का अंग्रेजी अनुवाद किया। देश-विदेश की बीस से अधिक भाषाओं में 'आनन्दमठ' का अनुवाद हो चुका है।



उपक्रमणिका

खूब विस्तृत अरण्य। अरण्य में अधिकांश शाल के पेड़ तथा और भी अनेक जातियों के पेड़ हैं। पेड़ों के सिरों से सिरे, पत्तों से पत्ते मिले हुए, ऐसी अनन्त श्रेणियाँ चली गई हैं। उनमें विच्छेद नहीं, छिद्र नहीं रोशनी का रास्ता तक बन्द, इस तरह पत्तों का अनन्त समुद्र, कोसों पर कोस, कोसों पर कोस हवा की तरङ्गों तर तरङ्गें मारते लहराते चले गये हैं। नीचे घना अँधेरा, दोपहर को भी अंधकार, डरावना। उसके भीतर कभी आदमी नहीं जाता। पत्तों के अनन्त मर्मर और जंगली पशु-पक्षियों के शोर के सिवा दूसरा शब्द उसके भीतर नहीं सुन पड़ता।

एक तो यह विस्तृत बहुत ही निविड़ अंधकारमय अरण्य, फिर रात का समय। रात का दूसरा पहर। रात बहुत ही अँधेरी, जङ्गल के बाहर भी अँधेरा, कुछ दिखाई नहीं पड़ता। जङ्गल के भीतर और बाहर एक जैसा अँधेरा है।

जानवर और चिड़ियाँ भी बिलकुल खामोश। लाखों, करोड़ों जानवर, चिड़ियां और कीड़े-मकोड़े उस अरण्य में रहते हैं; कोई भी कोई शब्द नहीं कर रहा। बल्कि वह अन्धकार अनुभव किया जा सकता है—शब्दमयी पृथ्वी का वह निस्तब्धभाव अनुभव किया जा सकता। उस अनन्त शून्य अरण्य में, अन्धकारमय निशीथ में, उस अनुभवनीय निस्तब्धता में शब्द हुआ—'क्या मेरा मनस्काम सिद्ध नहीं होगा ?'

यही शब्द होने के बाद वह अरण्य फिर निस्तब्धता में डूब गया। कौन कहेगा कि इस अरण्य में अभी मनुष्य-शब्द सुनाई पड़ा था ? कुछ देर बाद फिर वही शब्द हुआ,

फिर उस निस्तब्धता को भेद कर मनुष्य-कण्ठ ध्वनित हुआ—क्या 'मेरा मनस्काम सिद्ध नहीं होगा ?'

इस तरह तीन बार उस अन्धकार-समुद्र में शब्द गूँजे। तब उत्तर मिला, 'तुम्हारा प्रण क्या है ?'

'प्रण मेरा जीवनसर्वस्व है।'

'जीवन तुच्छ है, सभी कुछ त्याग कर सकते हो।'

'और क्या है ? और क्या दूँ ?'

'भक्ति !'

पहला भाग

| १ |

११७६ साल की गरमियों में एक दित पदचिह्न ग्राम में बड़ी तेज धूप थी, बड़ी गरमी। गाँव घरों से भरा-पूरा, परन्तु आदमी नहीं दिखाई पड़ते। बाजार में कतार की दूकानें, हाट में कतार की कतार मुड़ैयाँ, टोले टोले में सैकड़ों मिट्टी के घर, बीच बीच में ऊँची-नीची अट्टालिकायें। आज सब नीरव। बाजार में दूकानें बन्द, दूकानदार कहाँ भाग गये, पता नहीं। आज बाजार का दिन, बाजार नहीं लगा। भीख का दिन, भिखारी नहीं निकले। जुलाहे करघे का काम छोड़ कर घर में एक ओर पड़े रो रहे, व्यवसायी कारोबार भूल कर गोद में लड़का लिये रो रहे। दानियों ने दान बन्द कर दिया। अध्यापकों ने पाठशाला बन्द कर दिया। बच्चे भी शायद अब रोने की हिम्मत नहीं करते। राज-पथ पर आदमी नहीं दिखाई पिड़ते। तालाब में नहाने वाला नहीं घर के दरवाजे पर आदमी नहीं दिखता। पेड़ पर चिड़ियाँ नहीं दिखतीं। चरागाह में पशु नहीं दिखते। सिर्फ मरघट में स्यार और कुत्ते हैं। एक बड़ी अट्टालिका—उसके बड़े बड़े, छड़ वाले खम्भे दूर से दिखाई पड़ते हैं—घरों के उस जंगले में शैलशिखर जैसी शोभा पा रही है। शोभा भी कैसी ? उसके द्वार बन्द हैं, घर में आदमी का नाम नहीं, कोई आवाज नहीं, हवा के लिए भी जैसे रुकावट हो। घर के भीतर कमरे में दोपहर को भी अँधेरा है। अँधेरे में, आधी रात में फूली दो कलियों-सी एक दम्पति बैठी सोच रही है। उसके सामने मन्वन्तर है।

११७४ साल की फसल अच्छी नहीं रही, इसलिए ११७५ साल में चावल की दर कुछ बढ़ गई—लोगों को तकलीफ थी, लेकिन राजा ने कौड़ी-कौड़ी लगान वसूल लिया। लगान कौड़ी-कौड़ी चुकता कर गरीब किसान एक वक्त खा कर रहे। फिर ११७५ साल में बारिश अच्छी हुई। लोगों ने सोचा, शायद देवता की कृपा

हुई । आनन्द से फिर चरवाहों ने गोचरों में गीत गाये, किसानों की स्त्रियों ने फिर चांदी के बाजूबन्द गढ़ा देने के लिए अपने-अपने पति से उपद्रव मचाना शुरू किया । एकाएक क्वार में देवता विमुख हो गये । क्वार और कार्तिक में एक बूँद पानी नहीं बरसा, खेतों में धान सूख कर बिलकुल पैरा हो गया । जिन दो-एक के यहां कुछ हुआ, उसे सरकार के कर्मचारियों ने सिपाहियों के लिए खरीद कर लिया, आदमियों को खाने को नहीं मिला । पहले एक वक्त उपवास किया, फिर रोज ही आधे पेट रहने लगे, इसके बाद दोनों वक्त का उपवास शुरू हुआ । जो कुछ थोड़ी-सी चैतवाली फसल हुई, वह मुँह तक पहुँचते-पहुँचते खत्म हो गई । परन्तु मुहम्मद रजा खाँ कर वसूल करने के अफसर थे, सोचा, मैं इस वक्त सरफराज हूँगा । एक साथ सैकड़े दस रुपये के हिसाब से कर बढ़ा दिया । पूरे बङ्गाल में लोग फूट-फूट कर रोने लगे ।

लोग पहले भीख माँगने लगे, इसके बाद, भीख भी कौन दे ? उपवास करने लगे । फिर रोगों के शिकार होने लगे । ढोर बेचे, फिर हल और माची बेची, बीज के धान बेचे, घर-द्वार बेचे, जर-जमीन बेची । इसके बाद लड़कियाँ बेचना शुरू किया, फिर लड़के भी बेचने लगे इसके बाद स्त्री तक बेचने लगे । इसके बाद लड़की-लड़का-स्त्री कौन खरीदे ? खरीदार नहीं, सभी सब कुछ बेचना चाहते हैं । 'भोजन' के टोटे से पेड़ों के पत्ते खाने लगे । तरह-तरह की घास, बाँदा और घासों के दाने खाने लगे । नीची जाति के लोग कुत्ते, चूहे और बिल्लियाँ तक खाने लगे । बहुत से भाग गये, जो भागे, वे विदेश में भूखों मरे । जो नहीं भागे, वे अखाद्य खा कर, न खा कर, रोगों के शिकार हो कर मरे ।

बीमारियों को अवसर मिला—बुखार, हैजा, क्षय और चेचक होने लगे । चेचक का खास तौर से दौरदौरा हुआ । घर-घर चेचक से लोग मरने लगे । कौन किसे पानी दे, कौन किसे छुए ? कोई किसी की दवा नहीं करता, कोई किसी को नहीं देखता, मरने पर कोई उठा कर नहीं फेंकता, अति रमणीय देह अट्टालिका में अपने आप सड़ती है जिस घर में चेचक एक दफा घुस जाती, उस घर के रहने वाले, रोगी को छोड़ कर भय से भाग जाते ।

महेन्द्रसिंह पदचिह्न ग्राम के बड़े धनवान् व्यक्ति हैं, परन्तु आज धनी और निर्धन की एक ही दर है । इस दुःख के समय व्याधि से ग्रस्त हो कर उनके आत्मीय-स्वजन, दास-दासियाँ सभी चले गये हैं । कोई मर गया है, कोई भाग गया है । उस बड़े परिवार में अब केवल वे हैं, उनकी पत्नी हैं और एक छोटी लड़की है ।

उनकी पत्नी कल्याणी ने सब चिन्ता छोड़ कर खुद गोशाला जा कर गाय लगाई । फिर दूध गर्म कर के लड़की को पिला कर गाय को चारा-पानी देने गईं । लौट कर आईं, तब महेन्द्र ने कहा, 'इस तरह कितने दिन चलेगा ?'

कल्याणी बोली, 'बहुत ज्यादा दिन नहीं। जितने दिन चलता है, मैं जितने दिन चला सकूँगी; चलाती हूँ, इसके बाद तुम लड़की को ले कर शहर चले जाना।'

'शहर अगर जाना है तो तुम्हें फिर इतनी तकलीफ क्यों दूँ? चलो न, अभी चलें।'

बाद को दोनों में बड़ी बातचीत हुई।

कल्याणी बोली, 'शहर जाने से क्या कोई विशेष उपकार होगा?'

महेन्द्र ने कहा, 'वह जगह भी, मुमकिन, इसी तरह जनहीन हो, जान बचाने का उपाय भी न हो।'

'मुर्शिदाबाद, कासिमबाजार या कलकत्ता जाने पर जान बच सकती है। यह जगह अब छोड़ देना ही हर तरह से उचित है।'

'यह मकान बहुत समय से, पुरखों द्वारा सञ्चित धन से, पूर्ण है, यह सब अब चोर लूट से जायँ गे।'

'अगर लूटने आयें तो क्या हम दो आदमी रोक सकें गे? जान नहीं बची तो धन का भोग कौन करे गा? चलो, अभी ही बन्द कर के चलें। जान रही तो लौट कर भोग करेंगे।'

'क्या तुम रास्ता चल सको गी? कहार तो सब मर गये हैं, बैल हैं तो गाड़ीवान नहीं, गाड़ीवान है तो बैल नहीं।'

'मैं रास्ता चलूँ गी, तुम चिन्ता मत करो।'

कल्याणी ने मन ही मन सोचा, न होगा रास्ते में ही मर जाऊँ गी, फिर भी तो ये दो आदमी बचे रहेंगे।

दूसरे दिन सुबह दोनों ने कुछ धन साथ ले कर, हर कमरे और घर में ताला लगा कर, ढोरों को खोल कर, लड़की को गोद में ले कर राजधानी की ओर यात्रा की। चलते समय महेन्द्र ने कहा, 'राह बड़ी दुर्गम है। कदम-कदम पर डाकू और लुटेरे घूम रहे हैं, खाली हाथ चलना उचित नहीं।' यह कह कर महेन्द्र घर लौट कर बन्दूक और गोली ले गये।

देख कर कल्याणी ने कहा, 'अगर अस्त्र की बात सोची तो सुकुमारी को जरा ले लो, मैं भी अस्त्र ले आऊँ।' यह कह कर कल्याणी लड़की को महेन्द्र की गोद में दे कर घर के भीतर गईं।

महेन्द्र ने कहा, 'तुम कौन-सा हथियार बाँधो गी?'

कल्याणी ने लौट कर छोटी-सी जहर की डिबिया कपड़े में छिपा ली। दुःख के दिन, भाग्य में, पता नहीं क्या बदा है, सोच कर कल्याणी ने पहले से विष जुटा रक्खा था।

११

जेठ का महीना, कड़कती धूप, पृथ्वी से आग, हवा से आग उठ रही है। आसमान तपे ताँबे के चँदोवा-सा, रास्ते की धूल चिनगारियों-सी। कल्याणी को पसीना आने लगा। कभी बबूल की छाँह में, कभी खजूर की छाँह में बैठ कर सूखते तालाबों का गँदला पानी पी-पी कर बड़े कष्ट से राह चलने लगी। लड़की महेन्द्र की गोद में थी। रह-रह कर महेन्द्र लड़की को हवा करते गये। एक-एक दफा पेड़ों की छाया में बैठ कर दोनों विश्राम कर लेते थे। कल्याणी की सहनशीलता देख कर महेन्द्र विस्मित हुए। कपड़े का छोर भिगो कर महेन्द्र ने पास के पोखर से पानी ला कर अपने और कल्याणी के मुँह पर, हाथों पर, पैरों पर और सिर पर डाला।

कल्याणी कुछ ठण्ढी हुई, परन्तु भूख से दोनों बहुत व्याकुल हुए। वह भी सह लिया लेकिन लड़की से भूख और प्यास नहीं सही जाती, इसलिए वे फिर रास्ता चलने लगे। आग की लपटें तैर कर शाम से पहले एक चट्टी में पहुंचे। महेन्द्र को मन ही मन बड़ी आशा थी कि चट्टी पहुँच कर स्त्री और कन्या के मुँह में ठण्ढा पानी डाल सकेंगे, जान बचाने के लिए कुछ खाना खिला सकें गे। परन्तु कहाँ ? चट्टी में तो एक भी आदमी नहीं। वड़े-बड़े कमरे खाली पड़े हैं। आदमी भाग गये हैं। महेन्द्र ने इधर-उधर देख कर स्त्री और कन्या को एक कमरे में लिटाया। खुद बाहर निकल कर ऊँची-ऊँची आवाज़ें लगाते हुए आदमियों को पुकारने लगे। कोई जवाब नहीं मिला। तब महेन्द्र ने कल्याणी से कहा, 'तुम जरा हिम्मत कर के अकेली रहो, देखूँ; अगर कहीं गाय हो, श्रीकृष्ण दया करें, मैं दूध लाऊँ गा।' यह कह कर एक मिट्टी का छोटा घड़ा हाथ में ले कर महेन्द्र बाहर निकले।

|२|

महेन्द्र चले गये। कल्याणी अकेली, बालिका को लिये हुए उस निर्जन अन्धेरे कमरे में चारों ओर देख रही थीं। उनके मन को बड़ा डर लग रहा था। कोई कहीं नहीं, आदमी की कहीं कोई आहट भी नहीं मिलती, सिर्फ स्यार और कुत्तों की आवाज आ रही है। वे सोच रही थीं, 'क्यों उन्हें मैंने जाने दिया ? कुछ देर और भूख-प्यास सह लेती। चारो ओर से दरवाजे बन्द कर लूँ।' परन्तु एक भी दरवाजे में किवाड़े या अगंला नहीं। इस तरह चारो ओर देखते-देखते सामने के द्वार पर एक छाया-सी देखी। आदमी जैसी आकृति मालूम दी, परन्तु आदमी नहीं मालूम देता। बहुत ही सूखा, दुबला निहायत काला रंग, नङ्गा, विकट आकार के आदमी की तरह आ कर दरवाजे

पर खड़ा हुआ। कुछ देर बाद उस छाँह ने जैसे हाथ उठाया, हाड़-से लगे चमड़े वाले बहुत ही लम्बे सूखे हाथ की लम्बी सूखी अँगुलियों से जैसे किसी को संकेत कर के बुलाया। कल्याणी के प्राण सूख गये। तब उसी तरह की एक और छाँह-सूखी, काली, लम्बी, नङ्गी, पहले वाली छाँह के पास आ कर खड़ी हुई। इसके बाद एक और आई, इसके बाद एक और, कितनी ही आईं, धीरे-धीरे चुपचाप कमरे में घुसने लगीं। वह प्राय: अँधेरा रहने वाला घर आधी रात के मरघट की तरह भयङ्कर हो गया। तब प्रेत जैसी वे मूर्तियाँ कल्याणी और उनकी लड़की को घेर कर खड़ी हो गईं। कल्याणी प्राय: मूर्च्छित हो गईं। काले-काले, दुबले-दुबले वे लोग तब कल्याणी और उनकी कन्या को उठा कर घर के बाहर ला कर, खेत पार करते हुए एक जङ्गल के भीतर ले गये।

कुछ देर बाद महेन्द्र बड़े में दूध ले कर वापस पहुँचे। देखा, कहीं कोई नहीं। इधर-उधर खोजा, लड़की का नाम ले कर, अन्त में स्त्री का नाम ले कर बहुत पुकारा, कोई जवाब नहीं मिला, कोई टोह नहीं मिली।

|३|

जिस वन में चोरों ने कल्याणी को ला कर उतारा, वह बड़ा मनोहर था। वहाँ उजाला नहीं, शोभा देखें ऐसी आँख भी नहीं, दरिद्र के हृदय के सौन्दर्य की तरह उस वन का सौन्दर्य गुप्त रहा। देश में भोजन रहे या न रहे, वन में फूल हैं, फूलों की सुगन्ध से उस अन्धकार में भी प्रकाश मालूम दे रहा था। बीच में साफ सुकोमल, फूलों से भरी भूमि पर चोरों ने कल्याणी और उनकी लड़की को उतारा। वे लोग उन्हें घेर कर बैठे। फिर वे लोग वाद-विवाद करने लगे कि इन्हें क्या किया जाय? जो कुछ गहने कल्याणी के साथ थे, उन लोगों ने पहले ही झटक दिए थे। एक दल उनके बँटवारे में उलझा था। अलंकारों का बँटवारा हो जाने पर एक चोर ने कहा, 'मैं चाँदी-सोना ले कर क्या करूँगा? एक थान गहना ले कर कोई एक मुट्ठी चावल मुझे दे, भूख से जान निकल रही हैं, आज सिर्फ पेड़ के पत्ते खा कर हूँ।'

एक के यह बात कहने पर सभी वैसा ही कह कर शोर मचाने लगे, 'चावल दो, चावल दो, भूख मे जान निकल रही है, सोना-चाँदी नहीं चाहिए।' सरदार उन्हें रोकने लगा, लेकिन कोई रुका नहीं। क्रमश: ऊँचे गले से बातचीत होने लगी, गालियाँ चलने लगीं, मारपीट की नौबत आ गई। जो-जो गहने बँटवारे में लोगों को मिले थे

वही फेंक कर गुस्से से सरदार को मारा। सरदार ने दो-एक को मारा; तब सब मिल कर सरदार पर टूटे और मारने लगे। सरदार भूख का मारा और दुबला था, दो-चार हाथ पड़ते ही जमीन पर आ गया और जान निकल गई। तब भूखे, बदहवास चोरों में से एक ने कहा, 'स्यार और कुत्तों का माँस खाया है, भूख से जान की आ पड़ी है, आओ भाइयो, आज इस मुड्ढ को खाएँ।' तब सब आदमी 'जय काली' कह कर ऊँचा नारा लगाने लगे। 'आज आदमी का मांस खायेंगे।' यह कह कर वे दुबली-दुबली, काली-काली प्रेत-जैसी मूर्तियाँ अँधेरे में खिलाखिला कर हँसती हुई तालियाँ बजा-बजा-कर नाचने लगीं। सरदार की देह जलाने के लिए एक आदमी आग जलाने लगा। सूखी लता, लकड़ी और तिनके ला कर चकमक पत्थर से आग निकाली और लकड़ी जला दी। आग धीरे-धीरे जलने लगी, पास के आम, नीबू, कटहल, ताड़, इमली और खजूर आदि के लहलहे पेड़-पल्लव धीरे-धीरे चमकने लगे; उजाले से कहीं पत्ते, झिलमिलाने लगे, कहीं घास; कही अंधेरा और गहरा हो गया। आग तैयार हो जाने पर एक आदमी मुर्दे की टाँग पकड़ कर घसीट कर आग में फेंकने लगा। तब एक दूसरे ने कहा, 'ठहरो, ठहरो, अगर आदमी का माँस खा कर ही आज प्राण बचाने हैं, तो इस बुड्ढे का सूखा मांस क्यों खायँ? आज जो कुछ लूट ले आये हैं, वही खायँगे। आओ, उस छोटी लड़की को जला कर खायँ,' एक दूसरे ने कहा, 'जो कुछ हो जल्दी भूनो भाई, अब भूख नहीं सही जाती।' तब सब लोग ललचाई आँखों से, जहाँ कल्याणी कन्या को ले कर पड़ी थीं, उस ओर देखने लगे। देखा, वह जगह खाली है, लड़की भी नहीं, माँ भी नहीं। चोरों की तकरार के समय मौका देख कर कल्याणी लड़की को गोद में ले कर, उसके मुँह में स्तन लगा कर, वन से भाग गई थीं। शिकार भाग गया देख कर 'मार मार' कहते हुए वे प्रेत जैसे चोर चारों तरफ दौड़े। हालत बदलने पर आदमी खूँखार जानवर बन जाता है।

| ४ |

वन में घोर अन्धकार है, कल्याणी उसके भीतर रास्ता नहीं पा रही। सटे हुए पेड़ों, लताओं और काँटों से एक तो रास्ता नहीं, तिस पर घना अँधेरा। काँटों के भीतर से कल्याणी वन में घुसती गई। लड़की के बदन में काँटे छिदने लगे। लड़की बीच-बीच में रो पड़ती। कल्याणी लोहूलुहान होती हुई वन के भीतर दूर तक चली गईं। कुछ देर बाद चाँद उगा। अब तक कल्याणी के मन में भरोसा था कि अँधेरे में चोर उन्हें नहीं देख पायेंगे, कुछ देर तक खोज कर पीछा छोड़ देंगे; परन्तु इस समय चाँद उगने पर

वह भरोसा भी जाता रहा। आकाश पर चढ़ कर चाँद ने वन के मस्तक पर उजाला फैला दिया—भीतर वन का अँधेरा उजाले से भाग गया। अन्धकार उज्ज्वल हो गया। बीच-बीच में छेदों के भीतर से चाँदनी झाँकने लगी। चाँद जितना ऊँचा चढ़ने लगा, उतना ही प्रकाश वन में फैलने लगा, अन्धकार और भी वन के भीतर छिपने लगा। कल्याणी कन्या को ले कर और भी वन के भीतर छिपने लगी। तब चोर लोग और भी चिल्लाते हुए चारों ओर से दौड़े आने लगे—लड़की डर कर और भी चिल्ला-कर रोने लगी। कल्याणी घबराईं; फिर भागने की कोशिश उन्होंने नहीं की; एक बड़े से पेड़ के नीचे कण्टकशून्य तृणमय स्थान में बैठ कर कन्या को गोद में ले कर केवल पुकारने लगी, 'कहाँ हो तुम ! जिन्हें मैं रोज पूजती हूँ, नित्य नमस्कार करती हूँ, जिनके भरोसे इस वन में भी प्रवेश कर सकी थी, कहाँ हो तुम हे मधुसूदन !' इसी समय भय से, भक्ति की प्रगाढ़ता से, भूख और प्यास की मारी कल्याणी, बाह्य ज्ञान से रहित भीतर से सचेत हो कर सुनने लगीं, अन्तरिक्ष में स्वर्गीय स्वर से आवाज गूँजी—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !
हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कल्याणी ने बचपन से पुराणों में सुना था कि देवर्षि वीणायन्त्र से भगवद्भजन करते हुए आकाशमार्ग से संसार का भ्रमण किया करते हैं, उसके मन में वही कल्पना जगने लगी। मन ही मन देखने लगीं, शुभ्र शरीर, शुभ्र केश, शुभ्र वसन, महाशरीर महामुनि वीणा हाथ में लिये हुए, चाँदनी से उज्ज्वल, नीले आकाश पथ में गा रहे हैं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

क्रमशः गीत पास आने लगा, और भी साफ सुनाई पड़ने लगा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

क्रमशः और भी पास—और साफ—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

अन्त में कल्याणी के बहुत पास वनस्थली को प्रतिध्वनित कर गीत का स्वर आया—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कल्याणी ने तब आँखें खोलीं। उस वन के अँधेरे से मिली अधखिली चाँदनी में देखा, सामने वही शुभ्र शरीर, शुभ्र केश, शुभ्र सफेद दाढ़ी-मूँछवाले, शुभ्र वसन ऋषि-मूर्ति। अनमनी होती हुई भी वैसी ही चेतना से कल्याणी ने सोचा, 'प्रणाम

करूँगी', परन्तु प्रणाम नहीं कर सकीं, सर झुकाते ही बिलकुल बेहोश हो कर धराशायी हो गईं।

।५।

उसी वन में एक जगह टूटी शिलाओं से घिरा हुआ एक बड़ा मठ है। पुरातत्त्वविद् देखने पर कह सकते थे, यह पहले बौद्धों का विहार था—इसके बाद हिन्दुओं का मठ बना है। इमारत दोमंजिली है, बीच में बहुत तरह के देव-मन्दिर हैं, और सामने एक नाट्यशाला, प्रायः सभी चहारदीवारों से घिरी हैं, और बाहर के पेड़ों की कतारों से इस तरह ढँकी हुई हैं कि दिन में भी पास से कोई नहीं समझ पाता कि यहाँ इमारतें हैं। अट्टालिकायें जगह-जगह से टूटी हुई हैं, परन्तु दिन में दिखाई पड़ता है कि उन टूटी जगहों की मरम्मत की गई है। देखते ही मालूम होता है कि इस घने दुर्भेद्य जंगल में आदमी रहते हैं। इसी मठ की एक कठोरी में एक बड़ा सा कुन्दा जल रहा था। कल्याणी ने पहले-पहल चेतना आने पर उसके भीतर देखा। सामने वही शुभ्र शरीर, शुभ्र वसन, महापुरुष। कल्याणी विस्मित आँखों से फिर देखने लगीं, अभी उसकी स्मृति लौट नहीं रही थी। तब महापुरुष ने कहा, 'माँ! देवता की जगह है, कोई शङ्का मत करना। थोड़ा सा दूध है, पियो; इसके बाद तुमसे बातें करूँगा।'

कल्याणी पहले कुछ भी नहीं समझ सकीं, इसके बाद क्रमशः मन में कुछ स्थिरता आने पर गले में आँचल खींच कर उस महात्मा को प्रणाम किया। उन्होंने समङ्गल आशीर्वाद दे कर एक दूसरे कमरे से मिट्टी का महकता हुआ बरतन निकाला और उस जलती आग में दूध गर्म किया। दूध गर्म होने पर उसे कल्याणी को दे कर बोले, 'माँ, थोड़ा-सा लड़की को पिलाओ, थोड़ा-सा खुद पियो, इसके बाद बातचीत करना।' कल्याणी प्रसन्नचित्त कन्या को दूध पिलाने लगीं। तब वे महापुरुष बोले, 'मैं जब तक न आऊँ, कोई चिन्ता न करना, कह कर वे कमरे से बाहर गये। बाहर से कुछ देर बाद लौट आ कर देखा, कल्याणी लड़की को दूध पिला चुकी हैं, लेकिन खुद कुछ भी नहीं पिया; जितना था, प्रायः उतना ही रखा हुआ है, बहुत थोड़ा खर्च हुआ है। उस पुरुष ने तब कहा, 'माँ, तुमने दूध नहीं पिया, मैं फिर बाहर जा रहा हूँ, तुम्हारे दूध पिये बिना नहीं लौटूँगा।'

वे ऋषितुल्य पुरुष यह कह कर जब बाहर जा रहे थे, तभी कल्याणी ने फिर उन्हें प्रणाम कर के हाथ जोड़े।

उसने पूछा, 'क्या कहना चाहती हो ?'

कल्याणी ने कहा, 'मुझे दूध पीने की आज्ञा मत दीजिए। कोई बाधा है। मैं नहीं पिऊँ गी।'

बड़े करुण स्वर से उसने कहा, 'कौन-सी बाधा है, मुझसे कहो, मैं वनवासी ब्रह्मचारी हूँ। तुम मेरी लड़की हो, तुम्हारी ऐसी कौन-सी बात है जो मुझसे नहीं कहो गी ? मैं जब वन से तुम्हें बेहोश हालत में उठा लाया, उस समय मालूम हुआ था—तुम भूख और प्यास की मारी हो, तुम नहीं खाओ-पियोगी तो बचोगी किस तरह ?'

तब कल्याणी नें टपकते आँसुओं से कहा, 'आप देवता हैं, आप से कहूँगी—मेरे पति इस समय तक बिना खाये हैं, उनसे मुलाकात हुए बिना या उनके खाने की खबर बिना सुने, मैं किसी तरह नहीं खाऊँ-पिऊँगा ?'

'तुम्हारे पति कहाँ हैं ?'

कल्याणी ने कहा, 'यह मुझे नहीं मालूम। उनके दूध की तलाश में निकलने पर चोर मुझे उठा कर ले आये हैं।' फिर ब्रह्मचारी ने एक-एक सवाल करते हुए कल्याणी और उनके पति का कुल हाल मालूम किया। कल्याणी ने पति का नाम नहीं बताया, बता भी नहीं सकतीं, परन्तु और-और परिचय के बाद ब्रह्मचारी समझ गये। पूछा, 'क्या तुम्हीं महेन्द्र की पत्नी हो ?' कल्याणी ने चुप रह कर जिस आग में दूध गर्म हुआ था, सर झुक कर उसमें लकड़ी लगाई। तब ब्रह्मचारो ने कहा, 'तुम मेरी बात मानो, दूध पियो, मैं तुम्हारे पति की खबर लाता हूँ। तुम दूध नहीं पियो गी तो मैं नहीं जाऊँगा।'

कल्याणी ने पूछा, 'क्या यहाँ थोड़ा-सा पानी होगा ?'

ब्रह्मचारी ने पानी का घड़ा दिखा दिया। कल्याणी ने अञ्जलि बढ़ाई, ब्रह्मचारी ने अञ्जलि पर पानी डाल दिया। पानी को ब्रह्मचारी के पैरों के पास ले जा कर कल्याणी ने कहा, 'आप इसमें पैर की धूल दीजिए।'

ब्रह्मचारी ने अँगूठे से पानी छू दिया। कल्याणी ने वही पानी पिया और कहा, 'मैंने अमृत पान किया—अब और कुछ खाने के लिए नहीं कहिएगा—पति का संवाद पाये बिना मैं और कुछ नहीं खाऊँ गी।'

तब ब्रह्मचारी ने कहा, 'इस देवालय में तुम निडर हो कर रहो, मैं तुम्हारे पति की तलाश में चला।'

रात बहुत हो गई। चाँद सर पर आ गया है। पूरा चाँद नहीं, चाँदनी उतनी निखरी नहीं। एक बहुत चौड़े प्रान्तर में वही अँधेरी छाँह वाली अस्पष्ट चाँदनी है। उस चाँदनी में प्रान्तर का ओर-छोर नहीं दिखाई पड़ता। प्रान्तर जैसे बिलकुल जन-शून्य है, भय की स्थली मालूम देता है। उसी ओर से मुर्शिदाबाद-कलकत्ता जाने का रस्ता है। रास्ते के किनारे एक छोटी पहाड़ी पर बहुत-से आम आदि के पेड़ हैं। पेड़ों के सिरे चाँदनी में झलमलाते हुए थर-थर काँप रहे हैं। ब्रह्मचारी उस पहाड़ी की चोटी पर चढ़ कर खड़े हुए, स्तब्ध हो कर कुछ सुनने लगे। उस अनन्त जैसे प्रान्तर में कोई शब्द नहीं, केवल पेड़ों का मर्मर शब्द है। एक जगह पहाड़ी की जड़ के पास बड़ा सा जंगल है। ऊपर पहाड़ी, नीचे आम रास्ता, बीच में वही जङ्गल। वहाँ कैसा तो शब्द हुआ। ब्रह्मचारी उसी तरफ चले गये। घने जङ्गल में प्रवेश किया, देखा, उस वन में पेड़ों के अंधेरे में नीचे कतार की कतार पेड़ों के तने के पास आदमी बैठे हुए हैं। आदमी लम्बे आकार के, काले और सशस्त्र हैं। पेड़ों के छेदों से छनती हुई चाँदनी में उनके चमकदार अस्त्र झलमला रहे हैं। ऐसे दो सौ आदमी बैठे हैं—एक बात भी नहीं कर रहे। धीरे-धीरे उनके बीच में जा कर ब्रह्मचारी ने जाने कैसा एक इशारा किया—कोई नहीं, किसी ने एक बात नहीं की, किसी ने कोई शब्द नहीं किया। वे सब के सामने से सब को देखते हुए गये, जैसे किसी को खोज रहे हैं लेकिन पा नहीं रहे। खोजते-खोजते एक आदमी को पहचान कर उसका बदन छू कर इशारा किया। इशारा करते ही वह उठा। ब्रह्मचारी उसे ले कर दूर आ कर खड़े हुए। यह आदमी नौजवान है। घनी काली दाढ़ी-मूँछों से मुँह ढँका हुआ है। तन्दुरुस्त और बड़ा सुन्दर जवान, गेरुए कपड़े पहने हुए, सब अङ्गों में चन्दन लिप्त ब्रह्मचारी ने उससे कहा, 'भवानन्द, महेन्द्रसिंह की कोई खबर है ?'

भवानन्द ने कहा, 'महेन्द्रसिंह आज सुबह अपनी स्त्री और कन्या को ले कर घर छोड़ कर जा रहा था, चट्टी में....'

यहाँ तक कहने पर ब्रह्मचारी ने कहा, 'चट्टी में जो कुछ घटित हुआ है, वह हम जानते हैं। किसने किया ?'

गांव के किसान हैं शायद। इस समय सब गाँवों के किसान-मजूर पेट की जलन से डाकू हो गये हैं। आज-कल कौन डाकू नहीं ? हम लोगों ने आज लूट कर खाया है। कोतवाल साहब का दो मन चावल जा रहा था, छीन कर वैष्णवों के भोग में लगाया है।

ब्रह्मचारी ने हँस कर कहा, 'चोरों के हाथ से मैंने उसकी स्त्री-कन्या को बचा लिया है। इस समय उन्हें मठ में रख आया हूँ। अब तुम पर यह भार है कि महेन्द्र को खोज कर उसकी स्त्री-कन्या को उसके जिम्मे कर आओ। यहाँ केवल जीवानन्द के रहने से काम निकल जाय गा।'

भवानन्द सहमत हुए। तब ब्रह्मचारी दूसरी ओर चले गये।

।७।

चट्टी में बैठ-बैठे सोचते रहने से कोई फल नहीं निकले गा यही विचार कर महेन्द्र उठे। शहर में जा कर अफसरों की मदद से लड़की और स्त्री की खोज करें गे, इस विचार से उसी तरफ चले। कुछ दूर चल कर रास्ते में देखा कुछ बैलगाड़ियों को घेर कर कुछ सिपाही जा रहे हैं।

११७६ साल में बङ्गाल में अंग्रेजों का शासन नहीं हुआ था। अंग्रेज तब बङ्गाल के दीवान थे। वे कर वसूल करते थे, परन्तु उस समय तब बङ्गालियों के धन-जन आदि की रक्षा और देख-रेख का भार पापिष्ठ, नराधम, विश्वासघातक, मनुष्य-कुल-कलङ्क मीरजाफर पर था। मीरजाफर आत्मरक्षा में अक्षम, बङ्गाल की रक्षा किस तरह करता ? वह मदक पीता और सोता रहता। अंग्रेज कर वसूल करते और चालान लिखते थे। बङ्गाली रोते और मिट्टी में मिलते थे।

बंगाल का कर अंग्रेजों का प्राप्य था, परन्तु शासन का भार नवाब पर था। जहाँ-जहाँ अंग्रेज अपना प्राप्य कर आप वसूल करते थे, वहाँ उन्होंने एक एक कलक्टर नियुक्त कर दिया था। कर वसूल हो कर कलकत्ता जाता था। आदमी चाहे भूखों मर जायें, लेकिन लगान की वसूली बन्द नहीं होती थी। फिर भी वैसी वसूली नहीं हुई क्योंकि माता वसुमती यदि धन पैदा न करें तो कोई गढ़ तो नहीं सकता। कुछ भी हो, जो कुछ वसूल हुआ है, वह गाड़ी में लद कर सिपाहियों के पहरे में कलकत्ता कम्पनी के खजाने में जा रहा था। आजकल डाकुओं का डर बहुत बढ़ा हुआ है, इसलिए हथियारबेन्द पचास सिपाही गाड़ी के आगे-पीछे कतारों में सङ्गीन चढ़ाये हुए चल रहे थे। धूप के कारण सिपाही दिन को रास्ता नहीं चलते, रात को ही चलते हैं। चलते-चलते उस खजाने की गाड़ी और सिपाहियों को महेन्द्र ने देखा। सिपाहियों और बैलगाड़ी से रास्ता रुका देख कर महेन्द्र एक बगल हो गये, फिर भी सिपाही उन पर चढ़ कर जैसे चलने को हुए, यह देख कर और यह तकरार का समय नहीं, सोच कर वे रास्ते के किनारे जङ्गल की बगल में उतर कर खड़े हुए।

तब एक सिपाही ने कहा, 'यह एक डाकू भागा जा रहा है।'

महेन्द्र के हाथ में बन्दूक देख कर उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया। खदेड़ कर उसने महेन्द्र का गला पकड़ा और 'साले, चोर' कह कर एकाएक एक घूँसा मारा और बन्दूक छीन ली। महेन्द्र खाली हाथ हुए, सिर्फ घूँसा जमा दिया। महेन्द्र को गुस्सा कुछ ज्यादा आ गया था। कहना अत्युक्ति है। घूँसा खा कर सिपाही घूम कर बेहोश हो कर रास्ते पर गिर गया। तब तीन-चार सिपाही आ कर महेन्द्र को पकड़ कर जबरदस्ती खींच कर साहब के पास ले गये और साहब से कहा कि इस आदमी ने एक सिपाही का खून किया है। साहब पाइप पी रहे थे, कहा, 'साले को पकड़ कर शादी करो।'

सिपाही समझ नहीं सके कि बन्दूक लिये डाकू से वे किस तरह शादी करेंगे। परन्तु, नशा उतरने पर साहब का मत बदले गा, शादी नहीं करनी हो गी, सोच कर तीन-चार सिपाहियों ने बैलगाड़ी की रस्सी से महेन्द्र का हाथ-पैर बाँध कर उसे गाड़ी पर रख दिया। महेन्द्र ने देखा, इतने आदमियों में हाथा-पाई करना व्यर्थ है, और बल-पूर्वक मुक्ति पाने पर भी क्या होगा? लड़की और स्त्री के बिछोह से महेन्द्र उस समय दुखी थे, बचने की कोई इच्छा न थी। सिपाहियों ने महेन्द्र को अच्छी तरह गाड़ी के पहिये में बाँधा। फिर जिस तरह सिपाही खजाना लिए जा रहे थे, उसी तरह मृदु, गम्भीर चाल से चले।

|८|

ब्रह्मचारी के आदेशानुसार भवानन्द धीमे स्वर से हरिनाम करते हुए जिस चट्टी में महेन्द्र बैठे थे, उसकी तरफ चले गये। सोचा, वहीं महेन्द्र की खोज की जा सकती है।

उस समय अंग्रेजों के बनवाये रास्ते भी नहीं थे। नगरों से कलकत्ता आने पर मुसलमान सम्राट् के बनवाये अपूर्व रास्ते से आना पड़ता था। महेन्द्र भी उसी रास्ते नगर जाते हुए दक्षिण से उत्तर जा रहे थे। तभी रास्ते में सिपाहियों से भेंट हुई थी। भवानन्द ताल-पहाड़ से जिस चट्टी की तरफ चले, वह भी दक्षिण से उत्तर ही थी। चलते-चलते जल्दी ही धनरक्षकों से मुलाकात हुई। उन्होंने भी महेन्द्र की तरह सिपाहियों के लिए रास्ता छोड़ा। एक तो सिपाहियों का सहज विश्वास था कि यह चालान लूटने के लिए डाकू अवश्य कोशिश करें गे, इस पर रास्ते में डाकू को उन्होंने गिरफ्तार भी किया है, फलतः भवानन्द को रात के समय फिर बगल होते देख कर उन्हें

विश्वास हुआ कि यह भी कोई डाकू है। सिपाहियों ने उन्हें भी उसी तरह पकड़ लिया।

भवानन्द हल्के से हँस कर बोले, 'क्यों जी क्या बात है ?'

सिपाही ने कहा, 'तुम साले डाकू हो।'

'देख रहे हो, भगवा पहने हुए ब्रह्मचारी हूँ मैं, डाकू क्या ऐसा ही होता है ?'

'बहुत साले ब्रह्मचारी-संन्यासी ही आजकल डाका डालते हैं।'

यह कह कर सिपाही भवानन्द के गले पर धक्के लगाते हुए ले चला। भवानन्द की आँखें उस अँधेरे में जल उठीं, परन्तु वे और कुछ न कह कर बड़े विनीत भाव से बोले, 'मालिक, क्या करना होगा, हुक्म दीजिए।'

सिपाही भवानन्द की विनय से सन्तुष्ट हो कर बोला, 'लो साले, सर पर एक गट्ठर रख लो।' यह कह कर सिपाही ने भवानन्द के सर पर एक गट्ठर रख दिगा। तब एक दूसरे सिपाही ने उससे कहा, 'नहीं भागे गा। उस साले को जहाँ बाँध रक्खा है, इस साले को भी गाड़ी पर वहीं बाँध रक्खो।' भवानन्द को तब और भी कौतूहल हुआ कि और किसे बाँध रखा है, देखूँ गा। तब भवानन्द ने सर की गठरी फेंक कर जिस सिपाही ने सर पर गठरी रक्खी थी, उसके गाल पर एक तमाचा मारा। फलतः सिपाही ने भवानन्द को भी बाँध कर गाड़ी पर चढ़ा कर महेन्द्र के पास डाल दिया। भवानन्द ने पहचाना कि ये ही महेन्द्र सिंह हैं।

सिपाही फिर अन्यमनस्क हो कर कोलाहल करते हुए आगे चले। बैलगाड़ी के पहिये कचर-कचर आवाज करने लगे। तब भवानन्द ने धीरे-धीरे, केवल महेन्द्र सुन सकें, ऐसे धीमे स्वर से कहा, 'महेन्द्रसिंह, मैं तुम्हें पहचानता हूँ, तुम्हारी मदद के लिए मैं यहाँ आया हूँ। मैं कौन हूँ, तुम्हें यह जानने की अभी जरूरत नहीं। मैं जो कुछ कहता हूँ, सावधानी से करो। अपने हाथ पर बँधी रस्सी को गाड़ी के पहिये पर रक्खो।'

महेन्द्र विस्मित हुए। परन्तु बिना कुछ बोले भवानन्द के कहे अनुसार काम किया। अँधेरे में ही गाड़ी के पहिये के पास कुछ सरक कर हाथों का बँधना गाड़ी के पहिये से छुलाया। पहिये की रगड़ से धीरे-धीरे रस्सी कट गई। इसके बाद पैरों वाली रस्सी भी उसी तरह काटी। इस तरह बन्धन से मुक्त हो कर भवानन्द के परामर्श के बिना हिले-डुले गाड़ी पर पड़े रहे। भवानन्द ने भी उसी तरह अपने बँधने काटे। दोनों चुप रहे।

जहाँ उस जंगल के पास सड़क पर ब्रह्मचारी ने खड़े हो कर चारों ओर निगाह दौड़ा कर देखा था, वहीं से इनका जाने का रास्ता था। उस पहाड़ के पास पहुँचने पर सिपाहियों ने देखा कि पहाड़ के नीचे टीले पर एक आदमी खड़ा है। चाँदनी से चमकते हुए नीले आकाश में उसका श्याम शरीर चित्रित है। देख कर हवलदार ने कहा, 'एक साला और भी है वह। उसे भी पकड़ लाओ। मोट ढोये गा।'

तब एक सिपाही पकड़ने को दौड़ा। वह आदमी स्थिर खड़ा हुआ, हिलता नहीं। सिपाही ने उसे पकड़ा, उसने कुछ कहा नहीं। उसे पकड़ कर हवलदार के पास ले आया, फिर भी वह कुछ नहीं बोला। हवलदार ने कहा, 'उसके सिर पर गट्ठर रक्खो।' सिपाही ने उसके सर पर गट्ठर रक्खा। उसने गट्ठर ले लिया। तब हवलदार घूम कर गाड़ी के पीछे-पीछे चला। इसी समय एकाएक पिस्तौल की आवाज हुई। हवलदार के सर पर गोली लगी, वह गिर गया और वहीं मर गया।

'इसी साले ने हवलदार को मारा है।' कह कर एक सिपाही ने मोटिये का हाथ पकड़ा। मोटिये के हाथ में तब भी पिस्तौल थी। उसने मोट फेंक कर पिस्तौल उलट कर सिपाही के सर पर मारा। सिपाही का सर फूट गया, वह निरस्त हुआ। इसी समय 'हरि! हरि! हरि!' शब्द कर के दो सौ शस्त्रधारी वहाँ आ गये और सिपाहियों को घेर लिया। सिपाही तब साहब के पहुँचने की राह देख रहे थे। डाकू आये सोच कर साहब भी जल्दी से गाड़ी के पास आये और गाड़ी को घेर कर चौकोर होने की आज्ञा दी। अंगरेज का विपत्ति के समय नशा उतर जाता है। उसी वक्त सिपाही चारों तरफ से सामने हो कर चौकोर खड़े हुए। फिर साहब की आज्ञा होने पर उन लोगों ने बन्दूक उठाई। इसी समय एकाएक साहब की कमर से उनकी तलवार किसी ने छीन ली। ले कर एक ही वार से उनका सर जुदा कर दिया। सर कट जाने पर साहब घोड़े से गिर गये, फिर बन्दूक चलने का हुक्म देना संभव नहीं हुआ। सबने देखा, एक आदमी गाड़ी पर खड़ा तलवार लिये, 'हरि हरि' शब्द कर रहा है और 'सिपाही मार' 'सिपाही मार' कह रहा है। वह भवानन्द थे।

एकाएक साहब का सर कट गया, देख कर और रक्षा के लिए किसी से आज्ञा न पाने पर सिपाही कुछ देर तक डरे हुए चुपचाप खड़े रहे। इस अवसर पर तेजस्वी दस्युओं ने उनमें से बहुतों को हत और आहत कर के गाड़ी के पास आ कर रुपये वाली सन्दूक अपने कब्जे में कर ली। सिपाहियों का उत्साह टूट गया, वे भाग खड़े हुए।

तब जो आदमी टीले पर खड़ा था और जिसने अन्त में युद्ध का प्रधान नेतृत्व लिया था, वह भवानन्द के पास आया। दोनों ने एक दूसरे का आलिङ्गन किया। भवानन्द ने कहा, 'भाई जीवानन्द, तुमने सार्थक व्रत लिया था।'

जीवानन्द ने कहा, 'भवानन्द! तुम्हारा नाम सार्थक हो।'

लूटा हुआ धन ठिकाने करने की व्यवस्था में जीवानन्द लगे। अपने अनुचरों के साथ वे जल्दी से दूसरी ओर चले गये। भवानन्द अकेले ही खड़े रहे।

| ९ |

गाड़ी से उतर कर एक सिपाही का हथियार छीन कर महेन्द्र युद्ध में शरीक होने को थे, परन्तु ऐसे समय उन्हें यही लगा कि ये लोग डाकू हैं; धन लूटने के लिए ही सिपाहियों पर हमला किया है। ऐसा विचार कर वे लड़ाई की जगह से हट गये। क्योंकि डाकुओं की सहायता करने पर उनके दुराचार में हिस्सा लेना होता। वे तलवार डाल कर धीरे-धीरे वह जगह छोड़ कर जा रहे थे, ऐसे समय भवानन्द उनके पास आ कर खड़े हुए। महेन्द्र ने पूछा, 'महाशय, आप कौन हैं ?'

भवानन्द ने कहा, 'तुम्हें इसकी क्या जरूरत ?'

'मुझे कुछ आवश्यकता है। आज आपने बड़ा उपकार किया है।'

'यह ज्ञान तुम्हें है, ऐसा नहीं मालूम था। तलवार ले कर फिर दूर ही क्यों खड़े रहे ? जमींदार के लड़के हो, घी-दूध पचाने में पटु हो, काम के समय बन्दर।'

भवानन्द की बात खत्म होते न होते महेन्द्र ने घृणा से कहा, 'यह कुकर्म है—डाका।'

भवानन्द ने कहा, 'डाका ही सही; पर हम लोगों ने तुम्हारा कुछ उपकार किया है। और भी कुछ उपकार करने की इच्छा रखते हैं।'

'तुम लोगों ने मेरा कुछ उपकार अवश्य किया है; परन्तु और क्या उपकार करोगे ? और डाकू के पास इतना उपकृत होने से मेरा अनुपकृत रहना ही अच्छा है।'

'उपकार लो या न लो, यह तो तुम्हारी इच्छा पर है। यदि इच्छा हो, तो मेरे साथ आओ; तुम्हारी स्त्री और कन्या से तुम्हें मिला दूँगा।'

महेन्द्र घूम कर खड़े हो गये, बोले, 'वह कैसे ?'

भवानन्द इस बात का जवाब दिये बिना चले। लाचार, महेन्द्र भी साथ-साथ चले। सोचते रहे, ये लोग कैसे डाकू हैं ?

| १० |

उसी चाँदनी रात में दोनों चले। महेन्द्र खामोश, शोक से कातर, गर्वित, कुछ कौतूहली।

भवानन्द ने एकाएक दूसरी मूर्ति धारण की। वह स्थिर-मूर्ति, धीर-प्रकृति संन्यासी अब नहीं; वह रण निपुण, वीर-मूर्ति, साहब का सिर उतार लेने वाली मूर्ति, अब

नहीं। ज्योत्स्नामयी शान्तिशालिनी प्रान्तर वन पहाड़ नदी वाली प्रकृति देख कर उनके चित्त को विशेष स्फूर्ति हुई। जैसे—समुद्र चन्द्रोदय से हँसा हो। भवानन्द हँसमुख, सवाक्, प्रियभाषी। बातचीत के लिए बड़े उतावले। बातचीत के लिए बड़े प्रयत्न किये, लेकिन महेन्द्र ने नहीं की। तब भवानन्द निरुपाय हो कर आप ही आप गाने लगे—

'वन्दे मातरम् !
सुजलां सुफलां मलयजशीतलाम्
शस्यश्यामलां मातरम्।'

महेन्द्र गीत सुन कर कुछ विस्मित हुए मगर समझ नहीं सके—सुजल्ला, सुफला, मलयजशीतला शस्यश्यामला माता कौन हैं ? पूछा, 'माता कौन हैं ?'

जवाब दिये विना भवानन्द गाने लगे—

''शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्
फुल्ल-कुसुमित-द्रुमदलशोभिनीम्
सुहासिनी सुमधुरभाषिणीम्
सुखदां वरदां मातरम्॥''

महेन्द्र ने कहा, 'यह तो देश है, यह तो माँ नहीं।'

भवानन्द ने कहा, 'हम किसी दूसरी माँ को नहीं मानते। जननी जन्म भूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी। हम कहते हैं जन्मभूमि ही जननी है; हमारे माँ नहीं, भाई नहीं'—स्त्री नहीं, पुत्र नहीं, घर नहीं, द्वार नहीं, हमारी है सिर्फ वही सुजला, सुफला, मलयज-समीरण-शीतला, शस्य-श्यामला—'

तब समझ कर महेन्द्र ने कहा, 'तो फिर गाओ।'

भवानन्द ने फिर गाया—

''वन्दे मातरम्।
सुजलां सुफलां मलयजशीतलां
शस्यश्यामलां मातरम्।
शुभ्र-ज्योत्स्ना-पुलकित-यामिनीम्,
फुल्ल कुसुमित द्रुमदलशोभिनीम्,
सुहासिनीं सुमधुरभाषिणीम्,
सुखदां वरदां मातरम्॥
सप्तकोटिकण्ठ-कलकल-निनाद कराले,
द्विसप्तकोटिभुजैधृत-खर-करवाले,
अबला केन मा एत बले।
बहुबलधारिणीं नमामि तारिणीम्
रिपुदलवारिणीं मातरम्॥

तुमि विद्या तुमि धर्म,
तुयि हृदि तुमि मर्म,
त्वं हि प्राणा: शरीरे ।
वाहुते तुम मा शक्ति,
हृदये तुमि मा भक्ति,
तोमारइ प्रतिमा गड़ि मन्दिरे-मन्दिरे ।
त्वं हि दुर्गा दशप्रहरणधारिणी,
कमला कमलदलविहारिणी
वाणी विद्यादायिनी, नमामि त्वां
नमामि कमलांममलांमतुलाम्
सुजलां सुफलां मातरम्
बन्दे मातरम्
श्यामलां सरलां सुस्मितां भूषिताम्
धरणीं भरणीं मातरम् ॥'

महेन्द्र ने देखा, दस्यु गाते-गाते रोने लगा। महेन्द्र ने तब सविस्मय पूछा, 'तुम लोग कौन हो ?'

भवानन्द ने कहा, 'हम लोग सन्तान हैं।'

'सन्तान क्या ? किसकी सन्तान ?'

'माँ की सन्तान।'

'अच्छा, सन्तान क्या चोरी कर के, डाका डाल कर माँ की पूजा करते हैं ? यह कैसी मातृभक्ति है ?'

'हम लोग चोरी नहीं करते, डाका नहीं डालते।'

'अभी-अभी तो गाड़ी लूटी ?'

'वह क्या चोरी-डाका है ? किसका रुपया लूटा ?'

'क्यों, राजा का।'

'राजा का ? यह रुपया जो वह ले गा, इस पर उसका क्या अधिकार है ?'

'राजा का राजभाग है।'

'जो राजा राज्यपालन नहीं करता, वह फिर राजा कैसे हुआ ?'

'तुम लोग सिपाहियों की तोपों के सामने किसी दिन उड़ा दिए जाओ गे, देखता हूँ।'

'बहुत सारे सिपाही देखे हैं, आज भी तो देखे।'

'अच्छी तरह नहीं देखा, एक दिन देखोगे।'

'देखा न हो, लेकिन एक दफे के अलावा दो दफे तो नहीं मरें गे ?'

'परन्तु इच्छापूर्वक मरने से फायदा ?'

'महेन्द्रसिंह ! मेरी धारणा थी कि तुम आदमी-जैसे आदमी हो, लेकिन अब देखा, सब जैसे हैं, तुम भी वैसे ही हो, सिर्फ घी-दूध के बहादुर हो। देखो, साँप मिट्टी पर छाती के बल रेंगता है, उससे नीच जीव मैंने तो और नहीं देखा, लेकिन उसकी गर्दन पर पैर रखने पर वह भी फन काढ़ कर खड़ा हो जाता है। तुम्हारा क्या किसी तरह भी धर्म नहीं छूटता ? देखो, जितने देश हैं—मगध, मिथिला, काञ्ची, काशी, दिल्ली, काश्मीर, किस देश की ऐसी दुर्दशा है ?—किस देश के आदमी खाने को अनाज न पा कर घास खाते हैं ? काँटे खाते हैं, बाँबी की मिट्टी खाते हैं, लता की पत्तियाँ खाते हैं ? किस देश के आदमी सियार-कुत्ते खाते हैं, मुर्दा खाते हैं ? किस देश के आदमियों को सन्दूक में रुपये रख कर चैन नहीं, सिंहासन पर शालग्राम रख कर चैन नहीं, घर में लड़की-बहू रख कर भरोसा नहीं ? लड़की-बहू के पेट में बच्चा रहने पर भरोसा नहीं; पेट चीर कर बच्चा निकालते हैं ? सब देशों के राजों में देख-रेख का सम्बन्ध है। हमारे मुसलमान राजा कहाँ रक्षा करते हैं ? धर्म गया, जाति गई, मान गया, अब तो प्राण भी जा रहे हैं। इन नशेबाज मुसलमानों को बेगैर भगाये क्या हिन्दुओं की हिन्दुआनी रहती भी है ?'

'किस तरह भगाओ गे ?'

'मर कर।'

'तुम अकेले भगाओ गे ? एक चाँटे से ?'

उत्तर में भवानन्द ने गाया,

'सप्तकोटिकण्ठ-कलकल-निनाद कराले,
द्विसप्तकोटिभुजैधृंत-खरकरवाले,
अबला केन मा एत बले ?'

'मगर देख रहा हूँ, तुम अकेले हो।'

'कैसे, अभी-अभी तो तुमने दो सौ आदमी देखे हैं।'

'क्या वे सब सन्तन हैं ?'

'सब सन्तान हैं।'

'और कितने हैं ?'

'ऐसे हजारों; और भी होंगे।'

'माना, दस-बीस हजार हुए, इससे क्या मुसलमानों से राज्य ले सकें गे ?'

'पलासी में अंगरेजों की कितनी फौजें थीं ?'

'अंगरेज और बङ्गाली ?'

'नहीं क्यों ? देह की ताकत कितना काम करती है ! देह में ज्यादा ताकत रही तो क्या गोले भी ज्यादा तेज चलते हैं ?'

'तो फिर अंगरेज और मुसलमानों में इतना फर्क क्यों ?'

'देखो, अंगरेज जान निकल जाने पर भी नहीं भागता, मुसलमान पसीना निकलने पर भाग खड़ा होता है, शरबत खोजता फिरता है, और इसके अलावा अंगरेज में जिद है, जो कुछ पकड़ता है, वह करता है। मुसलमान ढीला है, फिर, रुपये के लिए जान देता है। उसके सिपाही तनख्वाह नहीं पाते। इसके बाद आखिरी बात है हिम्मत, तोप का गोला एक जगह के अलवा दस जगह नहीं गिरे गा—इसलिए, एक गोला देख कर दस अदमियों के भगने की जरूरत नहीं। परन्तु एक गोला देखने पर मुसलमानों का कुनवा भर भाग खड़ा होता है। और गोलों की भरमार देख कर तो एक भी अंगरेज नहीं भागता।'

'तुम लोगों में ये सब गुण हैं ?'

'नहीं, परन्तु गुण पेड़ में नहीं फलते, अभ्यास करना पड़ता है।'

'तुम लोग क्या अभ्यास करते हो ?'

'देखते नहीं ? हम लोग संन्यासी हैं। हमारा संन्यास इसी अभ्यास के लिए है। काम पूरा होने पर, अभ्यास सध जाने पर, हम लोग फिर गृही होंगे। हमारे भी स्त्री-कन्या हैं ?'

'तुम लोग यह सब छोड़ कर माया से किनारा कर सके हो ?'

'सन्तान को झूठ नहीं बोलना चाहिए। तुम्हारे सामने झूठी बड़ाई नहीं करूँ गा। माया से किनारा कौन कर सकता है ? जो कहता है, मैं किनारा कर चुका हूँ, या तो उसने कभी माया की नहीं, या वह झूठ की हाँकता है। हमलोग माया से किनारा नहीं करते, हम व्रत की रक्षा करते हैं। तुम सन्तान होगे ?'

'अपनी स्त्री-कन्या की खबर पाये बिना मैं कुछ नहीं कह सकता।'

'चलो, तो अपनी स्त्री-कन्या को देखो, चलो।'

यह कह कर दोनों चले। भवानन्द फिर 'वन्दे मातरम्' गाने लगे। महेन्द्र का गला अच्छा था, संगीत में कुछ गति और अनुराग था, इसलिए साथ गाने लगे। देखा कि गाते-गाते आँखों में आँसू आने लगते हैं। तब महेन्द्र ने कहा, 'यदि स्त्री-कन्या न छोड़नी पड़े तो यह व्रत मुझे दो।'

'जो यह व्रत ग्रहण करता है, स्त्री-कन्या भी छोड़ता है। तुम अगर यह व्रत ग्रहण करो तो स्त्री-कन्या से मुलाकात नहीं कर पाओ गे। उनकी रक्षा का उचित प्रबन्ध किया जाय गा। परन्तु व्रत की सफलता तक उनका मुँह देखना मना है।'

'तब मैं यह व्रत नहीं लूँगा।'

| ११ |

रात बीत चुकी है। वह निर्जन भू-खण्ड अब-तक अन्धकार मय, शब्दहीन था, अब आलोकमय और पक्षियों के कूजन से शब्दमय हो कर आनन्दमय हो गया। उसी आनन्दमय प्रभात में—आनन्दमय कानन में, 'आनन्दमठ' में सत्यानन्द महाराज हिरण-चर्म पर बैठे हुए हैं, संध्या पूजन कर रहे हैं। पास ही जीवानन्द बैठे हैं। ऐसे समय भवानन्द महेन्द्रसिंह को साथ ले कर उपस्थित हुए। ब्रह्मचारी बिना कुछ कहे संध्या-पूजन करते रहे। किसी ने कोई बातचीत करने की हिम्मत नहीं की। बाद को, संध्या-पूजन समाप्त होने पर, भवानन्द और जीवनान्द दोनों ने उन्हें प्रणाम किया, और पदधूलि ग्रहण कर के विनीत भाव से बैठे। तब सत्यानन्द भवानन्द को इशारे से बाहर बुला ले गये। कुछ बातचीत हुई। इसके बाद दोनों के मन्दिर में लौटने पर, ब्रह्मचारी ने करुण व सहास्य मुख से महेन्द्र से कहा, 'बेटा, तुम्हारे दुःख से हम लोग बहुत दुखी हुए हैं, केवल उस दीनबन्धु की कृपा से तुम्हारी स्त्री-कन्या को कल रात हम बचा सके हैं।' यह कह कर ब्रह्मचारी ने कल्याणी की रक्षा का सब हाल कहा। इसके बाद कह, 'चलो, वे लोग जहाँ हैं, वहाँ तुमको ले चलें।'

यह कह कर ब्रह्मचारी आगे-आगे, और महेन्द्र पीछे-पीछे देवालय के भीतर गये। भीतर जा कर महेन्द्र ने देखा, खूब बड़ा और ऊँचा कमरा है। इस नये सूर्य से खिलते हुए प्रभात में जब बाहर की दुनिया सूर्य की किरणों से हीरों जैसी जग-मगा रही हैं, तब भी उस विशाल कक्ष में प्रायः अँधेरा है। कमरे के भीतर क्या है, पहले-पहल महेन्द्र नहीं देख पाये, देखते-देखते क्रमशः देखा, एक बड़ी चतुर्भुजी मूर्ति हैं, शङ्ख-चक्र-गदा-पद्म लिये हुए, हृदय में कौस्तुम शोभित है, सामने सुदर्शन-चक्र घूमता हुआ स्थापित है। मधु-कैटभ के रूप से दो बड़े छिन्न-मस्तक मूर्तियाँ, खून जैसे बह रहा हो, इस तरह चित्रित हो कर सामने हैं। बाई ओर, लक्ष्मी, मुक्तकुन्तला, कमलों की माला पहने हुए, त्रस्त सी खड़ी हैं, दाई ओर सरस्वती पुस्तक और वीणा लिये हुए, मूर्तिमान् राग और रागनियों से घिरी हुई खड़ी हैं। विष्णु की गोद में एक मोहिनी-मूर्ति है, लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक सुन्दरी, लक्ष्मी और सरस्वती से अधिक ऐश्वर्य-वाली। गन्धर्व, किन्नर, देवता, यक्ष उनकी पूजा कर रहे हैं। ब्रह्मचारी ने बहुत ही गम्भीर, बहुत ही डरे स्वर से पूछा, 'सब कुछ देख रहे हो?' महेन्द्र ने कहा, 'देख रहा हूँ।'

'विष्णु की गोद में क्या है, देखा है?'

'देखा है। वे कौन हैं?'

'माँ ।'

'माँ कौन ?'

'हम जिनके सन्तान हैं ।'

'वे कौन हैं ?'

'समय पर पहचानो गे; कहो—वन्दे-मातरम् । अब चलो, देखो, चलो ।'

तब ब्रह्मचाजी महेन्द्र को दूसरे कमरे में ले गये । वहाँ महेन्द्र ने देखा, एक अपूर्व, आठो गाँठ से भरी-पूरी सब गहने पहने हुए जगद्धात्री मूर्ति; महेन्द्र ने पूछा; 'ये कौन हैं ?'

'माँ—जो थीं ।'

'वह क्या ?'

'इन्होंने कुञ्जर, केशरी आदि वन्य-पशुओं को पैरों के तले दलित कर वन्य पशुओं के वासस्थान में अपना पद्मासन प्रतिष्ठित किया है । ये सभी अलङ्कारों से शोभित हास्यमयी सुन्दरी हैं । ये बाल-सूर्य की आभावाली, सब ऐश्वर्यों से भरी-पूरी हैं । इन्हें प्रणाम करो ।'

महेन्द्र ने भक्ति-भाव से जगद्धात्री-रूपिणी मातृ-भूमि को प्रणाम किया । ब्रह्मचारी ने उन्हें अँधेरी सुरङ्ग दिखा कर कहा, 'इस रास्ते आओ ।'

ब्राह्मचारी स्वयं आगे-आगे चले । महेन्द्र सभय पीछे-पीछे चले । भूगर्भ के एक अँधेरे कमरे में कहीं से थोड़ा-सा प्रकाश आ रहा था । उस क्षीण प्रकाश में एक काली मूर्ति उन्होंने देखी ।

ब्रह्मचारी ने कहा, 'देखो, माँ जो हुई हैं ।'

महेन्द्र ने सभय कहा, 'काली ?'

'काली, अन्धकार-समाच्छन्ना कालिमामयी । सर्वस्व हृत है, इसी लिए नग्ना हैं । आज देश में सर्वत्र श्मशान है—इसी लिए माँ कङ्कालमालिनी हैं । अपना शिव अपने पैरों तले दलित कर रही हैं, हाय माँ !'

ब्रह्मचारी की आँखों से दर-विगलित आँसुओं की धारा गिरने लगी । महेन्द्र ने पूछा, 'हाथ में खेटक-खप्पर क्यों ?'

'हमलोग माँ की सन्तान हैं । माँ के हाथ में अस्त्र यही दिया है, कहो, वन्दे-मातरम् ।'

'वन्दे-मातरम्' कह कर महेन्द्र ने काली को प्रणाम किया । तब ब्रह्मचारी 'इस रास्ते आओ' कह कर दूसरी सुरंग से चढ़ने लगे । एकाएक उनकी आँखों में प्रभात-सूर्य की किरणें उद्भासित हुईं । चारों ओर से मधुर-कण्ठ से चिड़ियाँ गा उठीं । दोनों ने देखा, संगमर्मर के बने प्रशस्त-मन्दिर के भीतर सोने की दश-भुजा प्रतिमा नवारुण-किरणों में ज्योतिमयी हो कर हँस रही है । ब्रह्मचारी ने प्रणाम कर के कहा, 'ये माँ जो

हों गी । दस भुजाएँ दस ओर प्रसारित हैं । उनमें नाना आयुधों के रूप से नाना शक्तियाँ शोभित हैं । पैरों के नीचे शत्रु विमर्दित है । पदाश्रित वीर-केशरी शत्रु पीड़न कर रहा है । 'दिग्भुजा', कहते-कहते सत्यानन्द गद्गद हो कर रोने लगे । दिग्भुजा, नानाप्रहरण-धारिणी, शत्रु-विमर्दिनी, वीरेन्द्रपृष्ठविहारिणी, दायें लक्ष्मी भाग्यरूपिणी, बायें वाणी विद्याविज्ञानदायिनी, साथ बलरूपी कात्तिकेय, कार्यसिद्धिरूपी गणेश, आओ, हम दोनों माता को प्रणाम करें ।' फिर दोनों जन हाथ जोड़ कर ऊर्ध्वमुख हो कर समस्वर से पुकारने लगे,

'सर्वमङ्गलमाङ्गल्ये शिवे सर्वार्थसाधिके ।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरी नारायणि नमोऽस्तुते ।'

दोनों के भक्ति भाव से प्रणाम कर के उठने पर महेन्द्र ने गद्गद कण्ठ से पूछा, 'माता की यह मूर्ति कब देखने को मिले गी ?'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'जब माँ के सब सन्तान माँ को माँ कह कर पुकारें गे, उसी दिन वे प्रसन्न होंगी ।'

महेन्द्र ने सहसा पूछा, 'मेरी स्त्री-कन्या कहाँ हैं ?'

'चलो, देखो गे, चलो ।'

'उन्हें सिर्फ एक दफा देख कर मैं उन्हें बिदा करूँ गा ।'

'क्यों बिदा करो गे ?'

'मैं यह महामन्त्र ग्रहण करूँ गा ।'

'कहाँ बिदा करो गे ?'

कुछ देर तक सोच कर महेन्द्र ने कहा, 'मेरे घर में कोई नहीं है । कोई और जगह भी नहीं । इस महामारी के समय स्थान भी और कहाँ पाऊँगा ?'

'जिस रास्ते से यहाँ आये, उसी से मन्दिर के बाहर जाओ । मन्दिर के द्वार पर अपनी स्त्री-कन्या को देखो गे । कल्याणी ने अब तक कुछ खाया नहीं था । जहाँ वे लोग बैठी हैं, वहीं खाने की चीजें मिलें गी । उसे भोजन करा कर तुम्हारी जो इच्छा हो, करना । इस समय हममें से किसी से मुलाकात नहीं होगी । तुम्हारा मन यदि ऐसा ही रहे गा तो यथासमय तुमसे मुलाकात होगी ।'

इसके बाद अकस्मात् ब्रह्मचारी न जाने किस रास्ते से अन्तर्हित हो गये । महेन्द्र ने पहले के दिखलाये मार्ग से निकल कर देखा, नाट्य मंदिर में कल्याणी कन्या को ले कर बैठी हैं ।

इधर सत्यानन्द एक दूसरी सुरङ्ग से उतरते हुए एकान्त तहखाने में गये । वहाँ जीवानन्द और भवानन्द रुपये गिन-गिन कर, तह की तह लगा रहे थे । उस कमरे में सोने, चाँदी, ताँबे, हीरे और मोतियों की राशियाँ सजी थीं । कल रात वाली लूट के

रुपये ये लोग सजा कर रख रहे थे। सत्यानन्द उस कमरे में बैठ कर बोले, 'जीवानन्द, महेन्द्र आये गा। आने पर सन्तानों का खास तौर से उपकार होगा; क्योंकि, उसकी पूर्वपुरुषों से संचित की हुई अर्थराशि माँ की सेवा में अर्पित होगी परन्तु जितने दिन तक मन, वाणी और शरीर से वह मातृ-भक्त नहीं होता, उसने दिन तक उसे न लेना। तुम्हारे हाथ का काम समाप्त होने पर, तुम लोग भिन्न-भिन्न समय में उसका पीछा करते रहना। समय समझना तो उसे विष्णु-मण्डप में हाजिर करना, और समय में या असमय में उन लोगों की रक्षा करना, क्योंकि जिस तरह दुष्टों पर नियंत्रण सन्तान का धर्म है, उसी तरह शिष्ट की रक्षा भी उसका धर्म है।'

।१२।

बड़े दुःख के बाद महेन्द्र और कल्याणी की भेंट हुई। कल्याणी लोट कर रोने लगी। महेन्द्र भी रोये। रोने-धोने के बाद आँसू पोंछने की बारी आई। जितनी बार वे एक दूसरे के आँसू पोंछते थे, उतनी बार फिर आँसू उमड़ आते थे। आँसू रोकने के इरादे से कल्याणी ने भोजन की बात चलाई। ब्रह्मचारी के अनुचर ने भोजन रख दिया है, कल्याणी ने महेन्द्र से खाने के लिए कहा। अकाल के दिन, अन्न के और मिलने की कोई सम्भावना नहीं; परन्तु देश में जो कुछ है, सन्तानों के पास वह सुलभ है। वह व्यवस्था साधारण मनुष्यों के लिए सुलभ नहीं है; जहाँ जिस पेड़ में जो फल होते हैं, उपवासी मनुष्य तोड़ कर खाते हैं। परन्तु इस अगम्य अरण्य के पेड़ों के फल और कोई नहीं पाता, इसलिए ब्रह्मचारी का अनुचर बहुत-से वन्य फल और कुछ दूध ला कर रख गया था। संन्यासी महाराजों की सम्पत्ति में बहुत-सी गायें थीं। कल्याणी के अनुरोध से महेन्द्र ने कुछ फल खाये। इसके बाद खाने से जो बचा, एकान्त में बैठ कर कल्याणी ने खाया। थोड़ा-सा दूध लड़की को पिलाया, थोड़ा-सा उठा कर रख दिया, फिर बाद में पिलाने के लिए। इसके बाद नींद से दोनों परेशान होने के कारण सो कर थकान दूर करने लगे। नींद टूटने पर दोनों विचार करने लगे, 'अब कहाँ जायँ?'

कल्याणी ने कहा, 'घर में विपत्ति का विचार कर घर छोड़ कर आये थे। अब देखती हूँ, घर से बाहर की विपत्ति अधिक है। अब चलो, घर ही लौट चलें।'

महेन्द्र की भी यही इच्छा है। महेन्द्र चाहते हैं, कल्याणी को घर में रख कर, किसी तरह एक अभिभावक नियुक्त कर के, यह परम रमणीय अपार्थिव पवित्रता से भरा मातृ-सेवा-व्रत ले लें। इसलिए वे सहज ही तैयार हो गये। फिर दोनों आदमी, थकान से मुक्त हो, कन्या को गोद में ले कर, पदचिह्न गाँव की ओर चले।

परन्तु, किस रास्ते से पदचिह्न जाना होगा, यह वे निश्चय नहीं कर सके। उन लोगों ने सोचा था, वन से बाहर निकलने पर रास्ता पायेंगे। पर वन से बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं मिल रहा। देर तक वन के भीतर ही चक्कर काटते रहे, घूम-फिर कर उसी मठ में लौट आने लगे, निकलने का रास्ता नहीं मिल रहा। सामने एक वैष्णव वेश-धारी अपरिचित ब्रह्मचारी खड़े हँस रहे थे। देख कर महेन्द्र ने नाराज हो कर पूछा, 'गुसाईं जी, हँस क्यों रहे हो ?'

उन्होंने पूछा, 'तुम लोग इस वन में आये थे किस तरह ?'

'जिस तरह भी हो, आ गये हैं।'

'आ गये हो तो निकल क्यों नहीं सकते ?' यह कह कर वैष्णव फिर हँसने लगे।

नाराज हो कर महेन्द्र ने कहा, 'तुम हँस रहे हो, तो क्या तुम खुद निकल सकते हो ?'

'मेरे साथ आओ। मैं रास्ता दिखा देता हूँ। तुम लोग जरूर संन्यासी या ब्रह्मचारी के साथ ही आये होगे, नहीं तो इस मठ में आने या निकलने का रास्ता और कोई नहीं जानता।'

सुन कर महेन्द्र ने पूछा, 'आप भी सन्तान हैं ?'

'हाँ, मैं भी सन्तान हूँ। मेरे साथ आओ। तुम्हें रास्ता बताने के लिए ही मैं यहाँ खड़ा हूँ।'

'आप का नाम क्या है ?'

'मेरा नाम है धीरानन्द गोस्वामी।'

यह कह कर धीरानन्द आगे-आगे चले। महेन्द्र और कल्याणी पीछे-पीछे। धीरानन्द बहुत ही दुर्गम रास्ते से उन्हें बाहर निकाल कर अकेले फिर वन के भीतर आ गये।

आनन्दारण्य से वे लोग बाहर आये तो कुछ दूर पर वृक्षों का प्रान्तर शुरू हुआ। प्रान्तर एक ओर रहा। वन के किनारे-किनारे आम रास्ता है। एक जगह अरण्य के भीतर से एक छोटी नदी कल-कल करती हुई बह रही है। पानी बहुत साफ, निविड़ मेघ-जैसा काला। दोनों ओर श्यामल-शोभामय तरह-तरह को जाति के पेड़ नदी पर छाया किये हुए हैं। तरह तरह की जाति की चिड़ियाँ पेड़ों पर बैठी कलरव कर रहीं हैं। वह रव, वह भी मधुर—नदी के कलरव से मिल रहा है। उसी तरह पेड़ों की छाया और जल के रंग मिल रहे हैं। कल्याणी का मन भी शायद उस छाया के साथ मिला। कल्याणी नदी के किनारे एक पेड़ के नीचे बैठी। पति को पास बैठने के लिए कहा। कल्याणी ने कन्या को पति की गोद से अपनी गोद में ले लिया। पति का हाथ अपने हाथ में ले कर कुछ देर तक चुपचाप बैठी रहीं। बाद को पूछा, 'तुम्हें आज मैं उदास देख रही हूँ। जो विपत्ति थी, उससे तो उद्धार पा गये। अब इतनी उदासी क्यों है ?'

महेन्द्र ने लम्बी साँस छोड़ कर कहा, 'मैं अब अपना नहीं रह गया हूँ; मैं क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आ रहा।'

'क्यों ?'

'तुम्हें खो देने पर मुझ पर जो बीती थी, सुनो।' कह कर जो घटना घटी थी, महेन्द्र ने सविस्तर सुनाना शुरू किया ?

'मुझे भी बड़े दुःख, बड़ी विपत्तियाँ झेलनी पड़ी हैं। तुम सुन कर और क्या करो गे ? भारी विपत्ति में भी मुझे किस तरह नींद आई थी, कह नहीं सकती; परन्तु मैं कल रात खत्म होते-होते सोई थी। सोते हुए स्वप्न देखा—किस पुण्य से देखा, कह नहीं सकती। मैं एक अपूर्व जगह गई हुई हूँ। वहाँ मिट्टी नहीं, सिर्फ उजाला है, बहुत ही शीतल—बादलों के बीच से निकलते उजाले की तरह बड़ा मधुर उजाला। वहाँ आदमी नहीं, सिर्फ प्रकाश की मूर्तियाँ हैं, वहाँ शब्द नहीं, केवल बहुत दूर जैसे कैसा तो मधुर गीत-वाद्य हो रहा है। ऐसा एक शब्द। सदा जैसे नई खिली हुई हैं, ऐसी लाखों मल्लिका, मालती और गन्धराजों की खुशबू। वहाँ जैसे सब के ऊपर, सब के दर्शनीय स्थान पर, कोई बैठे हैं, जैसे नील-पर्वत अग्नि-प्रभ हो कर भीतर ही भीतर धीरे-धीरे जल रहा है। अग्निमय वृहत् किरीट उनके मस्तक पर। जैसे उनके चार हाथ हैं। उनके दोनों तरफ क्या है, मैं पहचान नहीं सकी, जैसे स्त्री-मूर्तियाँ हों; परन्तु इतना रूप, इतनी ज्योति, इतना सौरभ कि मैं उस तरफ देखते ही विह्वल होने लगी, निगाह नहीं उठा सकी, देख नहीं सकी कि कौन है। जैसे उस चतुर्भुज के सामने खड़ी हुई एक और स्त्री-मूर्ति है, वह भी ज्योतिर्मयी। परन्तु चारों ओर मेघ हैं। रोशनी अच्छी तरह निकल नहीं रही, धुँधला-धुँधला दिख रहा है कि बहुत दुबली है। परन्तु अत्यन्त रूपवती, मर्म से पीड़िता कोई स्त्री-मूर्ति रो रही है, मुझे जैसे सुगन्ध मन्द पवन की तरंगों पर बहाते हुए चतुर्भुज के के सिंहासन के नीचे ला डाला। जैसे उसी मेघमण्डिता दुबली स्त्री ने मुझे दिखा कर कहा, 'यही है वह। इसी के कारण महेन्द्र मेरी गोद में नहीं आ रहा।' तब एक बड़ी साफ मधुर वंशी की ध्वनि-सी हुई। उसी चतुर्भुज ने जैसे मुझसे कहा, 'तुम पति को छोड़ कर मेरे पास आओ। ये तुम लोगों की माँ हैं, तुम्हारे पति इनकी सेवा करें गे। तुम पति के पास रहो गी, तो इनकी सेवा नहीं होगी। तुम चली आओ।' मैंने क्या कहा, सो याद नहीं। मेरी नींद टूट गई।' कह कर कल्याणी चुप हो गई।

महेन्द्र विस्मित और कुछ भयभीत हो कर चुप हो गये। सिर पर पिड़की बोलने लगी। पपीहा स्वर से आकाश प्लावित करने लगा। कोयल की आवाज प्रतिध्वनित होने लगी। भृङ्गराज कल-कण्ठ से कानन कम्पित करने लगा। पैरों के तले तटिनी मृदु कल्लोल कर रही थी। हवा जङ्गली फूलों की भीनी महक ला दे रही थी। कहीं नदी के पानी पर बीच-बीच में धूप झलमला रही थी। कहीं ताड़ के पत्ते धीमी हवा में मर्मर शब्द कर रहे थे। दूर नीले पर्वतों की श्रेणी दिख रही थी। दोनों बहुत देर तक मुग्ध हो कर

चुपचाप रहे। बहुत देर बाद कल्याणी ने फिर पूछा, 'क्या सोच रहे हो ?'

'क्या करूँगा, यही सोचता हूँ। स्वप्न केवल विभीषिका है, अपने मन से पैदा हो कर आप लय पाता है, जीवन का जलबिम्ब। चलो, घर चलें।'

'जहाँ देवता तुम्हें जाने के लिये कहते हैं, वहाँ जाओ।' यह कह कर कल्याणी ने कन्या को पति की गोद में दे दिया।

कन्या को गोद में ले कर महेन्द्र ने पूछा, 'और, तुम, तुम कहाँ जाओगी ?'

कल्याणी ने हाथों से आँखें ढँक कर सर दबा कर कहा, 'मुझे भी देवता ने जहाँ जाने के लिए कहा है, मैं भी वहीं जाऊँ गी।'

महेन्द्र चौंक उठे; पूछा, 'वह कहाँ ? किस तरह जाओ गी ?'

कल्याणी ने विष वाली डिबिया दिखा दी।

महेन्द्र ने विस्मित हो कर कहा, 'यह क्या ? विष खाओ गी ?'

'सोचा था खाऊँ गी, परन्तु—'

कल्याणी नीरव हो कर सोचने लगीं। महेन्द्र उनका मुँह देखते रहे। कल्याणी ने फिर बात पूरी नहीं की, देख कर महेन्द्र ने पूछा, 'परन्तु, कह कर क्या कहना चाहती थीं ?

'खाऊँ गी, सोचा था, परन्तु तुम्हें छोड़ कर, सुकुमारी को छोड़ कर वैकुंठ जाने की भी मेरी इच्छा नहीं होती। मैं नहीं मरूँगी।'

यह कह कर कल्याणी ने जहर वाली डिबिया जमीन पर रख दी। फिर दोनों भूत और भविष्य की बातचीत करने लगे। बातचीत करते-करते दोनों अन्यमनस्क हो उठे। इसी बीच मौका पा कर लड़की ने खेलते-खेलते जहर वाली डिबिया उठा ली, यह किसी ने नहीं देखा।

सुकुमारी ने सोचा, यह बहुत अच्छी खेलने की चीज है। डिबिया को एक बार बायें हाथ में ले कर दायें हाथ से खूब थपथपाया। फिर दायें में ले कर बायें से थपथपाया। इसके बाद दोनों हाथों से पकड़ कर खींचने लगी। डिबिया खुल गई। जहर-वाली गोली नीचे गिर गई।

बाप की धोती पर वह छोटी-सी गोली गिरी। सुकुमारी ने देखा, सोचा, यह एक खेलने की अच्छी चीज है। डिबिया फेंक कर हथेली मार कर गोली उठा ली।

डिबिया सुकुमारी ने मुँह में नहीं रक्खी, मगर गोली के लिए जरा भी देरी नहीं की। 'प्राप्तिमात्रेण भोक्तव्यम्'—सुकुमारी ने गोली मुँह में रख ली।

'क्या खाया, क्या खाया, गजब हो गया !' कहते हुए घबरा कर कल्याणी ने कन्या के मुँह में अँगुली डाली। तभी दोनों ने देखा कि जहरवाली डिबिया खाली पड़ी है। सुकुमारी, एक खिलौना पाया है सोच कर, दाँत चाप कर—तब तक इने-गिने ही दाँत निकले थे—माँ के मुँह की तरफ देख कर हँसने लगी। अब तक शायद जहर की

गोली से मुँह में बुरा स्वाद मालूम हुआ था, क्योंकि कुछ देर बाद लड़की ने आप ही दाँतों को ढीला कर दिया था। कल्याणी ने मुँह से गोली निकाल कर झटपट फेंक दी। लड़की रोने लगी।

गोली मिट्टी पर पड़ी रही। कल्याणी ने नदी से आँचल भिगो कर लड़की के मुँह में पानी डाला। बड़ी कातरता से महेन्द्र ने पूछा, 'क्या कुछ पेट में गया होगा ?'

अमंगल की शंका ही पहले माँ-बाप के मन में उठती है। जहाँ अधिक स्नेह है, वहाँ भय ही अधिक है। महेन्द्र ने कभी देखा नहीं, वह गोली पहले कितनी बड़ी थी। अब गोली हाथ में ले कर बहुत देर तक देखते हुए कहा—'जान पड़ता है बहुत-सा हिस्सा खा गई है।'

फलतः कल्याणी को भी वैसा ही विश्वास हुआ। काफी देर तक वे भी गोली हाथ में ले कर देखती रहीं। इधर लड़की ने जो दो एक घूँट निगले थे, उसके कारण उसकी कुछ विकृतावस्था होने लगी। वह तलफने लगी—रोने लगी, अन्त में कुछ अवसन्न हो गई। तब कल्याणी ने पति से कहा, 'अब क्या हो ? जिस रास्ते देवताओं ने बुलाया है, उसी रास्ते सुकुमारी चली। मुझे भी जाना होगा।'

यह कह कर कल्याणी जहर की गोली मुँह में डाल कर क्षण भर में निगल गई।

महेन्द्र ने रोते हुए कहा, 'क्या किया, कल्याणी यह तुमने क्या किया ?'

कल्याणी ने कोई जवाब न दे कर पति के पैरों की धूल सिर पर रक्खी, कहा, 'स्वामिन्, बात करने पर बातें बढ़ेंगी, मैं अब चली।'

'कल्याणी, क्या किया तुमने ?' कह कर महेन्द्र चीख मार कर रोने लगे। बहुत ही मन्द-स्वर से कल्याणी कहने लगी, 'मैंने अच्छा ही किया है। एक तुच्छ-स्त्री के लिए कहीं तुम देवता के काम में जी न लगाओ। देखो, मैं देवता की बात टाल रही थी, इसीलिए मेरी लड़की चली गई। और अवहेला करने पर कहीं तुम भी न चले जाओ।'

महेन्द्र रोने लगे, 'तुम्हें कहीं और रखने की व्यवस्था करता। हमारा काम सिद्ध होने पर फिर तुम्हें ले कर सुखी होता। कल्याणी, मेरी सब कुछ हो। क्यों तुमने ऐसा काम किया ? जिस हाथ की ताकत से मैं तलवार पकड़ता था, वह हाथ ही काट डाला ! तुम्हारे बिना मैं क्या हूँ ?'

'कहाँ मुझे ले जाते ? और जगह कहाँ है ? माँ, बाप, बन्धु लोग इस घोर दुःसमय में सभी तो मर गये हैं। किसके घर में जगह है ? कहाँ जाने का रास्ता है ? कहाँ जाओ गे ? मैं गले लगी बला हूँ। मैं मरी, मैंने अच्छा ही किया। मुझे आर्शीवाद दो, जिससे उसी, उस आलोकमय लोक में जा कर फिर तुम्हारे दर्शन पाऊँ।'

यह कह कर कल्याणी ने फिर पति के पैरों की धूल ले कर सिर पर रक्खी। महेन्द्र कोई उत्तर न दे पाये, फिर रोने लगे।

कल्याणी ने फिर कहा—अति मृदु, अति मधुर, अति स्नेहमय कण्ठ से—फिर कहा, 'देखो, देवता की इच्छा है, किसकी मजाल जो टाल सके? मुझे जाने की आज्ञा दी है, क्या मैं रह सकती हूँ? खुद न मरती तो अवश्य कोई दूसरा मारता। मर कर मैंने अच्छा ही किया है। तुमने जो व्रत ग्रहण किया है, तन, मन और वाणी से उसे सिद्ध करो, पुण्य होगा। मुझे उससे स्वर्ग-प्राप्ति होगी। दोनों आदमी एक साथ अनन्त स्वर्ग-भोग करेंगे।'

इधर लड़की एक दफा दूध पी कर थोड़ा सँभली। उसके पेट में थोड़ा ही जहर गया था, जान का खतरा नहीं था। लेकिन उस समय उधर महेन्द्र का मन ही नहीं था। कन्या को कल्याणी की गोद में डाल कर दोनों को गाढ़े आलिंगन में बाँध कर वे रोने लगे। तब जैसे अरण्य के भीतर से मेघ जैसा मधुर गम्भीर शब्द सुन पड़ा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !'

कल्याणी पर उस समय जहर चढ़ रहा था। कुछ बेहोशी आ रही थी। उन्होंने उसे मोह में सुना, जैसे बैकुण्ठ में सुना, उसी अपूर्व वंशीध्वनि में बज रहा है—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !
गोपाल गोविन्द मुकुन्द शौरे !'

तब कल्याणी मोह के भीतर से अप्सरानिन्दित कण्ठ से पुकारने लगीं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

महेन्द्र से कहा, 'कहो—

हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कानन से निकले स्वर और कल्याणी के मधुर स्वर से मुग्ध हो कर कातर चित्त से ईश्वर को हीं सहायक सोच कर महेन्द्र ने पुकारा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब चारों तरफ से ध्वनित होने लगा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब जैसे पेड़ों की चिड़ियाँ भी गाने लगीं,—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

नदी की कल-कल में भी जैसे शब्द उठने लगा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब महेन्द्र शोकताप भूल गए—पागल हो कर कल्याणी के साथ एक स्वर से पुकारने लगे—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कानन से भी जैसे उनके साथ गला मिला कर शब्द होने लगा—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

कल्याणी का गला क्रमशः क्षीण होने लगा, फिर भी पुकार रही हैं—

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

फिर धीरे-धीरे कण्ठ रुक गया; कल्याणी के मुँह में अब शब्द नहीं, आँखें बन्द हुई, अङ्ग भी ठण्डे हो गये। महेन्द्र समझे, कल्याणी 'हरे मुरारे' पुकारती हुई वैकुण्ठ-धाम चली गईं हैं। तब पागल की तरह ऊँचे स्वर से कानन को कम्पित करते हुए पशु-पक्षियों को चौंका कर, महेन्द्र पुकारने लगे,

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

उसी समय कोई आ कर उन्हें गाढ़े आलिङ्गन में भर कर, उनके साथ वैसे ही ऊँचे स्वर से पुकार उठा,

'हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब उस अनन्त की महिमा में, उस अनन्त अरण्य में अनन्त-पथगामिनी की देह के सामने दोनों जन अनन्त का नाम कीर्तन गाने लगे। पशु-पक्षी नीरव हैं, पृथ्वी अपूर्व शोभामयी हो रही है—इस चरम गीत का उपयुक्त स्थल। सत्यानन्द महेन्द्र को गोद में ले कर बैठे थे।

|१३|

इधर राजधानी में, राजमार्ग में, बड़ा शोर-गुल मचा। शोर उठा कि सरकारी खजाने का चालान कलकत्ता जा रहा था, सब संन्यासियों ने लूट लिया। तब राजा के हुक्म से संन्यासियों को पकड़ने के लिए सिपाही बरकन्दाज दौड़ने लगे। इस समय इस अकाल-पीड़ित देश में असली संन्यासी बहुत अधिक नहीं थे। क्योंकि, वे भिक्षा से जीते हैं, आदमी खुद खाने को जब नहीं पा रहे, संन्यासी को भीख कौन देगा? इसलिए असली में जो संन्यासी थे, सब पेट की ज्वाला से काशी-प्रयाग की ओर भाग गये थे। सिर्फ सन्तान लोग स्वेच्छा से संन्यासी-वेश धारण करते थे। जरूरत पड़ने पर छोड़ भी देते थे। आज शोर-गुल देख कर बहुतों ने संन्यासी-वेश परित्याग किया। भूखे सिपाही कहीं संन्यासी को न पा कर केवल गृहस्थों की हण्डियाँ तोड़ कर, आधा पेट भर कर, ठण्डे पड़े। सिर्फ सत्यानन्द किसी समय गेरुआ-वस्त्र नहीं छोड़ते थे।

उस छोटी सी नदी के तट पर, उस पथ के किनारे, पेड़ के नीचे कल्याणी पड़ी हुई हैं। महेन्द्र और सत्यानन्द एक दूसरे को आलिङ्गन में भर कर, अश्रुसिक्त नयनों से ईश्वर को पुकार रहे हैं। जमादार सिपाहियों को ले कर ऐसे समय वहाँ हाजिर हुआ। एकाएक सत्यानन्द को गले से पकड़ कर कहा, 'यह साला भी संन्यासी है।'

एक दूसरे ने उसी वक्त महेन्द्र को पकड़ लिया क्योंकि, जो संन्यासी का साथी है, वह अवश्य ही संन्यासी होगा। एक तीसरा वास पर लेटी हुई कल्याणी का शव उठाने जा रहा था। देखा, एक स्त्री की मृत देह है, वह संन्यासी नहीं हो सकती। इसी लिए नहीं पकड़ा। बालिका को भी उसी विचार से छोड़ दिया। फिर कोई बातचीत न करके दोनों आदमियों को वे बाँध कर ले चले। कल्याणी की मृत देह और उसकी बालिका, बिना रखवाले के, उसी पेड़ के नीचे पड़ी रहीं।

पहले शोक से अभिभूत और ईश्वर-प्रेम से उन्मत्त हो कर महेन्द्र प्राय: अचेत थे। क्या हो रहा था, क्या हुआ, समझ नहीं सके। बाँधे जाते वक्त हाथ-पैर भी नहीं हिलाये। परन्तु दो-चार कदम जाने पर समझे, हमें बाँधे ले जा रहे हैं। कल्याणी का शव पड़ा रहा; इस समय उन्हें हिंस्र जन्तु खा जा सकते हैं, यह बात मन में आते ही महेन्द्र ने दोनों हाथ एक दूसरे से अलग करने का जोर लगाया। एक झटके से ही बन्धन टूट गया। उसी समय एक लात जमादार को ऐसी मारी कि जमादार साहब लोट गये, फिर एक सिपाही पर टूटे ही थे कि तीन तरफ से तीन सिपाहियों ने हमला किया और उन्हें काबू में कर लिया। तब दुःख से व्याकुल हो कर महेन्द्र ने सत्यानन्द ब्रह्मचारी से कहा, 'आप कुछ भी मदद करते तो मैं इन पाँचों दुरात्माओं की जान ले लेता।'

सत्यानन्द ने कहा, 'मेरे इस शरीर में क्या बल है? मैं जिन्हें पुकार रहा था, उनके सिवा मेरा और बल नहीं। जो अवश्य होने वाला है, उसका विरोध न करना। हम इन पाँच आदमियों को परास्त नहीं कर सकें गे। चलो, कहाँ लिये जाते हैं, देखो। जगदीश्वर सब जगह रक्षा करेंगे।'

फिर वे दोनों आदमी छूटने की कोई कोशिश न कर के सिपाहियों के पीछे-पीछे चले। कुछ दूर जा कर सत्यानन्द ने सिपाहियों से पूछा, 'बेटा, मैं हरिनाम लिया करता हूँ—हरिनाम जपने में कोई बाधा है?'

सत्यानन्द को जमादार ने भला आदमी समझा था। उसने कहा, 'तुम हरिनाम करो, तुम्हें मना नहीं करेंगे। तुम बूढ़े ब्रह्मचारी हो, जान पड़ता है, तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हो गा, इस बदमाश को फाँसी हो गी।' तब ब्रह्मचारी मृदु स्वर से गाने लगे—

'धीरसमीरे तटनीतीरे वसति वने वर नारी।
न कुरु धनुर्धर गमनविलम्बनमतिविधुरा सुकुमारी॥'

शहर में पहुँचने पर वे लोग कोतवाल के हवाले किये गये। कोतवाल ने सरकार को इत्तिला करके ब्रह्मचारी और महेन्द्र को हवालात में रख दिया। वह बड़ा ही भयंकर

कारागार था । जो जाता था, वह वहाँ से निकलता नहीं था । क्योंकि विचार करने वाला कोई आदमी नहीं था । अँगरेजों की जेल नहीं, क्योंकि तब अँगरेजों का विचार नहीं था । आज नियम के दिन हैं, तब अनियम के दिन थे ।

| १४ |

खूब गहरी रात । कारागार में बन्द सत्यानन्द ने महेन्द्र से कहा, 'आज बड़े आनन्द का दिन है, क्योंकि हम लोग कारागार में बन्द हैं । कहो, हरे मुरारे ?'

महेन्द्र ने कातर स्वर से कहा, 'हरे मुरारे !'

'कातर क्यों हो बेटा जी ? यह व्रत लेने पर तुम्हें स्त्री-कन्या तो छोड़नी ही पड़ती; फिर तो कोई सम्बन्ध न रहता ।'

'त्याग एक बात है, यमदण्ड और बात । और जिस शक्ति से मैं यह व्रत ग्रहण करता, वह शक्ति मेरी स्त्री-कन्या के साथ चली गई है ।'

'मैं शक्ति दूँगा । महामन्त्र में दीक्षित होओ, महाव्रत ग्रहण करो ।'

महेन्द्र ने नाराज हो कर कहा, 'मेरी स्त्री-कन्या को स्यार-कुत्ते खा रहे हैं, मुझसे किसी व्रत की बात न कीजिए ।'

'इस ओर से तुम निश्चिन्त रहो । सन्तानों ने तुम्हारी स्त्री का संस्कार कर दिया है—कन्या को ले जा कर उपयुक्त जगह पर रक्खा है ।'

महेन्द्र विस्मित हुए, बहुत विश्वास नहीं हुआ, पूछा, 'आप को कैसे मालूम हुआ ? आप तो बराबर मेरे साथ हैं ।'

'हम लोग महाव्रत में दीक्षित हैं । देवता हम पर दया करते हैं । आज रात में ही तुम्हें यह खबर मिल जायेगी । आज रात में ही तुम कारागार से मुक्त भी होगे ।'

महेन्द्र ने फिर कोई बात नहीं की । सत्यानन्द समझे कि महेन्द्र विश्वास नहीं कर रहे हैं । तब सत्यानन्द ने कहा, 'विश्वास नहीं कर रहे, परीक्षा कर के देखो ।' यह कह कर सत्यानन्द कारागार के द्वार तक आये । क्या किया, अँधेरे में महेन्द्र कुछ देख नहीं सके । परन्तु इतना समझे कि किसी से उन्होंने बातचीत की । लौटने पर पूछा, 'कैसी परीक्षा ?'

'तुम इसी क्षण कारागृह से मुक्ति पाओ गे ।'

उनके यह कहते-कहते कारागार का दरवाजा खुला । एक आदमी ने कमरे के भीतर आ कर पूछा, 'महेन्द्रसिंह किसका नाम है ?'

महेन्द्र ने कहा 'मेरा नाम है ।'

आगन्तुक ने कहा, 'तुम्हारे छुटकारे का हुक्म हुआ है, तुम अब जा सकते हो ।'

महेन्द्र पहले तअज्जुब में आये, फिर मन में कहा, झूठी बात है, परीक्षा के लिए निकले । किसी ने उनका रास्ता नहीं रोका । महेन्द्र राजपथ तक चले गये ।

तभी आगन्तुक ने सत्यानन्द से कहा, 'महाराज, आप भी क्यों नहीं जाते ? मैं आप के लिए ही आया हूँ ।'

'तुम कौन हो ? धीरानन्द गोसाईं ?'

'जी हाँ ।'

'पहरेदार किस तरह हुए ?'

'भवानन्द ने मुझे भेजा है । शहर में आ कर, आप लोग इस कारागार में हैं, सुन कर, यहाँ कुछ धतूरा-मिली भङ्ग ले आया था । जो खाँ साहब पहरे पर थे, वे उसका सेवन कर भूमि शय्या पर लेटे हुए हैं; यह वर्दी, पगड़ी, बर्छा, जो कुछ मैं पहने और लिये हुए हूँ, उन्हीं का है ।'

'तुम यह सब पहने-पहने शहर से बाहर निकल जाओ । मैं इस तरह नहीं जाऊँ गा ।'

'क्यों ? ऐसा क्यों ?'

'आज संतानों की परीक्षा का दिन है ।'

महेन्द्र फिर लौट आये । सत्यानन्द ने पूछा, 'तुम लौटे क्यों ?'

'आप अवश्य सिद्ध-पुरुष हैं, अस्तु मैं आप का साथ छोड़ कर नहीं जाऊँ गा ।'

'तो रहो । हम दोनों आज रात को दूसरी तरह मुक्त होंगे ।'

धीरानन्द बाहर चले गये । सत्यानन्द और महेन्द्र कारागार में ही रहे ।

|१९|

ब्रह्मचारी का गाना बहुतों ने सुना था । दूसरे-दूसरे आदमियों में जीवानन्द के कानों में भी वह गाना पड़ा । महेन्द्र का पीछा करने की उन्हें आज्ञा थी । रास्ते में एक स्त्री से मुलाकात हुई थी । उसने सात दिन से खाया नहीं था । रास्ते के किनारे पड़ी थी । उसे बचाने के विचार से जीवानन्द ने दो दण्ड देर की थी । स्त्री को बचा कर उसे बड़ी कुत्सित भाषा में गालियाँ देते हुए अब आ रहे थे । देखा, प्रभु को मुसलमान पकड़े लिये जा रहे हैं—प्रभु गीत गाते हुए जा रहे हैं ।

जीवानन्द महाप्रभु सत्यानन्द के कुल संकेत समझते थे ।

'धीरसमीरे तटिनीतीरे बसति वने वरनारी।'

नदी के किनारे क्या और कोई औरत बिना भोजन किये पड़ी है ? सोच-विचार कर जीवानन्द नदी के किनारे-किनारे चले। जीवानन्द ने देखा था, ब्रह्मचारी को ही मुसलमान सैनिक लिए जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में ब्रह्मचारी का उद्धार ही उनका पहला काम है। परन्तु जीवानन्द ने सोचा, 'इस संकेत का वह अर्थ नहीं, उनकी जान बचाने के प्रयास से उनका हुक्म मानना अधिक जरूरी है—यही उनके पास रह कर सीखा है; अतएव उनकी आज्ञा पूरी करूँगा।

नदी के किनारे-किनारे जीवानन्द चले। चलते-चलते उसी वृक्ष के नीचे नदी के किनारे देखा, एक स्त्री की मृत देह पड़ी है और एक जीती हुई छोटी लड़की है। महेन्द्र की स्त्री-कन्या को जीवानन्द ने पहले नहीं देखा। सोचा, 'सम्भव है कि यही महेन्द्र की स्त्री-कन्या हों क्योंकि, प्रभु के साथ महेन्द्र को देखा है। खैर, माँ मर गई है, लड़की तो अभी जीती है। पहले इसकी रक्षा करनी चाहिए, नहीं तो इसे बाघ-भालू खा जायँगे। भावानन्द महाराज यहीं कहीं हैं, वे स्त्री की अन्तिम क्रिया कर देंगे। यही सोच कर जीवानन्द बालिका को गोद में ले कर चले।

लड़की को गोद में ले कर जीवानन्द गोसाई उस घने जंगल में घुसे। जंगल पार कर एक छोटे से गाँव में गये। गाँव का नाम भैरवीपुर है। लोग कहते हैं, भरुईपुर। भरुईपुर में कुछ साधारण आदमियों के झोपड़े हैं, आसपास कोई दूसरा बड़ा गाँव नहीं; गाँव पार करने पर फिर जंगल है। चारों ओर जंगल—जंगल के बीच एक छोटा-सा गाँव। परन्तु गाँव बड़ा सुन्दर है। कोमल घास से ढँकी गोचर-भूमि; कोमल श्यामल पल्लवों वाले आम, कटहल, जामुन और ताड़ के बगीचे; बीच-बीच नीले जल से भरे सरोवर। उनके जल पर बगुले, हंस, डाहुक; किनारे कोयल, चकवे; कुछ दूर पर मोर ऊँची आवाज से बोल रहे हैं। घर-घर, सहन में गायें, घर के भीतर धान रखने की मड़ई, परन्तु आजकल अकाल के कारण धान नहीं। किसी के छप्पर में मयना का पिंजरा टँगा है, किसी की दीवार पर तसवीरें खिंची हैं, किसी के आँगन में साग बोया हुआ है। सभी अकाल से पीड़ित हैं, दुबले-पतले, दुख मनाते हुए। फिर भी इस गाँव के आदमियों में श्री का कुछ ढाँचा है। जंगल में बहुत तरह का मनुष्यों का खाद्य पैदा होता है, इसलिए जंगल से खाद्य एकत्र कर उस गाँव के रहने वाले प्राण और स्वास्थ्य की रक्षा कर सके थे।

आम की एक बड़ी बाग में एक छोटा-सा मकान है, चारों तरफ मिट्टी की चहारदीवरी चारों तरफ चार कमरे। गृहस्थ का घर, गायें है, बकरियाँ हैं, एक मोर है, एक मयना है, एक तोता है, एक बन्दर भी था, लेकिन उसे खाने को नहीं दे सकते इसलिए छोड़ दिया था। एक ढेंकी है, बाहर धान की पैरियाँ लगी हैं, सहन में नीबू के पेड़ हैं, कुछ मल्लिका जुही के पौधे, परन्तु इस दफा उन्होंने कलियाँ नहीं लीं।

सब कमरों के बरामदों में एक-एक चरखा है; परन्तु मकान में काफी आदमी नहीं। जीवानन्द लड़की को गोद में ले कर उसी मकान में गये।

मकान के भीतर जा कर, एक कमरे के बरामदे पर चढ़ कर, जीवानन्द ने चरखा ले कर घनघनाना शुरू किया। उस छोटी लड़की ने कभी चरखे की आवाज नहीं सुनी थी। विशेषत: माँ से छूटने के समय से रो रही थी, चरखे की आवाज सुन कर और भी ऊँचे सप्तम पर चढ़ कर रोने लगी। तब कमरे के भीतर से एक सत्रह-अठारह साल की लड़की बाहर निकली। कहा 'यह क्या है? दादा, चरखा क्यों चला रहे हो? यह लड़की कहाँ पाई दादा, तुम्हारे लड़की हुई है क्या? क्या फिर शादी की?'

जीवानन्द ने लड़की को उस युवती की गोद में दे कर उसे मारने के लिए मुट्ठी बाँधी, कहा, 'नकचिपटी! मेरी फिर शादी! मुझे क्या ऐरा-गैरा समझ लिया है? घर में दूध है?'

उस युवती ने कहा, 'दूध है क्यों नहीं! पिओ गे?'

जीवानन्द ने कहा, 'हाँ पिऊँ गा।'

अब जल्दी-जल्दी औटाने के लिए वह युवती चली गई। जीवानन्द तब तक चरखा घनघनाने लगे। लड़की उस युवती की गोद में जा कर फिर नहीं रोई। लड़की ने जाने क्या सोचा। शायद इस युवती को सुन्दरी देख कर माँ जैसी सोचा। शायद चूल्हे की आँच कुछ लड़की को लगी, इसलिए एक बार रोई। रोना सुनते ही जीवानन्द ने कहा, 'ओ नीमी! ओ मुँहझौंसी! ओ बँदरिया! अभी तेरा दूध नहीं औटा गया?'

नीमी ने कहा, 'औट गया है।' यह कह कर वह बड़ी कूँड़ी में दूध ढाल कर जीवानन्द के पास ले आई। जीवानन्द ने बनावटी क्रोध दिखालते हुए कहा, 'जी में आता है कि जलती कूँड़ी का दूध तेरे ऊपर ढाल दूँ—तूने क्या सोचा है कि मैं पिऊँ गा?'

नीमी ने पूछा, 'फिर कौन पिये गा?'

'यह लड़की पिये गी, देखती नहीं? उस लड़की को दूध पिला।'

नीमी तब पीढ़े पर बैठ कर, लड़की को गोद में लेटा कर, सूती से दूध पिलाने लगी। एकाएक उसकी आँखों से कुछ बूँद आँसू टपक गये। उसके एक लड़का हो कर मर गया है, उसी की स्मृति-शेष यह सूती थी।

नीमी ने फिर हथेली से आँसू पोंछ कर हँसते हुए जीवानन्द से पूछा, 'क्यों दादा, यह किसकी लड़की है?'

जीवानन्द ने कहा, 'तुझे इससे क्या?'

नीमी ने कहा, 'मुझे यह लड़की दो गे?'

जीवानन्द ने कहा, 'तू ले कर क्या करे गी?'

'मैं लड़की को दूध पिलाऊँगी, गोद में लूँ गी, बड़ी करूँगी।'

कहते-कहते आँखों के आँसू फिर बह चले। नीमी ने फिर हथेलियों से पोंछा, फिर हँसी।

जीवानन्द ने कहा, 'तू ले कर क्या करेगी? तेरे ही कितने लड़की-लड़के होंगे।'

'होंगे तो होंगे। अभी तो मुझे इस लड़की को दे दो। इसके बाद, न हो ले जाना।'

'तो ले। ले कर मर। मैं बीच-बीच में आ कर देख जाऊँगा। वह कायस्थ की लड़की है। मैं चला इस समय।'

'यह कैसे? भोजन नहीं करो गे? कितना दिन चढ़ आया है। दो कौर खाते जाओ, मेरी कसम है।'

लड़की को गोद में लिये हुए नीमी जल्दी-जल्दी भोजन परोसने चली।

जगह छींट कर, पीढ़ा डाल कर, मल्लिका के फूल जैसे साफ चावल, कच्ची फली की दाल, जंगली गूलर की तरकारी, तालब की रोहू मछली का रसेदार झोल और दूध ला कर जीवानन्द को जिमाने लगी। भोजन के लिए बैठे हुए जीवानन्द ने कहा, 'नीमी दीदी! कौन कहता है कि मन्वन्तर है? तुम्हारे गाँव में शायद मन्वन्तर नहीं आया?'

नीमी ने कहा, 'मन्वन्तर क्यों नहीं होगा, बहुत बड़ा मन्वन्तर है। लेकिन हम दो आदमी हैं, घर में जो कुछ है, आदमियों को देते हैं, खुद खाते हैं। हमारे गाँव में पानी बरसा था, याद नहीं? तुम वह जो कह गये थे, वन में वर्षा होती है। इस तरह, हमारे गाँव में कुछ-कुछ धान हुआ था। सब आदमी शहर में बेच आये। हम लोगों ने नही बेचा।'

'जीवानन्द ने पूछा, बहनोई जी कहाँ हैं?'

नीमी ने सर झुका कर धीमी आवाज में कहा, 'दो-तीन सेर चावल ले कर कहीं निकले हैं। किसी ने चावल माँगा था, सुना।'

जीवानन्द को ऐसा भोजन इधर बहुत दिनों से नसीब नहीं हुआ था। जीवानन्द ने और व्यर्थ की बातों में समय न नष्ट कर के, सपासप, गपागप, कटाकट, थोड़े समय में, अन्न और व्यञ्जन आदि समाप्त किया। श्रीमती निमाईमणि ने सिर्फ अपने और पति के लिए खाना पकाया था, अपना भोजन दादा को दिया था; थाली खाली देख कर अप्रतिभ हो कर पति का भोजन भी ला कर परोस दिया। जीवानन्द की भौंहों में बल नहीं पड़े, उन्होंने वह सब भी उदर नाम के बृहत् गह्वर में डाल दिया। तब निमाईमणि ने पूछा, 'दादा और कुछ चाहिए?'

जीवानन्द ने पूछा, 'और क्या है ?'

निमाईमणि ने कहा, 'एक पका कटहल है ।'

निमाई ने वह पका कटहल ला दिया । कोई आपत्ति किये बिना, जीवानन्द गोस्वामी ने उस कटहल को भी उसी उदर गह्वर में डाल दिया । तब निमाई ने हँस कर कहा, 'दादा अब कुछ नहीं है ।'

दादा ने कहा, 'तो जा, दूसरे दिन आ कर खाऊँ गा ।'

लाचार, निमाई ने जीवानन्द को मुँह धोने का जल दिया । जल देते-देते निमाई ने कहा, 'दादा, मेरी एक बात रक्खो गे ?'

'कौन-सी बात ?'

'मेरे सिर की कसम !'

'कुछ कह भी, मुई !

'बात रक्खो गे ?'

'बात क्या है, पहले कह तो ?'

'मेरे सर की कसम, तुम्हारे पैरों पड़ूँ ।'

'तेरे सर की कसम है, तू पैरों भी पड़, लेकिन बात क्या है, कह तो ?'

निमाई ने एक हाथ से दूसरे हाथ की उँगली दबा कर, सर झुका कर उन उँगलियों को देखते हुए एक बार जीवानन्द के मुँह की तरफ देख कर, एक बार जमीन पर निगाह डालते हुए, अन्त में जबान खोल कर पूछा 'एक बार बहू को बुला दूँ ?'

जीवानन्द हाथ धोने वाला गेड़ुवा उठा कर नीमी के सर पर पटकने को लपके, कहा, 'मेरी लड़की लौटा दे, और मैं किसी दिन तेरा चावल-दाल लौटा जाऊँ गा। तू बँदरिया है मुँहझौंसी, जो कुछ नहीं कहने का, मुझे कहती है ।'

निमाई ने कहा, 'माना कि मैं बँदरिया हूँ, मुँहझौंसी हूँ, एक बार बहू को बुला दूँ ?'

'मैं चला ।'

यह कह कर जीवानन्द लम्बे डग भरते हुए बाहर निकलने को हुए कि निमाई दरवाजे पर खड़ी हो गई । दरवाजा बन्द कर के दरवाजे से पीठ लगा कर बोली, 'पहले मुझे मार डालो, तब तुम जाओ । बहू से एक बार भेंट किये बिना तुम जा नहीं सकते ।'

जीवानन्द ने कहा, 'मैंने कितने आदमियों को मार डाला है, यह तू जानती है ?'

अब नीमी को गुस्सा आ गया, कहा, 'बड़ी कीर्ति कर डाली । स्त्री छोड़ो गे, आदमी मारो गे, और मैं तुमसे डरूँ गी । तुम जिस बाप के सन्तान हो, मैं भी उसी बाप की संतान हूँ; आदमी मारना अगर शेखी की बात है, तो मुझे मार कर शेखी करो ।'

जीवानन्द हँसा, 'चल ला, किस पापिष्ठा को बुला लाये गी, ले आ; परन्तु देख, फिर अगर ऐसी बात कहे गी, तो तुझे कुछ कहूँ या न कहूँ, उस साले के भाई, साले का सर मुड़ा कर, सर पर मट्ठा डाल कर, गधे पर उल्टा चढ़ा कर देश के बाहर निकाल दूँ गा।'

नीमी ने मन ही मन कहा, 'तो मेरी जान में जान आये।' यह कह कर हँसती हुई वह बाहर निकल गई। पास के एक पर्णकुटीर के भीतर गई। कुटीर में सैकड़ों गाँठ वाली धोती पहने, रूखे बाल वाली एक स्त्री बैठी चरखा चला रही थी। निमाई ने जा कर कहा, 'बहू, जल्दी।' बहू ने कहा, 'जल्दी क्या री? नन्दोई जी ने तुझे मारा है क्या, दर्द पर तेल लगाना है?'

'हाँ, करीब-करीब ऐसा ही है। तेल है घर मैं?'

उस स्त्री ने तेल वाली हण्डी निकाल दी। नीमी ने हण्डी से अँजुली-अँजुली तेल निकाल कर उस स्त्री के सर में चुपड़ दिया। जल्दी-जल्दी एक कामचलाऊ खोंपा[1] बाँध दिया। इसके बाद उसे एक घूसा मार कर कहा, 'तेरी वह ढाके वाली साड़ी कहां है, बता?' वह स्त्री कुछ विस्मित हो कर बोली, 'क्यों री, पागल हो गई है क्या?'

निमाई ने धम्म से एक घूँसा पीठ पर मारा, कहा, 'साड़ी जल्दी निकाल।'

तमाशा देखने के लिए उस स्त्री ने साड़ी निकाली। तमाशा देखने के लिए, क्योंकि, इतने दु:ख में भी तमाशा देखने की उसकी वृत्ति हृदय से लुप्त नहीं हुई थी। नव-यौवन, कमल जैसा उसकी नई उम्र का सौंदर्य; तेल नहीं, वेश नहीं, भोजन नहीं, फिर भी वह जलता हुआ सौंदर्य उस सैकड़ों ग्रन्थिवाले वस्त्र के भीतर भी खुल रहा है। रंग में छाया-लोक का चाञ्चल्य, आँखों में कटाक्ष, होंठों में हँसी, हृदय में धैर्य। भोजन नहीं होता, फिर भी देह लावण्यमय है; बनाव सिंगार नहीं, फिर भी सौंदर्य पूरी तरह खुला हुआ। जैसे मेघ में बिजली, जैसे मन में प्रतिभा, जैसे संसार के शब्दों में सङ्गीत जैसे मृत्यु के भीतर सुख है, वैसे ही उस रूपराशि में अनिर्वचनीय क्या था? अनिर्वचनीय माधुर्य, अनिर्वचनीय ऊँचे भाव, अनिर्वचनीय प्रेम, अनिर्वचनीय भक्ति। उसने हँसते हुए (किसी ने वह हँसी नहीं देखी) ढाके वाली साड़ी बाहर निकाली। पूछा, 'क्यों री नीमी, क्या होगी?'

नीमी ने कहा, 'तू पहने गी।' उसने पूछा, 'मेरे पहनने से क्या हो गा?'

तब निमाई उसके कमनीय कण्ठ में अपनी कमनीय बाहें लपेट कर बोली, 'दादा आये हैं, तुझे चलने के लिए कहा है।'

उसने कहा, 'चलने के लिए कहा है तो ढाके की साड़ी क्यों? चल, ऐसे ही चलें।'

निमाई ने उसके गाल पर एक चपत मारी—उसने निमाई के गले में हाथ रख

1 बङ्गाल में बँधे बालों के जूड़े को खोंपा कहते हैं।

कर उसे कुटीर के बाहर निकाला ! कहा, 'चल, यह लत्ता पहन कर ही उन्हें देख आऊँ।' किसी तरह भी धोती नहीं बदली। लाचार निमाई राजी हुई। निमाई उसे साथ ले कर अपने घर के द्वार तक गई। जा कर उसे भीतर कर के द्वार बन्द कर आप द्वार पर ही खड़ी रही।

|१६|

उस स्त्री की उम्र लगभग पच्चीस साल की है, लेकिन देखने पर निमाई से अधिक उम्र की नहीं मालूम देती। मैली गिरह लगी धोती पहने हुए उस घर के भीतर गई। जान पड़ा, घर प्रकाशित हो गया। जान पड़ा, पत्तों में ढँकी किसी पेड़ में जितनी कलियाँ थीं, एकाएक खिल गईं। जान पड़ा, कहीं गुलाबपाश का मुँह बन्द था, किसी ने काग तोड़ दिया; किसी ने जैसे गुल होते अङ्गारों पर धूप-धूना-गूगुल डाल दिया। वह रूपसी घर में बैठ कर इधर-उधर पति की खोज करने लगी, पहले तो नहीं देख पाई; इसके बाद देखा, घर के आँगन में एक छोटा-सा आम का पेड़ है, आम के तने से सर रक्खे हुए जीवानन्द रो रहे हैं।

वह रूपसी धीरे-धीरे उनके पास गई और उनका हाथ पकड़ा। हम यह नहीं कहते कि उसकी आँखों में भी आँसू नहीं आये। ईश्वर ही जानते हैं कि उसकी आँखों से जो धारा बहना चाहती थी, बहने पर वह जीवानन्द को बहा देती, परन्तु उसने वह धारा बहने नहीं दी। हाथ में जीवानन्द का हाथ ले कर बोली, 'छिः, रोओ मत, मैं जानती हूँ, तुम मेरे लिए रो रहे हो, मेरे लिए तुम मत रोओ। तुमने जिस तरह से मुझे रक्खा है मैं उस तरह से सुखी हूँ।'

जीवानन्द ने सर उठा कर, आँखें पोंछ कर स्त्री से पूछा, 'शांति ! तुम्हारा यह सौ गिरहों वाला मैला वस्त्र क्यों ? तुम्हें खाने-पहनने की कमी तो नहीं।'

शांति ने कहा, 'तुम्हारा धन तुम्हारे ही लिए है। रुपया ले कर क्या करना होता है, मैं नहीं जानती। जब तुम आओगे, तब तुम मुझे ग्रहण करोगे।'

'ग्रहण करूँगा, शांति ! मैंने क्या तुम्हें छोड़ दिया है ?'

'छोड़ने की बात नहीं, जब तुम्हारा व्रत समाप्त हो गा, जब फिर तुम मुझे प्यार करो गे।'

बात पूरी होते न होते जीवानन्द शांति को दबा कर, गले लगा कर, उसके कन्धे पर अपना सिर रख कर, बड़ी देर तक चुपचाप खड़े रहे। लम्बी साँस छोड़ कर अन्त में कहा 'क्यों मैंने भेंट की ?'

'क्यों की ? तुमने तो अपना व्रत तोड़ दिया।'

'व्रत टूटे का प्रायश्चित्त है; मैं इसके लिए चिन्ता नहीं करता। परन्तु तुम्हें देख कर अब तो मैं नहीं लौट पा रहा। मैंने इसीलिए निमाई से कहा था कि भेंट की जरूरत नहीं। तुम्हें देखने पर मुझसे लौटा नहीं जाता। एक तरफ धर्म, अर्थ, काम मोक्ष और जगत्-संसार है; एक तरफ व्रत, होम, योग-यज्ञ है। सब एक तरफ है और एक तरफ हो तुम। मैं सब समय नहीं समझ पाता कि कौन भारी है। देश तो शान्त है, लेकिन देश ले कर मैं क्या करूँ गा ? देश में एक बिस्वा जमीन मिलने पर तुम्हें ले कर मैं स्वर्ग रच सकता हूँ; देश से मुझे काम क्या है ? देश के आदमियों का दुःख ? जिसने तुम जैसी स्त्री को पा कर छोड़ा, उससे बढ़ कर देश में और कौन दुखी हैं ? जिसने तुम्हारे अङ्गों पर सैकड़ों गिरहोंवाला वस्त्र देखा, उससे अधिक दरिद्र इस देश में ओर कौन है ? मेरे सब धर्मों की सहायिका तुम हो। उस सहायिका को जिसने छोड़ा, उसके पास फिर सनातन-धर्म क्या है ? मैं किस धर्म के लिए कन्धे पर बन्दूक रख कर, देश-देश, वन-वन, जानें ले-ले कर पाप का बोझ बढ़ा रहा हूँ ? पृथ्वी सन्तानों के कब्जे में आये गी या नहीं, मैं नहीं जानता, परन्तु तुम पर मेरा अधिकार है, तुम पृथ्वी से बड़ी हो, तुम मेरी स्वर्ग हो। चलो घर चलें—अब मैं नहीं लौटूँगा।'

शांति कुछ देर तक बात नहीं कर सकी। इसके बाद कहा, 'छिः, तुम वीर हो। पृथ्वी में मेरा सबसे बड़ा सुख यही है कि मैं वीर-पत्नी हूँ। तुम एक अधम-स्त्री के लिए वीर-धर्म छोड़ो गे ? तुम अब मुझे प्यार न करना, मैं वह सुख नहीं चाहती, परन्तु तुम अपना वीर-धर्म कभी न छोड़ना। देखो, मुझसे एक बात कहते जाओ, इस व्रतभङ्ग का प्रायश्चित क्या है ?'

जीवानन्द ने कहा, 'प्रायश्चित है दान, उपवास और बारह कानी कौंड़ी।'

शांति मुस्कराई। बोली, 'प्रायश्चित क्या है, यह मैं जानती हूँ। एक अपराध का जो प्रायश्चित है, सौ अपराध का भी क्या वही है ?'

जीवानन्द विस्मित हुए, उनका चेहरा उतर गया, पूछा,'ये बातें क्यों करती हो ?'

'एक भीख माँगती हूँ। मुझसे फिर मुलाकात न होने तक प्रायश्चित्त न करना।'

तब जीवानन्द हँसे, बोले 'इस विषय में निश्चिन्त रहो। तुम्हें बिना देखे मैं नहीं मरूँ गा। मरने की ऐसी जल्दो भी नहीं। मैं अब और यहाँ नहीं रहूँ गा। परन्तु आँखें भर कर तुम्हें नहीं देख पाया, एक दिन अवश्य इस तरह देखूँ गा, एक दिन अवश्य हमारी अभिलाषा पूरी हो गी। मैं अब चला, मेरा एक अनुरोध रखना। यह वेशभूषण छोड़ो। मेरे पुश्तैनी मकान में जा कर रहो।'

शांति ने पूछा, 'तुम इस समय कहाँ जाओगे।'

'अभी मठ में ब्रह्मचारी की खोज में जाऊँ गा। वे जिस तरह शहर गये हैं, इससे कुछ चिन्ता हो गई है, मन्दिर में उनका पता नहीं लगा तो शहर जाऊँ गा।'

| १७ |

मठ के भीतर बैठे हुए भवानन्द ईश्वर के भजन गा रहे थे, ऐसे समय उतरे चेहरे से ज्ञानानन्द नाम के एक तेजस्वी सन्तान उनके पास आ कर हाजिर हुए। भवानन्द ने पूछा, 'गोसाईं जी, चेहरा इतना उतरा क्यों है ?'

ज्ञानानन्द ने कहा, 'कुछ फसाद उठ खड़ा हुआ है। कल वाले मामले के लिए सिपाही गेरुआ वस्त्र देखते हैं और पकड़ते हैं। और, प्राय: सभी सन्तानों ने आज गेरुआ वस्त्र छोड़ दिया है। सिर्फ सत्यानन्द महाराज गेरुआ पहने हुए अकेले नगर की ओर गये हैं। क्या मालूम अगर वे मुसलमानों के हाथ पड़ें।'

भवानन्द ने कहा, 'उन्हें रोक रक्खे, ऐसा मुसलमान बङ्गाल में नहीं। धीरानन्द उनके पीछे गये हैं, जानता हूँ। फिर भी मैं एक बार नगर घूम आऊँ। तुम मठ की रक्षा करना।'

यह कह कर भवानन्द एक एकान्त कमरे में गये और एक बड़े सन्दूक से कुछ हथियार निकाले। एकाएक भवानन्द का रूप बदल गया। गेरुआ वस्त्र की जगह चूड़ीदार पाजामा, मिरजई, पटुका, अम्मामा और पैरों में जरी के जूते शोभा देने लगे। मस्तक से त्रिपुण्डादि चन्दन-चिह्न सब विलुप्त कर दिये। भौंरे-सी काली मूँछ और दाढ़ी से भरा सुन्दर मुख अपूर्व शोभा देने लगा। उस वक्त उन्हें देख कर मुगल-जाति का युवा का भान होने लगा। भवानन्द इस तरह मुगल बन कर सशस्त्र हो, मठ से बाहर निकले। वहाँ से एक कोस दूर दो छोटी-छोटी पहाड़ियाँ थीं। उन पहाड़ियों पर जंगल चढ़ता गया है। दोनों पहाड़ियों के बीच में एक एकांत जगह है, वहाँ कुछ घोड़े बँधे हुए हैं। मठवालों की अश्व-शाला यहीं है। भवानन्द उनमें से एक घोड़ा खोल कर उस पर सवार हुए और शहर की ओर बढ़े।

बढ़ते-बढ़ते सहसा उनकी गति रुकी। उसी रास्ते के किनारे, कल-कल स्वर से बहती हुई नदी के तट पर, आकाश से गिरी तारिका-सी, मेघमाला से गिरी, विद्युत-सी दीप्त स्त्री-मूर्ति लेटी हुई देखी। देखा, जीवन का कोई भी लक्षण उसमें नहीं—विष की खाली डिबिया पास में पड़ी हुई है।

भवानन्द आश्चर्य में आये, क्षुब्ध हुए और डरे।

जीवानन्द की तरह भवानन्द ने भी महेन्द्र की स्त्री-कन्या को नहीं देखा। जीवानन्द ने जिन कारणों से सन्देह किया था कि ये महेन्द्र की स्त्री-कन्या हो सकती हैं, भवानन्द के पास वे सब कारण नहीं। उन्होंने ब्रह्मचारी और महेन्द्र को बन्दी हो कर ले जाये जाते नहीं देखा था। लड़की भी वहाँ नहीं थी। डिबिया देख कर समझे, यह कोई स्त्री जहर खा कर मरी है। भवानन्द उस लाश के पास बैठे; बैठ कर गाल से हथेली

 हाथ लगा कर लगाए हुए देर तक सोचते रहे। सिर में, बगल में, हाथ में, [illegible] देखा; बहुत तरह से दूसरों की न जानी हुई परीक्षाएँ कीं; फिर मन-ही-मन कहा, 'अब भी समय है, परन्तु बचा कर क्या करूँगा ?' इस तरह भवानन्द ने देर तक विचार किया, विचार कर के वन में जा कर एक पेड़ के कुछ पत्ते गदोरी में मसल कर रस निकाल कर उस लाश के होठों और दाँतों की पाटियों में उँगली डाल कर, फैला कर कुछ रस भीतर पहुँचा दिया। बाद में नाक में कुछ रस डाला और अंगों में वह रस मलने लगे। बार-बार ऐसा करने लगे; बीच-बीच में नाक के पास हाथ ले जा कर देखने लगे कि साँस चल रही है या नहीं। जान पड़ा, प्रयत्न विफल हो रहा है। इस तरह बहुत देर परीक्षा करते-करते भवानन्द का चेहरा कुछ प्रफुल्ल हुआ—उँगली में सांस के धीमे-धीमे चलने का कुछ अनुभव किया। तब और भी पत्तों का रस निचोड़ने लगे। क्रमश: साँस तेज चलने लगी। भवानन्द ने नाड़ी पर हाथ रख कर देखा, नाड़ी चलने लगी थी। अन्त में धीरे-धीरे पूर्व की ओर प्रथम प्रभात-राग के विकास की तरह, प्रभात-पद्म के प्रथम उन्मेष की तरह, प्रथम प्रेमानुभव की तरह कल्याणी आँखें खोलने लगीं। देख कर भवानन्द उस अर्द्ध-जीवित देह को घोड़े पर रख कर द्रुत गति से घोड़ा भगाते हुए नगर की ओर गये।

१८

शाम होने से पहले सन्तान-सम्प्रदाय के लोग जान गये कि सत्यानन्द ब्रह्मचारी और महेंद्र गिरफ्तार कर के नगर के कारागार में कैद किये गये हैं। तब एक-एक, दो-दो, दस-दस, सौ-सौ सन्तान-सम्प्रदाय के लोग आ-आ कर उस देवालय को घेरने वाले जंगल को भरने लगे। सभी हथियार लिये हुए। आँखों में गुस्से की चिनगारी, चेहरे पर दम्भ, होठों में प्रतिज्ञा। पहले सौ, फिर हजार, फिर दो हजार, इस तरह लोगों की संख्या बढ़ने लगी। तब मठ के द्वार पर खड़े हुए ज्ञानानन्द तलवार हाथ में लिये हुए ऊँचे स्वर से कहने लगे, 'हम लोगों ने बहुत दिनों से सोच रक्खा है कि ये बयों के घोंसले तोड़ कर यवनपुरी नष्ट-भ्रष्ट कर के नदी में बहा देंगे। ये सुअरों के अड्डे जला-कर माता वसुमती को फिर से पवित्र करेंगे। भाइयों, आज वह दिन आया है। हमारे गुरु के गुरु, परमगुरु, जो अनन्त ज्ञानमय हैं, सदा शुद्धाचार, जो लोगों का कल्याण करते हैं, देश का कल्याण करते हैं, सनातन-धर्म के पुन: प्रचार के लिए देह दे देने की जिन्होंने प्रतिज्ञा की है, जिन्हें हम विष्णु का अवतार मानते हैं, जो हमारी मुक्ति के उपाय हैं, वे आज मुसलमान के कारागार में कैद है। क्या हमारी तलवारों में धार

नहीं ?' हाथ फैला कर ज्ञानानन्द ने कहा, 'इन बाहों में क्या बल नहीं ?' छाती ठोंक कर कहा, 'इस हृदय में क्या साहस नहीं ?—भाइयों, कहो, हरे मुरारे मधुकैटभारे—जिन्होंने मधु-कैटभ का विनाश किया है, जिन्होंने हिरण्यकशिपु, कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल आदि दुर्जय असुरों को मारा है, जिनके चक्र के घर्घर-घोष से मृत्युंजय शम्भु भी डर गये थे—जो अजेय हैं, युद्ध में जयदाता, हम उनके उपासक हैं, उनके बल से हमारी बाहों में अनन्त बल है। वे इच्छामय हैं, इच्छा करने से ही हम लड़ाई जीतें गे। चलो, हम लोग वह यवनपुरी तोड़ कर धूल में मिला दें; वे सुअरों के अड्डे जला कर नदी में बहा दें; बयों के घोंसले तोड़ कर तिनके हवा में उड़ा दें। कहो, हरे मुरारे मधुकैटभारे !'

तब बड़े भयङ्कर स्वर से सहस्र कण्ठों की एक साथ आवाज हुई, 'हरे मुरारे मधुकैटभारे !' हजार तलवारें एक साथ झनझना उठीं। हजार बल्लमों के फलक एक साथ ऊपर को उठे। हजार तालों के बजने से वज्रनाद होने लगा। हजार ढोल योद्धाओं की कर्कश पीठों में तड़तड़ आवाज करने लगे। महाकोलाहल उठा; पशु डर कर वन से भागने लगे। चिड़ियाँ ऊँचे स्वर से बोलती हुई उड़-उड़ कर आकाश में मँडलाने लगीं। उसी समय सैकड़ों जङ्गी ढोल एक साथ बज उठे—'हरे मुरारे मधुकैटभारे !' कह कर अरण्य से कतारों में सन्तानों का दल निकलने लगा। धीर-गम्भीर गति से कदम रखते हुए, ऊँचे स्वर से हरिनाम कहते हुए, वे उस अंधेरी रात में नगर की तरफ चले। वस्त्रों का मर्मर-शब्द, अस्त्रों की झनझनाहट, कण्ठों का अस्फुट निनाद, रह-रह कर उच्च स्वर से हरिनाम। धीरता से, गम्भीरता से, रोषपूर्वक, तेजी से, उस सन्तान-वाहिनी ने नगर में आ कर नगर को त्रस्त्र कर दिया। एकाएक यह वज्रपात देख कर कौन नागरिक कहाँ भागा, ठिकाना नहीं रहा। नगर के रक्षक हतबुद्धि हो कर निश्चेष्ट हो रहे।

इधर सन्तान पहले राजकारागार गये। कारागार तोड़ कर रक्षकों को मार डाला और सत्यानन्द और महेंद्र को मुक्त कर के सिर पर ले कर नाचने लगे। तब बार बार ईश्वर नाम की गूँज उठने लगी। सत्यानन्द और महेन्द्र को मुक्त कर के ही उन्होंने जहाँ कहीं मुसलमान का घर देखा, उसमें आग लगा दी। तब सत्यानन्द ने कहा 'लौट चलो, व्यर्थ किसी की क्षति करने से कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।' सन्तानों के इस अत्याचार का संवाद पा कर देश के अधिकारियों ने उनके दमन के लिए परगना-सिपाहियों का एक दल भेजा। उनके सिर्फ बन्दूक ही नहीं, एक तोप भी साथ थी। उनके आने की खबर पाकर सन्तान आनन्द-कानन से निकल कर युद्ध के लिए बढ़े। परन्तु लाठी, बल्लम, तलवार और बीस-पच्चीस बन्दूकें तोप का मुकाबिला क्या करेंगी, सन्तानों का समूह हार-हार कर भागने लगा।

दूसरा भाग

| १ |

शान्ति की थोड़ी उम्र में, निरे बचपन में, माता का वियोग हुआ था। जिन तत्वों से शान्ति का चरित्र तैयार हुआ है, यह उनमें एक प्रधान है। उसके पिता उपाध्याय ब्राह्मण थे। उनके घर में कोई दूसरी स्त्री नहीं थी।

शांति के पिता जब पाठशाला में पढ़ते थे, शांति उनके पास जा कर बैठी रहती थी। पाठशाला में कुछ लड़के रहते थे; शांति दूसरे समय उनके पास बैठ कर खेलती थी, उनकी गोद में, पीठ पर चढ़ती थी, वे भी शांति को आदर देते थे।

इस बचपन में सदा पुरुषों के साथ रहने का पहला फल यह हुआ था कि शांति ने लड़की की तरह धोती पहनना नहीं सीखा। लड़के की तरह कोंछीदार धोती पहनना शुरू किया। उस समय कोई लड़की की जैसी धोती पहना देता था तो वह खोल डालती थी, फिर कोंछीदार पहनती थी। पाठशाला के लड़के खोंपा नहीं बाँधते, अतएव शांति भी कभी खोंपा नहीं बाँधती थी। उसका खोंपा बाँध भी कौन दे? पाठशाला के लड़के काठ के कंघे से उसके बाल सँवार देते थे, घुँघुराले बाल उसकी पीठ पर, कंधों पर, बाहों पर और गालों पर झूमते थे। छात्र चन्दन की बिन्दी लगाते थे और, और-और जगह चन्दन लगाते थे, शांति भी बिन्दी लगाती थी और, और-और जगह चन्दन लगाती थी, गले में यज्ञोपवीत पहनने को नहीं मिलता था, इसलिए शांति बहुत रोती थी। परन्तु संध्या-वन्दन के समय छात्रों के पास बैठ कर उनका अनुकरण करने में बाज नहीं आती थी। छात्र अध्यापक के न रहने पर संस्कृत की अश्लील मिसालें देते हुए दो-एक शृङ्गारात्मक किस्से-कहानियाँ कहते थे, तोते की तरह शांति ने वह सब भी सीखा—तोते की तरह, उनका अर्थ क्या है, कुछ भी नहीं जानती थी।

दूसरा फल यह हुआ कि शांति जब बड़ी हुई, तब लड़के जो कुछ पढ़ते थे, उनके साथ-साथ वह भी सीखने लगी। व्याकरण का कुछ भी नहीं आता, परन्तु भट्टि, रघु, कुमार, नैषधादि के श्लोक व्याख्या-सहित याद करने लगी। देख सुन कर शांति के पिता ने 'दद् भविष्यति तद् भविष्यति' कह कर शांति को मुग्धबोध पढ़ाना आरम्भ किया। शांति बहुत जल्दी-जल्दी सीखने लगी। अध्यापक विस्मय में आ गये। व्याकरण के साथ दो-एक किताब साहित्य की भी पढ़ाई। इसके बाद सब खेल खतम हो गया। पिता परलोक सिधार गये।

तब शांति बिना आश्रय के हो गई। पाठशाला भी उठ गई। छात्र भी सब चले गये।' परन्त शांति को वे लोग स्नेह करते थे, शांति को छोड़ कर नहीं जा सके, दया कर के एक छात्र उसे अपने यहाँ ले गया। बाद में वही सन्तान सम्प्रदाय में गया और जीवानन्द नाम ग्रहण किया। तब जीवानन्द के माता-पिता जीते थे। उनके पास जीवानन्द ने कन्या का सविशेष परिचय दिया। माता-पिता ने पूछा, 'अब इस दूसरे की लड़की का उत्तरदायित्व कौन लेगा?'

जीवानन्द ने कहा, 'मैं ले आया हूँ, मैं ही लूँगा।'

माता-पिता ने कहा, 'अच्छा है।'

जीवानन्द अविवाहित थे। जीवानन्द ने शांति से विवाह किया।

विवाह के बाद सब लोग पश्चात्ताप करने लगे। सब समझे 'काम अच्छा नहीं हुआ। शांति ने किसी तरह भी लड़की की जैसी धोती नहीं पहनी। किसी तरह भी बाल नही बाँधे। वह मकान के भीतर नहीं रहती थी। मुहल्ले के लड़कों के साथ खेलती थी। जीवानन्द के मकान के पास ही जंगल है, शांति अकेली जंगल में घुस कर, कहाँ मोर हैं, कहाँ हिरन हैं, कहाँ दुर्लभ फूल-फल हैं, यह सब खोजती फिरती थी। सास-ससुर ने पहले मना किया, फिर भला-बुरा कहा, बाद को मार कर कमरे में जंजीर चढ़ा कर कैद करने लगे। दबाव से शांति की तबीयत बहुत उचटी। एक दिन दरवाजे खुले पा कर किसी से कुछ कहे बिना शांति घर छोड़ कर चली गई।

जंगल में चुने-चुने फूल चुन कर कपड़ा रंग कर शांति, बालक संन्यासी बनी, तब बंगाल भर में दल के दल संन्यासी घूमते थे। शांति भीख माँग कर खाती हुई जगन्नाथपुरी के रास्ते जा कर खड़ी हुई। कुछ ही देर बाद उस रास्ते में संन्यासियों का एक दल देख पड़ा। शांति उनके साथ मिली।

तब के संन्यासी अब के संन्यासियों की तरह नहीं थे। वे लोग दल-बद्ध, सुशिक्षित, बलिष्ठ, युद्ध-विशारद और दूसरे-दूसरे गुणों से युक्त थे। वे प्रायः राजा के विद्रोही थे, खजानों की लूट करते थे। बली लड़का मिलने पर वे चुरा लेते थे। उन्हें सुशिक्षित कर के अपने सम्प्रदाय में मिला लेते थे। इसलिए उन्हें लड़के पकड़ने वाले कहते थे।

शांति बालक-संन्यासी के वेश में इन्हीं के एक सम्प्रदाय से मिली। वे लोग पहले

उसके कोमल अङ्ग देख कर ग्रहण करने को राजी नहीं हुए, परन्तु शांति की बुद्धि की प्रखरता, चतुरता और कार्यदक्षता देख कर आदरपूर्वक दल में लिया। शांति उनके दल में रह कर व्यायाम करती थी, अस्त्र चलाना सीखती थी। इस तरह मिहनत करने वाली और सहनशील हो गई। उनके साथ रह कर अनेक देश-देशान्तर का पर्यटन किया, अनेक लड़ाइयाँ देखीं और अस्त्र-विद्या सीखी।

क्रमशः उसमें यौवन के लक्षण दिखे। बहुत-से-संन्यासियों ने जाना कि वह छद्मवेशिनी स्त्री है। परन्तु संन्यासी प्रायः जितेन्द्रिय होते हैं; किसी ने कुछ नहीं कहा।

संन्यासियों में बहुत-से पण्डित थे। शांति संस्कृत में कुछ गति प्राप्त कर चुकी है, देख कर एक पण्डित संन्यासी ने उसे पढ़ाना शुरू किया। प्रायः संन्यासी जितेन्द्रिय होते हैं, कहा है; लेकिन सब नहीं होते। ये पण्डित भी नहीं थे, अथवा ये शांति के नये यौवन के विकास से पैदा हुए लावण्य से मुग्ध हो कर इन्द्रिय से बार-बार पीड़ित होने लगे। शिष्या को काव्य पढ़ाना शुरू किया। काव्यों की न सुनाई जाने वाली व्याख्याएँ सुनाने लगे। इससे शांति का अपकार न हो कर कुछ उपकार ही हुआ। लज्जा किसे कहते हैं, शांति नहीं जानती; अब स्त्री-स्वभाव-सुलभ लज्जा आप आ कर उपस्थित हुई। पौरुष-चरित्र पर निर्मल स्त्री-चरित्र की अपूर्व प्रभा आ कर पड़ी। शांति के गुणों को चमकाने लगी। शांति ने पढ़ना छोड़ दिया।

व्याध जिस तरह हिरनी की तरफ दौड़ता है, शांति के अध्यापक शांति को देखते ही उसकी तरफ उसी तरह दौड़ने लगे। परन्तु व्यायाम आदि से शांति ने पुरुष का भी दुर्लभ बल प्राप्त किया था। अध्यापक पास आते थे, झापड़ और घूसों से उनकी पूजा करती थी—झापड़ और घूसे मामूली नहीं थे। एक संन्यासी महाराज ने एकान्त में पा कर बड़ी मजबूती से शांति का हाथ पकड़ा, शांति छुड़ा नहीं सकी। परन्तु संन्यासी के दुर्भाग्य से वह शांति का बायाँ हाथ था, दाहिने हाथ से शांति ने उनके सर पर ऐसा घूसा मारा कि संन्यासी मूर्च्छित हो कर गिर गये। शांति संन्यासी-सम्प्रदाय छोड़ कर भाग गई।

शान्ति निडर है। अकेली अपने गाँव की खोज करती चली। हिम्मत और बाँहों के बल के भरोसे निर्विघ्नता से चली। भीख माँग कर, अथवा जङ्गली फलों से पेट भरती हुई, और बहुतों से हाथा-पाइयों में जीत कर ससुराल पहुँची। देखा ससुर परलोक सिधार गये हैं, सास ने उसे जगह नहीं दी—जाति नहीं रहे गीं। शान्ति बाहर निकल गई।

जीवानन्द मकान में थे। वे शान्ति के पीछे चले। रास्ते में शान्ति को पकड़ कर पूछा, 'तुम क्यों मेरा घर छोड़ गई थी ? इतने दिन कहाँ थीं ?'

शान्ति ने सब सही-सही कहा। जीवानन्द सब सच-झूठ समझ सकते थे। उन्होंने शान्ति की बात पर विश्वास किया।

अप्सराओं की भ्रू-विलास-युक्त कटाक्ष की ज्योति ले कर बड़े यन्त्र से तैयार सम्मोहन शर को कामदेव विवाहित के प्रति छोड़ कर व्यर्थ का खर्च नहीं करते। अंगरेज पूरनमासी की रात को राजमार्ग पर गैस जलाते हैं, बंगाली तेल लगे सर पर तेल डालते हैं; मनुष्यों की बात दूर रहीं, चन्द्रदेव सूर्यदेव के आने के बाद भी कभी कभी आकाश में उगे रहते हैं; इन्द्र पर पानी बरसाते हैं, जिस सन्दूक में रुपये भरे हैं, कुबेर उसी सन्दूक के लिए रुपये ले जाते हैं; यम ने प्राय: जिसके सब आदमियों को ग्रहण किया है, उसी के एक बाकी को ले जाते हैं; सिर्फ रतिपति का ऐसी बुद्धिहीनता का काम नहीं नजर आता। जहाँ गँठबन्धन हुआ है वहाँ वे और मिहनत नहीं करते, प्रजापति पर सब भार सौंप कर, जिसके हृदय का खून पी पायें गे, उसकी तलाश में जाते हैं; परन्तु आज शायद पुष्पधन्वा का और कोई काम नहीं था, एकाएक दो पुष्पबाणों का उन्होंने अपव्यय किया। एक ने आ कर जीवानन्द का हृदय पार किया, और एक दूसरे ने आ कर शान्ति के हृदय में चुभ कर समझाया कि वह हृदय स्त्री का हृदय है—बड़ी कोमल चीज। नये मेघ से मुक्त पहली वर्षा से धुली कली की तरह सहसा खिल कर शान्ति ने उत्फुल्ल नयनों से जीवानन्द के मुँह की ओर देखा।

जीवानन्द ने कहा, 'मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँ गा। मैं जब तक लौट कर आऊँ, तब तक तुम खड़ी रहो।'

शान्ति ने पूछा, 'तुम लौट कर आवो गे तो?'

जीवानन्द कोई जवाब न दे कर के किसी तरफ बिना देखे, उस रास्ते के किनारे के नारियलों के कुञ्ज की छाँह में, शान्ति के होंठों पर होंठ लगा कर, अमृत पिया, सोच कर, चले गये।

माँ को समझा कर जीवानन्द माँ से बिदा हो आये। भैरवीपुर में फिलहाल उनकी बहन निमाई का विवाह हुआ था, बहनोई के साथ जीवानन्द का कुछ प्रेम था, जीवानन्द शान्ति को ले कर वहीं गये। बहनोई ने थोड़ी-सी जगह दी। जीवानन्द ने उस पर एक कुटिया बनवायी; फिर शान्ति को ले कर वहीं सुखपूर्वक रहने लगे। पति के साथ रहते हुए शान्ति के चरित्र का पौरुष विलीन या प्रच्छन्न हो गया। रमणी से रमणी-चरित्र का नित्य नवोन्मेष होने लगा। सुख के स्वप्न की तरह उनकी जिन्दगी पार हो रही थी; परन्तु सहसा वह सुख का स्वप्न टूटा। जीवानन्द सत्यानन्द के हाथ पड़ कर, संतान-धर्म ग्रहण कर शान्ति को छोड़ कर चले गये। त्याग के बाद उनकी पहली भेंट निमाई की चतुराई से हुई।

२

जीवानन्द के चले जाने पर शान्ति निमाई के चबूतरे पर जा कर बैठी। निमाई लड़की को गोद में लिये हुए उसके पास आ कर बैठी। शान्ति की आँखों में अब आँसू नहीं, शान्ति ने आँखें पोंछ कर चेहरा प्रसन्न कर लिया है, मन्द-मन्द मुस्करा रही है। कुछ गम्भीर है, कुछ चिन्तित और अनमनी। निमाई ने समझ कर कहा, 'फिर भी मुलाकात तो हुई।'

शान्ति ने कोई जवाब नहीं दिया, चुप रही। निमाई ने देखा, शान्ति मन की बात कुछ नहीं कहेगी। शान्ति को मन की बात कहना पसंद नहीं, यह निमाई जानती थी, इसलिए निमाई ने कोशिश कर के दूसरी बात उठाई, कहा, 'देखो तो बहू, कैसी अच्छी लड़की है।'

शान्ति ने पूछा, 'लड़की कहाँ से मिली ? तेरे लड़की कब हुई री ?'

'तुम्हारी मौत हो, तुम्हें यम के दूत ले जायँ, यह दादा की लड़की है।'

निमाई ने शान्ति को जलाने के लिए यह बात नहीं कही। 'दादा की लड़की है' अर्थात् दादा से उसे वह लड़की मिली है। शान्ति यह नहीं समझी। सोचा, निमाई शायद कोंचने की कोशिश कर रही है। अस्तु, शान्ति ने जवाब दिया, 'मैंने लड़की के बाप की बात नहीं पूछी, माँ की बात पूछी है !'

उचित उत्तर पा कर निमाई ने कहा, 'किसकी लड़की है, क्या जानूँ भई, दादा कहीं से उठा पुठा लाये हैं, सो पूछने का तो अवसर ही सहीं मिला। लेकिन मन्वन्तर के दिन हैं, कितने आदमी लड़के-बच्चे रास्ते-घाट दर डाल जाते हैं, हमारे ही पास कितने लोग अपने लड़की लड़के बेचने आये थे, लेकिन दूसरे के लड़की-लड़के कौन खरीदे ?' फिर उसकी आँखों में आँसू छलक आये। निमी आँसू पोंछ कर फिर कहने लगी, 'लड़की बड़ी सुन्दर है, गोल-मटोल, चाँद जैसी, देख कर दादा से माँग लिया है।'

इसके बाद शान्ति बहुत देर तक निमाई से तरह-तरह की बातें करती रही। कुछ देर में निमाई के पति घर लौट आये, देख कर शान्ति उठ कर अपनी कुटिया में गई। वहाँ जा कर दरवाजा बन्द कर के चूल्हे से कुछ आग निकाल कर रख दी, बाकी राख पर, अपने लिए जो भात पका कर रक्खा था, वह फेंक दिया। इसके बाद खड़ी-खड़ी बहुत देर तक सोच कर अपने आप बोली, 'इतने दिनों तक जो कुछ सोच रक्खा था, आज वही करूँगी। जिस आशा से इतने दिनों तक नहीं किया, वह सफल हुई है। सफल या निष्फल—निष्फल। जो संकल्प किया है, वही करूँगी। एक बार के लिए जो प्रायश्चित्त है, सौ बार के लिए भी वही है।'

यह सोच कर शान्ति ने भात चूल्हे में फेंक दिया। वन से फल तोड़ लाई। अन्न की जगह फल खाये। इसके बाद उसकी ढाके वाली जिस साड़ी पर निमाईमणि को नजर लगी थी, उसे निकाल कर उसकी किनारी नोच डाली। साड़ी का जो हिस्सा बचा, उसे गेरू से अच्छी तरह रँगा। कपड़ा रँगने और सुखाने में शाम हो गई। शाम होने पर दरवाजा बन्द कर के शान्ति ने सिर के रूखे, एड़ी तक आते बालों का कुछ हिस्सा कैंची से काट कर अलग रख दिया। बाकी जो सर पर रहा, उसे बिन कर एक जटा तैयार की। रूखे बाल अपूर्व विन्यास वाले जटा-भार में परिणत हुए। इसके बाद गेरुए वस्त्र का आधा फाड़ कर शान्ति ने अंचल बना कर पहना, बाकी आधे को सीने पर बाँधा। घर में एक छोटा-सा दर्पण था, बहुत दिनों के बाद शान्ति ने उसे बाहर निकाला। निकाल कर दर्पण में अपना वेश आप देखा। देख कर कहा, 'हाय, किस तरह पूरा उतारूँ ?' तब दर्पण फेंक कर जो बाल कटे पड़े थे, उन्हें ले कर दाढ़ी-मूँछें बनाईं, लेकिन पहन न सकी। सोचा, 'राम-राम ! यह भी होता है ? वे दिन वह समय, क्या अब है ? परन्तु बुड्ढे को सबक सिखाने के लिए यह सब रख लेना अच्छा है।' यह सोच कर शान्ति ने दाढ़ी-मूँछें कपड़े में बाँध लिया। इसके बाद घर से एक बड़ा मृग-चर्म निकाल कर, गले में गाँठ मार कर गले से जाँघ तक देह को ढँका। इस तरह सज कर, वह नवीन संन्यासी, घर के भीतर धीरे-धीरे चारों तरफ देखने लगी। रात के दो पहर बीतने पर शान्ति उसी संन्यासी वेश में दरवाजा खोल कर अँधेरे में अकेली घने वन की ओर गई। वन-देवियों ने उस शब्दहीन वन में अपूर्व गीतध्वनि सुनी।

गीत[1]

'दड़ बड़ि घोड़ा चढ़ि कोथा तूमि जाव रे।
समरे चलिनू आमि हामो न फिराऊ रे।
हरि, हरि, हरि, हरि, बोलि रणरंगे,
झाँप दिबो प्राण आजि समर तरंगे,
तूमी कार के तोमार, केन एशो संगे,
रमणीते नाहि साध, रणजय गाऊ रे।'

●

'पाये धरि प्राणनाथ आमा छेड़े येऊना।
हुई शून बाजे घन रणजाय बाजना।
नाचिछे तुरंग मोर रण करे कामना,
उड़ित आमार मन, घरे आर खना'
रमणीते नाहि साध रणजय गाऊ रे।'

---

१. रागिनी बागीश्वरी—ताल आड़ा।

दूसरे दिन आनन्दमठ के एकान्त कमरे में बैठे हुए उत्साह-भंग दो-तीन सन्तान-नायक बातचीत कर रहे थे। जीवानन्द ने सत्यानन्द से पूछा, 'महाराज, देवता हमारे ऐसे अप्रसन्न क्यों हैं ? किस दोष से हम लोग मुसलमानों से पराजित हुए।'

सत्यानन्द ने कहा, 'देवता अप्रसन्न नहीं। लड़ाई में जय और पराजय दोनों ही हैं। उस दिन हम लोग जयी हुए थे, आज पराजित हुए हैं। अन्त में जय ही जय है। हमें निश्चित रूप से भरोसा होता है कि जिन्होंने इतने दिनों तक हम पर दया की है, वे शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी वनमाली फिर से दया करेंगे। उनके चरण छू कर जिस महाव्रत में हम लोग व्रती हुए हैं, अवश्य ही वह व्रत हमें साधना होगा। विमुख होने पर हम लोग अनन्त नरक में पड़ें गे। भावी मंगल के सम्बन्ध में मुझे संदेह नहीं। परन्तु जिस तरह दैव की कृपा के बिना कोई काम सिद्ध नहीं हो सकता, उसी तरह पुरस्कार भी चाहिए। हम लोग हारे, इसका कारण यह है कि हम लोग निरस्त्र हैं। गोली-गोले, तोप और बन्दूकों के मुकाबले लाठी, सोंटा और बल्लमों से भला क्या होगा ? अस्तु हमारे पुरुषकार का लाघव था, इसीलिए हम हारे। अब हमारा कर्त्तव्य है कि हम ऐसा करें कि हमारे पास भी उन अस्त्रों की कमी न रहे।'

यह तो बड़ा मुश्किल काम है।'

'मुश्किल काम है जीवानन्द ? सन्तान हो कर ऐसी बात तुम जबान पर लाये ? सन्तान के लिए मुश्किल काम है क्या ?'

'किस तरह ये अस्त्र हम संगृहीत करें आज्ञा दीजिए।'

'संग्रह के लिए आज रात को तीर्थ-यात्रा करूँ गा। जब तक लौट न आऊँ, तब तक तुम लोग किसी उत्तरदायी काम में हाथ न लगाना; परन्तु संतानों की एकता बचाये रखना। उनके भोजन-वस्त्र की कमी पूरी करते रहना और युद्ध में विजय होने के लिए अर्थ वाला कोष भरते रहना। यह भार तुम दो आदमियों पर रहा।'

'तीर्थ यात्रा करते हुए यह सब कैसे इकट्ठा कीजिएगा ? गोली-गोले, तोप-बन्दूक खरीद कर भेजने में बड़ा हल्ला उठ सकता है। और इतनी तोप-बन्दूकें पाइए गा भी कहाँ ? बेचे गा भी कौन ? लाये गा भी कौन ?'

'खरीद कर हम काम नहीं चला सकें गे। मैं कारीगर भेज दूँ गा।' यहीं तैयार करवाना हो गा।'

'यह क्या ? इसी आनन्दमठ में ?'

'ऐसा भी कहीं होता है ? इसका उपाय मैं बहुत दिनों से सोचता आ रहा हूँ।

ईश्वर ने आज इसका सुयोग कर दिया है। तुम लोग कह रहे थे, भगवान् प्रतिकूल हैं; मैं देखता हूँ, वे अनुकूल हैं।'

'कहाँ कारखाना होगा ?'

'पदचिह्न में।'

'वह क्या ? वहाँ किस तरह होगा ?'

'नही तो फिर किस लिए मैंने महेन्द्रसिंह को यह व्रत ग्रहण करने के लिए इतना प्रयत्न किया ?'

'महेन्द्र ने क्या व्रत ग्रहण किया है ?'

'व्रत ग्रहण किया नहीं, करे गा। आज रात को उसे दीक्षित करूँ गा।'

'कहाँ, महेन्द्रसिंह को व्रत ग्रहण कराने के लिए कौन-सा प्रयत्न किया गया, मैंने नहीं देखा। उसकी स्त्री-कन्या की कैसी हालत हुई, कहाँ वे रक्खी गईं ? नदी के किनारे एक लड़की पा कर मैं उसे अपनी बहन के यहाँ रख आया हूँ। उस लड़की के पास एक सुन्दरी स्त्री मरी पड़ी थी। वे तो महेन्द्र की स्त्री-कन्या नहीं ? मेरा ऐसा ही ख्याल हुआ था।'

'वही महेन्द्र की स्त्री-कन्या हैं।'

भवानन्द चौंक उठे। तब वे समझे कि जिस स्त्री को दवा के बल से उन्होंने फिर से जिलाया है, वही महेन्द्र की स्त्री कल्याणी है; परन्तु उस समय कोई बात खोलना उन्होंने आवश्यक नहीं समझा।

जीवानन्द ने पूछा, 'महेन्द्र की स्त्री मरी किस तरह ?'

'जहर खा कर।'

'क्यों जहर खाथा ?'

'भगवान् ने उसे जान देंने का स्वप्न में आदेश दिया था।'

'स्वप्न का वह आदेश क्या सन्तानों के कार्योद्धार के लिए हुआ था ?'

'महेन्द्र से ऐसा ही सुना है। अब सान्ध्य मुहूर्त्त आ गया है, मैं सायंकृत्य करने चला। इसके बाद नये सन्तानों को दीक्षित करूँ गा।'

'सन्तानों को ? क्या महेन्द्र के सिवा कोई और भी आप का अपना शिष्य होने की स्पर्धा रखता है ?'

'एक और नया आदमी है। पहले कभी मैंने उसे नहीं देखा। आज ही नया-नया मेरे पास आया है। वह बहुत ही तरुण युवा है। मैं उसके आकार, इङ्गित और बातचीत से बहुत प्रसन्न हुआ हूँ। वह खालिस सोना है, ऐसा मालूम होता है। उसे सन्तान का काम सिखाने का भार जीवानन्द पर रहा। क्योंकि जीवानन्द दूसरे का चित्त खींचने में बड़े दक्ष हैं। मैं चला, तुम लोगों के लिए एक उपदेश बाकी रह गया है। अच्छी तरह मन लगा कर सुनो।'

तब दोनों ने हाथ जोड़ कर निवेदन किया, 'आज्ञा कीजिए।'

सत्यानन्द ने कहा, 'तुम दोनों ने अगर कोई अपराध किया हो या मेरे लौट आने के पहले तक करो, तो बिना मेरे आये उसका प्रायश्चित भी न करना। मेरे आने पर प्रायश्चित अवश्य ही किया जायगा।'

यह कह कर सत्यानन्द चले गये। भवानन्द और जीवानन्द दोनों ने एक दूसरे के मुँह की ओर देखा।

भवानन्द ने पूछा, 'तुम पर है क्या ?'

'जान पड़ता है बहन के यहाँ महेन्द्र की लड़की रखने गया था।'

'इसमें क्या अपराध है ? यह तो निषिद्ध नहीं। ब्राह्मणी से मुलाकात कर आये हो क्या ?'

'जान पड़ता है, गुरुदेव ऐसा ही सोचते हैं।'

|४|

संध्या कृत्य समाप्त कर महेन्द्र को बुला कर सत्यानन्द ने आदेश दिया, 'तुम्हारी लड़की जीती है।'

'कहाँ महाराज ?'

'तुम मुझे महाराज क्यों कह रहे हो ?'

'सब कहते हैं, इसलिए। मठ के अधिकारियों को राजा-जैसा सम्बोधन करना चाहिए। मेरी लड़की कहाँ है महाराज ?'

'यह सुनने के पहले एक बात का सही-सही उत्तर दो। तुम सन्तान-धर्म ग्रहण करो गे ?'

'मन ही मन मैंने ग्रहण करने का निश्चय किया है।'

'तो लड़की कहाँ है, सुनना न चाहो।'

'क्यों महाराज ?'

'जो इस व्रत को ग्रहण करता है, उसे स्त्री, पुत्र, कन्या, स्वजन, किसी से भी सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। स्त्री, पुत्र, कन्या का मुँह देखने पर भी प्रायश्चित्त करना पड़ता है। जब तक सन्तानों की मनस्कामना सिद्ध नहीं होती, तब तक तुम कन्या का मुँह नहीं देख पाओगे। इसलिए यदि सन्तान-धर्म-ग्रहण करना स्थिर कर लिया हो, तो कन्या की खोज ले कर क्या करो गे, देख तो पाओ गे नहीं।'

'यह कठिन नियम क्यों है प्रभो ?'

'सन्तानों का काम बड़ा कठिन काम है। जो सर्वत्यागी है, उसके बिना दूसरा कोई इस काम के योग्य नहीं। माया की रस्सी से जिसका चित्त बन्धा है, वह डोर से बन्धी पतङ्ग की तरह, बिना हवा के मिट्टी छोड़ कर आसमान पर नहीं उड़ सकता।

'महाराज, बात अच्छी तरह नहीं समझ सका। जो स्त्री-पुत्र का मुँह देखता है, वह क्या किसी बड़े काम का अधिकारी नहीं ?'

'पुत्र के मुँह देखने पर हम लोग देवता का काम भूल जाते हैं। सन्तान-धर्म का नियम यह है कि जिस दिन प्रयोजन होगा, उसी दिन सन्तान को जान की बाजी लगानी पड़े गी। अपनी कन्या का मुँह तुम्हें याद आया तो क्या तुम उसे छोड़ कर जान पर खेल सको गे ?'

'तो क्या न देखने पर ही कन्या को भूल जाऊँ गा ?'

'न भूल सको तो यह व्रत ग्रहण न करना।'

'क्या सभी सन्तानों ने पुत्र को भूल कर व्रत ग्रहण किया है ? तो सन्तान संख्या में बहुत थोड़े हैं।'

'सन्तन दो तरह के है, दीक्षित और अदीक्षित। जो अदीक्षित हैं, वे संसारी हैं या भिखारी। वे केवल युद्ध के समय आते हैं, लूट का हिस्सा या दूसरा पुरस्कार पा कर चले जाते हैं। जो दीक्षित हैं वे सर्व-त्यागी हैं। वे सम्प्रदाय के कर्त्ता हैं। तुमसे अदीक्षित सन्तान होने का अनुरोध हम नहीं करते। लड़ाई के वक्त के लिए लाठी-बल्लम चलाने वाले बहुत हैं। दीक्षित हुए बगैर तुम सम्प्रदाय के किसी भी बड़े काम के अधिकारी नहीं हो सको गे।'

'दीक्षा क्या है ? दीक्षित क्यों होना होगा ? मैंने तो इससे पहले ही मन्त्र ग्रहण किया है।'

'वह मन्त्र छोड़ना होगा। मेरे पास फिर से मन्त्र लेना होगा।'

'मन्त्र का त्याग किस तरह करूँ गा ?'

'मैं वह पद्धति कहे देता हुँ।'

'नया मन्त्र क्यों लेना होगा ?'

'सन्तान वैष्णव हैं।'

'यह समझ में नहीं आता, सन्तान वैष्णव क्यों हैं ? वैष्णवों का तो अहिंसा ही परम धर्म है।'

'वे चैतन्यदेव के वैष्णव हैं। नास्तिक बौद्धधर्म के अनुकरण में जो वैष्णवता पैदा हुई थी, उसमें उसी के लक्षण हैं। सच्चे वैष्णवधर्म का लक्षण है दुष्टों का दमन और शिष्टों का उद्धार। क्योंकि विष्णु ही संसार के पालनेवाले हैं। दस बार देह धारण कर पृथ्वी का उद्धार किया है। केशी, हिरण्यकशिपु, मधुकैटभ, मुर, नरक आदि

दैत्यों को, रावण आदि राक्षसों को, कंस, शिशुपाल आदि राजाओं को उन्हीं ने युद्ध में मारा था। वही जेता, जय-दाता, पृथ्वी के उद्धारकर्त्ता और सन्तानों के इष्ट देवता हैं, चैतन्य-देव का वैष्णव धर्म सच्चा वैष्णव-धर्म नहीं,—वह सिर्फ आधा धर्म है। चैतन्यदेव के विष्णु प्रेममय हैं, परन्तु भगवान् केवल नहीं, वे अनन्त शक्तिमय भी हैं। चैतन्यदेव के विष्णु केवल प्रेममय हैं, सन्तानों के विन्णु केवल शक्तिमय। हम दोनों वैष्णव हैं, परन्तु दोनों आधे वैष्णव हैं। अब बात समझे !'

'नहीं, यह कैसी नई-नई बात सुन रहा हूँ। कासिम-बाजार में एक पादरी से मुलाकात हुई थी, उसने ऐसी ही बातें सुनाई थीं, अर्थात् ईश्वर प्रेममय हैं, तुम लोग ईसा से प्रेम करो। आप की ऐसी बात है।'

'जिस तरह की बात हमारे चौदह पुश्त से लोग समझते आये हैं, वैसी ही बात मैं तुम्हें समझा रहा हूँ। ईश्वर त्रिगुणत्मक हैं, यह तो तुमने सुना है।'

'हाँ, सत्व, रजः, तमः—ये तीन गुण हैं।'

'ठीक। इन तीनों गुणों की अलग-अलग उपासनाएँ हैं। सत्यगुण से उनके दया-दाक्षिण्य आदि की उत्पत्ति है। उनकी उपासना भक्ति से करो गे। चैतन्य का सम्प्रदाय यह करता है रजोगुण से उनकी शक्ति की उत्पत्ति है, इसकी उपासना युद्ध से—देवद्वेषियों के निधन से है, हम लोग यह करते हैं। और तमोगुण से भगवान् ने चतुर्भुज आदि रूप अपनी इच्छा से धारण किये हैं। चन्दन-माला आदि चढ़ कर उस गुण की पूजा की जाती है; साधारण लोग वैसा ही करते हैं। समझे ?'

'समझा। तो फिर सन्तान लोग सिर्फ उपासकों का सम्प्रादय है ?'

'हाँ हम राज्य नहीं चाहते—सिर्फ, मुसलमान ईश्वर से द्वेष रखते हैं, इसलिए उनक सवंश नाश करना चाहते है।

। ९ ।

सत्यानन्द बातचीत समाप्त कर के महेन्द्र के साथ मठ के देवालय में, जहाँ वह अपूर्व शोभावाली बड़े आकार की चतुर्भुज मूर्ति विराज रही है, गये। वहाँ तब अपूर्व शोभा थी। चाँदी, सोने और रत्नों से रञ्जित बहुविध दीपों से मन्दिर आलोकित हो रहा था। फूलों की राशियाँ सुशोभित हो कर मन्दिर को सुगन्धित कर रही थीं। मन्दिर में एक आदमी और बैठा हुआ मधुर स्वर से 'हरे मुरारे' कह रहा था। सत्यानन्द के मन्दिर में जाते ही, उसने उठ कर प्रणाम किया। ब्रह्मचारी ने पूछा, 'तुम दीक्षित होगे ?'

उसने कहा, 'मुझ पर कृपा कीजिए।'

तब उसे और महेन्द्र को सम्बोधित कर के सत्यानन्द ने कहा, 'तुम लोग नियमानुसार नहाये हुए, संयत और उपवास तो किये हुए होगे ?'

'जी हाँ।'

'तुम लोग भगवान् के सामने प्रतिज्ञा करो, सन्तान-धर्म के नियम तुम पालो गे ?'

'पालेंगे।'

'जितने दिनों तक माता का उद्धार न हो, उतने दिनों के लिए गृहधर्म छोड़ोगे ?'

'छोड़ेंगे।'

'माता-पिता को छोड़ोगे ?'

'छोड़ेंगे।'

'भाई-बहन ?'

'छोड़ेंगे।'

'स्त्री-पुत्र ?'

'छोड़ेंगे।'

'आत्मीय-स्वजन ? दास-दासी ?'

'सब कुछ छोड़ा।'

'धन-सम्पद्-भोग ?'

'सब त्याज्य हुआ।

'इन्द्रियों को जीतो गे। स्त्री के साथ कभी एक आसन पर नहीं बैठोगे।'

'नहीं बैठें गे, इन्द्रियों को जीतेंगे।'

'भगवान् के सामने प्रतिज्ञा करो, अपने लिए या स्वजन के लिए अर्थोपार्जन नहीं करो गे ? जो कुछ पैदा करो गे वह वैष्णव-भंडार में दोगे।'

'सब वैष्णव-भंडार में देंगे।'

'सनातन-धर्म के लिए स्वयं अस्त्र ले कर लड़ो गे।'

'लड़ें गे!'

'लड़ाई में कभी पीठ नहीं दिखाओ गे।'

'नहीं।'

'यदि प्रतिज्ञा-भंग हो।'

'जलती चिता में बैठ कर या जहर खा कर जान देंगे।'

'एक बात और है—जाति। तुम लोग किस जाति के हो ? महेन्द्र कायस्थ हैं, दूसरे तुम किस जाति के हो ?'

'दूसरे व्यक्ति ने कहा, 'मैं ब्राह्मण-कुमार हूँ ।'

'उत्तम । तुम लोग जाति छोड़ सको गे ? सब सन्तान एक-जातीय हैं । इस महाव्रत में ब्राह्मण-शूद्र-विचार नहीं । तुम लोग क्या कहते हो ?'

'हम वैसा विचार नहीं रक्खें गे, हम सब एक माता की सन्तान हैं ।'

'तो तुम लोगों को दीक्षित करूँ गा । तुम लोगों ने जो प्रतिज्ञायें कीं उन्हें तोड़ना नहीं । मुरारि स्वयम् इसके साक्षी हैं । जो रावण, कंस, हिरण्यकशिपु, जरासन्ध और शिशुपाल आदि के विनाश के कारण हैं, जो सब के अन्तर के जानने वाले, सर्वंजयी, सर्वशक्तिमान् और सर्वनियन्ता हैं, जो इन्द्र के वज्र और मार्जार के नखों में समान रूप से बास करते हैं, वे प्रतिज्ञा तोड़ने वाले को विनष्ट कर के उसे अनन्त नरक में भेजें गे ।'

'ऐसा ही हो ।'

'तुम लोग गाओ 'वन्दे मातरम् ।'

दोनों ने उस मन्दिर में मातृस्तोत्र गाया । ब्रह्मचारी ने तब उन्हें विधिपूर्वक दीक्षित किया ।

६

दीक्षा पूरी कर के सत्यानन्द महेन्द्र को बहुत ही एकान्त स्थान में ले गये । दोनों के बैठने पर सत्यानन्द कहने लगे, 'देखो वत्स, तुमने जो यह महाव्रत ग्रहण किया, इससे भगवान् हम पर अनुकूल हैं, ऐसा समझ में आता है । तुमसे माता का महत्कार्य अनुष्ठित होगा । तुम यत्नपूर्वक मेरा आदेश सुनो । तुम्हें जीवानन्द और भवानन्द के साथ वन-वन घूम कर लड़ने के लिए मैं नहीं कहता । तुम पदचिह्न लौट जाओ । अपनी जगह रह कर ही तुम्हें संन्यासधर्म पालन करना होगा ।'

महेन्द्र सुन कर ताज्जुब में आये, उनका चेहरा उतर गया । ब्रह्मचारी कहने लगे, 'इस समय हमारा कोई आश्रय नहीं; ऐसी जगह नहीं कि प्रबल सेना आ कर हमें घेरे तो हम दरवाजे बन्द कर भोजन की सामग्री ले कर दस दिन निर्विघ्न रहें । हमारे कोई गढ़ नहीं । तुम्हारे अट्टालिका है, तुम्हारा गाँव तुम्हारे अधिकार में है । मेरी इच्छा है, वहाँ एक गढ़ तैयार करूँ । बड़ी खाई और चहारदीवार से पदचिह्न को घेर कर जगह-जगह मार्के बना देने और बाँध पर तोपें बैठा देने पर अच्छा गढ़ बन सकता है । तुम घर जा कर रहो, क्रमशः दो हजार सन्तान वहाँ पहुँचें गे । उनसे गढ़, बाँध, मार्के

यह सब बनवाते रहना। तुम वहाँ एक अच्छा लोहे का कमरा बनवाना। वहाँ सन्तानों का कोश रहेगा। सोने से भरे सन्दूक एक-एक करके तुम्हारे पास भेजवाता रहूँगा। उसी अर्थ से तुम यह सब काम पूरा करो गे और मैं अनेकानेक जगहों से दक्ष शिल्पी बुलवा रहा हूँ। उनके आने पर तुम पदचिह्न में कारखाना खोल दो गे। वहाँ तोप, गोले, बारूद, बन्दूक तैयार कराओ गे। इसीलिए तुम्हें घर जाने को कह रहा हूँ।'

महेन्द्र सहमत हुए।

|७|

महेन्द्र सत्यानन्द के पैर छू कर विदा होनें पर उनके साथ साथ जो दूसरा शिष्य दीक्षित हुआ था, उसने आ कर सत्यानन्द को प्रणाम किया सत्यानन्द ने आशीर्वाद दे कर काले हिरन के चमड़े पर बैठने की आज्ञा दी। दूसरी-दूसरी मीठीं बातों के बाद पूछा, 'क्यों, कृष्ण पर तुम्हारी प्रगाढ़ भक्ति है या नहीं ?'

शिष्य ने कहा, 'किस तरह कहूँ ? मैं जिस उपाय को भक्ति समझया हूँ; मुमकिन, वह बगुले की भक्ति हो या अपने को धोखा देना।'

खुश हो कर सत्यानन्द ने कहा, 'तुमने बहुत सही सोचा है। जिससे भक्ति दिन-दिन प्रगाढ़ हो, वही अनुष्ठान करना। में आशीर्वाद देता हूँ, तुम्हारा प्रयत्न सफल हो गा। क्योंकि तुम बहुत कच्ची उम्र के हो। बेटे, तुम्हें किस नाम से पुकारें, यह अभी तक नहीं पूछा।'

नये सन्तान ने कहा, 'आप की जैसी अभिरुचि हो, मैं वैष्णवों का दासानु-दास हूँ।'

'तुम्हारी थोड़ी उम्र देख कर तुम्हें नवीनानन्द कहने की इच्छा होती है इसलिए यही नाम तुम लो। परन्तु एक बात पूछते हैं, तुम्हारा पहले क्या नाम था ? यदि कहने में कोई बाधा हो तो भी कहना। हमसे कहने पर दूसरे कानों में बात नहीं जाय गी। सन्तान-धर्म का मर्म यह है जो नहीं कहना वह भी गुरु से कहना चाहिए। कहने पर कोई हानि नहीं होती।'

'मेरा नाम शान्तिराम देवशर्मा है।'

'तुम्हारा नाम शान्तिमणि पापिष्ठा है।'

यह कह कर सत्यानन्द ने शिष्य की गहरी काली डेढ़ हाथ लम्बी दाढ़ी बांयें हाथ से लपेट कर एक झटका दिया। लगाई दाढ़ी खुल कर गिर गई। सत्यानन्द ने

कहा, 'छिः माँ, मुझसे धोखेबाजी ! और अगर मुझे ही धोखा देतीं तो इस उम्र में डेढ़ हाथ की दाढ़ी क्यों ? और, दाढ़ी भी छोटी करतीं, तो गले की आवाज और आँखों की चितवन भी क्या छिपा सकतीं ? अगर मैं ऐसा बेवकूफ ही होता तो क्या इतने कामों में हाथ लगाता ?'

कलमुँही शान्ति तब कुछ देर दोनों आँखें छिपा कर सिर झुकाये बैठी रही। कुछ देर बाद आँखों से हथेलियाँ हटा कर बूढ़े के मुँह पर कटाक्ष कर के बोली, 'प्रभो, मैंने दोष ही क्या किया है ? स्त्री की बाँहों में क्या बल नहीं रहता ?'

'गोष्पद में जैसे जल।'

'सन्तानों के बाहुबल की क्या कभी परीक्षा लेते हैं ?'

'लेते हैं।'

यह कह कर सत्यानन्द ने इस्पात का एक धनुष और लोहे का कुछ लम्बा तार ला कर दिया, कहा, 'इस इस्पात के धनुष में लोहे का यह तार गुण के तौर पर चढ़ाना पड़ता है। दो हाथ का लम्बा गुण है। गुण चढ़ाते-चढ़ाते धनुष सीधा हो जाता है; जो गुण चढ़ाता है, उसे दूर फेंक देता है जो गुण चढ़ा सकता है, वही सही-सही बलवान् हैं।'

धनुष और गुण की अच्छी तरह परीक्षा कर शान्ति ने कहा, 'क्या सभी सन्तान इस परीक्षा में उत्तीर्ण हुए हैं ?'

'नहीं, इससे सिर्फ उनका बल समझा गया है।'

'क्या कोई इस परीक्षा में उत्तीर्ण नहीं हुए ?'

'सिर्फ चार आदमी हुए हैं।'

'क्या मैं पूछ सकती हूँ, वे कौन-कौन हैं ?'

'मुमानियत कोई नहीं, एक आदमी मैं हूँ।'

'और ?'

'जीवानन्द, भवानन्द, ज्ञानानन्द।'

शान्ति ने धनुष लिया, तार लिया, आसानी से उसमें गुण चढ़ा कर गुरु के पैरों के पास फेंक दिया।

सत्यानन्द ताज्जुब में आये, कुछ डरे और चुप हो रहे। कुछ देर बाद कहा, 'यह क्या, तुम, देवी हो या मानवी ?'

हाथ जोड़ कर शान्ति ने कहा, 'मैं साधारण मानवी हूँ, परन्तु मैं ब्रह्मचारिणी हूँ।'

'वह कैसे ? क्या तुम बालविधवा हो ? नहीं, बालविधवाओं के भी इतना बल नहीं होता, क्योंकि वे एक वक्त भोजन करती हैं।'

'मैं सुहागिन हूँ।'

'क्या तुम्हारे पति निरुद्दिष्ट हैं ?'

'उद्दिष्ट हैं। उनके उद्देश्य में ही आई हूँ।'

एकाएक कटे बादलों की धूप की तरह सत्यानन्द के चित्त को उनकी स्मृति ने चमका दिया। उन्होंने कहा, 'मुझे याद आया, जीवानन्द की स्त्री का नाम शान्ति है। क्या तुम जीवानन्द की ब्राह्मणी हो ?'

इस बार जटा के भार से नवीनानन्द ने मुँह छिपाया, जैसे कमलों पर कुछ सूँड़ें हाथियों की पड़ी। सत्यानन्द कहने लगे, 'क्यों यह पापाचरण करने आई ?'

शान्ति एकाएक जटा भार पीठ पर कर के सिर उठा कर बोली, 'पापाचरण क्या है प्रभो ? पत्नी-पति का अनुसरण करे तो वह पापाचरण है ? संतानधर्म-शास्त्र यदि इसे पापाचरण कहे को संतानधर्म अधर्म है। में उनकी सहधर्मिणी हूँ, वे धर्माचरण कर रहे हैं; मैं उनके साथ धर्माचरण करने आई हूँ ?'

शान्ति की तेजस्विनी वाणी सुन कर उन्नत ग्रीवा, स्फीत वक्ष, कम्पित अधर और उज्ज्वल अथच अश्रुप्लुत आँखें देख कर सत्यानन्द खुश हुए बोले, 'तुम साध्वी हो, परन्तु देखो माँ, पत्नी केवल गृहधर्म में सहधर्मिणी हैं, वीरधर्म में रमणी कौन है ?'

'कौन महावीर अपत्नीक होकर वीर हुए हैं ? राम सीता न होने पर, क्या वीर होते ? अर्जुन के कितने विवाह हैं, गिनिए तो सही; भीम के जितना बल है उतनी पत्नियाँ हैं। कितने कहूँ, आपसे कहना भी क्यों होगा ?'

'बात सच है, परन्तु युद्धक्षेत्र में कौन वीर स्त्री ले कर आता है ?'

'अर्जुन जब यादवी सेना से आन्तरिक्ष में युद्ध कर रहे थे, कौन उनका रथ चला रही थी ? द्रौपदी साथ न होती तो क्या पाण्डव कुरुक्षेत्र की लड़ाई लड़ते ?'

'सही है, लेकिन साधारण मनुष्यों का मन स्त्रियों में आसक्त है और वह उन्हें काम से अलग करता है। इसीलिए संतान-जाति का व्रत ही यह है कि स्त्री-जाति के साथ एक आसन पर संतान नहीं बैठें गे। जीवानन्द मेरा दाहिना हाथ है। तुम मेरा दहिना हाथ तोड़ने आई हो ?'

'मैं आप के दाहिने हाथ का बाल बढ़ने आई हूँ। मैं ब्रह्मचारिणी हूँ, प्रभु के पास ब्रह्मचारिर्णी ही रहूँगी। मैं सिर्फ धर्माचरण के लिए आई हूँ, पति-दर्शन के लिए नहीं। मैं विरह के दुख से व्याकुल नहीं। पति ने जो धर्म ग्रहण किया है, मैं उसकी हिस्सेदार क्यों न होऊँ ? इसीलिए आई हूँ।'

'अच्छी बात है। तुम्हारी कुछ दिन परीक्षा ले कर देखूँ।'

'क्या मैं आनन्दमठ में रह सकूँगी ?'

'आज और कहाँ जाओगी ?'

'इसके बाद ?'

'माता भवानी की तरह तुम्हारे भी माथे में आग है, सन्तान-सम्प्रदाय को क्यों जलाओ गी ?'

यह कह कर, बाद को आशीर्वाद दे कर सत्यानन्द ने शान्ति को विदा किया।

शान्ति ने मन ही मन कहा, 'अच्छा बूढ़े बाबा जो मेरे माथे में आग है। मैं जले माथेवाली हूँ या तुम्हारी अम्मा जले माथवाली है ?'

वस्तुत: सत्यानन्द का ऐसा अभिप्राय नहीं था, आँखों की बिजली की बात ही उन्होंने कही थी, लेकिन ऐसा भी कभी बुढ़ापे में किसी तरुणी को कहा जाता है ?

| ८ |

उस रात शान्ति को मठ में रहने की आज्ञा मिली थी, इसलिए वह कमरा खोजने लगी। बहुत-से कमरे खाली पड़े थे। गोवर्द्धन नाम का एक परिचारक था, वह भी छोटा-मोटा सन्तान था, दीया हाथ में ले कर कमरे दिखाता हुआ घूमने लगा। कोई भी कमरा शान्ति को पसन्द नहीं आया। हताश हो कर गोवर्द्धन लौट कर शान्ति को सत्यानन्द के पास ले चला। शान्ति ने कहा, 'भाई सन्तान, इधर जो कुछ कमरे रह गये हैं, ये नहीं देखे गये।'

गोवर्द्धन ने कहा, 'वे सब बहुत अच्छे कमरे हैं सही, परन्तु उनमें आदमी हैं।'

'कौन-कौन हैं ?'

'बड़े-बड़े सेनापति हैं।'

'बड़े-बड़े सेनापति, कौन-कौन ?'

'भवानन्द, जीवानन्द, धीरानन्द, ज्ञानानन्द। आनन्दमठ, यह आनन्दमय है।'

'कमरे देखें तो, चलो।'

गोवर्द्धन शान्ति को पहले धीरानन्द के कमरे में ले गया। धीरानन्द महाभारत का द्रोणपर्व पढ़ रहे थे। अभिमन्यु ने किस तरह सप्तरथियों के साथ लड़ाई की थी, उसी में मन लगा हुआ था, उन्होंने बात नहीं की। शान्ति वहाँ से बिना कुछ कहे चली गई।

बाद को शान्ति भवानन्द के कमरे में गई। भवानंद तब आँखें उठाये हुए एक और मुँह के बारे में सोच रहे थे। किसका मुँह है, यह नहीं मालूम, किन्तु मुँह बड़ा ही सुन्दर है, काली घुँघराली खुशबूदार अलकें कानों तक फैली हुई भौंहों पर पड़ रही हैं,

बीच में ललाट मृत्यु की कराल छाया में डूबा हुआ। जैसे वहाँ मृत्यु और मृत्युञ्जय लड़ रहे हैं। आँखें मुँदी हुई, भौंहे स्थिर, होंठ नीले, वक्ष उन्नत, हवा वस्त्र उड़ा रही है। इसके बाद जैसे शरत् के मेघों में ढँका चाँद क्रमशः मेघों को अपनी चाँदनी से उजागर करके अपना सौंदर्य फैलाता है, जिस तरह सुबह का सूरज तरङ्गों से आकार की मेघ-माला को क्रमशः सोने से रँग कर खुद प्रकाशित होता है, दिशाओं को चमका देता है, जल-स्थल और कीट-पतङ्गों को खुश कर देता है, उसी तरह उस शव में जीवन की शोभा का संचार हो रहा था। अहा, कैसी अपूर्व शोभा! भवानन्द यही सोच रहे थे, उन्होंने भी कोई घाव नहीं की। कल्याणी के रूप से उसका हृदय जल सा गया था, शान्ति के रूप पर उसने निगाह नहीं डाली।

शान्ति तब दूसरे कमरे में गई। पूछा—'यह किसका कमरा है?'

गोवर्द्धन ने कहा, 'जीवानन्द महाराज का।'

'वह कौन हैं? कहाँ, यहाँ तो कोई नहीं?'

'कहीं गये हैं, अभी आयेंगे।'

'यह कमरा सब कमरों में अच्छा है।'

'लेकिन यह कमरा तो नहीं होगा।'

'क्यों?'

'यहाँ जीवानन्द महाराज रहते हैं।'

'वे न हो और एक दूसरा कमरा खोज लें।'

'ऐसा भी कहीं होता है? जो इस कमरे में रहते हैं, उन्हें मालिक भी कह लीजिए, जो कुछ करते हैं वही होता है।'

'अच्छा, तुम आओ, मुझे जगह नहीं मिले गी तो पेड़ के नीचे रहूँ गी।'

यह कह कर गोवर्द्धन को विदा कर शान्ति उस कमरे के भीतर गई। भीतर आ कर जीवानन्द का कृष्ण मृग-चर्म बिछा कर, दीया ऊँचा कर जीवानन्द की एक पोथी निकाल कर पढ़ने लगी।'

कुछ देर बाद जीवानन्द आ कर हाजिर हुए। शान्ति का पुरुष-वेश है, फिर भी उसे देखते ही पहचान गये, कहा, 'यह क्या, शान्ति?'

शान्ति धीरे-धीरे किताब रख कर जीवानन्द के मुँह के तरफ देख कर बोली, 'शान्ति कौन है, महाशय?'

जीवानन्द अवाक् हो गये, अन्त में कहा, 'शान्ति कौन है, महाशय? क्यों, तुम शान्ति नहीं हो?'

शान्ति ने घृणापूर्वक कहा, 'मैं नवीनानंद गोस्वामी हूँ।' यह बात कह कर फिर वह किताब पर झुकी।

जीवानन्द ने अट्टहास कर के कहा, 'यह नया मजाक जरूर है। अच्छा तो फिर नवीनानन्द ! यहाँ क्या सोच कर आये हो ?'

शान्ति ने फहा, 'भले आदमियों में यह रीति प्रचलित है कि पहली बातचीत के समय 'आप' 'जनाब' आदि सम्बोधन करते हैं। मैं भी आप के लिए असम्मानसूचक शब्द नहीं कह रहा—तो फिर क्यों आप मुझे 'तुम, तुम' कह रहे हैं ?'

'जी जनाब' कह कर गले में वस्त्र डाल कर हाथ जोड़ कर जीवानन्द ने कहा, 'इस समय विनीत भाव से भृत्य का निवेदन है, किस लिए भरुइपुर से इस दीन के कमरे में शुभागमन हुआ है, फर्माइए।'

बहुत गम्भीर भाव से शान्ति ने कहा—'व्यंग्य का भी प्रयोजन मैं नहीं देख रहा। भरुईपुर मैं नहीं पहचानता। मैं सन्तान-धर्म ग्रहण करने के लिए आ कर आज दीक्षित हुआ हूँ।'

'आह सर्वनाश ! यह सच है क्या ?'

'सर्वनाश क्यों ?' आप भी तो दीक्षित हैं।'

'तुम औरत जो हो।'

'क्या ? ऐसी बात कहाँ मिली आप को ?'

'मेरा विश्वास था, मेरी ब्राह्मणी स्त्री-जाति की थी।'

'ब्राह्मणी ? है क्या ?'

'थी, ऐसा ही जानता हूँ।'

'आपका विश्वास है कि मैं आप की ब्राह्मणी हूँ।'

जीवानन्द ने फिर हाथ जोड़ कर गले में वस्त्र डाल कर बड़े विनीत भाव से कहा, 'जी हाँ, जनाब।'

'यदि ऐसा मजाक आप के मन में उठा हो तो आप का कर्त्तव्य क्या है, कहिए तो ?'

'आप के बदन का कपड़ा जबरदस्ती उतार कर आप के होठों का अमृत पीना।'

'यह आप की बहुत ही खराब नीयत है या गाँजे के बहुत बड़े चस्के का परिचय। आप ने दीक्षा के समय शपथ की है कि किसी स्त्री के साथ एक आसन पर नहीं बैठें गे। यदि आप को विश्वास हुआ है कि मैं स्त्री हूँ—ऐसा साँप में रस्सी का भ्रम बहुतों को होता है—तो आप के लिए उचित है कि अलग आसन पर बैठें। मेरे साथ आप की बातचीत भी नहीं होनी चाहिए।'

यह कह कर शान्ति ने फिर किताब में मन लगाया। परास्त हो कर जीवानन्द ने दूसरी शय्या तैयार की, उस पर लेटे।

तीसरा भाग

|१|

कल ईश्वर की कृपा से ११७६ का साल समाप्त हुआ। बङ्गाल की अबादी के छः आने आदमियों को—कितने करोड़ होते हैं कौन जाने—यमपुर भेज कर यह बुरा साल काल के ग्रास में पतित हुआ। ११७७ के साल ईश्वर प्रसन्न हुए। अच्छी वर्षा हुई। पृथ्वी एक बार फिर हरी हुई। जो बचे थे, उन्होंने पेट भर कर खाया। बिना खाये या कम खाये हुए जो लोग रोगी हो गये थे, एक साथ पूरा भोजन उनसे सहा नहीं गया। इसी से बहुतेरे मरे। पृथ्वी हरी तो हुई, लेकिन जन-शून्य हो गई। गाँवों में खाली मकान पशुओं के अड्डे या प्रेतों का कारण बन गये। गाँवों में उर्वरा भूमि के सैकड़ों टुकड़े बिना जोते परती रह गये या जंगलों से भर गये। तमाम देश जंगलों से पूर्ण हो गया। जहाँ हँसती हुई हरी धरती थी, जहाँ असंख्य गाय-भैंसें विचरती थीं, जिन बगीचों में ग्रामीण युवक-युवतियों का विहार होता था, वे सब क्रमशः गहनतर जंगल बनने लगे। एक साल, दो साल, क्रमशः तीन साल गये। जंगल बढ़ता गया। जो जगह मनुष्य के सुख की जगह थी, वहाँ नर-माँस के लोलुप बाघ आ कर हिरन आदि पर झपटने लगे। जहाँ सुन्दरियाँ पैरों में महावर लगा कर, नूपुर बजाती हुई, संगिनियों से व्यंग्य करती हुई, खिलखिला कर हँसती हुई जाती थी, वहाँ रीछ विवर बना कर अपने बच्चे पालने लगे। जहाँ लड़के नई उम्र में, शाम को मल्लिका से फूल जैसे खिले हुए, हृदय को तृप्ति देने वाली हँसी हँसते थे, वहाँ आज दल के दल जङ्गली हाथी मदमत्त हो कर पेड़ों के तने तोड़ने लगे। जहाँ नवदुर्गा की पूजा होती थी, वहाँ स्यारों की माँदें बन गईं; भगवान् के झूलेवाले मञ्च पर उल्लुओं के अड्डे बन गये; नाट-मन्दिर में जहरीले साँप दिन को मेढकों की तलाश करने लगे। बङ्गाल में शस्य पैदा होता है, खाने वाले आदमी नहीं। बेचने का माल पैदा होता है, खरीदने वाले आदमी नहीं। किसान खेती करते हैं, लेकिन

रुपये नहीं पाते—जमींदार का लगान नहीं दे पाते। राजा ने जमींदारी छीन ली, इसलिए जमींदारों का दल सब कुछ खो कर गरीब होने लगा। वसुन्धरा ने बहुत अन्न दिया, फिर भी धन नहीं हो रहा, किसी के घर में धन नहीं। जो जो कुछ पाता है, छीन कर खाता है। चोर और डाकुओं ने सर उठाया, भले व्यक्तियों ने डर कर घरों में मुँह छिपाया।

इधर सन्तानों का सम्प्रदाय चन्दन और तुलसीदलों से विष्णु भगवान् के पादपद्म पूजता है, और जिसके घर में बन्दूक और पिस्तौल देखता है, छीन लाता है। भवानन्द ने कहा था, 'भाई, अगर एक तरफ एक घर में हीरे, मणि और प्रवाल आदि देखो, और दूसरी तरफ एक टूटी बन्दूक देखो, तो हीरे, मणि और प्रवाल आदि छोड़ कर टूटी बन्दूक ले आना।'

इसके बाद गाँव-गाँव के लोग चर भेजने लगे। चर गाँव में जा कर जहाँ हिन्दू देखते थे, कहते थे, 'भाई, विष्णु-पूजा करोगे ?' यह कह कर बीस-पचीस आदमी इकट्ठे कर मुसलमानों के गाँव में टूट कर उनके घरों में आग लगा देते हैं, मुसलमान अपनी जान बचाने के लिए निकलते, भागते हैं, संतान उनका सर्वस्व लूट कर नये विष्णुभक्तों को देते हैं। लूट के हिस्से से ग्रामवासी, संतुष्ट होते हैं तो वे चर उन्हें विष्णु-मंदिर में लाकर विग्रह के चरण छुला कर उन्हें संतान बनाते हैं। लोगों ने देखा, संतानत्व में बड़ा लाभ है। विशेषत: मुसलमान-राज्य की अराजकता और बुरे शासन से सब मुसलमानों से नाराज थे। हिन्दू-धर्म के विलोप से बहुत-से हिन्दू हिन्दुत्व की स्थापना के लिए आग्रहयुक्त थे। इसलिए दिन-दिन संतानों की संख्या वृद्धि पाने लगी। प्रतिदिन सैकड़ों, हर महीने हजारों संतान आ-आकर भवानन्द, जीवानन्द से पाद-पद्मों में प्रणाम कर, दलवद्ध होकर तरफ मुसलमानों के शासन के लिए निकलने लगे। जहाँ राज-कर्मचारी देखते थे, पकड़कर पीटते थे, कभी-कभी जान लेते थे; जहाँ रुपया देखते थे, लूटकर घर ले आते थे; जहाँ मुसलमानों का गाँव देखते थे, जला कर खाक कर देते थे। जहाँ स्थानीय राजपुरुष सन्तानों के शासन के लिए अधिक से अधिक सेना भेजने लगे, परन्तु इस समय सन्तान दलबद्ध थे, शस्त्र युक्त और अत्यन्त गर्वित। उनके दर्प के सामने मुसलमान-सेना नहीं बढ़ सकी। अगर बढ़ी तो अमित बल सन्तान उन पर टूट कर उन्हें छिन्न-भिन्न कर के हरिध्वनि करते रहते थे। यदि कभी किसी सन्तानों के दल को यवन-सैनिकों ने परास्त किया, तो तभी एक दल सन्तानों का कहीं से आ कर विजेताओं के सर काट कर हरिध्वनि करते हुए चले जाते थे। इसी समय प्रथितनामा भारतीय अंगरेजों के प्रात:सूर्य वारेन हेस्टिङ्गस् साहब भारत के गवर्नर-जनरल थे। कलकत्ते में बैठे हुए लोहे की जंजीर बनवा कर उन्होंने मन में सोचा, इस जंजीर से मैं सद्वीपा, ससागरा भारत भूमि को बाँधूंगा। एक दिन जगदीश्वर ने सिंहासन पर बैठ कर नि:सन्देह कहा था,

'तथाऽस्तु।' लेकिन वह दिन अभी दूर है। आज के दिन सन्तानों की प्रचण्ड हरिध्वनि से वारेन हेस्टिङ्गस् भी काँप उठे।

वारेन हेस्टिंग ने पहले फौजदारी के सिपाहियों से विद्रोह रोकने की कोशिश की। लेकिन फौजदारी के सिपाहियों की ऐसी हालत हुई थी कि वे किसी बुड्ढी औरत के मुँह से हरिध्वनि सुन कर भाग खड़े होते थे। अतः कोई उपाय न देख कर वारेन हेस्टिङ्गस् ने कैप्टेन टामस नाम के एक सुदक्ष सैनिक के नायकत्व में कम्पनी की एक सेना विद्रोह रोकने के लिए भेजी।

कैप्टेन टामस पहुँच कर विद्रोह निवारण का बहुत अच्छा प्रयत्न करने लगे। राजा की सेना और जमींदारों की सेना माँग कर कम्पनी के सुशिक्षित सशस्त्र बहुत ही बली देशी-विदेशी सिपाहियों को साथ लिया। बाद को उस मिली सेना के कई दल किये और योग्य योद्धा के मातहत एक-एक दल रखा। बाद को उन योद्धाओं को देश बाँट दिया; कह दिया—'तुम अमुक प्रदेश में मल्लाह की तरह जाल से पानी छानते हुए—जैसे जाओगे; जहाँ विद्रोही देखना, चींटी की तरह उसकी जान निकाल लेना।' कम्पनी के सिपाहियों में कोई गाँजे की दम लगा कर, कोई रम पी कर बन्दूक में सङ्गीन चढ़ा कर सन्तान-वध के लिए दौड़े। लेकिन सन्तान इस समय असंख्य थे, अजेय; कैप्टेन टामस की सेना किसानों के हंसिये से खेती जैसी कटने लगी। 'हरि हरि' ध्वनि से कैप्टेन टामस के कान बहरे हो गये।

|२|

तब कम्पनी की बहुत-सी रेशम की कोठियाँ थीं। वैसी ही एक कोठी शिवग्राम में थी। डनीवर्थ साहब उस कोठी के फैक्टर यानी अध्यक्ष थे। तब की कोठियों की रक्षा के लिए सुव्यवस्था थी। डनीवर्थ इसी लिए किसी तरह जान बचा सके थे, परन्तु अपनी स्त्री-कन्याओं को कलकत्ता भेज देने के लिए मजबूर हुए थे और वे खुद सन्तानों से उत्पीड़ित हुए थे। इस प्रदेश में कैप्टेन टामस साहब दो-चार फौजों के साथ तशरीफ ले आये। इस समय इतर जातियों के कमअक्ल, हाड़ी, डोम, बागदी, बूनो, सन्तानों का उत्साह देख कर धन लूटने को उद्ग्रीव हो रहे थे। उन लोगों ने कैप्टेन टामस की रसद पर आक्रमण किया। कैप्टेन टामस की सेना के लिये गाड़ियों में लदा हुआ उत्तम घी, मैदा, मुर्ग और चावल जा रहे थे—देख कर डोम-बागदियों का दल लोभ

नहीं सँभाल सका। वे लोग गाड़ी पर टूटे, परन्तु कैप्टेन टामस के सिपाहियों की दो-चार बन्दूकों के कुन्दों की मार खा कर भाग खड़े हुए। कैप्टेन टामस ने उसी वक्त कलकत्ता रिपोर्ट भेजी कि आज एक सौ सत्तावन सिपाही ले कर चौदह हजार सात सौ विद्रोहियों का दमन किया गया। विद्रोहियों में दो हजार एक सौ तिरपन आदमी मरे हैं, एक हजार दो सौ तेइस घायल हुए हैं, सात आदमी कैद। सिर्फ आखिरी बात सही। कैप्टेन टामस, दूसरे ब्लेनहिम या रसबाक का युद्ध जीते, सोच कर मूछों पर ताव देते हुए निडर हो कर इधर-उधर घूमने लगे और डनीवर्थ साहब को सलाह देने लगे कि अब क्या है; अब विद्रोह ठंडा पड़ गया है: तुम अपनी स्त्री-कन्याओं को कलकत्ते से ले आओ। डीनवर्थ साहब ने कहा 'ठीक है; दस रोज आप यहाँ रहिए, देश की स्थिति कुछ और स्थिर हो, स्त्री और लड़कों को ले आऊँ गा। डनीवर्थ साहब के यहाँ पाले हुए मुर्गी और दुम्बे थे। पनीर भी उनके यहाँ बहुत अच्छी थी। बहुत तरहों की जंगली चिड़ियाँ उनके टेबिल की शोभा बढ़ाती थीं। दाढ़ीवाला बावर्ची जैसे दूसरी द्रौपदी था। अस्तु बिना जबान हिलाये कैप्टेन टामस वहाँ रहने लगे।

इधर भवानन्द आवेश में है; सोच रहे हैं, कब इस कप्तान टामस बहादुर का सर काट कर दूसरे संवरारि की उपाधि लूँगा। अंग्रेज भारत के उद्धार के लिए आये थे, यह सन्तान तब तक नहीं समझे। किस तरह समझेंगे ? कैप्टेन टामस और समसामयिक अंग्रेज भी नहीं समझे। तब सिर्फ विधाता के मन में यह बात थी। भवानन्द सोच रहे थे, इन असुरों का वंश एक दिन में मारूँगा; सब एकत्र हों, कुछ असतर्क हों; इस समय हम लोग कुछ अलग रहें। अस्तु वे इस समय दूर-दूर रहे। कैप्टेन टामस साहब ने निष्कण्टक हो कर द्रौपदी के गुणग्रहण में चित्त लगाया यानी अच्छा खाने-पीने लगे।

साहब बहादुर को शिकार बहुत प्रिय था। कभी कभी शिवग्राम के पास वाले जंगल में मृगया के लिए निकलते थे। एक दिन डनीवर्थ साहब के साथ घोड़े पर चढ़े हुए, कुछ शिकारियों को लेकर कैप्टेन टामस शिकार के लिए बाहर निकले। क्या कहें; टामस साहब हिम्मत में बेजोड़ थे, बल और वीरता में अँगरेज में भी कोई मुकाबिला नहीं कर सकता था। वह घना जंगल बाघ; भालू और और भैंसों से बड़ा भयानक था। बहुत दूर तक बढ़ कर शिकारी और आगे चलने को अस्वीकृत हुए; कहा, 'भीतर और रास्ता नहीं है, हम लोग आगे नहीं बढ़ सकेंगे।' डनीवर्थ साहब उस वन में ऐसे भयानक बाघ के सामने पड़े थे कि वे भी आगे बढ़ने को अनिच्छुक हुए। उन सबों ने लौटना चाहा। कैप्टेन टामस ने कहा, 'तुम लोग लौटो, मैं नहीं लौटूँ गा।' यह कह कर कैप्टेन साहब घने जंगल में घुसे।

वास्तव में जङ्गल में रास्ता नहीं था। घोड़ा भीतर नहीं जा सका। परन्तु साहब घोड़ा छोड़ कर कन्धे पर बन्दूक ले कर अकेले अकेले अरण्य में पैठे। पैठ कर इधर-उधर

खोजते हुए बाघ नहीं देखा। क्या देखा? एक बड़े पेड़ के नीचे खिले फूलों के लतगुल्मों से घिर कर कोई बैठा हुआ है। एक नवीन संन्यासी, रूप से वन को आलोकित कर रहा है। खिले फूल जैसे उस स्वर्गीय देह के संसर्ग से और भी खुशबू वाली हो रहे हैं कैप्टन साहब और भी विस्मित हुए, विस्मय के बाद ही उन्हें क्रोध आया। कैप्टेन साहब देशी भाषा विलक्षण जानते थे, पूछा; 'टुम कौन है?'

संन्यासी ने कहा, 'मैं संन्यासी हूँ।'

कैप्टैन ने कहा, 'टुम रिबेल (बागी) है।'

'वह क्या?'

'हम टुमको गोली मारेगा।'

'मारो।'

कैप्टेन मन में कुछ सन्देह कर रहे थे कि गोली मारेंगे या नहीं, ऐसे समय उस नवीन संन्यासी ने बिजली की तरह उन पर टूट कर उनके हाथ से बन्दूक छीन ली। फिर उसने अपने हृदय का चर्मावरण खोल कर फेंक दिया। खींच कर जटायें खोल दीं। कैप्टेन टामस साहब ने देखा, अपूर्व स्त्री-मूर्ति है। सुन्दरी हँसती हुई बोली, 'साहब, मैं स्त्री हूँ, किसी को चोट नहीं पहुँचाती। तुमसे एक बात पूछ रही हूँ, हिन्दू-मुसलमान जूझ रहे हैं, तुम लोग बीच में क्यों पड़ते हो? अपने घर लौट जाओ।'

'टुम कौन है?'

'देख रहे हो, संन्यासिनी हूँ। जिनसे लड़ने आये हो, उनमें से किसी की स्त्री हूँ।'

'टुम हमारे घर में रहेगा?'

'क्या? तुम्हारी रखेली की तरह?'

'ईस्टरी की टरह रह सकटा है; लेकिन शादी नहीं होगा।'

'मुझे भी एक बात पूछनी है। हमारे घर में एक बन्दर था। अब वह मर गया है। उसकी जगह खाली है। मैं तुम्हारी कमर में जञ्जीर बाँधूँगी तुम उस जगह रहोगे? हमारे बगीचे में बहुत अच्छे मर्तमान केले होते हैं।'

'टुम बरा स्प्रिरिटेड वूमन है। टुमारे करेज से हम बहुत खुश है। टुम हमारे घर चलो टुमारा पटि लराई में मरेगा। टब टुमारा क्या होगा?'

'तो तुम्हारी हमारी एक बात तय रही; लड़ाई तो दो-चार दिन बाद होगी ही। तुम अगर जीते तो तुम्हारी रखेली हो कर मैं रहूँगी, मंजूर करती हूँ, अगर बची रही। और हम अगर जीते तो तुम हमारे यहाँ बन्दर बनकर केले खाओगे तो?'

'केले खाने में अच्छा होटा है; अभी है?'

'ले, अपनी बन्दूक ले। ऐसी जंगली जाति से भी भला कोई बातचीत करता है?

शान्ति बन्दूक फेंक कर हँसती हुई चली गई।

| ३ |

शान्ति साहब को छोड़ कर हिरनी की तरह भागती हुई वन में घुसी। थोड़ी देर बाद साहब ने सुना, स्त्री-कण्ठ से गोई गा रहा है—

ये यौवन-जल तरंग रोधिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

फिर कहीं सारंगी की मधुर ध्वनि में बजा—

ये यौवन-जल तरंग रोधिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

उसके साथ पुरुषकण्ठ भी मिल कर गा उठा—

ये यौवन-जल रंग रोधिबे के !
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

तीनों स्वर एक होकर गाते हुए वन्‌लताओं को कँपाने लगे। शान्ति गाते-गाते चली—

'ये यौवन-जल तरंग रोधिबे के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !
जलेते तूफान हयेछे,
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !
भेंगे बालिर बाँध, पूराई मनेर साध,
जोयार गांगे जल छूटेछे राखिते के !
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

सारंगी में भी वही बज रहा था,

जोयार गांगे जल छूटेछे रखिते के ?
हरे मुरारे ! हरे मुरारे !

जहाँ बहुत ही घना वन है, भीतर क्या है बाहर से बिल्कुल नहीं देख पड़ता शान्ति उसी के भीतर गई। वहाँ शाखा-पल्लव-राशियों में छिपी हुई कुटी है। डाल हीं उसके बँधने, पत्तों का छाजन, लकड़ी की फर्श, उस पर मिट्टी डाली हुई। उसी के

१५

भीतर लता का द्वार खोल कर शान्ति गईं जीवानन्द बैठे हुए सारंगी बजा रहे थे।

जीवानन्द ने शान्ति को देख कर पूछा, 'ज्वार चढ़ा, रोकेगा कौन, इसका क्या अर्थ ?'

शान्ति ने हँस कर जवाब दिया, 'ज्वार का पानी कहीं नाले में और गड़ही में भी दौड़ता है ?'

जीवानन्द विषण्ण हो कर बोले, 'देखो शांति, एक दिन मेरा व्रत टूट चुका है, जिससे मेरे प्राण उत्सर्गीकृत हो चुके हैं। जो पाप है, उसका प्रायश्चित तो करना ही होगा। अब तक यह प्रायश्चित्त कर डालता, सिर्फ तुम्हारे अनुरोध से नहीं किया। परन्तु एक बड़ी लड़ाई की अब देर नहीं। उस लड़ाई के मैदान में मुझे उस पाप का प्रायश्चित्त करना होगा। इन प्राणों का परित्याग करना ही होगा। मेरे मरने के दिन—'

शान्ति और कहने न दे कर बोली, 'मैं तुम्हारी धर्मपत्नी हूँ, सहधर्मिणी, धर्म में सहायिका। तुमने बड़ा ही गम्भीर धर्म ग्रहण किया है। उस धर्म की मदद के लिए ही मैं घर छोड़ कर आई हूँ और वन में रह रही हूँ। मैं तुम्हारा धर्म बढ़ाऊँगी। धर्मपत्नी हो कर तुम्हारे धर्मों में विघ्न क्यों पैदा करूँगी ? विवाह इह-काल के लिए है और विवाह पर-काल के लिए है। इह-काल के लिए जो विवाह है, सोच लो, वह हम लोगों का नहीं हुआ। हमारा विवाह सिर्फ पर-काल के लिए है। पर-काल में दूना फल होगा। परन्तु प्रायश्चित्त की बात क्यों ? तुमने कौन-सा पाप किया है ? तुम्हारी प्रतिज्ञा है, किसी स्त्री के साथ एक आसन पर न बैठोगे। कहाँ, किसी दिन तो एक आसन पर नहीं बैठे ? प्रायश्चित्त क्यों ? हाय स्वामिनी, तुम मेरे गुरु हो, मैं तुम्हें क्या धर्म सिखलाऊँगी ? तुम वीर हो, तूम्हें वीरव्रत मैं सिखालाऊँगी ?

जीवानन्द आनन्द से गद्गद् हो कर बोले, 'सिखलाया तो !' शान्ति प्रफुल्ल चित्त से कहने लगी, 'और भी देखिए, गोस्वामी जी, इस लोक में भी क्या हमारा विवाह निष्फल है ? तुम मुझे प्यार करते हो, मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, इससे अधिक इस लोक में और कौन-सा फल है ? कहो, वन्देमातरम्।'

तब दोनों ने एक साथ 'वन्दे मातरम्' गाया।

|४|

एक दिन भवानन्द गोस्वामी नगर में पहुंचे। चौड़ा आम रास्ता छोड़ कर एक अंधेरी गली के भीतर गये। गली के दोनों तरफ़ ऊँची ऊँची इमारतें हैं। सूरज दोपहर को एक बार गली के भीतर झाँक लेते हैं बस। इसके बाद अंधेरे का ही अधिकार रहता

है। गली की बगल में एक दोमंजिले मकान में भवानन्द महराज घुसे। नीचे वाले तले के एक कमरे में जहाँ एक अधेड़ औरत भोजन पका रही थी, वहीं चल कर भवानन्द महाप्रभु ने दर्शन दिये दिये। औरत अधेड़ है, गदबदी और काली, उटङ्ग धोती पहने, माथे में गोदना, सर के बाल सामने की तरफ जूड़े की तौर पर बँधे, चावल की हंड़िया में लकड़ी चलाने की ठनाठन ठनकार आ रही है, लटें हवा में फर-फर उड़ रही हैं, औरत आप ही आप बक-बक कर रही है। तरह-तरह से वह मुँह बना रही है और उसका जूड़ा बल खा रहा है। ऐसे समय भवानन्द महाप्रभु घर में बैठ कर बोले, 'महराजिन दीदी, प्रातः प्रणाम।'

महराजिन दीदी भवानन्द को देख कर व्यस्त हो कर धोती संभालने लगी। सर का मोहक जूड़ा खोल डालने की इच्छा थी, लेकिन सुभीता नहीं हुआ, क्योंकि हाथ पके अन्न में लग चुके थे। भीगे चिकने वे बाल, हाय! इस पर पूजा के समय एक फूल उन पर पड़ा था। धोती के आँचल से उन्होंने ढकने की कोशिश की, लेकिन आँचल ढँकने को सक्षम नहीं हुआ, क्योंकि महराजिन ने एक पाँच हाथ की धोती पहनी थी। वह पचहत्थी धोती तोंद को घेरकर आते आते करीब-करीब खत्म हो चुकी थी। इस पर भारीपन के कारण न सहे जानेवाले हृदयमण्डल की भी बहुत कुछ इज्जत बचानी पड़ी थी। गले तक पहुँचकर धोती के आँचल ने जवाब दे दिया था। कान के ऊपर चढ़ कर कहा, अब आगे मेरी पहुँच नहीं। लाचार, परम लज्जावती गौरी महराजिन ने धोती के आँचल को कानों के पास पकड़ रक्खा और भविष्य में आठ हाथ की धोती खरीदने की मन ही मन दृढ़ प्रतिज्ञा करके कहा, 'कौन? गोसाईं जी? आओ, आओ! मुझे फिर प्रातः प्रणाम क्यों भाई?'

'तुम आजी जो हो।'

'आदर दे कर कहते हो, इसलिए तुम लोग गोसाईं, देवता हो। अच्छा, आदर दिया है। तो दे ही चुके हो, बचे रहो; दो तो दे भी सकते हो, हजार हो, मैं उम्र में बड़ी हूँ।'

इस समय भवानन्द से गौरीदेवी उम्र में पच्चीस साल बड़ी हैं; लेकिन चतुर भवानन्द ने जवाब दिया, 'यह कैसी बात, आजी? तुम सरस स्त्री हो, इसलिए तुम्हें आजी[1] कहता हूँ। नहीं तो जब हिसाब हुआ था, तुम मुझसे छः साल की छोटी ठहरी थीं, याद नहीं? हम वैष्णवों में सब तरह हो, जानती हो; मेरी मन में इच्छा है, मठाधीश ब्रह्मचारी से कह कर तुम्हें बैठा लूँ। यही बात कहने के लिए आया हूँ।'

'यह कैसी बात? छिः! ऐसी बात भी कोई कहता है?—हम लोग विधवा ठहरीं।'

---

[1] बङ्गाल में आजी और नाती, आजा और नातिन में अश्लील मजाक प्रचलित था।

'तो बैठोगी नहीं ?'

'अच्छा भई, जैसा जान पड़े, वैसा करो। तुम लोग पण्डित हो, हम विधवा स्त्रियाँ क्या समझें ? तो कब यह होगा ?'

भवानन्द ये बड़ी मुश्किल से हँसी रोक कर कहा, 'उस ब्रह्मचारी से एक दफा मुलाकात भर हो। और वह कैसी है ?'

गौरी का चेहरा उतर गया। मन ही मन निश्चय किया, बैठाने वाली बात तो फिर मजाक है। कहा, 'है और कैसी, जैसी रहती है ?'

'तुम जा कर एक बार देख आओ, कैसी है; मैं आया हूँ, एक दफा मिलना चाहता हूँ।'

गौरीदेवी तब भातवाली लकड़ी डाल कर हाथ धो कर, जीने की ऊँची-ऊँची सीढ़ियाँ तय करती हुई दोमंजिले पर चढ़ने लगी, एक कमरे में एक फटी चटाई पर एक अपूर्व सुन्दरी बैठी है। परन्तु सौंदर्य पर एक घनी छाया पड़ी हुई है। दोपहर में, किनारों को छापने वाली, विपुल जल से कल्लोल करती हुई स्वच्छ नदी के हृदय पर बहुत ही निविड़ मेघों की छाया की तरह कौन-सी एक छाया है। नदी के हृदय पर तरंगे टूट रही हैं, किनारे खिले पेड़-पौधे हवा में हिल रहे हैं, घने फूलों के भार से झुक रहे हैं, अट्टालिकाओं की कतारें भी शोभा पा रही हैं। नावों के खेये जाने से जल आंदोलित हो रहा है। समय दोपहर का है, फिर भी उस घने बादलों की काली छाँह में सारी शोभा श्यामाभ है। यह भी वैसी ही। वही पहले की तरह चारु चिकने चंचल घने अलक, पहले की तरह के उस प्रशांत भरे पूरे ललाट-पट पर पहले की तरह अतुल तूलिका से चित्रित भ्रूधनु, पहले की तरह फैली सजल उज्ज्वल काली पुतलियों वाली बड़ी-बड़ी आँखें, उतनी कटाक्षमयी नहीं, उतनी लोल नहीं, कुछ नम्र। अधर पर वैसा ही रागरंग, हृदय उसी तरह साँसों के साथ-साथ पूर्णता से चढ़ता उतरता हुआ, बाँहें वैसी ही वन-लताओं में न पाई जानेवाली कोमलता से भरी। परन्तु आज वह दीप्ति नहीं, वह उज्ज्वलता नहीं, वह प्रखरता नहीं, वह चंचलता नहीं, वह रस नहीं। क्या कहें, शायद वह यौवन नहीं। है सिर्फ सौंदर्य और वह माधुर्य। नया-नया हुआ है धैर्य—गाम्भीर्य। इन्हें पहले देखने पर मालूम होता, मनुष्य-लोक में ये बेजोड़ सुन्दरी हैं, अब देखने पर मालूम होता है, ये देवलोक में शापग्रस्ता देवी हैं। इनके इधर-उधर जर्द रंग के मोटे कागज की दो-तीन किताबें पड़ी हुई हैं। दीवार पर जपने की माला टंगी हुई है, और बीच-बीच जगन्नाथ, बलराम, सुभद्रा के पट, कालिय-दमन, नवनारीकुंजा, वस्त्रहरण, गोवर्द्धन-धारण आदि ब्रजलीला के चित्र खिंचे हैं। चित्रों के नीचे लिखा है, 'चित्र हैं या विचित्र ?' इसी कमरे में भवानन्द बैठे।

भवानन्द ने पूछा, 'क्यों कल्याणी, दैहिक कुशल तो है ?'

'क्या यह प्रश्न आप छोड़ेंगे नहीं ? मेरे दैहिक कुशल से आप का क्या बनता है और मेरा भी क्या बनता है ?'

'जो पेड़ लगाता है, वह उसमें रोज पानी सींचता है। पेड़ बड़ा होने पर ही उसका सुख है। तुम्हारी मृत-देह में मैंने जान डाली थी, वह बढ़ रही है या नहीं, क्यों नहीं पूछूँगा ?'

'विषवृक्ष भी कुम्हलाता है ?'

'जीवन क्या विष है ?'

'नहीं तो मैंने अमृत डाल कर उसे नष्ट क्यों करना चाहा ?'

'कितने बार पूछूँगा, सोचा, हिम्मत करके पूछ नहीं सका। किसने तुम्हारे जीवन को विषमय किया था ?'

कल्याणी ने स्थिर हो कर उत्तर दिया, 'किसी ने मेरे जीवन को विषमय नहीं किया—जीवन ही विषमय है। मेरा जीवन विषमय है, आप का जीवन विषमय है, सब का जीवन विषमय है।'

'सत्य है, कल्याणी, मेरा जीवन विषमय है। जिस दिन से—तुम्हारा व्याकरण समाप्त हो गया है।'

'नहीं।'

'अभिधान ?'

'अच्छा नहीं लगता।'

'पढ़ने में कुछ आग्रह देखा था, इस समय यह अश्रद्धा क्यों है ?'

'आप की तरह के पण्डित भी जब महा पापिष्ठ हैं तब लिखना-पढ़ना न सीखना ही अच्छा है। मेरे पति का संवाद क्या है, प्रभो ?'

'बार-बार यह संवाद क्यों पूछती हो, वे तो तुम्हारे लिए मृत हैं।'

'मैं उनके लिए मृत हूँ, वे मेरे लिए नहीं।'

'वे तुम्हारे लिए मृतवत् होंगे, इसीलिए तो तुम मरी, बार-बार वह बातें क्यों करती हो कल्याणी ?'

'मरने पर भी क्या सम्बन्ध दूर होता है ? वे कैसे हैं ?'

'अच्छे हैं।'

'कहाँ हैं ? पदचिह्न में ?'

'वहीं हैं।'

'कौन-सा काम कर रहे हैं ?'

'जो काम कर रहे थे, दुर्ग-निर्माण, अस्त्र-निर्माण। उन्हीं के बनवाये अस्त्रों से सहस्र-सहस्र सन्तान सज्जित हो रहे हैं। उनके कल्याण से तोप, बन्दूक, गोली, गोला

और बारूद की अब हमें कमी नहीं रही। सन्तानों में वही श्रेष्ठ हैं। हमारा बहुत बड़ा उपकार कर रहे हैं, वे हमारे दाहने हाथ हैं।'

'मैंने प्राण न दिये होते तो क्या इतना होता ? जिसके हृदय में कीच भरा घड़ा बँधा है, वह क्या संसार-सागर में तैर सकता है ? जिसके पैरों में लोहे की जंजीर पड़ी है, वह क्या दौड़ सकता है ? संन्यासी, तुमने इन तुच्छ प्राणों को क्यों बचाया ?'

'स्त्री सहधर्मिणी है, धर्म की सहायक है।'

'छोटे-छोटे धर्म में। बड़े-बड़े धर्म में कण्टक है। मैंने जहर के काँटे से उनके अधर्म का काँटा निकाल दिया था। छिः दुराचारी पामर ब्रह्मचारी ! इन प्राणों को तुमने लौटाल क्यों दिया ?'

'अच्छा, जो कुछ दिया है, वह न हो मेरा ही रहा। जो प्राण तुम्हें मैंने दिये हैं, वे क्या तुम मुझे दे सकती हो ?'

'आप को क्या कोई खबर है ? मेरी सुकुमारी कैसी है ?'

'बहुत दिनों से यह खबर नहीं मिली। जीवानन्द बहुत दिनों से उधर नहीं गये।'

'वह संवाद क्या मुझे आप ला नहीं दे सकते ? पति ही मेरे त्याज्य हैं, अगर बची तो कन्या क्यों छोड़ूँगी ? इस समय सुकुमारी को पाने पर इस जीवन में कुछ सुख आ सकता है। लेकिन मेरे लिए आप क्यों इतना करेंगे ?'

'करूँगा, कल्याणी ! तुम्हारी कन्या को ला दूँगा, परन्तु इसके बाद ?'

'इसके बाद क्या है महाराज ?'

'पति ?'

'उन्हें इच्छा से छोड़ा है।'

'यदि उनका व्रत सम्पूर्ण हो ?'

'तो उन्हीं की हूँगी; मैं बची हूँ, क्या वे जानते हैं ?'

'नहीं।'

'आपके साथ क्या उनकी मुलाकात नहीं होती ?'

'होती है।'

'मेरी बात क्या वे कुछ नहीं कहते ?'

'नहीं, जो स्त्री मर गई है, उसके साथ पति का और सम्बन्ध क्या ?'

'क्या कह रहे हैं आप ?'

'तुम फिर ब्याह कर सकती हो, तुम्हारा पुनर्जन्म हुआ है।'

'मेरी लड़की ला दो।'

'ला दूँगा, तुम फिर ब्याह कर सकती हो ?'

'क्या तुम्हारे साथ ?'

'ब्याह करोगी ?'

'क्या तुम्हारे साथ ?'

'अगर यही हो ?'

'तुम्हारा सन्तान-धर्म कहाँ रहेगा ?'

'अतल जल में ।'

'पर काल ?'

'अतल जल में ।'

'यह महाव्रत ?'

'अतल जल में ।'

'किसलिए सब अतल जल में डुबाओगे ?'

'तुम्हारे लिए । देखो, मनुष्य हो, ऋषि हो, सिद्ध हो, देवता हो, चित्त अवश है ! सन्तान-धर्म मेरा प्राण है, परन्तु आज पहले-पहल कहता हूँ, तुम्हीं मेरी प्राणाधिक प्राण हो ? जिस दिन तुम्हें प्राणदान दिया था, उसी दिन से मैं तुम्हारे पैरों तले बिका हुआ हूँ । मैं नहीं जानता था कि संसार में यह रूपराशि है । ऐसी रूपराशि मैं कभी आँखों से देखूँगा, यह मालूम रहने पर मैं सन्तान-धर्म ग्रहण न करता । यह धर्म इस आग में जल कर राख हो जाता है । धर्म जल गया है, प्राण हैं । आज चार साल से प्राण भी जल रहे हैं, अब नहीं रहना चाहते । दाह ! कल्याणी ! दाह ! ज्वाला ! परन्तु जो ईंधन जलेगा, वह नहीं रहा । प्राण निकलने को हैं । चार साल मैंने सहा है, अब नहीं सह सकता । तुम मेरी होगी ?'

'तुम्हारे ही मुख से सुना है कि सन्तान-धर्म का एक नियम यह है कि जो इन्द्रिय के वश होता है, उसका प्रायश्चित्त मृत्यु है । यह बात क्या सच है ?'

'यह बात सच है ।'

'तो तुम्हारा प्रायश्चित्त मृत्यु है ?'

'मेरा एकमात्र प्रायश्चित्त मृत्यु है ।'

'मैं तुम्हारी इच्छा पूरी करूँ तो तुम मरोगे ?'

'जरूर मरूँगा ।'

'और अगर इच्छा पूरी न करूँ ?'

'फिर भी मृत्यु मेरा प्रायश्चित्त है, क्योंकि मेरा चित्त इन्द्रिय के वश हुआ है ।'

'मैं तुम्हारी इच्छा पूरी नहीं करूँगी । तुम कब मरोगे ?'

'अगली लड़ाई में ।'

'तो तुम जाओ । मेरी लड़की को क्या भेज दोगे ?'

भवानन्द की आँखों में आँसू आ गये, कहा, 'दूँगा । मैं मर जाऊँ तो क्या तुम्हें मेरी याद रहेगी ?'

कल्याणी ने कहा, 'रहेगी, व्रत छोड़ने वाले अधर्मी के रूप में ।'

भवानन्द चले गये । कल्याणी किताब पढ़ने लगी ।

|५|

भवानन्द सोचते हुए मठ की ओर चले । चलते-चलते रात हो गई । रास्ते में अकेले जा रहे थे । वन में अकेले गये । देखा वन में एक और आदमी उनके आगे-आगे जा रहा है । भवानन्द ने पूछा, 'कौन जा रहे हो ?'

आगे चलने वाले व्यक्ति ने कहा, 'पूछना आता है, तभी जवाब देता हूँ—मैं राही हूँ ।'

'वन्दे ।'

आगे चलने वाले व्यक्ति ने कहा, 'मातरम् ।'

'मैं भवानन्द गोस्वामी हूँ ।'

'मैं धीरानन्द हूँ ।'

'आपकी ही खोज में था ।'

'क्यों ?'

'एक बात कहने के लिए ।'

'कौन-सी बात ?'

'एकान्त में कहने वाली है ।'

'यहीं कहो न, यह बहुत ही एकान्त जगह है ।'

'आप नगर गये थे ?'

'हाँ ।'

'गौरी देवी के घर ?'

'तुम भी नगर गये थे क्या ?'

'वहाँ एक परम सुन्दरी युवती रहती है ?'

भवानन्द कुछ विस्मित हुए, कुछ डरे । कहा, 'ये सब कैसी बातें ?'

'आपने उससे मुलाकात की थी ।'

'इसके बाद ?'

'आप उस कामिनी को बहुत चाहते हैं ।'

'धीरानन्द, क्यों इतनी खोज ली ? देखो, धीरानन्द, तुम जो कुछ कह रहे हो, वह सब सत्य है । तुम्हारे अलावा और कितने आदमी यह बात जानते हैं ?'

'और कोई नहीं।'

'तो तुम्हारा वध करने पर ही मैं कलंक से मुक्त हो सकता हूँ।'

'हो सकते हो।'

'आओ, तो इस एकान्त स्थान में दोनों निपट लें।'

'या तो तुम्हें मार कर मैं निष्कण्टक होऊँ या तुम मुझे मार कर मेरी कुल जलन मिटा दो। हथियार है?'

'है, खाली हाथ किसमें हिम्मत है कि तुमसे ये बातें करे? लड़ना ही अगर तुम्हारा मत है, तो अवश्य लड़ूँगा। सन्तान सन्तान में विरोध मना है, परन्तु आत्मरक्षा के लिए किसी से भी विरोध मना नहीं। जो कहने के लिए मैं तुम्हें खोज रहा था, वह सब सुन लेने पर क्या लड़ना अच्छा नहीं होगा?'

'बुरा नहीं; कहो।'

भवानन्द ने तलवार निकाल कर धीरानन्द के कन्धे पर रक्खी, ताकि धीरानन्द भागे नहीं।

'मैं यही कह रहा था कि तुम कल्याणी से ब्याह करो।'

'कल्याणी? यह भी जानते हो?'

'ब्याह क्यों नहीं करते हो?'

'उसके पति हैं जो।'

'वैष्णव का ऐसा ब्याह होता है।'

'वह मुंडे बैरागियों का, सन्तानों का विवाह है ही नहीं।'

'सन्तान-धर्म क्या छोड़ा जाने योग्य है? लेकिन तुम्हारे तो प्राण निकल रहे हैं। छिः छिः! मेरा तो कन्धा कट गया।'

सचमुच धीरानन्द के कन्धे से खून गिर रहा था।

'तुम किस मतलब से मुझे अधर्म में प्रेरित कर रहे हो? जरूर तुम्हारा कोई स्वार्थ है।'

'यह कहने की भी इच्छा है। तलवार न गड़ाना, कह रहा हूँ। इस सन्तान-धर्म में मेरे हाड़ चूर-चूर हो गये हैं, मैं इसे छोड़ कर स्त्री-सन्तानों का मुँह देख कर दिन पार करने के लिए बहुत व्याकुल हुआ हूँ। मैं यह सन्तान-धर्म छोड़ूँगा। परन्तु मेरे लिए घर जा कर बैठने की गुञ्जाइश है? विद्रोही के रूप से मुझे बहुत लोग पहचानते हैं; घर जा कर बैठूँगा तो या तो सरकारी अफसर सर काट कर ले जायँगे, या सन्तान ही विश्वास-घातक समझ कर मार कर चले जायँगे। इसीलिए तुम्हें अपने रास्ते ले जाना चाहता हूँ।'

'क्यों, मुझे क्यों?'

'वही असली बात है। ये सन्तान तुम्हारे आज्ञाधीन हैं—सत्यानंद इस समय

यहाँ नहीं हैं, तुम इनके नायक हो। तुम यह सेना ले कर लड़ो, तुम्हारी जय होगी मेरा ऐसा दृढ़ विश्वास है। युद्ध जीतने पर तुम अपने नाम से राज्य की स्थापना क्यों न करो, सेना तो तुम्हारी आज्ञाकारिणी है। तुम राजा हो, कल्याणी तुम्हारी मन्दोदरी हो, मैं तुम्हारा अनुचर होकर स्त्री-पुत्री का मुँह देख कर दिन पार करूँ और आशीर्वाद दूँ। सन्तान-धर्म अतल जल में डुबा दो।'

भवानन्द ने धीरे-धीरे धीरानंद के कंधे से तलवार हटाई। कहा, 'धीरानंद, लड़ो, मैं तुम्हें मारूँगा। मैं इन्द्रिय के वश हुआ हूँगा, लेकिन विश्वास तोड़ने वाला नहीं। तुमने मुझे विश्वासघातक होने का परामर्श दिया है, खुद भी विश्वासघातक हो; तुम्हें मार देने पर ब्रह्महत्या नहीं होती। मैं तुम्हारी जान लूँगा।'

धीरानंद बात समाप्त होते साँस खींच कर भगा। भवानंद उसके पीछे नहीं लगे। भवानन्द कुछ देर दूसरी चिंता में रहे; जब उसे खोजा तब नहीं पाया।

|६|

मठ में पहुँच कर भवानन्द घने वन में गये। उस वन में एक जगह एक पुरानी अट्टालिका का भग्नावशेष है। भग्नावशेष की ईंटों पर लता-गुल्म और काँटेदार झाड़ियाँ बहुतायत से पैदा हुई हैं और बहुत घनी हैं। वहाँ असंख्य साँप रहते हैं। टूटे कमरों में एक कमरा कुछ कम टूटा और साफ था, भवानंद चल कर उसमें जा कर बैठे। बैठ कर सोचने लगे।

रात गहरी अंधेरी। इस पर वह वन बहुत ही चौड़ा; आदमी का नामोनिशान नहीं; बहुत ही घना पेड़ों और लताओं से दुर्भेद्य, जंगली जानवरों के भी आने-जाने का विरोधी। विशाल, जनशून्य, अंधकार, दुर्भेद्य, नीरव! रव में दूर बाघ की दहाड़ अथवा अन्य वन्य जन्तु का, भूख, डर या प्रचार का शब्द। कदाचित् किसी बड़े पक्षी के पंख फड़फड़ाने का शब्द, कदाचित् खेदे हुए और खेदने वाले, वध्य और वधकारी पशुओं का द्रुत-गमन-शब्द। उस एकांत अंधेरे में टूटी अट्टालिका पर बैठे हुए अकेले भवानंद उनके लिए उस समय जैसे पृथ्वी नहीं है, अथवा केवल उपादानमयी होकर हो। उस समय भवानंद सिर पर हाथ रखे, सोच रहे थे; हिल नहीं रहे थे; साँस नहीं चल रही थी; डर नहीं था; बड़ी गहरी चिंता में मग्न थे। मन ही मन कह रहे थे, 'जो भवितव्य है, वह अवश्य होगा। मैं भागीरथी की तरंगों में क्षुद्र गज की तरह इन्द्रिय के बहाव में बह गया, यही मुझे दुःख है। क्षणमात्र में देह नष्ट हो सकती है—देह के नाश के साथ इन्द्रिय का

भी नाश है—मैं उसी इन्द्रिय के वश हुआ ? मेरे लिए मौत ही ठीक है। धर्मत्यागी ! छिः मरूँ गा !'

इसी समय उल्लू ने सर पर गम्भीर ध्वनि की। भवानन्द तब मुक्तकण्ठ से कहने लगे, 'वह कैसा शब्द ? कानों में ऐसा पहुँचा, जैसे यम मुझे बुला रहे हैं। मैं नहीं जानता, किसने आवाज दी, किसने मुझे पुकारा, किसने मुझे विधि बताई, किसने करने के लिए कहा। हे पुण्यमयि अनन्ते ! तुम शब्दमयी हो, परन्तु तुम्हारे शब्द का मर्म तो मैं नहीं समझ रहा। मेरी धर्म में मति लगाओ, मुझे पाप से विरत करो। धर्म में हे गुरुदेव, धर्म में मेरी मति रहे।'

तब उस भीषण वन के भीतर से बहुत ही मधुर, फिर भी गम्भीर, मर्मभेदी मनुष्य-कण्ठ सुन पड़ा; किसी ने कहा, 'धर्म में तुम्हारी मति रहेगी, मैंने आशीर्वाद दिया।'

भवानन्द का शरीर रोमांचित हुआ। यह क्या ? यह तो गुरुदेव का कण्ठ है। 'महाराज, कहाँ हैं आप ? इस समय दास को दर्शन दीजिए।'

परन्तु किसी ने दर्शन नहीं दिया—किसी ने उत्तर नहीं दिया। भवानन्द ने बार-बार पुकारा, परन्तु उत्तर नहीं मिला। इधर-उधर खोजा, कहीं कोई नहीं था।

जब रात बीती, सुबह का सूरज बड़े वन की पत्तोंवाली साँवली चोटी पर किरणें फैलाने लगा, तब भवानन्द मठ में आ कर हाजिर हुए। कानों में सुन पड़ा—'हरे मुरारे। हरे मुरारे !' पहचाना, सत्यानंद का कण्ठ है ! समझे, प्रभु लौट आये हैं।

|७|

जीवानन्द के कुटी से बाहर निकल जाने पर, शान्तिदेवी फिर सरंगी ले कर मधुर-मधुर संगीत छेड़ने लगीं,

'प्रलय-पयोधि-जले धृतवान सिवेदं
विहित-विचित्र-चरित्रमखेदम्,
केशव, धृत-मीनशरीर,
जय जगदीश हरे !'

गोस्वामी का रचा हुआ मधुर स्तोत्र जब शान्ति देवी के कण्ठ से निकल कर, राग, ताल और लय से पूर्ण हो कर, उस अनन्त वन की अनन्त नीरवता को चीरता हुआ, पूरे जलोच्छ्वास के समय वसन्त की हवा से ताड़ित तरंग-भंग की तरह मधुर हो आया,

तब उन्होंने गाया,

'निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदय-हृदय-दर्शित-पशुघातम्
केशव, धृत-बुद्धशरीर,
जय जगदीश हरे !'

तब बाहर से किसी ने बड़े गम्भीर स्वर से गाया, गम्भीर मेघ-गर्जन-जैसी तान से गाया,

'म्लेच्छनिवह-निधन कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम्,
केशव, धृत-कल्किशरीर,
जय जगदीश हरे !'

शांति ने भक्तिभाव से प्रणत हो कर सत्यानन्द की पदधूलि ली; कहा, 'प्रभो, मैंने ऐसा कौन-सा भाग्य पाया है कि आप के श्रीपद पद्मों के यहाँ दर्शन पाऊँ—आज्ञा दीजिए, मुझे क्या करना हो गा ?' कह कर सरंगी में स्वर भर कर फिर गाया,

'तव चरणप्रणता वयमिति भावय कुरु कुशलं प्रणतेषु ।'

सत्यानन्द ने कहा, 'माँ, तुम्हारा कुशल ही होगा ।'

'किस तरह, महाराज ? तुम्हारी तो आज्ञा है—मेरा वैधव्य !'

'तुम्हें मैं पहचानता नहीं था। या रस्सी की ताकत समझे बिना मैंने उसे ज्यादा खींचा है, तुम मुझसे भी ज्ञानी हो, इसका उपाय तुम करो, जीवानन्द से यह न कहना कि मैं सब जानता हूँ। तुम्हारे प्रलोभन से वे प्राण बचा सकते हैं, अब तक बचाये हुए हैं, इस तरह मेरा काम बन सकता है ।'

उन बड़ी-बड़ी खिली नीली आँखों में गरमी के मेघ में रही विजली जैसे कड़े कटाक्ष हुए। शान्ति ने कहा, 'क्यों महाराज, मैं और मेरे पति एक आत्मा हैं; तुमसे जो-जो बातचीत हुई, सब कहूँगी। मरना होगा, वे मरेंगे; मेरी क्या हानि ? मैं तो साथ-ही-साथ मरूँगी। उनका स्वर्ग है, क्या सोचते हो—मेरा स्वर्ग नही ?'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'मैं कभी हारा नहीं, आज तुम्हारे पास हारा। माँ, मैं तुम्हारा पुत्र हूँ; पुत्र पर स्नेह करो, जीवानन्द के प्राण बचा लो, अपने प्राण बचाओ, मेरा काम बन जाय गा।'

बिजली की हँसी। शांति ने कहा, 'मेरे पति का धर्म मेरे पति के हाथ में है। मैं उन्हें धर्म से विरत करने वाली कौन हूँ ? पति स्त्री का इसी लोक में देवता है, परलोक में सब का देवता धर्म है। मेरे पास मेरे पति बड़े हैं, उनसे बड़ा मेरा धर्म है, इसकी अपेक्षा मेरे पास मेरे पति का धर्म बड़ा है। अपने धर्म को, मेरी जिस दिन इच्छा होगी,

तिलांजलि दे सकती हूँ परन्तु अपने पति के धर्म में भी तिलाञ्जलि दूँ ? महाराज ! तुम्हारी बात पर मेरे पति को मरना होगा, मरेंगे; मैं रोकूँगी नहीं ।'

ब्रह्मचारी तब लम्बी साँस छोड़ कर बोले, 'माँ, इस महान् व्रत में बलिदान है। हम सभी को अपनी बलि देनी होगी। मैं मरूँगा, जीवानन्द, भवानन्द सभी मरेंगे, शायद माँ, तुम भी मरोगी; परन्तु देखो, काम कर के मरना होगा, बिना काम किये क्या मरना अच्छा है ?—मैंने केवल देश को माँ कहा है, किसी को माँ नहीं कहा; क्योंकि सुजला सुफला धरणी को छोड़ कर हम और माँ नहीं मानते। और तुम्हें माँ कहा। तुम माँ होकर सन्तानों का काम करो; जिससे काम बने, वह करना, जीवानन्द के प्राण बचाना, अपने प्राण रखना।'

यह कह कर सत्यानन्द 'हरे मुरारे मधुकैटभारे' गाते हुए चले गये।

|८|

क्रमशः सन्तानों में यह खबर फैल गई कि सत्यानन्द आये हैं, सन्तानों से कुछ बातचीत करेंगे, इसलिए उन्होंने सबको बुलाया है। तब दलों में सन्तान आ-आ कर इकट्ठे होने लगे। चाँदनी रात में, नदी के किनारे, एक बड़े जंगल में, आम, कटहल, ताड़, इमली, पीपल, बेल, बरगद और सेमर आदि पेड़ों से शोभित गहन वन में दस हजार सन्तान एकत्र हुए। सब लोग एक दूसरे के मुँह से सत्यानन्द के आने की बात सुन कर महाकोलाहल करने लगे। सत्यानन्द किसलिए कहाँ गये थे, यह साधारण जनों को मालूम नहीं था। खबर यह थी कि वे सन्तानों के कल्याण के लिए हिमालय में तपस्या करने गये थे।

आज सब लोग कानों में बातचीत करने लगे, 'महाराज को तपस्या में सिद्धि हुई है हम लोगों का राज्य होगा।'

तब बड़ा कोलाहल उठने लगा, कोई-कोई ऊँची आवाज लगा कर कहने लगे, 'मार मार, नेड़े[1] मार।'

किसी-किसी ने कहा, 'जय, जय, महाराज की जय !' किसी-किसी ने गाया, 'हरे मुरारे मधुकैटभारे !' किसी-किसी ने गाया, 'वन्दे मातरम् !' किसी ने कहा 'भाई

१. नेड़े यानी मुंडित; बङ्गाल में मुसलमानों के लिए बङ्गाली इस शब्द का प्रयोग करते हैं, मुसलमानों-द्वारा प्रयुक्त हिन्दू की जैसी 'हेय' अर्थ-ध्वनि में।

ऐसा भी दिन होगा कि तुच्छ बंगाली होकर मैंदानेजंग में हम जान देंगे ?' किसी ने कहा, 'भाई, ऐसा भी दिन होगा कि मसजिदें तोड़ कर हम राधामाधव के मन्दिर बनवायेंगे ?' किसी ने कहा, 'भाई, ऐसा दिन क्या आयेगा कि अपना धन हम आप खायेंगे ?'

दस हजार आदमियों के गले का कलकल-रव, मधुर हवा से ताड़ित पल्लव-राशियों का मर्मर, बालू के ऊपर बहनेवाली नदी का मधुर तर-तर रव, नीले आकाश के चाँद तारे—सफेद बादल, साँवली पृथ्वी के हरे-भरे वन, स्वच्छ नदी, श्वेत सैकत, खिले फूल; और बीच-बीच में वह सब आदमियों के मन में बसने वाला 'वन्दे मातरम् !' सत्यानन्द उस एकत्र हुई जन-मण्डली के बीच में आ कर खड़े हुए। तब वे दस हजार सन्तानों के मस्तक, पेड़ों के छेदों से आती चाँद की किरणों में चमकते हुए साँवली तृणभूमि में प्रणत हुए। बहुत ही ऊँचे स्वर से, दोनों बाँहें उठा कर सत्यानन्द ने कहा, 'शङ्ख-चक्र-गदा-पद्मधारी, बनमाली, वैकुण्ठनाथ जो केशिमथन हैं, मधु-मुर-नरकमर्दन, लोकपालन, वे तुम्हारा मंगल करें; वे तुम्हारी बाँहों में बल दें, मन में भक्ति दें, धर्म में मत दें, तुम लोग एक बार उनकी महिमा गाओ।' तब हजारों कण्ठों से ऊँचे स्वर से गाया जाने लगा—

'जय जगदीश हरे !
प्रलय-पयोधि-जले धृतवानसि वेदं
विहित-विचित्र-चरित्रमखेदम्,
केशव-धृत-मीनशरीर,
जय जगदीश हरे !'

सत्यानन्द उन्हें फिर आशीर्वाद दे कर बोले, 'हे सन्तानों, तुम्हारे साथ आज मेरी विशेष बात है। टामस नाम के एक विधर्मी दुरात्मा ने बहुत से सन्तानों के प्राण लिये हैं। आज रात को हम लोग उसे, उसकी सेना के साथ, यमपुरी भेजेंगे। ईश्वर की आज्ञा है—तुम लोग क्या कहते हो ?'

भीषण हरिध्वनि से कानन विदीर्ण हो गया। 'अभी मारेंगे, कहाँ हैं वे लोग, चलो दिखा दो।' 'मार मार ! शत्रु को मार !' आदि आदि शब्द दूर की पहाड़ी से टकराये तब सत्यानन्द ने कहा, 'इसके लिए हम लोगों को कुछ धैर्य रखना पड़ेगा। शत्रु के तोपें हैं—तोपों के बिना उनसे लड़ाई सम्भव नहीं। खास तौर से वे वीर-जाति हैं। पदचिह्न के दुर्ग से सत्रह तोपें आ रही हैं—तोपें पहुँच जाने पर हम लोग लड़ाई के लिए चलेंगे। वह देखो, सुबह हो रही है। दिन चार दण्ड चढ़ते ही ··वह क्या है···'

'धड़ाम्—धड़ाम्' अकस्मात् विशाल वन के चारों तरफ तोपों की आवाजें होने लगीं। तोपें अंगरेजों की। जाल में पड़ी मछलियों की तरह सन्तानों को इस आम के वन में घेर कर कैप्टेन टामस ने भून डालने का उद्योग किया है।

।९।

'धड़ाम् धड़ाम्' अंगरेजों की तोपों की आवाज हुई। वह आवाज विशाल वन को कम्पित कर प्रतिध्वनि हुई 'धड़ाम् धड़ाम् ।' नदी के बाँधों पर चक्कर काटती हुई वह ध्वनि दूर के आकाश-प्रान्त से टकराई 'धड़ाम् धड़ाम् ।' सत्यानन्द ने आज्ञा दी, 'तुम लोग देखो, कैसी तोपें हैं।' कुछ सन्तान उसी वक्त घोड़ों पर सवार हो कर देखने दौड़े; परन्तु वन से निकल कर कुछ दूर जाते ही सावन की धारा की तरह उन पर गोले गिरने लगे। घोड़ों के साथ उन सबों ने घायल हो कर जान गँवाई। दूर से सत्यानन्द ने देखा। कहा, 'ऊँचे पेड़ पर चढ़ कर देखो, क्या है।' उन के कहने के पहले ही जीवानन्द पेड़ पर चढ़ कर प्रभात की किरणों में देख रहे थे। पेड़ की ऊपर वाली शाखा से पुकार कर उन्होंने कहा, 'तोप अंगरेजों की है।'

सत्यानन्द ने पूछा, 'अश्वारोही हैं या पैदल ?'

'दोनों हैं।'

'कितने ?'

'अन्दाजा नहीं लगा पा रहा हूँ। अब भी वन की आड़ से निकल रहे हैं।'

'गोरे हैं या केवल सिपाही ?'

'गोरे हैं।'

तब सत्यानन्द ने जीवानन्द से कहा, 'तुम पेड़ से उतरो।' जीवानन्द पेड़ से उतरे। सत्यानन्द ने कहा, 'दस हजार सन्तान मौजूद हैं; क्या कर सकते हो, देखो। आज तुम सेनापति हो।'

जीवानन्द अस्त्रों से सुसज्जित हो कर छलाँग मार कर घोड़े की पीठ पर चढ़े। एक दफा नवीनानन्द गोस्वामी की तरफ निगाह कर इशारे से क्या कहा, कोई समझ नहीं पाया। नवीनानन्द ने आँख के इशारे से क्या जवाब दिया, वह भी कोई नहीं समझा; सिर्फ वही दोनों अपने अपने मत में समझे कि शायद इस जन्म के लिए विदा है। फिर नवीनानन्द ने दाहिनी भुजा उठा कर सब से कहा, 'भाई, इस समय गाओ- जय जगदीश हरे।'

तब वे दस हजार सन्तान समस्वर से नदी, वन और आकाश को प्रतिध्वनित कर, तोपों की गरज को डुबा कर, हजारों बाँहें उठा कर गाने लगे—

'जय जगदीश हरे !
म्लेच्छनिवह-निधने कलयसि करवालम्।

इसी समय अंगरेजों के गोले आ कर वन में सन्तान-सम्प्रदाय पर पड़ने लगे।

गाते गाते किसी का सर उड़ गया, किसी का हाथ गायब हो गया, किसी की छाती के फूफस निकल गये, कोई वहीं ढेर हो गया, फिर भी किसी ने गाना बन्द नहीं किया। सब गाते गये, 'जय जगदीश हरे !'

गीत समाप्त होने पर एक बार सब स्तब्ध हो गये। वह घना वन, वह नदी का रेता, वह अनन्द एकान्त एक साथ गहरी चुप में घनीभूत हो गया, केवल वह भयङ्कर तोपों की ध्वनि होती रही और दूर से सुन पड़नेवाली गोरों के एकत्र किये अस्त्रों की झनकार और पैरों की आहट।

तब सत्यानन्द ने उस गहरी निस्तब्धता में बहुत ही ऊँचें स्वर से कहा, 'जगदीश ने तुम पर कृपा की; तोपें कितनी दूर हैं ?' ऊपर से एक आदमी ने कहा, 'इस वन के बहुत पास, सिर्फ एक छोटे मैदान के उस पार।'

सत्यानन्द ने पूछा, 'कहो तुम हो ?'

ऊपर से जवाब आया, 'मैं नवीनानन्द हूँ।'

तब सत्यानन्द ने कहा, 'तुम दस हजार सन्तान हो, आज तुम्हारी विजय होगी, तोपें छीन लो।' आगे के अश्वारोही जीवानन्द ने कहा, 'आओ।'

वे दस हजार सन्तान—घुड़सवार और पैदल बड़े वेग से जीवानन्द के पीछे-पीछे चले। सबों के कन्धे पर बन्दूक, कमरे में तलवार, हाथ में बल्लम। वन से निकलते ही वह अजस्र गोलों की वर्षा उन्हें छिन्न-भिन्न करने लगी। बहुत से सन्तान बिना लड़ाई के मैदान में काम आ गये। एक ने जीवानन्द से कहा, 'जीवानन्द, व्यर्थ की प्राण-हत्या से क्या होगा ?'

जीवानन्द ने फिर कर देखा, भवानन्द थे। जीबानन्द ने पूछा, 'तुम क्या करने के लिए कहते हो ?'

'वन के भीतर रह कर पेड़ों की आड़ से हम अपनी जान बचायें; तोपों के सामने, खुले मैदान में, बिना तोपों के यह सन्तान-सेना एक क्षण भी नहीं टिकेगी; परन्तु पेड़ों की आड़ से बहुत देर तक लड़ाई लड़ी जा सकेगी।'

'तुमने ठीक कहा है, परन्तु प्रभु ने आज्ञा दी है, तोपें छीन लेनी होगी, इस लिए हम लोग तोपें छीनने के लिए बढ़ेंगे।'

'किसकी मजाल जो तोपें छीन ले ? परन्तु अगर जाना ही है, तो तुम निरस्त्र हो, मैं जाता हूँ।'

'यह नहीं होगा, भवानन्द, आज मेरे मरने का दिन है।'

'आज मेरे मरने का दिन है।'

'मुझे प्रायश्चित करना है।'

'तुम्हारा शरीर निष्पाप है, तुम्हारा प्रायश्चित्त नहीं। मेरा चित्त कलुषित है, मुझे ही मरना होगा। तुम रहो, मैं जाता हूँ।'

'भवानन्द, तुम्हारा क्या पाप है, मैं नहीं जानता, परन्तु तुम रहोगे तो सन्तानों का कार्योद्धार होगा। मैं जाता हूँ।'

चुप रह कर अन्त में भवानन्द ने कहा, 'मरने की जरूरत होगी तो आज ही मरूँगा, जिस दिन मरने की आवश्यकता होगी, उसी दिन मरूँगा, मरने के लिए समय-असमय क्या ?'

'तो आओ।'

इस बात के बाद भवानन्द सब से आगे हुए। तब गोलों के दल के दल, झुण्ड के झुण्ड, सन्तानों की सेना पर गिर कर उसके टुकके-टुकड़े करने लगे, चीर कर निकलने लगे, उलट कर चले जाने लगे, इस पर दुश्मन के बन्दूकवाले सिपाही बिना लक्ष्य ही सन्तानों की कतार को जमीन पर सुलाने लगे। ऐसे समय भवानन्द ने कहा, 'इस तरङ्ग में आज सन्तातों को कूदना है, भाइयों कौन-कौन कूद सकते हो ? इस समय गाओ—वन्दे मातरम् !'

तब ऊँचे स्वर से, मेघमल्लार राग में, हजारों कण्ठों से सन्तान-सेना तोपों की ताल-ताल पर गाने लगी—'वन्दे मातरम्।'

|१०|

वे दस हजार सन्तान 'वन्दे मातरम्' गाते हुए बल्लम उठा कर बहुत तेज चाल से तोपों पर जा पड़े। गोलों की मारों से टुकड़े-टुकड़े हो कर, उखड़ कर, बहुत ही विश्रृंखल हो गये, फिर भी सन्तानों की सेना लौटो नहीं। उस समय कैप्टेन टामस की आज्ञा से सिपाहियों के एक दल ने बन्दूक पर सङ्गीन चढ़ा कर प्रबल वेग से सन्तानों के दक्षिण ओर आक्रमण किया। दोनों ओर ले अक्रान्त हो कर सन्तान सेना बिलकुल निराश हो गई। प्रतिमुहूर्त सैकड़ों सन्तान काम आने लगे। तब जीवानन्द ने कहा, 'भवानन्द, तुम्हारी ही बात सही है, अब वैष्णवों के नाश की जरूरत नहीं; हम धीरे-धीरे लौटें।'

'अब लौटोगे किस तरह ? इस समय जो पीछे घूमेगा, वही मरेगा।'

'सामने और दायें बाजू से आक्रमण हो रहा है। बाईं ओर कोई नहीं; चलो, धीरे-धीरे घूम कर बाईं ओर से घेर कर निकल जायँ।'

'निकल कर कहाँ जाओगे ? वहाँ नदी जो है; नई वर्षा से नदी बहुत प्रबल हो गई है। तुम अंगरेजों के गोलों से भाग कर इस सन्तान-सेना को नदी में डुबाओगे ?'

'मुझे याद आ रहा है, नदी पर एक पुल है।'

'यद दस हजार सेना को उस पुल से पार कराने में इतनी भीड़ होगी कि मेरा खयाल है, एक तोप आसानी से कुल सेना को भून डालेगी।'

'एक काम करो; थोड़ी सेना तुम अपने साथ रक्खो। इस लड़ाई में तुमने जो हिम्मत और चतुराई दिखाई है, तुम्हारे लिए असाध्य कुछ भी नहीं। तुम वह अल्प-संख्यक सेना लेकर सामना बचाओ। मैं तुम्हारी सेना की ओट से बाकी सन्तानों को पुल पार करा ले जाऊँ। तुम्हारे साथ जो लोग रहें, वे जरूर काम आयेंगे। मेरे साथ जो रहें, वे बचें तो बच सकते हैं।'

'अच्छा, मैं वैसा ही करता हूँ।'

तब भवानन्द ने दो हजार संतान ले कर, फिर 'वन्दे मातरम्' की आवाज उठा कर, बड़े उत्साह से अंगरेजों की गोलन्दाज-सेना पर आक्रमण किया। वहाँ घमासान लड़ाई होने लगी। परन्तु तोपों के सामने तुच्छ संतान-सेना कितनी देर टिकती, कटे धानों की तरह गोलन्दाज उन्हें धराशायी करने लगे।

इस अवसर पर जीवानन्द बाकी सन्तान-सेना का मुँह कुछ फेर कर बाईं ओर से वन का चक्कर लगाते हुए धीरे धीरे चले। कैप्टेन टामस के एक सहयोगी लेफ्टीनैण्ट वाटसन ने दूर से देखा कि संतानों का एक दल धीरे-धीरे भग रहा है, तब वे एक दल फौजदारी के सिपाहियों का और एक दल परगना-सिपाहियों का ले कर जीवानन्द के पीछे लगे।

कैप्टेन टामस ने यह देखा। उन्होंने कैप्टेन हे नाम के एक सहयोगी से कहा, 'मैं दो-चार सौ सिपाही ले कर सामने के इन उखड़े बागियों का काम तमाम करता हूँ, तुम तोप और बाकी सिपाहियों को ले कर उन लोगों की तरफ दौड़ो, बाईं ओर से लेफ्टीनैण्ट वाटसन जा रहे हैं, तुम दाईं ओर से जाओ। और देखो, बढ़ कर पुल का मुँह बन्द करना होगा, तो तीन तरफ से उन लोगों को घेर कर जाल की चिड़ियों की तरह उन्हें मार सकोगे। ये देशी फौज के आदमी भागते बहुत हैं, भागने में ही दक्ष हैं। इसलिए सहज ही तुम उन्हें पकड़ नहीं पाओगे, तुम सवारों को जरा छिप कर, चक्करदार रास्ते से बढ़ कर पुल के मुँह पर खड़े होने के लिए कहो, तो काम बन जायगा।'

कैप्टेन हे ने वैसा ही किया।

'अतिदर्पे हता लङ्का' कैप्टेन टामस ने सन्तानों को बहुत तुच्छ समझ कर, सिर्फ दो सौ पैदल भवानन्द के मुकाबले के लिए रख कर, बाकी कुल सिपाहियों को हे के साथ भेज दिया। चतुर भवानन्द ने जब देखा, अंगरेजों की सब तोपें गईं, सब सेना गई, जो थोड़े से सिपाही रह गये, वे सहज ही मार लिये जायँ गे, तब अपने बचे हुए आदमियों को बुला कर उन्होंने कहा, 'इन कुछ आदमियों को मार कर मुझे जीवानन्द की मदद के लिए जाना है। एक दफा और तुम लोग 'जय जगदीश हरे' कहो।'

तब वह अल्पसंख्यक सन्तान सेना 'जय जगदीश हरे' कह कर बाघ की तरह

कैप्टेन टामस पर टूट पड़ो। उस आक्रमण की उग्रता तिलङ्गे सिपाही सह नहीं सके, वे काम आये। भवानन्द ने तब बढ़ कर कैप्टेन टामस के बाल पकड़ लिये। अंत तक कैप्टेन लड़ते रहे। भवानन्द ने कहा, 'कप्तान साहब, तुम्हारी जान नहीं लूँगा, अंगरेज हमारे दुश्मन नहीं। तुम मुसलमानों के सहायक हो कर क्यों आये हो? अच्छा, तुम्हें मैंने प्राण-दान दिया, लेकिन इस समय तुम बन्दी हो। अंगरेजों की जय हो, हम तुम्हारे मित्र हैं।'

भवानन्द का वध करने के लिए कैप्टेन टामस ने सङ्गीन लगी बंदूक उठाने की कोशिश की लेकिन भवानन्द ने उसे बाघ की तरह पकड़ रखा था, कैप्टेन टामस हिल नहीं सका। तब भवानन्द ने अनुचरों से कहा, 'इसे बांधो।' दो-तीन संतान आये और कैप्टेन टामस को बाँध लिया। भवानंद ने कहा, 'इसे एक घोड़े पर चढ़ा लो, चलो, इसे ले कर हम लोग जीवानन्द गोस्वामी की मदद के लिए चलें।'

तब वे अल्पसंख्यक सन्तान कैप्टेन टामस को बाँध कर घोड़े पर ले कर 'वन्दे मातरम्' गाते हुए वाटसन की तरफ दौड़े।

जीवानन्द की संतान-सेना का उत्साह जाता रहा था, वह भागने पर तुली थी। जीवानंद और धीरानन्द ने उसे समझा कर संयत किया, परन्तु सब को नहीं कर सके, कुछ भागकर आम के वन में ठहरी। बाकी सेना को जीवानन्द और धीरानन्द पुल के मुख पर ले गये। परन्तु वहाँ हे और वाटसन ने दोनों तरफ से घेर लिया; अब बचाव नहीं।

|११|

ऐसे समय में टामस की तोपें दायें आ कर पहुँचीं। तब संतानों के दल बिल्कुल कट-छँट गये, किसी के बचने की कुछ भी आशा नहीं रही। संतानों में जिससे जिधर हुआ, भागने लगा। जीवानन्द और धीरानन्द ने लोगों को संयत और एकत्र करने के बड़े प्रयत्न किये, पर किसी तरह नहीं कर सके। उसी समय ऊँची आवाज आई, 'पुल पर जाओ, पुल पर जाओ, उस पार जाओ। नहीं तो नदी में डूब कर मरोगे, धीरे-धीरे अँगरेजों की सेना की तरफ मुँह कर के पुल पर जाओ।'

जीवानन्द ने देखा, सामने भवानन्द थे। भवानन्द ने कहा, 'जीवानन्द, पुल पर ले जाओ, बचाव नहीं।'

तब धीरे-धीरे हटती-हटती सन्तान सेना पुल के पार चली। परन्तु पुल पा कर, बहुत-से संतान एक साथ पुल पर चढ़े कि अँगरेजों की तोपों को सुयोग मिला, गोले एक साथ पुल पर गिरने लगे। संतानों का दल नष्ट होने लगा। भवानन्द,

जीवानन्द, धीरानंद एक जगह थे। एक तोप के अत्याचार से भयङ्कर रूप से संतानों का नाश हो रहा था। भवानंद ने कहा, 'जीवानन्द, धीरानंद आओ, तलवार के बल पर हम तीनों इस तोप पर कब्जा करें।'

तीनों ने तलवार निकाल कर उस तोप पर हमला किया, पास के गोलन्दाजों का काम तमाम कर दिया। तब दूसरे संतान उनकी मदद के लिए बढ़े। तोप पर भवानन्द का कब्जा हो गया। तोप पर अधिकार कर के भवानन्द उस पर चढ़ कर खड़े हो गये, ताली बजाते हुए कहा, 'कहो, वन्दे मातरम्।'

सब ने गाया 'वन्दे मातरम्!'

भवानन्द ने कहा, 'जीवानन्द, यह तोप घुमा कर इन दुष्टों का काम तमाम करें।'

संतानों ने पकड़ कर तोप घुमाई। तब तोप उच्च नाद से, वैष्णवों के कानों में जैसे हरि-शब्द से पुकारने लगी। बहुत से सिपाही उससे मरे और मरने लगे। भवानन्द ने वह तोप खींच कर पुल के मुँह पर लगा कर कहा, 'तुम दोनों, संतानों की सेना को कतार में पुल पार करा ले जाओ, मैं अकेला व्यूह का मुँह रख रहा हूँ—तोप चलाने के लिए मेरे पास कुछ गोलंदाज दे जाओ।'

बीस चुने हुए संतान भवानन्द के पास रहे।

उधर अनगिनती संतान जीवानंद और धीरानंद की आज्ञा के अनुसार कतार बाँध कर पुल पर से उस पार जाने लगे। अकेले भवानन्द ने बीस संतानों की सहायता से उसी एक तोप से बहुत-सी सेना भून डाली। परन्तु यवनों की सेना ज्वार की उठती तरङ्गों की तरह थी। तरङ्ग पर तरङ्ग, तरङ्ग पर तरङ्ग! भवानन्द को घेर कर, उत्पीड़ित कर डुबाती हुई-सी मालूम देने लगी। भवानन्द अश्रान्त, अजेय, निर्भीक हैं—तोप की आवाज, आवाज पर कितनी सेना विनष्ट करने लगे। यवन आँधी से पीड़ित तरङ्गों की तरह उन पर चोटें करने लगे, लेकिन बीस संतान तोप लिये हुए पुल का मुँह बंद किये रहे। वे मर कर भी नहीं मरते, यवन पुल पर चढ़ नहीं पाते। वे वीर अजेय हैं, वह जीवन अनिश्वर है। अवसर प्राप्त कर संतानों की सेना के दल पुल के उस पार गये और कुछ देर पुल की रक्षा होने पर ही कुल संतान पुल के उस पार चले जायँ—ऐसे समय कहाँ से तोप गरजी—'अररर धम्।' दोनों दल वालों ने कुछ देर लड़ाई बंद कर के आँख उठा कर देखा—यह तोप कहाँ की है! देखा, बन के भीतर से कुछ तोपें देशी गोलंदाजों से दागी जा कर घसीटी जा रही हैं। निकल कर वे बड़ी-बड़ी सत्रह तोपें सत्रह मुँह से धुँआँ उगलती हुई हे साहब की सेना पर आग बरसाने लगीं। घोर शब्द से वन, पहाड़, सभी कुछ प्रतिध्वनित हुआ। सारे दिन की लड़ाई से थकी हुई यवन-सेना प्राण-भय से काँपी। आग की वर्षा से तिलङ्गे, मुसलमान, हिन्दुस्तानी भागने लगे। सिर्फ दो-चार गोरे सीधे खड़े हुए मरने लगे।

भवानन्द तमाशा देख रहे थे; कहा, 'भाइयो, मुसलमान भाग रहे हैं, आओ, एक बार और इन पर हमला करें।'

तब चींटियों की कतारें जैसी सन्तानों के दल नये उत्साह से पुल के इस पार आ-आ कर यवनों पर हमला करने को दौड़ पड़े। वे लोग एकाएक यवनों पर टूटे। यवनों को लड़ने का अवकाश नहीं मिला—जैसे भागीरथी-तरङ्ग उस दम्भी बृहत् पर्वताकार मत्त हाथी को बहा ले गई थी, सन्तान वैसे ही यवनों को बहा ले चले। यवनों ने देखा, पीछे भवानन्द की पैदल-सेना है, सामने महेन्द्र की तोपें। हे साहब का सर्वनाश आ पहुँचा। कुछ भी नहीं टिका—बल, वीरता, साहस, कौशल, शिक्षा, दम्भ, सब बह गया। फौजदारी, बादशाही, अंग्रेजी, देशी, विलायती, काले, गोरे, सब सैनिक जमीन चूमने लगे। विधर्मियों का दल भागा। 'मार मार' शब्द से जीवानन्द, धीरानन्द विधर्मी सेना से पीछे दौड़े। उनकी तोपें संतानों ने छीन लीं। बहुत-से अँग्रेज और सिपाही काम आये। सब खेल बिगड़ गया देख कर कैप्टेन हे और वाटसन ने भवानन्द के पास कहला भेजा, 'हम सब तुम्हारे हाथ गिरफ्तार हो रहे हैं अब और जानें न मारो।'

जीवानन्द ने भवानन्द के मुँह की तरफ देखा। भवानन्द ने मन में कहा, 'यह नहीं होगा, मुझे आज मरना जो होगा।'

तब भवानन्द ने हाथ उठा कर, ऊँचे स्वर से 'हरि बोल' कहते हुए कहा, 'मारो-मारो।'

फिर एक जान नहीं बची। एक जगह बीस-तीस गोरे इकट्ठे हो कर जान हथेली पर लिए भयङ्कर युद्ध कर रहे थे। जीवानन्द ने कहा, 'भवानन्द, हमारी विजय हुई है, अब रहने दिया जाय, इन कुछ आदमियों के अलावा और कोई जीता नहीं, इन्हें छोड़ कर चलो, हम लौट चलें।' भवानन्द ने कहा, 'एक आदमी के बचे रहते भवानन्द नहीं लौटे गा। जीवानन्द तुम्हें कसम दे कर कहता हूँ, तुम दूर खड़े हो कर देखो, मैं इन अँग्रेजों को कैसे तलवार से घाट उतारता हूँ।'

कैप्टेन टामस घोड़े की पीठ पर बँधा था। भवानन्द ने आज्ञा दी, 'उसे मेरे सामने रक्खो, पहले वह काम आये गा तब मैं मरूँगा।'

कैप्टेन टामस बँगला समझता था। समझ कर अँग्रेज सेना से कहा, 'अँग्रेरेजों, मैं तो मर चुका हूँ, तुम लोग प्राचीन इंगलैंड का नाम रखना, तुम्हें ईसामसीह की कसम देता हूँ, पहले मुझे मारो, इसके बाद इस विद्रोही को मारो।'

भन्न से एक बुलेट आई, एक आयरिश मैन ने कैप्टेन टामस पर गोली छोड़ी। गोली सर पर लगी। कैप्टेन टामस निष्प्राण हो गये। भवानन्द ने तब पुकार कर कहा, 'मेरा ब्रह्मास्त्र व्यर्थ हो गया है। कौन ऐसा पार्थ, वृकोदर, नकुल, सहदेव है जो इस समय मेरी रक्षा करे? देखो- बाणाहत घातों की तरह गोरे इस समय मुझ पर झुके हैं। मैं मरने के लिए आया हूँ, मेरे साथ मरना चाहते हो, ऐसे सन्तान कौन हो?'

पहले धीरानन्द बढ़ा, पीछे जीवानन्द; साथ और दस-पन्द्रह पचास संतान आये। भवानन्द धीरानन्द को देख कर बोले, 'तुम क्या हमारे साथ मरने के लिए आये हो ?'

'क्यों- मरने में भी किसी का इजारा है ?'

यह कहते हुए धीरानन्द ने एक गोरे को घायल किया।

'यह नहीं, मरने पर स्त्री-पुत्रों के मुँह देख कर तो नहीं पार कर सको गे ?'

'कल की बात कह रहें हो। अभी तक नहीं समझे ?'

'नहीं।'

इस समय एक गोरे के वार के भवानन्द का दायाँ हाथ कट गया।

'मेरी क्या मजाल जो तुम्हारे जैसे पवित्रात्मा से वे सब बातें कहूँ ? मैं सत्यानन्द का भेजा हुआ चर हो कर गया था।'

'वह क्या ? मुझ पर महाराज का अविश्वास?'

धीरानन्द ने उन्हें बचाते हुए कहा, कल्याणी से तुम्हारी जो बात हुई थी; वह सब उन्होने अपने कानों से सुनी है।'

'किस तरह ?'

'वे स्वयं वहाँ थे। सावधान रहना। वे कल्याणी को गीता पढ़ा रहें थे, ऐसे समय तुम आये। सावधान !'

भवानंद एक गोरे से घायल हुए, फिर उसे घायल किया।

भवानन्द का बाँया हाथ कटा।

'मेरा मृत्यु-संवाद उन्हें देना। कहना, मैं अविश्वासी नहीं।'

धीरानन्द की आँखों में आँसू आ गये; लड़ते हुए कहा, 'यह वे जानते हैं। कल रात का आशीर्वादवाला वाक्य याद करो। और मुझसे कह दिया है, भवानन्द के पास रहना। आज वह मरे गा। मृत्यु के समय उससे कहना, मैं आशीर्वाद देता हूँ परलोक में उसे वैकुण्ठ प्राप्त होगा।'

भवानन्द ने कहा, 'भाई, सन्तानों की जय हो ! मेरी मृत्यु के समय एक बार 'वन्दे मातरम्' तो सुनाओ।'

तब धीरानन्द की आज्ञा के अनुसार युद्ध से पागल हुए सब सन्तानों ने 'वन्दे मातरम्' गाया। इससे उनकी बाँहों में दूने बल का संचार हो गया। उस भयंकर मुहूर्त में बाकी गोरे निहत हुए। रण क्षेत्र में फिर शब्द नहीं रहा।

उस समय भवानन्द 'वन्दे मातरम्' गाते हुए, मन से विष्णुपद ध्यान करते हुए परलोक-प्रयाण कर गये।

हाय ! रमणीरूप, लावण्य ! इस संसार में तुम्हें ही धिक्कार है।

| १२ |

लड़ाई में जीत होने के बाद, अजय के किनारे सत्यानन्द को घेर कर विजयी वीर नाना प्रकार के उत्सव मनाने लगे। सिर्फ सत्यानन्द उदास हैं। भवानंद के लिए।

अब तक वैष्णवों की लड़ाई के बाजे ज्यादा नहीं थे, परन्तु उस समय न जाने कहाँ से हजारों नक्कारे, जङ्गी ढोल, तुरहियाँ, शहनाइयाँ, दमामे, रामसिंगा, काँसी आदि आ गये। जयसूचक बाजे से वन, प्रान्तर, नदियाँ, शब्द और प्रतिध्वनि से भर गईं। इस तरह सन्तानों ने बहुत देर तक बहुत तरह के उत्सव मनाये; बाद को सत्यानन्द ने कहा, 'जगदीश्वर ने आज कृपा की है, सन्तानों की विजय हुई है; परन्तु एक काम बाकी है। जो लोग हमारे साथ उत्सव नहीं मना सके, जिन लोगों ने हमारे उत्सव के लिए जान दी है, उन्हें भूलने से काम नहीं बने गा। जो लोग रणक्षेत्र में हत हो कर पड़े हैं, चलो, हम लोग चल कर उनकी सत्क्रिया करें।'

तब सन्तानों का दल 'वन्दे मातरम्' कहता हुआ निहतों की क्रिया के लिए चला। बहुत-से आदमियों ने इकट्ठे हो कर 'हरि बोल' कहते हुए, चंदन की लकड़ी के बोझ ढो ला कर, भवानन्द की चिता बनाई और उस पर भवानन्द को लिटा कर आग लगा कर, चिता को घेर कर चलते हुए 'हरे मुरारे' गाने लगे। ये विष्णुभक्त हैं, वैष्णव-सम्प्रदाय-भुक्त नहीं, इसलिए वह करते हैं।

कानन में, इसके बाद, केवल सत्यानन्द, जीवानन्द, महेन्द्र, नवीनानन्द और धारानन्द बैठे हुए हैं। एकांत में पाँच आदमी परामर्श कर रहे हैं। सत्यानन्द ने कहा, 'इतने दिनों तक हम लोगों ने जिसके लिये सर्व कर्म, सर्व धर्म, सर्व सुख छोड़ा था, वह व्रत सफल हुआ है। इस प्रदेश में यवन-सेना अब नहीं। जो बची-खुची है, वह एक क्षण भी हमारे सामने नहीं अड़ेगी। तुम लोग इस समय क्या परामर्श देते हो?'

जीवानन्द ने कहा, 'चलिए, इसी समय चल कर राजधानी पर अधिकार करें।'

'मेरा भी यही मत है।'

'सैन्य कहाँ?'

'क्यों, वही सैन्य।'

'यह सैन्य कहाँ है? किसी को देख रहे हैं?'

'जगह-जगह सब विश्राम कर रहे हैं, डङ्का बजाने पर आ जायँ गे।'

'एक आदमी भी नहीं पाइए गा।'

'क्यों?'

'सब लूटने के लिए निकल गये हैं। गाँव इस समय अरक्षित हैं। मुसलमानों के

गाँव और रेशम की कोठियाँ लूट कर सब अपने-अपने घर जायँ गे। इस समय किसी को भी नहीं पाइए गा, मैं तलाश कर आया हूँ।'

सत्यानन्द का चेहरा उतर गया, बोले, 'जो हो, यह कुल प्रदेश हमारे अधिकार में आया। और यहाँ कोई नहीं जो हमसे छेड़ करे। अस्तु वीरेन्द्र भूमि में तुम लोग सन्तानों का राज्य फैलाओ। प्रजाओं से कर लो और नगर पर अधिकार करने के लिए सेना इकट्ठी करो। हिन्दुओं का राज्य हुआ है, सुनने पर बहुत-से लोग सन्तानों का झण्डा उड़ायें गे'

तब जीवानन्द आदि ने सत्यानन्द को प्रणाम कर के कहा, 'हम लोग प्रणाम कर रहे हैं, हे महाराजधिराज, आज्ञा हो तो इसी वन में हम लोग आप का सिंहासन स्थापित करें।'

सत्यानन्द ने अपने जीवन में यह पहले पहल कोप किया। कहा, 'छिः ? मुझे क्या तुम लोगों ने खाली घड़ा समझ लिया है ? हम कोई राजा नहीं—हम संन्यासी हैं। इस समय देश के राजा स्वयं वैकुण्ठनाथ हैं। नगर पर अधिकार हो जाने पर जिसके सिर तुम्हारी इच्छा हो, राजमुकुट पहनाना, परंतु यह निश्चित रूप समझना कि इस ब्रह्मचर्य के सिवा और कोई भी आश्रम स्वीकृत नहीं करूँ गा। इस समय तुम लोग अपने-अपने काम पर जाओ।'

तब चार आदमी ब्रह्मचारी को प्रणाम कर उठे। दूसरों को मालूम नहीं हुआ, सत्यानन्द ने इशारा कर के महेन्द्र को रोका। बाकी तीन आदमी चले गये, महेन्द्र रुके। सत्यानन्द ने तब महेन्द्र से कहा, 'तुम सब लोगों ने विष्णुमण्डप में शपथ करके सन्तान धर्म ग्रहण किया था। भवानन्द और जीवानन्द दोनों आदमियों ने प्रतिज्ञा तोड़ी है। भवानन्द ने आज अपना स्वीकृत प्रायश्चित कर डाला। मुझे भय रहता है, किसी दिन जीवानन्द भी प्रायश्चित कर के देह का विसर्जन न करें। परंतु मुझे एक भरोसा है, किसी गूढ़ कारण से वह अभी मर नहीं सके गा। अकेले तुमने प्रतिज्ञा रक्खी है। इस समय सन्तानों का कार्योद्धार हुआ; प्रतिज्ञा थी, जब तक सन्तानों का कार्योद्धार न हो, तुम स्त्री-कन्या का मुँह नहीं देखो गे, अब काम पूरा हो गया है, अब तुम फिर गृहस्थ हो सकते हो।'

महेन्द्र की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। महेन्द्र ने कहा, 'महाराज, गृहस्थ होऊँ किसे ले कर ? स्त्री ने तो आत्महत्या की है, और लड़की कहाँ है, यह मैं जानता नहीं, खोज भी कहाँ करूँ ? आप ने कहा है, जीती है, इतना ही जानता हूँ, और कुछ नहीं जानता।'

सत्यानन्द ने नवीनानन्द को बुला कर महेन्द्र से कहा, 'ये नवीनानन्द गोस्वामी हैं—बड़े ही पवित्रचेता, मेरे प्रिय शिष्य। ये तुम्हारी कन्या का पता बता देंगे।' यह कह कर सत्यानन्द ने शांति को कुछ इङ्गित किया। शांति समझ कर, प्रणाम कर, विदा होने को थी कि महेन्द्र ने पूछा, 'तुमसे मुलाकात कहाँ होगी ?'

शांति ने कहा, 'मेरे आश्रम में आइए।' यह कह कर शांति आगे-आगे चली।

तब महेन्द्र ब्रह्मचारी के पैर छू कर विदा हुए और शांति के साथ-साथ उसके आश्रम पहुँचे। तब रात बहुत हो चुकी थी। फिर भी शांति विश्राम न कर नगर की ओर चल दी।

सब के चले जाने पर, ब्रह्मचारी अकेले पृथ्वी पर प्रणत हो कर, मिट्टी पर माथा रख कर मन-ही-मन जगदीश्वर का ध्यान करने लगे। रात बीत गई। ऐसे समय किसी ने आ कर मस्तक स्पर्श कर कहा, 'मैं आया हूँ।'

ब्रह्मचारी उठ कर चौंक कर बड़े व्यग्रभाव से बोले, 'आप आये हैं, क्यों?'

जो आये थे, उन्होंने कहा, 'दिन पूरे हो गये हैं।'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'हे प्रभो, आज क्षमा कीजिए, आगामी माघ पूर्णमासी को मैं आपकी आज्ञा पूरी करूँगा।'

चौथा भाग

|१|

उसी रात को हरि-ध्वनि से वह प्रदेश भर गया। संतानों के दल के दल, यहाँ वहाँ ऊँचे स्वर से, कोई 'वन्दे मातरम्', कोई 'जय जगदीश हरे' गाते हुए, घूमते रहे। शत्रु की सेना से कोई अस्त्र हरण करने लगा, कोई वस्त्र, कोई मुर्दे के मुंह पर लात मारने लगा, कोई दूसरी तरह का उपद्रव करने लगा। कोई गाँव की तरफ, कोई शहर की तरफ दौड़ कर पथिक या गृहस्थ को पकड़ कर कहने लगा, 'बोल वन्दे मातरम् नहीं तो मार डालूँ गा।' कोई हलवाई की दूकान लूट कर खाने लगा। कोई अहीर के घर में घुस कर दही की हंडी उतार कर हाथ साफ करने लगा। कोई कहना लगा, 'हम लोग व्रज के ग्वाल-बाल आये हैं, ग्वलिन कहाँ है ?' उसी एक रात में गाँव-गाँव, नगर-नगर महा कोलाहल मच गया। सबने कहा, 'मुसलमानों की हार हुई है, देश फिर हिन्दुओं का हुआ है। सब लोग एक बार खुल कर हरि हरि कहो।' गाँव के लोग मुसलमान देखने पर मारने के लिए पीछे पड़ने लगे। कोई कोई उसी रात को दलबद्ध हो कर मुसलमानों के मुहल्ले में जा कर उनके घरों में आग लगा कर उनका सर्वस्व लूट लेने लगे। बहुत से मुसलमान काम आये। बहुत-से मुसलमान दाढ़ी मुड़वा कर देह में मृतिका चढ़ा कर हरिनाम करने लगें। पूछने पर कहने लगे, 'मैं हिंदू।'

डरे हुए मुसलमानों के दल के दल शहर की ओर दौड़े। चारों ओर राजकर्मचारी दौड़ धूप करने लगे। बाकी सिपाही वर्दी पहन कर शहर को बचाने के लिए कतार बाँध कर खड़े हुए। शहर के घाट-घाट पर, कमरे कमरे पर, हथियारबन्द रक्षक बड़ी सावधानी से द्वार रक्षा करने लगे। सारे आदमी सारी रात जाग कर क्या होता है, क्या होता है, सोचने लगे। हिंदू कहने लगे, 'आये, संन्यासी लोग आयें, माता दुर्गा करें, हिंदू के भाग्य में वह दिन हो।' मुसलमानों कहने लगे, 'ऐ अल्लाह, अकबर,

इतने दिनों बाद कुरानशरीफ क्या बिलकुल झूठ साबित हुई ? हम लोग तो पाँचों वक्त नमाज पढ़ते हैं, लेकिन इन तिलकधारी हिंदुओं की जमात पर फतह नहीं पा सके, दुनिया में सब धोखा है।' इस तरह कोई रो कर, कोई हँस कर बड़ी बेचैनी से रात पार करने लगे।

ये बातें कल्याणी के कानों में गई; बच्चे बूढ़े, स्त्रियाँ, सब को मालूम हो चुकी थीं। कल्याणी ने मन ही मन कहा, 'हे जगदीश्वर, तुम्हारी जय हो ! आज तुम्हारा काम पूरा हुआ। आज मैं पति को देखने के लिए जाऊँगी। हे मधुसूदन, आज मेरी सहायता करो।'

गहरी रात को बिस्तरा छोड़ कर उठ कर; अकेली खिड़की खोल कर, इधर-उधर देखती हुई किसी को न देख कर, धीरे-धीरे चुपचाप कल्याणी गौरीदेवी की पूजा कर के राजपथ पर निकली। मन ही मन इष्ट देवता का स्मरण कर के कहा, 'देखो महाराज, आज जैसे पदचिह्न में उनसे मुलाकात हो।'

कल्याणी शहर की चट्टी में पहुँची। पहरे वाले ने पूछा, 'कौन जाता है ?'

कल्याणी ने डरी आवाज में कहा, 'मैं औरत हूँ।'

पहरे वाले ने कहा, 'जाने का हुक्म नहीं।'

बात दफादार के कानों में गई। उसने कहा, 'बाहर निकलना मना नहीं, भीतर आना माना है।'

सुनकर पहरे वाले ने कहा, 'जाओ माई, जाने की मनाही नहीं लेकिन आज की रात बड़ी आफत की है, क्या जाने माई, तुम्हें क्या हो, डाकुओं के हाथ पड़ो या गढ़े में गिर कर मरो। आज रात तुम्हें बाहर नहीं जाना चाहिए।'

कल्याणी ने कहा, 'बाबा, मैं भिखारिन हूँ, मेरे पास एक फूटी कौड़ी भी नहीं, डाकू मुझसे नहीं बोलेंगे।'

पहरे वाले ने कहा, 'उम्र तो है, माई, उम्र तो है; दुनिया में वही तो जेवर है। हम ही डाकू बन सकते हैं।'

कल्याणी ने देखा, बड़ी विपद् है। कुछ कहे बगैर चट्टी से बच कर चली गई। पहरे वाले ने देखा, माई रसिकता नहीं समझी, तब दुखी मन से गाँजे की दम लगा कर झिंझोटी-खम्माच में टप्पा अलापने लगा। कल्याणी चली गई।

उस रात पथिकों के दलों में कोई मार-मार कर रहा है, कोई भागो-भागो कह रहा है; कोई रो रहा है, कोई हँस रहा है; जो जिसे देख रहा है, वह उसे पकड़ रहा है। कल्याणी बड़ी आफत में पड़ी। रास्ता याद नहीं, किसी से पूछने की हिम्मत नहीं, सब लड़ाई पर तुले हैं। सिर्फ छिप-छिप कर अंधेरे में रास्ता चलना पड़ रहा है। छिप कर जाती हुई भी वह बड़े ही उद्धत विद्रोहियों के एक दल के हाथ पड़ गई। वे लोग बड़े जोर से चिल्ला कर उसे पकड़ने के लिए दौड़े। तब ऊँची साँस ले कर भगती हुई कल्याणी

जंगल के भीतर गई। वहाँ भी दो एक डाकू साथ-साथ, उनके पीछे-पीछे दौड़े। एक ने उनका आँचल पकड़ा, कहा, 'तो फिर चाँद।' उसी समय एक आदमी और एकाएक आया और उत्पीड़नकारी को एक लाठी जमाई। चोट खा कर वह पीछे हट गया। इस बचाने वाले व्यक्ति का संन्यासी-वेश है—कृष्णसार-मृग के चर्म से वक्ष ढँका है, उम्र बहुत थोड़ी। उसने कल्याणी से कहा, 'तुम डरो मत, मेरे साथ आओ—कहाँ जाओगी ?'

'पदचिह्न।'

आगन्तुक चौंका, उसे आश्चर्य हुआ, पूछा, 'सो कैसे ? पदचिह्न ?' यह कह कर आगन्तुक कल्याणी के दोनों कन्धा पर हाथ रख कर मुँह की तरफ उस अंधेरे में भी बड़े यत्न से देखने लगा।

पुरुष के स्पर्श से कल्याणी अकस्मात् रोमाञ्चित, भीत, क्षुब्ध, विस्मित, अश्रुविप्लुत हुई—ऐसी शक्ति नहीं कि भागे, भय से विह्वल हो गई थी। आगन्तुक ने निरीक्षण समाप्त होने पर उससे कहा, 'हरे मुरारे! पहचान लिया, तुम मुँहजली कल्याणी हो।'

कल्याणी ने डर कर पूछा, 'आप कौन हैं ?'

आगन्तुक ने कहा, 'मैं तुम्हारा दासानुदास हूँ, हे सुन्दरी, मुझ पर प्रसन्न होओ।'

कल्याणी द्रुत-गति से वहाँ से हट कर तरजती-गरजती हुई बोली, 'यह अपमान करने के लिए ही क्या आपने मेरी रक्षा की थी ? देख रही हूँ, आप का ब्रह्मचारी का वेश है, ब्रह्मचारी का क्या यही धर्म है ? मैं आज निःसहाय हूँ, नहीं तो तुम्हारे मुँह पर मैं लात मारती।'

ब्रह्मचारी ने कहा, 'अयि स्मितवदने! मैं बहुत दिनों से तुम्हारे इस सुन्दर शरीर के स्पर्श की कामना कर रहा हूँ।' यह कह कर ब्रह्मचारी ने द्रुत-गति से दौड़ कर कल्याणी को पकड़ कर गहरा आलिङ्गन किया। तो कल्याणी खिलखिला कर हँस दी, 'ऐ मेरे भाग! पहले कह देती कि मेरी भी वही दशा है।'

शांति ने पूछा, 'महेन्द्र की खोज में चली हो ?'

कल्याणी ने कहा, 'तुम कौन हो ? तुम तो सब कुछ जानती हो देखती हूँ।'

शांति ने कहा, 'मैं ब्रह्मचारी हूँ। संतान-सेना का अधिनायक—बहुत बड़ा वीर। मैं सब कुछ जानता हूँ। आज रास्ते में सिपाहियों और संतानों का जो उपद्रव है उससे आज तुम पदचिह्न नहीं जा सकोगी।'

कल्याणी रोने लगी।

शांति ने तेवर बदल कर कहा, 'डर क्या है ? हम लोग आँखों के तीरों से अपने दुश्मनों का कत्ल करते हैं। चलो पदचिह्न चले।'

ऐसी बुद्धिमती स्त्री की सहायता पा कर कल्याणी ने जैसे हाथ बढ़ा कर स्वर्ग पाया। कहा, 'तुम जहाँ भी ले जाओगी, मैं वहाँ जाऊँगी।'

शांति तब उसे जंगली रास्ते से साथ ले चली।

|२|

जब शान्ति ने अपना आश्रम छोड़ कर गहरी रात में नगर की ओर यात्रा की थी, तब जीवानन्द आश्रम में उपस्थित थे। शान्ति ने जीवानन्द से कहा, 'मैं नगर चली। महेन्द्र की स्त्री को ले आऊँगी। तुम महेन्द्र से कह रक्खो कि उसकी स्त्री बची है।'

जीवानन्द भवानन्द से कल्याणी की जान के बचने का कुल हाल मालूम कर चुके थे, और उसका वर्तमान वासस्थान भी सब जगह विचरण करनेवाली शान्ति से सुन चुके थे। क्रमशः महेन्द्र को कुल बातें सुनाने लगे।

महेन्द्र ने पहले विश्वास नहीं किया। अन्त में मारे आनन्द के अभिभूत होकर मुग्धप्राय हो गये।

वह रात बीत जाने पर शान्ति की सहायता से महेन्द्र से कल्याणी की मुलाकात हुई। सुनसान वन में, सटे हुए सालों की अंधेरी छाँह में, चिड़ियों की नींद टूटने के पहले, दोनों ने एक दूसरे को देखा। गवाह सिर्फ वे नीले आसमान में विहार करने वाले मलिन पड़ते हुए तारे और वे न काँपती हुई अनगिनती साल की कतारें। दूर, पत्थर से रगड़ खा कर आवाज करती हुई, मधुर कल्लोलवाली सङ्कीर्ण नदी का तर-तर शब्द, कहीं पूरब में उगी हुई ऊषा के मुकुट को ज्योति देख कर खुश हुई एक कोयल की कूक।

दिन एक पहर हुआ। वहाँ शांति और जीवानन्द आकर मिले। कल्याणी ने शान्ति से कहा, 'हम लोग आपके हाथों बिना मोल बिके हुए हैं। हमारी लड़की का पता बता कर यह उपकार पूरा कीजिए।'

शान्ति ने जीवानन्द के मुँह की ओर देख कर कहा, 'मैं सोना चाहती हूँ। आठ पहर हो गये, मैं बैठी नहीं, दो रात नहीं सोयी।'

कल्याणी मुस्कराई। जीवानन्द ने महेन्द्र के मुख की ओर देख कर कहा, 'वह भार मुझ पर रहा। आप लोग पदचिह्न जाइए—वहाँ आपकी कन्या आपको मिलेगी।

जीवानन्द भरुईपुर निमाई के यहाँ लड़की लेने गये। काम बड़ा सीधा नहीं मालूम दिया।

निमाई ने पहले लार घूँटी, एक दफा इधर-उधर देखा। इसके बाद एक साथ

उसके नाक और होंठ फूलने लगे। इसके बाद वह रोने लगी। थोड़ी देर बाद कहा, 'मैं लड़की नहीं दूँगी।'

निमाई ने हथेलियों से आँख पोंछी तो जीवानन्द ने कहा, 'लेकिन मेरी दीदी, रोती क्यों हो ? इतनी दूर भी तो नहीं—उनके घर न हो तुम जाती रहना, बीच-बीच में देख आना।'

निमाई ने होंठ फुला कर कहा, 'तो अपनी लड़की तुम ले ही जाओ ?' यह कह कर सुकुमारी को ला कर गुस्से से जीवानन्द के पास डाल कर पैर फैला कर रोने लगी। फलतः जीवानन्द उस समय कुछ न कह कर इधर-उधर की फालतू बातें करने लगे। लेकिन निमाई का गुस्सा न ठण्डा पड़ा। निमाई उठ कर सुकुमारी के कपड़ों की गठरी, गहनों की संदूकची, बाल बाँधने के लच्छे, खिलौने, गुड़िया, जीवानन्द के सामने झपाझप फेंकने लगी। सुकुमारी वह सब अपने आप इकट्ठा करने लगी। उसने निमाई से पूछा, 'क्यों माँ, हम कहाँ चलेंगे माँ ?'

निमाई से और नहीं सहा गया। वह सुकुमारी को गोद में लेकर रोती गुई चली गई।

|३|

पदचिह्न में नये दुर्ग में आज सुख से महेन्द्र, कल्याणी, जीवानन्द, शांति, निमाई, निमाई के पति और सुकुमारी बैठे हुए हैं। सब लोग सुखपूर्वक सम्मिलित हैं। शांति नवीनानन्द के वेश से आई थी। कल्याणी को जिस रात अपने कुटीर में लाई थी, उस रात को मना किया था कि नवीनानन्द स्त्री है, यह बात कल्याणी अपने पति से न कहे। एक दिन कल्याणी ने उसे अपने अन्तःपुर में बुला भेजा। नवीनानन्द अन्तःपुर में गये। नौकरों का निषेध नहीं माना।

कल्याणी के पास पहुँच कर शांति ने पूछा, 'तुमने बुलाया क्यों है ?'

'मर्द बन कर कितने दिन रहोगी ? मुलाकात नहीं होती, बातें भी नहीं कर पाती। मेरे पति के सामने तुम्हें जाहिर होना होगा।'

नवीनानन्द बड़ी चिंता में रहे, देर तक कुछ कहा नहीं। अन्त में कहा, 'उसमें बड़ा विघ्न है। कल्याणी !'

दोनों में यही बातचीत होने लगी। इधर जिन नौकरों ने नवीनानन्द को अन्तःपुर जाने से रोका था, उन लोगो ने महेन्द्र को जा कर खबर दी कि नवीनानन्द जबर्दस्ती

अन्तःपुर में घुस गये हैं, निषेध नहीं माना। महेन्द्र को कौतूहल हुआ, वे भी अन्तःपुर में गये। कल्याणी के कमरे में जाकर देखा, नवीनानन्द कमरे के भीतर खड़े हैं, कल्याणी उनके बदन में हाथ लगाये उनके बाधाम्बर की ग्रन्थि खोल रही है। महेन्द्र बड़े ही आश्चर्य में पड़े, बहुत ही नाराज हुए।

नवीनानन्द ने उन्हें देख कर हँस कर कहा,'क्यों गोसाइँ? संतान पर अविश्वास ?

महेन्द्र ने कहा, 'भवानन्द महाराज क्या विश्वासी थे ?'

नवीनानन्द ने निगाह बदल कर कहा, 'कल्याणी क्या भवानन्द के बदन में भी हाथ लगा कर बाघम्बर खोल देती थीं ?' कहते हुए शांति ने कल्याणी के हाथ पकड़ लिये, बाघाम्बर खोलने नहीं दिया।

'इससे क्या ?'

'मुझ पर अविश्वास कर सकते हैं, कल्याणी पर अविश्वास कैसे करते हैं ?'

इस बार महेन्द्र बहुत अप्रतिभ हुए। कहा, 'कहाँ किस तरह अविश्वास किया ?'

'नहीं तो मेरे पीछे-पीछे अन्तःपुर में आ कर हाजिर हुए क्यों ?'

'कल्याणी से मेरी कुछ बातचीत थी, इसी लिए आया हूँ।'

'तो अभी जाइए। कल्याणी से मेरी भी कुछ बातचीत है। आप हट जाइए, पहले मैं बातचीत कर लूँ। आप का घर है, आप हमेशा आ सकते हैं, मैं बड़ी मुश्किल से एक बार आ पाया हूँ।'

महेंद्र बेवकूफ बन गये। कुछ भी नहीं समझ सके। ये सब बातें तो अपराधी की बातें जैसी नहीं। कल्याणी का भाव भी विचित्र है। वह भी तो अविश्वासिनी की तरह नहीं भागी, डरी नहीं, लजाई नहीं, बल्कि हँस रही है। और कल्याणी—जिसने उस पेड़ के नीचे अनायास विष खा लिया था,—वह क्या अपराधिनी हो सकती है ? महेन्द्र यह सब सोच रहे हैं; ऐसे समय अभागिनी शांति ने महेन्द्र की दुरवस्था देख कर जरा मुस्करा कर कल्याणी की तरफ एक विलोल कटाक्ष किया। तब एकाएक अँधेरा मिट गया, महेंद्र ने देखा, यह नारी का कटाक्ष है। हिम्मत पर ठहर कर नवीनानन्द की दाढ़ी पकड़ कर खींची—कृत्रिम दाढ़ी मूछें खुल गईं। उसी समय अवसर देख कर कल्याणी ने बाघाम्बर की ग्रन्थियाँ खोल दीं—बाघाम्बर भी खुल कर गिर गया। पकड़ में आकर शांति नतमुखी हो रही।

महेंद्र ने तब शांति से पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'श्रीमान् नवीनानन्द गोस्वामी।'

'वह तो जाल है, तुम स्त्री हो।'

'इस समय निःसंशय।'

'तो एक बात पूछता हूँ—तुम स्त्री होकर सदा जीवानन्द महाराज से सहवास क्यों करती हो ?'

'वह बात आप से अगर न कहूँ ?'

'तुम स्त्री हो, जीवानंद महाराज यह जानते हैं ?'

'जानते हैं ।'

सुन कर विशुद्धात्मा महेन्द्र बहुत विषण्ण हुए ।

देख कर कल्याणी रह नहीं सकी, कहा, 'जीवानन्द गोस्वामी की ये धर्मपत्नी शांतिदेवी हैं ।'

क्षण भर के लिए महेन्द्र का चेहरा खिला । फिर उस पर अँधेरा छा गया । कल्याणी समझ गई, कहा, 'ये ब्रह्मचारिणी हैं ।'

| ४ |

उत्तर बङ्गाल मुसलमानों के हाथ से निकल गया है । मुसलमान कोई यह बात नहीं मानते; मन को समझाते हैं, कहते हैं, कुछ लुटेरे बड़ा अत्याचार कर रहे हैं, हम अभी सजा देते हैं । इस तरह कितना समय पार होता नहीं कहा जा सकता; परन्तु इसी समय वारेन हेस्टिंग्स ईश्वर के नियोग से बङ्गाल के गवर्नर-जनरल हैं । वारेन हेस्टिंग्स मन को समझानेवाले आदमी नहीं । उनमें यह भाव रहता तो आज भारत में ब्रिटिश साम्राज्य कहाँ प्रतिष्ठित होता ? सन्तानों को दबाने के लिए मेजर एडवर्ड् नाम के दूसरे सेनापति नई सेना ले कर खुले तौर से हाजिर हुए ।

एडवर्ड् ने देखा, यह योरपीय युद्ध नहीं । दुश्मनों के सेना नहीं, नगर नहीं, राजधानी नहीं, किला नहीं, फिर भी सब उनके अधीन है । जिस रोज जहाँ ब्रिटिश सेना का पड़ाव है, उस रोज के लिए वह जगह ब्रिटिश सेना के अधीन है; इसके बाद ब्रिटिश सेना के चले जाने पर वैसे ही चारों ओर 'वन्दे मातरम्' गाया जाने लगा । साहब खोज नहीं पाते, कहाँ से ये चींटी की कतारों की तरह एक रात में निकल कर, जो गाँव अँगरेजों के कब्जे में आता है, उसे जला जाते हैं या थोड़ी संख्या में ब्रिटिश सेना पाते हैं उसका खात्मा कर देते हैं । खोज करते-करते साहब ने मालूम किया कि पदचिह्न में किला बना कर वहाँ ये लोग अपना अस्त्रागार और धनागार रखे हुए हैं । अस्तु उस किले पर कब्जा करना उचित है, उन्होंने निश्चय किया ।

गुप्तचरों से वे संवाद लेने लगे कि पदचिह्न में कितने सन्तान रहते हैं । जो संवाद उन्हें मिला, उससे किले पर हमला करना उन्होंने उचित नहीं समझा । मन ही मन एक

अपूर्व कौशल की उद्भावना की।

सामने माघी पूर्णिमा आई। उनके पड़ाव के पास नदी के किनारे एक मेला लगेगा। इस बार मेले की बड़ी तैयारियाँ हैं। सहज ही मेले में एक लाख के करीब भीड़ होती है। इस बार वैष्णव राजा हुए हैं, मेले में वैष्णव बड़ी तैयारियों से आयेंगे, संकल्प किया है। अस्तु पूर्णमासी के दिन कुल सन्तानों को मेले में एकत्र होने की संभावना है। मेजर एडवर्ड्स् ने सोचा कि पदचिन्ह के सब रक्षकों की भी मेले में आने की संभावना हैं। उसी समय पदचिह्न में जा कर वे किले पर अधिकार करेंगे।

मेजर ने यह अभिप्राय प्रचारित किया कि वे मेले पर आक्रमण करेंगे; एक जगह कुल वैष्णवों को पा कर एक दिन में दुश्मनों का खातमा कर देंगे, वैष्णवों का मेला नहीं लगने देंगे।

गाँव-गाँव यह संवाद प्रचारित हुआ। तब सन्तान-सम्प्रदायवाला जो जहाँ था, उसी समय अस्त्र लेकर मेले की रक्षा के लिए दौड़ पड़ा। सभी सन्तान नदी के किनारे माघी पूर्णिमा को आ कर मिले। मेजर साहब ने जो कुछ सोचा था, वही पूरा उतराने अँग्रेजों के सौभाग्य से महेन्द्र ने भी फंदे में पैर डाला। पदचिह्न के किले में थोड़ी-सी सेना छोड़ कर मेले के लिए अधिकांश ले कर महेन्द्र रवाना हुए।

ये सब बातें होने से पहले ही जीवानन्द और शांति पदचिह्न से बाहर हो गये थे। तब युद्ध की कोई बातचीत नहीं हुई, युद्ध की ओर उनका झुकाव भी नहीं था। माघी पूर्णिमा के शुभ दिन, शुभ समय, पवित्र जल में प्राणों का विसर्जन कर प्रतिज्ञा भङ्ग-रूप महापाप का प्रायश्चित्त करेंगे, यही उनकी अभिसन्धि थी। परन्तु रास्ता चलते चलते उन्होंने सुना कि मेले में आये हुए संतानों के साथ अंग्रेजों का महायुद्ध होगा। जीवानन्द ने कहा, 'तो लड़ाई में ही मरूँगा, जल्दी चलो।'

वे जल्दी जल्दी चले। एक जगह टीले पर से रास्ता गया है। टीले पर चढ़ कर वीर-दम्पित्ति ने देखा, नीचे कुछ दूर पर अंग्रेजों का शिविर है। शाति ने कहा 'मरने की बात अभी रहने दो, कहो, वंदे मातरम्।'

५

तब दोनों ने कानों-कान कोई परामर्श किया। परामर्श करके जीवानंद एक वन में छिपे। शान्ति एक दूसरे वन में घुस कर अद्भुत रहस्य में प्रवृत्त हुई।

शान्ति मरने जा रही थी, मरने के समय स्त्री–वेश धारण करेगी, निश्चय किया

था। महेन्द्र ने कहा है, वह पुरुष-वेश से दूसरों को धोखा देती है। दूसरों को धोखा देते हुए मरा नहीं जायगा। इसलिए टेपरिया वह साथ ले आई है, उसमें उसकी पहनाव-ओढ़ाववाली चीजें हैं। अब नवीनानन्द टेपरिया खोल कर वेश बदलने लगे।

मधुर-मधुर तिलक पर कत्थे की बिन्दी लगा कर, उस समय के प्रचलित घुँघराले, झपटे से चाँद मुख ढँक कर, एक सरंगी हाथ में ले कर वैष्णवी के वेश से शान्ति अँग्रेज-शिविर में गई। देख कर भौंरे-सी काली दाढ़ी मूछों वाले सिपाही पागल हो गये। किसी ने टप्पा, किसी ने गजल, किसी ने श्यामाविषय, किसी ने कृष्ण-विषय की फरमाइश की और गाना सुना। किसी ने चावल दिया, किसी ने दाल दी, किसी ने मिठाई दी, किसी ने पैसा दिया, किसी ने चवन्नी दी। वैष्णवी जब शिविर की अवस्था अपनी आँखों विशेष रूप से देख कर चली जा रही थी, सिपाहियों ने पूछा, 'फिर कब आओगी?' वैष्णवी ने कहा, 'यह नहीं कह सकती, मेरा मकान बहुत दूर है।' सिपाहियों ने पूछा, 'कितनी दूर है ?' वैष्णवी ने कहा, 'मेरा मकान पदचिन्ह में है।' इस समय मेजर साहब पदचिन्ह की कुछ खबरें ले रहें हैं, एक सिपाही यह जानता था। वैष्णवी को बुला कर वह कप्तान साहब के पास ले गया। साहब उसे मेजर के पास ले गये। मेजर साहब के पास जाकर, वैष्णवी मधुर हँसी हँस कर, मर्मभेदी कटाक्ष करके साहब का सर चकरा कर खँझड़ी बजाती हुई गाने लगी—

'म्लेच्छनिवह-निधने कलयिस करवालम्।'

साहब ने पूछा, 'टुमारा मकान कहाँ बीबी ?

बीबी ने कहा, 'मैं बीबी नहीं, वैष्णवी हूँ, मकान पदचिह्न में है।'

'Where is that padsin padsin! वहाँ एक गढ़ है ?'

वैष्णवी ने कहा, 'घर ?—कितने घर हैं।'

'गर नई—गर नई—गर—गर—'

'साहब तुम्हारे मन की बात समझी। गढ़ ?

'इयस, इयस, गर। गर है ?

'गढ़ है। बड़ा किला है।'

'केट्ठे आदमी ?

'गढ़ में कितने आदमी रहते हैं ? बीस-पच्चीस हजार।'

'नान्सेन्स! एक किला में डो-चार हजार रह सकटा। वही अबी है या निकल गया ?'

'निकलेंगे कहाँ ?'

'मेला में तूम कब वहाँ से आया ?'

'कल आई हूँ, साहब।'

'वह लोग आज निकल गया होगा।'

शांति मन ही मन सोच रही थी, 'तुम्हारे [illegible] अगर मैंने नहीं चढ़ाये, तो मेरा तिलक लगाना ही वृथा है। कब स्यार तुम्हारा सर खायेंगे, मैं देखूँगी।' खुल कर कहा, 'साहब हाँ साहब, हो सकता है, आज निकल गए हों तो निकल जा सकते हैं। इतनी खबर मैं नहीं जानती वैष्णवी हूँ, गाने गा कर भीख माँग कर खाती हूँ; इतनी खबर नहीं रखती। बकते हुए गला सूख गया, पैसा दो, जाऊँ। और अच्छी तरह बख्शिश दो तो न हो परसों आ कर कह जाऊँगी।'

ठन्न से एक नकद रुपया फेंक कर साहब ने कहा, 'परसों नहीं बीबी!'

शांति ने कहा, 'धत्तरे की, वैष्णवी कह, बीबी क्या है?'

'परसों नई, आज राट को हमको खबर मिलना चाहिए।'

'सिरहाने बन्दूक रख कर, शराब चढ़ा कर, नाक में सरसों का तेल डाल कर सोओ। आज मैं दस कोस रास्ता चलूँगी और लौटूँगी—आपको खबर ला दूँगी! छुतिहे कहीं के!

'छुतिहे कहीं के—किसको कहता है?'

'जो वीर—बड़ा जंडैल है।'

'Great General. हम हो सकटा है—क्लाइव का माफक। लेकिन आज हमको खबर मिलना चाहिए। सौ रुपिया बकसीस देगा।'

'सौ दो, और हजार दो, बीस कोस इन दो पैरों से नहीं होगा।'

'घोड़े पर?'

'घोड़े पर चढ़ना जानती तो तुम्हारे तम्बू में आ कर सरङ्गी बजा कर भीख माँगती?'

'गोद पर ले जायगा।'

'गोद पर बैठा कर ले जायगा, मेरे लज्जा नहीं?'

'क्या मुश्किल, पान सौ रुपया देगा।'

'कोन जायगा? तुम खुद जाओगे?'

साहब ने तब ऊँगली के इशारे से सामने खड़े हुए लिंडले नाम के एक नौजवान एनसाइन को दिखा कर उससे पूछा, 'लिंडले, तुम जाओगे!?

शान्ति का रूप-यौवन देख कर लिंडले ने कहा, 'खुशी से।'

तब एक भारी अरबी घोड़ा कस कर लाया गया, लिन्डले भी तैयार हुआ। शान्ति को पकड़ कर घोड़े पर चढ़ाने लगा। शान्ति ने कहा, 'छिः, इतने आदमियों के बीच? मेरे क्या किसी बात की लज्जा नहीं? पहले चलो, छावनी पार करें।'

लिन्डले घोड़े पर चला। घोड़ा धीरे-धीरे ले चला। शान्ति पीछे-पीछे पैदल चली। इस तरह वे शिविर के बाहर आये।

शिविर के बाहर आने पर एकान्त प्रान्तर देख कर शान्ति लिन्डले के पैर पर पैर

रख कर एक उड़ान से घोड़े पर पहुँची। लिन्डले ने हँस कर कहा, 'तुम तो पूरी सवार हो।'

शान्ति ने कहा, 'हम ऐसी पक्की सवार हैं कि तुम्हारे साथ चढ़ कर चलते लाज लगती है। छिः, रकाब में पैर रख कर सवारी करना !'

एक बार शेखी बघारने के लिए लिन्डले ने रकाब से पैर निकाला। शान्ति ने उसी वक्त मूर्ख अँगरेज के गले में हाथ लगा कर उसे घोड़े से गिरा दिया। घोड़े की पीठ पर तब शान्ति बाकायदा जम कर बैठ गई, अब पेट में कड़ों की एड़ लगा कर अरबी को हवा के साथ ले चली। चार साल सन्तानों की सेना में रह कर शान्ति ने घोड़े की सवारी भी सीखी थी। बगैर सीखे वह जीवानन्द के साथ थोड़े ही रह सकती थी। लिन्डले का पैर टूट गया, वे वहीं पड़े रहे। शान्ति वायुवेग से घोड़ा उड़ा ले चली।

जिस वन में जीवानन्द छिपे थे, शान्ति ने वहाँ जा कर कुल समाचार जीवानन्द को दिया। जीवन्नद ने कहा, 'तो मैं जल्दी जा कर महेन्द्र को होशियार करता हूँ। तुम मेले में जा कर सत्यानन्द को खबर दो। तुम घोड़ा पर जाओ, जिससे प्रभु जल्दी संवाद पा सकें।'

तब दोनों आदमी दो तरफ दौड़े। शान्ति फिर नवीनानन्द बनी।

|६|

एज्वड पक्के अंगरेज थे। चट्टी-चट्टी में उनके आदमी थे। जल्दी उनके पास खबर पहुँची कि वह वैष्णवी लिन्डले साहब को गिरा कर खुद घोड़े पर सवार हो कर कहीं चली गई है। सुनते ही एड्वर्ड ने कहा, 'An imp of Satan ! Strike the tents.'

तब खटाखट तम्बू के खूँटों पर हथौड़े की चोटें पड़ने लगीं। मेघरचित अमरावती की तरह वस्त्र-नगरी अंतर्हित हुई। माल गाड़ियों पर लदा। आदमी घोड़ों पर या अपने पैरों पर। हिंदू, मुसलमान, मद्रासी, गोरे कंधे पर बंदूक रखे चर्र-मर्र करते हुए चले। तोपें चरखियों पर घरघराती हुई चलीं।

इधर महेन्द्र सन्तानों की सेना ले कर क्रमशः मेले के रास्ते बढ़ रहे थे। उसी दिन तीसरे पहर महेंद्र ने सोचा, दिन ढल चुका, कहीं खेमे गाड़ने चाहिए।

शिविर का संस्थापन उन्होंने उचित समझा। वैष्णवों के तम्बू नहीं; पेड़ के नीचे बोरिया या कथरी बिछा कर लेटते हैं। थोड़ा-सा हरिचरणामृत पान कर रात पार करते

हैं। भूख जो बाकी रहती है, स्वप्न में वैष्णवी देवी का अधरामृत पान कर मिटाते हैं। शिविर के लायक पास एक जगह थी; एक बड़ा बगीचा, जिसमें आम, कटहल, बबूल और इमली थे। महेन्द्र ने आज्ञा दी, 'यहीं शिविर स्थापित करो।' उसी की बगल में एक टीला था, चढ़ने में बड़ा ऊबड़-खाबड़। महेन्द्र ने एक बार सोचा, इस पहाड़ी पर शिविर करने पर अच्छा होगा।

यह सोच कर महेन्द्र घोड़े पर सवार हो कर धीरे धीरे टीले पर चढ़ने लगे। वे कुछ दूर चढ़े तो एक युवा वैष्णव ने सेना के भीतर आ कर कहा, 'चलो, टीले पर चढ़ो।'

पास जो लोग थे, उन्होंने विस्मित हो कर पूछा, 'क्यों ?'

योद्धा ने मिट्टी के एक टीले पर खड़े हो कर कहा, 'चलो, इस चाँदनी रात में उस पहाड़ी की चोटी पर नये वसंत के नये फूलों की सुगंध लेते-लेते आज हमें शत्रु से युद्ध करना होगा।'

सन्तानों ने देखा, सेना पति जीवानन्द हैं। तब 'हरे मुरारे' की ऊँची आवाज करती हुई सन्तानों की कुल सेना बल्लम के सहारे उठ कर खड़ी हुई और जीवानन्द का अनुकरण करती हुई तेजी से टीले पर चढ़ने लगी; एक ने सजा घोड़ा जीवानन्द को लाकर दिया। दूर से महेन्द्र देख कर विस्मित हुए। सोचा, यह क्या, न कहते ही ये क्यों आ रहें हैं। अब महेन्द्र घोड़े का मुँह फेर कर चाबुक लगाते गर्द उड़ाते हुए पहाड़ी से उतरने लगे। सन्तानवाहिनी के समाने चलने वाले जीवानन्द को देख कर पूछा, 'यह क्या है, आनन्द ?'

जीवानन्द ने हँस कर कहा, 'आज बड़ा आनन्द है। टीले के उस तरफ एड्वर्ड साहब हैं। जो पहले टीलें पर जायेगा, उसी की विजय है।'

फिर जीवानन्द ने सन्तान-सेना को पुकार कर कहा, 'तुम लोग पहचानते हो ? मैं जीवानन्द गोस्वामी हूँ। मैंने हजार शत्रुओं के प्राण लिये हैं।'

तुमुल निनाद ने वन और प्रांतर को ध्वनित किया—'हम पहचानते हैं, तुम जीवानन्द गोस्वामी हो।'

'कहो, हरे मुरारे।'

कानन और प्रान्तर सहस्र-सहस्र कण्ठों से ध्वनित हुआ, 'हरे मुरारे !'

'टीले के उस तरफ शत्रु हैं। आज ही इस टीले की चोटी पर इस नीलाम्बरी यामिनी के सामने सन्तान युद्ध करेंगे। जल्दी जाओ, जो पहले शिखर पर चढ़ेगा, वही जीतेगा। कहो वन्दे मातरम् !'

वन और मैदान को ध्वनित कर के 'वन्दे मातरम्' गाना होने लगा। धीरे-धीरे सन्तानों की सेना पहाड़ो की चोटी पर चढ़ने लगी। परन्तु उन लोगों ने भय-पूर्वक देखा, महेन्द्र सिंह बड़ी द्रुत गति से टीले से उतरते हुए तूर्य ध्वनि कर रहे हैं। देखते-देखते शिखर पर नीलाकाश-पट में तोपों की कतार के साथ अंगरेजों की गोलंदाज-सेना शोभा

देने लगी। ऊँचे स्वर से वैष्णवी सेना ने गाया—

'तुमि विद्या तुमि भक्ति,
तुमि मा बाहुते शक्ति,
त्वं हि प्राणाः शरीरे।'

परन्तु अँगरेजों की तोपों के 'अररर अररर धम्' शब्द में वह महागीत बह गया। सैकड़ों सन्तान हताहत हो कर अस्त्र-शस्त्रों के साथ उस टीले पर सोये। फिर 'अररर धम्' दधीचि की अस्थि को व्यङ्ग करके, समुद्र के तरङ्ग-भङ्ग को कुछ न समझ कर अँगरेजों का वज्र चलने लगा। किसान के हँसिये के सामने पके धान की तरह सन्तान-सेना टुकड़े टुकड़े हो कर धराशायी होने लगी। व्यर्थ ही जीवानन्द, व्यर्थ ही महेंद्र प्रयत्न करते रहे। गिरती हुई शिलाराशि की तरह सन्तान-सेना टीले से फिरने लगी। कौन कहाँ भागे, ठिकाना नहीं। तब एक साथ सब के विनाश से लिए गोरों की पलटन 'हुर्रे हुर्रे' कहती हुई टीले से उतरी। सङ्गीन उठाये हुए बहुत ही द्रुत वेग से पर्वत से गिरती हुई विशाल नदी के प्रपात की तरह, दुर्दम असंख्य अजेय ब्रिटिश सेना भागती हुई सन्तान-सेना के पीछे लगी। एक बार महेन्द्र से मुलाकात होने पर जीवानन्द ने कहा, 'आज अन्त है। आओ, यहीं मरें।'

महेन्द्र ने कहा, 'मरने पर अगर लड़ाई फतह होती तो मरा भी जाता, वृथा-मृत्यु वीर का धर्म नहीं।'

'मैं वृथा ही मरूँगा। फिर भी लड़ाई में मरूँगा।'

फिर पीछे फिर कर ऊँचे स्वर से जीवानन्द ने पुकारा, 'कौन हरिनाम करते हुए मरना चाहते हो, मेरे साथ आओ।'

बहुतेरे बढ़े। जीवानन्द ने कहा, 'इस तरह नहीं। ईश्वर के सामने शपथ करो, जीते हुए नहीं लौटोगे।'

जो बढ़े थे, वे खिंचे। जीवानन्द ने कहा, 'कोई नहीं आओगे? तो मैं अकेला चला।'

जीवानन्द ने घोड़े की पीठ पर सीधे हो कर बहुत दूर पीछे छूटे हुए महेन्द्र को पुकार कर कहा, 'भाई, नवीनानन्द से कहना, मैं चला, परलोक में मुलाकात होगी।'

यह कह कर उस वीर ने लोहे की वर्षा के भीतर वेग से घोड़े को दौड़ा दिया। बायें हाथ में बल्लम, दायें में बन्दूक, मुख में-हरे मुरारे, हरे मुरारे, हरे मुरारे। लड़ाई की सम्भावना नहीं; इस साहस का कोई फल नहीं। फिर भी, हरे मुरारे! हरे मुरारे! गाते-गाते जीवानन्द शत्रु के व्यूह में प्रवेश कर गये।

भागते हुए सन्तानों को पुकार कर महेन्द्र ने कहा, 'देखो, एक बार तुम लोग घूम कर जीवानन्द गोसाई को देखने पर मरोगें नहीं।'

लौटकर कुछ सन्तानों ने जीवानन्द की अमानुषी कृति देखी; पहले विस्मित हुए,

इसके बाद कहा, 'जीवानन्द मरना जानते हैं, हम लोग नहीं जानते। जीवानन्द के साथ वैकुण्ठ चलें।'

यह बात सुन कर कुछ सन्तान लौटे। उनकी देखा-देखी कुछ और भी लौटे, उसकी देखा-देखी कुछ और। एक शोरगुल उठा। जीवानन्द शत्रु के व्यूह में घुस गये थे। सन्तानों में किसी ने उन्हें नहीं देखा।

इधर सम्पूर्ण रणक्षेत्र से सन्तानों ने देखा, कुछ सन्तान फिर लौट रहे हैं। सबने सोचा, सन्तानों की जय हुई है, सन्तान शत्रु को खेदें जा रहे हैं। तब कुल सन्तान-सेना मार-मार कहती हुई अंगरेज-सेना पर टूट पड़ी।

इधर अँगरेज-सेना में एक भारी भगदड़ पड़ गई। सिपाही लड़ने की ओर ध्यान न देकर दोनों तरफ से भाग रहे हैं। गोरे भी लौट कर सङ्गीन ऊँची कर शिविर की तरफ दौड़ रहे हैं। इधर-उधर निरीक्षण करके महेन्द्र ने देखा, टीले की चोटी पर असंख्य सन्तान-सेना दिखाई पड़ रही है। वह वीरदर्प से उतर कर अँगरेज-सेना पर आक्रमण कर रही है। तब उन्होंने सन्तानों को पुकार कर कहा 'हे सन्तानों, वह देखो, शिखर पर प्रभु सत्यानन्द गोस्वामी की ध्वजा दिखाई पड़ रही है। आज साक्षात् मुरारि मधुकैटभ-निसूदन केशि-कंस-विनाशन युद्ध में अवतीर्ण है—एक लाख सन्तान शिखर पर हैं! कहो हरे मुरारे! हरे मुरारे!'

तब 'हरे मुरारे' की भीषण ध्वनि से कानन और प्रान्तर मथित होने लगे। समस्त सन्तानों ने 'मा भैः मा भैः' रव से ललित-ताल-ध्वनि-संवलित अस्त्रों की झनकार से सब जीवों को विमोहित कर लिया। दर्प से महेन्द्र की वाहिनी ऊपर चढ़ने लगी। शिलाओं के प्रतिघात से लौटाई हुई निर्झरिणी की तरह राज-सेना विलोड़ित, स्तम्भित और भीत हुई। उसी समय पच्चीस हजार सन्तान-सेना लेकर ब्रह्मचारी सत्यानन्द समुद्र प्रपात की तरह राज-सेना पर टूटे। भयङ्कर युद्ध हुआ।

जैसे दो बड़े-बड़े पत्थरों के संघर्ष से, बीच में छोटी मक्खी पिस जाती है, उसी तरह दो सन्तान-सेनाओं के संघर्ष में वह विशाल राज-सेना पिस गई।

वारेन हेस्टिंग्स् के पास खबर ले जाय, ऐसा आदमी नहीं बचा।

|७|

रात पूर्णमासी है। वह भीषण रणक्षेत्र इस समय स्थिर है। वह घोड़ों की खटापट, वह बन्दूकों की कड़ाकड़, तोपों की धड़ाम-धम्म और सर्वव्यापी धुआँ, अब कुछ

भी नहीं। कोई हुर्रे नहीं कह रहा, कोई हरिध्वनि नहीं कर रहा। बोल रहे हैं सिर्फ स्यार, कुत्ते, गीध; सबसे ज्यादा है घायल व्यक्तियों का आर्तनाद। किसी का हाथ कट गया है, किसी का सिर फूट गया है, किसी का पैर टूट गया है, किसी के पञ्जर में छेद हो गया है, कोई कोई 'बाप' पुकार रहे हैं। कोई पानी चाहता है, किसी की कामना है मृत्यु। बङ्गाली, हिन्दुस्तानी, मुसलमान, अँगरेज एक जगह लिपटे पड़े हैं। जिन्दों और मुर्दों, आदमियों और घोड़ों की ठसाठस गबड़सट्ट। माघ की उस पूर्णमासी रात को, कठिन जाड़े में, साफ चाँदनी में, रणभूमि बड़ी भयङ्कर दिख रही थी। वहाँ जाने की किसी की हिम्मत नहीं होती।

किसी की हिम्मत नहीं होती, परन्तु आधी रात को एक स्त्री उस अगम्य रणक्षेत्र में विचरण कर रही थी। एक मशाल जला कर उस शवराशि के बीच वह क्या खोज रही थी? हर एक मुर्दे के मुँह के पास मशाल ले जा कर मुँह देखकर फिर दूसरे मुर्दे के पास मशाल ले जाती थी। कहीं कोई मुर्दा मरे घोड़े के नीचे दबा है, वहाँ युवती मशाल मिट्टी में गाड़कर घोड़े को दोनों हाथों से हटा-कर मुर्दा निकालती थी। फिर जब देखती थी, वह जिसे खोज रही है, यह वह नहीं, तब मशाल उठा कर हट जाती थी। इस तरह खोजती हुई युवती सारे मैदान में फिरी। जिसे खोज रही है, उसे कहीं भी नहीं पाया। तब मशाल डाल कर शवराशि से पूर्ण उस लोहूलुहान भूमि में लोट कर रोने लगी। वह शान्ति थी, जीवानन्द की देह खोज रही थी।

शान्ति लोटती हुई रोने लगी। इसी समय बड़ी मधुर करुण ध्वनि उसके कानों में गई। कोई जैसे कह रहा है, 'उठो माँ, रोओ नहीं।'

शान्ति ने आँखें उठा कर देखा; देखा, सामने ज्योत्स्नालोक में खड़े हुए, एक, पहले के न दिखे, भारी शरीर के, जटाजूटधारी महापुरुष हैं।

शान्ति उठ कर खड़ी हो गई। जो आये थे, उन्होंने कहा, 'माँ, रोओ नहीं, जीवानंद की देह मैं खोज देता हूँ। तुम मेरे साथ आओ।'

तब वे महापुरुष शांति को रणक्षेत्र के मध्य भाग में ले गये। वहाँ अनगिनती लाशें एक दूसरी पर पड़ी थीं। शांति उन सबको हिला नहीं सकी। उस शवराशि से उस महा बलवान् पुरुष ने एक लाश अलग करके बाहर निकाली। शान्ति ने पहचाना, वह जीवानन्द की देह थी। सारे अंगों में घाव लगे हुए, सारी देह खून से तर। शान्ति साधारण स्त्री की तरह ऊँचे स्वर से रोने लगी।

उन्होंने फिर कहा, 'माँ, रोओ नहीं। जीवानन्द क्या मरा है? स्थिर होकर इसकी देह की परीक्षा करके देखो। पहले नाड़ी देखो।'

शांति ने शव की नाड़ी देखी, किञ्चितमात्र भी गति नहीं। उस पुरुष ने कहा, 'हृदय पर हाथ रख कर देखो।'

जहाँ हृत्पिण्ड हैं, शान्ति ने हाथ रख कर देखा, जरा भी गति नहीं, सब ठण्डा पड़ गया है।

उस पुरुष ने फिर कहा, 'नाक के पास हाथ रख कर देखो—कुछ साँस चल रही है ?'

शांति ने देखा, कुछ भी नहीं।

उस महापुरुष ने कहा, 'फिर देखो, मुँह के भीतर उँगली रख कर देखो—कुछ गरमी है या नहीं।'

शान्ति ने उँगली रख कर, मालूम करते हुए कहा, 'कुछ समझ नहीं पा रही।' शान्ति आशामुग्ध हो गई थी।

महापुरुष ने बायें हाथ से जीवानन्द की देह छुई। कहा, 'तुम भय से हताश हो गई हो, इसी लिए समझ नहीं पा रही हो। जान पड़ता है, देह में अभी तक कुछ गरमी है। अच्छा, फिर देखो।'

शान्ति ने तब फिर नाड़ी देखी, कुछ गति हैं। विस्मित होकर हृत्पिण्ड पर हाथ रक्खा—कुछ धक-धक कर रहा है। नाक के सामने उँगली रक्खी—कुछ साँस चल रही है। मुँह के भीतर कुछ गरमी मिली। शान्ति तअज्जुब में आकर बोली, 'क्या प्राण थे या फिर आये हैं ?'

उन्होंने कहा, 'यह भी कहीं होता है माँ ? तुम इसे लेकर तालाब के किनारे ले आ सकोगी ? मैं चिकित्सक हूँ, इसकी चिकित्सा करूँगा।'

शान्ति अनायास ही जीवानन्द को गोद में ले कर तालाब के किनारे चली। चिकित्सक ने कहा, 'तुम इसे तालाब में ले जा कर सारा खून धो दो। में दवा ले कर आता हूँ।'

शान्ति ने जीवानन्द को तालाब के किनारे ले जा कर कुल खून धो दिया। उसी समय चिकित्सक ने जङ्गली लतापत्रों का प्रलेप ले आ कर कुल घावों के मुँह में लगाया। इसके बाद जीवानन्द के कुल अङ्गों पर बार-बार हाथ फेरा। तब जीवानन्द एक लम्बी साँस छोड़ कर उठ बैठे। शान्ति के मुँह की ओर देख कर पूछा, 'लड़ाई में किसकी जीत हुई ?'

शान्ति ने कहा, 'तुम्हारी ही जीत हुई। इन महात्मा को प्रणाम करो।'

तब दोनों ने देखा, कहीं कोई नहीं, किसे प्रणाम करें ?

पास विजयी सन्तान-सेना का उठता हुआ ऊँचा कोलाहल सुनाई पड़ रहा था, परन्तु शान्ति या जीवानंद कोई उठे नहीं—उस पूर्ण चन्द्र की किरणों से समुज्ज्वल पुष्करिणी के सोपान पर बैठे रहे। जीवानन्द की देह उस दवा के गुण से बहुत थोड़े समय में अच्छी हो आई। उन्होंने कहा, 'शान्ति, चिकित्सक की दवा में आश्चर्यंकर

गुण है। मेरी देह में अब किसी तरह का दर्द या सुस्ती नहीं—अब कहाँ चलोगी, चलो। वह सन्तान-सेना का विजय के उत्सव का शोर सुन पड़ रहा है।'

शांति ने कहा, 'अब और वहाँ नहीं। माँ का काम पूरा हो चुका है। यह देश सन्तानों का हुआ है। हमें राज्य का हिस्सा नहीं चाहिए। अब फिर क्या करने जायँ ?'

'जो कुछ छीना है, उसे बाँहों के बल से रखना होगा।'

'रखने के लिए महेन्द्र हैं। सत्यानंद स्वयं हैं। तुम प्रायश्चित्त करके सन्तान धर्मवाला शरीर छोड़ चुके हो। इस पुनः पाये शरीर पर सन्तानों का अधिकार नहीं। हम संतानों के लिए मर चुके हैं। अब हमें देखने पर सन्तान लोग कहेंगे, जीवानन्द लड़ाई के समय प्रायश्चित्त के डर से छिपा था, विजय हुई न देख कर, राज्य का हिस्सा बँटाने आया है।'

'सो क्या शान्ति ? लोगों के अपवाद के भय से अपना काम छोड़ दूँगा ? मेरा काम मातृ-सेवा है! कोई कुछ भी कहे, मैं मातृ-सेवा ही करूँगा।'

'उसमें अब तुम्हारा अधिकार नहीं, क्योंकि अपनी देह तुम मातृ-सेवा के लिए छोड़ चुके हो। यदि फिर माँ कीं सेवा तुम्हें करने को मिली, तो तुम्हारा प्रायश्चित क्या हुआ ? मातृ सेवा से वञ्चित होना ही इस प्रायश्चित का प्रधान अंश है। नहीं तो सिर्फ तुच्छ प्राणों का त्याग क्या कोई बड़ा भारी काम है ?'

'शान्ति, तुम्हीं सब कुछ समझ सकती हो। मैं इस प्रायश्चित्त को असम्पूर्ण नहीं रखूँगा। मेरा सुख सन्तान धर्म में है। उस सुख से अपने को मैं वञ्चित करूँगा। परन्तु जाऊँगा कहाँ ? मातृ सेवा छोड़ कर घर जा कर सुख भोग तो नहीं कर सकूँगा।'

'क्या मैं ऐसा कह रही हूँ ? हम अब गृही नहीं। इसी तरह दोनों संन्यासी रहेंगे, चिर ब्रह्मचर्य पालन करेंगे। चलो, इस समय हम देश-देश तीर्थ करते घूमें।'

'फिर ?'

'फिर हिमालय पर कुटी तैयार कर दोनों देवता की आराधना करेंगे; जिससे माता का मङ्गल हो, वह वर माँगेंगे।'

इसके बाद दोनों उठ कर, हाथ पकड़े हुए, ज्योत्स्नामयी निशीथ में अन्तर्हित हो गये।

हाय ! फिर क्या वे आयेंगे, माँ ! जीवानन्द जैसा पुत्र, शान्ति जैसी कन्या क्या फिर गर्भ में धारण करोगी ?

सत्यानन्द महाराज लड़ाई के मैदान से किसी से कुछ कहे बगैर, आनन्दमठ चले आये। वहाँ गहरी राम में विष्णुमण्डप में बैठ कर ध्यान करने लगे। इसी समय वे चिकित्सक वहाँ पहुँच कर दिखलाई दिये। देख कर सत्यानन्द ने उठ कर प्रणाम किया।

चिकित्सक ने कहा, 'सत्यानन्द, आज माघी पूर्णिमा है।'

'चलिए, मैं तैयार हूँ, परन्तु हे महात्मन्, मेरा एक सन्देह दूर कीजिए। जिस मुहूर्त युद्ध में विजय प्राप्त कर मैंने सनातन धर्म को निष्कण्टक किया, उसी समय मेरे लिए यह त्याग की आज्ञा क्यों हुई ?'

जो आये थे, उन्होंने कहा, 'तुम्हारा कार्य सिद्ध हो चुका है। मुसलमानों का राज्य ध्वस्त हो चुका से। अब तुम्हारा और कोई काम नहीं। व्यर्थ की जीवहत्या की आवश्यकता नहीं।'

'मुसलमानों का राज्य ध्वस्त हो चुका है, परन्तु हिंदू-राज्य स्थापित नहीं हुआ। अभी कलकत्ते में अँगरेज प्रबल हैं।'

हिन्दू-राज्य अभी भी स्थापित नहीं होगा। तुम रहोगे तो व्यर्थ ही नर-हत्यायें होंगी, इसलिए चलो।'

सुन कर सत्यानन्द तीव्र मर्म-पीड़ा से कातर हुए। कहा, 'हे प्रभो, यदि हिन्दू-राज्य स्थापित नहीं होगा तो कौन राजा होगा ? फिर क्या मुसलमान राजा होंगे ?'

उन्होंने कहा,'नहीं, अब अंगरेज राजा होंगे।'

सत्यानन्द की दोनों आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी। वे ऊपर स्थित मातृरूपा जन्मभूमि-प्रतिमा की तरफ फिर कर हाथ जोड़ कर वाष्परुद्ध स्वर से कहने लगे, 'हाय माँ ! तुम्हारा उद्धार नहीं कर सका। फिर तुम म्लेच्छों के हाथ पड़ोगी। संतान का अपराध न लेना। हाय माँ ! क्यों आज रणक्षेत्र में मेरी मृत्यु नहीं हुई ?'

चिकित्सक ने कहा, 'सत्यानन्द, दुखी न होओ। तुमने बुद्धि के भ्रम से दस्यु-वृत्ति-द्वारा धन-संग्रह करके युद्ध जय किया है। पाप का कभी पवित्र फल नहीं होता। इस लिए तुम लोग कभी देश का उद्धार नहीं कर सकोगे। और जो कुछ होगा, वह अच्छा ही होगा। अँगरेजों के राजा हुए बिना सनातन-धर्म के पुनरुद्धार की सम्भावना नहीं। महापुरुषों ने जैसा समझा है, यह बात मैं तुम्हें उसी रूप से समझाता हूँ। मन लगा कर सुनो। तैंतीस करोड़ देवताओं की पूजा सनातन-धर्म नहीं, वह एक लौकिक गिरा हुआ धर्म है; उसके प्रभाव से सच्चा सनातन-धर्म—म्लेच्छ जिसे हिन्दू-धर्म कहते हैं—वह लुप्त हो गया है। यथार्थ हिंदू-धर्म ज्ञानात्मक है, कर्मात्मक नहीं। वह ज्ञान दो प्रकार का है—बहिर्विषयक और अंतर्विषयक। अंतर्विषयक जो ज्ञान है, वही सनातन-

धर्म का प्रधान भाग है, परन्तु बहिर्विषयक ज्ञान के हुए बिना अंतर्विषयक ज्ञान के होने की सम्भावना नही। स्थूल क्या है, इसे जाने बगैर सूक्ष्म क्या है, यह नहीं जाना जा सकता। इस समय इस देश में बहुत दिनों से बहिर्विषयक ज्ञान लुप्त हो गया है—फलत: यथार्थ सनातन-धर्म भी लुप्त हो गया है। सनातन-धर्म का पुनरुद्धार करना हो तो पहले बहिर्विषयक ज्ञान का प्रचार आवश्यक है। इस समय इस देश में बहिर्विषयक ज्ञान नहीं, सिखाये, ऐसा आदमी नहीं, हम लोग लोक शिक्षा में दक्ष नहीं। इसलिए भिन्न देश से बहिर्विषयक ज्ञान लाना होगा। अँगरेज बहिर्विषयक ज्ञान में बड़े पण्डित हैं, लोक-शिक्षा के बड़े दक्ष। इसलिए हम अँगरेजों को राजा बनायेंगे। अंगरेजों की शिक्षा से इस देश के लोग बहिस्तत्त्व में सुशिक्षित होकर अन्तस्तत्त्व समझने में सक्षम होंगे। तब सनातन-धर्म के प्रचार में विघ्न नहीं रहेगा, तब यथार्थ धर्म अपने आप फिर से जागेगा। जितने दिनों तक वैसा नहीं होता, जितने दिनों तक हिंदू फिर ज्ञानवान्, गुणवान् और बलवान् नहीं होते, उतने दिनों तक अँगरेजों का राज्य अक्षय रहेगा। अँगरेजों के राज्य में प्रजा सुखी होगी; निष्कण्टक हो कर धर्माचरण करेगी। अतएव हे धीमन्, अँगरेजों से युद्ध में निरस्त हो कर मेरा अनुसरण करो।'

सत्यानन्द ने कहा, 'हे महात्मन्! यदि अँगरेजों को राजा बनाना ही आपका अभिप्राय है, यदि इस ससय अँगरेजों का राज्य ही देश के लिए कल्याणकर है तो हम लोगों को इस नृशंस युद्ध-कार्य में आपने क्यों नियुक्त किया था?'

महापुरुष ने कहा, 'अँगरेज इस समय वणिक् है—अर्थ-संग्रह की ही ओर ध्यान है, राज्य शासन का भार नहीं लेना चाहते। इस संतान-विद्रोह के कारण वे राज्य-शासन भार लेने को बाध्य होंगे; क्योंकि राज्य-शासन के बिना अर्थ-संग्रह नहीं होगा। अँगरेज राज्य में अभिषिक्त होंगे, इसीलिए संतान-विद्रोह हुआ है। इस समय चलो, ज्ञान प्राप्त कर के तुम स्वयं सब बातें समझ सकोगे।'

'हे महात्मन्, मैं ज्ञान-प्राप्ति की इच्छा नहीं रखता—ज्ञान की मुझे आवश्यकता नहीं। मैं जिस व्रत में व्रती हुआ हूँ, उसी का पालन करूँगा। आशीर्वाद दीजिए, मेरी मातृ-भक्ति अचला हो।'

'व्रत सफल हुआ है—तुमने माता का मङ्गल किया है—अँगरेजों का राज्य स्थापित किया है। युद्ध और विग्रह छोड़ो। तुम्हारे किये काम में आदमी लगें। पृथ्वी शस्यशालिनी हो, लोगों की श्रीवृद्धि हो।'

सत्यानन्द की आँखों से चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्होंने कहा, 'शत्रुओं के रुधिर से सिक्त कर मैं माता की प्यास बुझाऊंगा।'

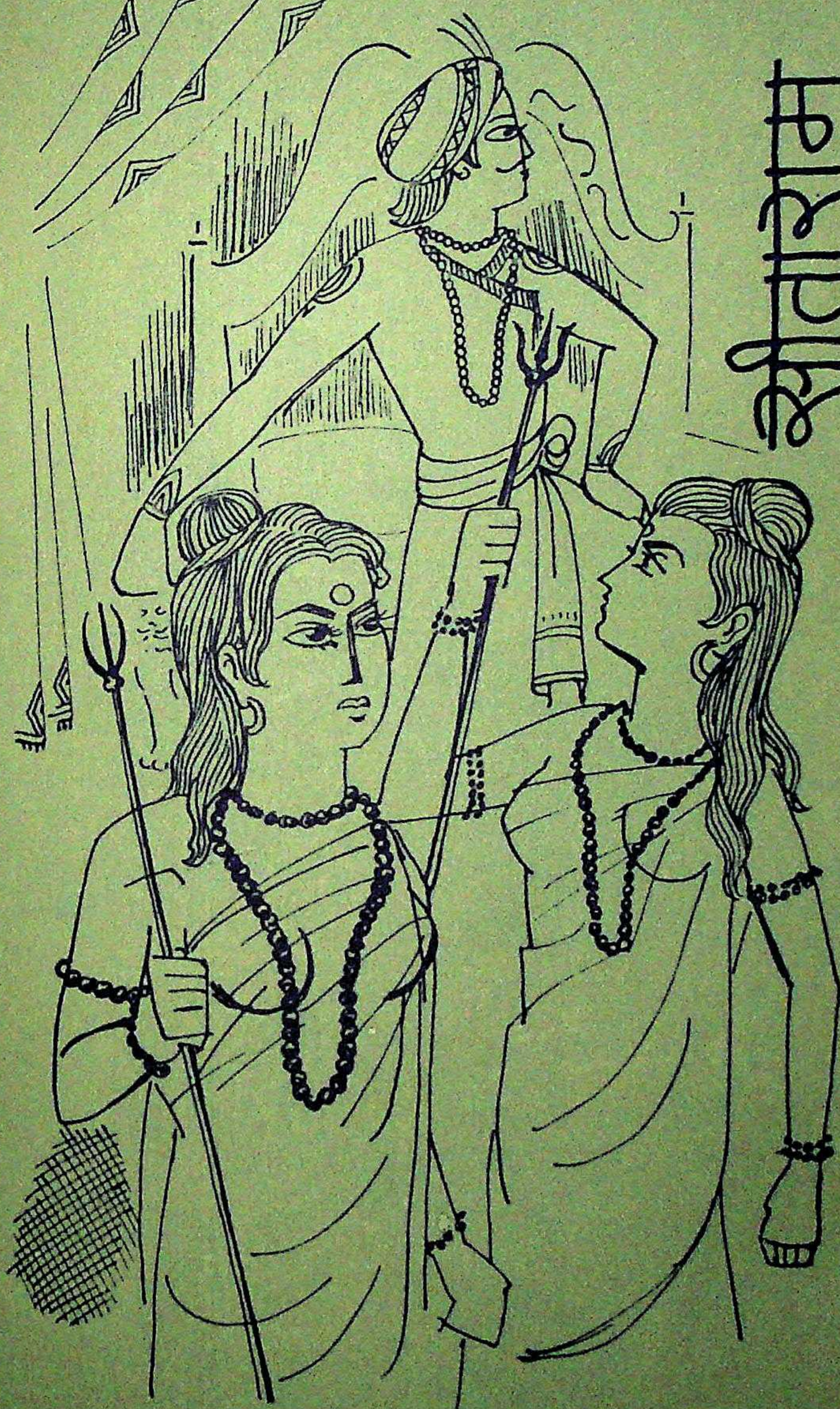
'शत्रु कौन है? शत्रु अब कोई नहीं। अँगरेज मित्र राजा हैं। अब अँगरेजों से युद्ध में विजयी हो, ऐसी शक्ति किसी में नहीं।'

'न रहे; यहीं इस मातृप्रतिमा के सामने देह छोड़ूँगा।'

'अज्ञान में ? चलो, ज्ञान प्राप्त करो, चलो। हिमालय-शिखर पर मातृमन्दिर है, वहाँ से तुम्हें मातृमूर्ति दिखायेंगे।'

यह कह कर महापुरुष ने सत्यानन्द का हाथ पकड़ा। कैसी अपूर्व शोभा ! उस गम्भीर विष्णुमन्दिर में, प्रकाण्ड चतुर्भुज मूर्ति के सामने, क्षीण प्रकाश में, वे महाप्रतिभा-पूर्ण दो पुरुष-मूर्तियाँ शोभित हैं—एक ने दूसरे का हाथ पकड़ा है। किसने किसे पकड़ा है ? ज्ञान ने आकर भक्ति को पकड़ा है—धर्म ने आकर कर्म को पकड़ा है; विसर्जन ने आकर प्रतिष्ठा को पकड़ा है—कल्याणी ने आकर शान्ति को पकड़ा है। ये सत्यानन्द ही शांति हैं, ये महापुरुष ही कल्याणी। सत्यानन्द की प्रतिष्ठा है, महापुरुष विसर्जन।

विसर्जन आकर प्रतिष्ठा को ले गया।


सीताराम

सीताराम

□

[रचनाकाल : सन् १८८७]

□

बंकिमचन्द्र की अन्तिम कथाकृतियों में 'सीताराम' का उल्लेख है।

'सीताराम' की मूल प्रेरणा भी हिन्दू-राष्ट्र का पुनरुज्जीवन ही है।

बंकिमचन्द्र ने 'सीताराम' की भूमिका में लिखा है :

'सीताराम ऐतिहासिक व्यक्ति हैं। लेकिन प्रस्तुत ग्रन्थ में सीताराम की ऐतिहासिकता की पूरी तरह रक्षा नहीं हो सकी है। ग्रन्थ का उद्देश्य भी ऐतिहासिकता नहीं है।'

'सीताराम' को स्वयं बंकिमचन्द्र ने ऐतिहासिक कृति के रूप में अस्वीकार किया है। लेकिन विख्यात इतिहासकार आचार्य यदुनाथ ने बंकिमचन्द्र की इस अस्वीकृति को भी अस्वीकृत किया। उन्होंने लिखा—'बंकिमचन्द्र ने सीताराम नामक राजा के जीवन की घटनाओं को ले कर उस युग के बंगाल की अवस्था का सम्पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया है। उसमें अधिकांश सत्य पर ही आधारित हैं। इसमें प्रजा व शासक के सम्बन्ध, देश की दशा, युद्ध-प्रणाली का बंकिमचन्द्र ने अक्षर-अक्षर सत्य चित्रण किया है। फिर जब सब कुछ सत्य घटनाओं पर ही आधारित है तो इसे ऐतिहासिक कृति ही मानना होगा।'

'सीताराम' एक प्रेरक पात्र है, प्रभावशाली है और अमर।

●

पहला भाग

|१|

गृहिणी

उस जमाने में बङ्गाल में भूषणा नाम की एक नगरी थी। आज कल उसका नाम भूषणो है। जिस समय कलकत्ता नामक छोटे से गाँव की झोपड़ियों में रहने वाले लोग बाघ के डर से रात में घरों से भी नहीं निकलते थे, उस समय भूषणा में एक फौजदार रहते थे। फौजदार वहाँ के गवर्नर थे। आजकल के गवर्नर से उनका वेतन बहुत अधिक था। अतः भूषणा स्थानीय राजधानी थी।

आज से एक सौ-अस्सी बरस पहले एक दिन रात के अंत में भूषणा नगरी की एक तंग गली में, रास्ते पर एक मुसलमान फकीर सोया हुआ था। वह रास्ते में इस तरह टाँग अड़ा कर लेटा था कि कोई आ-जा नहीं सकता था। इसी समय एक आदमी उधर से दौड़ता हुआ आया और रास्ते में फकीर को देख कर विस्मय से खड़ा हो गया।

आदमी हिन्दू जाति का उत्तरराढ़ी कायस्थ, उसका नाम गंगाराम दास। उम्र जवान। गंगाराम बड़ा दुखी था। घर में माँ का अंतिम समय उपस्थित था, इसीलिए वह दौड़ता हुआ वैद्य के घर जा रहा था। देखा सामने रास्ता बंद है।

उन दिनों मुसलमान फकीरों की बड़ी इज्जत थी। स्वयं अकबर बादशाह इसलाम धर्म के कट्टर उपासक न होते हुए भी फकीरों के भक्त थे। हिंदू भी फकीरों का सम्मान करते थे। उनको न मानने वाले भी उनसे डरा करते थे। गंगाराम की यह हिम्मत नहीं हुई कि फकीर को लाँघ कर चला जाय। उसने कहा, 'सलाम शाह साहब, जरा मुझे रास्ता दे दीजिए।'

शाह साहब न तो हिले और न उन्होंने कोई उत्तर दिया। गंगाराम हाथ जोड़ कर बोला, 'अल्लाह आप का भला करेंगे, मैं बड़ी मुसीबत में हूँ। मुझे जाने दीजिए।'

शाह साहब नहीं हिले। गंगाराम हाथ जोड़ कर बहुत गिड़गिड़ाता रहा, आरजू की, मिन्नत की, लेकिन फकीर टस से मस न हुआ। उसने कुछ कहा भी नहीं। हार मान कर गंगाराम उसे लाँघ कर चला गया। लाँघते समय गंगाराम का पैर फकीर की देह से छू गया। शायद फकीर इसी का इंतजार कर रहा था, क्योंकि गंगाराम के चले जाते ही, वह उठ कर काजी के घर की ओर चला।

गंगाराम वैद्य को अपने घर ले आया। वैद्य ने उसकी माँ को देखा, नाड़ी देखी, देख कर दो-चार औषधियाँ बतलायीं। अंत में केवल गंगाजल और तुलसी दल की व्यवस्था दे कर वे चले गये।

मुँह में तुलसी दल ले कर, 'हरिनाम' सुनते-सुनते गंगाराम की माँ परलोक चली गईं। तब माता की अंतिम-क्रिया करने के लिए गंगाराम भाई-बंधुओं को बुलाने गया। पाँच स्वजाति बन्धुओं ने आकर यथाविधि उसकी माता का अंतिम संस्कार सम्पन्न किया।

तीसरे पहर जब गंगाराम माता का संस्कार करने के बाद श्मशान से अपनी बहन तथा भाइयों के साथ घर आ रहा था कि उस समय दो सिपाहियों ने आ कर गंगाराम को पकड़ लिया। सिपाही जाति के डोम थे। उनसे छू जाने पर गंगाराम को बड़ा दुख हुआ। उसने भयभीत हो कर देखा, उसके साथ वही शाह साहब थे। गंगाराम ने पूछा, 'मुझे कहाँ जाना होगा ? क्यों मुझे पकड़ते हो ? मैंने क्या किया है ?'

शाह साहब ने कहा, 'काफिर ! बदबख्त, बेतमीज़ चल।'

सिपाहियों ने कहा, 'चलो।'

एक सिपाही ने गंगाराम को धक्का दे कर गिरा दिया, दूसरे ने उसके ऊपर दो-लाठियाँ जमा दीं। एक गंगाराम को बाँधने लगा, दूसरा उनकी बहन को पकड़ने चला। वह जान ले कर भाग गई। साथ में और-और जो लोग थे, वे सब भीं न जाने कहाँ नौ-दो-ग्यारह हो गए। सिपाही लोग गंगाराम को मारते-मारते काज़ी के पास ले चले। फकीर दाढ़ी हिला-हिला कर हिन्दुओं की दुर्नीति के सम्बन्ध में कुछ अरबी और फारसी शब्दों का उच्चारण करते हुए साथ-साथ चला।

गंगाराम काजी के सामने लाया गया, उसका मुकदमा शुरू हुआ। फरयादी शाह साहब थे, गवाह शाह साहब ही थे और न्यायकर्त्ता भी शाह साहब ही थे। काज़ी साहब उनके लिए आसन छोड़ कर खड़े हो गए। फकीर का बयान समाप्त होने के बाद काज़ी साहब ने कुरान की, अपने चश्मे की और काज़ी साहब की सफेद दाढ़ी की सम्यक् आलोचना करते हुए यह हुक्म सुनाया कि यह आदमी जिंदा ही दफन कर दिया जाय। सभी उस हुक्म को सुन कर काँप उठे। गंगाराम ने सोचा—जो होना था, वह तो हो चुका। अब मरते समय किसका डर।

यह सोच कर उसने शाह साहब के मुँह पर एक लात जमायी। 'तोबा-तोबा' कहते हुए शाह साहब मुँह पर हाथ रख कर फर्श पर गिर पड़े। बूढ़ी उम्र में जो दो-चार

दाँत शाह साहब के मुँह में बचे थे, उन्हें भी मुक्ति मिल गई। सिपाहियों ने दौड़ कर गंगाराम को पकड़ लिया और काजी साहब के हुक्म से उन्होंने गंगाराम के हाथों में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी डाल दी। गालियाँ देते हुए वे उसे कैदखाने में ले गये।

दूसरे दिन वह जिंदा ही दफन कर दिया जायगा!

|२|

जहाँ एक पेड़ के नीचे, सिर के बाल खोले, जमीन पर बैठी हुई, गंगाराम की बहन रो रही थी, वहाँ यह खबर पहुँची। बहन ने सुना कि उसका भाई कल जिंदा ही गाड़ दिया जाय गा। वह उठ बैठी, उसने आँसू पोंछ कर अपने बाल सँवारे।

गंगाराम की बहन श्री की उम्र पचीस वर्ष के लगभग थी, वह गंगाराम से छोटी थी।

घर में अब तक तो गंगाराम, गंगाराम की माँ और श्री के सिवा कोई दूसरा न था। गंगाराम की माँ हरदम बीमार रहा करती थी, इसलिए घर का काम-काज श्री को ही देखना पड़ता था। श्री समझदार तो थी, परन्तु दुर्भाग्यवश अभी तक अपने स्वामी के साथ उसका सहवास नहीं हुआ था।

घर में शालिग्राम की एक मूर्ति थी। शालिग्राम बेचारे इतने छोटे थे कि प्रतिदिन थोड़े से गुड़ से ही उनकी पूजा हो जाया करती थी। श्री और श्री की माँ को विश्वास था कि यही साक्षात् भगवान् हैं। ठाकुरबाड़ी के द्वार पर खड़ी हो कर श्री ने हजारों बार प्रणाम करते हुए हाथ जोड़ कर कहा, 'हे नारायण! हे परमेश्वर! हे दीनबंधु! आज मैं जिस कठिन काम को करने जा रही हूँ, उसमें तुम मेरी सहायता करना। मैं अबला हूँ, अधमरी हूँ! भगवान् तुम रक्षा करना।'

श्री घर से बाहर निकली। एक अधेड़ औरत, जिसको लोग पंचकौड़ी की माँ के नाम से पुकारा करते थे, वह श्री की पड़ोसिन थी। इस पड़ोसिन के साथ इन लोगों की बड़ी घनिष्ठता थी। वह श्री की माँ के बहुत से काम-काज कर दिया करती थी। उसके पास जा कर श्री ने चुपके-चुपके कुछ परामर्श किया, फिर वे दोनों बाहर सड़क पर आईं। गली कूचों को पार करती हुई वे एक रास्ते पर पहुँचीं।

उस जमाने में इतने अधिक कोठे वाले मकान नहीं थे। केवल कहीं-कहीं बड़ी-बड़ी कोठियाँ नजर आती थीं। वे दोनों ऐसे ही एक कोठेवाले मकान के पास आ कर खड़ी हुईं। मकान के सामने एक तालाब था, जिस पर पक्के घाट बने थे। उस समय

उस घाट पर दरबान लोग बैठे थे । कोई भाँग घोंट रहा था, कोई गप्प लड़ा रहा था और कोई अपने साथी से घर की बातें कर रहा था । पंचकौड़ी की माँ ने उन्हीं में से एक आदमी को बुला कर कहा, 'पांड़ेजी ! जरा भण्डारी को बुला दो ।'

दरबान ने कहा, 'मैं पाँड़े नहीं, मैं तो मिसिर हूँ ।'

'अच्छा बेटा, मुझे यह मालूम न था । पाँड़े और मिसिर दोनों को मैं ब्राह्मण समझती हूँ ।' पंचकौड़ी की माँ ने उत्तर दिया ।

'भण्डारी से तुम क्या चाहती हो ?' मिसिर जी ने पूछा ।

'मेरे घर में बहुत-सी तरकारियाँ फली हैं, उसी की खबर देने आई हूँ । आ कर ले जायँ ।'

'अच्छा तुम जाओ, मैं उनसे कह दूँगा ।'

'तुम्हारे कहने से कैसे होगा ?'

'तुम अपना नाम बतलाती जाओ ।'

'तब तुम अभागे ही निकले' पंचकौड़ी की माँ बोली, 'मैंने तो सोचा था कि तुम्हारे लिए भी कुछ तरकारी भेज दूँगी, पर तुम्हारी तकदीर ही फूटी है ।'

'अच्छा खड़ी रहो, मैं भण्डारी को बुला लाता हूँ ।'

गुनगुनाता हुआ मिसिर मकान में चला गया ।

जीवन भण्डारी अधेड़ उम्र का आदमी था । उसकी कमर में बहुत सी चाभियों का गुच्छा लटक रहा था । सिर की बात सुन कर वह बाहर आया । उन दोनों स्त्रियों को देख कर बोला, 'तुम किसे खोज रही हो ?'

पंचकौड़ी की माँ ने कहा, 'मेरे घर में कुछ तरकरियाँ तैयार हुई हैं, इसलिए बुलाया था कि तुम कुछ लो, कुछ दरवान जी को दो और कुछ सरकार में भेजो ।'

'अपने घर का पता बता दो । मैं कल आऊँगा ।' भण्डारी ने जवाब दिया ।

'मेरे साथ एक अनाथ औरत आई है, वह भी कुछ कहना चाहती है ।' पंचकौड़ी की माँ ने कहा ।

श्री लंबा घूँघट काढ़े दीवाल से बिलकुल सटी खड़ी थी, उसकी ओर देख कर जीवन भण्डारी ने रूखे स्वर से कहा, 'मैं हुजूर से भिक्षा-विक्षा का कोई अनुरोध नहीं कर सकता ।'

'यदि कुछ मिले गा तो तुम भी आधा हिस्सा पा जाओगे ।' पंचकौड़ी की माँ ने चुपके से कहा ।

प्रसन्न हो कर भण्डारी ने कहा, 'अच्छा क्या कहती हो ?'

याचकों के लिए इस घर का दरवाजा सदा खुला रहता था । श्री ने उससे कहा कि वह मालिक से मिलना चाहती है । भण्डारी उसे मालिक के पास ले गया ।

भण्डारी श्री को मालिक के पास पहुँचा कर चला गया ।

श्री के मुख पर घूँघट था । मालिक ने उससे पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मेरा नाम श्री है ।'

'श्री ! तब क्या तुम मुझे पहचानती नहीं ? क्या बिना पहचाने ही मेरे पास आयी हो ? मैं सीताराम राय हूँ ।'

तब श्री ने मुख पर से घूँघट हटाया । सीताराम ने देखा, आँखों से आँसू बह रहे हैं । वह मुख वर्षा के जल से धुले हुये कमल की तरह है । उसने कहा, 'श्री ! इतनी सुन्दरी !'

श्री ने कहा, 'मैं बहुत दुखी हूँ । इस समय आप का व्यंग्य करना शोभा नहीं देता ।' श्री रोने लगी ।

सीताराम ने कहा, 'इतने दिनों बाद क्यों आई हो ? और यदि आई हो तो रो क्यों रही हो ?'

श्री रोती ही रही । कुछ उत्तर नहीं दिया । सीताराम ने कहा, 'नजदीक आओ ।'

श्री ने कहा, 'मैं बिछौने पर नहीं बैठ सकती । अशौच है । मेरी माँ मर गई है ।'

'क्या इसी विपदा के कारण मेरे पास आई हो ?'

'नहीं मैं यथाशक्ति उनकी क्रिया-कर्म कर लूँगी, उसके लिए आप को कष्ट नहीं दूँगी । लेकिन मेरे ऊपर एक दूसरी भारी मुसीबत आई हुई हैं ।'

'वह क्या ?'

'मेरा भाई मर रहा है । काजी साहब ने उसे जिन्दा ही दफनाने का हुक्म दिया है । इस समय वह हवालात में है ।'

'क्यों ? उसने क्या अपराध किया ?'

तब श्री ने जो कुछ सुना था और जो कुछ देखा था, सब रोते-रोते कह सुनाया । एक लम्बी साँस ले कर सीताराम ने कहा, 'अब उपाय क्या है ?'

'अब आप ही एक उपाय हैं, इसीलिए इतने वर्षों के बाद आयी हूँ ।'

'मैं क्या करूँ ?'

'आप क्या करेंगे ? फिर और कौन करेगा ? मैं जानती हूँ, आप सब कुछ कर सकते हैं ।'

'यह काजी दिल्ली के बादशाह का नौकर है । भला किसकी हिम्मत है कि दिल्ली के बादशाह से मोरचा ले ?'

'तब क्या कोई उपाय नहीं है ?'

बहुत देर सोच कर सीताराम ने कहा, 'उपाय है । मैं तुम्हारे भाई की जान बचा सकता हूँ, पर मुझे मरना पड़ेगा ।'

'देखिए, देवता सच्चे हैं, धर्म सच्चे है, भगवान् सच्चे हैं । कोई झूठा नहीं ।

दीन दुखियों की रक्षा करने से आप का कभी भी अहित न होगा। हिन्दू को हिन्दू न बचाए गा तो कौन बचाए गा ?'

सीताराम बहुत देर तक सोचते रहें, उसके बाद बोले, 'तुमने सच ही कहा कि हिन्दू को हिन्दू न बचाए गा तो कौन बचाए गा ? मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि गंगाराम को बचाने के लिए यथाशक्ति कुछ उठा न रखूँ गा।

तब प्रसन्न हो कर श्री चली गई।

दरवाजा बन्द कर सीताराम ने नौकर से कहा, 'जब तक मैं दरवाजा न खोलूँ, तब तक मुझे कोई बुलाए नहीं। मन-ही-मन सोचा—श्री रोती थी ! मैं तो जानता न था। पहले श्री का काम करूँ गा, तब कोई और बात हो गी। सोचा—हिंदू को हिंदू न बचाए गा तो कौन बचाए गा ?

|३|

सीताराम के गुरुदेव थे। वे अध्यापकों की तरह रामनामी पहनते थे। सिर के सब बाल मुड़ाये रखते थे, सिर्फ 'रेफ' की तरह एक चुटिया रहती थी। ललाट पर चंदन का लम्बा टीका रहता। इसके सिवा पण्डिताई के और भी सामान थे। उनका नाम चंद्रचूड़ तर्कालंकार था। वे सीताराम के बड़े शुभचिंतक थे। जब जहाँ सीताराम रहते, चंद्रचूड़ भी वहीं रहते। इस समय वे भूषणा में रहते थे। इस जमाने के अध्यापक जो व्याकरण—साहित्य पढ़ाने में जैसे प्रवीण हैं, दङ्गा-फसाद कराने में भी वैसे ही दक्ष हैं। चन्द्रचूड़ भी इसी श्रेणी के व्यक्ति हैं।

कुछ देर के बाद, घर से बाहर निकल कर सीताराम गुरुदेव के घर गये। चंद्रचूड़ के साथ सीताराम की बहुत देर तक बातचीत होती रही। बातचीत का परिणाम यही था कि सीताराम और चंद्रचूड़, दोनों ने उसी रात घर से निकल कर नगर के अनेक आदमियों से भेंट की। रात बीतने पर घर लौट कर सीताराम ने एक आदमी के साथ अपने परिवार को मधुमती के पार भेज दिया।

४

शहर के बाहर एक खूब लम्बी-चौड़ी जगह में गंगाराम को गाड़ने के लिए कब्र तैयार की गई। कैदी के आने के पहले ही वहाँ लोग जमा होने लगे। बिलकुल सुबह जब पेड़ों पर से अंधकार दूर नहीं हुआ था, तारे छिपे नहीं थे—झुण्ड-के-झुण्ड लोग जीते आदमी का दफनाना देखने के लिए आने लगे। एक आदमी की तो जान जा रही है और लोगों के लिए तमाशा बन गया है ! सूर्यदेव के उदय होते-होते सारा मैदान आदमियों से ठसाठस भर गया। शहर की सड़कों और गलियों से लोग चींटियों की तरह चले आ रहे थे। तिल धरने की जगह वहाँ न थी। बहुतेरों ने जो लंगूरों की तरह पेड़ों पर लटक रहे थे, शायद पूँछ न रहने के कारण कुछ उदास थे। शहर के सब कोठे-मकान भरे हुए थे। मैदान में काले नरमुण्डों का समुद्र उमड़ रहा था। कोलाहल मच रहा था—अभी तक कैदी नहीं आया—लोग अधीर हो रहे थे। शोर-गुल, धक्का-धुक्की, बक-झक, मार-पीट शुरू हो गई थी। हिन्दू मुसलमानों को गाली देने लगे और मुसलमान हिन्दुओं को। किसी ने कहा, 'अल्लाह !' किसी ने कहा, 'हरिहर !' किसी ने कहा, 'आज नहीं होगा, लौट चलो।' किसी ने कहा, 'वह देखो आता है।' जो पेड़ों पर चढ़े थे, उन्हें जब और काम न मिला तो पेड़ की पत्तियाँ, फूल और छोटी-छोटी डालियाँ तोड़ कर नीचे खड़े लोगों के सिरों पर फेंकने लगे। नीचे वालों और ऊपर वालों में भीषण लड़ाई छिड़ गई। केवल एक पेड़ के पास ऐसा कुछ गोल-माल नहीं हो रहा था। उसके नीचे अधिक आदमी खड़े न थे। समुद्र के बीच में द्वीप की तरह वह स्थान जन-शून्य था। दो-चार आदमी जो उस पेड़ के नीचे खड़े थे, वे शांत थे। यदि कोई उस पेड़ के नीचे आता था तो वे उसे खदेड़ देते थे। उनके हाथ में लाठियाँ देख कर लोग चुपके से खिसक जाते थे। उस पेड़ के ठीक नीचे खड़ी हो कर ऊपर मुँह किए एक स्त्री पेड़ पर चढ़े हुए किसी आदमी से कुछ कह रही थी। उसकी आँखें सूजी हैं, शरीर के वस्त्र अस्त-व्यस्त हैं—शायद उसने सारी रात रो-कर बिताई है। लेकिन इस समय वह रो नहीं रही थी। जो पेड़ पर चढ़ा था, उससे वह स्त्री कह रही थी, 'महाराज ! कुछ दिखाई दे रहा है ?'

पेड़ पर चढ़े आदमी ने कहा, 'नहीं।'

'तो जान पड़ता है भगवान ने रक्षा की।'

यह स्त्री है श्री। पेड़ पर स्वयं चंद्रचूड़ तर्कालङ्कार चढ़े हैं। पेड़ की डाल उनके लिए कोई उपयुक्त स्थान न था, फिर भी वे समझते थे कि मैं धर्म-पथ पर हूँ। धर्म के लिए सब कुछ करना उचित है।

श्री की बात सुन कर चंद्रचूड़ ने कहा, 'भगवान् अवश्य रक्षा करें गे, मेरा ऐसा

ही विश्वास है। तुम उतावली मत हो। लेकिन जान पड़ता है, अभी तक रक्षा का कोई उपाय नहीं हुआ। देख रहा हूँ बहुत सी लाल पगड़ियाँ आ रही हैं।'

'कैसी लाल पगड़ियाँ ?'

'जान पड़ता है फौजदार के सिपाही हैं।'

सचमुच दो सौ हथियारबन्द फौजदार के सिपाही कतार बाँधे गंगाराम को घेर कर ला रहे थे। लोग चुपचाप खड़े देखते रहे। चंद्रचूड़ जो कुछ देखते जा रहे थे, वह सब श्री को बतलाते जा रहे थे। श्री ने पूछा, 'कितने सिपाही हैं ?'

'करीब दो सौ होंगे।'

'हम लोग तो दीन-दुखिया हैं। हमें मारने के लिए इतने सिपाही क्यों ?'

'मालूम होता है कि अधिक भीड़ देख कर फौजदार ने सतर्कता के ख्याल से इतने सिपाही भेजे हैं।'

'उसके बाद क्या हो रहा है ?'

'सिपाही कतार बाँध कर कब्र के पास खड़े हो गए। बीच में गंगाराम है। उसके पीछे खुद काजी साहब और वह फकीर है।'

'भय्या क्या कर रहे हैं ?'

'पापी उसके हाथ में हथकड़ी और पैरों में बेड़ी पहना रहे हैं ?'

'क्या वे रो रहे हैं ?'

'नहीं, चुपचाप खड़े हैं। वे बड़े गम्भीर और सुन्दर मालूम हो रहे हैं।'

'क्या मैं भी उन्हें एक बार देख नहीं सकती ? जीवन की साध नहीं मिटा सकती ?'

'देखने की तो सुविधा है, नीचे की डाल पर चढ़ कर आ सकती हो ?'

'मैं स्त्री हूँ, पेड़ पर चढ़ना नहीं जानती।'

'क्या यह लजाने का समय है ?'

जड़ से दो हाथ ऊपर एक सीधी डाली थी। वह ऊपर न उठ कर सीधी बाहर चली गयी थी। एक हाथ के बाद वह डाल दो हाथों में बँट गयी थी। इन्हीं दोनों डालों पर पाँव रख कर, पास की एक डाल पकड़ कर खड़े होने की सुविधा थी। चंद्रचूड़ ने उसे श्री को दिखा दिया। लज्जा छोड़ कर श्री ने ऊपर चढ़ने की चेष्टा की। श्मशान में लज्जा नहीं रहती। दो-एक बार चेष्टा करने में जब वह ऊपर नहीं चढ़ सकी तो रोने लगी। उसके बाद न जाने किस कौशल से वह नीचे की उस डाल पर चढ़ कर और पास की दूसरी डाल पकड़ कर खड़ी हो गई।

उससे बड़ा गोलमाल मचा। श्री जहाँ खड़ी थी, उसके सामने कोई आड़ न था। वह असंख्य लोगों के सामने मुँह कर के खड़ी हो गई। सब ने देखा—एक अपूर्व सुन्दरी हरी-हरी पत्तियों के बीच में खड़ी है। चारों ओर से पेड़ की डालियाँ और

उसे घेरे हैं, उसके बालों को पत्ते स्पर्श कर रहे हैं, बाँहों को पत्ते ढँक रहे हैं, छाती पर लटकती हुई लटों को पत्ते छू रहे हैं। छोटी-छोटी टहनियों से उसके पैर ढँक गये हैं। कोई यह देख नहीं रहा है कि यह मूर्तिमती वनदेवी किसके ऊपर खड़ी है। इस दृश्य को देख कर लोग वायु के झोंके में हिलोरें लेते हुए समुद्र की तरह सहसा चंचल हो उठे।

श्री यह सब कुछ जान न सकी। उसे अपनी दशा का ध्यान ही न था। वह टकटकी लगा कर केवल गंगाराम को देख रही थी। उसकी दोनों आँखों में आँसू छलछला रहे थे। इसी समय चंद्रचूड़ ने कहा, 'इधर देखो, घोड़े पर कौन आ रहा है?'

श्री ने उस ओर आँख उठा कर देखा। उस आदमी का ठाट सिपाहियाना था, पर हाथ में कोई हथियार न था। वह एक तेज घोड़े पर सवार था। लेकिन आदमियों की भीड़ पार कर वह आगे नहीं जा सकता था। घोड़ा नाच रहा था, गर्दन हिला रहा था, पर तो भी आगे नहीं बढ़ सकता था। श्री ने पहचान लिया, वह सीताराम हैं।

इधर सिपाहियों ने गंगाराम को कब्र में डालना चाहा, उसी समय दोनों हाथ उठा कर सीताराम ने उन्हें मना किया। सिपाही रुक गये। शाह साहब ने कहा, 'क्या देखते हो, काफिर को गाड़ दो।' काजी साहब कुछ सोच रहे थे। उस समय काजी साहब के वहाँ आने की कोई जरूरत न थी, सिर्फ शौक मिटाने के लिए चले आये थे। और जब आ गए थे, तो वे ही वहाँ के कर्त्ता-धर्त्ता बने थे। उन्होंने कहा, 'जब सीताराम मना कर रहे हैं तब इसकी जरूर कोई वजह होगी। उनके आने तक ठहरो।'

शाह साहब नाराज हो गए। पर उन्हें इंतजार करना ही पड़ा। गंगाराम के मन में एक आशा का संचार हुआ।

सीताराम काजी साहब के पास पहुँचे। घोड़े से उतर कर अत्यंत नम्रता के साथ उन्होंने शाह साहब को सलाम किया, फिर काजी साहब को भी सलाम किया। काजी साहब ने पूछा, 'कहिए राय साहब, मिज़ाज शरीफ!'

'अलहम्दलिल्ला! जनाब के मिज़ाज मुबारक का हाल सुन कर नाचीज को अज़दह खुशी होगी।'

'खुदा जिस तरह गुलाम को रखे, वही ठीक है। बाल सफेद हो चले। मौत भी नज़दीक है। कहिए और सब हाल अच्छा है न?'

'हुजूर के इकबाल से सब अच्छा है।'

'यहाँ इस वक्त कैसे आना हुआ?'

'यह गंगाराम—बदबख्त बदतमीज जो हो, मेरा जाति भाई है। इसलिए हुजूर की खितमत में हाजिर हुआ हूँ कि उसकी जान बक्श दीजिए।'

'यह कैसे मुमकिन है?'

'मेहरबान! आपके लिए कुछ भी गैर-मुमकिन नहीं।'

'खुदा मालिक है। मैं इस बारे में लाचार हूँ।'

'एक हजार अशर्फियाँ जुर्माना दूँगा। उसकी जान बख्श दी जाय।'

काजी साहब ने फकीर के मुख की ओर देखा। फकीर ने गर्दन हिला दी। काजी साहब ने कहा, 'ऐसा नहीं हो सकता।'

'दो हजार अशर्फियाँ दूँगा। मैं हाथ जोड़ता हूँ, कबूल करिये।'

काजी ने फिर फकीर की ओर देखा। फकीर ने मंजूर न किया। सीताराम चार हजार अशर्फियाँ देने को तैयार हुए, पर कोई नतीजा न निकला। सीताराम के पास इससे अधिक न थे। अपने घुटने टेक, हाथ जोड़ कर मिन्नतें कीं। बोले, 'मैं अपनी जर-जमीन सब कुछ देता हूँ।'

काजी साहब ने पूछा, 'यह तुम्हारा कौन है, जिसके लिए तुम सब कुछ देने को तैयार हो ?'

'वह मेरा जो भी हो, उसके लिए मैं अपने प्राण भी देने को तैयार हूँ। सब कुछ दे कर भी दूसरे की जान बचाना हिन्दुओं का धर्म है।'

'हिन्दू-धर्म चाहे जो हो, इसलाम उससे बढ़ कर है। इस आदमी ने एक मुसलमान फकीर का अपमान किया है। इसके लिए काफिर को मरना ही पड़ेगा, इस कुसूर की कोई दूसरी सजा नहीं हो सकती।'

सीताराम घुटने टेक कर गद्गद स्वर से कहने लगे, 'मैं भी काफिर हूँ। क्या मेरी जान ले कर इसका प्रायश्चित नहीं हो सकता। मैं इस कब्र में लेट जाता हूँ, मुझे दफन करा दीजिए। मैं भगवान् का नाम लेते हुए स्वर्ग को चला जाऊंगा। मेरी जान ले कर इस गरीब को छोड़ दीजिए। दुहाई काजी साहब की ! आप का जो अल्लाह है, वही हमारा बैकुण्ठेश्वर है। सबाब कमाइये। मैं अपनी जान देता हूँ, बदले में इसकी जान बख्श दीजिए।'

सीताराम की बात सुन कर नजदीक खड़े हुए हिन्दू जय-जयकार कर उठे। वे ताली बजा कर कह उठे, 'धन्य रामजी ! काजी साहब की जै ! गरीब को छोड़ दीजिए।'

जो दूर थे और बातचीत सुन नहीं सकते थे, वे भी भगवान् की जय कर उठे। बड़ा कोलाहल मच गया। विस्मित हो कर काजी साहब ने सीताराम से पूछा, 'राय साहब, आप क्या कह रहे हैं ? यह आप का कौन है, किसके लिए आप अपनी जान देने को तैयार हैं।'

'यह मेरा शरणागत है। हिंदू-धर्म-शास्त्र की यही आज्ञा है कि प्राण दे कर भी शरणागत की रक्षा करनी चाहिए। राजा शिवि ने अपने शरीर का सब मांस दे कर कबूतर के प्राणों की रक्षा की थी। अतः आप मेरे प्राण ले कर उसे छोड़ दीजिए।'

काजी साहब सीताराम पर कुछ प्रसन्न हुए। काजी साहब शाह साहब को

एकान्त में ले जा कर चुपचाप उनसे कुछ कहने लगे। कहा, 'यह आदमी दस हजार अशर्फियाँ देना चाहता हैं। ले लेने से सरकारी खजाना बढ़ जायगा। क्या दस हजार अशर्फियाँ ले कर इसके बदन को साफ छोड़ा नहीं जा सकता ?'

शाह साहब ने कहा, 'मेरी इच्छा है कि दोनों कब्र में गाड़ दिए जायँ।'

'तोबा तोबा ! मैं यह नहीं कर सकता। सीताराम ने कोई कसूर नहीं किया है। और उस पर वह एक इज्जतदार नेक आदमी है।'

अब तक गंगाराम ने कोई बात नहीं कही थी। मन ही मन वह जानता था कि उसका छुटकारा नहीं हो सकता; लेकिन जब उसने यह देखा कि शाह साहब और काजी साहब एकांत में बातें कर रहे हैं तो उसने हाथ जोड़ कर काजी साहब से कहा, 'मैं नहीं जानता कि हुजूर का ख्याल क्या है, लेकिन गरीब को प्राणरक्षा में उसे भी कुछ कहने का हक है। एक के बदले में दूसरे की जान लेना न्याय नहीं है। मैं सीताराम के प्राण के बदले में अपने प्राण की रक्षा नहीं करना चाहता। यदि आप ऐसा हुक्म देंगे तो मैं हथकड़ी से अपना सर फोड़ लूंगा।' इसी समय भीड़ में किसी ने कहा, 'हथकड़ी से सर फोड़ कर मर जाओ, मुसलमान के हाथ से तो न मरो !'

बोलने वाले स्वयं चन्द्रचूड़ महाराज थे। वे पेड़ पर से उतर कर नजदीक आ गये थे। उसकी बात सुन कर सिपाही उन्हें पकड़ने दौड़े, पर चन्द्रभूषण महाराज को पकड़ना कोई मजाक न था। वे न जाने कहाँ गायब हो गये।

इधर हथकड़ी से सर फोड़ देने की बात सुन कर फकीर को कुछ डर हुआ। कहीं ऐसा न हो कि जिन्दा मनुष्य को दफनाये जाने का दृश्य देखने से वे वंचित रह जाएँ। उन्होंने काजी साहब से कहा, 'हथकड़ी निकलवा दीजिए।'

काजी साहब ने वैसा ही हुक्म दिया। लुहार ने आ कर गंगाराम की हथकड़ियाँ खोल दी। इसमें कुछ गुप्त बात भी थी। बहुत सुबह ही लुहार महोदय को चन्द्रचूड़ महाराज से कुछ रुपये मिल चुके थे।

फकीर ने कहा, 'अब उसे गाड़ देने का हुक्म दे दीजिए।' तब उस लुहार ने कहा, 'हजूर पाँव की बेड़ियाँ भी खोल ली जावें तो ठीक हो। आजकल अच्छा लोहा मिलता नहीं और बदमाश इतने बढ़ गये हैं कि सबके लिए बेड़ी जुटाना मुश्किल हो गया है।' काजी साहब ने हुक्म दिया। बेड़ियाँ भी काट डाली गयीं।

बेड़ियाँ कट जाने पर गंगाराम ने इधर-उधर देखा। तब उसके बाद उसने एक अजीब बात की। करीब ही सीताराम थे। घोड़े का चाबुक उनके हाथ में था। गंगाराम ने लपक कर उनके हाथ से चाबुक छीन ली और छलाँग मार कर वह उसी घोड़े पर चढ़ गया और एक जोर की एड़ लगायी। बस, घोड़ा एक ही छलाँग में कब्र को पार कर, सिपाहियों के ऊपर हो कर भीड़ में घुस गया।

जितनी देर बिजली के चमकने में लगती है, बस उतनी ही देर में यह सब काण्ड

हो गया। गंगाराम की इस अद्भुत चालबाजी को देख कर जनता उत्साह से चिल्ला उठी। सिपाही 'पकड़ो-पकड़ो' कहते हुए पीछे दौड़ने लगे। बड़ा गुल-गपाड़ा मचा। तेज घोड़े के सामने से लोग भागने लगे और गंगाराम को रास्ता मिलता गया। लेकिन सिपाहियों को रास्ता न मिला। उनके सामने झुण्ड बाँध कर लोग खड़े हो जाते थे। तब वे हथियार चला-चला कर रास्ता बनाने लगे।

इसी समय यमदूतों की तरह कितने ही बलिष्ठ हथियारबन्द जवान आ कर उनका रास्ता रोक कर खड़े हो गये। तब और भी सिपाही आये। हथियारबन्द हिन्दू सिपाहियों की संख्या भी बढ़ने लगी। दोनों दलों में मार-काट मच गयी।

यह सब माजरा देख कर क्रोध में काजी साहब ने सीताराम से पूछा, 'यह क्या माजरा हैं ?'

'मैं नहीं जानता।'

'यह सब तुम्हारा ही षड्यंत्र हैं।'

'यदि ऐसा होता तो मैं खाली हाथ आप से मौत की भीख माँगने नहीं आता।'

'अब मैं तुम्हारी नहीं सुनूँ गा। इस कब्र में अब तुम ही दफनाये जाओगे।'

काजी साहब ने लुहार को हुक्म दिया कि सीताराम के हाथ में हथकड़ी और पैर में बेड़ी भर दे। दूसरे आदमी को उसने फौंजदार के पास भेज कर कहलाया कि खुद और अधिक फौज ले कर आवें। लुहार ने सीताराम को पकड़ लिया। पेड़ पर से वनदेवी श्री ने भी यह सब देखा।

इधर गंगाराम बड़े कष्ट से घोड़े को ले कर सुरक्षित बाहर निकल गया। जाते-आते उसने देखा कि लोगों में बड़ी गड़बड़ी मची हुई है और लोग तितर-बितर हो कर भाग रहे हैं। घोड़ा भी डर गया और गगंराम के लिए उसे काबू में रखना मुश्किल हो गया। गंगाराम घोड़े पर चढ़ना नहीं जानता था। घोड़े को सँभालने में वह इतना परेशान था कि उसे और किसी तरफ देखने की फुर्सत न थी। सिर्फ 'मार-मार' की आवाज उसके कानों में आ रही थी।

भीड़ के बाहर आ कर गंगाराम ने घोड़े को छोड़ दिया और मामला क्या है, यह देखने के लिए वह एक बरगद पर चढ़ गया। उसने देखा, बड़ा गोलमाल मचा है, जनता की भीड़ दो भाँगों में बँट गयी है। एक ओर हिन्दू हैं और दूसरी ओर मुसलमान। हिन्दुओं के आगे अनेक ढाल-बरछे वाले हैं और चुने-चुने हिन्दू जवान संख्या में बहुत अधिक हैं। मुसलमान उनके सामने ठहर न सकने के कारण भाग रहे हैं। हिन्दू 'मार-मार' शब्द के नारे लगाते हुए उनका पीछा कर रहें हैं।

उनकी वह 'मार-मार' की ध्वनि आकाश में, दसो दिशाओं में और वन में गूँज रही थी। जो लड़ रहे थे वे भी 'मार-मार' चिल्लाते थे और जो नहीं लड़ रहे थे उनके मुख से भी 'मार-मार' की आवाजें निकलती थीं।

आश्चर्य के साथ गंगाराम ने सुना कि समस्त जनता 'मार-मार' शब्द के साथ 'जय चण्डी जय चण्डी' की पुकार भी कर रही है। 'माता चण्डी आ गई—मारो मारो चंडी देवी की जय,' इत्यादि नारे चारों तरफ गूँज रहे हैं। एकाएक उसने देखा कि एक विशाल वृक्ष के ऊपर हरे-हरे पत्तों से ढँकी हुई डालों पर पैर रखे चंडी की मूर्ति विराजमान है। बायें हाथ से वह एक डाली को पकड़े, दाहिने हाथ से आँचल हिला-हिला कर कह रही है—'मारो, मारो, शत्रुओं को मारो।' आँचल हिल रहा है। खुले हुए केश हवा में बिखर रहे हैं, चंचल पैरों के भार से डालियाँ नाच रही हैं। जैसे सिंहवाहिनी सिंह के ऊपर खड़ी हो कर रणनृत्य करती हैं। क्रोधित हो कर वह देवसेना से कह रही हैं, 'मारो, शत्रुओं को मारो।' उसे उस समय लज्जा नहीं, होश नहीं, विराम नहीं। वह केवल चिल्ला रही है 'मारो देवताओं के शत्रुओं को मानव के शत्रुओं को, हिन्दुओं के शत्रुओं को, मेरे शत्रुओं को।' ऊपर उठी हुई भुजायें कितनी मनोहर हैं! उसके फड़फड़ाते हुए ओठों को, तीव्र कटाक्ष को, पसीने से लथपथ ललाट पर चिपकी लटों की अलौकिक शोभा देख कर हिन्दू जनता चिल्ला रही थी—'मारो मारो—जय चंडी माता की!' गंगाराम ने पहले तो सोचा कि साक्षात् चंडी ही स्वर्गलोक से उतर आयी हैं, फिर उसने पहचाना कि वह श्री है।

इस चंडी के उत्साह से हिन्दुओं ने विजय पायी। हिन्दुओं के उस अपूर्व विक्रम के सामने खड़े होने में असमर्थ हो कर मुसलमान भाग गये। मैदान मुसलमानों से खाली हो गया। गंगाराम ने देखा कि एक लम्बा जवान सीताराम को कन्धे पर लाद कर उसी चंडी की ओर ले चला। उनके पीछे एक आदमी बरछे में शाह साहब के कटे हुए सिर को बेध कर चलने लगा। इसी समय सहसा श्री पेड़ पर से गिर कर मूर्छित हो गई।

गंगाराम भी पेड़ से नीचे उतर आया।

।९।

इसी समय शोर मचा कि तोप-बन्दूक, गोला-बारूद ले कर फौजदार साहब सेना सहित विद्रोहियों का दमन करने आ रहे हैं। तोप-गोले के सामने भाले-बरछे क्या करेंगे? बस देखते-देखते जवानों का दल अदृश्य हो गया। जो वीरपुङ्गव कोलहल मचा रहे थे, वे अब कहने लगे, 'भाई हमने तो पहले ही मना किया था।' कहते हुए वे सब हाँफते हुए अपने घर की ओर भाग चले। जो केवल तमाशबीन थे और युद्ध में जिन्होंने

कोई भाग नहीं लिया था, वे गेहूँ के साथ घुन की भाँति पिस जाने के डर से सीताराम-गंगाराम को गालियाँ देते हुए भागने लगे। थोड़ी ही देर में वह भीड़ गायब हो गई। मैदान पहले की तरह सुनसान नजर आने लगा। उस पेड़ के नीचे केवल रह गए गंगाराम, सीताराम, चन्द्रचूड़ महाराज और मूर्छित श्री।

सीताराम ने गंगाराम से पूछा, 'मेरा घोड़ा चुरा कर तुम ले भागे थे, वह घोड़ा कहाँ है ? उसे बेच तो नहीं डाला ?'

हंस कर गंगाराम ने जवाब दिया, 'जी नहीं, मैदान में छोड़ दिया था, अभी पकड़ कर ला देता हूँ।'

'अच्छी बात है। तो उस पर चढ़ कर फिर एक बार भाग जाओ।'

'आप को छोड़ कर ?'

'अपनी बहन की चिन्ता मत करो।'

'आप को छोड़ कर नहीं जा सकता।'

'तुम बड़ी नदी के उस पार चले जाओ। शामपुर जानते हो न ?'

'जी नहीं !'

'जल्दी से वहाँ जाओ। वहीं मुझसे मुलाकात होगी। नहीं तो तुम्हारा छुटकरा नहीं।'

'मैं आप को छोड़ कर नहीं जाऊँगा।'

तब सीताराम ने त्योरियाँ बदलीं।

सीताराम का यह रूप देख कर गंगाराम डर गया और डर कर घोड़े के पास गया।

इशारा पा कर चन्द्रचूड़ महाराज भी उसके पीछे-पीछे चल दिए। इधर श्री होश में आयीं और वह घूँघट काढ़ कर उठ बैठी। फिर वह इधर-उधर देख कर खड़ी हुई

|६|

सीताराम ने पूछा, 'श्री ! अब तुम कहाँ जाओगी ?'

'मेरे जाने के लिए अब जगह कहाँ है ?

'क्यों, अपनी माँ के घर।'

'वहाँ अब कौन मेरी रक्षा करेगा ?'

'तुम कहाँ जाना चाहती हो ?'

'कहीं नहीं ।'

'तब क्या यहाँ सुनसान मैदान में ही रहोगी ? यहाँ रहना तुम्हारा ठीक नहीं है ।'

'तुम भी दङ्गे में थीं । फौजदार तुम्हें फाँसी दे सकता है या कोई और सजा दे सकता है ।'

'अच्छा ।'

'मैं शामपुर जा रहा हूँ । तुम्हारा भाई भी वहीं जायगा । सम्भव है कि वहीं अपना घर-द्वार बनाये । तुम भी वहीं जाओ । फिर जहाँ जी चाहे चली जाना ।'

'वहाँ किसके साथ जाऊँ ?'

'मैं तुम्हारे साथ आदमी कर देता हूँ ।'

'ऐसा कौन-सा आदमी है, जो सिपाहियों के हाथ से हमारी रक्षा कर सकता है ?'

कुछ सोच कर सीताराम ने कहा, 'तो चलो, मैं ही तुम्हारे साथ चलता हूँ '

श्री सहसा वहीं पर बैठ गयी । कुछ समय तक स्थिर दृष्टि से सीताराम के मुँह की ओर देखती रही । फिर कहा, 'इतने दिनों बाद यह बात क्यों ?'

'यह बतलना अपराध होगा । क्या तुम समझ नहीं गई ?'

'नहीं ! और बिना समझे मैं आप के साथ न जाऊँगी । जब आप ने मेरा त्याग कर दिया तो आप के साथ मैं क्यों जाऊँ ? यदि आप मेरी जान बचाने के लिए यह दया दिखा रहें है तो मैं ऐसी दया नहीं चाहती । मैं आप की विवाहित स्त्री हूँ । आप के सर्वस्व की अधिकारिणी हूँ । मैं केवल आप से दया क्यों लेने लगी ? नहीं स्वामी आप जाइये । मैं नहीं जाऊँगी । आप के बिना जब इतने दिनों गुजर गये तो आज का दिन भी काट लूँगी ।'

'आओ, मैं तुम्हें वह बात समझा दूँ ।'

'क्या समझाइये गा ? मैं सब से पहले सहधर्मिणी हूँ । आप की और भी दो स्त्रियाँ हैं, पर सहधर्मिणी मैं ही हूँ । मैं कुलटा नहीं, जाति-भ्रष्टा नहीं, फिर भी बिना किसी अपराध के आप ने मेरा परित्याग कर दिया । कभी आप ने मेरा अपराध नहीं बताया । बहुत दिनों तक मैं मन-ही-मन सोचती रही । मैं आप के इस अपराध का प्रायश्चित करने के लिए अपना प्राण त्याग दूँगी । मैं आप को पाप से बचाऊँगी । इसलिए जब तक आप मुझे वह कारण बतला नहीं देंगे, मैं यहाँ से नहीं जाऊँगी ।'

'मैं तुम्हें बतला दूँगा, पर पहले तुम यह वादा करो कि उस बात को सुन कर मेरा त्याग नहीं कर दोगी ।'

'भला मैं, और आप का त्याग करूं ?'

'तब वादा करो ।'

'ऐसी कौन-सी बात है ? बिना सुने कैसे वादा करूं ?'

'सुनो, सिपाहियों की बन्दूकों की आवाज सुनाई दे रही है। सिपाही भागने वालों का पीछा कर रहे हैं। अभी भी नगर के बाहर चले जाने का अवसर है। नहीं दोनों मारे जायेंगे।'

तब श्री उठ कर सीताराम के साथ चली गई।

|७|

सीताराम बेखटके नगर के बाहर नदी के किनारे पहुँचे। उनके भागने में बहुत विघ्न पड़े थे, इसलिए रात हो गई। तारों के उजियाले में बालू पर बैठ कर सीताराम ने श्री से पास आ कर बैठने के लिए कहा। श्री आ कर बैठ गई। वे कहने लगे, 'अब तुम जो सुनना चाहती थीं, सुनो। लेकिन न सुनती तो अच्छा था। जब तुम्हारे साथ मेरा विवाह तय हो गया, तब मेरे पिता ने तुम्हारी जन्मपत्री देखने की इच्छा की थी। तुम्हारी जन्मपत्री नहीं थीं, इसीलिए मेरे पिता ने तुम्हारे साथ मेरा विवाह करना अस्वीकार कर दिया था। पर तुम्हें अत्यन्त सुन्दरी देख कर हमारी माता ने अपनी जिद से तुम्हारे साथ मेरा विवाह कर दिया। विवाह के एक महीने बाद एक विख्यात ज्योतिषी मेरे घर आए। उन्होंने हम सब की जन्मपत्रियाँ देखीं। उनकी गणना से मेरे पिता अत्यन्त सन्तुष्ट हुए। उन्होंने उनसे तुम्हरी जन्मपत्री तैयार करने को कहा। वे जन्मपत्री बना कर ले आए और उसे पढ़ कर उन्होंने पिता को सुनाया। उसी दिन से तुम्हें छोड़ दिया गया।'

'क्यों ?'

'तुम्हारी जन्मपत्री में बलवान् चन्द्रमा अपने स्थान यानी कर्क राशि में रह कर शनि का तीस अंश भोग रहा था।'

'इससे क्या होता है ?'

'कहा जाता है कि जिस स्त्री की जन्मपत्री में ऐसे योग हों, वह प्रिय-प्राणहन्त्री[1] यानी अपने पति को मारनेवाली होती है। तुम्हारी जन्मपत्री में इस फल को देख कर तुम त्याग दी गईं।'

---

१. चन्द्रागारे खाग्निभावे कुजस्य स्वेच्छावृत्तिर्ज्ञस्य शिल्पे प्रवीणा।
वाचां पत्युः सद्गुणा भार्गवस्य साध्वो मन्दस्य प्रियप्राण हन्त्री ॥
इति जातकाभरणें।

कुछ देर चुप रह कर सीताराम कहने लगे, 'ज्योतिषी ने मेरे पिता से कहा कि आप इस पुत्र-वधू को त्याग कर पुत्र का दूसरा विवाह करिए, क्योंकि यद्यपि स्त्री के लिए पति ही प्रिय होता है, तथापि जहाँ स्त्री को पति से प्रेम न हो, वहाँ उसके पति के प्रति यह फल संघटित नहीं होगा, उसके किसी अन्य प्रिय व्यक्ति पर घटेगा। अतः आप ऐसी व्यवस्था कीजिए कि आप के पुत्र और पुत्र-वधू में कभी सहवास न हो, प्रेम न हो। पिता जी ने इस परामर्श को अच्छा समझ कर तुम्हें तुम्हारे पिता के घर भेज दिया और मुझे तुम्हारे साथ सहवास न करने की आज्ञा दी। उसी से मुझे तुम्हारा परित्याग करना पड़ा।'

श्री उठ कर खड़ी हो गई। वह कुछ कह कर जाना चाहती थी कि सीताराम ने उसे पकड़ कर बैठा दिया। कहा, 'अभी और भी कुछ कहना बाकी है। जब तक पिता जी जीते थे, तब तक मैं उनके अधीन था।'

'अब आप उनके स्वर्गारोहण के बाद अपने को उनके अधीन नहीं समझते?'

'पिता की आज्ञा तो हमेशा माननी चाहिए। परन्तु पिता यदि अधर्म करने को कहें तो उनकी आज्ञा पालन करने योग्य नहीं है। जो पिता-माता के भी पिता-माता हैं, गुरु के भी गुरु हैं, अधर्म करने से उनका नियम भंग होता है। बिना अपराध स्त्री का त्याग करना घोर अधर्म है। अतः मैं पिता की आज्ञा मान कर अधर्म कर रहा हूँ। मैं शीघ्र ही यह बात तुमसे कहता, परन्तु…'

श्री फिर उठ कर खड़ी हो गई। बोली, 'मेरा परित्याग करने पर भी आप ने मेरे प्रति बहुत दया की है। मेरे भाई की प्राण-रक्षा की है। अब मैं कभी आप को अपना मुँह न दिखाऊँगी। आप कभी मेरा नाम नहीं सुनेंगे। ज्योतिषी महाराज चाहे जो कुछ कहें, स्वामी को छोड़ कर स्त्री के लिए और कोई प्रिय नहीं है। सहवास हो या न हो, स्वामी हीं स्त्रीं के लिए प्रिय है। आप मेरे परम प्रिय हैं, यह बात अब छिपानी उचित नहीं। अब आज से मैं आप से सौ योजन दूर रहूँगी।'

इतना कह कर श्री चली गई। उसने एक बार भी पीछे घूम कर न देखा। सीताराम देख भी नहीं सके कि वह अन्धकार में किस ओर चली गई।

|८|

क्या यह बात सीताराम के मन में फिर से नई हो गई। नहीं, श्री को देख कर याद आ गई। कल पहले-पहल याद आई थी! हाँ और नहीं। सीताराम के साथ श्री का परिचय नहीं हुआ था। विवाह के वाद यदि उसे कुछ देखा भी था तो वह न देखने के ही बराबर था। श्री उस समय एक छोटी सी बालिका थी। उनके बाद सीताराम ने विवाह किया। तपे हुए सोने की तरह सुन्दरी नन्दा के साथ विवाह होने पर भी उनके मन से श्री की याद नहीं गयी। तब पिता ने पुत्र का मनोभाव समझ कर चन्द्रवदनी रमा के साथ पुत्र का विवाह कर दिया। एक तो वसन्त-निकुन्ज आह्लादिनी कल्लोलिनी सरिता थी, दूसरी वर्षा के जल से भरी हुई वेगवती नदी थी। दोनों के प्रवाह के बीच में श्री डूब गई। उसके बाद फिर श्री की याद ही भूल गई।

तो भी सीताराम को श्री की याद आनी चाहिए थी। श्री को याद करना उसे उचित था। परन्तु बहुत से उचित काम ऐसे हैं, जो किसी को याद नहीं पड़ते। जब तक स्मरण का कोई कारण उपस्थित नहीं होता, तब तक स्मरण नहीं आता। जिनके यहाँ रोज हजारों रुपये आते-जाते हैं; पैसे-धेले खोने की परवाह उन्हें नहीं रहती। जिनके एक ओर चन्दा हो, एक ओर रमा, उसे श्री की याद कैसे आये? जिसके एक ओर गंगा वहती हैं, दूसरी ओर यमुना, उसे उस सरस्वती का ख्याल नहीं आता, जो बालू में डूब कर सूख गई हो। रमा सुख है, नन्दा सम्पत्ति है, श्री विपत्ति है। तब सुख और सम्पत्ति के रहते विपत्ति का ध्यान कोई क्यों करे?

फिर भी श्री का चन्द्रमुख, उसके आँसुओं से छलकते हुए दोनों नेत्र आज सीताराम के हृदय को अशान्त करने लगे। क्या यह रूप का मोह था? राम राम! यह नहीं! तब भी उसका रूप, उसका दुख, अपना किया हुआ अपराध—तीनों मिल कर सीताराम के हृदय को मथने लगे। जो हो गया था, उसका एक समझौता होना चाहिए था। शान्त चित्त हो, उचित समय देख, कर्तव्या-कर्तव्य, धर्मा-धर्म का विचार कर, गुरु पुरोहित को बुला कर सीताराम पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने की व्यवस्था लेते, उसके बाद जो भाग्य में बदा होता, वह होता। किन्तु वह सिंहवाहिनी मूर्ति! हाय! ऐसा होना न था!

यही केवल श्री की सिंहवाहिनी मूर्ति ही नहीं थी, जिसे देख कर सीताराम पिघल गए थे। पहली रात को ही श्री को जब उन्होंने देखा, उसी समय उसके मन में यह बात आई कि पिता की आज्ञा का पालन कर के मैं पाप कर रहा हूँ। उसने मन-ही-मन निश्चय किया कि पहले श्री के भाई की प्राण-रक्षा का कोई उपाय करूँगा। उसके बाद नन्दा-रमा को समझा-बुझा कर चंद्रचूड़ महाराज के परामर्श से कोई उपाय सोचूँगा।

परंतु दूसरे दिन की घटनाओं से उसके मन की बात मन ही में रह गई। उमड़ते हुए प्रेम-प्रवाह से बालू का बाँध टूट गया। नन्दा-रमा, चंद्रचूड़ महाराज सब दूर ही रह गए और चित्त में श्री बस गई। अँधेरी रात में श्री के कहीं चले जाने से सीताराम के सिर पर मानो वज्र गिर पड़ा।

सीताराम उठ कर उसी ओर दौड़े, जिस ओर वन में श्री गई थी। पर अंधकार में वह कहीं भी दिखाई नहीं पड़ी। वन में घना अंधकार छाया था। कहीं-कहीं पेड़ की डाली टूट जाने से वहाँ उजेला-सा मालूम होता था। सीताराम उस तरफ जाते, श्री का नाम ले-ले कर पुकारते। सीताराम ने 'श्री-श्री' करते हुए रात बिता दी, पर श्री का कहीं पता नहीं लगा। मन-ही-मन कहने लगे, 'जिसे बुलाता हूँ, वह आती नहीं, जिसे खोजता हूँ, वह मिलती नहीं, जिसे पाया था, उसे खो दिया। अब क्या करूँ? क्या फिर खोजूँ?' इसी प्रकार सीताराम के हृदयसागर में उनके हृदय की अधिकारिणी श्री की रूपमाधुरी हिलोरें मारने लगी। उनके हृदय में श्री के सब गुण जागृत हो उठे। वृक्ष पर जिस चंडी ने अपने अंचल के इशारे से रण में विजय पाई थी, यदि वही श्री सीताराम के अनुकूल हो तो वह क्या नहीं कर सकते?

अकस्मात् सीताराम के मन में एक बात याद आई। उन्होंने श्री के भाई गंगाराम को शामपुर जाने के लिए कहा था। वह वहाँ उनकी राह देख रहा होगा। अतः सीताराम शामपुर पहुँचे और गङ्गाराम से मिल कर उससे पूछा, 'गङ्गाराम, तुम्हारी बहिन कहाँ है?'

विस्मित कण्ठ से गङ्गाराम ने कहा, 'मुझे क्या मालूम?'

उदास कण्ठ से सीताराम ने प्रश्न किया, 'क्या वह यहाँ नहीं आई?'

'नहीं।'

'तुम इसी समय जा कर उसे खोजो। जब तक उसका पता न लगे तब तक मैं यहीं तुम्हारा इन्तजार करूँगा। खर्च लेते जाओ।'

खर्च के लिए रुपये-पैसे ले कर गङ्गाराम श्री की खोज करने चला गया। एक हफ्ते तक वह बड़े ही परिश्रम से उसकी खोज करता रहा, लेकिन कहीं उसका पता न चला। अन्त में बिलकुल हैरान हो कर गङ्गाराम ने सीताराम को खबर दी।

|९|

मधुमती नदी के किनारे शामपुर नामक गाँव में सीताराम की पैतृक सम्पत्ति थी। वहीं आकर सीताराम ने आश्रय लिया। भूषणा में जो दङ्गा हो गया, वह सीता-

राम का ही काम था। भूषणा नगर के अनेक व्यक्ति सीताराम को मानते थे। सीताराम ने रातों-रात उनसे मिल कर दंगे का षड्यन्त्र रचा था। फिर भी पहले वह यही चाहता था कि यदि बिना दङ्गा फसाद के काम पूरा हो जाय तो पहले उसी का इन्तजाम करूँगा। और नहीं तो फिर दङ्गा होने में भी हर्ज नहीं। मुसलमानों के चढ़े हुए मिजाज को जरा ठण्ढा कर देना ही उचित होगा। चन्द्रचूड़ महाराज के विचार तो इस विषय में और बढ़े-चढ़े थे। वे कहते थे कि बिना दो-चार का सिर फोड़े उनका अत्याचार कम न होगा। इसीलिए सीताराम से इशारा न पाने पर भी उन्होंने दङ्गा मचा दिया, परन्तु बात इसमें बहुत बढ़ गई। एक फकीर की हत्या कुछ कम बात न थी। अतः सीताराम ने कुछ दिनों के लिए भूषणा नगरी को छोड़ देने का ही निश्चय किया। और भी बहुत से लोग फौजदारी के डर से भूषणा नगरी को छोड़ कर शामपुर चले आए और सीताराम के आश्रय में रहने लगे। सीताराम के जो कुछ नौकर, चाकर, प्रजा, आचार्य वगैरह वहाँ थे, उन सब को बुला कर सीताराम ने शामपुर में भर लिया। इस तरह छोटा-सा गाँव शामपुर एक घना नगर बन गया।

तब सीताराम नगर बसाने की तैयारी करने लगे। जहाँ अधिक आदमियों का आना-जाना रहता है, वहीं व्यापारी भी आ कर बसते हैं, इसलिए भूषणा से तथा अन्यान्य नगरों से भी दूकानदार, आढ़तिये, महाजन आदि आ-आ कर शामपुर में बसने लगे। धीरे-धीरे उस नगर में हाट, बाजार, गंज, गोला आदि सब बन गए। सीताराम भी खूब धन खर्च कर के नगर की सुन्दरता को बढ़ाने लगे। चारो ओर यह बात फैल गई कि सीताराम हिन्दू राजधानी बसा रहे हैं। यह सुन कर देश-विदेश से वे लोग जो मुसलमानों के अत्याचारों से ऊब कर धर्म रक्षा के लिए हिन्दू राज्य में बसना चाहते थे, वे सब शामपुर में आने लगे। इससे सीताराम की सम्पत्ति भी बढ़ने लगी। उन्होंने अपने रहने के लिए राजमहल की भाँति ऊँचे मकान और देवमन्दिर बनवाये। जगह-जगह सरोवरों पर पक्के घाट बना दिए। चौड़ी सड़कें तैयार हुईं। इस प्रकार से वह नगरी दिनों-दिन समृद्धिशालिनी हो चली। प्रजा ने भी हिन्दू-राज्य बसाने के लिए दिल खोल कर धन देना शुरू किया। जिनके पास धन न था वे तन से सहायता देने लगे।

सीताराम की कार्य-कुशलता और नगरवासियों के हिन्दू-राज्य-स्थापना के उत्साह से कुछ ही समय के अन्दर सब कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न हो गया। परन्तु उन्होंने राजा का नाम ग्रहण नहीं किया। दिल्ली के बादशाह जब तक उन्हें राजा के नाम से घोषित नहीं करते, तब तक राजा की उपाधि वे धारण नहीं कर सकते थे। क्योंकि ऐसा करने से मुसलमान उन्हें विद्रोही बना कर उनको नष्ट करने के लिए उतारू हो जाते। सीताराम इस बात को भली-भाँति जानते थे। अब तक सीताराम ने स्वयं कोई विद्रोहात्मक कार्य नहीं किया था। गङ्गाराम के उद्धार के लिए जो दङ्गा हुआ था,

उसके सम्बन्ध में फौजदार को यह सन्देह करने का कोई कारण न था कि सीताराम ने यह दङ्गा कराया था। अतः अभी तक उन्हें विद्रोही घोषित नहीं किया गया था।

जब उन्होंने राजा की उपाधि धारण नहीं की और पहले की तरह ही दिल्ली को सम्राट् मान कर राजखजाने में मालगुजारी पहुँचाते रहे और मुसलमानों से सद्भाव बनाए रखते हुए अपने राज का नाम भी उन्होंने मुहम्मदपुर रखा, तब उन्हें बागी कैसे समझा जाता ?

फिर भी उनकी प्रजा तथा राज्य की उन्नति देख, उनके यश की ख्याति सुन कर फौजदार तुराब-खाँ बेचैन होने लगे। उसने मन-ही-मन ढूँढ़ कर सीताराम को नेस्तनाबूद कर देने का निश्चय कर लिया। उनके लिए बहाने की कमी कब हो सकती थी ? तुराब खाँ ने सीताराम से यह कहला भेजा कि उसके राज्य में बहुत से फरार और बागी बसे हुए हैं; जिन्हें पकड़ कर वह फौरन भेज दे। यह सुन कर फरारों ने अपने नाम बदल दिए। फौजदार ने नामों की एक सूची भी भेजी थी। उस सूची के अनुसार एक भी नाम और हुलिया का आदमी सीताराम को न मिला। अतः उन्होंने लिख भेजा कि सूची में लिखित नामों का एक भी व्यक्ति उनके राज्य में नहीं है।

धीरे-धीरे बात बढ़ती गई। दोनों एक-दूसरे के मन के भाव को ताड़ गये। सीताराम को उजाड़ने के लिए तुराब खाँ फौज जुटाने लगे। सीताराम ने भी आत्म-रक्षा के लिए मुहम्मदपुर के चारों ओर ऊँची गढ़ी बनवानी शुरू कर दी। प्रजा को वे अस्त्र-विद्या तथा युद्ध-विद्या की शिक्षा भी देने लगे। गुप्त-रीति से उन्होंने सुन्दर वन में अस्त्र इकट्ठे कर लिए।

इन सब कामों में सीताराम के तीन उपयुक्त सहायक थे। इन्हीं तीन व्यक्तियों की सहायता से इतने भारी-भारी काम उन्होंने शीघ्रता के साथ सम्पन्न किये थे। पहले सहायक तो थे चन्द्रचूड़ महाराज। दूसरे सहायक का नाम मृण्मय था और तीसरा सहायक था गंगाराम। बुद्धि में चन्द्रचूड़, बल और साहस में मृण्मय और चलाकी में गंगाराम—इनका मानो जोड़ा ही न था। गंगाराम सीताराम का परम आज्ञाकारी बन कर मुहमम्दपुर में रहता था।

चाँदशाह नाम का एक मुसलमान फकीर भी सीताराम के दरबार में आने-जाने लगा। वह फकीर विद्वान, बुद्धिमान, त्यागी और हिन्दू-मुसलमानों के प्रति समदृष्टि रखने वाला था। सीताराम के साथ उसकी बिशेष घनिष्ठता हो गई थी। वह उसी की राय थी कि नवाब को संतुष्ट रखने के लिए, उसने अपने नगर का नाम मुहम्मदपुर रखा था।

वह फकीर हमेशा आ कर सब को सत्परामर्श दिया करता था।

|१०|

जिस प्रकार सीताराम के तीन परम सहायक थे, उसी तरह उनके इस महान् कार्य में एक बड़ा शत्रु भी था। वह थी उसकी छोटी स्त्री रमा।

रमा छोटे कद की स्त्री थी। जल से धुले हुए जूही-फूल की तरह उसकी कोमल प्रकृति थी। उसके लिए संसार के सभी पदार्थ अगम थे, सभी चीज़ें डरावनी थीं। दंगा-फसाद से रमा बहुत डरती थी। सीताराम के साहस और बल से भी वह बहुत परेशान रहती थी, खास कर मुसलमान बादशाह से उनके विवाद की बात से वह बहुत डरती थी। इस पर रमा ने एक दिन बड़ा भयानक सपना देखा। देखा कि लड़ाई में मुसलमानों की जीत हुई है, वे उसे और सीताराम को पकड़ कर मार रहे हैं। उस दिन से रमा की आँखों के सामने अगणित मुसलमानों की दढ़ियल मूर्तियाँ नाचने लगीं। उनका चिल्लाना रात दिन उसके कानों में सुनाई पड़ने लगा। रमा ने बहुत हठ कर के सीताराम से कहा, 'फौजदार के चरणों में जा कर गिरो, मुसलमान दया कर तुम्हें क्षमा कर देंगे।'

सीताराम ने उसके कहने पर कुछ भी ध्यान न दिया। रमा ने खाना-पीना छोड़ दिया। सीताराम ने रमा को बहुत समझाया कि मैंने मुसलमानों का कुछ नहीं बिगाड़ा है। पर रमा की समझ में कुछ न आया। दिन-रात उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बहती रहती। विरक्त हो कर सीताराम ने रमा के यहाँ आना-जाना भी कम कर दिया, इसलिए बड़ी स्त्री नन्दा का सितारा चमक उठा।

यह देख कर बालिका-बुद्धि रमा को और भी पक्का विश्वास हो गया कि मुसलमानों के साथ विवाद करने से हमारा सत्यानाश हो जाय गा। यह सोच कर रमा सीताराम के पीछे लगी रही, पर जिस ओर रमा रोती-धोती, हाथ जोड़ती, पाँव पकड़ती, उस ओर भूल कर भी सीताराम न जाते। तब जिस राह से सीताराम नन्दा के पास जाते, वहीं कहीं रमा छिपी-छिपी रहती। मौका पा कर झट उन्हें अपने महल में पकड़ ले जाती। उसके बाद वही रोना धोना, हाथ जोड़ना, पैर पकड़ना, झन-झन, पट-पट, कभी आँखों से मूसलाधार सावन की झड़ी, कभी आँधी-पानी आदि शुरू हो जाते। वह सदा एक ही बात की धुन लगाये रहती, 'मुसलमानों के पैरों पर जा गिरो, नहीं तो बड़ी मुसीबत में फँस जाओगे।' यह सुन कर सीताराम का सारा शरीर जल उठता।

उसके बाद जब रमा ने देखा कि मुहम्मदपुर भूषणा से भारी, अधिक गुलजार नगर बन गया और वहाँ का किला, गढ़, तोप-गोले, बारूद और सिपाहियों के झुंड को कवायद करते देखा तो जा कर चारपाई पकड़ ली। प्रतिदिन एक बार उठ कर इष्टि देवता से हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती, 'हे भगवान ! मुहम्मदपुर में आग लगे,

हम मुसलमानों के राज में रह कर कुशल से दिन गुजारे। हमें इस भारी विपदा से उबारो।' सीताराम से मिलने पर भी उनके सामने ही देवता से वह यही प्रार्थना करती। स्वाभाविक था कि रमा अपने इस ग्राचरण से सीताराम की आँखों का काँटा बन गई। उस समय वह मन में सोचते, 'हाय ! इस समय मेरी सहायता के लिए यदि श्री होती ! दिन-रात उसके मन में श्री की याद आने लगी। श्री की याद आने पर न तो रमा का ध्यान होता, न नन्दा का ! लेकिन मन की बात जान कर शायद रमा या नन्दा को दुःख पहुँचे, इसलिए सीताराम श्री का नाम भूल कर भी जबान पर न लाते। पर एक दिन रमा के ऊधम से ऊब कर उन्होंने कहा, 'हाय ! श्री को छोड़ कर मुझे रमा मिली !'

आँसू पोंछते हुए रमा ने कहा, 'तो श्री को ही बुलाओ, कौन तुम्हें मना करता है ?'

ऊँची साँस ले कर सीताराम ने कहा, 'श्री को इस समय कहाँ पाऊँ ?'

यह बात रमा के दिल में चुभ गई। रमा का चाहे जो कुछ अपराध हो लेकिन उसका मूल कारण उसका पति-पुत्र-प्रेम ही था। उन्हें किसी भारी आफत में न फँसना पड़े, इसी चिन्ता से वह व्याकुल रहती थीं। यह बात न थी कि सीताराम यह जानते न थे। यह जान कर भीं सीताराम रमा से खुश न हो सके। दिन रात झन-झन पट-पट से काम में बड़ी बाधा पहुँचती है, बड़ा दुःख होता है। स्त्री-पुरुष में परस्पर प्रेम होना ही दाम्पत्य-सुख नहीं है। पारस्परिक सहृदयता ही वास्तव में दाम्पत्य-सुख है। रमा ने समझा कि बिना अपराध ही मैं स्वामी के स्नेह से वंचित हो गई। सीताराम ने मन-ही-मन सोचा, 'गुरुदेव ! रमा के प्रेम से बचाओ।'

रमा के दोष से सीताराम के हृदय-पट पर अंकित वह चित्र दिन-प्रति दिन उज्ज्वल हो कर चमकने लगा। सीताराम ने संकल्प कर लिया था कि राज्य-स्थापना के सिवा मैं किसी और काम को हृदय में स्थान न दूँगा। लेकिन अब श्री ने धीरे-धीरे उस सिंहासन पर आसन जमा लिया। सीताराम ने मन में सोचा, 'मैंने श्री के प्रति जो अन्याय किया है, उसका दण्ड रमा से पा रहा हूँ। इसके लिए प्रायश्चित्त करना चाहिए।'

परन्तु इस मन्दिर में उस मूर्ति की स्थापना के लिए एकमात्र रमा ही कारण न थी। इसमें नन्दा ने भी कुछ-कुछ सहायता दी थी, लेकिन दूसरे ढंग के। नन्दा को मुसलमानों से कोई भय न था। जब तक सीताराम में साहस है, तब तक नन्दा को इस बात के फेर में पड़ने की कोई जरूरत नहीं। नन्दा सोचती, 'इसकी भलाई-बुराई को सोचने वाले मेरे स्वामी हैं। यदि वे इसे अच्छा समझते हैं, तो मुझे इसके लिए चिन्ता करने का क्या काम ?' इसलिए इन सब बातों की कुछ परवाह न कर नन्दा एकाग्रमन से पति के चरणों की सेवा में लीन रहती। माता का स्नेह, कन्या की भक्ति, दासी की सेवा, सब कुछ सीताराम को नन्दा से मिलता था। किन्तु वह सहधर्मिणी

कहाँ ? जो उनकी आशा थी, हृदय की आकांक्षा थी, कठिन कार्यों में सहायिका थी, संकट में मन्त्रिणी थी, विपत्ति में साहस देने वाली थी, विजय में आनन्दमयी थी, वह कहाँ है ? बैकुण्ठ की लक्ष्मी अच्छी हैं, पर वह रणभूमि की सिंहवाहिनी कहाँ ? इस लिए नन्दा के अधिक प्रेम से भी सीताराम को श्री की ही याद आती। 'मारो, मारो शत्रुओं को, हिन्दुओं के शत्रुओं को, मेरे शत्रुओं को मारो'—हरदम इसी की गूँज कानों में सुनाई पड़ती। सीताराम मन में उस सिंहवाहिनी की भव्य-मूर्ति की पूजा करने लगे।

संसार में प्रीति या मोह के सिवा प्रेम जैसा कोई पदार्थ देखने को नहीं मिलता। ग्रन्थों में जिस प्रेम का वर्णन आया है, वह आकाश-कुसुम की तरह कोई पदार्थ हो सकता है। जान पड़ता है, युवक-युवतियों के मनोरञ्जन के लिए ही कवियों ने इनकी सृष्टि की है, तो भी एक बात तो माननी ही पड़ेगी कि प्रेम या स्नेह जिसका संसार में इतना आदर है—पुरानों के प्रति प्राप्त होता है, नयों के लिए वह पैदा नहीं होता। जिसके साथ बहुत दिन कटे हैं, सुख में, दुख में, सुदिन में, दुर्दिन में, जिसके गुण समझे-बूझे हैं, जिसके साथ सुख-दुःख के बन्धन में बँधे हैं, उसी के प्रति प्रेम पैदा होता है। और नये को तो एक नयी चीज समझ कर ही आदर करते हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और भी है। नये के गुण नहीं जानते पर उनका अनुमान कर सकते हैं। जिसकी जाँच-पड़ताल हो चुकी है, वह एक सीमा के अन्दर है। जिसकी परीक्षा नहीं हुई, उसकी सीमा न देना मन की अवस्था पर निर्भर करता है। इससे कभी-कभी नए में ही असीम गुण दिखाई पड़ता है, इसलिए वासना का दमन करना कठिन हो जाता है।

यदि इसी को प्रेम कहते हैं, तब तो संसार में प्रेम है। इस प्रेम में मादकता भरी रहती है। नये के लिए ही इनका जन्म होता है। उसके प्रवाह में अधिकतर पुराने बह जाते हैं। सीताराम के लिए श्री नयी थी, उनके चित्त पर श्री के इस मादक प्रेम ने अधिकार जमा लिया। उसके प्रवाह में रमा और नन्दा दोनों बह गयीं।

हाय ! नूतन, तुम सुन्दर हो या पुरातन ? तो भी तुम नूतन हो। तुम अनन्त का अंश हो। अनन्त के सम्बन्ध में हम किंचित् मात्र जानते हैं। वही किंचित् मात्र हमारे लिए पुरातन है, और सब अनन्त के अंश नये हैं। हे नूतन ! तुम अनन्त का ही अंश हो। इसलिए तुममें इतनी मादकता है। सीताराम के लिए श्री आज अनन्त का ही एक अंश है।

हाय ! क्या मुझे श्री नहीं मिलेगी ? जिस दिन पुराने को छोड़ दूँगा उसी दिन सब नई चीजें मिलेंगी। अनन्त के सम्मुख खड़ा हो जाऊँगा। आँख बन्द करते ही श्री मिलेगीं। तब तक मन मसोस कर रामनाम जपें। हरिनाम जपने से ही अनन्त की प्राप्ति होगी।

'यही तो वैतरणी है। बिना इसको पार किये क्या ज्वाला शान्त हो सकती है ? मेरी जलन कौन बुझायेगा ?'

खरवाहिनी वैतरणी के बालू पर अकेली खड़ी हो कर श्री यह कह रही थी। पीछे, बहुत दूर नीले मेघ की तरह नीलगिरि की चोटी दिखाई दे रही थी। सामने नीले रंग से भरी वक्रगामिनी नदी चाँद के कण जैसे बालू की राशि के बीच बह रही थी। उस पार काले पत्थर की बनी हुई सीढ़ियों पर सप्त माताओं की प्रस्तर मूर्तियाँ कुछ-कुछ दिखाई पड़ती थीं। इन्द्राणी, मधुर रूपिणी वैष्णवी, कोमारी, ब्रह्माणी, साक्षात् वीभत्स-रूप-धारिणी, यम-प्रसूतिछाया, नानालंकार भूषिता, कम्बु-कण्ठान्दोलित रत्न-हारा, लंबोदरा चीराम्बरा वराहवदना वाराही, विशुष्कास्थिचर्ममात्रावशेषा पलितकेशा, नग्नवेशा खंगमुण्ड-धारिणी भीषण चामुण्डा उस मण्डप में विराज रही हैं। उनके पीछे विष्णु-मण्डप का ऊँचा शिखर नीलाकाश को छू रहा है। उसके बाद नीले पत्थर के ऊँचे स्तम्भ पर पक्षिराज गरुण विराजमान हैं। बहुत दूर पर ललितगिरि और उदयगिरि की विशाल चोटियाँ ऊँचे आकाश तक फैली हैं। इस दृश्य को देख कर श्री बोली, 'हाय ! यहाँ तो वैतरणी है। क्या इसे पार करने से ही मेरी ज्वाला शान्त होगी ?'

यह वह वैतरणी नहीं है—

यमलोक में भयंकर वैतरणी नदी है—

'पहले यमलोक जाओ, तब वह वैतरणी देखने को मिलेगी।'

पीछे से किसी ने श्री की बात का जवाब दिया।

फिर श्री ने देखा, एक संन्यासिनी है। श्री ने कहा—'हे माँ, संन्यासिनी ! यमपुरी वैतरणी के इस पार है या उस पार ?'

संन्यासिनी ने हँस कर कहा, 'वैतरणी को पार कर यमपुरी पहुँचना है। क्यों बेटी, यह बात क्यों पूछ रही हो ? क्या तुम इस पार यम-यंत्रणा भोग रही हो ?'

'जान पड़ता है, दोनों पार में यन्त्रणा है।'

'नहीं बेटी, सब यन्त्रणा इसी पार है, उस पार जो यन्त्रणा की बात सुनती हो, उसे हम लोग इस पार से ले जाते हैं। हम लोग इस जन्म के सञ्चित पापों की गठरी बाँध कर बिना खेवा-खर्च के वैतरणी के उस पार ले जाते हैं। उसके बाद यमलोक में जा गठरी को खोल कर उसी ऐश्वर्य का मजे में भोग करते हैं।'

'क्यों माँ, उस गठरी को इसी पार रख छोड़ने का कोई उपाय है ? अगर हो तो मुझे बतलाओ। मैं जल्दी से उसे यहीं छोड़ कर दिन रहते उस पार चली जाऊँगी, रात करने की कोई जरूरत नहीं।'

'इतनी जल्दी क्यों है, बेटी ! अभी तो सबेरा ही है।'

'सबेरा होने से क्या ? आँधी आ जायगी ?'

संन्यासिनी के जीवन में अभी तूफान नहीं आया था—अभी उसकी कच्ची उमर थी। इसलिए उससे श्री को यह बात करने का साहस हुआ। संन्यासिनी ने भी वैसा ही उत्तर दिया, 'तूफान का डर क्यों कर रही है ? क्या तुम्हारा माँझी पक्का नहीं है ?'

'पक्का माँझी है तो, पर उसकी नाव पर चढ़ी ही नहीं। क्यों मैं उसकी नाव भारी करने जाऊँ ?'

'क्या उसी की खोज करने वैतरणी के तीर पर आ कर बैठी हो ?'

'अभी और पक्का माँझी खोजने जाती हूँ। सुनती हूँ, श्री क्षेत्र में जो विराजमान हैं, यहीं उस पार ले जाने वाले पक्के माँझी हैं।'

'मैं भी उसी माँझी को खोजने जा रही हूँ। चलो, दोनों साथ ही चलें। लेकिन आज तुम अकेली क्यों हो ? उस दिन सुवर्ण रेखा के तीर पर तुम्हें देखा था, उस समय तुम्हारे साथ बहुत आदमी थे। आज अकेली क्यों हो ?'

'मेरा कोई नहीं है, अर्थात् कहने को तो मेरे बहुत हैं, परन्तु इच्छा से ही मैंने सब को त्याग दिया है। मैं यात्रियों के एक दल के साथ श्री क्षेत्र जाती थी। लेकिन उस दल के साथ जो पण्डा महाराज थे, अपने प्रति उनकी कुछ कृपा-दृष्टि के लक्षण देख किसी अनिष्ट की संभावना से कल रात को ही उस दल से बाहर निकल आई।'

'अब ?'

'अब वैतरणी के तीर पर आ कर सोच रही हूँ कि दो बार पार जाने की जरूरत नहीं, एक बार ही अच्छा है। पानी खूब है।'

'यह बात तो हम-तुम दोनों दो दिन विचार कर के ठीक कर सकती हैं। उसके बाद जो निश्चित हो, वही करना। वैतरणी तो तुम्हारे डर से भाग नहीं जायगी। कहो, मेरे साथ चलोगी ?'

श्री का मन झुका। पास में एक पैसे की भी पूँजी न थी। जब से वह दल को छोड़ आई थी, तब से मुँह में एक दाना भी नहीं गया था। श्री सोचती थी कि भिक्षा तथा मृत्यु के सिवा और कोई उपाय नहीं है। उसे जान पड़ा कि संन्यासिनी के साथ जाने से शायद कोई और उपाय सूझे। पर इसमें भी सन्देह हुआ। उसने संन्यासिनी से पूछा, 'क्यों माँ, मैं एक बात पूछती हूँ, तुम अपने दिन कैसे गुजारती हो ?'

'भिक्षा से।'

'मैं तो यह नहीं कर सकती। उससे तो वैतरणी ही सहज जान पड़ती है।'

'तुम्हें भीख नहीं माँगनी पड़ेगी। मैं तुम्हारे लिए भीख माँग लाऊँगी।'

'तुम भी तो मेरी ही उम्र की हो, न मुझसे बड़ी हो, न छोटी। तुम्हारा इतना सुन्दर रूप है।'

संन्यासिनी का रूप बड़ा सुन्दर था। वह श्री से भी अधिक सुन्दरी थी। लेकिन रूप को छिपाने के लिए मुँह पर विभूति रमा ली थी। इससे उल्टा ही फल हो गया था। घिसे हुए फानूस के अन्दर जलती हुई रोशनी की तरह उसके रूप की ज्योति और भी चमक उठी थी।

श्री की बातें सुन कर संन्यासिनी ने कहा, 'हम उदासीन, संसारत्यागी हैं, हमें किसी का डर नहीं। धर्म हमारी रक्षा करेगा।'

'अच्छा यही सही, तुम संन्यासिनी हो, इसलिए निडर हो। किन्तु बेलपत्र के कीट की भाँति मैं तुम्हारे साथ कैसे घूमूँगी तुम लोगों से क्या कह कर मेरा परिचय दोगी? क्या तुम कहोगी कि यह उड़ कर मेरे शरीर पर बैठ गई है?'

संन्यासिनी हँसी। बादलों से घिरा हुआ आकाश जैसे बिजली के प्रकाश से चमक उठता है, उसी तरह होंठों पर की हँसी से भस्माच्छादित वह रूप-माधुरी प्रकाशित हो उठी। संन्यासिनी ने कहा, 'तुम भी क्यों नहीं यही वेष धारण कर लेतीं?'

श्री सिहर उठी, बोली, 'यह क्या! मैं संन्यासिनी होने क्यों लगी?'

'मैं संन्यासिनी होने को नहीं कहती। तुम कहती हो कि तुमने सब कुछ का त्याग कर दिया है! यदि तुम्हारे चित्त में पाप नहीं है, तो संन्यासिनी होने में क्या दोष है? अच्छा, इस समय इसे जाने दो, मैं तुम्हें अभी ऐसा करने को नहीं कहती। इस समय यह बनावटी वेष धारण कर लो, इसमें कोई दोष नहीं है?'

'सिर तो मुड़वाना होगा? मैं सधवा हूँ।'

'तुम देख रही हो, मैंने तो सिर नहीं मुड़ाया है।'

'जटा बढ़ा ली है न?'

'नहीं, यह भी नहीं किया है। बालों में कभी तेल नहीं लगाती। माथे में विभूति मलती हूँ। उसी से लटें बँध गई हैं।'

'इच्छा होती है कि तेल लगा कर तुम्हारे बालों को सँवार दूँ।'

'यह तो दूसरे जन्म में होगा, यदि मानव देह पाऊँ तो। कहो, अब तुम्हें संन्यासिनी बनाऊँ?'

'क्या माथे में विभूति लगाने से ही संन्यासिनी बन जाऊँ गी?

'नहीं, मेरी इस झोली में गेरुआ वस्त्र, रुद्राक्ष, विभूति—सब कुछ हैं। मैं तुम्हें दूँगी।'

कुछ आनाकानी करने के बाद श्री राजी हो गई। अब एकान्त में एक पेड़ के नीचे ले जा कर उस सुन्दरी संन्यासिनी ने श्री को रूपवती संन्यासिनी बना दिया। बालों में विभूति लगा दी, शरीर पर गेरुआ वस्त्र पहना दिया। गले और बाहों में रुद्राक्ष की

मालाएँ पहनाईं। सारे शरीर में विभूति लपेट दी। ललाट पर एक चन्दन का टीका लगा दिया। उसके बाद संसार-विजयाकांक्षी वसन्त और कामदेव की तरह दोनों ने यात्रा की। वैतरणी के पार हो उस दिन एक मन्दिर की धर्मशाला में दोनों ने रात बिताई!

| १२ |

दूसरे दिन सबेरे उठ कर स्रोतानदी के जल में स्नान कर, श्री और संन्यासिनी दोनों रुद्राक्ष पहिन और विभूति मल कर जलते हुए दीप की तरह श्री क्षेत्र के मार्ग को प्रकाशित करती हुई चलीं। उस देश के लोग सदा ही उस मार्ग से तरह-तरह के यात्रियों को आते-जाते देखते थे, लेकिन कभी किसी को देख कर उन्हें आश्चर्य नहीं होता था। आज इन दोनों को देख कर उन्हें विस्मय हुआ। किसी ने कहा, 'अहा, क्या सुन्दर स्त्रियाँ जा रही हैं।' किसी ने कहा, 'देवियाँ हैं।' किसी ने आ कर प्रणाम किया। किसी ने धन-दौलत का वरदान माँगा। एक पण्डित जी ने सब को मना कर कहा—'इनसे बोलो मत। जान पड़ता है रुक्मिणी, सत्यभाभा शरीर धारण कर तीर्थ स्थानों के दर्शन करने जा रही हैं।' दूसरों ने सोचा—'रुक्मिणी और सत्यभामा तो श्री क्षेत्र में ही हैं, उनका जाना सम्भव नहीं, अतः हो-न-हो ये श्री राधिका और चन्द्रावली हैं। अपने को गोप-कन्या समझ पैदल ही जा रही हैं।' ऐसा निश्चय कर एक दुष्टा स्त्री ने कहा, 'अच्छा जाओ, वहीं सुभद्रा हैं, मार कर तुम्हारी हड्डी-हड्डी अलग कर देंगी।'

इधर राधिका और चन्द्रावली आपस में बातचीत करती हुई जा रही थीं। बहुत दिनों से संन्यासिनी को कोई संगिनी नहीं मिली थी, आज अपनी ही उमर की एक और संन्यासिन पा कर वह कुछ प्रसन्न थी। अभी उसका जीवन स्रोत तो सूख नहीं गया था, लेकिन श्री का सूख गया था। क्यों नहीं, श्री जानती थी कि दुःख क्या है, परन्तु वैरागिनी—संन्यासिनी को किसी बात का दुःख नहीं था। उन दोनों में जो बात-चीत हो रही थी, उनमें से केवल दो बातें ही महत्वपूर्ण हैं।

संन्यासिनी ने कहा, 'तुम कहती हो, तुम्हारे स्वामी हैं। वे तुम्हें ले कर फिर घर-गृहस्थी करने को इच्छुक हैं। तुमसे मैंने यह पूछा कि तब क्यों तुमने घर छोड़ दिया? यद्यपि, तुम्हारे घर की बात जान कर मैं क्या करूँगी, तो भी क्या मैं पूछ सकती हूँ कि कभी घर लौट जाने की तुम्हारी इच्छा होती है या नहीं?'

'क्या तुम हाथ देखना जानती हो?'

'नहीं, क्या देख कर मुझे यह जानना होगा ?'

'नहीं तुम्हें हाथ दिखा, तुमसे एक बात पूछ कर तुम्हारे सवाल का जवाब देती ।'

'मैं हाथ देखना नहीं जानती, लेकिन मैं तुम्हें एक ऐसे आदमी के पास ले जा सकती हूँ जो और विद्याओं की अपेक्षा इसमें विशेष अनुभवी है ।'

'वे कहाँ रहते हैं ?'

'ललितागिरि की एक गुफा में एक योगी रहते हैं, मैं उनकी बात कर रही हूँ ।'

'ललितागिरि कहाँ है ?'

'चेष्टा करने से हम लोग वहाँ आज शाम तक पहुँच सकती हैं ।'

'तो चलो ।'

उसके बाद दोनों जल्दी-जल्दी चलने लगीं । कोई ज्योतिषी देखता तो कहता कि आज बृहस्पति और शुक्र दोनों एक राशि में हो कर शीघ्र गति से जा रहे हैं ।

|१३|

एक ओर उदयगिरी है, दूसरी ओर ललितागिरि है । बीच में कलकल निनादिनी विरूपा नदी स्वच्छ नीले जल को ले कर समुद्र की ओर जा रही है । दोनों पहाड़ों की चोटियों पर चढ़ने से नीचे हजारों ताड़ के पेड़ों से शोभित, हरे हरे धान के खेतों से चित्रित पृथ्वी की मनोहारिणी सुन्दरता देखने में आती है । माँ की गोदी में चढ़ कर बच्चा जिस प्रकार अपनी माँ को सर्वाङ्ग सुन्दरी देखता है, आदमी भी पर्वत पर चढ़ कर उसी प्रकार पृथ्वी को देखते हैं । उदयगिरि (वर्तमान आलति गिरि) वृक्ष-समूह से परिपूर्ण है, पर ललितागिरि (वर्तमान नालति गिरि) पर एक भी पेड़ नहीं है, केवल पत्थर-हीं-पत्थर हैं । किसी समय इसका शिखर एवं आस-पास का प्रदेश अट्टालिका, स्तूपों और बौद्ध मंदिरों से शोभित था । इस समय इसके शिखर पर चन्दन के पेड़, कुछ मिट्टी से ढँके हुए घरों के भग्नावशेष, ईंट, पत्थर और सुन्दर पत्थर की मूर्तियाँ हैं । उनमें से यदि दो-चार कलकत्ते की बड़ी-बड़ी इमारतों में रख दी जायँ, तो कलकत्ता की शोभा और भी बढ़ जाय । हाय ! आज हिन्दू इंडस्ट्रियल स्कूलों में मूर्ति गढ़ना सीखते हैं । कुमार-सम्भव को छोड़ कर स्वाईनबन पढ़ते हैं, गीता को छोड़ कर मिल पढ़ते हैं और उड़ीसा की शिल्प विद्या को छोड़ कर साहब के चीनी-मिट्टी के खिलौनों को देख कर वाह-वाह कहते हैं । कह नहीं सकता, हमारे कपाल में और न जाने क्या-क्या लिखा है ।

जो कुछ मैं देखता हूँ, वही मैं लिखता हूँ। ललितागिरि की याद मेरे मन में बहुत दिनों तक रहेगी। चारों ओर कई कोसों में हल्दी रंग के धान के खेत ऐसे जान पड़ते हैं मानो माँ वसुन्धरा पीताम्बर की साड़ी पहने हैं। उनके अलंकारों की तरह हजार-हजार ताड़ के वृक्ष हैं। नील सलिला निरूपा नदी नीले-पीले फूलों से भरे हरे-हरे धान के खेतों के बीच से बह रही है। मानों सुन्दर गलीचों पर किसी ने नदी का चित्र अङ्कित कर दिया है। चारों ओर स्वर्गगत महात्माओं की महान् कीर्ति फैल रही है। जिन्होंने पत्थरों पर ऐसी सुन्दर पालिश की है, वे क्या हमारी ही तरह हिन्दू थे? बिना जोड़ के ही जिन्होंने एक को एक में बाँध दिया है, क्या वे हमारे ही तरह हिन्दू थे? जिन्होंने पुष्पमालालंकार-भूषित, सर्वाङ्ग सुन्दर, पत्थर की मूर्तियाँ गढ़ी हैं, क्या वे हमारी ही तरह हिन्दू थे?—

तन्वी श्यामा शिखरिदशना पक्वबिम्बाधरोष्ठी
मध्ये क्षामा चकितहरिणी प्रेक्षणा निम्नानाभिः—

इस प्रकार की सुन्दर स्त्रियों की मूर्तियाँ जिन्होंने गढ़ी हैं, वे कैसे हिन्दू थे? इसी समय याद आता है, हिन्दू क्या थे? इसी समय याद पड़ता है कि जिन हिन्दुओं की कीर्ति उपनिषद्, गीता, रामायण, महाभारत, कुमारसम्भव, शकुन्तला, पाणिनि, कात्यायन, सांख्य, पातञ्जल, वेदान्त वैशेषिक आदि हैं, उनके सामने पत्थर की मूर्तियों की कौन गिनती? इस समय समझता हूँ, हिन्दू कुल में जन्म ले कर मेरा जीवन सार्थक हो गया।

उसी ललितागिरि के चरण-तल में विरूपा नदी के किनारे उस पहाड़ में हस्ति गुफा नामक एक गुफा थी। यह मैं क्यों कहता हूँ कि एक गुफा थी? क्या पर्वत के अंग-प्रत्यंग भी कभी लोप होते हैं? हाँ, काल पा कर वे भी लोप हो जाते हैं, इस समय वह गुफा नहीं है। ऊपर की छत टूट कर गिर पड़ी है, खम्भे टूटे गये हैं। वहाँ अब घास-पात जम रही है। सब कुछ तो इस समय लोप हो गया है, तो गुफा के लिए दुःख करने से क्या होगा?

परन्तु गुफा बड़ी सुन्दर थी। पहाड़ में खोदे हुए खम्भे और दीवारें बड़ी सुन्दर दिखाई पड़ती थीं। चारों ओर दीवारों में सुन्दर-सुन्दर नर-मूर्तियाँ खोदी हुई थीं। उसमें से दो-चार आज तक भी हैं, लेकिन उनके रंग उड़ गये हैं, किसी की नाक टूटी है, किसी के हाथ नहीं है, किसी के पैर टूट गये हैं। आजकल के हिन्दुओं की तरह वे मूर्तियाँ भी अङ्गहीन हो गई हैं।

गुफा की यह दुर्दशा आजकल ही हुई है। जिस समय की बात मैं कह रहा हूँ उस समय उनकी ऐसी दशा न थी। पूरी गुफा थी, कहीं टूटा-फूटा न था। उसी के भीतर परमयोगी महात्मा गंगाधर स्वामी रहते थे।

यथासमय वह संन्यासिनी श्री को ले कर वहाँ उपस्थित हुई। उस समय गङ्गाधर

स्वामी ध्यान में मग्न थे। इसलिए बिना कुछ बोले-चाले उन दोनों ने उस गुफा में ही सो कर रात बितायी।

प्रातःकाल ध्यान टूटने पर गङ्गाधर स्वामी विरूपा में स्नान कर नित्य-क्रिया से निवृत्त हुए। उनके लौटने पर संन्यासिनी ने उन्हें प्रणाम कर उनकी चरण-धूलि ली। श्री ने भी वैसा ही किया।

गङ्गाधर स्वामी ने उस समय भी श्री से कुछ बात न की। वे केवल संन्यासिनी से ही बातचीत करते रहे। दुर्भाग्यवश बातचीत संस्कृत भाषा में होती थी। उसका एक शब्द भी श्री की समझ में नहीं आया।

स्वामी जी ने पूछा, 'यह स्त्री कौन है?'

संन्यासिनी बोली, 'यात्री।'

'यहाँ क्यों?'

'भविष्य के फेर में पड़ी है। आप को हाथ दिखाने आई है। धर्मानुसार उसके लिए कुछ आदेश कीजिये।'

तब श्री ने पास आ कर फिर प्रणाम किया। उसके मुंह की ओर देख कर स्वामी ने हिन्दी में कहा, 'तुम्हारी कर्क राशि है।'꙳

श्री चुप रही।

'पुष्य नक्षत्र के चन्द्रमा में तुम्हारा जन्म है।'

श्री चुप रही।

'गुफा से बाहर आओ तुम्हारा हाथ देखूँगा।'

तब श्री को बाहर ला कर स्वामी ने बायें हाथ की सब रेखायें बड़े ध्यान से देखी। खड़िया से लिख कर उन्होंने जन्म, दिन, वार, तिथि, दण्ड, फल—सब का निरूपण किया। उसके बाद जन्मकुण्डली बना कर, गुफा में से ताड़-पत्र पर लिखित एक प्राचीन पत्र निकाल बारह भागों में ग्रहों का शुभाशुभ देखा। उसके बाद श्री से कहा, 'तुम्हारे लग्न में अपने स्थान से पूर्ण चन्द्रमा है और सप्तम में बुध, बृहस्पति, शुक्र ये तीन शुभ ग्रह हैं। बेटी, तुम संन्यासिनी क्यों हो, तुम तो राजमहिषी हो?'

'सुना है मेरे स्वामी राजा हुए, लेकिन मैंने देखा नहीं।'

'तुम देखो गी नहीं। यह सप्तम के बृहस्पति नीचे है और तीनों शुभ ग्रह पाप-ग्रह के क्षेत्र ⊙ में पाप देख रहे हैं? तुम्हारे भाग्य में राज्य-भोग नहीं लिखा है।'

꙳ परकनकशरीरो देवनम्रप्रकाश्यो
भवति विपुलवक्षाः कर्कटो यस्य राशिः।—कोष्ठीप्रदीपे।
इस प्रकार लग्नादि देख कर ज्योतिषी लोग राशि व नक्षत्र का निर्णय करते हैं।

⊙ मकर

श्री की समझ में कुछ नहीं आया, वह चुप रही। थोड़ी देर के बाद पूछा, 'स्वामीजी और भी कुछ दुर्भाग्य देख रहे हैं ?'

'शनि के तो अंश में चन्द्रमा हैं।'

'उससे क्या होता है ?'

'तुम अपने प्रिय की प्राण-हन्त्री होगी।'

अब श्री बैठी न रही। उठ कर चली। स्वामी ने उसे इशारे से बुला कर कहा, 'ठहरो, तुम्हारे भाग्य में एक परम पुण्य लिखा है। अभी तक उसका समय नहीं आया है। समय आने पर स्वामी के दर्शन करने जाना।'

'वह समय कब आएगा ?'

'इस समय उसे कह नहीं सकता। बहुत गिनने की आवश्यकता है, और वह समय निकट भी नहीं है। तुम कहाँ जा रही हो ?'

'पुरुषोत्तम के दर्शन करने की इच्छा है।'

'जाओ; किसी आगामी वर्ष में मेरे पास आना। तब वह समय ठीक-ठीक गिन-कर बतला दूँगा।'

उसके बाद स्वामी ने संन्यासिनी से भी कहा, 'तुम भी आना।'

गंगाधर स्वामी बातचीत बन्द कर ध्यान-मग्न हो गए। दोनों सन्यासिनियाँ उन्हें प्रणाम कर गुफा के बाहर आईं।

|१४|

फिर वे दोनों सन्यानिसी मूर्त्तियाँ उड़ीसा के राज-पथ से पुरुषोत्तम की ओर चलीं। रास्ते में खड़े हो कर लोग उन्हें देखने लगे। किसी ने आ कर उनके पैरों पर गिर कर कहा, 'माँ, मेरे सिर पर अपने चरण रखो।' किसी ने कहा, 'माँ, जरा खड़ी हो कर मेरे दुःख की बात सुन लो।' 'यथासम्भव उत्तरों से सबको प्रसन्न करती हुई दोनों सुन्दरियाँ चली जा रही थीं। तेज चलती हुई श्री को धीरे-धीरे चलने के लिए संन्यासिनी ने कहा, 'बहिन, जरा धीरे-धीरे चलो, दौड़ने से क्या कपाल का लिखा मिट जायगा ?'

संन्यासिनी की प्यारी बोली सुन कर श्री को कुछ सान्त्वना मिली। दो दिन संन्यासिनी के साथ रह कर श्री उसे प्यार करने लग गई थी। दो दिन तो उसे माता कह कर बात करती थी। क्यों नहीं संन्यासिनी श्री के लिए पूजनीय थी। संन्यासिनी

उसे बेटी कहती थी। अब संन्यासिनी ने वह सम्बोधन छोड़ कर बहिन सम्बोधन किया। तब श्री समझ गई कि संन्यासिनी भी उसे प्यार करती है। श्री धीरे-धीरे चलने लगी।

संन्यासिनी कहने लगी, 'अब तुम्हें बेटी सम्बोधन करना जचता नहीं। हम दोनों एक ही उमर की हैं, हम दोनों बहिन हैं।'

'तुमने भी क्या मेरी ही तरह दुःख से घर-बार छोड़ा है ?'

'मेरे दुःख-सुख नहीं, न वैसा दुर्भाग्य ही है। तुम्हारे दुःख की कहानी सुनूँगी लेकिन अभी नहीं। अब तक मैंने तुम्हारा नाम भी नहीं पूछा, क्या कह कर तुम्हें पुकारूँ।'

'मेरा नाम श्री है। तुम्हें क्या कह कर पुकारूँ ?'

'मेरा नाम जयन्ती है। मुझे मेरे ही नाम से पुकारना। इस समय मैं तुमसे पूछ रही हूँ कि जो कुछ स्वामी ने कहा है, उसे सुन लिया है न ? जान पड़ता है, अब लौट जाने की तुम्हारी इच्छा नहीं है। दिन काटने के लिए भी और उपाय नहीं है ? क्या कभी सोचा है कि दिन कैसे कटेंगे ?'

'ना, कुछ भी नहीं सोचा है। लेकिन इतने दिन तो कट गये।'

'किस तरह कटे ?'

'बड़े कष्ट से। संसार में किसी को इतना दुख भोगना न पड़ा होगा।'

'इनके लिए एक उपाय है—और किसी काम में तुम मन लगाओ।'

'किस काम में मन लगाऊँ ?'

'इतना बड़ा संसार है। क्या इसमें तुम्हारे मन लगाने के लिए कोई बात नहीं ?'

'पाप ?'

'नहीं पुण्य।'

'स्त्रियों के लिए स्वामी-सेवा ही पुण्य है। अब जब उनकी सेवा मैंने नहीं की, तब पुण्य कहाँ ?'

'स्वामी के भी एक स्वामी हैं।'

'वे मेरे स्वामी के स्वामी हो सकते हैं, पर मेरे नहीं, मेरे स्वामी तो मेरे स्वामी ही हैं ?'

'नहीं, वे सबके स्वामी हैं।'

'मैं तो केवल अपने स्वामी को ही जानती हूँ।'

'यदि जानना चाहो तो अच्छा है। जानने से इतना दुःख न रहेगा।'

'नहीं, मैं ईश्वर को भी जानना नहीं चाहती, क्योंकि उससे यदि सुख मिले तो मुझे स्वामी की विरह-वेदना का दुख ही अधिक पसंद है।'

'जब उन्हें इतना चाहती हो, तो छोड़ कर क्यों आयी ?'

'जन्मपत्री का फल तो मैंने कहा था।'

'उन्हें इतना प्यार क्यों करती थी ?'

श्री ने संक्षेप में अपना पूर्ण वृत्तान्त कह सुनाया। उसे सुन कर जयन्ती की आँखों से भी आँसू गिरने लगे। जयन्ती ने कहा, 'तुम्हारे साथ तो उनका सहवास ही नहीं हुआ था, तब उन्हें इतना प्यार कैसे करने लगी ?'

'तुमने भी तो ईश्वर को नहीं देखा तब उससे इतना प्रेम कैसे करती हो ?'

'मैं मन-ही-मन उन्हें दिन-रात देखती हूँ।'

'मैं भी दिनरात उन्हीं की चिन्ता करती हूँ। यदि उनके साथ जीवन बिताती तो शायद ऐसा न होता। मनुष्य मात्र में दोष-गुण हैं। उनमें भी दोष रह सकते हैं। और न रहने से भी मैं अपने दोषों से उनमें भी दोष देखती। कभी-न-कभी बातचीत में झगड़ा भी हो सकता था। ऐसा होने से यह आग इस तरह नहीं जलती। केवल मन में उनकी मूर्ति गढ़ कर आज तक उनकी पूजा कर रही हूँ। चन्दन घिस कर दीवाल पर लगा कर सोचती हूँ उन्हीं के माथे में लगा दिया है। फुलवारी से फूल चुन कर माला बनाती हूँ, उसे फूलभरे डाल पर झुला कर सोचती हूँ, उनके गले में पहना रही हूँ। देवता के द्वार पर प्रणाम करती हूँ तो सिर के पास उन्हीं के चरण दिखाई देते हैं। फिर भी उन्हें छोड़ कर चली आई।'

आगे श्री से कुछ कहा नहीं गया। वह रोने लगी।

जयन्ती की आँखें भी छलकने लगीं। कैसी संन्यासिनी है ?

दूसरा भाग

|१|

जयन्ती

सीताराम ने श्री की बहुत खोज की। महीने-पर महीने बीते। साल-के साल चले गये, वर्षों तक सीताराम श्री की खोज करते रहे। भिन्न-भिन्न शहरों में और तीर्थों में उसे खोजने के लिए आदमी भेजे, लेकिन कोई फल न मिला। सीताराम ने समझा कि शायद और लोग श्री को न पहचानने के कारण उसका पता नहीं लगा सके, इस लिए उन्होंने गंगाराम को कुछ दिनों के लिए राजकाज से छुट्टी देकर श्री को खोजने के लिए भेजा। गंगाराम भी अनेके देशों में घूम कर निराश हृदय से लौट आया।

अन्त में सीताराम ने निश्चय किया कि अब श्री को मन में स्थान न दूंगा। राज्य की स्थापना में ही चित्त लगाऊँगा। अभी तक वे वास्तविक राजा नहीं हुए थे।

दिल्ली के बादशाह ने उन्हें सनद नहीं दी थी। अब उन्हें सनद पाने की इच्छा हुई। इसी इरादे से उन्होंने दिल्ली जाने का निश्चय किया।

लेकिन समय बुरा था, क्यों कि उस समय हिन्दुओं का हिंदुत्व फिर सिर उठा रहा था, जिसे मुसलमान अच्छा नहीं समझते थे। खास मुहम्मदपुर में ही ऊँचे-ऊँचे देवमन्दिर बन गये थे। आस-पास के गाँवों में भी देव-मूर्तियाँ स्थापित हो गयी थीं। देवोत्सव, नृत्यगीत, हरिसंकीर्तन से देश में चहल-पहल मच रही थी। इस समय पापिष्ट और नराधम मुर्शिदकुली खाँ मुर्शिदाबाद की मसनन्द पर बैठ कर बंगाल सूबे के हिन्दुओं के ऊपर तरह-तरह के अत्याचार कर रहा था। मुर्शिदकुली खाँ ने जब सुना कि सब जगह के हिन्दू धूल में मिल जाने पर भी मुहम्मदपुर में वे चैन की बंसी बजाते हैं, उसने तुराब खाँ को लिखा कि सीताराम को तबाह कर दो।

इसके बाद भूषणा में सीताराम की तबाही के उपाय सोचे जाने लगे। पर केवल सोचने से ही काम नहीं हो जाता, क्योंकि मुर्शिदकुली खाँ ने सीताराम के आज्ञा

२०

भेजने पर भी फौज नहीं भेजी थी। उस समय साधारण नियम यह था कि मामूली शांतिरक्षा के लिए फौजदार अपने खर्च से बन्दोबस्त करते थे, बिना किसी विशेष कारण के नवाब की सेना फौजदार की सहायता के लिये नहीं आया करती। एक मामूली जमींदार का दमन करना साधारण शांतिरक्षा के ही समान था। इसीलिए नवाब ने सिपाही नहीं भेजे। इधर हिसाब लगा कर फौजदार ने देखा कि सीताराम ने अपने इलाके के हर-एक आदमी को युद्ध-विद्या सिखा दी है, तो ऐसी हालत में केवल थोड़ी सी फौज के साथ मुहम्मदपुर पर आक्रमण करना उचित न होगा। अतः पहले फौज की संख्या बढ़ानी थी, परन्तु यह काम दो एक दिन का न था। खासकर स्थानीय व्यक्तियों की शक्ति पर उनका विश्वास न था। अतः उन्होंने बिहार तथा पश्चिमोत्तर प्रान्त से पठान सिपाही मँगाने का निश्चय किया। विशेषकर उन्होंने यह भी सुना था कि सीताराम ने अपनी सेना में पठान तथा भोजपुरी सिपाहियों की भी भर्ती की है। इसलिए काफी फौज एकत्र किये बिना वे सीताराम पर आक्रमण करने का साहस न कर सके। अतः देर होना स्वाभाविक था। इसलिए तब तक उन्हें सब्र करना पड़ा।

बड़ी गुप्त रीति से तुराब खाँ ये सब उद्योग कर रहा था। वह चाहता था कि सीताराम को उसके उद्योग का पता न लगे और एकाएक ही आक्रमण कर दिया जाय। लेकिन सीताराम सब बातों का पता बराबर लगाता रहा। बिना गुप्तचर के राज्य-शासन नहीं होता। श्री रामचन्द्र जी ने भी गुप्तचर नियुक्त किये थे। चतुर-चूड़ामणि चन्द्रचूड़ महाराज ने भी भूषणा में अपने गुप्तचर छोड़ रखे थे। सीताराम के राज्य को चौपट करने की जो आज्ञा मुर्शिदवाद से आयी थी और जो चुने-चुने सिपाही फौज में एकत्र किये जा रहे थे, उन सब बातों का पता चन्द्रचूड़ महाराज को रहता था।

इसके लिए उचित प्रबन्ध करने के बाद कुछ सिपासियों को साथ लेकर सीताराम ने दिल्ली की यात्रा की। जाते समय राज्य का भार सीताराम चन्द्रचूड़ महाराज, मृण्मय और गंगाराम को सौंप गये। रोने-पीटने के भय से सीताराम रमा से कुछ नहीं कह गये। बाद में, रमा ने रोते-रोते आँसुओं की नदी बहा दी।

|२|

रोना-धोना कम होने पर रमा ने देखा कि इस समय सीताराम का दिल्ली जाना अच्छा ही हुआ। यदि इस समय आ कर मुसलमान लोग सब ध्वंस कर दें तो सीताराम

बच जायेंगे। रमा को अपने जीवन के लिए कुछ भी भय न था। मुसलमान उसे बर्छी भोंक कर मारें, तलवार से टुकड़े टुकड़े कर दें, जूड़ा पकड़ कर उसे छत से गिरा दें, इससे उसकी क्षति नहीं होगी। सीताराम तो निर्विघ्न दिल्ली में रहेंगे, यही अच्छा है। यदि अब सीताराम के दर्शन उसे प्राप्त न हों तो दूसरे जन्म में वह उनका दर्शन प्राप्त कर सकेगी। यहाँ भी तो अब उनका दर्शन रमा के लिए दुर्लभ हो गया था। भले ही उनसे देखा देखी न हो, पर वे कुशल से तो रहेंगे !

यदि एक वर्ष पहले यह बात होती तो इतना ही सोच कर रमा शान्त हो जाती, परन्तु विधाता ने उसके भाग्य में शान्ति नहीं लिखी थी। एक वर्ष हुए उसके एक पुत्र हुआ था। सीताराम रमा के साथ न थे, पर रमा पुत्र-मुख को देख कर वह दुख सह लेती थी। सीताराम के सम्बन्ध में निश्चिन्त हो कर स्वयं मरने के लिए तब वह तैयार हुई, तो उसे पुत्र के लिए चिन्ता होने लगी। पुत्र का क्या होगा ? यदि वह मर जायगी तो बच्चे का पालन-पोषण कौन करेगा ? न होगा तो बच्चे को वह नन्दा के हाथ सौंप जायगी। लेकिन मौत के हाथ में तो बच्चा वह नहीं दे सकेगी—क्या सौतेली माँ कभी सौतेले पुत्र पर प्रेम रख सकती है ? और यदि मुसलमान उसे ही मार डालेंगे तो उसकी सौत नन्दा को भी वे भला क्यों छोड़ने लगे ? वह भी मर जायगी और उसकी सौत भी मरेगी। तब बच्चा वह किसे सौंप जाय ?

सोचते-सोचते एक भयानक बात के विचार ने बज्रपात की भाँति उसके सर पर चोट की। क्या मुसलमान बच्चे को ही छोड़ देंगे ? सत्यानाश हुआ। रमा सोचने लगी—मुसलमान चोर, डाकू हैं, गोमांस खाते हैं। क्या वे बच्चे को छोड़ देंगे ? सत्यानाश हुआ ! हाय सीताराम क्यों दिल्ली गये ? रमा यह बात किससे पूछे ? अधिक देर तक वह सोच न सकी और अंत में नन्दा से ही पूछने गयी।

उससे जाकर रमा ने पूछा, 'बहिन, मुझे बड़ा भय लग रहा है। राजा क्यों दिल्ली गये ?'

'बहिन, राजा का काम राजा ही समझता है। मैं क्या जानूँ !'

'इस समय यदि मुसलमान आ जायँ तो महल की रक्षा कौन करेगा ?'

'भगवान् करेगा। और कौन कर सकता है ?'

'तो क्या मुसलमान सब को मार डालेंगे ?'

'क्या शत्रु भी कभी दया करते हैं ?'

'अच्छा, हम लोगों को वे भले ही मार डालें, पर क्या बच्चों पर भी उन्हें दया नहीं आतीं ?'

'बहन, ऐसी बात क्यों मुख से निकाल रही हो ? विधाता ने भाग्य में जो लिखा है, वही होगा। भाग्य में मंगल बदा होगा तो अमंगल नहीं हो सकता। हम लोगों ने तो कोई अपराध नहीं किया है, तब हमारा अमंगल क्यों होने लगा ? तुम किसलिए

चिन्ता कर रही हो ? चलो चल कर चौसर खेलें—तुम्हारे नथ का नया मोती जीत लूँ।'

यह कह कर नन्दा ने रमा का दिल बहलाने के लिए चौसर बिछाया। एक बाजी तो रमा ने खेल ली, पर खेल में उसका मन न लगा। नन्दा जान बूझ कर बाजी हार गई, फिर भी रमा खेल न सकी और उठ गई।

रमा को अपने प्रश्न का उत्तर नहीं मिला था, इसलिए वह खेल न सकी। अपने महल में लौट कर उसने एक बुढ़िया दाई से पूछा, 'क्या मुसलमान बच्चों का भी बध करते हैं ?'

बुढ़िया ने कहा, 'वे किसको नहीं मारते ? वे गोमांस खाते हैं, नमाज पढ़ते हैं और बच्चों को नहीं मारते ?'

रमा की छाती में सुई चुभने लगी। जो कोई भी उसे मिला, उसी से वह यही प्रश्न पूछती रही। मुसलमानों से सब डरती थीं। अतः सब ने वही एक उत्तर दिया जो बुढ़िया ने दिया था। रमा सत्यानाश की घड़ी को उपस्थित समझ कर बच्चे को गोद में ले कर बिस्तर पर जा लेटी और रोने लगी।

|३|

इधर तुराब खाँ को खबर मिली कि सीताराम मुहम्मदपुर में नहीं हैं, वे दिल्ली गये हुए हैं। उन्होंने सोचा, यही अच्छा मौका है। इसी समय मुहम्मदपुर जला कर राख कर देना अच्छा है। तब वे मुहम्मदपुर पर चढ़ाई करने की तैयारी करने लगे।

यह खबर भी मुहम्मदपुर पहुँची। नगर में एक तहलका सा मच गया। जहाँ जिसको सुभीता मिला, लोग वहीं भागने लगे। कोई मौसी के घर, कोई बुआ के घर, कोई मामा के और कोई ससुर के घर, कोई दामाद के और कोई बहनोई के घर। लोटा, थाली, सन्दूक-पिटारी, तोसक-तकिया, लेकर सपरिवार भागने लगे। दूकानदार दूकान उठा-उठा कर भागने लगे, गोला बेच कर महाजन भागे, सिर पर औजार-हथियार ले कर कारीगर भागे। बड़ी भगदड़ मची।

नगर-रक्षक गङ्गाराम परामर्श के लिए चन्द्रचूड़ महाराज के पास आये। कहा, 'महाराज अब क्या करने के लिए राय देते हैं ? शहर तो उजड़ गया।'

चन्द्रचूड़ ने कहा, 'स्त्री, बालक, वृद्ध जो भागना चाहें उन्हें भागने दो, रोको नहीं। इसी की तो जरूरत है। ईश्वर न करें, अगर तुराब खाँ आ कर गढ़ घेर ले तो खाने वाले आदमियों की संख्या जितनी कम रहेगी, उतना ही अच्छा है। ऐसी हालत में

हम लोग चार मास तक गुजर कर लेंगे। लेकिन जिन्होंने युद्ध-विद्या सीखी है, उनमें से एक को भी जाने मत देना। जो जबर्दस्ती जाना चाहे, उसे गोली से मार देने का हुक्म दे दो। अभी शहर के बाहर हथियार आदि मत ले जाने देना। खाने-पीने का समान भी कुछ बाहर न जाये।'

सेनापति मृण्मय ने भी आ कर चन्द्रचूड़ महाराज से सलाह पूछी। कहा, 'यहाँ रह कर हम लोग क्यों मार खाँय ? क्यों नहीं फौज ले कर बीच रास्ते में ही उनका मुकाबला करें ?'

चन्द्रचूड़ महाराज ने कहा, 'इस प्रबला नदी की सहायता क्यों छोड़ रहे हो ? बीच रास्ते में यदि तुम हार जाओगे तो हमारे लिए खड़े रहने की जगह भी न मिले गी। किन्तु यदि तोप बन्दूक ले कर नदी के इस पार रहेंगे तो दुश्मन के लिए नदी पार करना टेढ़ी खीर होगी। केवल खबर रखो कि वे नदी कहाँ पार होंगे। फौज वहीं ले जाओ। ऐसा करने से मुसलमान नदी के इस पार नहीं आ सकेंगे सब कुछ ठीक कर लो, परन्तु मुझसे पूछे बिना यात्रा मत करना।'

चन्द्रचूड़ गुप्तचर के लौटने की राह देख रहे थे। गुप्तचर के लौटने पर ही उन्हें पक्की खबर मिलने को थी कि तुराब खाँ कब और किस रास्ते से फौज भेजेगा। तब उन्हें उसके लिए उचित उपाय करना था।

इधर रनिवास में खबर पहुँची कि तुराब खाँ फौज ले कर मुहम्मदपुर लूटने आ रहा है। बाहर से अन्त:पुर में ऐसी खबरों का बढ़-चढ़ कर पहुँचना तो स्वाभविक ही था। 'आ रहा है' का अर्थ बाहर तो यह समझा जाता है कि आने की तैयारी कर रहा है पर अन्त:पुर में इसका अर्थ यह लगाया जाता है कि करीब-करीब आ ही पहुँचा। अब तो वहाँ हाय तोबा मच गयी। नन्दा का काम बहुत बढ़ गया। वह हैरान हो गयी। अकेली वह किस-किस को सँभाले। खास कर रमा के लिए उसकी परेशानी का अन्त न रहा। उसे क्षण-क्षण में मूर्छा आ रही थी। नन्दा ने मन-ही-मन सोचा—'सौत मर जाय तो मेरा क्या बिगड़े गा, लेकिन स्वामी सब घर का भार मुझे सौंप गये हैं, तो मुझे अपने प्राण दे कर भी उनकी आज्ञा का पालन करना उचित है।' सब काम-धाम छोड़ कर नन्दा रमा की सेवा करने लगी।

इधर महल की अन्य स्त्रियाँ नन्दा से कहने लगीं, 'माता, अब तुम्हीं सबकी प्राण-रक्षा करो। बिना लड़ाई झगड़े के महल को मुसलमानों के हाथ सौंप कर, बदले में सब की प्राण भिक्षा माँग लो। हम सब बंगाली हैं, हमें लड़ाई-झगड़े से क्या काम ? जान बचेगी तो सब फिर हो जायगा। सब की जान तुम्हारे हाथ है, ईश्वर तुम्हारा भला करेंगे, तुम हमारा कहा मान लो।'

नन्दा ने उन्हें समझाते हुए कहा, 'अरे भय किस बात का है ? पुरुषों से तुम

अधिक बुद्धि रखती हो ? जब वे कह रहे हैं कि किसी बात का भय नहीं है, तो तुम क्यों व्यर्थ घबरा रही हो ? क्या हमें अपने प्राण प्यारे नहीं हैं ?'

इन सब बातों के बाद रमा की मूर्च्छा कुछ कम हुई। वह उठ बैठी। क्या सोच कर उसका साहस बढ़ा, वही जाने।

|४|

गङ्गाराम नगर-रक्षक थे। इस समय वे बराबर रात में नगर के अन्दर गश्त लगाते थे। उस दिन भी वे रूप बदल कर रात को सादी पोशाक में गुप्तरूप से पैदल गश्त लगा रहे थे। जब तीसरा पहर हुआ तो वे थक कर घर लौटने लगे, इसी समय किसी ने पीछे से आ कर उनका कपड़ा पकड़ कर खींचा। गङ्गाराम ने पीछे घूम कर एक स्त्री को देखा। वह स्त्री बिल्कुल अकेली थी। अन्धकार में उस स्त्री का आकार और पोशाक तो देख सके, पर और पहचान नहीं सके। गंगाराम ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

स्त्री ने कहा, 'मैं जो भी हूँ, उससे आप का कोई मतलब नहीं, बल्कि आप मुझसे यह प्रश्न करिए कि मैं क्या चाहती हूँ ?'

आवाज से वह स्त्री कम उम्र की मालूम पड़ी, पर उस आवाज में गम्भीरता थी। गंगाराम ने कहा, 'यह बात पीछे होगी। पहले यह बताओ कि इतनी रात में अकेली यह पर क्यों घूम रही हो ? क्या तुम नहीं जानती कि आज कल समय कितना बुरा है !'

स्त्री ने कहा, 'इतनी रात में अकेली मैं सड़क पर केवल आप ही की खोज में घूम रही थी।'

'यह बिलकुल झूठ बात है। बतलाओ तो कि मैं कौन हूँ ?'

'आप नगर-रक्षक गंगाराम दास हैं।'

'हाँ, तुम पहचानती हो। परन्तु यह तुम्हें किस प्रकार मालूम हुआ कि मैं इस रास्ते पर मिलूँगा ? मुझे स्वयं नहीं पता था कि मैं इस तरफ से गुजरूँगा।'

'बहुत देर तक मैंने आप को खोजा। आप के घर पर भी पता लगाने गयी थी।'

'क्यों ?'

'यह मैं आप को नहीं बतलाऊँगी। मैं जहाँ आप को ले चलूँ, वहाँ आप को चलना होगा।'

'कहाँ ?

'यह भी अभी नहीं बताऊँ गी ।'

'तब यह बताओ तुम्हारा नाम क्या है ? तुम कौन हो, क्या करती हो ? मुझे क्या करना होगा ?'

'मेरा नाम मुरली है । बस और कुछ न बताऊँ गी । यदि साहस न हो तो न चलिए । परन्तु यदि आप में इतना साहस न हो तो आप मुसलमानों के हाथ से नगर की रक्षा करने में कैसे समर्थ हों गे ? मैं स्त्री हो कर वहाँ जा सकती हूँ, क्या आप नगर-रक्षक हो कर भी वहाँ चलने का साहस नहीं कर सकते ?'

क्या करते ? गंगाराम को मुरली के साथ जाना ही पड़ा । मुरली गंगाराम के आगे-आगे चली । कुछ दूर तक चलने के बाद गंगाराम ने सामने राजमहल देख कर मुरली से पूछा, 'क्या राजमहल में जा रही हो ?'

'इसमें हानि क्या है ?'

सिंहद्वार से हो कर जाने में कोई हानि नहीं थी, परन्तु यह पिछवाड़ा है । क्या मुझे अन्तःपुर में जाना होगा ?'

'क्या साहस नहीं होता ?

'नहीं, मैं ऐसा साहस नहीं कर सकता । यह मेरे स्वामी का अन्तःपुर है । मैं बिना आज्ञा के अन्दर नहीं जा सकता ।'

'किसकी आज्ञा चाहिए ?'

'राजा की आज्ञा ।'

'वह तो यहाँ हैं नहीं, क्या रानी की आज्ञा से काम नहीं चलेगा ?'

'हाँ, चल सकता है ।'

'तो आइए, मैं आप को रानी की आज्ञा दिला दूँ गी ।'

'क्या पहरेवाला तुम्हें अन्दर जाने दे गा ?'

'हाँ, दे गा ।'

'लेकिन बिना पहचाने वह मुझे नहीं जाने देगा और ऐसी अवस्था में मैं अपना परिचय नहीं देना चाहता ।'

'परिचय आप को नहीं देना होगा । आप मेरे साथ चले आइए ।'

दरवाजे पर पहरे वाला खड़ा था । मुरली ने उससे पूछा, 'पान्डेजी, दरवाजा तो खुला है न ?'

'हाँ खुला है पर यह कौन है ?'

'मेरे भाई हैं ।'

'अन्दर कोई मर्द नहीं जा सकता । हुक्म नहीं है ।'

मुरली ने जरा डपट कर कहा, 'वाह रे ! किस पर हुक्म ! तुझे और किस का

हुक्म चाहिए ? मेरे हुक्म के सिवा और किसके हुक्म की तुझे जरूरत पड़ गई ? मालूम नहीं, झाड़ू मार कर दाढ़ी उखाड़ लूँ गी ।'

पहरेवाले को काठ मार गया । फिर उसने कुछ नहीं कहा । गंगाराम को ले कर मुरली बेखटके ऊपर चली गई । दो-तल्ले पर ले जा कर उसने एक कमरा दिखाते हुए हुए गंगाराम से कहा, 'आप अन्दर चले आइये । मैं पास ही रहूँ गी, भीतर नहीं जाऊँगी ।'

कौतूहलवश गंगाराम उस कोठरी के अन्दर चले गये । कमरा अत्यंत मूल्यवान वस्तुओं से सुसज्जित था । चाँदी के पलंग पर एक स्त्री बैठी थी । दीपावली की स्निग्ध ज्योति उसके मुख पर पड़ रही थी । वह सर झुकाये कुछ सोच रही थी । वहाँ और कोई न था । गंगाराम ने मन-ही-मन कहा, 'ऐसी सुन्दरी स्त्री पृथ्वी पर और दूसरी न होगी ।'

वह स्त्री रमा थी ।

|५|

गंगाराम कभी भी सीताराम के अन्तःपुर में नहीं गये थे । उन्होंने कभी नन्दा और रमा को नहीं देखा था, लेकिन कमरे की सजावट को देख कर ही वे समझ गये कि मैं रानी के सामने खड़ा हूँ । दोनों रानियों में रमा की सुन्दरता की ख्याति ही अधिक प्रसिद्ध थी । अतः गंगाराम ने यह भी ताड़ लिया कि उनके सामने रानी रमा ही हैं । उन्होंने विनती के स्वर से पूछा, 'महारानी ने किस लिए तलब किया है ?'

रमा ने उठ कर गंगाराम को प्रणाम किया और बोली, 'आप जैसे श्री के बड़े भाई हैं, वैसे ही मेरे भी हैं, इसीलिए मैंने आप को इस समय यहाँ बुलाने का साहस किया है, बुरा न मानिए गा ।'

आप जब बुलायें गी, मैं उसी समय आ सकता हूँ । आप मेरी मालकिन हैं ।'

मुरली ने कहा था कि आप खुल्लमखुल्ला आने का साहस न करें गे । और भी वह न जाने क्या-क्या कहती थी । इसलिये भैया, मैंने बहुत डरते हुए यह काम किया है । आप मेरी रक्षा करें ।'

कहते-कहते रमा रो पड़ी । उसका रोना देख कर गंगाराम भी व्याकुल हो उठे । बोले, 'क्या हुआ है ? क्या करना होगा ?'

'क्या हुआ है ? क्या आप जानते नहीं हैं कि मुसलमान मुहम्मदपुर लूटने आ रहे हैं ? वे हम सबों का खून कर के नगर जला दें गे ।'

'किसने आप को यह भय दिखाया है ? यदि मुसलमान आ कर शहर जला दें गे, तो हम लोग किस लिए हैं ? हम आप का अन्न क्यों खा रहे हैं ?'

'आप पुरुष हैं, इसलिए आप में साहस है । परन्तु यदि आप हमारी रक्षा करने में असमर्थ होंगे, तो क्या होगा ?'

रमा पुनः रोने लगी ।

'यथाशक्ति हम आप की रक्षा करें गे, इसलिए आप निश्चिंत रहें ।'

'यह तो ठीक है, परन्तु यदि समर्थ न हो सके तो…?'

'तो मरें गे ।'

'ऐसा न करना । मेरी बात सुनिए । आज सब बड़ी रानी से कहती थीं कि मुसलमानों को बुला कर महल उनके हाथ में सौंप दीजिए और बदले में सब की प्राण-भिक्षा माँग लो । बड़ी रानी ने इस बात पर बिलकुल ध्यान नहीं दिया । उनकी बुद्धि भ्रष्ट हो चुकी है । इसलिए मैंने आप को बुला कर कहा ।'

'मुझे क्या करने को कहती हैं ?'

'ये मेरे गहने हैं, इन्हें ले लीजिये । मेरे पास जो कुछ धन है, वह भी आप को दे देती हूँ । आप किसी से कुछ कहे बिना सीधे उनके पास चले जाइये । जा कर उनसे कहिये कि हम लोग राज्य छोड़ देते हैं । तुम लोग सब कुछ ले कर सिर्फ जान की भीख दे दो । नगर तुम्हारे हाथ में है, तुम उन्हें गुप्त रूप से ला कर किला दखल करा दो । इससे सब की रक्षा हो जायगी ।'

गंगाराम को रोमांच हो आया । बोला, 'ओह महारानी, मेरे सामने आप ने जो कुछ कहा सो कहा, अन्य किसी के सामने यह बात कभी मुँह से न निकालिए गा । मेरी यदि जान भी चली जायगी, तो ऐसा मैं नहीं कर सकता । दूसरा कोई यदि करेगा, तो मैं अपने हाथ से उसका सिर उतार लूँ गा ।'

रमा की रही-सही आशा भी जाती रही । वह सिसक-सिसक कर रोती हुई बोली, 'तब मेरे बच्चे की क्या दशा होगी ?'

डर कर गंगाराम ने कहा, 'चुप रहिये, यदि आप का रोना सुन कर कोई यहाँ आ जायगा, तो हम दोनों के लिए बहुत बुरा होगा । आप अपने पुत्र के लिए इतना भय क्यों कर रही हैं ? मैं उसके लिए कोई उपाय सोचूँ गा । क्या आप यहाँ से दूसरी जगह जाने के लिए तैयार हैं ?'

'यदि आप मुझे मेरे नैहर में रख आ सकें तो मैं जाने को तैयार हूँ । बड़ी रानी तो मुझे जानें नहीं देंगी और चंद्रचूड़ महाराज भी मुझे क्यों कर जाने दें गे ?'

'तब छिप कर चलना होगा, परन्तु अभी उसकी कोई आवश्यकता नहीं । यदि ऐसी ही विपदा की सम्भावना होगी, तो मैं स्वयं आप को वहाँ रख आऊँ गा ।'

'मुझे कैसे पता लगे गा ?'

'मुरली के द्वारा खबर लेते रहिए गा, लेकिन वह मुझसे बहुत छिप कर मिला करे।'

लम्बी साँस ले कर, रोती हुई रमा कहने लगी, 'आपने ने मुझे प्राण-भिक्षा दी। मैं सदा आप को एक दासी की तरह याद रखूँ गी। ईश्वर आप का भला करे।'

इतना कह कर रमा ने गंगाराम को विदा कर दिया। मुरली गंगाराम को महल के बाहर पहुँचा आई।

किसी के मन में कोई मैल न था, फिर भी यह काम बहुत बुरा हो गया। रमा और गंगाराम दोनों ने उसे समझा तो सही, परन्तु गंगाराम ने अपने मन को यही तसल्ली दी की मेरा क्या दोष है और रमा ने सोचा कि प्राण बचाने के लिए दूसरा कोई उपाय ही क्या था ? लेकिन मुरली खुश रही।

गंगाराम की आँखें यदि अभिज्ञ होतीं तो वे देखते—

'तंदक्षिणापाङ्ग निविष्टदृष्टिम्।
नतां समाकुंचितसव्यपादम्।
चक्रीकृतं सुमनसां वर चारु चापं।
प्रहर्तुमभ्युद्यतमात्मयोनिम्॥

और जिसके मन में चाहे जो कुछ भी हो, विधाता के मन में न जाने क्या था!

चन्द्रचूड़ माहराज ने गुप्तचरों के द्वारा यह खबर तुराव खाँ के पास भेज दी— 'हम लोग इस राज्य को, किला और बारूद खाने के साथ आप के हाथ बेच देना चाहते हैं। उसके लिये आप कितना रुपया दे सकते हैं ? लड़ाई करने से दोनों का नुकसान है और उसका नतीजा क्या होगा यह पहले से कोई नहीं कह सकता। इसीलिये मेरा प्रस्ताव है कि उपयुक्त धन के द्वारा आप सब कुछ खरीद लें। अब इस सम्बन्ध में आप की जो राय हो वह मुझे सूचित कर दें।'

चन्द्रचूड़ महाराज ने यह बात मृण्मय और गङ्गाराम को भी बतलायी। मृण्मय ने भौंहें चढ़ा कर क्रोध से पूछा, 'लेकिन यह कैसी बात हुई ?'

चन्द्रचूड़ महाराज ने मुस्करा कर कहा, 'मूर्ख ! क्या तुम्हें कुछ अक्ल भी है ? मोल-भाव करते-करते दो महीने टल जाएँगे और तब तक राजा भी आ पहुँचेंगे।'

गङ्गाराम ने इसे क्या समझा, यह तो मालूम नहीं, पर उन्होंने कुछ कहा नहीं।

६

उस दिन गंगाराम से कुछ काम-काज न हो सका। रमा का चेहरा बड़ा सुन्दर है, उसके ऊपर कितना सुन्दर प्रकाश पड़ता था। यही बात सोचते-सोचते गंगाराम का दिन बीता। क्या दिये की रोशनी से ही ऐसी सुन्दर देख पड़ती थी ? तब क्यों नहीं मनुष्य रात-दिन दिया जला कर बैठते ? कैसे काले लच्छेदार बाल थे ? कैसा गोरा रंग था ? कैसे भौंहें थीं ? कैसी आँखें थीं ? कैसे होंठ थे ? जैसे लाल वैसे ही पतले ! कैसी गठन थी ? गंगाराम किस-किस को सोचे ! सभी एक से एक बढ़ कर थे। उन्होंने सोचा, मैं नहीं जानता था कि मनुष्यों में ऐसी सुन्दरता होती हैं। इस बार जो हमने देखा है उससे मेरा जन्म सार्थक हो गया। इस तरह सोच कर मैं कितने दिन जीऊँगा—सुख से रहूँगा ?

क्या ऐसा कभी हो सकता है रे मूर्ख ? एक बार देख कर तो ऐसा हुआ, फिर देखने की इच्छा होती है ? दोपहर को गंगाराम यही सोच रहे थे कि इस बार जो देखा है, मैं उसे सोच कर जिन्दगी के बचे दिन बिताऊँगा। लेकिन शाम को सोचा—क्या एक बार और नहीं देख सकता ? दो-चार घड़ी रात जाने पर गंगाराम ने सोचा, अभी मुरली आयी नहीं ! पर एक पहर रात जाने पर मुरली उन्हें एकान्त में मिली।

गंगाराम ने पूछा, 'क्या खबर है ?'

मुरली ने कहा, 'तुम्हारी क्या खबर है ?'

'किसकी खबर चाहती हो ?'

'बाप के घर जाने की।'

'जान पड़ता है अब उसकी जरूरत नहीं पड़ेगी। राज्य की रक्षा हो जायेगी।'

'तुम्हें कैसे मालूम हुआ ?'

'यह तुमसे बतलाया नहीं जा सकता।'

'तो जा कर उनसे यह बात कह दूँ ?'

'कह दो।'

'यदि वे मुझे फिर भेजें ?'

'तो कल जहाँ तुमने मुझे पकड़ा था, वही मैं मिलूँगा।'

मुरली चली गई। जा कर रानी को खबर सुनाई। गंगाराम ने कुछ खोल कर नहीं कहा, अतः रमा भी कुछ समझ न सकी। न समझ सकने पर हैरान हुई। फिर मुरली ने तीन पहर रात गये गंगाराम को बुला कर रमा के सामने हाजिर किया। वहाँ पहरेवाला वही था। इस बार भी मुरली के भाई बन कर गंगाराम भीतर गये।

गंगाराम ने आ कर रमा से क्या खाक पत्थर कहा, यह खुद उनकी समझ में

न आया। रमा तो बिल्कुल ही न समझ सकी। असल बात तो यह थी कि गंगाराम के दिमाग में कुछ था ही नहीं। धनुर्धर ठाकुर ने फूल के बाण मार कर उसे खाली कर दिया था। केवल आँखें थीं। दिल खोल कर गंगाराम ने देखा, कान लगा कर बातें सुनीं, पर तृप्ति न हुई।

गंगाराम को केवल इतना होश था कि उन्होंने चन्द्रचूड़ की चाल रमा से खोल कर नहीं बतलाई। वास्तव में वह कोई बात कहने नहीं आये थे, केवल देखने आये थे। उसे देख कर अपने चित्त को दक्षिणा स्वरूप रमा को दे, वे चले गये। फिर मुरली उन्हें बाहर पहुँचा आई। जाते समय मुरली ने गंगाराम से कहा, 'फिर कब आओगे ?'

'क्यों आऊँगा ?'

'जान पड़ता है फिर आओगे।'

गंगाराम ने आँखें बन्द कर कीचड़ में पाँव दिया—कुछ कहा नहीं।

इधर चन्द्रचूड़ की बात का उत्तर तुराब खाँ ने यों लिख भेजा,—'अगर बरायनाम रुपये ले कर आप राज्य छोड़ देंगे, तो रुपये भेजने के लिए मैं राजी हूँ। लेकिन सीताराम को पकड़वा देना होगा।'

चन्द्रचूड़ ने उत्तर लिख भेजा कि सीताराम को पकड़वा दूँगा, लेकिन थोड़े रुपये में न होगा।

तुराब खाँ ने पुछवाया, 'कितने रुपये चाहते हो ?'

चन्द्रचूड़ ने कुछ चढ़ा कर रुपये माँगे। तुराब खाँ ने कुछ नरम दर कहला भेजा। उसके बाद चन्द्रचूड़ कुछ नीचे आये, तुराब खाँ कुछ ऊपर उठे। इसी तरह चन्द्रचूड़ ने उस मुसलमान कों भुलावा दे कर रखा।

|७|

कल मुरली ने जों कहा था, वही हुआ। गंगाराम फिर रमा के पास गये। उसका कारण यही था कि रमा के पास गये बिना गंगाराम को चैन ही नहीं पड़ती।

अब रमा उन्हें बुलाती न थी, बीच-बीच में मुरली को गंगाराम के पास खबर लेने के लिए भेजती। किन्तु गंगाराम उससे कोई बात नहीं कहते। कहते, 'तुम्हारा विश्वास कर के यह गुप्त बात कैसे कही जा सकती है ? मैं किसी दिन खुद आ कर कह आऊँगा।' इसलिए रमा ने गंगाराम को बुलाया। मुसलमान कब आयेंगे—इसकी खबर

पाये बिना उसे चैन नहीं पड़ती । यदि अकस्मात् किसी दिन दोपहर को खाने के समय वे आ धमकें तो !

गंगाराम फिर आये । इस बार गंगाराम ने रमा को साहस न दिया, बल्कि एक भय दिखाया । यह रास्ता बना गये ताकि फिर बुलाहट आवे । गंगाराम का साहस न पड़ता था कि रमा से वह अपने हृदय की बातें कहें और सरला रमा उनके मन की बात कुछ समझ नहीं सकती थी । इसलिए प्रेम सम्भाषण के लिए गंगाराम की आने जाने की चेष्टा न थी । गंगाराम जानते थे कि वह रास्ता बन्द है, तो भी केवल उसे देखने और बातें करने में उन्हें बड़ा आनन्द मिलता था ।

इसे प्रेम नहीं कहते—प्रेम होने से गंगाराम रमा को कभी भी भय दिखा कर न जाते, जिससे उसकी यन्त्रणा और भी बढ़े । यह सबसे निकृष्ट एक चित्त-वृत्ति है । यह जिस के हृदय में प्रवेश करती है, उसका सर्वनाश कर के छोंड़ती है ।

भय दिखा कर गंगाराम चले गये । उस समय रमा बाप के घर जाना चाहती थी, पर गंगाराम, 'आजकल नहीं,' कह कर चले गए । 'आजकल' के बाद रमा गंगाराम को फिर बुलाती, गंगाराम आते । इसी तरह चलता रहा !

यदि सब के सामने गंगाराम को रमा से पचास बार भी साक्षात् करना पड़ता, तो कोई दोष नहीं था । क्यों नहीं—रमा का हृदय बड़ा पवित्र—बहुत परिष्कृत था । लेकिन उस तरह डरते-डरते चोरी-चोरी रात के तीसरे पहर उससे मिलना-जुलना अच्छा नहीं था । और कुछ चाहे हो या न हो, पर बड़े आदर से, दिल खोल कर बातें करने से, बात-चीत में अधिक असावधानी से दिल-से-दिल मिल जाते हैं । यह बात न थी कि ऐसा हुआ नहीं । पहले रमा इसे समझ न सकी ।

लेकिन दैववाणी की तरह मुरली की एक बात उसके कानों में पड़ी । एक दिन मुरली और पांड़े ठाकुर में इस विषय में कुछ बातें हुईं । पांडे ने कहा, 'तुम्हारा भाई हमेशा रात को भीतर आता-जाता है, क्या बात है ?'

'मरदुए तुम्हारा क्या बिगड़ता है ! झाड़ू का डर नहीं है ?'

'डर क्यों नहीं है, उससे बढ़ कर जान का भी डर है !'

'क्या तुम्हारी और भी कोई जान है, मैं ही तुम्हारी जान हूँ !'

'तुमको छोड़ने से मैं नहीं मरूँगा, लेकिन जान छोड़ने से तो चारों ओर अँधेरा छा जायेगा । तुम्हारे भाई को मैं अब नहीं छोड़ूँगा ।'

'मत छोड़ना । पर मैं तुम्हें छोड़ दूँगी ! कहो क्या कहते हो ?'

'देखो, वह आदमी तुम्हरा भाई नहीं है, वह कोई बड़ा आदमी है । उसका यहाँ क्या काम है, मुझे मालूम नहीं । और मालूम करने की भी मुझे कोई जरूरत नहीं ।

शायद वह अन्दर की खबरदारी के लिए आता-जाता है। तो मुझको कुछ मिलना चाहिए। तुमको तो कुछ मिलता ही होगा, आधा मुझको दो, मैं कुछ नहीं कहूँगा।'

'वह मुझे कुछ देता नहीं, मिलने पर तुम्हें दूँगी !'

'आधा-आधा बाँट लो।'

मुरली ने सोचा, यह अच्छी सलाह है। रानी से मुरली को गहने-कपड़े मिले थे लेकिन गंगाराम से कुछ नहीं मिला था। इसीलिए अकल दौड़ा कर उसने पाँडे जी से कहा, 'इस बार जिस दिन वह आवे, तुम जाने मत देना। मेरे कहने पर भी नहीं। ऐसा करने से कुछ वसूल होगा।'

उसके बाद जिस रात को गंगाराम महल में घुसने आये, पाँडे जी ने उन्हें रोका। मुरली बहुत बकी-झकी, अन्त में हाथ जोड़ा, लेकिन पाँडे जी राजी न हुए। गंगाराम ने चाहा कि पाँडे के सामने जाहिर हो जाऊँ। मुरली से कहा, 'मुझे नगर रक्षक जान कर पाँडे आपत्ति नहीं करेगा।' मुरली ने कहा, 'हाँ आपत्ति तो न करेगा, लेकिन लोगों में झूठी बात तो फैला देगा। यदि यह अफवाह फैल जायेगी कि मेरा भाई आता-जाता है, तो एक बड़ी बला मेरे कन्धे पर आ पड़ेगी।'

उसका कहना ठीक समझ कर गंगाराम राजी हुए। उसके बाद गंगाराम ने मन में सोचा—चलो इसे यहीं मार कर चलें लेकिन इससे तो और भी गड़बड़ी मचे गी। यह रास्ता ही एकदम बन्द हो जायेगा। अतः यह विचार भी छोड़ दिया। पाँडे ने किसी तरह भी उन्हें जाने न दिया। अतः गंगाराम को उस रात लौट आना पड़ा।

मुरली के अकेला लौट आने पर रानी ने पूछा, 'क्या आज नहीं आएँगे।

'वे आये थे, पर पहरेवाले ने आने नहीं दिया।'

'रोज तो आने देता था, आज क्यों नहीं ?

'उसके मन में कुछ सन्देह हो गया है।'

'किस बात का सन्देह ?

'आप सुन कर क्या करेंगी ? मैं आप के सामने अपने मुँह से उसे नहीं कह सकती। उसे कुछ दे ले कर राजी कर लेना ही अच्छा है।'

जो अपवित्र हैं, वे पवित्र को अपनी ही तरह जान कर काम करते हैं। यह नहीं समझते कि यह पवित्र है। ऐसा करने से इसकी क्षति होगी। मुरली की बात सुन कर रमा की देह से चिनगारियाँ निकलने लगीं। जल-भुन कर काँपती हुई रमा बैठ गई। फिर लेट गई। लेट कर आँखें बन्द कर बेहोश हो गई। ऐसी बात किसी दिन भी रमा के मन में नहीं आई थी। और कोई होती तो शायद यह बात उनके मन में उठती। लेकिन रमा तो इतनी भयभीत हो गई थी कि उसने इस ओर एक बार भी आँख उठा कर नहीं देखा। यह बात उसकी छाती में तीर जैसी चुभी। देखा, भीतर चाहे जो हो, बाहर से तो बात ठीक ही जान पड़ती है। मन में सोच कर देखा, मुझसे बड़ा अपराध

हो गया। रमा की बुद्धि तो तीव्र नहीं थी, पर स्त्रियों में, और विशेषतः हिन्दू स्त्रियों में एक ऐसी बुद्धि होती है जिसके उदय होने पर इस तरह की सब बातें साफ-साफ समझ में आ जाती हैं। रमा ने सोच कर देखा—मुझसे बड़ा अपराध हो गया। अब क्या करूँ? विष खाऊँ, गले पर छुरी चलाऊँ। सोच-विचार कर स्थिर किया कि गले पर छुरी चलाना ही ठीक है। ऐसा करने से सभी पापों से छुटकारा मिल जायेगा। मुसलमानों का डर भी जाता रहेगा। लेकिन बच्चे का क्या होगा? आखिर रमा ने निश्चय किया कि राजा के आने पर गले पर छुरी चलाना उचित है। वे आकर लड़के के लिए कुछ बन्दोबस्त करेंगे। उतने दिन तक मुसलमानों के हाथों से किसी तरह बच जाऊँ। यह तो निश्चित है कि मुसलमानों के हाथों से किसी तरह नहीं बच सकती तो भी गंगाराम को अब नहीं बुलाऊँगी, न उनके पास किसी को भेजूंगी। इसलिए रमा ने गंगाराम को फिर बुलाया नहीं, न उनके पास मुरली को जाने दिया।

अब न तो मुरली आती है और न रमा बुलाती ही हैं। गंगाराम को चैन नहीं पड़ती। खाना-पीना छोड़ दिया। नींद हराम हो गई। गंगाराम मुरली की खोज में लगे। लेकिन मुरली राजमहल की दासी थी, वह कभी राह-घाट पर बाहर नहीं आती। केवल रानी के हुक्म से गंगाराम को खोजने के लिए बाहर गई थी। गंगाराम को मुरली की कोई खोज न मिली। अन्त में उसे बुलाने के लिए गंगाराम ने एक दूती को भेजा।

आ कर मुरली ने कहा, 'क्यों बुलाया है?'
'अब खबर लेने क्यों नहीं आती?'
'पूछने पर कोई खबर भी देता है? तुम तो मेरा विश्वास ही नहीं करते।'
'अच्छा, नहीं तो मैं खुद वहाँ जा कर कह आ सकता हूँ।'
'वहाँ जाने से तो तुम्हें धक्का मिलेगा।'
'क्या हुआ?'
'छोटी रानी को आराम हो गया।'
'क्या हुआ था कि उन्हें आराम हो गया?'
'क्या आप जानते नहीं कि क्या हुआ था?'
'नहीं?'
'उनके सारे शरीर में दर्द होता था?'
'यह क्या?'
'यह न होने से तुम अन्दर कैसे घुसने पाते।'
'क्यों, मैं क्या हूँ?'
'क्या तुम वहाँ के लायक हो?'
'तो मैं कहाँ के लायक हूँ?'

'उस फटे आँचल के लायक हो। बाप के घर ले जाना हैं, तो मुझे ले चलो। बहुत दिनों से बाप के घर नहीं गई हूँ।'

यह कह मुरली हँसती हुई चली गई। गंगाराम ने समझा, अब इस ओर का कुछ भरोसा नहीं, लेकिन मन तो मानेंगा नहीं। जिसमें पाप करने की जब तक शक्ति रहती है, तब-तक पाप में जिसका मन सना रहता है, उसे सब कुछ का भरोसा रहता है। कृतघ्न गंगाराम ने संकल्प किया कि संसार में जितने पाप हैं सब मैं करूँगा, पर रमा को नहीं छोड़ूँगा, । उसके बाद गंगाराम अपने घर लौट गये। उसी रात को गंगाराम ने सीताराम और रमा का सर्वनाश करने का उपाय सोचा।

|८|

बहुत दिनों के बाद श्री और जयन्ती फिर ललितगिरि की घाटी में आई हैं। उस बार उस ज्योतिषी महापुरुष ने उन्हें आने के लिए कहा था। इसीलिए दोनों आई हैं।

महापुरुष ने केवल जयन्ती से मुलाकात की, श्री से नहीं। अकेली जयन्ती हस्ती गुफा में गई तब तक श्री विरूपा के किनारे घूमती रही।

उसके बाद पहाड़ की चोटी पर चढ़ कर, एक चन्दन के वृक्ष तले बैठ, नदी किनारे तालवन की शोभा देखने लगी।

महापुरुष से बातचीत कर के जयन्ती लौट आई। जयन्ती से यह बिना पूछे कि महापुरुष ने क्या कहा, श्री ने कहा, 'कितना मीठा पक्षी का स्वर है ! कान भर गये।'

'क्या स्वामी के स्वर जैसा है ?'

'नहीं,इस नदी के कल-कल शब्द की तरह।'

'स्वामी का स्वर किसके समान है ?'

'बहुत दिनों से स्वामी को बोली नहीं सुनी है—अब उसकी कुछ याद भी नहीं।'

जयन्ती यह जनती थी, केवल याद दिलाने ही के लिए उसने पूछा था। बोली, 'अब क्या सुनने से स्वामी का स्वर उतना मीठा नहीं लगेगा ?'

श्री चुप रही। कुछ देर के बाद मुँह उठा कर जयन्ती की ओर देखती हुई बोली, 'क्या महात्मा ने मुझे स्वामी के दर्शन करने की अनुमति दी है ?'

'तुम्हें तो जाना ही होगा—उन्होंने मुझे भी तुम्हारे साथ जाने के लिए कहा है।'

'क्यों ?'

'उन्होंने कहा—मंगल होगा।'

'अब बहिन, मुझे मंगल-अमंगल से क्या सुख-दुख है।'

'श्री, क्या तुम समझ न सकोगी ? क्या तुम्हें आज भी इतना समझाना होगा।'

'ना, मैंने कुछ समझा नहीं !'

तुम्हारा शुभाशुभ देख कर महात्मा ने आदेश नहीं दिया है। अपना स्वार्थ खोजने से वे किसी को कुछ आदेश नहीं देते। इससे तुम्हारा कोई शुभाशुभ नहीं है।'

'बस समझ गई, इस समय मेरे जाने से स्वामी का मंगल होने की सम्भावना है।'

'उन्होंने कुछ स्पष्ट नहीं कहा है, कुछ घुमा-फिरा-कर भी नहीं कहा है। वे हम लोगों से अधिक बातचीत नहीं करना चाहते, लेकिन मैं समझती हूँ कि उनके कहने का यही सारांश है। और इतने दिन तक मेरे साथ रह कर तुमने जो कुछ सुना है, सीखा है, उससे तुम भी भलीभाँति समझ सकती हो।'

'तुम क्यों जाओगी ?'

'इसके बारे में उन्हों ने कुछ नहीं कहा है। उन्होंने आज्ञा दी है, इसलिए जाऊँ गी। तुम जाओ गी न ?'

'यही तो सोच रही हूँ।'

'क्या सोच रही हो ? क्या 'प्रिय-प्राण-हन्त्री' वाली बात याद पड़ती है।'

'ना, अब उसका कुछ डर नहीं।'

'क्यों डर नहीं है, मुझे समझाओ ? यह समझ कर तुम्हारे साथ जाना स्थिर करूँगी।'

'कौन किसे मारता है, बहिन ! मारने वाला तो एक ही होता है। जो मारे गा उसे उसने पहले ही मार रखा है। सभी मरें गे। मेरे हाथ से, एक-न-एक दिन उन्हें मरना ही होगा। यह कहना व्यर्थ है कि मैं कभी भी अपनी इच्छा से उन्हें नहीं मारूँ गी। तो भी जो सब के कर्त्ता-धर्त्ता हैं यदि उन्होंने यह स्थिर कर रखा है कि मेरे ही हाथों से मेरे स्वामी को संसार-यन्त्रणा से मुक्ति मिले गी, तो कौन इसे मेट सकता है ? चाहे मैं वन-वन घूमूँ, समुद्र पार चली जाऊँ, मुझे उसकी आज्ञा के वश में होना ही पड़ेगा। स्वयं मैं बड़ी सावधानी से धर्मानुसार आचरण करूँ गी—यदि उनका कुछ अनिष्ट होगा—तो इसका मुझे कुछ दुख-सुख नहीं।'

जयन्ती मन में बड़ी प्रसन्न हुई। उसने पूछा, 'तब क्या सोच रही हो ?'

'सोचती हूँ, जाने पर यदि वे मुझे फिर छोड़ दें !'

'यदि जन्म-पत्री का डर नहीं है तो क्यों छोड़ देंगे ? और तुम आओगी ही क्यों ?'

'अब क्या मैं राजा के वाम-भाग में बैठने योग्य हूँ ?'

'एक हजार बार। पहले-पहल जब मैंने स्वर्णरेखा या वैतरणी के तीर पर देखा था तब से तुम्हारा रूप, गुण कितना बढ़ गया है, यह तुम नहीं जानती।'

'छिः !'

'तुम नहीं जानतीं तुम्हारा गुण अब कितना गुना बढ़ गया है। कौन राजमहिषी तुम्हारी बराबरी कर सकती है ?'

'तुमने मेरी बात नहीं समझी। मैं कहती थी, जिस श्री को लौटाने के लिए वे इतना बुलाते थे, अब वह श्री नहीं रही—तुम्हारे हाथों से उसकी मृत्यु हो गई। अब तो वह तुम्हारी चेली है। तुम्हारी चेली को ले कर क्या महाराजधिराज सीताराम सुखी होंगे ? और क्या तुम्हारी चेली भी महाराजाधिराज को ले कर सुखी होगी ? राजा की नौकरी के लिए तुम्हारी शिष्या योग्य नहीं।'

'मेरी शिष्या के लिए सुख-दुख किस बात का ?'

'मुझे सुख-दुख नहीं, लेकिन उन्हें तो है। जब वे देखेंगे कि उनकी श्री मर गई है—उसकी देह ले कर एक संन्यासिनी घूम रही है, तब क्या उन्हें दुख नहीं होगा ?'

'हो सकता है, नहीं भी हो सकता। यह सब विचार करने का कुछ काम नहीं। जिसने अनन्त सुन्दर कृष्णचन्द्र के चरण-कमलों में मन लगाया है, उन्हें छोड़ कर उसके चित्त में कोई स्थान नहीं पाता—उसके सब काम सुचारु रूप से होते हैं। चलो; तुम्हारे स्वामी का हो चाहे तुम्हारा, किसी का भी यदि मंगल करना है तो अभी चलें।'

जब तक यह बातचीत हो रही थी तब तक जयन्ती के हाथ में दो त्रिशूल थे। श्री ने पूछा, 'ये त्रिशूल किसलिए ?'

'महात्मा ने हम दोनों को भैरवी वेश में जाने के लिए कहा है। उन्होंने ये दोनों त्रिशूल दिए हैं। जान पड़ता है, ये मन्त्रित हैं।'

तब वे भैरवी के वेश धारण किये पर्वत पर चढ़ कर विरूपा के किनारे-किनारे गंगा की ओर चलीं। रास्ते की बगल से फूल तोड़ कर उनकी पंखड़ियों और पराग को अगल-बगल कर पुष्ट-निर्माता की अनन्त महिमा का गुण-गान करती हुई दोनों चलीं। किसी ने एक बार भी सीताराम का नाम मुँह से न निकाला। इन अभागिनी को ईश्वर ने क्यों रूप-यौवन दिया, उसे वही जानते हैं। या जिस मूर्ख सीताराम ने 'श्री-श्री' कर के आसमान सिर पर उठा रखा था, वह बतला सकता है। संभवतः दोनों की ही डाकिनी की श्रेणी में गिनती होगी।

| ९ |

बन्दा अली नामक भूषणा के एक मामूली मुसलमान ने एक बड़े मुसलमान घर की स्त्री निकाल कर उससे निकाह कर लिया था। उसके पति ने अपनी भगाई हुई स्त्री को बलपूर्वक छुड़ाने का बहुत उद्योग किया। बन्दा अली बीबी को भगा ला कर मुहम्मदपुर में रहने लगा। पहले गङ्गाराम से उसकी जान-पहचान थी। उनकी ही सिफारिश से वह सीताराम की नागरिक सेना में भर्ती हुआ था। गङ्गाराम उसका बड़ा विश्वास करते थे। इस समय उन्होंने उसे गुप्त रूप से तुराब खाँ के पास भेजा। उससे कहला भेजा—चन्द्रचूड़ धोखेबाज हैं। आप को धोखा दे कर टाल-मटूल करना ही उनका उद्देश्य है। वह वही उपाय कर रहे हैं, कि सीताराम आ पहुँचे। नगर भी उनके हाथ में नहीं है। चाह कर भी वह नगर को आप को नहीं दे सकते। नगर मेरे हाथ में है। मेरे न देने से नगर किसी को नहीं मिल सकता, सीताराम भी नहीं पा सकते। मैं फौजदार साहब के लिए नगर छोड़ सकता हूँ, लेकिन उसके बारे में स्वयं फौजदार साहब से बातचीत करना चाहता हूँ, नहीं तो हो नहीं सकता। लेकिन मैं तो फरार असामी हूँ, प्राण के डर से जाने का साहस नहीं कर सकता। यदि फौजदार साहब मुझे अभय कर दें तो मैं जा सकता हूँ।

गङ्गाराम के सौभाग्य से इस समय बन्दा अली की एक बहन तुराब खाँ की एक बेगम थी। इसलिए फौजदार साहब से मिलने में बन्दा अली को कुछ दिक्कत नहीं उठानी पड़ी। बातचीत ठीक हुई। तुराब खाँ ने अपने हाथ से गङ्गाराम को पत्र लिखा—

'तुम्हारे सब कसूर माफ कर दिए गए। कल रात को मेरे सामने हाजिर हो!'

बन्दा अली भूषणा से लौट आया। जिस नाव से वह पार हो रहा था, चाँद साहब फकीर भी उसी नाव से पार हो रहा था। बन्दा अली के साथ फकीर की बातचीत होने लगी। फकीर के यह पूछने पर कि कहाँ गये थे, बन्दा अली ने कहा—भूषणा गया था। फकीर ने भूषणा का समाचार पूछा, बन्दा अली तुराब खाँ से मिल कर आता था इसलिए उसका मिजाज जरा चढ़ा था। भूषणा का समाचार पूछने पर वह एक ही साथ कोतवाल, बख्शी, कारकुन, पेशकार और खुद फौजदार साहब का हाल-चाल भी सुना गया। फकीर सीताराम का शुभचिन्तक था। उसने मन में स्थिर किया कि मुझे इसकी खोज-खबर रखनी होगी।

| १० |

गङ्गाराम ने एकान्त में फौजदार से मुलाकात की। फौजदार ने उन्हें किसी बात का डर नहीं दिखाया। इसलिए सब बात तय हुई। गङ्गाराम ने स्वीकार किया कि फौजदारी सेना के मुहम्मदपुर के फाटक पर पहुँचते ही वे नगर का द्वार खोल देंगे।

फौजदार ने कहा, 'द्वार पर सेना के पहुंचने पर तो द्वार खोल दो गे। पर इस समय मृण्मय के दाब में बहुत से सिपाही हैं। रास्ते में, खास कर पार होते समय वे अवश्य युद्ध करेंगे। युद्ध में हार-जीत होती है। यदि युद्ध में मेरी जीत होगी तो बिना तुम्हारी सहायता के ही मैं किले पर अधिकार कर सकता हूँ। यदि हार हुई तो तुम्हारी सहायता से भी हमारा कुछ उपकार न होगा। इसके लिए भी कुछ सोचा है?'

'भूषणा से मुहम्मदपुर जाने के लिए दो रास्ते हैं। एक उत्तर ओर है और दूसरा दक्खिन ओर है। दक्खिनवाले रास्ते से जाने में दूर जा कर नदी पार होना पड़ता है, उत्तर वाले रास्ते से किले के सामने ही पार होना पड़ता है। मुहम्मदपुर पर हमला करते समय आप अपनी फौज दक्खिन वाले रास्ते से ले जइएगा। मृण्मय के ध्यान में यह बात कभी न आएगी। किले के सामने नदी पार करना कठिन है, अतः वह भी सेना लेकर आप से लड़ने के लिए दक्खिन वाले रास्ते की ओर जाएगा। उसी समय उत्तर वाले रास्ते की ओर सेना ले कर आप किले के सामने नदी पार हो जाइएगा। उस समय किले में फौज न रहे गी, या रहेंगे तो बहुत थोड़े से। अतः आप अनायास नदी पार हो कर खुले द्वार से किले के भीतर घुस सकते हैं।'

'किन्तु दक्खिन की ओर जाते-जाते यदि मृण्मय यह सुन पावे कि हमलोग उत्तर की ओर फौज ले कर जा रहे हैं तो वह वहाँ से लौट आ सकता है।'

'आप आधी फौज उत्तर की ओर और आधी दक्खिन की ओर भेजिएगा। पर यह किसी को भी न मालूम होने पावे कि आप उत्तर की ओर फौज भेज रहे हैं। फौज को रात में रवाना कर नदी के किनारे कुछ दूर पर जंगल में छिपा कर रखना अच्छा होगा। उसके बाद मृण्मय के फौज ले कर कुछ दूर चले जाने पर बेखटके नदी पार की जा सकती है। मृण्मय की फौज उत्तर दक्खिन के बीच में रह कर नष्ट हो जाएगी।'

यह परामर्श सुन कर फौजदार साहब सन्तुष्ट और राजी हुए। बोले, 'बहुत ठीक। तुम मेरी भलाई चाहने वाले हो। इसमें सन्देह नहीं कि किसी पुरस्कार के लिये ही तुम ऐसा कर रहे हो। क्या पुरस्कार तुम चाहते हो?'

गंगाराम ने अपना मनोवांछित चाहा। उनके मन की माँग और पुरस्कार रमा थी।

सन्तुष्ट हो गंगाराम ने बिदा हुए और उसी रात मुहम्मदपुर लौट आए।
गंगाराम यह नहीं जानते थे कि चाँदशाह फकीर उनके पीछे लगा है।

|११|

शाम को आ कर गुप्तचर ने चन्द्रचूड़ को खबर दी कि फौजदार की सेना मुहम्मदपुर पर चढ़ाई करने के लिए दक्खिन के रास्ते से आ रही है।

तब चन्द्रचूड़ मृण्मय और गंगाराम को बुला कर परामर्श करने लगे। यह स्थिर हुआ कि सेना ले कर आज रात ही मृण्मय दक्खिन को चले जायँ और ऐसी व्यवस्था करें कि मुसलमानी सेना नदी पार न कर सके।।

इधर लड़ाई की खूब जोर-शोर से तैयारी होने लगी। पहले ही मृण्मय तैयार बैठे थे। सेना ले कर वे उसी रात को दक्खिन की ओर रवाना हुए। किले की रक्षा के लिए कुछ सिपाही रख गए। वे गङ्गाराम के हुक्म के अन्दर रहे।

इस दंगे-हंगामे से गरीब रमा वहुत अधिक परेशान हो उठी। जैसे सब लोगों के कानों में मुसलमानों के आने की खबर पहुँची वैसे ही रमा ने भी यह खबर सुनी। मुरली ने कहा, 'अब आप बाप के घर भाग जाने का उपाय करें।'

रमा ने कहा, 'मरना होगा—यहीं मरूँगी, पर कलंक के रास्ते में न जाऊँगी। तुम एक वार गंगाराम के पास जाओ। मैं मरूँगी तो यहीं मरूँगी, लेकिन उन्हें याद दिला देना कि किसी तरह भी वे मुझसे मुलाकात नहीं कर सकते।'

मन स्थिर करने के लिए रमा नन्दा के पास जा बैठी। उस रात महल में किसी की आँखों में नींद न आई।

आज्ञा पा कर मुरली गंगाराम के पास गई। आधी रात को घर में अकेले बैठ कर गंगाराम गम्भीर चिन्ता में डूबे थे। रत्न की आशा में वे समुद्र का मन्थन करने जा रहे हैं। क्या तैर कर वे किनारा पा सकते है? अपने साहस पर भरोसा करते हुए भी गंगाराम इसकी कुछ भी मीमांसा न कर सके। जो सोच कर चिन्ता कर कुछ स्थिर नहीं कर सकता उसका अन्तिम भरोसा जगदीश्वर है। वह कहता है—भगवान् जो करें। लेकिन गंगाराम वह भी नहीं कह सकते थे। जो पाप में लीन हैं वह जानता है कि भगवान् उसके विमुख हैं—उसके भाई-बन्धु शत्रु है। अतः बड़े बेचैन हो गंगाराम चिन्ता में डूबे थे।

इसी समय मुरली ने आ कर रमा का कहा संवाद उनको सुनाया।
गंगाराम ने कहा, 'कहो तो अभी जा कर बच्चे को ले आऊँ।'

मुरली ने कहा कि यह नहीं हो सकता। जब मुसलमान महल में घुसेंगे तब जा कर आप रक्षा करेंगे, यही रानी का अभिप्राय है।

'तब क्या होगा, कौन कह सकता है? यदि वह रक्षा कराना चाहती हों तो इसी समय बालक को मुझे दे दें।'

'मैं उसे ले आऊँ?'

'ना, मुझे बहुत बातें कहनी हैं।'

'अच्छा पूस महीने में।'

यह कह कर मुरली हँसती हुई चली गई। लेकिन गंगाराम के घर से बाहर निकल कर सड़क पर आते ही अकस्मात् उसकी वह हँसी होंठों में समा गई। डर से उसका चेहरा काला हो गया।

देखा, प्रभात कालिक शुक्ल तारा की तरह चमकती, त्रिशूलधारिणी दो भैरवी मूर्तियाँ सड़क पर खड़ी हैं। मुरली ने उन्हे पार्वती की दासियाँ समझ पृथ्वी पर लेट कर प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर खड़ी हो गई।

एक भैरवी ने कहा, 'तुम कौन हो?'

कातर स्वर से मुरली ने कहा, 'मैं मुरली हूँ।'

'मुरली कौन?

'मैं छोटी रानी की दासी हूँ।'

'इतनी रात गए नगर-रक्षक के घर क्यों आई थी?

'महारानी ने मुझे भेजा था।

'सामने उस देव-मन्दिर को देखती हो?'

'हाँ।'

'हम लोगों के साथ उसके भीतर चलो।'

'जो आज्ञा।'

तब दोनों मुरली को त्रिशूलों की नोक के बीच रख कर मन्दिर में ले गईं।

। १२ ।

चन्द्रचूड़ तर्कालंकार को उस रात नींद नहीं आई। सारी रात नगर में घूम-घूम कर उन्होंने देखा कि नगर-रक्षा के लिए कोई प्रयत्न नहीं हो रहा है। इसके लिए गंगाराम से कहने पर उसने बड़ी-बड़ी बातें कह कर फटकार दिया। तब वे उद्विग्न चित्त हो कुशासन पर बैठ कर सर्व-रक्षक, विपद्-भंजन मधुसूदन को याद कर रहे थे।

इसी समय चाँदशाह फकीर ने आ कर गङ्गाराम के भूषणा जाने का वृत्तांत उनसे कह कर सुनाया। चन्द्रचूड़ काँप उठे। एक बार उन्होंने मन में सोचा कि कुछ सिपाहियों द्वारा गङ्गाराम को कैद कर नगर-रक्षा का भार और किसी को दूँ। फिर यह भी सोचा कि सिपाही उनके कहने में नहीं हैं, वे गङ्गाराम के कहने में हैं। अतः ऐसा करने में सफलता न मिलेगी। मृण्मय के रहने पर किसी प्रकार की गड़बड़ी न होती, क्योंकि सिपाही मृण्मय के आज्ञाकारी हैं। मृण्मय को बाहर भेज कर मैंने सर्वनाश उपस्थित किया है—यही सोच, दुखित हो कर चुपचाप वे असुर-निकन्दन हरि की याद कर रहे थे।

उसी समय उन्होंने सामने प्रफुल्लवदना त्रिशूल-धारिणी भैरवी को देखा।

आश्चर्य से चन्द्रचूड़ ने पूछा, 'माँ, तुम कौन हो?'

भैरवी ने कहा, 'बाबा, शत्रुओं से नगर की रक्षा करने के लिये कोई उपाय क्यों नहीं हो रहा है? मैं तुमसे यही पूछने आई हूँ।'

वह भैरवी जयन्ती थी।

प्रश्न सुन कर और भी विस्मित हो चन्द्रचूड़ ने पुछा, 'माँ, क्या तुम इस नगर की राजलक्ष्मी हो?'

'मैं जो भी हूँ, मेरा जवाब दो, नहीं तो तुम्हारा मंगल न होगा।'

'माँ! अब मेरे किये कुछ नहीं हो सकता। राजा नगर-रक्षा का भार नगर-रक्षक को दे कर गये हैं, नगर-रक्षक नगर-रक्षा के लिए कोई उपाय नहीं कर रहे हैं। सेना मेरे वश में नहीं है। कहो, मैं क्या करूँ?'

'नगर-रक्षक का कुछ हाल तुमको मालूम है? उनकी विश्वासघात की बात सुनी नहीं!'

'सुनी है, वे तुराब खाँ के पास गये थे। जान पड़ता है, नगर को वे उनके हाथ सौंप देंगे। मैंने अपनी मूर्खतावश उसके लिये कोई उपाय नहीं किया। माँ, जान पड़ता है, तुम इस नगर की राजलक्ष्मी हो, कृपा कर मुझे भैरवी वेश में दर्शन दिया है। माँ, तेजस्विनी हो कर अपनी इस पुरी की रक्षा करो।'

यह कह कर चन्द्रचूड़ ने हाथ जोड़ कर भक्तिभाव से जयन्ती को प्रणाम किया।

'तो मैं इस नगर की रक्षा करूँगी'—यह कह कर जयन्ती चली गई। चन्द्रचूड़ के मन में कुछ भरोसा हुआ।

जयन्ती को भी आशातीत फल मिला। श्री बाहर थी। उसको साथ ले वह गङ्गाराम के घर की ओर चली।

| १३ |

मुरली के चले जाने पर गङ्गाराम को चारों ओर अंधकार-ही-अंधकार दिखाई देने लगा। जिसके लिए उन्होंने विपद के समुद्र में डुबकी लगाई है वह तो इनसे प्रेम नहीं करती। आँखें मूँद कर वह समुद्र में कूद पड़े हैं, क्या उन्हें समुद्र में रत्न मिलेगा नहीं, डूब मरें गे। चारों ओर अँधेरा है। इस समय कौन उनका उद्धार करेगा ?

अकस्मात् गङ्गाराम का शरीर रोमांचित हो उठा। देखा—दरवाजे पर प्रभात-कालिक तारा की तरह चमकती, त्रिशूलधारिणी एक मूर्ति खड़ी है। उसके शरीर की ज्योति से दिए की ज्योति फीकी-फीकी पड़ गई। यह समझ कर की साक्षात् भवानी भूतल पर अवतीर्णं हुई, गङ्गाराम ने मुरली की तरह झुक कर, उसे हाथ जोड़ प्रणाम किया। कहा, 'दास के लिए क्या आज्ञा होती है ?'

जयन्ती ने कहा, 'बचा ! तुम्हारे पास कुछ भिक्षा के लिए आई हूँ।'

भैरवी की बात सुन कर गङ्गाराम ने कहा, 'माँ, आप जो कुछ माँगें गी, मैं दूँ गा। आज्ञा दीजिए।'

'मुझे एक गाड़ी गोला-बारूद दो और एक अच्छा गोलंदाज भी दो।'

गङ्गाराम इधर-उधर करने लगे। सोचा, यह कौन है ? फिर पूछा, 'माँ, आप गोला-बारूद ले कर क्या करें गी ?'

'भगवान् का काम करूँ गी।'

गङ्गाराम के मन में बड़ा सन्देह हुआ—यदि यह कोई देवी है तो इसे गोले बारूद से क्या काम ? यदि यह मानुषी है तो इसे गोला-बारूद क्यों दूँ ? पता नहीं किसकी दूती है। यह सोच कर गङ्गाराम ने पूछा, 'माँ, तुम कौन हो ?'

'मैं जो हूँ, रमा और मुरली की सब बातें मैं जानती हूँ। इसके सिवा तुम्हारे भूषणा जाने और वहाँ की बातचीत की खबर भी मुझे मालूम है। जो मैं चाहती हूँ, उसे मुझे इसी क्षण ला कर दो नहीं तो, इस त्रिशूल से तुम्हारा वध कर डालूँ गी।'

यह कर कर उस तेजस्विनी भैरवी ने चमकते हुए त्रिशूल को उठा कर चलाया।

गङ्गाराम बाल-बाल बच गए। 'आओ तो देता हूँ'—कह कर वे भैरवी को अस्त्रागार में ले गए। जयन्ती ने जो-जो माँगा, सब उन्होंने दिया और प्यारेलाल नामक एक गोलंदाज को साथ में कर दिया। जयन्ती को विदा कर गङ्गाराम ने गढ़ के दरवाजे को बन्द रखने की आज्ञा दी, ताकि कोई बिना उनकी अनुमति के आने-जाने न पावे।

गोला-बारूद ले कर जयन्त और श्री घर के बाहर हो राजमहल के घाट पर

जा पहुँचीं। देखा, एक लम्बे डील-डौल का सुन्दर पुरुष वहाँ बैठा है।

दोनों भैरवियों में एक तो गोला बारूद की गाड़ी और गोलंदाज को ले कर कुछ दूर पर खड़ी हुई और एक ने उस पुरुष के पास जा कर पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'मैं चाहे जो हूँ, तुम कौन हो ?'

'यदि तुम वीर पुरुष हो तो मैं यह गोला-बारूद तुम्हें देती हूँ, तुम इस नगर की रक्षा करो।'

सुन कर उस पुरुष को विस्मय हुआ। देवी के भ्रम में उसने जयन्ती को प्रणाम किया। कुछ देर सोचने के बाद ऊँची साँस ले कर उसने कहा कि उससे क्या मिले गा ?

'तुम क्या चाहते हो ?'

'जो मैं चाहता हूँ, नगर-रक्षा करने से वह मुझे मिल जायगा ?'

'हाँ, मिले गा।'

यह कह कर जयन्ती सहसा वहाँ से चली गई।

|१४|

चिन्ता के कारण चन्द्रचूड़ ठाकुर को उस रात नींद न आई। बहुत सबेरे ही राजमहल की छत पर चढ़ कर चारों ओर वे देख रहे थे। उन्होंने देखा कि ठीक उनके सामने नदी के उस पार बहुत सी नावें लगी हैं। किनारे बहुत से आदमी भी देख पड़ते हैं। अभी बिलकुल साफ नहीं हुआ था, इसलिए वे पहचान न सके कि वे कौन हैं। तब उन्होंने गङ्गाराम को बुलवाया। आ कर गङ्गाराम भी अट्टालिका की छत पर चढ़ गए। चन्द्रचूड़ ने पूछा, 'उस पार इतने आदमी क्यों इकट्ठे हैं ?'

देख कर गङ्गाराम ने कहा, 'मैं क्या जानूँ ?'

'देखो, किनारे पर बहुत आदमी हैं। इतनी नावें और इतने आदमी क्यों हैं ?'

'कह नहीं सकता।'

बातें करते-करते काफी उजाला हो गया। तब जान पड़ा कि वे सब सिपाही हैं। चन्द्रचूड़ ने कहा, 'गङ्गाराम ! सर्वनाश हुआ। हमारे गुप्तचरों ने हमें धोखा दिया या उन्हें ही धोखा हो गया। हमने दक्खिन की ओर सेना भेजी है, लेकिन उनकी फौज इस रास्ते से आ रही है। सर्वनाश हुआ ! अब कौन रक्षा करेगा ?

'क्यों, मैं क्या करने के लिए हूँ ?'

'तुम दो-चार सिपाहियों को ले कर इतनी बड़ी फौज का क्या कर सकते हो ? और तुम तो किले की रक्षा के लिए कुछ उद्योग भी नहीं कर रहे हो ? कल जब मैंने कहा था तो तुमने मुझे कड़ी-कड़ी बातें सुनायीं। अब यह जिम्मेदारी कौन अपने कंधे पर ले ?'

'इतना भय मत कीजिए। उस पार जो आप फौज देख रहे हैं, उसमें अधिक सिपाही नहीं। ये कुछ नावें और कुछ सिपाही क्या पार हो सकते हैं ? फौज को ले कर किनारे पर जा खड़ा होता हूँ। ज्यों हीं वे इस पार आवेंगे, मैं उन्हें मार भगाऊँगा।'

गङ्गाराम का अभिप्राय था कि सेना ले कर बाहर तो हूँगा, लेकिन इस समय नहीं। पहले फौजदार की सेना निर्विघ्न पार हो ले, उसके बाद किले का द्वार खोल कर फौज ले मैं बाहर जाऊँगा। तब खुला द्वार पा कर मुसलमान बिना रोक टोक के किले में घुस जाएँगे। मैं कुछ आपत्ति न करूँगा। कल जो मूर्त्ति उन्होंने देखी वह कितनी भयंकर थी। वह कौन थी, वे जान न सके।

चन्द्रचूड़ सब समझ गए, तो भी बोले, 'तो जल्दी जाओ। फौज ले कर बाहर हो जाओ। देर मत करो। सब नावें सिपाहियों से भर कर छूट रही हैं।'

तब गङ्गाराम जल्दी से छत पर से नीचे आए। भयभीत हो कर चन्द्रचूड़ देखने लगे कि पचीस नावों पर पाँच-छः सौ सिपाही चढ़ कर आ रहे हैं। वे घबरा कर देखने लगे कि कितनी देर में सेना ले कर गङ्गाराम बाहर होता है। देखा, सिपाही तैयार हो रहे हैं, घूम रहे हैं, फिर रहे हैं,—पर बाहर नहीं निकलते हैं। तब चन्द्रचूड़ ने सोचा—हाय ! हाय ! बड़ा बुरा किया—गङ्गाराम का क्यों विश्वास किया ? अब सर्वनाश हुआ। वह ज्योतिर्मयी राजलक्ष्मी कहाँ ? क्या उन्होंने भी मुझे धोखा दिया ? गङ्गाराम को खोजने के अभिप्राय से चन्द्रचूड़ छत से नीचे उतर रहे थे कि इसी समय तोप का धड़ाका हुआ। यह न जान पड़ा कि मुसलमानों की नावों से आवाज हुई है; क्योंकि मुसलमानों की नावों पर कोई तोप नहीं दिखाई पड़ती थी। चन्द्रचूड़ ने बड़े गौर से देखा कि मुसलमानों के नावों पर कहीं तोप का धुआँ नहीं देख पड़ता है। आश्चर्य से उन्होंने देखा कि तोप की आवाज के साथ-ही-साथ मुसलमानों की एक नाव पानी में डूब गई और उस पर के सिपाही तैर-तैर कर दूसरी नाव पर चढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं।

'तब क्या यह हम लोगों की तोप है ?'

यह सोच कर चन्द्रचूड़ ने चारों ओर देखा। देखा कि किले का एक भी सिपाही बाहर नहीं निकला है। किले के सामने जहाँ तोपें सजी रखी हैं, वहाँ एक भी आदमी नहीं। तब यह तोप किसने छोड़ी है ?

चन्द्रचूड़ यह देखने के लिए चारों ओर देखने लगे कि किसी ओर से भी धुआँ

निकलता दिखाई देता है या नहीं। देखा, किले के सामने जहाँ राजमहल का घाट है, वहीं से घूम-घूम कर धुआँ आसमान की तरफ उठ रहा है।

तब चन्द्रचूड़ को ख्याल आया कि घाट पर पेड़ के नीचे एक तोप रखी है! सीताराम ने तोप इसलिए रखी थी कि किसी शत्रु की नाव इस पार न आ सके। यह निश्चित है कि इस समय कोई उसी तोप को चला रहा है। लेकिन वह है कौन, गङ्गाराम का एक भी सिपाही अभी बाहर नहीं निकला है, अब भी फाटक बन्द है। मृण्मय के सिपाही बहुत दूर चले गए हैं। यह नामुमकिन है कि मृण्मय इस तोप के लिए कोई सिपाही छोड़ गये होंगे, क्योंकि दुर्ग-रक्षा का भार गङ्गाराम के ऊपर है। बाहर के किसी आदमी ने इसे छोड़ा है, यह भी असम्भव है, क्योंकि बाहरी आदमी को गोला-बारूद कहाँ से मिलेगा? बाहरी आदमी का ऐसा अचूक निशाना हो भी नहीं सकता, यह तो किसी सिखे-सिखाए गोलन्दाज का काम है। चन्द्रचूड़ यह सोच ही रहे थे कि यह किस आदमी का काम है, कि इसी समय फिर उस तोप से वज्र की तरह शब्द हुआ। फिर वहाँ से आकाश में धुआँ उड़ने लगा। फिर मुसलमान सिपाहियों से भरी एक और नाव डूबी।

धन्य-धन्य कहते हुए चन्द्रचूड़ ताली पीटने लगे। अवश्य ही यह वही महादेवी हैं। जान पड़ता है, साक्षात् कालिका अवतीर्ण हुई हैं। जय लक्ष्मीनारायण जी! जय काली! जय लक्ष्मी! उसके बाद भयभीत हो कर चन्द्रचूड़ ने देखा कि जो नावें और नावों से आगे थीं, और जिनके तीर पर पहुँचने की सम्भावना थी, उन पर के सिपाही तीर को लक्ष्य कर के बन्दूक चलाने लगे। सहसा धुएँ से नदी की सतह पर अंधकार छा गया। शब्द के मारे कान नहीं दिए जाते। चन्द्रचूड़ ने सोचा—यदि हमारा रक्षक कोई देवता है, तो यह गोलियों की वर्षा क्या हो सकती है? और यदि कोई मनुष्य है तो इन गोलियों की बौछार के सामने कोई आदमी टिक नहीं सकता!

फिर उस तोप का धड़ाका हुआ। फिर दसों दिशाएँ काँप उठीं। फिर धुएँ से आसमान छा गया। फिर सिपाहियों से भरी एक नाव डूबी।

तब एक ओर एक तोप और दूसरी ओर सैकड़ों मुसलमान सैनिकों में घमासान लड़ाई छिड़ गई। शब्द सुन कर कान फटने लगे। उस तोप से इन्द्र-वज्र की तरह गम्भीर तीव्र भीषण शब्द होने लगा। नदी के वक्षस्थल पर इस प्रकार धुआँ छा गया कि चन्द्रचूड़ महल की छत पर से सिवा धुएं के समुद्र के और कुछ न देख सकते थे। वज्र की तरह उस तोप के भयंकर शब्द से वे अनुमान करते थे कि अभी भी हिन्दू धर्म-रक्षिणी वह देवी जीवित हैं। चन्द्रचूड़ आंखें फाड़-फाड़ कर उस धुएँ के समुद्र की ओर देखने लगे कि इस आश्चर्यमय संग्राम का क्या परिणाम होता है।

धीरे-धीरे आवाज कम पड़ गई। हवा चलने से धुआँ उड़ गया। तब चन्द्रचूड़ को वह जलमय रणक्षेत्र साफ-साफ दिखाई देने लगा। देखा—टूटी-फूटी नावें धारा में

उलट-पुलट कर बहती चली जा रही हैं। जीते और मरे हुए आदमियों से नदी ऐसी जान पड़ती है, मानो हवा के झोंकों से फुलवारी में फूल और पत्ते झर कर गिरे हों। किसी का हथियार, किसी का कपड़ा, किसी का बाजा और किसी की देह बहती चली जा रही है। कोई तैर कर भागा जा रहा है, किसी को घड़ियाल निगल रहा है। जो नावें डूबी नहीं थीं, उन पर कितने ही सिपाही चढ़ कर उस पार भागे जा रहे हैं। वज्र की चोट से घायल हुई राक्षसी सेना की तरह मुसलमानों की सेना लड़ाई छोड़ कर भाग चली।

यह देख हाथ जोड़ कर चन्द्रचूड़ ने सजल-नयन से गद्‌गद् स्वर में कहा—जय जगदीश्वर ! जय दैत्यदमन ! भक्ततारन ! धर्मरक्षक हरि ! आज बड़ी दया दिखाई ! आज स्वयं आपने शरीर धारण कर युद्ध किया, या तो स्वयं इस नगर की राजलक्ष्मी ने युद्ध किया। अथवा कदाचित् सीताराम आ गये हैं। तुम्हारे उस भक्त के बिना इस युद्ध में पार पाना मनुष्य के लिये सम्भव नहीं।

|१६|

तोप और बन्दूकों की गड़गड़ाहट और तड़तड़ाहट सुन कर गङ्गाराम ने मन में सोचा—यह क्या ? कौन लड़ाई कर रहा है ? वह डाकिनी तो नहीं है ? क्या वह कोई देवी हैं ? गङ्गाराम ने देखने के लिये एक जमादार को भेजा। जमादार बाहर निकला। उस दिन तभी पहले-पहल फाटक खोला गया।

लौट कर जमादार ने निवेदन किया कि मुसलमान लड़ाई कर रहे हैं।

बिगड़ कर गङ्गाराम ने कहा, 'वह तो मैं जानता हूँ, पर किसके साथ मुसलमान लड़ाई कर रहे हैं ?'

'किसी के साथ नहीं।'

हँस कर गङ्गाराम ने कहा, 'ऐसा कभी हो सकता है, रे मूर्ख ! तोप किसकी है ?'

'हजूर, तोप किसी की भी नहीं है।'

गङ्गाराम को बड़ा क्रोध हुआ। बोले, 'तोप की आवाज नहीं सुनते हो ?'

'सुनता तो हूँ।'

'तो यह तोप कौन चला रहा है ?

'यह देख नहीं सका।'

'तुम्हारी आँखें कहाँ थीं ?'

'मेरे सिर में।'

'तब क्यों नहीं देख सके ?'

'तोप देखी है—घाट की तोप है।'

'अच्छा, कौन चला रहा है ?'

'पेड़ की डालें।'

'क्या तुम पागल हो गये हो ? पेड़ की डालें भी कहीं तोप चलाती हैं ?'

'वहाँ तो किसी और को देखा नहीं। केवल देखा कि तोप बहुत सी डालियों से ढंकी पड़ी है।'

'तब जान पड़ता है कोई डालियों के आड़ में हो कर तोप दाग रहा है। इसमें संदेह नहीं कि वह बुद्धिमान् है। सिपाही उसे देख नहीं सकते, लेकिन वह पत्तों की आड़ से सिपाहियों का निशाना कर सकता है। तुम क्यों नहीं देख आये कि डालियों के भीतर कौन छिपा है ?'

'वहाँ क्या जाया जा सकता है ?'

'क्यों ?

'वहाँ गोलियों की वर्षा हो रही है।'

'जब गोली का इतना डर है तो लड़ाई करने के लिये क्यों आये ?'

तब गङ्गाराम ने नौकर को हुक्म दिया कि जमादार की पगड़ी और वर्दी उतार लो। युद्ध की सम्भावना देख कर मृण्मय ने चुने-चुने हिन्दुस्तानियों को नियुक्त किया था और किले की रक्षा के लिये उन्हें रख गये थे। उन्हीं में से चार सिपाहियों को गङ्गाराम ने हुक्म दिया कि घाट पर जहाँ तोप रखी है वहाँ जाओ और जो तोप चला रहा है उसे पकड़ लाओ।

बेचारे सिपाही जब तोप के पास आये, तब तक लड़ाई खतम हो चुकी थी। थके हुये घायल मुसलमान सिपाही भाग रहे थे। जा कर सिपाहियों ने डालियों के भीतर देखा—तोप के पास एक आदमी मरा पड़ा है। एक आदमी जीवित है, वह हाथ में पलीता ले कर बैठा है। वह जवान है, काछ मार कर धोती पहने है। सिर पर लोहे का टोप है। बारूद और राख से उसका सारा शरीर काला हो गया है। चारों सिपाहियों ने आ कर उसे पकड़ा। बोले, 'तू कौन है रे !'

'क्या है बाबू ?'

'तुम यहाँ बैठ कर क्यों तोप दाग रहे हो ?'

'क्यों, बाबू, इसमें क्या दोष है ? क्या तुम लोग मुसलमानों से मिले हो ?'

'अरे ! मुसलमान आएँगे तो हम उन्हें भगा देंगे। तुम क्यों दिक कर रहे हो तुम्हें हजूर में चलना होगा।'

'किसके पास जाना होगा ?'

'कोतवाल साहब के हुक्म से हम तुम्हें उनके पास ले चलेंगे।'

'अच्छा चलता हूँ, पहले मुसलमानों को बिदा कर लूँ। उनका एक आदमी भी जब तक दिखाई देगा तब तक क्या, तुम्हारे कोतवाल के आने से भी न उठूँगा। तब तक देखो, जो आदमी मरा पड़ा है उसे तुम लोग पहचानते हो या नहीं ?'

देखकर सिपाहियों ने कहा, 'हाँ, हम लोग इसे पहचानते हैं। यह तो हमारा गोलन्दाज प्यारेलाल है—यह यहाँ कैसे आया ?'

'तब पहले उसे किले में ले जाओ, तो, मैं चलता हूँ।'

सिपाही आपस में कहने लगे, यह आदमी तो ठीक कहता है। जो तोप के पास है उसी को ले जाने का हुक्म है। यही मुर्दा तोप के पास है—इसी को ले चलो। किन्तु हिन्दू सिपाही मुर्दे को छू नहीं सकते। तब आपस में सलाह कर के एक सिपाही डोम बुलाने गया और बाकी तीन उसकी राह देखते रहे।

इधर उस जवान आदमी ने देखा कि सब मुसलमान उस पार का किनारा छोड़ कर चले गये। तब उसने सिपाहियों से कहा, 'चलो भाई, तुम्हारे कोतवाल साहब को सलाम कर आवें।'

सिपाही उस आदमी को पकड़ कर ले चले।

जहाँ पर दुर्ग-रक्षक सिपाहियों की मण्डली थी—जहाँ भयभीत नगरवासी चींटी की तरह इकट्ठे थे—वहीं वे सिपाही उस नवजवान आदमी को ले गये।

अकस्मात् उस समय जय-ध्वनि से आकाश गूँज उठा। सैनिकों और नगर निवासियों ने एक स्वर में कहा, 'जय, महाराज की जय !'

'जय, महाराज की जय !'

'जय श्री सीताराम राजा बहादुर की जय !'

'जय लक्ष्मीनारायण जी की जय !'

जल्दी से आ कर चन्द्रचूड़ ने उस बारूद-राख लपेटे महापुरुष को गले से लगाया।

बारूद लपेटे हुए उस पुरुष ने उनकी पदधूलि ली। चन्द्रचूड़ ने कहा, 'लड़ाई देख कर ही मैं समझ गया कि तुम आ गये हो। तुम्हारे सिवा मनुष्य-लोक में और किसी का अचूक निशाना नहीं। इस समय और बातचीत करने के पहले गङ्गाराम को बाँध लाने का हुक्म दो।'

सीताराम ने हुक्म दे दिया। सीताराम को देख कर गङ्गाराम खिसका जा रहा था, लेकिन जल्दी ही पकड़ कर सीताराम की आज्ञा से वह कैद कर लिया गया।

१६

तब सीताराम सिपाहियों को किले के सामने रखी हुई सब तोपों के पास और दूसरे उपयुक्त स्थानों में नियुक्त कर तथा मृण्मय की खोज-खबर लेने के लिये आदमी भेज कर नहाने चले गये। नहाने के बाद वे चन्द्रचूड़ के साथ एकान्त में बातचीत करने लगे। चन्द्रचूड़ ने कहा, 'महाराज! आप कब आये! हम लोग कुछ भी न जान सके। आप अकेले क्यों आये? नौकर-चाकर कहाँ हैं? रास्ते में कोई कष्ट तो नहीं हुआ?'

'साथियों को राह में ही रख कर मैं अकेला आ गया हूँ। मेरी अनुपस्थिति में नगर की क्या अवस्था है, यह जानने के लिये अवेष में अकेला आ गया था। देखा, नगर चारों ओर से अरक्षित है। अब मैंने कुछ-कुछ समझा है कि ऐसा क्यों था। पीछे गढ़ में जाने के लिए देखा कि फाटक बन्द है। किले में न घुस सकने पर सबेरा होते देख, नदी किनारे जा कर मैंने देखा कि मुसलमान नाव से पार हो रहे हैं। दुर्ग-रक्षक रक्षा के लिए कोई उद्योग नहीं कर रहा है। यह देख कर जो कुछ मुझसे हो सका, मैंने किया।'

'जो आप ने किया, वह केवल आप ही से हो सकता था। इतना गोला-बारूद आप को कहाँ से मिला?'

'एक देवी ने मुझे गोला-बारूद और एक गोलन्दाज ला कर दिया।'

'देवी! मुझे भी उनके दर्शन मिले थे। वह इस नगर की राजलक्ष्मी हैं। वह गईं कहाँ?'

'मुझे गोला-बारूद दे कर अन्तर्द्धान हो गईं। अब आप इन कई महीनों का सब हाल कहिये।'

तब चन्द्रचूड़ को जहाँ तक मालूम था उन्होंने सब विस्तारपूर्वक कह कह सुनाया। अन्त में कहा, 'जिसके लिए आप दिल्ली गये थे, उसकी सफलता का संवाद सुनाइए।'

'कार्य सफल हो गया। मैंने बादशाह का कुछ उपकार किया था, इससे सन्तुष्ट हो कर उन्होंने मुझे बारह मौमियों के ऊपर आधिपत्य प्रदान किया और महाराजाधिराज की सनद दी है। यह बड़े दुर्भाग्य की बात है कि इस समय फौजदार से विरोध उठ खड़ा हुआ। क्यों नहीं, फौजदार सूबेदार के अधीन है और सूबेदार बादशाह के अधीन है। अतः फौजदार के साथ विरोध करना बादशाह के साथ विरोध करना हुआ। जिन्होंने मेरे ऊपर इतनी कृपा दिखलाई है, उनके विरुद्ध हथियार उठाना घोर कृतघ्नता है। आत्म-रक्षा करना तो सब का कर्त्तव्य है, किन्तु आत्म-रक्षा के सिवा फौजदार से लड़ाई ठानना मेरे लिए अनुचित है। अतः मैं इस विरोध को अपना दुर्भाग्य ही समझता हूँ।'

'यह हमारे लिए मंगलदायक है—हिन्दू मात्र के लिए मंगलदायक है। क्यों

नहीं, मुसलमानों से आप के मिल जाने पर हिन्दुओं की रक्षा कौन करेगा ? हिन्दू कहाँ खड़े होंगे ? यह आपके लिए भी मंगलप्रद है, क्यों कि जो हिन्दू-धर्म का पुनरुद्धार करेगा वही मनुष्यों में यशस्वी और सौभाग्यशाली है ।'

'मृण्मय की खबर पाए बिना कुछ कहा नहीं जा सकता कि अब क्या करना चाहिए ।'

शाम होने के बाद मृण्मय की खबर मिली । फौजदार का पीरबख्श खाँ नामक एक सेनापति आधी फौज ले कर आ रहा था । बीच राह में ही मृण्मय से उसकी भेंट हुई और लड़ाई हुई । मृण्मय के असाधारण साहस और कौशल से वह सेना के साथ हार गया और लड़ाई में खेत आया । विजयी मृण्मय अपनी सेना के साथ लौटे आ रहे थे ।

सुन कर चन्द्रचूड़ ने सीताराम से कहा, 'महाराज, अब क्या देख रहे हैं ? इसी समय विजयी सेना को ले कर उस पार जा भूषणा को दखल कीजिए ।'

|१७|

जयन्ती ने कहा, 'श्री ! क्या देख रही हो ? इसी समय स्वामी से भेंट करो ।'

'क्या इसीलिए आई हूँ ?'

'सब प्रकार के मनुष्यों में राजर्षि सब से श्रेष्ठ होते हैं । राजा को राजर्षि क्यों नहीं बनातीं ?'

'मुझसे ऐसा हो सकता है ?'

'मैं जानती हूँ, तुम इस महान कार्य को कर सकती हो । अतः जाओ सीताराम को प्रणाम करो ।'

'सोला जल में तो तैरता है, लेकिन रस्सी से उसमें पत्थर बाँध देने से वह डूब जाता है । क्या मैं डूब मरूँ ?'

'उपाय जानने से मरना नहीं होगा । डुबकी मारने वाले समुद्र में डुबकी लगाते हैं किन्तु वे मरते नहीं, बल्कि रत्न निकाल लेते हैं ।'

'मुझे भरोसा नहीं है कि ऐसा कर सकूँगी । अतः इस समय मैं राजा से साक्षात् न करूँगी । न होगा तो कुछ दिन यहीं रह कर मन में जाँच कर देखूँगी । जब देखूँगी कि इस समय मेरा चित्त वश में नहीं है तो उनसे साक्षात् न करके यह वेश छोड़ कर चली जाऊँगी—यही मैंने स्थिर किया है ।'

अतः श्री राजा के सामने न हो सकी ।

तीसरा भाग

|१|

डाकिनी

भूषणा नारी जीत ली गयी। युद्ध में सीताराम की जीत हुई। तुराब खाँ मृण्मय के हाथों मारे गये। यह सब तो ऐतिहासिक घटनाएँ हैं।

भूषणा पर अधिकार कर लिया गया। बादशाही सनद और अपने बाहुबल से सीताराम ने बाहर भौमिकों पर आधिपत्य स्थापित कर और महाराज की उपाधि धारण कर शासन करना आरम्भ किया। शासन की बागडोर लेते ही सबसे पहले गंगाराम को दंड देने की बात उठी। उसके विरुद्ध सबूत की कोई कमी न थी। पति-परायण-अपराधिनी रमा ने ही सब बातें साफ-साफ सीताराम से कह दीं और जो कुछ बाकी था उसे मुरली और चाँद शाह फकीर ने पूरा कर दिया। केवल गंगाराम से पूछना बाकी था। उसी समय इस बात को ले कर बड़ा गोलमाल मचा।

आँखों से आँसू की धारा बहाती हुई रमा ने अन्तःपुर में सीताराम से सब बातें कहीं। सीताराम ने उसके एक अक्षर का भी अविश्वास न किया। वे जानते थे कि रमा निरपराध है, यदि उसका कोई अपराध है तो वह है पुत्र और पति के प्रति उसका निष्कपट प्रेम। लेकिन दूसरे इस बात को समझ न सके। गंगाराम क्यों कैद किया गया, इस बात को ले कर नगर में तरह-तरह की अफवाहें उड़ने लगीं। कुछ मुरली के दोष से, कुछ पहरे वाले पाँडे ठाकुर की उल्टी-सीधी बातों से लोग रमा का नाम इस संबन्ध में घसीटने लगे। किसी ने कहा—गंगाराम मुगलों के हाथ राज्य बेचने जा रहा था। किसी ने कहा—वह छोटी रानी के महल में पकड़ा गया था। किसी ने कहा—

दोनों ही बातें ठीक हैं, राज बेचने में छोटी रानी की भी सलाह थी। राजा के कानों तक ये सब बातें तो न पहुँचीं, परन्तु रानी ने सब सुनीं। महिला-समाज में ऐसी बातें बहुत जल्दी फैल जाती हैं। दोनों रानियों के कानों में बातें पड़ी। सुन कर रमा ने चारपाई पकड़ ली— रो-रो कर तकिया भिगो डाला और अन्त में निश्चय किया कि गले में फाँसी लगा कर या पानी में डूब कर मर जाऊँगी। नन्दा ने सुन कर बुद्धिमती स्त्री की तरह काम किया।

खोजती-खोजती नन्दा वहाँ पहुँची, जहाँ रमा तकिए से मुँह ढक कर रो रही थी और सोच रही थी कि पानी में डूब कर मरना सरल है य गले में फाँसी डाल कर। जा कर नन्दा ने कहा, 'क्यों, तुमने भी वह बात सुनी है ?'

सुन कर रमा ने गर्दन हिलाया, अर्थात् सुनी है। उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बड़े जोरों से वह चली।

उसकी आंखों से आँसुओं को पोंछती हुई प्रेम से नन्दा ने कहा, 'बहिन, रोने से कलंक नहीं छूटे गा। बिना रोये जैसे यह कलंक जाय वैसा ही करना होगा। यदि हो सके तो उठो—और धीरज धर कर मुझसे सब बातें खोल कर साफ-साफ कहो। देखो, इस समय मुझे अपनी सौत मत समझो, तुम्हारे मुँह में कालिख चाहे लागे या न लगे, इससे राजा का ही सिर नीचा हुआ है। तुम्हारे भो स्वामी हैं और मेरे भी। यह मन में मत समझो कि मुझसे बढ़ कर तुम्हें इसकी लाज है। महाराज अन्त:पुर का भार मुझे दे कर गए थे, यदि यह बात उनके कानों में पड़ेगी तब उनके पूछने पर मैं क्या जवाब दूँगी।'

रमा ने कहा, 'जो कुछ हुआ था, सब मैंने उनसे कह कर किया है। उन्होंने मेरी बातों का विश्वास कर मुझे क्षमा कर दिया है। मेरा तो कोई दोष नहीं है।'

'यह तुम्हें कहना न होगा, मैं जानती हूँ, इसमें तुम्हारा कुछ दोष नहीं हैं, इसके लिए दुःख मत करो। तो भी मुझसे कहो कि क्या-क्या हुआ।'

'क्यों न-कहूँगी। मैं यह बात सब के सामने कह सकती हूँ।'

यह कह कर आँखों से आँसू रोक रमा ने उठ-बैठ कर सब बातें नन्दा को सुनाईं।

नन्दा ने रमा के कहने का विश्वास किया। उसने कहा, 'यदि मुझसे पूछ कर यह काम करती तो क्या बात इतनी बढ़ती ? अच्छा, जो हुआ सो हुआ, अब उसके लिए राने-धोने से काम न चलेगा। अब तो यही करना होगा जिससे नाम में किसी तरह का धब्बा न लगे।'

'बहन, यदि तुम ऐसा न करोगी तो निश्चय जानो मैं पानी में डूब कर मर जाऊँगी या गले में फाँसी लगा लूँगी। मैं तो रानी हूँ, भला कोई ऐसी भिखारिन भी है जो कलंक लगने पर जीना चाहेगी ?'

'बहन, मरना न होगा, पर क्या तुम एक साहस का काम कर सकती हो ? उससे किसी के मन में में किसी भी प्रकार का सन्देह न रहेगा ।'

'ऐसा कोई काम नहीं जो इसके लिए मैं न कर सकूँ । क्या करना होगा ?'

'जिस तरह तुमने सब बातें मुझसे ब्यौरेवार कही हैं, उसी तरह जिस किसी से तुम कहो गी, अवश्य ही उसे तुम्हारी बातों का विश्वास होगा । मेरी ऐसी धारणा है । यदि राजधानी के सब लोग तुम्हारे मुँह से यह बात सुन लें, तब यह कलंक नहीं रह सकता ।'

'यह किस तरह करना होगा ?'

'मैं राजा से कह कर एक दरबार कराऊँगी—वे उस दरबार में सब नगर निवासियों को हाजिर होने के लिए आज्ञा देंगे । वहाँ गंगाराम के मुकबिले सब नगर निवासियों के सामने सब बातें सच-सच कहना । हम लोग रानियाँ हैं, हमें सूरज भी नहीं देख सकता । क्या तुम सब नगरानिवासियों के सामने मुँह खोल कर बोलने का साहस कर सकती हो ? यदि तुम बोल सको तो हमारा सब कलंक दूर हो जायगा ।'

तब सिंहनी की तरह गरज कर रमा बोल उठी, 'बहन, तुम नगर-निवासियों को ही क्यों, संसार के सब लोगों को जमा कराओ । मैं संसार के सामने मुँह खोल कर सब बात साफ-साफ कह दूँगी ।'

'कह सकती हो ?'

'कह सकती हूँ—अन्यथा जान दे दूँगी ?'

'अच्छा—तब राजा से कह कर दरबार बुलाती हूँ । अब तुम रोओ मत ।'

नन्दा उठकर चली गई । रमा ने चारपाई छोड़ दी और आँसू पोंछ कर बच्चे को गोद में ले उसका मुँह चूमा । अब तक उसने उसे चूमा भी न था ।

नन्दा ने राजा को खबर भेज कर अन्त:पुर में बुलाया । जो बात उड़ रही थी, जो सब के मुँह से निकल रही थी, उसे नन्दा ने राजा को सुनाया । उसके बाद रमा के साथ जो उसकी बातचीत हुई थी उसे भी अक्षरश: राजा को सुनाया । कहा, 'हम दोनों गले में आँचल डाल (बोलते समय नन्दा ने गले में आँचल लपेट लिया, घुटने टेक कर उनके पैरों से लिपट गयी) कहती हैं कि तुम इस समय हमारी इज्जत बचाओ, इस कलंक से उद्धार करो, नहीं तो हम दोनों आत्म-हत्या कर के मर जायँगी ।'

सीताराम ने बड़े खिन्न हो कर कलङ्क के लिए और नन्दा के उस प्रस्ताव के लिए भी कहा, 'मैं किस तरह रानी को दरबार के सामने बाहर लाऊँगा ? किस तरह अपनी रानी को साधारण कुलटा स्त्री की तरह विचारालय में खड़ा करूँगा ?'

'जैसा तुम इसे समझते हो, वैसा हम नहीं समझतीं । क्या इसमें अधिक लज्जा है या राज की रानी के कुलटा होने के अपवाद में ?'

'इस तरह अपवाद की बातें तो राजाओं के घर में सीता के जमाने से ही चली आती हैं। पहले की ही तरह अधिक बात न बढ़ा सीता की नाईं रमा को त्याग देना ही उत्तम है। ऐसा करने से कोई कुछ न कहेगा।'

'महाराज ! निरपराधिनी को आप त्याग देंगे और उसका विचार न करेंगे, क्या यही आप का राजधर्म है। रामचन्द्र ने ऐसा किया था तो क्या तुम भी वैसा ही करोगे ? जो पूर्ण ब्रह्म हैं उनके लिए त्याग और ग्रहण समान है। क्या तुम्हें भी यह शोभा देता है ?'

'क्या सारी प्रजा, शत्रु-मित्र, सब के सामने अपनी रानी को कुलटा की नाईं खड़ा करने में मेरी छाती टूक-टूक न हो जायगी ? मैं कुछ पत्थर तो हूँ नहीं ?'

'महाराज ! जब पचास हजार लोगों के सामने पेड़ पर चढ़ कर श्री नाच रही थी, उस समय क्या तुम्हारी छाती दस हाथ बढ़ गयी थी ?'

सीताराम ने क्रोध भरी आँखों से नन्दा की ओर देखा। कहा, 'हाँ ऐसा हुआ था, नन्दा। पर बड़ा दुख इसी बात का है कि वैसा फिर न हो सका।'

हाथ जोड़ कर रमा ने क्षमा माँगी। हाथ जोड़ कर नन्दा जीत गई। अन्त में दरबार करने के लिए सीताराम राजी हुए। सोचा, ऐसा न करने से रमा को त्याग देना होगा। रमा निरपराधिनी है, इसलिए दरबार करने के सिवा और दूसरा उपाय नहीं है।

उदास हो कर राजा ने चन्द्रचूड़ के पास आ दरबार करने के विषय में उनकी राय पूछी। ब्राह्मण देवता इज्जत पर परदा डालने में सहमत न हुए। वे दरबार करने पर ही राजी हुए। उन्हें डर केवल एक बात का था कि रमा सब के सामने बोल नहीं सकेगी। सीताराम को भी इसी का डर था। यदि वह न कर सकेगी तो तब किया कराया व्यर्थ हो जायगा।

|२|

तब सीताराम ने हुक्म जारी किया कि आम-दरबार में गंगाराम का विचार होगा और सब नगर-निवासी आकर विचार को देखेंगे। हुक्म पा कर नियत दिन हजारों नगर-निवासी दरबार में आ हाजिर हुए। सीताराम ने दिल्ली की नकल कर अपने यहाँ भी एक दरबारे-आम बनवाया था। आज उसे राजकर्मचारियों ने खूब सजाया था। दिल्ली की तरह उसमें मखमली चाँदनी टँगी थी, जिस पर जरी का काम किया गया

था। उसके खम्भों में कारचोबी के काम किये हुए मखमली कपड़े लपेटे गए थे। सभा-मंडल में रंग-विरंगे मुलायम गलीचे बिछे थे। उसके चारों ओर सिपाहियाना-वर्दी पहने और हाथ में हथियार ले कतार बाँध कर सैनिक खड़े थे। बाहर घुड़सवार घोड़ों पर चढ़कर खबरदारी कर रहे थे। सभा-मण्डप के बीचोबीच संगममंर की वेदी पर सीता-राम के लिए सोने-चाँदी का सिंहासन रखा था। धीरे-धीरे गढ़ आदमियों से भर गया।' सभा-मण्डप में केवल बड़े आदमियों को ही जगह मिली। साधारण आदमी सभा-मंडप को चारों ओर से घेर कर बाहर खड़े-खड़े देखते थे।

खिड़की से इस भीड़-भाड़ को देख कर महारानी नन्दा ने रमा को बुला कर दिखाया और पूछा, 'क्यों, क्या इस भीड़ के बीच में खड़ी हो कर तुम सब बात कह सकती हो?'

'यदि स्वामी के चरणों में मेरी अटल भक्ति है तो निश्चय कह सकती हूँ।'

'क्या हम लोगों में से कोई तुम्हारे साथ चले? कहो तो मैं चलूँ?'

'तुम क्यों मेरे साथ इस अथाह समुद्र में डूबने जाओगी। किसी को भी जाना न होगा, केवल एक काम करना होगा। जब मेरी बात कहने का समय आवे तब कोई मेरे बच्चे को गोद में ले कर मेरे पास खड़ी रहे। उसका मुँह देख कर मुझे साहस होगा।'

इसे स्वीकार कर नन्दा ने कहा, 'अब सभा में जाना होगा, कपड़ा, वपड़ा दुरुस्त कर कर लो। खूब सावधान हो लो।'

रमा सुनकर अपने महल में चली गई। दरवाजा बन्द कर जमीन पर लेट, हाथ ज़ोड़ कर कहने लगी, 'जय लक्ष्मीनारायण! जय जगदीश! तुमसे यही मेरी भिक्षा है कि आज जो मुझे कहना है उसे कहने के बाद मुझे दुधमुँही बच्ची ही बना देना। यह भीख मांगती हूँ कि आज सभा में अपनी बात कह कर इस जन्म में फिर कभी कुछ न कहूँगी। आज का दिन याद रखना, उसके बाद मरने के दिन फिर मुझे किसी बात का दुःख न होगा।'

फिर कपड़े बदलने की बात उसे याद आ गई। दाई की मामूली साड़ी पहन कर रमा सभा में जाने के लिए तैयार हुई। देख कर नन्दा ने कहा, 'यह क्या?'

रमा ने कहा, 'आज मेरे सिंगार-बनाव का दिन नहीं है। विधाता यदि फिर सिंगार करने का दिन देंगे तो सिंगार करूँगी। नहीं तो यही साज-सिंगार आखिरी है। इसी पहनावे में सभा में जाऊँगी।'

नन्दा ने भी इसे ठीक समझा, इसलिए कुछ आपत्ति न की।

। ३ ।

यथासमय महाराज सीताराम सभा-मध्य में आ कर सिंहासन पर बैठे। नकीबों ने गुणागान गाया, लेकिन उस दिन गाने-बजाने की बिलकुल मनाही थी।

तब हथकड़ी बेड़ी में गंगाराम सामने हाजिर किया गया। उसको देखने के लिए बाहर खड़े हुए लोगों में हलचल मच गई। शान्तिरक्षकों ने उन्हें शान्त किया।

तब गम्भीर स्वर में राजा ने गंगाराम से कहा, 'गंगाराम, तुम मेरे सम्बन्धी, कुटुम्ब, प्रजा और वेतनभोगी हो। मैं तुमसे विशेष प्रेम करता था। तुम पर मेरी बड़ी कृपा रहती थी। तुम मेरे बड़े विश्वासपात्र थे। यह बात सभी जानते हैं। एक बार मैंने तुम्हारी जान भी बचाई थी—तब तुमने मेरे साथ विश्वासघात क्यों किया? तुम्हें राज-नियम के अनुसार दण्डित होना पड़ेगा।'

विनम्र भाव से गङ्गाराम ने कहा, 'किसी शत्रु ने मेरे सम्बन्ध में आप को झूठा अपवाद सुनाया है। मैंने कोई विश्वासघात का काम नहीं किया है। स्वयं महाराज मेरा विचार कर रहे हैं। मुझे भरोसा है, धर्मशास्त्र सम्मत प्रमाण न मिलने से आप मुझे किसी प्रकार दंड न देंगे।'

'यही होगा। धर्मशास्त्र सम्मत जो प्रमाण मिला है उसे सुनो और यथासाध्य उत्तर दो।'

यह कह कर राजा ने चन्द्रचूड़ से कहा, 'इसके बारे में आप जो कुछ जानते हैं, कहिये।'

तब चन्द्रचूड़ जो कुछ जानते थे, उन्होंने सभा में विस्तारपूर्वक सब कह सुनाया। उससे सभा में उपस्थित सब नगर-निवासियों ने जाना कि जिस दिन मुसलमान किले पर आक्रमण करने के लिए नदी पार कर रहे थे, उस दिन चन्द्रचूड़ के बहुत दबाव देने पर भी गंगाराम ने दुर्ग की रक्षा के लिए कोई चेष्टा न की। चन्द्रचूड़ की बात खतम होने पर राजा ने गंगाराम से कहा, 'नराधम! इसका क्या उत्तर देते हो?'

गंगाराम ने हाथ जोड़ कर कहा, 'ये ब्राह्मण पंडित हैं। ये लड़ाई के विषय में क्या जानते हैं? मुसलमान इस पार आए नहीं, उन्होंने किले पर हमला नहीं किया। यदि वे ऐसा करते और मैं उन्हें न भगाता तो ठाकुर महाशय जो कहते हैं उसे सिर पर चढ़ाता। महाराज! मैं भी दुर्ग में रहता हूँ। दुर्ग को चौपट करने में मेरा क्या लाभ था?'

'क्या लाभ था, इसे एक दूसरे आदमी से सुनो।'

यह कह कर राजा ने चाँद शाह फकीर से कहा, 'आप जो कुछ जानते हैं, कहिए।'

तब चाँदशाह ने दुर्ग पर आक्रमण करने की पहली रात को गंगाराम के तुराब खाँ के पास जाने की बात, जो वे जानते थे, कह सुनाई। सीताराम ने गंगाराम से कहा, 'इसका क्या जबाब देते हो ?'

गँगाराम ने कहा, 'मैं उस रात तुराब खाँ के पास गया था सही। उससे मेरा यह अभिप्राय था कि धोखा दे कर तुराब खाँ को किले के नीचे ला मार डालूँगा।'

'उसके लिए तुराब खाँ से कुछ पुरस्कार भी माँगा था ?'

'ऐसा न करने से उसका विश्वास कैसे जमता ?'

'क्या पुरस्कार माँगा था ?'

'आधा राज।'

'और कुछ भी।'

'और कुछ नहीं।'

तब राजा ने चाँद शाह से पूछा, 'आप इसके बारे में कुछ जानते हैं ?'

'जानता हूँ।'

'किस तरह जाना ?'

'मैं मुसलमान फकीर हूँ, तुराब खाँ के यहाँ हरदम आता-जाता था। वह मेरा बड़ा आदर भी करते थे। मैं उनकी बात कभी महाराज से नहीं कहता था, न महाराज की बात उनसे कहता था। इसीलिए मेरी गिनती किसी भी पक्ष में न थी। यह दूसरी बात है कि अब वे इस संसार में नहीं हैं। जिस दिन महाराज से हार कर वे मधुमती के तीर से लौटे जा रहे थे उसी दिन राह में उनसे मेरी भेंट हुई थी, उसी समय उनसे गंगाराम के विश्वास के सम्बन्ध में मेरी बात-चीत हुई थी। उन्होंने यह समझ कर कि गंगाराम ने उन्हें धोखा दिया, मुझसे सब बातें कही थीं। गङ्गाराम ने आधा राज जरूर माँगा था, लेकिन इसके सिवा और कुछ भी चाहा था। पर उस बात को हुजूर से सामने कहने में मुझे डर लगता है। यदि आप अभय दान दें, तो उसे भी कहूँ।'

'निडर हो कर कहिए।'

'दूसरे पुरस्कार में महाराज की छोटी रानी को माँगा था।'

दर्शक-मंडली समुद्र की तरह गरज उठी और गंगाराम को तरह-तरह की गालियाँ सुनाने लगी। शान्ति-रक्षकों ने सब को शान्त किया। गंगाराम ने कहा, 'महाराज ! यह असम्भव बात है। महाराज जानते हैं मेरा अपना परिवार है। मैं नगर-रक्षक था। मेरा चाहने से स्त्री का पाना मेरे लिए कठिन नहीं था। मैंने महाराज की छोटी रानी को कभी देखा भी नहीं। किसलिए मैं उन्हें चाहूँगा।'

'तब रात को कुत्ते की तरह छिप कर मेरे अन्तःपुर में क्यों जाते थे ?'

'कभी भी नहीं।'

तब गंगाराम ने पहरे वाले पाँड़े को तलब किया। दाढ़ी हिला कर पाँडे जी ने

कहा, 'गङ्गाराम हर रोज रात को मुरली के साथ उसका भाई बन कर अन्तःपुर में आता-जाता था।'

सुन कर गंगाराम ने कहा, 'यह सम्भव नहीं। मुरली के भाई ही के लिए यह क्यों रास्ता छोड़ने जायगा ?'

तब पाँडे ने जवाब दिया, 'मैं गंगाराम को बखूबी जानता था, तो भी कोतवाल को कैसे रोकूँ ? इसलिए पहचान कर भी नहीं पहचाना था।'

गंगाराम ने देखा, अब कोई आशा नहीं। मन में केवल मुरली का भरोसा रहा। सोचा—मुरली खुद यह बात कभी न कहेगी। कहने से उसे भी सजा मिलेगी। क्या उसे अपनी जान का डर नहीं है। तब गंगाराम ने कहा, 'मुरली को बुला कर पूछा जाय, सब बातें झूठी साबित होंगी।' बेचारा नहीं जानता था कि मुरली को महारानी नन्दा ने पहले ही हाथ में कर लिया है। नन्दा ने मुरली को समझा दिया था कि देखना राजा कभी स्त्री की हत्या न करेंगे। तुम मरने का डर मत करो। स्त्रियों को कोई शारीरिक दंड नहीं दिया जाता। इसलिए तुम्हें किसी कड़ी सजा का डर नहीं है। होगी भी तो मामूली सी सजा होगी। यदि तुम सच-सच बातें कह दो तो तुम्हारी सजा कम हो जायगी। मुरली भी इसे समझ गई थी। इसलिए उसने सभी बातें सच-सच कह दीं, कुछ छोड़ा नहीं।

मुरली की बात सुन कर गंगाराम के सिर पर मानों वज्र गिरा। तो भी उसकी आशा न गई। कहा, 'महाराज, इस स्त्री की चाल-चलन ठीक नहीं। मैंने इसे शहर में घूमते हुए कई बार पकड़ा था और कुछ डाँट-डपट भी की थी। उसी से चिढ़ कर यह झूठी मनगढ़न्त बातें कह रही है।'

'तब किसकी बात का विश्वास करोगे, गंगाराम ? क्या खुद महारानी की बात विश्वास करने लायक है ?'

गंगाराम को मानों हाथ बढ़ाते ही स्वर्ग मिला। उसका दृढ़-विश्वास था कि रमा कभी भी सभा के बीच में न आयेगी, न वह सभा में ये सब बातें कह ही सकेगी। गंगाराम ने कहा, 'अवश्य विश्वास करने लायक है। यदि उनकी बातों से मैं दोषी साबित होती हूँ, तो आप मुझे उचित दण्ड दें।'

राजा ने अन्तःपुर की ओर देखा। तब गंगाराम ने आश्चर्य से देखा कि मैली-कुचैली साड़ी पहने घूँघट काढ़े एक स्त्री सभा में धीरे-धीरे भयभीत बच्चे की तरह आ रही है। जो रूप गंगाराम के रोम-रोम में अंकित था; उसे देखते ही उसने पहचान लिया। गंगाराम बहुत डरा। दर्शक मंडली में बड़ा कोलाहल मचा। शान्ति रक्षकों ने आ कर हल्ला गुल्ला बन्द किया।

रमा आकर राजा के आगे खड़ी हो गयी। उसके बाद गुरू चन्द्रचूड़ को दूर से ही झुक कर प्रणाम किया और घूँघट हटा कर सब के सामने खड़ी हो गयी। मालिन

वेश होने पर भी रूप उछल रहा था। चन्द्रचूड़ ने देखा कि राजा बात नहीं कह सकते। सिर नीचा किए बैठे हैं। इसलिए रमा से कहा, 'महारानी, इस गंगाराम का विचार हो रहा है। यह आदमी आपके अन्तःपुर में कभी गया था या नहीं ? यदि गया था तो क्यों गया था ? आप के साथ क्या बातें हुई थीं ? सब ज्यों की त्यों कह सुनाइए। राजा की आज्ञा है। मैं आपका गुरू हूँ, मेरी आज्ञा से सब बातें सच-सच कहिए।'

गर्दन उठा कर रमा ने गुरू जी से कहा, 'राजा की रानी कभी झूठ नहीं बोल सकती। यदि हम मिथ्यावादिनी होतीं तो अब तक यह सिंहासन टूट कर चूर-चूर हो गया होता।'

बाहर दर्शकों ने जय-जयकार की ध्वनि की।

साहस पा कर रमा कहने लगी, 'गुरूदेव, क्या कहूँगी ? राजा का नौकर मेरा नौकर है। मैं जो कहूँगी, उसे राजा का नौकर क्यों न करेगा ? मैंने राजा के काम के लिए कोतवाल को बुला भेजा था। आ कर कोतवाल मेरा हुक्म सुन कर चला गया। इसके लिए क्या विचार होगा और कहूँगी ही क्या ?'

सुन कर दर्शक-मंडली ने इस बार जय-ध्वनि नहीं की। बहुतेरे खिन्न हो गए। कितनों ही ने कहा, 'कबूल।'

चन्द्रचूड़ ने कहा, 'माँ, राज का ऐसा क्या काम था, जिसके लिए कोतवाल को रात को बुलाना पड़ा।'

तब रमा ने कहा, 'तो सब बात सुनिए।' यह कह कर रमा ने देखा, लड़का कहाँ है ? लड़का दाई की गोद में था। उसके मुँह को देख कर रमा को साहस मिला। तब उसने विस्तार से कहना शुरू किया।

पहले बहुत धीरे-धीरे दूर की संगीत ध्वनि की तरह रमा कहने लगी। सब सुन नहीं सके। बाहर के दर्शकों ने कहा, 'माँ, हम सुन नहीं सकते—हम भी सुनना चाहते हैं।' रमा जरा और जोरों से बोलने लगी। धीरे-धीरे वह और स्पष्ट बोलने लगी। उसके बाद जब वह समझाने लगी कि पुत्र की विपद की आशंका से मैंने यह साहस का काम किया था, तब कहने के साथ-साथ बार-बार पुत्र के चन्द्रमुख की ओर देखने लगी। आँखों से आँसू गिरने लगे, मातृस्नेह के उच्छवास की तरंगें उठने लगीं, और दर्शकों के कानों में स्वर्ग की अप्सराओं की संगीत ध्वनि की तरह रमा के मधुर वाक्य गूँजने लगे। मुग्ध हो कर सब सुनने लगे। उसके बाद दाई की गोद से बच्चे को लेकर; सीताराम के पैरों पर उसे लिटा कर हाथ जोड़ रमा कहने लगी, 'महाराज, आप के और भी सन्तानें हैं। मेरे और कोई नहीं। आप का राज्य है—मेरा राज यही बच्चा है। महाराज ! आप के धर्म; कर्म, स्वर्ग, यश सब कुछ हैं। मैं मुक्त कंठ से कह रही हूँ, मेरा धर्म, कर्म, यश सब कुछ यही बच्चा है। महाराज ! यदि मैं अपराधिनी हूँ तो मुझे दंड दीजिए।'

सुन कर दर्शक मंडली ने फिर जय-ध्वनि की, लेकिन आदमी तो भले-बुरे दोनों ही तरह के होते हैं। बहुतों ने जयध्वनि की, बहुतों ने उसका साथ नहीं दिया। जय-ध्वनि बन्द होने पर किसी ने धीरे से कहा, 'हम इस बात का विश्वास नहीं करते।' किसी प्रौढ़ा स्त्री ने कहा, 'मुँहझौंसी रात को मर्द बुलाती है और चली है सती बनने।' किसी ने कहा, 'राजा चाहे इस बात को भूल जाये, पर हम नहीं भूल सकते।' किसी ने कहा, 'यदि रानी हो कर इन्होंने ऐसा खोटा काम किया हैं तो हम गरीब-दुखी क्या न करेंगे ?'

ये सब बातें सीताराम के कानों तक पहुँची। तब राजा ने रमा से कहा, 'प्रजा तो तुम्हारी बातों का विश्वास नहीं करती।'

रमा कुछ देर तक सिर नीचा किये रही। आँखों से आंसुओं की धारा वह चली, पर रमा ने रोक लिया, 'उसके बाद राजा को संबोधित कर के वह कहने लगी, 'यदि लोग विश्वास नहीं करते हैं तो अब मैं आप के राजमहल में कलङ्किनी बन कर अपने जीवन को न रख सकूँगी। आप चिता सजाने की आज्ञा दीजिए, मैं सबके सामने उसमें जल कर मरूँगी। उससे कुछ दुःख न होगा। लोग मुझे कलङ्किनी कहते हैं—मरने से ही इसका दुःख जायगा। लेकिन महाराज ! मेरा एक निवेदन है। क्या आप भी मेरा विश्वास नहीं करते ? यदि नहीं तो मेरा जल कर मरना भी व्यर्थ होगा। यदि आप इन लोगों के सामने कह दें कि आप मेरा अविश्वास नहीं करते, तो मैं चिता को ही स्वर्ग समझूँगी—महाराज, परलोक में उद्धार करने वाले पृथ्वी पर देवता तुल्य मेरे गुरुदेव सामने हैं। मैं इष्टदेव को साक्षी कर के उनके सामने कह रही हूँ कि मैं अवि-श्वासिनी नहीं हूँ। जो गुरु से भी बढ़ कर मेरे पूज्य हैं, जो मनुष्य हो कर भी मेरे लिए देवता से भी बढ़ कर पूज्य हैं, वही आप, मेरे पतिदेव को साक्षी कर कहती हूँ, कि मैं अविश्वासिनी नहीं हूँ महाराज, नारी देह धारण कर के मैंने जो कुछ देव सेवा, ब्राह्मण सेवा, दान, व्रत, नियम आदि किए हैं यदि मैं विश्वासघातिनी हूँ तो उनके सबके फल से मैं वंचित रहूँ। पतिसेवा से बढ़ कर स्त्री के लिए कोई पुण्य नहीं। मैंने मनसा, वाचा, कर्मणा आप के चरणों की जो कुछ सेवा की है उसे आप ही जानते हैं। यदि मैं विश्वासघातिनी हूँ तो उसके पुण्य फल से वंचित रहूँ। इस जीवन में मैंने जो कुछ आशा, भरोसा और कामना की है, यदि मैं अविश्वासिनी हूँ तो वे सब निष्फल हो जायें। महाराज, नारी जन्म में स्वामी-दर्शन के समान कोई पुण्य नहीं, कोई सुख नहीं। यदि मैं अविश्वासिनी हूँ तो उस सुख से चिर-वंचित रहूँ। महाराज ! और क्या कहूँ; यदि मैं अविश्वासिनी हूँ तो जिस-जिस जन्म में नारी देह धारण करूँ, उस जन्म में पति और पुत्र के मुख-दर्शन के सुख से चिर - वंचित रहूँ।'

रमा अब और अधिक न कह सकी। टूटी हुई लता की तरह सभा में मूर्छित हो गिर पड़ी—दाइयाँ उसे उठा कर अन्तःपुर में ले गयीं। दाई की गोद में बालक रोते-

रोते माँ के साथ गया। सभा में बैठे सभी की आँखों में आँसू भर आया। गंगाराम के हाथों और पाँवों की हथकड़ी-बेड़िया झनझना उठीं। दर्शक-मंडली उमड़ते हुए समुद्र की तरह खलबला उठी। बड़ा कोलाहल मचा। शान्तिरक्षकों के किए कुछ न हो सका!

तब गङ्गाराम क्या कहता है? गङ्गाराम क्या झूठ कह रहा है? गङ्गाराम यदि झूठ कहता है, तो आवो—इसे हम टुकड़े-टुकड़े काट कर फेंक दें—इसी तरह चारों ओर लोग कहने लगे। गङ्गाराम ने देखा कि लोगों के मन फेरे बिना मेरा बचना कठिन है। गङ्गाराम बुद्धिमान् था। उसने समझा, प्रजा जैसा फैसला करेगी, राजा भी यही करेंगे। तब राजा को सम्बोधन कर लोगों का मन भुलाने के लिए वह कहने लगा।'

'महाराज! क्या आप स्त्री की बातों का विश्वास करेंगे या मेरी बात का? प्रभु! इस राज्य की स्थापना स्त्रियों ने की है या मेरे जैसे राजा के सेवकों के बाहुबल से यह स्थापित हुआ है। महाराज, सब स्त्रियाँ कुपथगामिनी होती हैं—राजाओं की रानियाँ भी कुपथगामिनी हो सकती हैं। रानी के कुपथगामिनी होने पर राजा का कर्तव्य है कि उसे परित्याग कर दे। विश्वासी सेवक कभी विपथगामी नहीं हो सकता। तो भी स्त्री अपने बचाव के लिए अपने दोष को सेवक के कंधों पर डाल दे सकती है। यह महारानी रानी में किसी दूसरे से मिल कर मुझे दोषी ठहराती है। उसका सच झूठ—महाराज! रक्षा कीजिए।'

बात कहते-कहते उसे समाप्त न कर भयभीत हो गंगाराम 'महाराज! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये' कह कर स्तम्भित हो चुप खड़ा रहा। सबों ने देखा कि गंगाराम थर-थर काँप रहा है। तब सब लोगों ने विस्मित और भयभीत हो एक अपूर्व मूर्ति देखी। गौरिक-धारिणी, ज्योतिर्मयी मूर्ति साक्षात् सिंहवाहिनी दुर्गा के समान हाट में त्रिशूल ले, गंगाराम को लक्ष्य कर के सभा-मण्डप को पार कर उसकी ओर द्रुतगति से आ रही है। देखते ही समुद्र की तरह कोलाहल करती मण्डली चुप हो गई। गंगाराम ने एक बार रात में उस मूर्ति को देखा था। फिर उसी मूर्ति को विपत्ति के समय, जब वह कपट भरी बातों से निरपराधिनी रमा का सर्वनाश को उद्यत है, देखा। उस समय उस मूर्ति को यह समझ कर कि चण्डी उसे मारने आ रही हैं, डर कर कातर स्वर में गंगाराम चिल्ला उठा, 'रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए!' इधर राज, उधर चन्द्रचूड़ महाराज ने भी ने भी इस रात को देखी हुई मूर्ति को पहचाना और नगर की राजलक्ष्मी का संदेह कर, वे उठ कर खड़े हो गए। तब सभा में उपस्ति सब लोग भी खड़े हो गए।

किसी ओर भी न देखती हुई, जयन्ती ने सीधे गंगाराम के पास आ उसकी छाती से उस मंत्रित त्रिशूल की नोक स्पर्श की और कहा, 'अब कहो!'

त्रिशूल से गंगाराम का शरीर केवल स्पर्श हो रहा था, तो भी अकस्मात् उसका शरीर शिथिल हो आया। गंगाराम ने मन में सोचा कि अब एक बात भी झूठ बोलने से

त्रिशूल छाती में चुभ जायगा। वह भयभीत हो कर विनीत भाव से सभा के सामने सच्ची बातें कहने लगा। जब तक उसकी बात खत्म नहीं हुई तब तक जयन्ती उसकी छाती पर त्रिशूल को स्पर्श किए रही। तब गंगाराम ने रमा की निर्दोषिता, अपना मोह, लोभ, फौजदार साहब से भेंट, बातचीत और विश्वासघात करने की चेष्टा आदि की बातें विस्तार से कह सुनाईं।

उसके बाद जयन्ती त्रिशूल लेकर द्रुत-गति से चली गई। जाते समय सब ने सिर झुका कर देवीतुल्य मातृ को प्रणाम किया। सबने उसके जाने के लिए रास्ता छोड़ दिया। किसी को कुछ पूछने, उसके पीछे जाने का साहस नहीं हुआ। किसी ने यह भी नहीं देखा कि वह किस रास्ते से कहाँ चली गयी।

जयन्ती के चले जाने पर राजा ने गंगाराम को सम्बोधित करते हुए कहा, 'अब तुमने अपने ही मुँह से अपना सब अपराध स्वीकार कर लिया है। ऐसा कृतघ्नता के लिए मृत्यु के सिवाय और कोई दूसरा उपयुक्त दण्ड नहीं है। अतः तुम राजदण्ड के अनुसार मरने के लिए तैयार हो जाओ।'

गंगाराम ने कुछ नहीं कहा। पहरे वाले उसे ले गए। मौत की सजा सुन कर उपस्थित जनता स्तम्भित हो गयी। किसी ने कुछ नहीं कहा और चुपचाप सब अपने-अपने घर चले गए। घर जा कर सब रमा को साक्षात् लक्ष्मी कह कर उसकी प्रशंसा करने लगे। रमा का सब कलंक धुल गया।

|४|

राजा ने हुक्म दिया कि मुरली का सिर मुड़ा कर और मुँह से कालिख पोतवा कर शहर के बाहर निकाल दिया जाय। हुक्म उसी समय तामील हुआ। मुरली के जाते समय लड़के और रसिक लोगों का समूह ताली पीटते और गाते हुए उसके पीछे-पीछे चला।

गङ्गाराम जैसे कृतघ्न के लिए फाँसी के सिवाय और कोई दण्ड उस समय के राज-नियमनुसार न था। अतः उसके लिए इसी दण्ड की आज्ञा हुई। परन्तु गंगाराम की फाँसी कुछ दिनों के लिए स्थगित रखी गई, क्योंकि सीताराम का अभिषेक उत्सव शीघ्र ही होने वाला था। सीताराम ने अपने बाहुबल से हिन्दू-राज्य स्थापित किया था, पर उनका अभिषेक नहीं हुग्रा था। हिन्दू-शास्त्रों के अनुसार उसका होना आवश्यक था। चन्द्रचूड़ के यह प्रसंग छेड़ने पर सीताराम सहमत हुए। उन्होंने सोचा कि ऐसा एक

महोत्सव करने पर प्रजा सन्तुष्ट होगी और उसकी राजभक्ति दृढ़ होगी। अतः बड़े समारोह के साथ अभिषेक करने की तैयारी हो रही थी। नन्दा और चन्द्रचूड़ दोनों ने सीताराम से अनुरोध किया कि इस समय एक महान् मांगलिक कार्य होने जा रहा है, ऐसे समय गंगाराम का वध जैसा अशुभ कार्य करना ठीक नहीं। इससे यदि कोई अमंगल न भी हो तो लोगों के आनन्द में कुछ कमी अवश्य पड़ जाएगी। राजा इस परामर्श से सहमत हुए। लेकिन असल बात तो यह थी कि गंगाराम को फाँसी देने की सीताराम कि आन्तरिक इच्छा न थी, तो भी राजधर्म-पालन और राज्यशासन के लिए इसे अपना कर्तव्य समझ कर उन्होंने ऐसा करने का निश्चय किया था। उनकी इच्छा इसलिए न थी कि गङ्गाराम श्री का भाई था, सीताराम श्री को भूल नहीं गए थे। इतने दिन खोजने पर भी उसे न पा कर, निराश हो उन्होंने स्थिर किया था कि राज्य-कार्य में मन लगा कर श्री को भूल जाऊँगा। इसीलिए वे राज्य के कामों में अधिक चित्त लगाते थे। इसीलिए दिल्ली के बादशाह को सन्तुष्ट कर उनसे सनद हासिल की थी। इसीलिए बड़े उत्साह से भूषणा को जीत कर दक्षिण बंगाल में एकाधिपत्य राजा हो रहे थे। परन्तु इस समय उनके हृदय पर श्री का पूर्ण अधिकार था, अतः गङ्गाराम को फाँसी देना इस समय स्थगित रहा।

इधर अभिषेक के लिए खूब धूमधाम होने लगी। देश-विदेश से आ-आ कर लोग नगर में भर गये। राजा, ब्राह्मण, पण्डित, अध्यापक, दैवज्ञ, भिक्षुक, साधु-संन्यासी आदि झुण्ड-के-झुण्ड आये। असंख्य आदमियों के खाने की सामग्री भक्ष्य, भोज्य, पूरी-मिठाई और दही आदि के जूठन फेंकने से नगर में घुटने भर कीच हो गया। इतने पत्ते काटे गये कि सीताराम के राज्य में एक भी केले के पेड़ में पत्ते न रहे। टूटे-फूटे बर्तनों और फेंकी हुई पत्तलों से नगर के गढ़े भर गये। दिन रात गाने-बजाने से छोटे बच्चों के भी सिर भारी हो उठे।

इस अभिषेक-महोत्वस में राजा ने खूब ही दान किया। उस दिन कभी स्वयं अपने हाथ से, कभी अपने कर्मचारियों के द्वारा सोना-चाँदी, कपड़े-लत्ते दिन भर लुटते रहे। याचकों की इतनी भीड़ लगी कि दिन में दान देना खतम नहीं हुआ। आधी रात तक इसी तरह दान देते लोग थक गये। बाकी लोगों की बिदाई का भार राजपुरुषों को देकर वे अन्तःपुर में विश्राम करने चले गये। जा कर भयभीत हो आश्चर्य के साथ उन्होंने देखा कि अन्तःपुर के द्वार पर वही त्रिशूलधारिणी स्वर्णमयी राजलक्ष्मी की मूर्ति खड़ी है।

भक्ति भाव से साष्टांग प्रणाम कर राजा ने पूछा, 'माता ! कृपा कर कहिए कि आप कौन है ?'

जयन्ती ने कहा, 'महाराज, मैं भिखारिन हूँ, आप के यहाँ भीख माँगने आई हूँ !'

'माता, आप व्यर्थ मुझे भुलावा दे रही हैं। मैं जानता हूँ कि आप देवी हैं। आप साक्षात् लक्ष्मी हैं, मुझ पर प्रसन्न होइए।'

'महाराज ! मैं मानवी हूँ, नहीं तो भिक्षा के लिए आपके पास नहीं आती। सुना है, आज जो व्यक्ति जो कुछ माँग रहा है, आप उसे वही दे रहे हैं। मुझे आशा है कि आप के समान महान् दानी मुझे निराश न करेंगे।'

'माता ! आपके लिए मेरे यहाँ कोई भी वस्तु अदेय नहीं है। एक बार आपने मेरा राज्य बचाया, दूसरी बार मेरे कुल की मर्यादा बचाई, आप देवी हों अथवा मानवी, मैं आपको सब कुछ दे सकता हूँ। किस वस्तु के लिए आप मुझे आज्ञा देती हैं, कहिए— मैं आप के चरणों पर अभी समर्पण करूँ।'

'महाराज ! गङ्गाराम को मृत्युदण्ड की आज्ञा हुई है। परन्तु अभी वह मरा नहीं है। मैं उसकी जीवन-भिक्षा माँगने आई हूँ।'

'आप ?'

'हाँ। क्यों महाराज ! क्या यह असम्भव है ?'

'गङ्गाराम तो कीटानुकीट है। उसके प्रति आप के हृदय में दया कैसे उत्पन्न हुई ?'

'भिखारिन की दृष्टि में सब समान हैं।'

'लेकिन आपने तो उसे त्रिशूल से वध करना चाहा था। आप के द्वारा दो बार उसकी विश्वासघातकता पकड़ी गई। यदि आप महारानी के प्रति दया नहीं दिखातीं, तो वह कभी भी सच बात स्वीकार नहीं करता और उसे मृत्युदण्ड न मिलता। अब उसे आप क्यों बचाना चाहती हैं ?'

'मेरे द्वारा उसे प्राणदण्ड मिला है, इसलिए उसके जीवन की भीख माँगने आई हूँ। धर्म की रक्षा के लिए अधर्मी का विनाश करना दोष नहीं है। परन्तु जब धर्म-रक्षा हो गई तब अब जीव-हत्या के पाप से बचना चाहती हूँ।'

'माता ! आपकी आज्ञा का पालन अवश्य किया जायगा। गंगाराम को मैं इसी समय मुक्त कर दूँगा, परन्तु मैं आपको भिक्षा नहीं दे सकता। आपको गंगाराम का जीवन-मुल्य देकर उसे खरीदना पड़ेगा।'

'क्या मूल्य महराज ? राज-भण्डार में ऐसी कौन सी वस्तु का अभाव है जिसे एक भिखारिन देकर पूरा कर सकती है ?'

'राज-भण्डार में राजा का जीवन ही नहीं है। आपने उस दिन मधुमती के किनारे तोप के पास खड़ी होकर मुझसे यह वचन लिया कि जो मैं चाहूँगा वह आप मुझे देंगी। अब मैं उसी अमूल्य वस्तु के परिवर्तन में गंगाराम का जीवन आपके हाथ बेचूँगा।'

'महराज, वह अमुल्य वस्तु क्या है ? आपको तो राज्य मिल ही गया ।'

'जिसके लिए मैं राज्य का भी त्याग कर सकता हूँ, मैं उस वस्तु को चाहता हूं ।'

'वह वस्तु क्या है महाराज, जिसके लिए आप राज्य का भी त्याग कर सकते हैं ?'

'श्री नाम की मेरी जीवनस्वरूपा पहली रानी । आप देवी हैं, आप सब कुछ दे सकती हैं । मेरा जीवन मुझे देकर, आप गंगाराम का जीवन खरीद लीजिए ।'

'यह क्या महाराज ! क्या आप जैसे धर्मात्मा राजाधिराज के जीवन के साथ उस नराधम पापात्मा के जीवन का परिवर्तन हो सकता है ? महाराज ! कानी कौड़ी के साथ क्या रत्नाकर का विनिमय हो सकता है ?'

'माँ, माता जितना अपने पुत्र को देती है, क्या पुत्र उसका उचित विनिमय कभी दे सकता है ?'

'महाराज, आज रात को आप अन्त:पुर के सब दरवाजे खुले रखिएगा और पहरेवालों को हुक्म दे दीजिएगा कि वे त्रिसूल देख कर रास्ता छोड़ दें । आज रात को आप के शयनकक्ष में आप का मूल्य पहुँच जायगा । गंगाराम की मुक्ति का हुक्म दे दीजिए ।'

हर्ष से गद्गद् होकर राजा ने कहा, 'मैं अभी उसे मुक्त कर देता हूँ ।'

उन्होंने उसी समय गंगाराम को मुक्ति का आदेश भेज दिया ।

जयन्ती ने पूछा, 'क्या मैं इन नौकरों के साथ कैदखाने में जा सकती हूँ ।'

'आपकी जो इच्छा हो कर सकती हैं । आपके लिए किसी बात की रोक-टोक नहीं है ।'

| ६ |

कैदखाने के अन्दर काल कोठरी की तरह भयंकर अंधकूप में गंगाराम अकेला पड़ा है । हाथ-पैर में हथकड़ियाँ और बेड़ियाँ जड़ी हैं । आधी रात में भी उसकी आँखों में नींद नहीं । जब से उसने सुना कि उसे शूली पर चढ़ना पड़ेगा, तब से उसकी आँखों से निद्रा भाग गई, खाना पीना छूट गया । मृत्यु ! मृत्यु तो क्षण भर में होती है, मृत्यु का दण्ड बहुत कठिन नहीं; परन्तु कारागार में अकेले पड़े हुए दिन-रात मृत्यु की कल्पना करना बड़ा भयंकर दण्ड है । गंगाराम पल-पल में शूली पर चढ़ रहा था । अब उसके दण्ड पाने में कुछ बाकी न बचा था । चिन्ता करते-करते उसकी चित्तवृत्तियाँ शिथिल हो

चुकी थी। हृदय अंधकार में डूब गया था। क्लेश सहने की शक्ति क्षीण हो चुकी थी। इस समय मन में दो भाव जग रहे थे—एक तो भैरवी का भय, दूसरा रमा पर क्रोध। भय की अपेक्षा क्रोध अधिक प्रबल था। रमा के प्रति अब उसकी आसक्ति नहीं थी। उससे बढ़ कर शत्रु उसका कोई न था।

इस समय यदि वह रमा को पाता तो वह उसे नोच-नोच कर छिन्न-भिन्न कर देता। वह तो अपने हृदय में यही सोच रहा था कि मरने के पहले वह किस तरह से से रमा का सत्यानाश करे। कभी-कभी वह सोचता कि शूली पर चढ़ कर रमा को अश्लील गालियाँ सुनायेगा। अधिकांश समय वह जड़ पदार्थ की तरह चुपचाप पड़ा रहता था।

कभी-कभी उसके कान में अभिषेक का कोलाहल सुनायी पड़ता था। जो रसोइया उसके खाने के लिए केवल नमक और भात लाता था, उससे उसने अभिषेक की बात सुनी थी। उसने सुना कि इस विराट् महोत्सव में राज्य के सब लोग लीन हैं, केवल वही अकेला उस अंधकूप में जंजीरों से जकड़ा हुआ पड़ा है। उसे कीड़े, फतिंगे और चूहे काटते थे। मन-ही-मन वह मनाता था कि रमा को भी ऐसी ही जगह मिले। अंधकार में जिस तरह बिजली चमक उठती है, उसी प्रकार गंगाराम के मन में अकस्मात् एक बात याद आई। यदि कहीं श्री होती तो वह आज भी उसकी जीवन-भिक्षा राजा से माँग लेती। एक बार तो उसी ने उनसे उसकी प्राण-भिक्षा माँग ली थी। वह चाहे कितना भी पापी हो, श्री उसका त्याग नहीं कर सकती। हाय! उसकी ऐसी बहन भी मर गई।

दो पहर रात बीत जाने पर एकाएक कैदखाने के बाहर की जंजीर झंकृत हो उठी। गंगाराम के आत्माराम कूच कर गये। इतनी रात को जंजीर क्यों खुल रही है? क्या दूसरी कोई नई आफत तो नहीं आ रही है?

पहले राजकर्मचारी हाथ में बत्ती लेकर घुसे। चौंक कर गंगाराम उनकी ओर देख ही रहा था कि जयन्ती को भी उसने अंदर आते देखा। देखते ही वह चिल्ला उठा, 'बचाओ बचाओ, मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है?'

जयन्ती ने कहा, 'बेटा तुम स्वयं जानते हो कि तुमने क्या बिगाड़ा है। क्या तुम्हें श्री की भी कुछ याद है?'

'हाय! यदि आज कहीं श्री जीती होती!'

'श्री जीती है। उसी के अनुरोध से मैंने महाराज से तुम्हारी जीवन भिक्षा माँगी थी। वह भिक्षा मिल गई है। मैं तुम्हें मुक्त कराने आई हूँ। गंगाराम! अब तुम यहाँ से भाग जाओ और कभी इस राज्य में अपना मुँह न दिखाना। मैं इसके बाद तुम्हारी रक्षा नहीं कर सकूँगी।'

बेड़ी खोल दी गई और गंगाराम उसी रात को नगर से भाग गया।

गङ्गाराम की मुक्ति की आज्ञा और जयन्ती के कथनानुसार दरवाजे खुले रहने का हुक्म देकर राजा शयन-कक्ष में जाकर पलंग पर लेट गये। नन्दा आकर पैर दबाने लगी। राजा ने पूछा, 'रमा का क्या हाल हैं ?'

नन्दा ने कहा, 'रमा की बीमारी के विषय में पीछे कहूँगी, पर कोई विशेष बात मैंने नहीं देखी।'

'मैं थक गया हूँ। अब इतनी रात में उसे देखने नहीं जाऊँगा। तुम मेरी जगह जाकर जरा उसकी देख-भाल करो और उससे यह भी कह देना कि थकावट के कारण राजा स्वयं नहीं आ सके।'

इस समय वह वे सीताराम न थे जो हिन्दू-राज्य की स्थापना के लिए सब कुछ छोड़ चुके थे। इस समय वह सीताराम राज-काज की चिन्ता छोड़ श्री का ध्यान कर रहे थे। जो सीताराम अपना प्राण देकर भी शरणागत समझते हुए गंगाराम की जान बचाने गये थे, राजा बनने के बाद उन्हीं सीताराम ने गङ्गाराम को प्राण-दण्ड देकर श्री प्राप्त करने की लालच में पुन: उसे छोड़ दिया। जो प्रजा-वत्सल थे, वे आत्म वत्सल हो रहे थे।

नन्दा समझ गयी कि राजा एकान्त में रहना चाहते हैं, अत: और कुछ न कह कर वह चली गयी। तब सीताराम पलंग पर लेटे हुए श्री की बाट देखते रहे।

दिन भर से लगातार आधी रात तक परिश्रम करने के कारण वे अत्यन्त थके हुए थे। अन्य दिन होता तो वे गाढ़ी नींद में अब तक सो जाते, परन्तु आज की बात ही भिन्न थी। जिसके लिए राज सुख छोड़ कर वे इतने दिन देश-विदेशों में घूमते रहे, जिसकी स्मृति उन्हें दिन-रात जलाती रही, आज उसी से भेंट होने वाली थी। सीताराम जागते ही रहे।

परन्तु निद्रादेवी तो संसार-विजयिनी है। कोई कितना ही विपद् ग्रस्त क्यों न हो, किसी-न-किसी समय उसे नींद जरूर आ जायगी। सीताराम तो विपद् ग्रस्त न थे, वे इस समय सुख की आशा में लीन थे। जागते-जागते सीताराम को झपकी आ गयी, पर चंचल मन होने के कारण वह झपकी अधिक देर तक न रही। एकाएक सीताराम की आँखें खुल गयीं तो देखा रुद्राक्ष की माला डाले, गेरुआ वस्त्र पहने एक सुन्दर प्रतिमा उनके सम्मुख खड़ी है।

सीताराम ने उसे जयन्ती समझ कर घबराते हुए पूछा; 'श्री कहाँ है ?' परन्तु; साथ ही उन्होंने पहचान लिया कि वह जयन्ती नहीं, स्वयं श्री ही है।

'श्री ! श्री ! मेरी श्री !' कहते हुए सीताराम ने बाँहें फैला दीं। परन्तु न जाने

क्यों सिर में चक्कर आने लगा। वे मूर्छित हो गये। क्षण भर में उनकी वह मूर्छा अपने आप दूर हो गई।

तब सीताराम उठ कर अपलक दृष्टि से श्री की ओर देखने लगे, कोई वार्तालाप नहीं। आँखों को तृप्त किए बिना वार्तालाप की इच्छा नहीं होती। देखते-देखते उनके प्रफुल्ल मुखमण्डल पर कुछ उदासी छा गयी। राजा ने उसे 'मेरा श्री' कह कर सम्बोधित किया था, पर अब सोच कर देखा, यह उनकी श्री न थी, यह तो स्थिर मूर्ति, धर्म-सम्पन्न, महामहिमान्विता कोई देवी है, उनकी श्री नहीं।

हाय ! मूढ़ सीतराम तो रानी को खोज रहा था, देवी ले कर वह क्या करेगा ?

|७|

श्री ने राजा की सब बातें सुनीं और श्री की बातें राजा ने सुनीं। जिस प्रकार सब कुछ छोड़ कर सीताराम राज्य के लिए देख-विदेश घूमते रहे, उन्होंने वे सब बातें श्री को नहीं बतलाईं, केवल कुछ ही बातें कहीं।

अनन्तर श्री ने पूछा, 'अब मुझे क्या करना होगा ?'

प्रश्न सुन कर सीताराम की आँखें सजल हो उठीं। बहुत दिनों बाद स्वामी को प्राप्त कर श्री ने पूछा था कि अब उसे क्या करना है! सीताराम ने मन में सोचा कि इस प्रश्न का यही उत्तर दे कि 'छत से रस्सी लटका दो, मैं उसे गले में डाल कर लटक जाऊँ; परन्तु उन्होंने इस उत्तर को न दे कर कहा, 'मैं अनेक दिनों से रानी की खोज कर रहा हूँ। अब तुम उस स्थान की पूर्ति कर के मेरा महल उजाला करो।'

'महाराज ! मैंने नन्दा की बड़ी प्रशंसा सुनी है। यह आप का सौभाग्य है कि आप को ऐसी रानी मिली है। अब दूसरी रानी की इच्छा मत कीजिए।'

'तुम बड़ी रानी हो। नन्दा चाहे जैसी भी हो, तुम अपना पद ग्रहण क्यों नहीं करतीं ?'

'जिस दिन मैं आप की रानी हो सकती थी, उस दिन मैंने वैकुण्ठ की लक्ष्मी भी नहीं बनना चाहा, पर अब वह समय चला गया।'

'क्यों और कैसे ?'

'मैं संन्यासिनी हूँ और सब कर्मों का मैंने त्याग कर दिया है।'

'साध्वी स्त्री को संन्यास-ग्रहण करने का अधिकार नहीं। पति की सेवा करना ही तुम्हारा धर्म है।'

'जिसने सभी कर्मों का त्याग कर दिया, उसके लिए न तो पति-सेवा ही धर्म है और न किसी देवता की सेवा।'

'सभी कर्मों का त्याग कोई भी नहीं कर सकता। तुम भी नहीं कर सकतीं। गंगाराम की जान बचा कर क्या तुमने कर्म नहीं किया ? मुझसे भेंट कर क्या तुमने कर्म नहीं किया ?'

'किया है और मेरा उससे संन्यास-धर्म भ्रष्ट हो गया है। पर एक बार यदि मेरा धर्म भ्रष्ट हो गया तो क्या आप मुझे जीवन भर धर्म-भ्रष्टा हो कर रहने का उपदेश देते हैं ?'

'पति के साथ रहने से तुम्हारा धर्म भ्रष्ट हो गया, तुम्हें ऐसी कुशिक्षा किसने दी ? तुम मेरी स्त्री हो। तुम्हारे ऊपर मेरा अधिकार है, उस अधिकार के बल पर मैं तुम्हे जाने नहीं दूँगा।'

'आप मेरे पति हैं, राजा है, फिर आप मेरे उपकारी भी हैं, इसलिए आप की आज्ञा के बिना नहीं जा सकती।'

'मैं तुम्हारा पति हूँ, राजा हूँ, उपकारी हूँ, क्या केवल इसीलिए तुम मेरी आज्ञा के बिना जा नहीं सकतीं ? यह क्यों नहीं कहतीं कि तुम्हें मुझसे प्रेम है, इसीलिए मुझे छोड़ कर नहीं जाओ गी। प्रेम की स्वर्ण-शृंखला को तुम कैसे तोड़ कर जा सकती हो ?'

'मेरा वह भ्रम जाता रहा। अब मैंने समझ लिया है कि जो प्रेम करता है, प्रेम ही उसका सुख और धर्म होता है। जिसे प्रेम मिल जाता है, उसे और किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं रहती। तुम मिट्टी से बनी हुई प्रतिमा की पूजा करते हो, इससे तुम्हें धर्म और सुख प्राप्त होता है, परन्तु उससे मिट्टी की मूर्ति को क्या मिलता है ?'

'कैसी भयंकर बात कर रही हो ?'

'भयंकर नहीं, यह अमृतमयी वाणी है। ईश्वर-प्रेम ही जीवन का धर्म और सुख है, इसीलिए प्रेम प्राणिमात्र के प्रति रहना चाहिये। प्राणियों में भी परमात्मा की ज्योति विराजती है। ईश्वर-अर्पित प्रेम में सुख और दुख नहीं रहता। फिर भी किसी को प्रेम करने से यदि हम सुखी होते हैं तो वह माया का रूप है।'

'लगता है कि किसी पाखंडी संन्यासी के चंगुल में फँस कर स्त्री होने के कारण तुमने कुछ व्यर्थ की बातें कण्ठस्थ कर ली हैं। स्त्रियों के लिए ये सब बातें उचित नहीं हैं। मैं तुम्हें उचित बातें कहता हूँ, सुनो। मैं तुम्हारा पति हूँ। मेरे साथ रहना ही तुम्हारा धर्म है। मैं राजा हूँ, हर एक की धर्म रक्षा करना मेरा कर्तव्य है। और पति का भी यही कर्तव्य है कि अपनी पत्नी को धर्मानुरागिनी बनाये। अतः मैं तुम्हें जाने नहीं दे सकता।'

'यह तो मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि आप की आज्ञा के बिना मैं नहीं जा सकती, परन्तु आप अब मेरे द्वारा सुखी नहीं हो सकते।'

'मैं तुम्हें देख कर ही सुखी रहूँ गा ।'

'अच्छा ! परन्तु मैं एक भिक्षा चाहती हूँ, यदि मुझे रखना ही हो तो राजमहल में न रख कर मेरे लिए अलग एक कुटी बनवा दें । मैं संन्यासिनी हूँ, मुझे राजमहल के सुख न मिलेगा और लोग भी आप की हँसी उड़ाएँ गे ।'

'परन्तु कुटिया में रानी को रखने से लोग क्या कहेंगे ?'

'यह कोई नहीं जानता कि मैं रानी हूँ ।'

'लोगों से यह बात छिपी न रहेगी ।'

'महाराज ! मैं संन्यासिनी हूँ, मेरे लिए मान-अपमान कुछ नहीं । मेरा सम्मान तो आप के पास होगा ।'

'वह कैसे ?'

'मैं आप की सहधर्मिणी हूँ । मेरे साथ धर्माचरण के सिवा आप अधर्म न करना । धर्म के अतिरिक्त इन्द्रियों की लोलुपता अधर्म है । इन्द्रियाँ पशुवृत्ति हैं । भगवान ने पशुवृत्ति के लिए विवाह की व्यवस्था नहीं की है । पशुओं के लिए विवाह की व्यवस्था नहीं है; विवाह तो केवल धर्माचरण के लिए है । राजर्षियों के चित्त जब तक शुद्ध नहीं होते थे, वे तब तक स्त्री-सहवास नहीं करते थे । जिस समय आप पाप-रहित हो कर शुद्ध चित्त से मेरे साथ बातचीत कर सकें गे तब तक सदा आप को अलग आसन पर बैठ कर बात करनी हो गी ।'

'परन्तु स्वामी के अधिकार से यदि मैं बलपूर्वक तुम्हें अपनी इच्छानुसार रखूं ?'

'आप बलवान हैं, ऐसा कर सकते हैं । परन्तु मैं बनवासिनी हूँ और वन में हमें सदा विपदाओं का सामना करना पड़ता है, इसलिए हम अपने पास तीव्र विष रखते हैं । जरूरत समझने पर मैं उसे खा लूँगा ।'

हाय ! यह श्री तो सीताराम की श्री नहीं है ।

|८|

परन्तु सीताराम इस बात को समझ कर भी नहीं समझे । मन को किसी तरह भी संतोष नहीं मिला । जिसका प्रेम-पात्र मर जाता है वह मृत देह को भी छोड़ना नहीं चाहता । उसे उसके मरने का विश्वास ही नहीं होता । पागल की तरह आईना उसके मुख पर रख कर देखता है कि उसकी साँस चल रही है अथवा नहीं । आईने के शीशे पर साँस की भाप का कोई निशान पड़ता है या नहीं ।

इतने वर्षों तक सीताराम ने श्री की प्रतिमा अपने हृदय में प्रतिष्ठित कर उसकी

पूजा की थी। बाहर की श्री का रूप चाहे बदल गया हो, अन्दर की श्री वैसी ही थी। परन्तु बाहर की श्री के रूप को ही तो सीताराम ने हृदय में बिठा कर रखा था। वह बाहर की श्री ही थी, तब वह हृदय के श्री से भिन्न क्यों हो गयी थी? सीताराम ने एक बार भी उसे अपने हृदय से भिन्न नहीं सोचा था। हम नहीं जानते कि मनुष्य कितनी बार मरता है और पुनर्जन्म धारण करता है। सीताराम ने यह नहीं समझा कि श्री मर गई है और दूसरी श्री ने उसकी देह में जन्म ग्रहण किया है। वे तो मन में सोच रहे थे कि मेरी श्री मेरी ही श्री है। इसीलिए श्री की लम्बी-चौड़ी बातों को उन्होंने सुना नहीं और न उनमें सुनने की शक्ति ही थी। श्री को छोड़ने का अर्थ तो सब कुछ छोड़ देना था।

किसी तरह भी वे श्री को राजमहल में रखने के लिए राजी नहीं कर सके। तब सीताराम ने श्री के लिए 'चित्त-विश्राम' के नाम से एक प्रमोद-भवन बनवा दिया। उसमें श्री मृगछाला बिछा कर रहने लगी। राजा उसे प्रतिदिन देखने जाते और भिन्न आसन पर बैठ कर वे उससे बात-चीत करने के बाद लौट आते। परन्तु इसका फल राजा सीताराम के लिए बड़ा विषमय हुआ।

उनमें क्या बातचीत होती थी? राजा ने इतने दिन उनके विषय में जो ताप सहा था, ये उसी की बात कहते। श्री को छोड़ कर अन्य किसी के लिए उनके हृदय में स्थान नहीं, उन्होंने कहाँ-कहाँ उसे खोजने के लिए दूत भेजे, कहाँ-कहाँ स्वयं जा कर ढूँढा, वे ये ही सब बातें कहते। और श्री कहती थी—पर्वतों की बात, वन के पशु-पक्षी, साधु-सन्त, धर्माधर्म, कर्माकर्म की बातें।

धीरे-धीरे राजा को अलग आसन पर बैठने में कष्ट अनुभव होने लगा। आग तो लगी ही थी, अब घर भी जला। उस सिंहवाहिनी श्री से यह कहीं अधिक सुन्दर राजा को प्रतीत होने लगी। हृदय की शुद्धि ने उसके शरीर और स्वास्थ्य के सौंदर्य को बहुत बढ़ा दिया था। उसका चित्त शांत था, इन्द्रियाँ क्षोभरहित थीं। चिंताशून्य, वासनाशून्य, भक्तिमयी, प्रेममयी, दयामयी श्री के सौन्दर्य में विकार न था। दुख का कहीं लेश भी न था। इन्द्रियभोग की कहीं छाया भी न थी। ऐसी मधुर और सुखकर प्रतिमा के सामने वह सिंहवाहिनी की प्रतिमा तुच्छ थी। ऐसी मनोहारिणी, कौतूहलमयी मूर्ति के सामने किसी की रक्षा नहीं हो सकती थी। सीताराम के हृदय में तो आग जल रही थी, अब घर भी धधक उठा। श्री के द्वारा सीताराम का सत्यानाश हो गया।

पहले तो सीताराम केवल दोपहर को ही श्री के 'चित्त-विश्राम' में आते थे और एकाध पहर बातचीत कर के चले जाते। अब क्रमशः वे अधिक रात तक ठहरने लगे। जब तक भूख और नींद नहीं सताती तब तक वे वहाँ से घर न आते। फिर उन्होंने चित्त-विश्राम में ही रात को भोजन और शयन की व्यवस्था की। कहाँ भिन्न स्थान में भोजन करते और भिन्न कक्ष में सोते? श्री के मृगछाला के पास वे नहीं जा सकते थे।

उनकी लालसा तृप्त नहीं होती थी। राजमहल में भी वे सुबह अधिक दिन चढ़ते लौटते। तब दोपहर का भोजन भी 'चित्त-विश्राम' में होने लगा। अब वे केवल शाम को ही थोड़ी देर को राज्य-कार्य के लिए ही महल में जाते। अनन्तर फिर किसी दिन जाते और किसी दिन नहीं जा पाते।

अन्त में ऐसा हुआ कि वे 'चित्त विश्राम' में ही रहने लगे। राजमहल में कभी कदाचित् ही चले जाते थे।

इधर किसी भी काम से किसी को 'चित्त-विश्राम' में आने का हुक्म न था। राजा ने राज कार्य की तरफ से बिल्कुल हाथ खींच लिया।

|९|

रामचन्द्र और श्यामचन्द्र नाम के दो गरीब आदमी मुहम्मदपुर में रहते थे। वे रोज सुबह एकान्त में रामचन्द्र की बैठक में बैठ कर तम्बाकू पीते और गप लड़ाते। एक दिन वे दोनों बातें कर रहे थे—

रामचन्द्र ने पूछा, 'क्यों भय्या, इस चित्त-विश्राम का असल माजरा क्या है?'

श्यामचन्द्र ने कहा, 'कौन जाने माई, राजे-राजवाड़ों की बात।'

'पर मैं कहता हूँ कि राजा अब वैसे धार्मिक न रहे। पहले ऐसी बातें न थीं।'

'मनुष्य सदा एक तरह का नहीं रहता। धन-दौलत बढ़ने से मन भी जरा चलायमान होता है। पहले हम लोग रामराज्य में बसते थे, पर आज वह बात नहीं है।'

मेरा तो यह विचार है कि जब से यह 'चित्त-विश्राम बना है, उसी दिन से सब गड़बड़-घोटाला शुरू हुआ है। न जाने उस स्त्री ने राजा पर कैसी जादू की लकड़ी फेर रखी है।'

'सुना है, वह एक भैरवी है। कोई कहता है कि वह एक डाकिनी है और माया के बल से भैरवी बनी हुई है। सुना है कि उसकी एक जोड़ी भी है, वह उड़ती रहती है और दिखाई नहीं देती।'

'तब तो सत्यानाश हुआ समझो। राजा ने राजकार्य की देख भाल करनी छोड़ दी है और इधर यह भी सुनने में आया है कि नवाब की फौज फिर चढ़ाई के लिए तैयारी कर रही है। लेकिन यह मृण्मय है, यही भरोसा है।'

'तुमने खूब कही। राजा अगर अपने काम को नहीं देखता तो दूसरा क्या

करेगा ? देखा नहीं, गङ्गाराम ने क्या किया था ! अब मृण्मय क्या करेगा, उसे भी कौन जानता है ?'

'यदि वह भी मुसलमानों से मिल जाय गा तो हम फिर कहाँ के रहेंगे ? हम सब जबह कर दिये जाएँगे ।'

'तो भय्या, तुमसे चुपके-चुपके कहूँ, मैं तो खिसकने वाला हूँ ।'

'अरे खिसकने में किसे इनकार है, पर यहाँ घर बसा चुके हैं । घर में सब सामान बना चुके हैं । अब इन्हें छोड़ कर जाएँ भी तो कैसे ?'

'तुझे जान प्यारी है या घर-द्वार ? जब कोई अच्छा राजा होगा तो फिर वापस आ जाएँगे । घर तो भाग नहीं जायगा !'

|१०|

श्री ने कहा, 'महाराज ! तुम तो सदा चित्त-विश्राम में पड़े रहते हो । राज्य का काम कौन देखता है ?'

सीताराम बोले, 'तुम्हीं मेरा राज्य हो । तुम से मुझे जो सुख मिलता है, क्या राज्य से वह सुख मिल सकता है ?'

'राम-राम महाराज ! क्या इसी लिए हिन्दू-राज्य की स्थापना की थी ? मेरे कारण राज गया, धर्म गया !'

'राज्य तो स्थापित हो गया ।'

'क्या वह ठहर सकता है ?

'कौन उसका नाश कर सकता है ?'

'आप ही नाश कर रहे हैं । राजा का राज्य और विधवा का ब्रह्मचर्य एक समान है । बड़ी सावधानी से रक्षा किए बिना इसकी रक्षा नहीं हो सकती ।'

'तो इसकी अरक्षा भी तो नहीं हो रही है ।'

'आप राज्य की क्या रक्षा करते हैं ? मैं तो सदा आप को अपने पास ही देखती हूँ ।'

'यह बात नहीं है कि मैं राज-काज नहीं देखता । प्रायः प्रतिदिन राज-महल में जाता हूँ । मेरे कुछ ही देर देखने से जो कार्य होगा, दूसरे उसे दिन भर में नहीं कर सकते । इसके अलावा चन्द्रचूड़ महाराज हैं, मृण्मय हैं, वे राज्यकार्य में अत्यन्त चतुर हैं। उनके रहने से मेरे देखे बिना भी काम चल जायगा ।'

'एक बार तो उनके रहने से भी राज्य चला जा रहा था। उस रात को यदि आप अकस्मात् ही न आ जाते तो राज्य हाथ से निकल ही जाता। अब भी आप उन पर क्यों भरोसा रखते हैं ?'

'मैं तो यहीं हूँ, कहीं गया नहीं। अगर कोई आफत आ ही जायगी तो उसे दूर करूँगा।'

'जब तब आप का यह विश्वास रहेगा तब तक आप राज्य रक्षा का तो प्रबन्ध नहीं करेंगे। बिना उपाय किए कोई काम नहीं हो सकता है।'

'उपाय में क्या कमी देख रही हो ?'

'मैं स्त्री हूँ, सन्यासिनी हूँ। मैं राज-काज जानती नहीं कि आप के प्रश्न का उत्तर दूँ। फिर भी मेरे मन में एक बात का बड़ा भय है। मुर्शिदाबाद की कोई खबर आपको मिलती है या नहीं ? तुराब खाँ गये, भूषणा गया। तो क्या नवाब अब भी चुप बैठे होंगे ?'

'इसकी चिन्ता न करो। जब तक मुर्शिद कुली खाँ किश्त-दर-किश्त मालगुजारी पाते रहेंगे तब तक वे कुछ नहीं कहेंगे।'

'क्या वह उनके पास ठीक समय पर पहुँच जाया करती है ?'

'हाँ, भेजने का पूरा प्रबन्ध है, पर इस बार भेजा नहीं गया है। खर्च इस बार कुछ अधिक हो गया।'

'तब वे कैसे चुप रह सकते हैं ?'

सीताराम सिर नीचा कर कुछ देर तक चुप हो रहे। फिर कहा, 'मुझे इसकी कोई खबर नहीं मिलती है कि वे क्या करेंगे और क्या करते हैं ?'

'महाराज ! क्या चित्त-विश्राम में रहते-रहते खबर लेना भी भूल गये ?'

'श्री ! तुम्हारा मुँह देख कर मैं सचमुच सब कुछ भूल जाता हूँ।'

'तब तो मुझे अपने इस काले मुँह को छिपाना ही होगा, नहीं तो सीताराम के नाम में कलंक लग जाएगा। धर्म, राज्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएगा। मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं पुनः वन को चली जाऊँ।'

'जो होना है, हो, मैंने खूब सोच लिया है। मैं राज्य को छोड़ सकता हूँ, पर तुम्हें नहीं छोड़ सकता।

'तो वही कीजिए। राज्य को किसी योग्य आदमी के हाथों सौंप कर आप संन्यास ग्रहण कर मेरे साथ वन को चलिए।'

सीताराम चिंतित हो गये। उस समय उनकी भोग-लालसा प्रबल हो चुकी थी। पहले की बात होती तो वे राज्य छोड़ भी सकते थे। परन्तु अब वे पहले के सीताराम नहीं थे। राज्य भोग सीताराम के चित्त में रम गया था, वे कैसे राज्य को छोड़ सकते थे ?

११

जिस दिन रमा सभा में मूर्छित हो कर गिर पड़ी थी, उसी दिन से उसने ऐसी चारपाई पकड़ी कि उठी ही नहीं। जी-जान से उसने सती नाम की रक्षा की। परन्तु मान-रक्षा होने पर भी अब प्राण-रक्षा शायद होने वाली न थी।

रोग पुराना हो गया था। यों तो राजाओं के घरों में दवा दारू की कमी नहीं हो सकती थी। अतः राज्य के वैद्य-महाशयों की खूब बन आई। रोग निर्णय की बात पर ही कम झमेला नहीं हुआ। मूर्छा, वायु, अम्लपित्त, हृद् रोग आदि नाना प्रकार के रोगों का नाम सुन कर महल के लोग ऊब गये। कोई माधवनिदान की दुहाई देता, कोई वाग्भट्ट का हवाला देता, कोई चरक संहिता से श्लोक पढ़ कर सुनाता, कोई सुश्रुत की टीका बोलता; पर रोग का कुछ निर्णय न हो सका।

वैद्य महाराजगण बातों का पहाड़ बना कर निश्चिन्त रहें, किसी ने बड़ियाँ, किसी ने बुकनी, किसी ने घृत, किसी ने तैल आदि औषधियाँ दीं। किसी ने कहा—जैसी दवाएँ मेरे यहाँ तैयार हैं वैसी कहीं नहीं हैं। जो हो ऐसा तो कभी हो नहीं सकता कि राजा का घर हो, रानी को रोग हो और कोई नई दवा बनानी न पड़े। चाहे दवा की जरूरत हो अथवा न हों, दस आदमी कुछ कमा सकते थे, बस अब क्या था; धूमधाम के साथ दवाएँ बनने लगीं। कहीं-कहीं खल में दवा खरल की जाती थी, कहीं ओखली में छाल कूटी जाती थी, कही हंड़िए में कुछ चुराया जाता था, कहीं कड़ाही में तेल खौलाया जाता था। यह सब देख कर राजमहल की एक दासी ने कहा 'रोगी बनने में हर्ज नहीं, यदि रानी बन सके।'

परन्तु जिसके लिए इतने धूमधाम से दवाएँ बनती थीं, उससे दवा का संबंध ही न था। वैद्यों का इसमें दोष न था, वे दवा बना-बना कर भेजते जाते थे, परन्तु रमा दवा खाती कब थी? वह दवा खाती न थी। मुरली के स्थान पर रमा की सेवा के लिए यमुना नाम की एक दासी नियुक्त हुई थी। यमुना अधेड़ उम्र की औरत थी, इस लिए मुरली ने उसे रमा की देख-भाल और सेवा के लिए नियुक्त किया था। परन्तु यमुना अपने को कदापि 'अधेड़' मानने के लिए तैयार न थी। परन्तु वह रमा की सेवा खूब मन लगा कर करती थी। वैद्य जो दवा देते थे, उन्हें सेवन कराने का काम भी उसी के जिम्मे था। परन्तु मुश्किल यह थी कि रमा दवा का सेवन करना चाहती ही न थी।

इधर रोग भी किसी प्रकार कम नहीं होता था, बल्कि क्रमशः बढ़ता ही जाता था। अब रमा सिर भी उठा नहीं सकती थी। यमुना ने उसकी हालत देख कर बड़ी

रानी को खबर देने का निश्चय किया। अत: उसने कहा, 'मैं बड़ी रानी के पास जाती हूँ, वही आ कर अब दवा खिला देंगी।'

रमा ने कहा, 'अब मरने के समय में क्यों जला रही हो ? मैं तुम्हारे साथ एक प्रबन्ध करना चाहती हूँ ?'

'क्या प्रबन्ध करना चाहती हो ?'

'तुम दवा मेरे हाथ बेच दिया करो, मैं एक-एक रुपया देकर एक-एक गोली खरीदने के लिए तैयार हूँ।'

'यह कैसी बात ? आपकी ही दवा और आप के हाथ बेचूँ ?'

'मतलब यह कि यदि तुम दवा मुझे बेच दिया करोगी तो मुझे अधिकार होगा कि मैं उसे सेवन करूँ या न करूँ और किसी से तुम यह बात कह न पाओगी।'

यमुना कुछ देर तक सोचती रही। वह बुद्धिमती थी। उसने मन ही मन सोचा; 'वह तो मरेगी ही, मैं रुपये क्यों छोड़ूँ।' उसने कहा, 'यदि दवा आप सेवन करेंगी ही नहीं तो उसे रख कर मुझे क्या फायदा होगा।'

अत: बात पक्की हो गई। रुपये ले कर यमुना रमा के हाथ दवा बेचती रही। रमा ने कुछ दवा उगलदान में डाली और कुछ तकिये के नीचे जमा होने लगी। उठ तो सकती न थी कि कहीं दूर फेंक दे।

इधर दिन-प्रतिदिन उसका शरीर क्षीण होता रहा। नन्दा प्रतिदिन रमा को देखने आती और दो-एक बातचीत कर के चली जाती। नन्दा ने देखा कि रमा के मुख पर मृत्यु की छाया पड़ रही है। उसने सोचा—'ये सब वैद्य क्या कर रहे हैं ?'—उसने सब वैद्यों को बुलवा भेजा। सब को एकान्त में ले जा कर वह उन्हें भला-बुरा सुनाने लगी, 'यदि आप रोग अच्छा नहीं कर सकते तो क्यों वेतन लेते हैं ?'

एक बूढ़े वैद्य ने कहा, 'माताजी ! वैद्य दवा दे सकते है, आयु नहीं दे सकते।'

नन्दा ने कहा, 'जाइए आप लोग। मुझे न दवा की जरूरत है और न वैद्य की। आप लोग घर चले जाइए।'

वैद्य-मंडली को इस बात से दुख हुआ। बूढ़े वैद्य बुद्धिमान् थे, उन्होंने कहा, 'मैंने जो दवा दी है वह साक्षात् रामवाण हैं। यदि आप खुद अपने हाथ से मुझे दवा सेवन कराने दें तो मैं तीन रोज में रोग दूर कर देने का दावा करता हूँ।'

वैद्य की बात मान कर नन्दा ने उन्हें बिदा दी। अनन्तर रमा के पास जा कर उसने सब बातें कहीं। सुन कर रमा मुस्कुराई। जोर से हँसने की शक्ति तो उसमें नहीं थी।

नन्दा ने पूछा, 'हँसी क्यों ?'

रमा ने कहा, 'मैं दवा न खाऊँगी।'

नन्दा ने कहा, 'छि:, इतने दिन तक जब दवा खाई तो और तीन रोज खाने में हानि क्या है ?'

'मैं दवा नहीं खाती ।'

चौंक कर नन्दा ने कहा, 'यह क्या ? क्या बिलकुल नहीं खाती ?'

'सब तकिया के नीचे जमा हैं ।'

नन्दा ने तकिया उलट कर देखा तो सब दवा ज्यों-की-त्यों मौजूद थी ।

उसने कहा, 'क्यों बहन ! क्या आत्मघातिनी बनना चाहती हो ? अब तो कलङ्क दूर हो गया ।'

'वह बात नहीं है । मैं दवा खाऊँगी ।'

'कब ?'

'जब राजा मुझे दर्शन देंगे ।'

रमा की आँखों से आँसू झरने लगे । नन्दा की आँखें भी सजल हो उठीं । आँखें पोंछ कर नन्दा ने कहा; 'इस बार वे अवश्य तुम्हें देखने आयेंगे ।'

|१२|

नन्दा रमा को आवश्वासन दे कर तो चली गई । इसी आश्वासन पर रमा कुछ दिन जीती रही, पर अब उसके बचने की कोई आशा न रही । नन्दा ने बहुत चेष्टा की, पर राजा को वह पकड़ न सकी और कभी-कभी वे मिल भी जाते तो 'कल' के बहाने पर टाल देते । नन्दा की भी यही धारणा थी कि राजा को डाकिनी लगी हुई है । वह यह नहीं जानती थी कि यह डाकिनी दूसरी कोई नहीं, श्री है ! इसलिए उस डाकिनी के प्रति उसके मन में बड़ा भारी क्रोध था । उसने अनेक बार यह जानने के लिए चित्त-विश्राम में आदमी भेजे थे कि यह कौन है—कैसी है ! सीताराम की आज्ञा से तो उसमें एक मक्खी भी नहीं जा सकती थी । इसलिए कुछ भी न हो सका । लोगों में यह बात फैली हुई थी कि डाकिनी सुन्दर रूप धारण किए रहती है और रात में वह सियारिन के रूप से मरघटों में घूम कर नरमांस खाया करती है । नन्दा को भी जब यह बात मालूम हुई तो वह बहुत डर गई और चन्द्रचूड़ महाराज को बुलवा कर कोई उपाय करने के लिए कहा । चन्द्रचूड़ महाराज ने अच्छे-अच्छे, तान्त्रिक ब्राह्मणों को बुला कर तान्त्रिक यज्ञ कराया । अन्त में एक विज्ञ तान्त्रिक ने कहा, 'मनुष्य के द्वारा इसका कोई उपाय नहीं हो सकता ! यह मामूली डाकिनी नहीं है । वह कैलासवासिनी साक्षात्

भगवती की सहचरी है। इसका नाम विशालाक्षी है। रुद्र के श्राप से मृत्युलोक में— मनुष्य लोक में मनुष्य-सहवास के लिए आयी है। शापमुक्त होने पर अपने आप चली जाएगी।'

सुनकर नन्दा और चन्द्रचूड़ महाराज दोनों चिन्तित हुए। नन्दा ने मन-ही-मन सोचा, 'विशालाक्षी हो, कोई हो, अगर सामने पाती तो नाखून से उसका मांस नोंच लेती।'

सीताराम राजमहल में आ कर कभी-कभी नन्दा से भेंट करते। नन्दा उनसे रमा को देखने के लिए अनेक निहोरे करती। पर वे हमेशा टाल ही जाते। अस्तु, एक दिन नन्दा ने सीताराम को जबर्दस्ती पकड़ लिया और कहा, 'आज यदि उससे भेंट न करोगे तो फिर जन्म भर भेंट न होगी।'

सीताराम को रमा को देखने के लिए जाना पड़ा। रमा सीताराम को देख कर खूब रोई और कुछ बोल न सकी। सीताराम उसे मीठी-मीठी बातों से आश्वासन देने लगे। रमा का मन प्रसन्न हो उठा। परन्तु सीताराम के मन में शंका उत्पन्न हो गई कि अब अधिक विलम्ब नहीं है।

सीताराम पलंग पर बैठे थे। वहीं रमा का लड़का आया। उसे देख कर रमा के सूखे हुए गालों पर फिर आंसू गिरने लगे। लड़का भी मां को रोते देख कर रोने लगा। रमा ने अस्फुट स्वर से सीताराम से पुत्र को गोद में लेने के लिए कहा। सीताराम ने उसे गोद में उठा लिया। रमा ने क्षीण स्वर में कातर हो कर कहा, 'माता के अपराध से पुत्र पर क्रोध न करना। इसे तुम्हारे हाथ सौंपती हूँ।'

रमा ने सीताराम के पैरों की धूल ले कर माथे में लगायी और कहा, 'अब विदा लेती हूँ। आशीर्वाद दीजिए कि दूसरे जन्म में आप की ही पत्नी बनूँ।'

उसकी बोली बन्द हो गयी। जोरों से साँस चलने लगी। अन्त में अन्धकार हो आया और उसकी सब ज्वाला शान्त हो गयी। रमा का जीवन प्रदीप बुझ गया।

|१३|

जिस दिन रमा मरी, उस दिन से फिर सीताराम चित्त विश्राम में नहीं गये। जब सीताराम राजा नहीं हुए थे, और श्री को देखा नहीं था तब वे रमा को बड़ा प्यार करते थे। नन्दा से भी बढ़ कर उसे प्रेम करते थे। वह प्रेम चला गया था। कैसे गया सीताराम ने इसकी कभी चिन्ता न की। आज कुछ सोच कर उन्होंने देखा कि रमा का

था—कुछ अधिक दोष न था। सब दोष मेरा ही है। वे मन-ही-मन अपने ऊपर बड़े रुष्ट हुए।

इसलिए तबीयत कुछ खराब हो गई। चित्त प्रसन्न करने के लिए उनकी श्री के पास जाने की इच्छा नहीं हुई—क्योंकि सीताराम की आत्मग्लानि का श्री से बड़ा सम्बन्ध था। रमा के प्रति उनकी इस निठुराई का कारण श्री ही थी। श्री के पास जाने से आग और भी बढ़ती। इसीलिए श्री के पास न जा कर सीताराम नन्दा के पास गये। लेकिन नन्दा ने उस दिन एक भूल की। नन्दा बहुत चिढ़ गयी। नन्दा को इसलिए क्रोध नहीं आता था कि राजा डाकिनी या मानुषी के लिये मेरा अपमान कर रहे हैं, लेकिन इस तरह राजा की अवहेलना से रमा को मरते देख कर उसे बड़ा क्रोध आया। इसके साथ उसका अपमान भी मिल गया। क्रोध इतना बढ़ गया कि बहुत करने पर भी वह रोक न सकी। रमा की बात छिड़ने पर नन्दा ने कहा, 'महाराज! तुम्हीं रमा की मृत्यु के कारण हो।'

नन्दा ने यहीं तक अपना क्रोध प्रकट किया और कुछ नहीं कहा। किन्तु इतने से ही आग जल उठी। क्यों नहीं, ईंधन तो मौजूद था ही। एक तो आत्मग्लनि से सीताराम का मिजाज खराब हो गया था। वे किसी तरह यहाँ अपनी सफाई देने की चेष्टा कर रहे थे। उसके ऊपर नन्दा का यह तिरस्कार शूल की तरह चुभा। 'महाराज। तुम्हीं रमा की मृत्यु के कारण हो'—सुन कर राजा गरज उठे। बोले, 'ठीक है, मैं ही तुम लोगों की मृत्यु का कारण हूँ। मैंने पृथ्वी पर रक्त बहा कर तुम लोगों को रानी बनाया और अब मैं ही तुम्हारी मृत्यु का कारण हूँ! तुम यह न कहो गी तो और क्या कहो गी? जब रमा ने गङ्गा राम को बुला कर मेरी मृत्यु का कारण बनने की चेष्टा की थी, उस समय तो किसी ने कुछ नहीं कहा था।'

यह कह कर राजा गुस्से में बाहर चले आये। वहाँ चन्द्रचूड़ ठाकुर राजा को शोकाकुल देख कर उन्हें सान्त्वना देने के लिए तरह-तरह की बातें करने लगे। राजा का दिमाग गरम तेल की तरह खौल रहा था। वे उनकी बातों का कुछ उत्तर नहीं देते थे। चन्द्रचूड़ ठाकुर ने भी एक भूल की। उन्होंने समझा कि रमा की मृत्यु से राजा को दुःख हुआ है। इस समय यदि चेष्टा कर के डाकिनी की ओर उनका मन फेरा जाय तो यह उचित है। इसी अभिप्राय से भूमिका बाँध कर चन्द्रचूड़ ठाकुर ने कहा, 'महाराज, यदि छोटी रानी के प्रति कुछ और अधिक ध्यान देते तो वह निश्चय ही आरोग्य लाभ कर लेती।'

जलती हुई आग और धधक उठी। राजा ने कहा, 'क्या आप का भी विश्वास है कि मैं ही रमा की मृत्यु का कारण हूँ?'

वास्तव में चन्द्रचूड़ का ऐसा ही विश्वास था। उन्होंने सोचा कि इन बातों को राजा से साफ-साफ कह देना उचित है। अपना दोष देखे बिना किसी के चरित्र में

सुधार नहीं हो सकता। मैं इनका गुरु और मन्त्री हूँ। यदि कुछ कहने का मुझे साहस न होगा तो और किसे होगा? अतः चन्द्रचूड़ ने कहा, 'हाँ, एक तरफ से यह कहा भी जा सकता है।'

'कहा जा सकता है। सोचिए और कहिये कि यदि मैं लोगों को मारने की इच्छा करता तो इस राज्य में आज तक एक आदमी भी न बचता।'

'मैं यह नहीं कहता कि आपने किसी के मारने की इच्छा की है। लेकिन आप के मृत्यु-कामना न करने पर भी जो आप की देख-भाल में है उसका यत्न न करने से उसकी मृत्यु अवश्य होगी। केवल छोटी रानी ही क्यों? आप के न देखने से सारा राज्य नष्ट हो जायगा। कई दिनों से मैं आप से यह बात कहने की चेष्टा कर रहा था, लेकिन मौका न मिलता था कि आप से कहूँ।'

मन में राजा ने कहा—सभी कहते हैं कि मैं देखभाल नहीं करता, तो और कौन करता है? ये सब क्या करते हैं? बोले, 'मैं देखभाल नहीं करता तो आप क्या कर रहे हैं?'

'जो मैं कर सकता हूँ सब करता हूँ। मैं राजा तो नहीं हूँ। जो काम राजा के हुक्म के बिना नहीं हो सकता, वही मुझसे नहीं हो सकता। मेरी प्रार्थना है कि आप कल एक बार दरबार में चल कर बैठिए। मैं आप को सब बतला दूँगा। कागज-पत्रों को दिखाऊँगा। आप अपना हुक्म जारी कीजिए।'

राजा ने मन में कहा—तुम्हारी गुरुआई बहुत बढ़ गई है, मेरी भी इच्छा है कि तुम्हे कुछ सिखाऊँ। बोले, 'इसके लिए विचार किया जायगा।'

चन्द्रचूड़ के इस तिरस्कार से राजा का शरीर जल रहा था। केवल गुरु समझ कर ही कुछ बोल नहीं सकते थे। क्रोध के मारे वे सोने भी न गये। यही सोच रहे थे कि चन्द्रचूड़ को कैसे शिक्षा दूँ। प्रातःकाल नित्यक्रिया से निवृत्त हो कर राजा दरबार में बैठे। चन्द्रचूड़ ने सब बही-खाता ला कर हाजिर किया।

| १४ |

जो बात चन्द्रचूड़ राजा से कहने वाले थे वह यह है—कितना ही बड़ा राजा क्यों न हो, रुपये बिना राज्य नहीं चल सकता, जिस तरह हमारा-तुम्हारा काम बिना रुपये के नहीं चल सकता, उसी तरह अंग्रेजी राज्य जैसे बड़े राज्य का भी काम बिना, रुपये के नहीं चल सकता। रुपये के अभाव से रोम का राज्य लोप हो गया। प्राचीन सभ्यता मिट गई। सीताराम को रुपये का अभाव था।

सीताराम को रुपये की कमी होना स्वाभाविक ही था। उनकी आमदनी काफी बढ़ गई थी। भूषणा फौजदारी का इलाका उनके अधीन हो गया था। बारहों राजा उनके वश में थे। उस इलाके की मालगुजारी अदा करने का भार सीताराम के ही ऊपर था। आज तक सीताराम ने एक कौड़ी भी मुर्शिदाबाद न भेजी थी। जो वसूल करते थे सब अपने काम में खर्च कर लिया करते थे। तब रुपये की कमी क्यों न पड़े ?

आय बढ़ते ही आदमी को रुपये की कमी पड़ जाती है, क्योंकि खर्च भी बेहिसाब बढ़ जाता है। भूषणा को जीतने में कुछ खर्च हुआ ही था, बारह राजाओं को वश में करने में कुछ खर्च हुआ ही होगा। अब बहुत फौज रखनी पड़ती है—न जाने कौन विद्रोही खड़ा हो जाय, कौन शत्रु आक्रमण करे—इसके लिए भी खर्च होता ही है। अतः जितनी आय बढ़ी है, उतना ही खर्च भी बढ़ गया है।

लेकिन जैसे आय बढ़ती है वैसे ही खर्च बढ़ने से रुपये का टोटा नहीं पड़ता। चोरी करने से ही रुपये की कमी होती है। राजा आजकल कुछ देखते-भालते नहीं, दिन-रात चित्त-विश्राम में ही पड़े रहते हैं। इसलिये राज्य के नौकर खजाने का रुपया ले कर जिसकी जो इच्छा होती है वह करता है। कौन मना करे ? चन्द्रचूड़ मना करते हैं, पर उनकी बात कोई नहीं सुनता। चन्द्रचूड़ के आदमियों ने बड़े-बड़े राजकर्मचारियों को चोरी करते पकड़ा। चन्द्रचूड़ ने सोचा—इस बार राजा जब दरबार में आयेंगे तो सब बही-खाता उनके सामने रख दूँगा। लेकिन राजा तो कुछ सुनते ही नहीं थे। जो काम है—सो कीजिए महाशय, यह कह कर किसी तरह जी छुड़ा चित्त-विश्राम में भाग जाते थे। तब चन्द्रचूड़ ने हताश हो कर कई आदमियों को आप ही जवाब दे दिया। उन्होंने उनकी आज्ञा हँसी में उड़ा दी। कहा, 'ठाकुर ! जब धर्मशास्त्र की व्यवस्था देने की जरूरत पड़ेगी तब आप की बात हम सुनेंगे। राजा का सही किया हुआ परवाना दिखलाइये, नहीं तो घर जा कर संध्या-पूजा कीजिये।'

राजा के सामने कैसा ही कागज रख देने से वे सही कर देते, उन्हें पढ़ने की फुरसत न थी—उन्हें चित्त-विश्राम में जाने की धुन रहती। इसलिए चन्द्रचूड़ ने उन अपराधियों की बरखास्तगी के परवाने सही करा लिये। राजा ने बिना पढ़े ही परवानों पर दस्तखत कर दिये।

पर इससे चन्द्रचूड़ का मतलब हल न हुआ। प्रधान अपराधी दरबार में ही उपस्थित था, उसने देखा कि राजा ने बिना पढ़े दस्तखत कर दिया है। राजा के चले जाने पर उसने कहा, 'मैं इस हुक्म को नहीं मानता, यह तुम्हारा हुक्म है, राजा का नहीं। राजा ने कागज पढ़ कर नहीं देखा है। जब राजा स्वयं विचार कर हम लोगों को बरखास्त कर देंगे तो जायेंगे—इस वक्त तो नहीं जा सकते। कोई नहीं गया। खूब चोरी हुई। खजाना उनके हाथों में था। अतः चन्द्रचूड़ कुछ कर न सके।

इसीलिए चन्द्रचूड़ ने राजा को आज पकड़ा था। राजा के दरबार में बैठने पर

चन्द्रचूड़ अपराधियों के सामने ही सब कागज-पत्र राजा को समझाने लगे। एक तो राजा यों ही सारे संसार पर कुपित थे, तिस पर चोरी की भरमार देख कर तो उन्होंने एकदम विकराल रूप धारण कर लिया—राजा ने हुक्म दिया कि सब अपराधियों को शूली दो।

हुक्म सून कर सारा दरबार सिहर उठा। चन्द्रचूड़ पर मानो वज्रपात हुआ।

देख कर राजा ने कहा, 'साधारण अपराध क्यों ? चोर को शूली देना ही ठीक है।'

'इनमें बहुत से ब्राह्मण हैं। आप क्या ब्रह्महत्या करेंगे ?'

'ब्राह्मणों के नाक-कान काट कर, उनके ललाट पर गर्म लोहे से 'चोर' लिख कर छोड़ दूँगा। और सब को फाँसी पर चढ़ाना होगा।'

यह हुक्म जारी करने के बाद राजा चित्त-विश्राम में चले गये।

उनके आज्ञानुसार अपराधियों को दंड दिया गया। नगर में हाहाकार मच गया। बहुत से राज कर्मचारी काम छोड़-छोड़ कर भाग गये।

|१६|

चोरी बन्द हो गई, पर रुपये की कमी न गई। राज्य की हालत राजा को बतलाना आवश्यक था, लेकिन राजा का मिलना कठिन था, पाने पर भी उनसे बात नहीं होती। खोजते-खोजते चन्द्रचूड़ ने एक दिन पकड़ा। कहा, 'महाराज! एक बार इस बात को न सुनने से राज्य नहीं रहेगा।'

'रहे तो रहे, नहीं जाये तो जाये। अच्छा, सुनता हूँ। क्यों क्या हुआ है ?'

'सब सिपाही काम छोड़ कर चले जा रहे हैं।'

'क्यों ?'

'उन्हें वेतन नहीं मिलता।'

'क्यों नहीं मिलता ?'

'रुपये नहीं हैं।'

'क्या अब भी चोरी होती चली जा रही है ?'

'नहीं, चोरी तो बन्द हो गई है, लेकिन उससे क्या होगा ? जो रुपया चोरी चला गया है, वह तो फिर लौट नहीं सकता। तब उन रुपयों का घाटा कैसे पूरा हो ?'

'क्यों, क्या वसूल तहसील नहीं होती ?'

'जिनके ऊपर वसूल-तहसील करने का भार है, वे कहते हैं कि क्या वसूल-तहसील कर के हम शूली पर चढ़ेंगे ?

'तो उन्हें काम से अलग कर दीजिए।'

'फिर नये आदमी कहाँ मिलेंगे ? और क्या केवल नये आदमियों से वसूल-तहसील का काम कराया जा सकता है ?'

'तब उन्हें कैद कर लीजिए।'

'तहसीलदारों का ही सब दोष नहीं है। ऐसे भी बहुत से लोग हैं, जो लगान देने से इनकार कर रहे हैं।'

'आप को यह बात कैसे मालूम हुई ?'

'मैंने इसका पता लगा लिया है।'

'तहसील वे क्यों नहीं देते ?

'कहते हैं, मुसलमानों का राज्य होने पर तहसील देंगे। अभी देने से दोबारा तहसील गिनना पड़ेगा।'

'उन सब को कैद कर लीजिए !'

'कैद खाने में इतनी जगह नहीं है।'

'बड़े-बड़े छप्पर बनवा लीजिए।'

सब को कैद करने का हुक्म देकर राजा चित्त-विश्राम को चले गये।

इस हुक्म से राज्य भर में हलचल मच गई। सब कैदखाने भर गये। बाकीदार और तहसीलदार दोनों ही देश छोड़ कर भागने लगे। जो बाकीदार नहीं थे, वे भी साथ-साथ भागने लगे।

इसीलिए कहा था कि पहले तो आग जलती ही थी, अब घर भी जला। यदि श्री नहीं आई होती तो पता नहीं कि सीताराम का इतना पतन होता या नहीं। क्यों नहीं, सीताराम ने तो निश्चय किया था कि राज-काज में मन लगा कर श्री को भूल जाऊँगा, इसी समय श्री दिखाई दी। देख कर उनके अभिप्राय का बाँध आशक्ति के वेग से टूट गया। किन्तु यदि श्री नन्दा की तरह राजमहल में रह कर राजा को राज-काज में सहायता देती तो सीताराम की इतनी अवनति न होती। क्योंकि केवल ऐश्वर्य के मद में जो उनकी अवनति हो रही थी वह नन्दा और श्री की सहायता से कुछ कम हो जाती, पर राजमहल में रानी की तरह न रह कर श्री राजा की उप-पत्नी की तरह रही। तो भी यदि संन्यासिनी के रूप में न रह कर उपपत्नी ही बन कर रहती तो इतना बखेड़ा न बढ़ता।

इच्छा पूरी होने पर उसकी मोहिनी शक्ति बहुत कम हो जाती है। कुछ दिनों के बाद राजा भी चेत जाते। यदि श्री संन्यासिनी की तरह रहती, तो उसके ठीक संन्यासिनी होने में भी यह विपद् न आती। पर इन्द्राणी की तरह संन्यासिनी मृगछाला

२४

पर बैठ कर अपने मुँह से मधु की वर्षा करे और सीताराम अलग बैठे कुत्ते की तरह उसकी ओर देखते रहें, भला इस दुख की क्या तुलना हो सकती है ? क्या इसी से सीताराम सर्वनाश हुआ। पहले तो केवल आग ही जली थी, अब घर भी जला। सीताराम अब का अधिक न सह सके। तब उन्होंने मन में श्री के ऊपर बल-प्रयोग करने का संकल्प किया।

पर एक महानीच भी उस पर बल प्रयोग नहीं करता, जिसे वह प्यार करता है। इस समय श्री के प्रति राजा का प्रेम इन्द्रिय-वशता में परिणत हो गया। पर प्रेम अभी तक गया नहीं। इसलिए बल प्रयोग करने की इच्छा करते हुए भी सीताराम ऐसा नहीं कर सकते थे। बल प्रयोग करूँ कि नहीं, यह सोचते समय सीताराम की जान ही निकलती थी। जितने दिन तक सीताराम कुछ निश्चित न कर सके, उतने दिन तक उन्हें किसी बात का ज्ञान न रहा। उनकी इसी बुद्धि की विकृतावस्था में राजा के कर्मचारियों को शूली दी गई, वसूल तहसील करने वाले कर्मचारी कैद किये गये, बाकीदार पकड़े गए, प्रजा सब भाग गई, और राज्य तहस-नहस होने लगा।

अन्त में सीताराम ने श्री के ऊपर बल-प्रयोग करना ही स्थिर किया। इसे निश्चय कर कार्य रूप में परिणत करने के पहले ही एक बड़ा गोलमाल खड़ा हुआ। एक दिन चन्द्रचूड़ ठाकुर ने राजा से कहा, 'महाराज ! तीर्थाटन करने की इच्छा है, यदि आप अनुमति दें तो जाऊँ।'

राजा को यह बात वज्र के समान लगी। सोचा—चन्द्रचूड़ के चले जाने पर या तो श्री को छोड़ना पड़ेगा या राज्य को। अतएव राजा चन्द्रचूड़ को तीर्थयात्रा से रोकने की चेष्टा करने लगे।

चन्द्रचूड़ ठाकुर ने दृढ़ निश्चय कर लिया था कि इस पापी राज्य में अब नहीं रहूँगा। इस पापी राजा का कार्य अब नहीं करूँगा। अतः वे राजा की बात से सहमत न हुए। बहुत बातें हुईं। चन्द्रचूड़ किसी तरह भी राजी न हुए। राजा ने भी खूब सवाल-जवाब किये।

अन्त में चन्द्रचूड़ रहने के लिए राजी हो गये। बात करते-करते बहुत रात चली गई थी। इसीलिए राजा उस दिन चित्त-विश्राम में न जा सके। उधर उसी रात चित्त-विश्राम में एक काण्ड हो गया।

उस दिन चित्त-विश्राम के द्वार पर दैव योग से एक भैरवी आ खड़ी हुई। चित्त-विश्राम एक छोटा-सा प्रमोद-गृह था, पर तो भी उसके दरवाजे पर दरवान रहते थे। भैरवी ने दरबानों से अन्दर जाने की भीख माँगी।

दरबानों ने कहा, 'यह राजमहल है, इसमें एक रानी रहती है, किसी के जाने का हुक्म नहीं है।'

राजाओं की उपरानियाँ भी नौकरों के लिए रानियों के ही समान हैं।

भैरवी ने कहा, 'मैं इसे जानती हूँ। राजा भी मुझे जानते हैं। मेरे जाने के लिए कोई रोक-टोक नहीं है। तुम लोग जा कर राजा को खबर दो।'

दरवानों ने कहा, 'इस समय राजा यहाँ नहीं हैं, राजधानी में चले गए हैं।'

'तो जो रानी यहाँ रहती है उन्हें ही जा कर खबर दो। क्या उनके हुक्म से काम नहीं चल सकता ?'

दरबान एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। चित्त-विश्राम के अन्त:पुर में कभी कोई जाने नहीं पाता था। राजा ने मना किया है—रानी ने भी मना किया है। राजा के न रहने पर दो एक स्त्रियाँ (नन्दा की भेजी हुई) अन्त:पुर में जाना चाहती थीं, किन्तु रानी किसी को खबर देने के लिए भी अन्दर न जाने देती तो रानी को खबर देने कौन जायगा ? पर इसकी मूर्ति देखने से तो जान पड़ता है कि यह मानुषी ही नहीं है। इसको भगाने से शायद कोई गोलमाल हो !

कुछ आगा-पीछा करने के बाद दरबानों ने दासी द्वारा अन्त:पुर में संवाद भेजा। भैरवी का आना सुन कर उसी समय उसको भीतर आने की आज्ञा मिल गयी। जयन्ती अन्त:पुर में चली गयी।

देख कर श्री ने कहा, 'अच्छा हुआ कि आ गईं। मेरे लिए ऐसा समय उपस्थित हुआ है कि तुम्हारे परामर्श के बिना कुछ सूझता ही नहीं।'

जयन्ती बोली, 'मैं तो कह कर गयी थी कि किसी समय तुम्हारी खबर लेने के लिए मैं आऊँगी। कहो, इस समय क्या खबर है ? नगर में मैंने सुना है कि राज्य में बड़ी गड़बड़ी फैली है और तुम्हीं उसका कारण हो। सुना, झुण्ड-के-झुण्ड लड़के रघुवंश के उन्नीसवें सर्ग के श्लोक बक रहे थे, क्या बात है ?'

श्री ने कहा, 'इसीलिए तो तुम्हें खोजती थी।' उसके बाद श्री ने आद्योपान्त सब वृत्तान्त कह सुनाया।

जयन्ती ने कहा, 'तब तुम अपना निश्चित दाम क्यों नहीं कहतीं ?'

'वह कह नहीं सकती।'

'राजधानी में आओ, राजमहल में रानी बन कर रहो। वहाँ राजा को सलाह दे कर उन्हें धर्मपथ पर रखो। यही तुम्हारा काम है।'

'यह तो मैं जानती नहीं, रानी का धर्म तो मैंने सीखा ही नहीं। संन्यासिनी का कर्म तुमने मुझे सिखाया है, वही मैंने सीखा है। जिसे जानती नहीं, जिसे कर नहीं सकती, उस धर्म को ग्रहण कर के मैं क्या कर सकती हूँ। संन्यासिनी के रानी होने से क्या मंगल होगा ?'

कुछ सोच कर जयन्ती बोली, 'यह तो मैं कह नहीं सकती। पर तुमसे वह धर्म पालन नहीं हो सकता। यदि ऐसा होने की सम्भावना होती तो इतना अन्तर नहीं रहता।'

एक दिन ऐसा था। जिस दिन आँचल हिला-हिला कर मुसलमानी सेना का नाश किया था उस दिन इसकी सम्भावना थी। किन्तु दुर्भाग्यवश मैं उस रास्ते से गई नहीं, अतः मुझे उसकी शिक्षा न मिली। मेरे भाग्य में लिखा था वनवास—संन्यास। कौन जानता है मेरा भाग्य फिर कब लौटे गा ?'

'अब क्या उपाय है ?'

'भागने के सिवा और कोई उपाय तो नहीं देखती। केवल राजा अथवा राज्य के लिए ऐसा नहीं कहती, मैं अपने लिए भी कह रही हूँ। रात-दिन राजा को देखते-देखते बहुत बार मन में समझती हूँ कि मैं उनकी गृहिणी हूँ—उनकी धर्म-पत्नी हूँ।'

'यह तो ठीक ही है।'

'इससे फिर पुरानी बात याद आती है—क्या फिर प्रेम के फंदे में पड़ूँ ? इस लिए तो मैंने पहले ही कहा था कि राजा से साक्षात् न करना ही अच्छा है। राजा को ले कर बारह शत्रु होते हैं।'

'और अपने शरीर तक बाकी ग्यारह होते हैं ? बड़ी संन्यासिनी बनी हो। जिसे भगवान् को समर्पण किया था उसे फिर लौटा रही हो। और देखती हूँ, अपने बारे में सोचना भी सीख लिया है। क्या इसको संन्यास कहते हैं ?'

'इसलिए तो सोच रही हूँ कि भागने में भलाई है या नहीं ?'

'भलाई है।'

'मेरे भागने से राजा आत्मघात कर लें गे। ऐसा ही कहते हैं।'

'पुरुषों की बातें औरतों को भुलाने के लिए होती हैं। पुष्पबाण से विद्ध हो कर वे प्रलाप करते हैं।'

'तो क्या उसका डर नहीं है ?'

'होने से भी तुम्हारा क्या ? राजा के मरने, जीने से तुम्हारा क्या बनता बिगड़ता है ? तुम्हारे स्वामी हैं, तुम्हें इतना दुख है ?'

'यह हो या न हो—पर राजा के मरने से किसकी भलाई होगी ?'

'डरो मत; राजा मरें गे नहीं। खिलौना खो जाने से बच्चा रोता है, मरता नहीं। तुम अपने कर्म ईश्वर को समर्पण करके; जिससे तुम्हारा चित्त संयत हो सकता है वही करो।'

'अब यहाँ से चला जाना होगा।'

'अभी चली जाओ।'

'कैसे जाऊँ ? दरबान तो जाने नहीं दें गे।'

'तुम्हारा गैरिक, रुद्राक्ष, त्रिशूल सब कुछ तो है ही, भैरवी वेश में यहाँ से भाग जाओ। दरबान कुछ नहीं कहें गे।'

'शायद तुम राजा के हाथ पड़ जाओ और वे तुम पर क्रोध करें।'

'क्रोध कर के मेरा क्या करेंगे ? क्या राजा की इतनी क्षमता है कि संन्यासिनी का अनिष्ट कर सकें ?'

जयन्ती पर श्री को बड़ा विश्वास था इसलिये श्री ने बहुत वादविवाद न करके पूछा, 'तुम्हारे साथ फिर कब मुलाकात होगी ?'

'तुम बराबर गाँव में चली जाओ। वहाँ के राजा के पुरोहित से भेंट करना। अपना त्रिशूल मुझे दो और मेरा तुम लो। उस गाँव के राजा का पुरोहित मेरा शिष्य है। वे मेरा चिह्नित त्रिशूल देख कर जैसा तुम कहो गी वैसा ही कर दें गे। उनसे कहना कि वे तुम्हें कहीं छिपा कर रखें क्योंकि तुम्हारे लिए बड़ी खोज-खाज होगी। वे तुम्हें राजमहल में छिपा कर रखें गे। वहीं पर तुम्हारे साथ मेरी भेंट हो गो।'

|१७|

रामचन्द्र ने कहा, 'बड़ी भयानक बात है। सब लोग चंचल हो उठे हैं।'

श्यामचन्द्र बोला, 'हाँ भाई ! अब तो एक क्षण भी इस राज्य में रहना उचित नहीं।'

'तुम भी तो कई दिनों से जाने को कहते हो, पर अभी तक गये नहीं।'

'बाल-बच्चों को तो भेज दिया है। कुछ बाकी-साकी पड़ा है, जहाँ तक हो सकेगा उसे वसूल कर के मैं भी चला जाऊँ गा और अब वसूल भी किससे करूँ गा ? देने वाले तो सब भाग गये।'

'अच्छा, अब नई बात क्या हुई है, कुछ तुम्हें मालूम है ? इतनी हलचल क्यों है ? क्या सुना नहीं है कि कैदखाने में कैदी अँटते नहीं ? नया जो छप्पर तैयार हुआ है

इसमें भी जगह नहीं है। अब तो पशुशालाओं में से पशुओं को निकाल कर उनमें कैदी भरे जा रहे हैं।'

'क्या नहीं जानते कि क्या बात है ? वह डाकिनी भाग गई है।'

'यह तो सुना है। अच्छा, वह डाकिनी तो इतने यज्ञयोग से नहीं गई, अब आप ही आप कैसे चली गयी ?'

'खाक आप ही आप गई है (चुपके से) ! कहने से तो रोंगटे खड़े होते हैं। वह एक देवी के भगाने से गई है।'

'यह क्या !'

'इस नगर में एक देवी रहती हैं। वह कभी-कभी दिखाई देती हैं। बहुतों ने उन्हें देखा है। क्यों क्या उस दिन तुम नहीं थे जिस दिन छोटी रानी की परीक्षा हो रही थी ?'

'हाँ हाँ, क्या वह वही हैं ? अच्छा, कहो तो वह कौन हैं ?'

'क्या वह किसी को अपना परिचय दे गई हैं ? तो भी पाँच आदमी पाँच तरह की बातें कहते हैं।'

'क्या कहते हैं ?'

'कोई कहता है, वह इस नगरी की राजलक्ष्मी हैं। कोई कहता है, वह स्वयं लक्ष्मीनारायणजी के मन्दिर से रूप धारण कर के बाहर होती हैं। कोई कहता है, वह स्वयं दशभुजी हैं। किसी ने उन्हें दशभुजी के मन्दिर में अन्तर्धान होते नहीं देखा है।'

'यही हो सकता है। न होने से वह भैरवी-वेश क्यों धारण करतीं ? उस सभा में तो वह भैरवी-वेश में ही आई थीं।'

'चाहे वह जो हो, पर हमारा बड़ा भाग्य है कि हम ने उस दिन उनका दर्शन किया।'

'हाँ, उसके बाद डाकिनी भाग कैसे गई ?'

'उस देवी ने देखा कि डाकिनी के हाथ से राजा का अमंगल हो रहा है। इस लिए भैरवी वेश में त्रिशूल ले कर एक दिन वह उसको मारने गईं।'

'ओह ! उसके बाद ?'

'उसके बाद क्या ? माता की रणरंगिनी मूर्ति देख कर वह ताड़ के समान लम्बा विकट रूप धर कर आकाश-मार्ग से न जाने कहाँ उड़ कर चली गईं ! किसी ने देखा भी नहीं।'

'तुमसे किसने कहा ?'

'कहा किसने ? जिसने देखा हैं, उसी ने कहा है। राजा इस तरह उसी डाकिनी की माया में फँसे हैं कि उसके चले जाने पर उन्होंने चित्त-विश्राम के सब दरबानों और दास-दासियों को पकड़ कर कैद कर लिया है। उन्होंने ही सब बातें कही हैं। वे कहते

थे—महाराज ! हमारा क्या अपराध है ? देवी के सामने हमारा क्या वश चल सकता है ।'

'शायद यह झूठी बात तो नहीं है ?'

'यह क्या झूठी बात हो सकती है ?'

'कौन जाने, हो सकता है कि डाकिनी मुर्दा खाने के लिए रात को कहीं बाहर गई हो, और फिर लौट कर आई न हो । इस समय राजा के डर से अपने बचाव के लिए वे मनगढ़न्त बातें कहते हैं ।'

'यह क्या मनगढ़न्त बात हो सकती है ? क्या उन्होंने नहीं देखा है कि मूली की तरह उसके दाँत थे, सन की नाई बाल थे, कठौता जैसी आँखें थी, घड़ियाल जैसी उसकी जीभ और घड़े की तरह उसके स्तन थे । मेघ के गर्जन की तरह उसकी साँस थी—और उसकी बोली इतनी गम्भीर थी कि उससे पृथ्वी फटी जाती थी ।'

'सर्वनाश ! इतनी बड़ी घटना हो गई । क्या राजा की बुद्धि ठिकाने है या नहीं ?'

'सुनो न, वही तो कह रहा हूँ । बेचारे बेकसूर नाहक कैद कर दिये गये हैं । उसके बाद डाकिनी को खोजने के लिए इधर-उधर कई आदमियों को राजा ने भेजा है । इस समय तो वह अपने स्थान पर चली गई है । क्या यह आदमी से होने की बात है कि उसका पता लगा लें । कोई नहीं पता लगा सकता । सभी हाथ जोड़ कर कहते हैं कि बहुत खोजा पर कुछ पता नहीं चला ।'

'अब राजा क्या करते हैं ?'

'अब जो कोई लौट आ कर कहता है कि कुछ पता नहीं चला, राजा उसी वक्त उसे कैद कर लेते हैं । इससे तीसरा जेलखाना भर गया है । राजकर्मचारी इतने डर गये हैं कि घर-द्वार, स्त्री-पुत्र छोड़ कर भागे जा रहे हैं ।'

'देवी क्या कहती हैं ? उनके कटाक्षमात्र से ही तो इन बेकसूरों की रक्षा हो सकती है ।'

'वे तो साक्षात् भगवती हैं । इन सब बातों को देख कर उन्होंने दर्शन दे कर राजा से कहा, 'राजा ! बेकसूरों को दुख मत दो । बेकसूरों को दुख देने से राजा का राज्य नहीं रहता । इनका कोई दोष नहीं है । मैंने उसे भगा दिया है । क्योंकि उससे तुम्हारे राज्य का अहित हो रहा था । यदि दोष है तो मेरा है । दण्ड देना हो तो उन्हें छोड़ कर मुझे दण्ड दो ।'

'उसके बाद ?'

'वही तो मैंने कहा है, राजा की बुद्धि ठिकाने नहीं है । उसके भागने के दिन से राजा का दिमाग इतना गर्म हो गया है कि चील-कौवे भी उनके पास जाने नहीं पाते ।

तर्कालंकार ठाकुर पास गये थे, बड़ी रानी भी गई थीं, पर दोनों गाली खा कर लौट आये।'

'यह क्या ? गुरु से गालीगलौज ! क्या निर्वंश होंगे ?'

'अभी उनकी और बात सुनो न। गर्म मिजाज होने पर पहले-पहल उस देवी ने दर्शन दे कर उनसे यह बात कही। सुनते ही राजा लाल-लाल आँखें कर उन्हें अपने ही हाथ से मारने के लिये उद्यत हुये। यह न करके जो कुछ उन्होंने किया है वह तो और भी भयानक है।'

'क्या किया ?'

'देवी को कैद कर दिया है और हुक्म दिया है कि यदि तीन दिन के भीतर डाकिनी नहीं मिलेगी तो उन्हें सारे राज्य के सामने नंगी करके चांडाल से वेंत लगवायेंगे।'

'हा ! हा हा ! हा ! तब देवी न जाने क्या करेंगी ? क्या राजा पागल हो गये हैं ? क्या माँ कैदखाने में हैं ? भला किस के बाप की हिम्मत है कि उन्हें कैद करे।'

'देवी का चरित्र किसकी समझ में आ सकता है ? जान पड़ता है कि राजा के राज्य-भोग की समाप्ति का दिन आ पहुँचा। इसीलिए माता अपने स्थान पर चले जाने की चेष्टा में हैं। राजा ने उन्हें कैद करने का हुक्म तो दिया पर वे आप-ही-आप मन्द-मन्द गति से कैदखाने में चली गईं। सुनते हैं, रात को कैदखाने में बड़ा कोलाहल मचा। देवताओं ने आ कर देवी की स्तुति की। ऋषियों ने देवपाठ और मंत्रपाठ किया। बाहर से सब पहरे वाले सुनते रहे, पर दरवाजा खुलने पर ऋषि और देवता अन्तर्ध्यान हो गये।'

'उसके बाद ?'

'उसके बाद आज तीन दिन पूरे हो गये। राजा ने ढिंढोरा पिटवा दिया है कि कल एक स्त्री-चोर को बेइज्जत करके वेंत मारे जायेंगे। जिसकी इच्छा हो देखने आवे। क्या तुमने नहीं सुना है ?'

'कैसी दुर्बुद्धि है ! क्या चन्द्रचूड़ महाराज, बड़ी रानी ने कुछ नहीं कहा ?'

'उन्होंने बहुत समझाया, पर कोई फल न हुआ।'

'कल जा कर देखना होगा क्या होता है।'

आज जयन्ती को बेंत लगाये जायेंगे। राज्य भर में मुनादी कर दी गई है कि उसे नंगा कर के बेंत लगाये जायेंगे। सबेरा होते ही लोग आने लगे। क्षण भर में सारा दुर्ग भर गया, थोड़ी-सी भी जगह बाकी न रही। उसके बाद बड़ी धक्का-धुक्की, और घुस्सा-घुस्सी होने लगी। इसी दुर्ग में एक दिन और भी आदमियों की ऐसी भीड़ हुई थी। उस दिन रमा का विचार हो रहा था। आज जयन्ती को दण्ड दिया जा रहा है। विचार की अपेक्षा दण्ड दिया जाना देखने के लिए अधिक आदमी आये। नन्दा ने झरोखे से देखा। नंगे सिरों के काले बालों के समुद्र के सिवा और कुछ न दिखाई दिया। नन्दा को उस दिन रमा की परीक्षा की बात याद हो आई। उसने देखा कि उस दिन तो लोगों की भीड़ बड़ी अचल थी, राज्य के कर्मचारी बड़े कष्ट से शान्तिरक्षा कर सकते थे। आज सब लोग चुपचाप खड़े हैं। सभी के मन में राज्य के अमंगल की बड़ी आशंका हो रही थी। सभी मन में डर रहे थे। आज लोगों की यह भीड़ सिंहों द्वारा उजाड़े हुये जंगल से भी अधिक भयंकर दिखाई पड़ती है।

उस दुर्ग के चौड़े आँगन में एक मंच बनाया गया था। उसके ऊपर एक काला-कलूटा बलिष्ट चांडाल हाथ में बेंत ले कर खड़ा था। जयन्ती को नंगा कर के राजा की आज्ञा से यही बेंत लगाएगा।

अभी तक जयन्ती वहाँ लाई नहीं गई थी। राजा भी अभी तक नहीं आए थे। उनके आने पर जयन्ती लाई जायेगी मंच के सामने राजा के लिए सिंहासन रखा गया था। उसे घेर कर चारों ओर चोबदार और सिपाही खड़े थे। सभी दरबारी अनुपस्थित थे। ऐसा कुकांड देखने की किसी की इच्छा न थी। राजा ने सभी किसी को नहीं बुलाया था।

कितनी देर में राजा आयेंगे, कब वह देवी या मानुषी आयेगी, कब क्या होगा, इसी आशा में लोग उकता गये थे। इसी समय नकीब बोल उठे। बन्दीजन स्तुति करने लगे। दर्शकों ने देखा कि राजा आ रहे हैं।

आज राजा की वेशभूषा में कोई विशेषता न थी। वैशाख के सन्ध्या समय के मेघ की तरह राजा की भयंकर मूर्ति थी। बड़ी-बड़ी लाल आँखें थीं। विशाल छाती बीच-बीच में फूल उठती थी। शीघ्र बरसने वाले बादल के समान आ कर राजा सिंहासन पर बैठे। किसी ने भी महाराजाधिराज की जय नहीं मनाई।

उसी समय लोग सिर उठा-उठा कर इधर-उधर देखने लगे। देखा की पहरे वाले जयन्ती को ले कर मंच पर चढ़ रहे हैं। पहरे वाले उसे मंच पर पहुँचा कर चले गये। मंच पर उसकी रूप-ज्योति ऐसी जान पड़ती थी मानों किसी पहाड़ पर चन्द्रमा उदय

हुआ हो। तक सब लोग उठ-उठ कर आँखें फाड़-फाड़ कर उस गैरिक वस्त्रधारिणी ज्योतिर्मयी मूर्ति को देखने लगे। सब मुग्ध हो कर उस देवी की देवोपम स्थिरता और देव दुर्लभ शांति को देखने लगे। प्रातःकाल खिले हुए कमल के समान उसका प्रफुल्ल मुख था। होंठों पर मन्द-मन्द हँसी थी। देख कर कितनों ही ने उसे देवी के भ्रम में हाथ जोड़ कर प्रणाम किया। जब कितने लोगों ने देखा कि कितने ही आदमी उस देवी को प्रणाम कर रहे हैं तो उनके मन में भी भक्तिभाव का उदय हुआ। उन्होंने—'जय माई की'—'जय लक्ष्मी माई की' कह कर जयध्वनि की। वह जयध्वनि आँगन में एक छोर से दूसरे छोर तक, एक भाग से दूसरे भाग की पर्वत-मालाओं में वज्रध्वनि के समान गूँजने लगी। अन्त में सब लोगों ने एक स्वर में जयघोष किया। राजमहल काँप उठा। चांडाल के हाथ से बेंत गिर पड़ा। जयन्ती मन में ही कहने लगी, 'जय जगदीश्वर! तुम्हारी जय! तुम्हीं इन आदमियों के रूप में हो कर अपना जयनाद कर रहे हो। जय जगन्नाथ! तुम्हारी ही जय! मैं कौन हूँ?'

तब क्रुद्ध राजा ने अग्निमूर्ति हो कर गम्भीर स्वर से चाँडाल को हुक्म दिया, 'कपड़ा हटा कर बेंत लगा।'

इसी समय चन्द्रचूड़ ने राजा के पास आ कर उनके दोनों हाथ पकड़ लिए। बोले; 'महाराज; क्षमा कीजिये। अब मैं आप से कुछ नहीं माँगूँगा। इस बार मुझे यही भिक्षा दें—इसे दीजिये।'

'क्या देवी में यह शक्ति नहीं कि आप-ही-आप छुड़ा कर चली जायँ? इस हरामजादी की यह बहुत ठीक सजा हो रही है।'

'देवी नहीं स्त्री तो है।'

'राजा स्त्री को दंड दे सकता है।'

'यह जयध्वनि सुन रहे हैं? इस जयध्वनि में आप का राजा का नाम डूबा जा रहा है।'

'अपना काम देखो। यह पोथी-पत्रा नहीं है।'

चन्द्रचूड़ चले गये। तब चांडाल ने राजा की आज्ञा पा कर फिर बेंत लिया। उसे ऊपर उठा कर जयन्ती के मुँह की ओर देखता रहा। बेंत नीचा कर के फिर राजा की ओर देखा। अन्त में बेंत को फेंक कर खड़ा रह गया।

गरज कर राजा ने कहा, 'क्या है?'

चांडाल ने कहा; 'महाराज; मुझसे न होगा।'

'तब तुम्हें फाँसी पर चढ़ना होगा।'

हाथ जोड़ कर चांडाल ने कहा, 'महाराज के हुक्म से वह तो कर सकता हूँ, पर यह नहीं कर सकता।'

तब राजा ने नौकरों को हुक्म दिया, 'इसे पकड़ कर कैद करो।'

रक्षकों को चांडाल को पकड़ने के लिए मंच पर चढ़ते हुए देख कर जयन्ती ने सीताराम से कहा, 'इस गरीब को मत सताइये। आप की जो आज्ञा है उसे मैं स्वयं पालन कर रही हूँ। चांडाल या जल्लाद की आवश्यकता नहीं। तिस पर भी चांडाल को पकड़ने के लिये रक्षकों को आते हुए देख कर जयन्ती ने उससे कहा, 'बच्चा! मेरे लिए क्यों दुख पाओगे। मैं संन्यासिनी हूँ। मुझे किसी प्रकार का सुख-दुख नहीं। बेंत से मेरा क्या होगा! मेरे लिए नंगा रहना और कपड़ा पहनना दोनों एक समान है। बेंत उठाओ, मेरे लिये दुःख मत पाओ।'

चांडाल ने बेंत नहीं उठाया। तब जयन्ती ने उससे कहा,

'बच्चा! क्या स्त्री की बात का विश्वास नहीं करते? अच्छा, तो उसका प्रमाण देखो।' यह कह कर जयन्ती ने अपने दाहिने हाथ में बेंत ले लिया, और उस जन-समूह के सामने अपने कोमल शरीर पर जोर से मारा। बेंत लगते ही खून बहने लगा। जयन्ती का गैरिक वस्त्र खून से लथपथ हो गया और सारा मंच लाल हो उठा। देख कर लोग हाहाकार करने लगे।

हँस कर जयन्ती ने चांडाल से कहा, 'बच्चा! देखो संन्यासिनी को कुछ होता नहीं। तुम्हें किस बात का डर है!'

चांडाल ने एक बार खून निकलते हुए घाव को देखा। एक बार जयन्ती के प्रफुल्ल मुख की ओर देखा। देख कर पीछे हटा और मंच से उतर कर हाँफते-हाँफते भाग गया। लोगों की भीड़ में वह कहाँ छिपा, किसी ने देखा नहीं।

तब राजा ने नौकरों से कहा, 'दूसरा आदमी एक मुसलमान ले आओ।'

नौकर यमराज के समान एक कसाई ले आए। वह मुहम्मदपुर में गो-हत्या तो नहीं कर सकता था, पर बस्ती के आस-पास भेड़, बकरी मार कर बेचता था। वह बड़ा बलवान तथा कुरूप था। वह राजा की आज्ञा पा, मंच पर चढ़ कर हाथ में बेंत ले जयन्ती के सामने खड़ा हुआ। बेंत को ऊँचा उठा कर उसने जयन्ती से कहा, 'कपड़ा उतार, तुम्हारे गोश्त को टुकड़े-टुकड़े करके हम दूकान में बेचेंगे।'

तब जयन्ती ने जन-समारोह को सम्बोधन करते हुए कहा, 'राजा की आज्ञा से इस मंच पर नंगी होने जा रही हूँ। तुम लोगों में जो सती माता के लड़के होवें अपनी-अपनी माता का स्मरण कर आँखें बन्द कर लें। जो हिन्दू हों, जिन्हें ब्राह्मण और देवताओं के प्रति भक्ति हो, वे आँखें बन्द कर लें। जिनकी माताएँ सती नहीं, जो वेश्याओं के गर्भ से उत्पन्न हों, वे जो चाहें करें। उनसे मुझे कुछ मतलब नहीं। मैं उन्हें मनुष्य नहीं समझती।'

यह बात सुन कर लोगों ने आँखें बन्द कीं या नहीं, यह उसने नहीं देखा। उसका मन तरंग पर था। जयन्ती ने राजा से कहा, 'मैं तुम्हारी आज्ञा से नंगी हो रही हूँ। तुम्हें मैं इस समय केवल एक वनपशु समझती हूँ। अतः तुम्हारे सामने मुझे किसी बात

की लज्जा नहीं। पर तुम्हें लज्जा आनी चाहिये। क्योंकि तुम्हारा परिवार है, अतः तुम आँखें बन्द कर लो।'

उसका कहना व्यर्थ था। राजा क्रोध से अँधे हो रहे थे। उन्होंने कसाई से कहा, 'जबरदस्ती कपड़ा उतार लो।'

जयन्ती घुटने टेक कर बैठ गई। उसने आँखों में जल भर कर कहा, 'जब मैंने संसार के सब सुख-दुखों को तिलांजलि दे दी, तब मुझे लज्जा किस बात की है? इन्द्रियों के साथ मेरे हृदय का कोई सम्बन्ध नहीं। नंगा रहना अथवा कपड़ा पहनना मेरे लिए दोनों बराबर हैं। पाप से ही लज्जा आती है।'

बेंतों की तो गणना हो नहीं, पर सचमुच जब नंगी होने का समय आया तो न जाने कहाँ से लज्जा रूपी पाप ने आकर जयन्ती को घेर लिया।

वह हाथ जोड़ कर बैठ गई और भगवान् से प्रार्थना करने लगी, 'हे दर्पहारी, तुम मेरी रक्षा करो। हे दर्पहारी, मेरा गर्व आज चूर हो गया। तुमने मुझे यह स्त्री का शरीर क्यों दिया? प्रभो! मेरी रक्षा करो! रक्षा करो!'

जब तक जयन्ती भगवान् को पुकारती रही, कसाई उसका आँचल पकड़ कर खींचता रहा। समग्र जन-मण्डली हाहाकार कर उठी। सब राजा को गालियाँ देने लगे।

जान पड़ता है, जगन्नाथ ने उसकी बात सुन ली। उस असंख्य आदमियों की भीड़ एकाएक जयध्वनि कर उठी, रानी जी की जय! इसी समय जयन्ती के कान में गहनों की झनकार सुन पड़ी। उसने देखा सब रनिवास के साथ रानी मंच पर चढ़ रही हैं।

सब स्त्रियाँ जयन्ती को घेर कर खड़ी हो गईं। कसाई फिर भी मंच पर से नहीं उतरा।

क्रोधित हो कर राजा ने रानी से कहा, 'महारानी, यह क्या? तुम्हारा स्थान अन्तःपुर में है।'

नन्दा ने कहा, 'महाराज! मैं पति-पुत्रवती हूँ। मैं तुम्हें ऐसा पाप न करने दूँगी। पर मैं जिस मंच पर खड़ी हूँ, उस पर यह कसाई किस साहस से खड़ा है! क्या इस राज्य में कोई ऐसा नहीं जो इस दुष्ट को यहाँ से उतार दे।'

तब एक साथ हजारों आदमी 'मार-मार' करते हुए लपके। कसाई मंच से कूद कर भागना चाहता था, पर जनता ने उसे पकड़ कर उसकी खूब मरम्मत की।

रानी जयन्ती को अपने साथ ले कर राजमहल में चली गई। उसने जयन्ती से बहुत क्षमा माँगी।

जनता आनन्दित हो कर अपने घर लौट गई।

जयन्ती ने रानी को हृदय से आशीर्वाद दिया और अनंतर वह विदा लेकर चली गई।

१९

राजमहल के अन्त:पुर की बात कभी ठीक-ठीक बाहर नहीं निकलती। स्त्रियों की जीभ से निकल कर जो बात फैल जाती है, वह एक मुँह से दूसरे मुँह तक जाते-जाते बहुत बढ़ जाती है। जयन्ती के सम्बन्ध में तो पहले से बहुत अस्वाभाविक बातें फैली थीं। वहाँ के नागरिकों में उसके सम्बन्ध में बड़ी ही विचित्र बातचीत होती थी। उस समय जयन्ती राजमहल में जा कर शीघ्र वहाँ से बाहर निकल गई। यह सीधी-सी बात जिस ढंग से बाहर निकली, उससे लोगों ने समझा कि राजमहल में प्रवेश करते ही देवी अन्तर्ध्यान हो गईं। कोई उन्हें देख न सका।

इससे लोगों का विश्वास और भी दृढ़ हो गया कि वे निश्चय ही इस नगर की रक्षा करने वाली थीं। इस समय राजा को धोखा दे उन्हें छोड़ कर चली गई हैं। अत: राज्य अब नहीं रह सकता। दुर्भाग्यवश लोगों में यह अफवाह फैली कि—मुर्शिदाबाद से नवाब की फौज आ रही है। इसलिए लोगों को राजध्वंस होने में अब कुछ भी सन्देह न रहा। सारे शहर में गठरी-मोटरी बाँधने की धूम मच गई। बहुत से आदमी नगर छोड़ कर चले गये।

सीताराम इस बात की कुछ खोज-खबर न रखते हुए चित्तविश्राम में जा कर अकेले रहने लगे। इस समय उनके चित्त में प्रबल क्रोध व्याप रहा था। सब किसी को छोड़ कर उनका क्रोध श्री के ऊपर अधिक था।

उद्‌भ्रान्त चित्त हो सीताराम ने निम्न श्रेणी के नौकरों को हुक्म दिया कि राज्य में जहाँ कहीं सुन्दर स्त्रियाँ मिलें उन्हें पकड़ कर मेरे लिये चित्तविश्राम में ले आओ। हुक्म पा कर वे नीच नौकर दल-के-दल छूटे। जो रुपये-पैसे के वश में थीं उन्हें रुपये-पैसे दे कर ले आये; जो साध्वी थीं उन्हें बलपूर्वक पकड़ कर लाने लगे। राज्य भर में हाहाकार मच गया।

यह सब देख-सुन कर चन्द्रचूड़ महाराज बिना किनी से कुछ कहे सुने तीर्थाटन को चले गये।

रास्ते में उन्हें चाँद शाह मिले। पूछने पर उन्होंने बताया कि मैं 'मक्का' जा रहा हूँ।

'क्यों ?' चन्द्रचूड़ महाराज ने पूछा।

'जिस देश में हिन्दू रहते हैं वहाँ न रहूँगा, यह मुझे सीताराम ने सिखा दिया है।'

| २० |

प्रसन्न-चित्त जयन्ती मुहम्मदपुर से बाहर निकली। उसके मन में किसी बात का दुख नहीं था। राह में जाते-जाते वह मन में कह रही थी—जय जगन्नाथ! तुम्हारी दया असीम है, तुम्हारी महिमा अपार है। जो तुम्हें नहीं जानता, तुम्हारी चिंता नहीं करता वही विपदा की चिंता करता है। विपद् किसे कहते हैं, भगवान्! मैं नहीं कह सकती। मैं—आज तक न समझ सकी थी, मैं धर्मभ्रष्टा हूँ, क्योंकि मैं तो अभिमान और अहंकार में अपने को भूल गई थी। अर्जुन ने कहा था, और मैं भी कह रही हूँ कि हे प्रभो, मुझे शिक्षा दो। मेरा शासन करो—

'यच्छ्रेय: स्यान्निश्चितं ब्रूहि तन्मे।
शिष्यस्तेऽहं शाधि मां त्वां प्रपन्नम्॥'

जयन्ती ने साक्षात् भगवान से बातचीत करना सीख लिया था।

विश्वपति ने अपने मन की सारी बातें खोल कर कहना उसने सीख लिया था। जिस तरह बालिका अपने माँ-बाप से अपने मन की बात कहती है, उसी तरह जयन्ती ने भी उस माता-पिता से अपने मन की बात कहना सीखा था। जयन्ती ने सीताराम के लिए प्रार्थना की। सीताराम की बुद्धि भ्रष्ट होने में देर नहीं, क्या उनकी रक्षा नहीं हो सकती? अनन्त दयासिन्धु के पास क्या थोड़ी-सी भी दया नहीं? यही जयन्ती सोच रही थी। सोचती थी—मैं जानती हूँ, वे मेरी पुकार अवश्य सुनेंगे। सीताराम भगवान् को नहीं पुकाराते, वे उन्हें पुकारना भूल गये हैं। नहीं तो इस तरह उनका पतन क्यों होता? पापी का दंड ही यही है कि वह ईश्वर को भूल जाता है। इसलिए सीताराम उन्हें भूल गये हैं, उनकी याद नहीं करते। अच्छा वे भगवान् की याद न करें तो क्या, मैं उनकी ओर से ईश्वर को पुकारूँगी तो वे नहीं सुनेंगे? यदि मैं पिता से प्रार्थना करूँ कि पापी सीताराम को पाप से मुक्त करो तो क्या वे नहीं सुनेंगे? जय जगन्नाथ! सीताराम का उद्धार करना होगा।

उसके बाद जयन्ती ने सोचा कि जो निश्चेष्ट है, भगवान् उनकी पुकार नहीं सुनते। यदि मैं स्वयं ही सीताराम का उद्धार करने के लिए चेष्टा नहीं करती तो भगवान् मेरी बात क्यों सुनेंगे? देखें क्या किया जाता है। पहले तो श्री की जरूरत है। श्री ने भाग कर अच्छा किया और न भागने से तो न जाने क्या होता? मुझ में इतनी बुद्धि कहाँ है—कि भगवान् की कार्य-कारण-परम्परा को समझ सकूँ।

तब जयन्ती श्री के पास चली गई। यथासमय श्री से मुलाकात हुई।

जयन्ती ने श्री को सब वृत्तान्त विस्तारपूर्वक कह सुनाया। दुखित हो कर श्री ने कहा, 'राजा का अध:पतन निकट है। क्या उनके उद्धार का कोई उपाय नहीं है?'

'उपाय तो भगवान् हैं। पर वे भगवान् को भूल गये हैं। जिस दिन से भगवान् की याद करेंगे उसी दिन से उनकी उन्नति होने लगेगी।'

'इसका उपाय क्या है? जब मैं—उनके पास थी, तब सदा उनसे भगवत्चर्चा ही करती थी। वे ध्यानपूर्वक सुनते थे।'

'तुम्हारे मुँह की बात थी इसलिए ध्यान से सुनते थे। तुम्हारा मुँह देख कर हाँ कर देते थे। तुम्हारे रूप और कंठ से मुग्ध होते थे। भगवान् की चर्चा तो उनके हृदय में प्रवेश नहीं करती थी। क्या किसी दिन उन्होंने तुम्हारी बातों का उत्तर दिया था? किसी तत्व के विषय में उसकी मीमांसा पूछी थी? हरिनाम में किसी दिन उनका उत्साह देखा था?'

'ना, इतना ध्यान तो मैं नहीं रखती थी।'

'तब उनका ध्यान तुम्हारी सुन्दरता की ओर था, भगवत्चर्चा की ओर नहीं।'

'तो अब क्या करना चाहिए?'

'तुम क्या करोगी? तुम तो कहती थी कि में संन्यासिनी हूँ, मेरे लिए कर्म नहीं।'

'हाँ, तुमने जैसा सिखाया था।'

'क्या मैंने यही सिखाया था? क्या मैंने नहीं सिखाया था कि अनासक्त रह कर फल की इच्छा न रखते हुए कर्म का अनुष्ठान करने से कर्म का त्याग होता है, अन्यथा नहीं। क्या स्वामि-सेवा तुम्हारे अनुष्ठान योग्य कर्म नहीं है?'

'तब मुझे भागने की राय क्यों दी थी?'

'तुमने तो कहा था कि राजा को लेकर तुम्हारे बारह शत्रु हैं। यदि इन्द्रियाँ तुम्हारे वश में नहीं है तब स्वामि-सेवा तुम्हारा सकाम कर्म होगा। अनासक्ति के बिना क्रमानुष्ठान में कर्म का त्याग नहीं होता। इसीलिए तुम्हें भागने को कहा था। जो भार नहीं सह सकता उसे भार नहीं देना चाहिए। 'पदं सहेत भ्रमरस्य पेलवं' आदि उपमाएँ याद हैं न?'

श्री बड़ी लज्जित हुई। सोच कर कहा, 'कल इसका उत्तर दूँगी।'

उस दिन फिर और बात न हुई। श्री जयन्ती के सामने अधिक नहीं आई। जयन्ती ने उसे पकड़ा। कहा, 'संन्यासिनी जी, मेरी बातों का क्या उत्तर है?'

'एक बार फिर मेरी परीक्षा करो।'

जयन्ती ने कहा, 'अच्छी बात है। मुहम्मदपुर चलो। रास्ते में हम लोग तय करेंगी कि तुम्हारा और मेरा अनुष्ठेय कर्म क्या है।'

उसके बाद फिर दोनों मुहम्मदपुर की ओर चलीं।

|२१|

गंगाराम गया, रमा गई, श्री गई, जयन्ती गई, चन्द्रचूड़ चये, चाँद शाह गये तो भी सीताराम को चेत नहीं हुआ।

अब नन्दा और मृण्मय बाकी हैं। इस बार नन्दा को बड़ा कोध आया। पति-भक्ति से अब क्रोध रुक नहीं सका। पर नन्दा का कोई सहाय नहीं। केवल मात्र सहाय मृण्मय थे। अतः यह पूछने के लिए कि क्या करना चाहिए, क्या न करना चाहिए, एक दिन नन्दा ने मृण्मय को बुलाया। पर उसका बुलावा मृण्मय तक न पहुँचा। मृण्मय अब इस संसार में नहीं रहे। उसी दिन प्रातःकल उनकी मृत्यु हो गई थी।

सबेरे उठते ही मृण्मय ने सुना कि मुसलमानी सेना मुहम्मदपु र पर अक्रमण करने आ रही है। करीब-करीब गढ़ में पहुँच ही गई है। वज्र की तरह यह बात मृण्मय को लगी। युद्ध के लिए मृण्मय के पास कोई उपाय न था। चन्द्रचूड़ !के वे गुप्तचर नहीं थे जो पहले ही आकर खबर देते। खबर जान ने के लिए स्वयं मृण्मय घोड़े पर चढ़कर बाहर निकले। कुछ दूर जा कर वे मुसलमानों के सामने पड़ गये। वे भागना नहीं जानते थे, अतः मुसलमानों द्वारा मारे गये।

मुसलमानी सेना ने आ कर सीताराम के दुर्ग को घेर लिया। नगर छोड़ कर नागरिक भागने लगे। चित्त-विश्राम में जहाँ सुन्दरियों से घिर कर सीताराम उन्मत्त रहते थे, वहीं पर उनके पास खबर पहुँची कि मृण्मय मारे गए। मुसलमानी सेना ने आ कर दुर्ग घेर लिया है। सीताराम ने मन-ही-मन कहा—'अब आज अन्त हो गया—भोग-विलास का अन्त, राज्य का अन्त, जीवन का अन्त हो गया।' राजा स्त्रियों की मंडली छोड़ कर उठे। विलासिनी स्त्रियों ने कहा—'महाराज, कहाँ जा रहे हैं? हमें छोड़कर कहाँ जा रहे हैं?' सीताराम ने चोबदारों से कहा—'इन्हें बेंत मार कर भगा दो।'

सुन कर स्त्रियाँ खिलखिला कर हँस पड़ीं। उन्हें मना करती हुई भानुमती नामक एक सुन्दरी ने राजा के सामने आ कर कहा, 'महाराज! आज जान पड़ता है कि वास्तव में धर्म है। हम सब कुल-कन्याएँ हैं। हमारे कुल और धर्म का नाश हो गया! मन में समझा था कि इसका प्रतिकार नहीं? हममें किसी की माँ रो रही है, किसी का स्वामी रो रहा है; किसी का बच्चा रो रहा है। समझती थी कि भगवान् उनका रोना नहीं सुन पाते। महाराज, नगर में नहीं, वन में चले जाओ। लोगों के सामने अपना मुँह मत दिखाना, पर मन में ध्यान रखना कि धर्म है।'

राजा ने इसका कुछ उत्तर न दिया! घोड़े पर सवार हो हवा की तरह दुर्ग के

फाटक की ओर चले। पीछे-पीछे, स्त्रियाँ दौड़ी गईं। किसी ने कहा—चलो राजधानी लूट लें। चलो, सीताराम का सर्वनाश होते देखें। किसी ने कहा—राजा भागे जा रहे हैं, चलो हम भी उन्हीं के साथ भाग चलें। पर किसी की बात सीताराम के कान में न गयी। भानुमती की बात राजा के कानों में भर गई थी। राजा ने अब स्वीकर किया कि धर्म है। जाकर उन्होंने देखा कि अभी तक भी मुसमलमानी सेना ने दुर्ग को नहीं घेरा। वे अभी आ रहे हैं। उनके आने से आसमान में धूल छा गई है। पताका ले कर घुड़सवार अपने-अपने निर्दिष्ट स्थान की ओर आ रहे हैं और उनका प्रधान अंश किले की ओर बढ़ रहा है। किले में घुस कर सीताराम ने दरवाजा बन्द कर दिया।

तब राजा चारो ओर घूमने लगे। देखा, सिपाही नहीं हैं! स्वाभाविक था कि बहुत दिनों तनख्वाह न मिलने से वे पहले ही काम छोड़ कर भाग गए थे। जो कुछ बाकी थे वे भी मृण्मय के मरने एवं मुसलमानों के आने की बात सुन कर भाग गए। तो भी दो-चार स्वमि-भक्त ब्राह्मण और राजपूत रह गए थे। वे एक बार नमक खाकर भूल नहीं सकते थे। सब मिला जुला कर वे पचास आदमी से अधिक न थे। मन में राजा ने कहा—खूब पाप किया है, इन्हें प्राणदान दूँगा। यही धर्म है।

उसके बाद अन्त:पुर में जा कर राजा ने देखा कि जो जाति, भाई, कुटुम्बी महल में रहते थे वे मौका पाकर अपने-अपने प्राण ले कर चले गए हैं। आदमियों से भरा वह राजभवन उजाड़ जंगल के समान सूना पड़ा है। वहाँ कोई न था। देख कर राजा की आँखों में जल भर आया।

वे मन में जानते थे कि नन्दा कभी नहीं जायगी; उसके जाने के लिए कहीं स्थान नहीं है। आँख पोंछते हुए वे नन्दा की खोज में चले। मुसलमानों की तोप गड़-गड़ाने लगी। वे गढ़ को घेर कर दीवार तोड़ने की चेष्टा कर रहे थे। अन्त:पुर से महा कोलाहल का शब्द सुनाई पड़ता था।

नन्दा के घर में जा कर राजा ने देखा कि वह जमीन पर पड़ी है। चारो ओर उसके बाल-बच्चे और रमा का लड़का बैठे सब रो रहे हैं। राजा के पहुँचने पर नन्दा ने कहा, 'कहिए महाराज, यह क्या किया ?'

राजा ने कहा, 'जो भाग्य में लिखा था वही किया। पहले मैंने अपनी प्रति-घातिनी से विवाह किया था। उसी के फेर में पड़ कर मेरी मृत्यु-बुद्धि हो उठी है।'

'वह कौन है महाराज ? क्या श्री ?'

'हाँ, श्री की ही बात कह रहा हूँ।'

'जिसे हम लोग डाकिनी समझती थीं, क्या वह श्री थी ?'

'हाँ, श्री ही थी।'

'महाराज, इतने दिनों तक क्यों नहीं कहा ?'

उस आसन्न मृत्यु के समय भी नन्दा का चेहरा प्रफुल्ल था।

२५

'कहने से क्या होता ? डाकिनी हो चाहे श्री हो, फल तो एक ही हुआ है। मृत्यु आ पहुँची।'

'महाराज ! जिसने शरीर धारण किया है उसकी तो अवश्य ही मृत्यु होगी। उसके लिए दुख मत कीजिए। आप के भाग्य में यह क्यों न लिखा था कि आप लाख सैनिकों के नायक होकर युद्ध करते-करते मरेंगे और मैं आप की अनुगामिनी होऊँगी।'

'मेरे एक लाख सैनिक क्या, एक सौ भी नहीं। किन्तु मैं लड़ाई में ही मरूँगा। मुझे कोई रोक नहीं सकता। मैं अभी फाटक खोल कर अकेले ही मुसलमानों की सेना में घुस जाऊंगा। मैं तुमसे यही कहने और हथियार लेने आया हूँ।'

नन्दा की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे। आँसू पोंछ कर नन्दा ने कहा, 'महाराज, यदि मैं आप को इससे रोकूँ तो आपकी दासी होने योग्य नहीं। यह बड़े भाग्य की बात है कि आप होश में आ गये। कहीं दो दिन पहले होश में आते ! आप भी मरेंगे, मैं भी मरूँगी। आप का अनुसरण करूँगी। पर सोच रही हूँ, इन अबोध बच्चों का क्या होगा ? ये तो मुसलमानों के हाथ में पड़ जायँगे।'

नन्दा खूब रोई।

राजा ने कहा, 'इसीलिए तुमसे मरा न जायगा, इनके लिए तुम्हें रहना होगा।'

'मेरे रहने से ये किस तरह बच जायँगे ?'

'नन्दा ! इतने आदमी भाग गये, तुम क्यों नहीं भाग गई ? भागने से तो इनकी रक्षा कर सकती थी।'

'महाराज, आप की हो कर किसके साथ भागूँ ? आप से पूछे बिना आपके पुत्र-कन्या को किसके हाथों में सौप दूँ। पुत्र-कन्या सभी धर्म के लिए हैं। मेरा धर्म आपही हैं। मैं आपको छोड़ कर पुत्र-कन्या को लेकर कहाँ जाती ?'

'लेकिन अब उपाय क्या है ?'

'अब कोई उपाय नहीं है। शायद अनाथ समझ कर मुसलमान दया दिखायें, नहीं तो जो जगदीश्वर करेंगे वही होगा। महाराज ! ये राजा की औरस सन्तानें हैं। राजवंश में संपद्-विपद् दोनों हैं—उसके लिए हमें किसी बात की चिन्ता नहीं। मुझे इसी की बड़ी चिन्ता है कि पीछे आपको कोई कायर न कहे।'

'जो विधाता करेंगे वही होगा। इस जन्म में तुम्हारे साथ यह मेरी अन्तिम भेंट है।'

फिर और कुछ न कह कर राजा सुसज्जित होने के लिए अस्त्र-गृह में गये। बालक-बालिकाओं को साथ ले नन्दा अस्त्र-गृह में गई। राजा अस्त्र-शस्त्र से सुसजित हो रहे थे। बालक-बालिकाओं के लिये नन्दा आँखों में आँसू भर कर उन्हें देख रही थी।

सैनिक पोशाक पहन कर अस्त्र-शस्त्र से सुसज्जित हो सीताराम फिर उसी सीता-

राम की तरह शोभा पाने लगे। तब मृत्यु की कामना से वे वीर-भाव से अकेले दुर्ग के द्वार की ओर चले। नन्दा जमीन पर लोट कर रोने लगी।

दुर्ग के द्वार की ओर जाते हुए उन्होंने देखा कि जिस मंच पर जयंती को बेंत लगाने की आज्ञा दी थी, उसी मंच पर दो स्त्रियाँ बैठी हैं। देख कर उस मृत्युकामी वीर के हृदय में भय का संचार हुआ। घबराते हुए पास आ कर उन्होंने देखा कि गेरुआ वस्त्र और रुद्राक्ष पहने हाथ में त्रिशूल लिए जयन्ती बैठी है और उसकी बगल में उसी भैरवी वेश में श्री बैठी है।

राजा उस विकट समय में—मृत्यु के समय उस वेश में उन दोनों को देख कर डरे। बोले, 'तुम लोग मेरी मृत्यु के समय आ कर यहाँ क्यों बैठी हो? क्या अब भी तुम्हारी मनोकामना पूरी नहीं हुई?'

जयन्ती मुसकराई। राजा ने देखा—श्री गद्गद् कंठ से आँखों में आँसू भर कर कुछ कहना चाहती है, लेकिन कुछ बोल नहीं सकती। राजा उसके मुँह की ओर देखते रहे। श्री कुछ बोली नहीं।

तब राजा ने कहा, 'श्री! तुम्हारा ही अदृष्ट फलित हुआ। तुम्हीं मेरी मृत्यु का कारण हुई। तुम्हें प्रिय-प्राण-हन्त्री समझ कर जो मैंने तुम्हें पहले त्याग कर दिया था, सो अच्छा ही किया था। अब तो जो लिखा था वह फलित हुआ—अब क्यों आई हो?'

'मैं अपने कर्म का अनुष्ठान करने आई हूँ। आज तुम्हारी मृत्यु उपस्थित है, मैं तुम्हारे साथ मरने आई हूँ।'

'क्या संन्यासिनी भी सती होती हैं?'

'संन्यासिनी हो चाहे गृहिणी हो, मरने का सब को अधिकार है।'

'संन्यासिनी के लिए कर्म नहीं। तुमने तो कर्म का त्याग कर दिया है, मेरे साथ कैसे मरो गी? मेरे साथ जाने के लिए नन्दा तैयार है, तुम अपना संन्यास-धर्म-पालन करो।'

'महाराज, आपने जब अब तक मेरे ऊपर क्रोध नहीं किया तब आज मुझ पर क्रोध मत कीजिए। मैंने आपके प्रति अपराध किया है, इसलिए अपनी और आपकी मृत्यु निकट समझती हूँ। आपके चरणों में सिर—'

यह कह कर मंच से नीचे उतर कर श्री राजा के चरणों पर गिर पड़ी और उच्च स्वर में कहने लगी, 'तुम्हारे इन चरणों पर हाथ रख कर कहती हूँ, आज मैं संन्यासिनी नहीं। मेरा अपराध क्षमा कीजिए और मुझे ग्रहण कीजिए।'

'तुम्हें तो बड़े आदर से ग्रहण किया था, अब तो ग्रहण करने का समय नहीं।'

'समय है—मेरे मरने के लिए बहुत समय है।'

'तुम्हीं मेरी रानी हो।'

श्री ने राजा की पदधूलि ली। जयन्ती ने कहा, 'मैं भिखारिन आशीर्वाद देती हूँ, आज से अन्तकाल तक आप दोनों विजयी हों।'

'माँ! तुम्हारे सामने मैं बड़ा अपराधी हूँ—तुम जो मेरी दुर्दशा देखने आई हो, इसका कुछ ख्याल मत करना। तुम्हारे आशीर्वाद से ही मैं जानता हूँ कि तुम यथार्थ में देवी हो। अब कहो, तुम्हें प्रसन्न करने के लिए क्या प्रायश्चित करूँ? सुनो, मुसलमानों की तोप छूट रही है। मैं इसी समय इस तोप को अपना शरीर अर्पण कर दूँगा। कहो क्या ऐसा करने से तुम प्रसन्न होगी?'

'एक दिन तो तुमने अकेले ही दुर्ग की रक्षा की थी।'

'आज वैसा नहीं हो सकता। जल और स्थल में बड़ा अन्तर है। संसार में आज कोई ऐसा नहीं है जो अकेले दुर्ग की रक्षा कर सके।'

'तुम्हारे तो अभी भी पचास सिपाही मौजूद हैं।'

'यह कोलाहल सुनती हो? इतनी बड़ी सेना का पचास आदमी क्या कर सकते हैं? मैं अपने प्राण को जिस तरह से चाहूँगा, जब चाहूँगा त्याग कर सकता हूँ। किन्तु, बिना अपराध उनकी हत्या क्यों करूँ? पचास आदमियों को ले कर इस सेना का सामना करने से मृत्यु के सिवा और कोई फल नहीं।'

'महाराज, मैं या नन्दा मरने को तैयार हैं। किन्तु रमा और नन्दा के बहुत बाल-बच्चे हैं—क्या उनकी रक्षा के लिए कुछ उपाय किया है?'

सीताराम की आँखों से जल की धारा फूट चली। बोले, 'निरुपाय हूँ, क्या करूँगा?'

जयन्ती ने कहा, 'महाराज! निरुपाय के लिए एक उपाय है। क्या आप जानते नहीं? जानते तो हैं, पर एश्वर्य के मद में उसे भूल गये हैं। क्या इस समय निरुपायों के उपाय भगवान् की याद नहीं आती?'

सीताराम ने मुँह नीचा कर लिया। बहुत दिनों के बाद उस समय उन्हें निरुपायों के उपाय भगवान् की याद आई। उस हवा से कालरूपी मेघमाला के उड़ जाने पर हृदय में क्रमशः सूर्य की किरणें फैलने लगीं। चिन्ता करते-करते हृदय में सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करने वाली ज्योति का प्रकाश होने लगा। सीताराम ने मन-ही-मन पुकारा, हे नाथ! हे दीनानाथ! अनाथ-नाथ! पापियों के उद्धार करने वाले! क्या पापी समझ कर मेरे ऊपर दया नहीं करेंगे?

सीताराम को अनमने भाव से ईश्वर की चिन्ता करते देख कर जयन्ती ने श्री की ओर इशारा किया। तब दोनों उसी मंच पर घुटने टेक, हाथ जोड़, आँखें ऊपर उठा कर कहने लगीं—

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणस्त्वमस्य विश्वस्य पर निधानम्।
वेत्तासि वेद्यञ्च परं च धामं, त्वया ततं विश्वमनन्तरूप!

दुर्ग के बाहर मुसलमानी सेना का समुद्र-गर्जन के समान कोलाहल हो रहा था। दीवार को तोड़ने के लिए तोप से जो गोले छोड़े जा रहे थे उनका भीषण शब्द बाहर मैदान और जंगलों में गूँज रहा था। दुर्ग आदमियों से खाली था—

उसमें ज्ञान और भक्ति रूपिणी जयन्ती और श्री के मधुर कंठ से निकले हुए महागीत के शब्द के अतिरिक्त कुछ न था। सीताराम के शरीर को रोमांचित करते हुए वह शब्द आकाश में ऊपर उठने लगा—

नमो नमस्तेस्तु सहस्रकृत्वः
पुनश्च भूयोऽपि नमो नमस्ते।
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते
नमोस्तु ते सर्व्वत एव सर्वं॥

सुनते-सुनते सीताराम विमुग्ध हो गये। निकट आई हुई विपत्ति को भूल गये। हाथ जोड़ कर ऊपर सिर उठाये आनन्द के आँसू बहाने लगे। उनका चित्त एकाएक शान्त हो गया।

इसी समय दुर्ग में महा-कोलाहल होने लगा। यही शब्द सुनाई दे रहा था—जय महाराज! जय! जय सीताराम महाराज की जय!

|२२|

दुर्ग में ही सिपाही रहते थे। सब सिपाही दुर्ग छोड़ कर भाग गये थे। केवल पचास सिपाही जो अत्यन्त स्वामिभक्त और राजभक्त थे, नहीं भागे थे। वे चुने-चुने जवान थे, नहीं तो बिना तनखाह के कौन प्राण देने के लिए ठहरता? इस समय वे बड़े अप्रसन्न हो उठे। बोले, 'इधर मुसलमानी सेना आ रही हैं, महाकोलाहल हो रहा है, तोपों की गड़गड़ाहट से पृथ्वी काँप रही है और गोले के आघात से किले की दीवारें फट रही हैं, तो भी हमें कोई सजने का हुक्म नहीं देता। राजा आप ही आ कर देख गये हैं। उन्होंने भी हमें हथियारों से लैस होने का हुक्म नहीं दिया। हम लोग तो केवल प्राण देने के लिए तैयार बैठे हैं, हमें किसी और पुरस्कार की इच्छा नहीं पर कोई आकर नहीं कहता कि आओ मेरे लिए मरो।'

तब उन सिपाहियों ने मिलकर एक बैठक की। रघुवीर मिश्र उनमें सबसे पुराना और ऊँचे पद पर था। रघुवीर उन्हें समझाने लगा। कहा, 'क्या यह अच्छा होगा कि घर में घुस कर मुसलमान हमें मारें? न आओ, मरना ही है तो मर्दों की तरह मरें। चलो

हथियार बाँध कर लड़ाई करने चलें। कोई हुक्म नहीं देता है, न दे। मरने के लिए किसी के हुक्म-हाकिम की क्या जरूरत ? हमने महाराज का नमक खाया है, उन्हीं के लिए हम लड़ाई करेंगे। क्या उनका हुक्म पाए बिना समय आ जाने पर भी हथियार नहीं पकड़ेंगें ? चलो हुक्म हो या मत हो, हम चल कर लड़ाई करें।'

सब इसीं विषय पर विचार करने लगे। दुमंद सिंह जमादार ने कहा, 'इतना सोचने विचारने का क्या काम ? हथियार है हीं, घोड़े हैं ही, और राजा भी गढ़ में ही हैं। चलो हथियार बाँध घोड़ों पर सवार हो, राजा के पास जाकर उनसे हुक्म लें। महाराज जो कहेंगे वही किया जायगा।'

इस प्रस्ताव को उत्तम कह कर सबों ने स्वीकार किया। तुरन्त ही सबों ने लड़ाई का साज सज लिया। अपने-अपने घोड़ें तैयार कर लिए। तथा हथियारों से लैस हो घोड़ों पर सवार हो उन्होंने उच्च स्वर में पुकारा, 'जय महाराज की। जय राजा सीताराम की।' सीताराम के कानों में यह जयध्वनि पड़ी।

|२३|

जयध्वनि करते हुए, कतार बाँध कर सिपाही वहाँ पहुँचे, जहाँ मंच के पास सीताराम जयन्ती और श्री का महागीत सुन रहे थे। उन्होंने वहाँ आकर उनकी जय-ध्वनि की।

रघुवीर मिश्र ने पूछा, 'महाराज ! क्या हुक्म होता है ? आप की आज्ञा पाते ही हम सब मुसलमानों को मार भगा देंगे।'

सीताराम ने कहा, 'तुम लोग कुछ देर यहाँ ठहरो। मैं अभी आता हूँ।'

इतना कह कर राजा अन्त:पुर में चले गए। तब तक मुग्ध हो कर सब सिपाही उन संन्यासिनियों का स्वर्गीय गीत सुनते रहे।

ठीक समय पर राजा अन्त:पुर से एक पालकी साथ में ले कर बाहर निकले। महल के सभी नौकर-चाकर भाग गए थे, केवल दो-चार पुराने नौकर बचे थे, जो पालकी को ढो कर ला रहे थे। पालकी के अन्दर नन्दा और बाल-बच्चे थे।

सिपाहियों के पास पहुँच कर राजा ने उन्हें पुरानी प्रथा के अनुसार सूची-व्यूह रचना की आज्ञा दी। उस व्यूह के बीच में पालकी को रख कर वे स्वयं घोड़े पर सवार हो गए और आगे खड़े हुए। फिर उन्होंने जयन्ती और श्री को बुला कर कहा, 'तुम लोग भी इस व्यूह के अन्दर आ क्यों नहीं जातीं ?'

सुन कर जयन्ती और श्री हँसी। कहा, 'हम लोग संन्यासिन हैं। हमारे लिए जीवन-मरण दोनों समान हैं।'

तब सीताराम 'जय जगदीश्वर', 'जय लक्ष्मीपति' कहते हुए गढ़ के द्वार की ओर चले। उनके पीछे सिपाहियों का वह क्षुद्र सूची-व्यूह चला। दोनों संन्यासिनें त्रिशूल उठा कर गाती हुई चलीं—

जय शिव शंकर त्रिपुर बिघ्नहर
समर भयंकर, जय! जय! जय!
चक्र-गदाधर! जय पीताम्बर!
जय जय हरिहर। जय जय जय!

राजा ने उनसे पूछा, 'यह तुम क्या कर रही हो। अभी मर जाओगी।'

श्री ने कहा, 'महाराज! क्या राजाओं की अपेक्षा संन्यासिनियों की मृत्यु का भय अधिक है?'

जयन्ती ने कुछ न कहा। उसने गर्व करना छोड़ दिया था। राजा स्त्रियों से तर्क करना व्यर्थ समझ चुप हो गये।

उसके बाद दुर्गद्वार पर आ कर स्वयं राजा ने अपने हाथ से दुर्ग का ताला खोल दिया।

जिस तरह बाँध टूट जाने से बाढ़ का पानी अपने आप बड़े वेग से बहने लगता है, उसी तरह मुसलमानी सेना किले का द्वार खुला देख कर बड़े वेग के साथ आगे बढ़ी, परन्तु सामने ही श्री और जयन्ती को देख कर वह विराट सेना मंत्रमुग्ध भुजंग की तरह निश्चल हो गई। जैसी उन संन्यासिनियों की विश्वमोहिनी मूर्तियाँ थीं, वैसा ही उनका अपूर्व वेश था। जैसा उनका अद्‌भुत साहस था, वैसा ही मनोमुग्धकारी उनका गीत था। मुसलमानी सेना ने उन्हें चुपचाप रास्ता छोड़ दिया।

वे संन्यासिनें त्रिशूल उठा कर आगे बढ़ गईं। पीछे सीताराम और उनकी छोटी-सी सेना को देख कर मुसलमान सेना—'मार! मार!' कह कर गरज उठी। दोनों स्त्रियों को तो उन्होंने कुछ नहीं कहा, पर सीताराम और उनकी सेना पर वह सेना टूट पड़ी। परन्तु सीताराम की सेना उस बाधा से बिचलित न हो कर आगे बढ़ती ही गई। लोग मरते थे, घायल हो कर गिर पड़ते थे, परन्तु उनका स्थान फौरन कोई दूसरा आदमी ले लेता था। इसी प्रकार मुसलमानी सेना को चीरती हुई सीताराम की सेना अग्रसर होती रही।

आगे-आगे श्री और जयन्ती रास्ता बनाती हुई चलीं।

सीताराम के अध्यवसाय और शिक्षा के प्रभाव से उनकी सेना सब बाधा-विघ्नों को पार करती जाती थी। मुसलमानी सेना का भयंकर आक्रमण बिलकुल व्यर्थ हो रहा था।

सीताराम की सेना के अद्भुत साहस और विक्रम को देख कर मुसलमान सेनापति सीताराम का मार्ग रोकने के लिए वहाँ तोप भेजना चाहता था, परन्तु उसकी सब तोपें गढ़ को तोड़ने के लिए पहले ही से उसके चारों तरफ भेज दी गई थीं। इसलिए वे एकाएक सीताराम के मार्ग में तोप ला कर रखने में समर्थ न हो सके। परन्तु बहुत चेष्टा के बाद राजा रानी का रास्ता रोकने के लिए उन्होंने किसी प्रकार एक तोप उनके सामने रखवा दी।

तोप सीताराम की सेना के बिलकुल सामने ला कर रख दी गई थी। सेना तो तोप देख कर डर गयी, परन्तु श्री जरा भी नहीं डरी। श्री और जयन्ती दोनों तोप के सामने चली गयीं। श्री ने जा कर तोप के सामने अपनी छाती अड़ा दी और विजय सूचक मुस्कान के साथ उसने अपने चारो ओर देखा। जयन्ती भी श्री के साथ थी। वह भी मुस्करायी। परिणाम यह हुआ कि गोलन्दाज ने हाथ का पलीता दूर फेंक दिया और वह तोप से हट कर दूर खड़ा हो गया। उसी समय सीताराम ने अग्रसर हो कर तोप दखल कर ली और उस गोलन्दाज का सिर काट लिया।

अब सीताराम के हाथ वह तोप प्रलय के समान गरजने लगी। सूची-व्यूह का रास्ता साफ हो गया और सीताराम अपनी सेना और पालकी के साथ सुरक्षित स्थान में पहुँच गये।

परन्तु सीताराम का राज्य ध्वस्त हो गया।

| २४ |

शाम को एकान्त में बैठ कर श्री ने जयन्ती से पूछा, 'जयन्ती ! वह गोलन्दाज कौन था, जिसको महाराज ने काट कर फेंक दिया, और तुमने उसके पहले उन्हें मना किया था ? मैंने उसे जिन्दा तो नहीं पहचाना था, पर मरने के बाद उसका मुख देखा था और मुझे कुछ सन्देह है कि वह आदमी चाहे जो हो, उसकी मृत्यु का कारण मैं हूँ। यदि मैं तोप के मुँह में छाती न अड़ाती तो वह अवश्य तोप दाग देता और स्वयं नहीं मरता।'

'वह मर गया, राजा बच गये। यह तो अच्छा ही हुआ।'

'फिर भी मन का संदेह तो दूर करना ही होगा।'

'संन्यासिनी के हृदय में इतनी उत्कण्ठा क्यों ?'

'संन्यासिन चाहे जो हो, फिर भी मनुष्य ही तो है। मैं तुम्हें देवी समझती

हूँ, पर फिर भी जब तुम मनुष्य की भीड़ में नाचने लग गयी थीं—तब तुम्हारा संन्यास अवश्य ही भ्रष्ट नहीं हुआ था ।'

'तब चलो, सन्देह मिटा आयें । मैं उस स्थान पर एक चिह्न बना आई हूँ ।'

इतना कह कर दोनों मशाल जला कर रणक्षेत्र की ओर चल पड़ीं। उस चिह्न को खोजती हुई वे वहाँ पहुँच गईं। मशाल की रोशनी में उन्होंने उस गोलन्दाज को ढूँढ निकाला ।

जयन्ती ने उसके नकली बाल और दाढ़ी निकाल डाली ।

श्री ने देखा, वह लाश गंगाराम की थी ।

श्री ने कहा, 'ब्रह्मा का लिखा सच हो गया । यदि मैं महाराज की प्राण-हन्त्री नहीं तो अपने सहोदर भाई की प्राणघातिनी बनी ।'

'विधाता किसके द्वारा किसको दण्ड देते हैं, यह कहा नहीं जा सकता। जो हो, गंगाराम पापी था और वह फिर पाप करने ही आया था। मालूम होता है कि उसे रमा की मृत्यु का हाल मालूम न था; इसीलिए छद्मवेश में वह गोलन्दाज बन कर रमा को हरण करने आया था । वह मौका पा कर अवश्य ही पालकी का हरण कर लेता ।'

दोनों ने मिल कर गंगाराम की मृतदेह का यथाविधि अन्तिम संस्कार किया ।

जयन्ती और श्री ने सीताराम से फिर भेंट नहीं की । उसी रात वे न जाने कहाँ चली गईं ।

परिशिष्ट

दोनों मित्र रामचन्द्र और श्यामचन्द्र पहले से ही भाग कर नलडाँगा चले गए थे। वहाँ एक झोपड़ी में बैठ कर वे इस समय बातें कर रहे थे।

रामचन्द्र ने पूछा, 'कहो भय्या ! क्या मुहम्मदपुर का कुछ हाल सुना है ?'

श्यामचन्द्र ने कहा, 'हाँ, वह तो मैं पहले ही जानता था। मुसलमानों ने गढ़ दखल कर लिया है और लूट-पाट कर रहे हैं।'

'राजा-रानी का क्या हुआ ? क्या कुछ ठीक खबर है ?'

'सुना है, उन्हें बाँध कर मुर्शिदाबाद भेज दिया गया। वहाँ उन्हें शूली दे दी गई।'

'मैंने भी तो यही सुना है। पर यह भी सुनने में आया है कि रास्ते में ही वे जहर खा कर मर गए। फिर उसके बाद उनकी लाश ही शूली पर चढ़ा दी गई।'

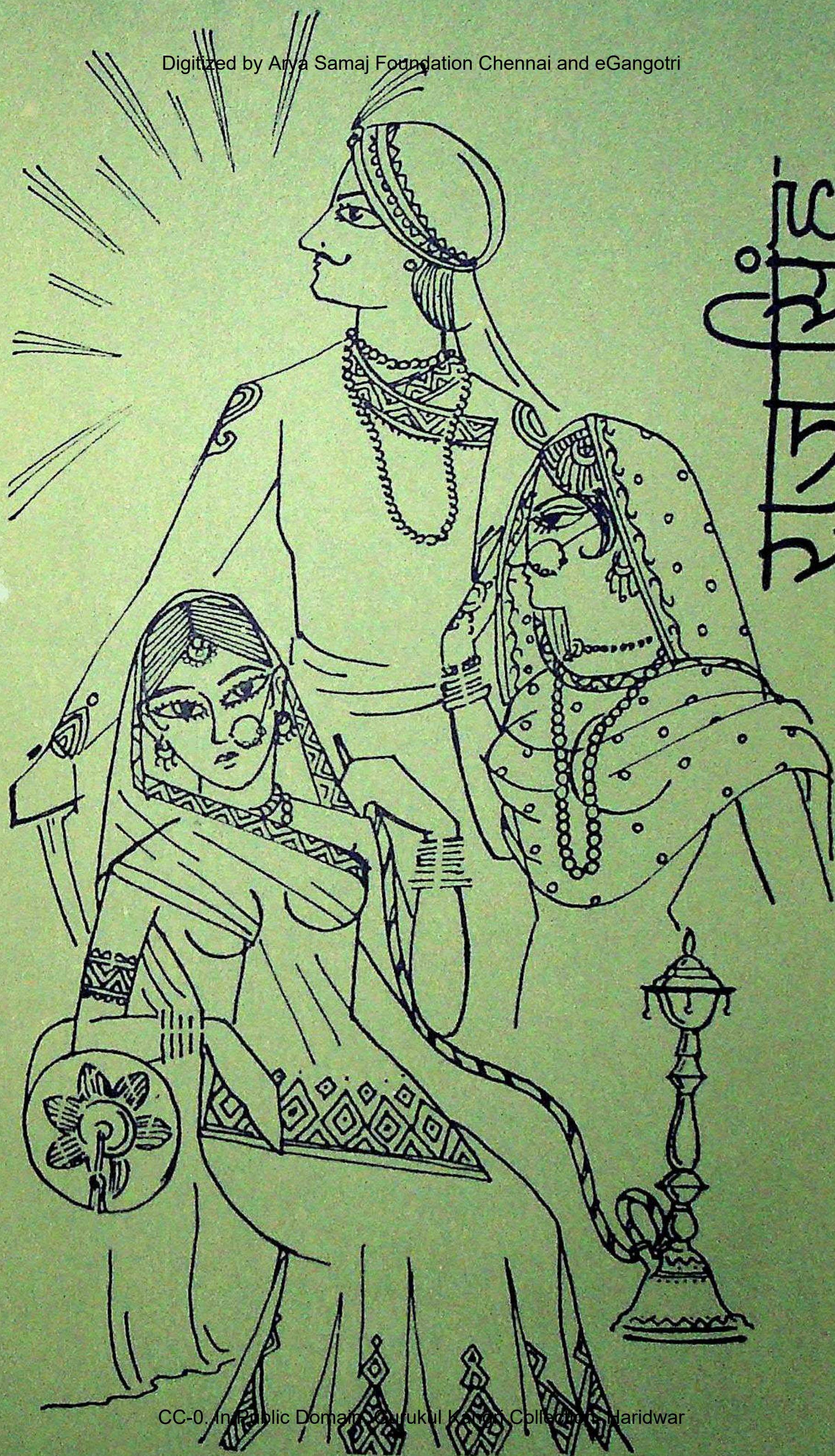
'कितने लोग कितनी तरह की बातें करते हैं। कोई कहता है कि राजा-रानी पकड़े ही नहीं गए। वहाँ देवी आ कर फिर उन्हें बचा कर निकाल ले गई। तब मुसलमानों ने नकली राजा-रानी बना कर मुर्शिदाबाद भेज दिया और शूली उन्हें ही दी गई।'

'तुम भी खूब हो। ये सब हिन्दुओं की गढ़ी हुई बातें हैं।'

'कौन जानता है कि वह गप है, या यह गप है। गढ़ी हुई बात मुसलमानों की भी हो सकती है, हिन्दुओं की भी हो सकती है। भाड़ में जाय, हमें मतलब ही क्या ! अपनी जान बच गई, यही बहुत है। भरो एक चिलम तब तक।'

रामचन्द्र और श्यामचन्द्र जब तक तम्बाकू पीएँ, हम अपना ग्रन्थ यहीं समाप्त करते हैं।




राजसिंह

राजसिंह

□

[रचनाकाल : सन् १८९३]

□

'राजसिंह' बंकिमचन्द्र की अन्तिम कथा-कृति है।

इसकी भूमिका में बंकिमचन्द्र ने स्वयं लिखा है :

'........मुगल साम्राज्य की प्रधान-कथा है, हिन्दुओं के संग मुगलों का विवाद। मुगलों के प्रधान प्रतिद्वन्द्वी थे हिन्दुओं में राजपूत और महाराष्ट्री। महाराष्ट्र का मुगल-विरोध सर्वविदित है। लेकिन राजपूतों की वीरता-कथाएँ अधिकतर लुप्त हैं। उन्हें देश से परिचित कराने का एकमात्र उपाय है—इतिहास। लेकिन इतिहास-लेखन की दिशा में अनेक विघ्न हैं। असली ऐतिहासिक तथ्य क्या हैं, यह स्थिर कर पाना मुश्किल है। मुस्लिम इतिहास-लेखक अत्यन्त स्वजाति-पक्षपाती और हिन्दूद्वेशी रहे हैं। हिन्दू जाति की गौरवगाथा को उन्होंने छिपाया है, विशेषकर मुस्लिम-राज्य के चिर-शत्रु राजपूतों की शौर्यगाथा को। राजपूत इतिहास पर पूरी तरह निर्भर नहीं रहा जा सकता। स्वजाति-पक्षपात वहाँ नहीं है। मुगलों के समय एक चिकित्सक उनके दरबार में घुसा और फिर उस चिकित्सक के जाति-भाई, अंग्रेज, समस्त देश में छा गये। यह बात मुस्लिम-इतिहासकारों ने छिपाई है।

'इतिहास की कमियों को कहीं-कहीं उपन्यास ने पूरा किया है। लेकिन उपन्यासों में कल्पना अधिकांश होती है।........अंग्रेजों के प्रभुत्व-काल में हिन्दुओं का बाहुबल प्रायः लुप्त हो गया। लेकिन उनका अतीत तो वीरतापूर्ण रहा है। उदाहरण-स्वरूप हमारे राजसिंह को ही लें।

'भारत कलंक' के कारणों और भारत के अधःपतन के कारणों को जानने का मैंने प्रयत्न किया है। हिन्दू जाति के बाहुबल का अभाव ही सब कारण नहीं है। महाराष्ट्र का बाहुबल तो बहुत दिनों क्षीण नहीं हुआ। फिर भी विदेशी राज्य स्थापित हुआ।........राजसिंह और मुगल बादशाह के बीच महायुद्ध हुआ। उसे ही उपन्यास का केन्द्र-बिन्दु मान कर यह कथा गढ़ी गई। औपन्यासिकता की रक्षा के लिए कई काल्पनिक प्रसंग भी ग्रन्थकार ने जोड़े हैं।

'स्थूल घटना, अर्थात् युद्ध तो ऐतिहासिक तथ्य है ही। युद्ध और उसका परिणाम तो सत्य-तथ्य है। लेकिन युद्ध-प्रकरण, इतिहास नहीं है, इतिहास है युद्ध का कारण, युद्ध का परिणाम और तत्कालीन स्थिति। औरंगजेब, राजसिंह, जेबुन्निसा,

उदयपुरी आदि हैं ऐतिहासिक पात्र। उनका चरित्र और इतिहास जैसा था, वैसा ही रखा गया है। पर उनके सम्बन्ध में लिखी गई सभी घटनाएँ इतिहास नहीं हैं। उपन्यास सम्पूर्ण ऐतिहासिक तथ्य पर ही निर्मित हो, यह आवश्यक नहीं।........रूपनगर की राजकन्या सम्बन्धी जिस स्थूल घटना का वर्णन किया गया है, जिस पर ग्रन्थ आधारित है, उसका इतिहास में यद्यपि उल्लेख नहीं है, लेकिन वह घटना भी ऐतिहासिक तथ्य ही है। लेकिन सब मिला कर सच्चे इतिहास पर ही कथा का निर्माण हुआ है, जो अपने लेखन-उद्देश्य की पूर्ति करता है।'

'राजसिंह' अपने युग की श्रेष्ठतम ऐतिहासिक कथा-कृति रही है। इस पर बहुत अधिक वाद-विवाद और आलोचनाएँ विद्वत समाज में चलीं, लेकिन अपने आलोचकों को उत्तर देने को बंकिमचन्द्र बैठे नहीं रहे।

कुछ भी हो, 'राजसिंह' का महत्व सभी स्वीकार करते हैं।



पहला भाग

चित्र चरण

। १ ।

तसवीरवाली

राजस्थान के पहाड़ी भाग में रूपनगर नामक एक छोटा सा राज्य था। राज्य चाहे छोटा हो या बड़ा, उसका एक राजा अवश्य ही रहेगा। रूपनगर का भी एक राजा था। किन्तु राज्य के छोटे होने पर भी उसके राजा के बड़े नामी होंने में कोई आपत्ति नहीं। रूपनगर के राजा का नाम था विक्रमसिंह।

इस समय उसके अन्तःपुर का अजीब दृश्य था। छोटा राज्य, छोटी राजधानी, छोटा सा राजमहल। राजमहल में एक कमरा खूब सजा हुआ। गलीचे की तरह फर्श पर सफेद और काले संगमर्मर के पत्थर जड़े थे। सफेद संगमर्मर की रंग विरङ्गी कमरे की दीवारें थीं। उस जमाने में ताजमहल और तख्तताऊस की ही नकल का चलन था। उसी की नकल के अनुसार कमरे की दीवारों पर अजीब रंग की चिड़ियाँ, अनोखे ढङ्ग से; अनोखे फूलों पर पर फैलाए थीं। उस कमरे में एक मोटा गलीचा बिछा हुआ था। उस पर दस या पन्द्रह स्त्रियाँ बैठी थीं। वे बहुत तरह के गहने पहने थीं। उनके सुन्दर-सुन्दर कोमल शरीर थे। कोई मल्लिका के रंग की थी, कोई लाल कमल की तरह थी, कोई चम्पा के रङ्ग की थी, कोई नई दूब की तरह श्यामवर्ण थी और अपनी सुन्दरता से रत्न को भी लजाती थी। कोई पान खाती थी, कोई गुड़गुड़ी से तम्बाकू पी रही थी। कोई अपनी नाक के बड़े-बड़े मोतीदार नथ को हिला-हिला कर भीमसिंह की रानी पद्मिनी की कहानी कह रही थी। कोई अपने कान के हीरा जड़े कर्णफूल को हिला-हिला कर पराई निन्दा सारी मजलिस को सुना रही थी। उनमें बहुतेरी युवतियाँ थीं। हँसी-ठट्ठा का बाजार गर्म था। खूब रङ्ग जमा था।

युवतियों के हँसने का एक कारण था। एक चित्र बेचने वाली बुढ़िया उनके हाथों पड़ गयी थी। हाथी दाँत की पटरियों पर अँकित छोटे-छोटे बड़े सुन्दर चित्र थे। बेचने की गरज से वह बुढ़िया अपनी झोली में से एक-एक चित्र निकालती थी। युवतियाँ उस चित्रित व्यक्ति का परिचय पूछती थीं।

बुढ़िया ने पहले एक चित्र निकाला। एक युवती ने उससे पूछा, 'दादी, यह किसकी तसवीर है ?'

बुढ़िया ने कहा, 'यह शाहजहाँ बादशाह की तसवीर है।'

युवती बोली, 'चल निगोड़ी, मैं इस दाढ़ी को पहचानती हूँ। यह तो मेरे दादा की दाढ़ी है।'

और एक ने कहा, 'यह क्या रे ! दादा का नाम ले कर छिपाती क्यों है ? यह, यह तुम्हारे दूल्हा की दाढ़ी है।' उसके बाद सब की ओर फिर कर रसवती ने कहा, 'इस दाढ़ी में एक दिन एक बिच्छू छिपा था। सखी ने उस बिच्छू को झाड़ू से मारा था।'

इस पर चारों ओर से हँसी का फव्वारा छूटा। तब तसवीरवाली ने एक और चित्र दिखाया। और बोली, 'यह जहाँगीर बादशाह की तसवीर है।'

देख कर रसिका युवती ने कहा, 'इसका दाम क्या है ?'

बुढ़िया ने बहुत अधिक दाम बतलाया।

रसिका ने फिर पूछा, 'यह तो हुआ तसवीर का दाम। असली आदमी को नूरजहाँ बेगम ने कितने में खरीदा था ?' इस पर बुढ़िया ने भी मजाक में कहा, 'बिना मूल्य।'

रसिका ने कहा, 'अगर असल की यह दशा है तब नकल को तो अपने पास से कुछ पैसे दे कर हमें दे जाओ।'

फिर एक बार हँसी की धूम पड़ गयी। बुढ़िया ने चिढ़ कर चित्रों को समेट लिया। बोली, 'बेटी, हँसने से तसवीर नहीं खरीदी जाती। जब राजकुमारी आयें गी तब मैं तसवीर को दिखाऊँगी। और उन्हीं के लिये मैं यह सब ले आयी हूँ।'

इस पर सात जनी सात ओर से बोलने लगीं, 'ऐ ! मैं राजकुमारी हूँ। ओ बूढ़ी ! मैं राजकुमारी हूँ। ओ बूढ़ी ! मैं राजकुमारी हूँ।' बुढ़िया घबड़ा कर चारो ओर देखने लगी। फिर एक बार जोर से हँसी का कहकहा लगा।

एक-ब-एक हँसी की धूम कम पड़ गयी। शोरगुल थोड़ा धीमा पड़ा। केवल ताका-ताकी, मटका मटकी और बरसात के बाद मन्द-मन्द बिजली की तरह ओठों पर मुसकान रह गयी। तसवीरवाली ने इसका कारण जानने के लिये पीछे फिर कर देखा—उसके पीछे मानो एक देवी की प्रतिमा खड़ी थी।

बुढ़िया एकटक नेत्रों से उस सर्वसुन्दरी मूर्त्ति को देखती रही। कैसी सुन्दर मूर्ति थी। अधिक उम्र की होने से बुढ़िया की आँखें कुछ मन्द पड़ गयी थीं।

उसे उतना साफ नहीं दिखाई देता था। यदि ऐसा न होता तो वह देखती कि पत्थर का रङ्ग ऐसा नहीं होता, निर्जीव पदार्थ का रङ्ग इतना सुन्दर नहीं होता। पत्थर तो दूर फूल के रङ्ग में भी इतनी सुन्दरता नहीं होती! देखते-देखते बुढ़िया ने देखा कि वह मूर्ति मन्द मन्द मुस्करा रही है। पत्थर की मूर्ति क्या हँसती है? बुढ़िया मन में सोचने लगी; जान पड़ता है यह पत्थर की मूर्ति नहीं है—उसकी बड़ी-बड़ी काली, चञ्चल, सजल आँखें उसकी ओर देख-देख कर हँस रही थीं।

बुढ़िया अवाक् हो गयी। वह उसकी ओर देखने लगी। कुछ भी समझ में न आया। रसिका नवयुवतियों की ओर देख कर हाँफते-हाँफते बुढ़िया बोली, 'हाँ, तुम सब बोलती क्यों नहीं?'

एक सुन्दरी अपनी हंसी को न रोक सकी, हँसी का फव्वारा आप ही आप फूट निकला। हँसते-हँसते वह लोट-पोट हो गयी। उसकी हँसी को देख कर विस्मय से घबड़ायी हुई वह बुढ़िया रो उठी।

उसके बाद वह मूर्ति बोली। अत्यन्त मधुर स्वर में उसने पूछा, 'बूढ़ी, रोती क्यों हो?'

तब बुढ़िया ने समझा कि वह पत्थर की गढ़ी हुई मूर्ति नहीं है। वह तो राजमहिषी अथवा राजकुमारी होगी। बुढ़िया ने यह सोच कर उसे साष्टांग प्रणाम किया। यह प्रणाम राजकुल के लिये नहीं था, उसके सौन्दर्य के लिये था। बुढ़िया ने सौन्दर्य को देखा, उसे देख कर प्रणाण करना ही पड़ा।

|२|

चित्र

त्रिचदलन

यह विश्वविमोहिनी सुन्दरी, जिसको देख कर तसवीर बेचने वाली बुढ़िया को प्रणाम करना पड़ता, रूपनगर के राजा की कन्या चञ्चल-कुमारी थी। जो युवतियाँ इतनी देर तक बुढ़िया के साथ हँसी-मजाक कर रही थीं, वे उसकी सखियाँ और दासियाँ थीं। चञ्चल कुमारी घर में आ कर उस हँसी मजाक को देख कर चुप-चाप हँस रही थी। इसी समय उन्होंने मधुर स्वर में उस बुढ़िया से पूछा, 'तुम कौन हो?'

सखियाँ परिचय देने लगीं, 'यह तसवीर बेचने आयी है।'

चञ्चल कुमारी ने कहा, 'तो तुम सब इतना हँसती क्यों हो?'

कोई-कोई तो कुछ झेंप सी गयीं। जिसने बुढ़िया के साथ झाड़ू दारी का मजाक किया था वह बोली, 'इसमें हमारा दोष क्या हैं? यह बुढ़िया पुराने जमाने के बादशाहों

की तसवीरें ला कर दिखा रही थी। इसीलिये हम लोग हँस रही थीं। हम राजा-रजवाड़ों के घर में क्या शाहजहाँ और जहाँगीर बादशाह की तसवीर नहीं है ?'

बुढ़िया ने कहा, 'होंगी क्यों नहीं ? क्या एक के रहने से एक और नहीं लिया जाता ? यदि आप लोग न लेंगी तो हम गरीबों का गुजर-बसर कैसे होगा ?'

तब राजकुमारी ने बुढ़िया को अपनी तस्वीरों को दिखाने के लिये कहा। बुढ़िया राजकुमारी को एक-एक तस्वीर निकाल कर दिखाने लगीं। अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, नूरजहाँ, नूरमहल की तसवीरों को दिखाया। राजकुमारी ने हँसते-हँसते सब को लौटा दिया। कहा, 'ये तो हमारे सम्बन्धी हैं, घर में ऐसी बहुत सी तसवीरें हैं। क्या तुम्हारे पास हिन्दू राजाओं की भी तसवीरें हैं ?'

'क्या कमी है ?' कहते हुए बुढ़िया ने राजा मानसिंह, राजा बीरबल, राजा जयसिंह आदि के चित्रों को दिखाया। राजकुमारी ने उन्हें भी लौटा दिया। बोली, 'इन्हें भी न लूँगी। ये सब हिन्दू नहीं है, मुसलमानों के गुलाम हैं।'

तब हँसते हुए बुढ़िया ने कहा' 'बेटी, कौन किसका गुलाम है, यह तो मैं नहीं जानती। जो हमारे पास है वही दिखाती हूँ, जो पसन्द हो ले लो।'

बुढ़िया तसवीर दिखाने लगी। राजकुमारी ने पसन्द करके राणा प्रतापसिंह, राणा अमरसिंह, राणा कर्णसिंह, राणा यशवन्तसिंह आदि के चित्रों को खरीद लिया। बुढ़िया ने एक चित्र को छिपा कर रखा था। उसे नहीं दिखाया।

राजकुमारी ने पूछा, 'उसे क्यों छिपा रखा है ?' बुढ़िया कुछ नहीं बोली। राजकुमारी ने फिर पूछा।

डरती हुई बुढ़िया ने हाथ जोड़ कर कहा, 'मेरे कसूर का कुछ ख्याल न कीजियेगा—गलती हो गयी है—भूल से और तसवीरों के साथ चली आयी है।'

राजकुमारी ने कहा, 'इतना डर क्यों कर रही हो ? किसकी तसवीर है, जिसके दिखाने में इतना डर रही हो ?'

'दिखाने का कोई काम नहीं। आपके घर के दुश्मन की तसवीर है।'

'किसकी तसवीर ?'

'राणा राजसिंह की।'

राजकुमारी ने हँस कर कहा 'वीर पुरुष कभी भी स्त्री-जाति के शत्रु नहीं हो सकते। मैं उस तसवीर को लूँगी।'

तब बुढ़िया ने राजसिंह का चित्र उनके हाथ में दिया। चित्र को हाथ में लेकर राजकुमारी बहुत देर तक उसे देखती रहीं। देखते-तेखते उनका मुख प्रफुल्लित हो उठा। आँखें विस्फारित हो गयीं। एक सखी ने उनके भाव को देख कर चित्र को देखना चाहा। राजकुमारी ने उसके हाथ में चित्र को देकर कहा, 'देख, देखने ही लायक है।'

सखियों के हाथों-हाथ चित्र घूमने लगा । राजसिंह युवा पुरुष नहीं थे तो भी उनके चित्र को देख कर सब प्रशंसा करने लगीं ।

बुढ़िया ने अच्छा मौका देख कर इस चित्र से दूना मुनाफा उठाया । उसके बाद कुछ और पाने के लोभ से बोली; 'राजकुमारी, यदि वीर पुरुष की तसवीरें लेना हो तो मैं एक और दिखलाती हूँ इनके समान संसार में कौन वीर हैं ?'

यह कह कर बुढ़िया ने एक और चित्र निकाल कर राजकुमारी के हाथ में दिया ।

राजकुमारी ने पूछा, 'यह किसकी तसवीर है ?'

'बादशाह आलमगीर की ।'

'इसे भी खरीदूँगी ।'

यह कह कर राजकुमारी ने एक दासी को कहा कि चित्रों के दाम देकर बुढ़िया को विदा कर दो । दासी दाम लाने गयी । इतने में राजकुमारी ने सखियों से कहा, 'आओ, एक तमाशा किया जाय ।'

रंगीली युवतियों ने कहा, 'कहो, क्या तमाशा किया जाय ?'

राजकुमारी ने कहा, 'मैं इस आलमगीर के चित्र को जमीन पर रखती हूँ सब कोई इसके मुँह पर अपने-अपने बाँयें पाँव मे लात मारो । देखें, किसकी लात से उसकी नाक टूटती है ।'

डर से सखियों का मुख सूख गया । एक ने कहा, 'राजकुमारी, ऐसी बात मुँह से न निकालो । यदि इसे एक कौआ भी सुन लेगा तो रूपनगर के किले का एक पत्थर भी न बचेगा ।'

हँस कर राजकुमारी ने चित्र को जमीन पर रखा; कहा, 'मारो, देखें, कौन लात मारती है ।'

कोई आगे नहीं बढ़ी । निर्मल नाम की एक युवती ने आ कर राजकुमारी का मुँह बन्द कर लिया और हँसते-हँसते वह बोली, 'अब ऐसी बात न कहना ।'

चंचल कुमारी ने धीरे-धीरे आभूषणों से शोभित अपने बायें पैर को औरंगजेब के चित्र के ऊपर रखा । जान पड़ता है, इससे औरंगजेब के चित्र की शोभा और भी बढ़ गयी । राजकुमारी कुछ हिली—मड़-मड़ शब्द हुआ । औरंगजेब बादशाह का चित्र राजकुमारी के पैरों तले टूट कर चूर हो गया । सर्वनाश ! क्या किया !! कहते हुए सखियाँ काँप उठीं ।

राजपूत कुमारी ने हँसते हुए कहा, 'जैसे लड़के खिलौनों से खेल कर अपने संसार की साध मिटाते हैं वैसे ही मैंने भी मुगल बादशाह के मुँह पर लात मारने की साध मिटायी है । उसके बाद निर्मल की ओर देख कर बोली, 'सखी निर्मल, बच्चों की साध मिट जाती है । समय आने पर उन्हें भी सचमुच घर गृहस्थी करनी पड़ती है ।

क्या हमारी साध नहीं मिटेगी ? क्या मैं कभी जीवित औरङ्गजेब के मुँह पर ऐसे ही—'

निर्मल ने राजकुमारी का मुँह हाथ से बन्द कर दिया, बात समाप्त नहीं हुई थी—लेकिन सभी उनका मतलब समझ गयीं। बुढ़िया का हृदय काँपने लगा—जहाँ पर ऐसी जी जलाने की बात होती है, वहाँ से कब छुटकारा मिलेगा ? इसी समय उसकी तसवीरों के दाम आ गये। दाम लेकर बुढ़िया लम्बी साँस ले कर भाग गयी।

उसके घर से बाहर निकलते ही निर्मल भी उसके पीछे-पीछे आयी। आकर उसके हाथ में एक अशरफी देकर बोली, 'बूढ़ी, देखो जो कुछ सुना है उसे किसी के सामने मत कहना। राजकुमारी का अभी भी लड़कपन ही है।'

अशरफी लेकर बुढ़िया ने कहा, 'क्या ऐसी बात भी किसी से कही जाती है, मैं तुम्हारी दासी हूँ, क्या मैं कभी भी यह बात अपनी जबान पर ला सकती हूँ ?'

सन्तुष्ट होकर निर्मल लौट गयी।

|३|

चित्र-विचारण

दूसरे दिन चंचल कुमारी अकेले बैठी मोल लिये हुए चित्रों को बड़े ध्यान से देख रही थी। निर्मल कुमारी वहाँ आ पहुँची। उसको देख कर चंचल ने कहा, 'निर्मल इनमें से किससे विवाह करने की तुम्हारी इच्छा होती है ?'

निर्मल ने कहा, 'जिससे विवाह करने की मेरी इच्छा होती है उसके चित्र को तो तुमने पैरों तले कुचल दिया।'

'औरंगजेब से ?'

'इसमें आश्चर्य ही क्या है ?'

'बदजात है। ऐसा दुष्ट पृथ्वी पर कोई जन्मा ही नहीं।'

'बदजात को वश करने में ही मुझे आनन्द मिलता है। क्या तुम्हें याद नहीं है कि मैं बचपन में बाघ पालती थी। मैं एक न एक दिन औरंगजेब के साथ विवाह करूँगी, यही मेरी इच्छा है।'

'वह तो मुसलमान है।'

'मेरे हाथ में पड़ने से औरंगजेब को भी हिन्दू बनना पड़ेगा।'

'जा, मर जा।'

'मरने में कोई आपत्ति नहीं। लेकिन तुमने यह किसकी तसवीर को पाँच बार देखा है ? इसे जान कर ही मैं मरूँगी।'

तब चंचल कुमारी ने जल्दी से और पाँच चित्रों में हाथ वाले चित्र को मिला कर कहा, 'किस तसवीर को मैंने पांच बार देखा है ? मनुष्य को मनुष्य में कलंक लगाने से क्या होता है ? किस तसवीर को पाँच बार देखा है ?'

निर्मल ने हँस कर कहा, 'एक तसवीर देख रही थी, इसमें कलंक की बात क्या ? राजकुमारी, मैंने तुम्हें क्रोध करते हुए पकड़ लिया। किसके भाग्य की रेखा तेज है। तसवीरों को देख कर मैं उसे ढूढ़ निकालूँगी।'

'अकबर बादशाह की।'

'अकबर के नाम पर राजपूतनी झाड़ू मारती है। यह तो हो नहीं सकता।'

यह कह कर निर्मल कुमारी तसवीर की मूँछ को तलाश करने लगी। बोली, 'तुम जहाँ देख रही थीं उसकी दूसरी ओर मैंने एक काला दाग देखा है।' उसी चिह्न को देख कर निर्मल कुमारी ने एक चित्र को बाहर निकाल कर चंचल कुमारी के हाथ में दे कर कहा, 'यही है न ?'

क्रोधित हो कर चंचल कुमारी ने उस चित्र को फेंक दिया। कहा, 'तुम्हें और कोई काम नहीं है शायद ? इसीलिये तुमने लोगों का जी जलाना शुरू कर दिया है। दूर हट !'

'दूर नहीं हटूंगी। राजकुमारी, इस बूढ़े के चित्र को देखने में तुम्हें क्या मिला ?'

'बूढ़ा ! क्या तुम्हारी आँखें मारी गयी हैं ?'

निर्मल चंचल को कुढ़ा रही थी। चंचल का क्रोध देख कर वह मन्द-मन्द हँसने लगी। निर्मल बड़ी सुन्दरी थी। मन्द-मन्द मधुर हँसी से उसकी शोभा और भी बढ़ गयी। हँस कर निर्मल ने कहा, 'तसवीर में भले बूढ़े न दिखाई दें, पर लोग कहते हैं कि महाराणा राजसिंह की अवस्था अधिक है। उनके दो लड़के जवान हो गये हैं।'

'क्या यह राजसिंह की तसवीर है ? सखि, इतना कैसे जानती हो ?'

'वाह ! कल ही खरीदी हैं और आज कुछ जानती ही नहीं ? उस पुरुष की उम्र भी बढ़ गयी है और कुछ सुन्दर भी नहीं है, तब क्या देखती थी ?'

चंचल गा उठी,

'गोरी समझे भसमभार,
पियारी समझे काला।
शची समझे सहस्रलोचन,
वीर समझे वीरवाला॥
गंगागर्जन शंभुजटा पर,
धरनी बैठत बासुकिफन में।

पवन होय तो अग्नि-सखा ,
वीर भजत युवती मन में ।।'

'मैं देखती हूँ, तुमने अपने मरने के लिए अब फन्दा लगा लिया। राजसिंह को चाहने से क्या कभी राजसिंह को पा सकती हो ?'

'पाने के लिए ही क्या कोई किसी को चाहता है ? क्या तुम पाने के लिए ही औरंगजेब को चाहती हो ?'

'मैं औरंगजेब को वैसे ही चाहती हूँ, जैसे चूहे को बिल्ली चाहती है। यदि मैं औरंगजेब को न पा सकूँगी तो मेरा बिल्ली का खाल इस जन्म में यों ही रह जायगा। क्या तुम्हारीं बात भी यही है ?'

'यदि ऐसा न होगा तो मेरा भी सांसारिक खेल इस जन्म में यों ही रह जायगा।'

'राजकुमारी ! क्या चित्र देख कर ऐसा होता है ?'

'किसे क्या होता है, मैं और तुम नहीं जान सकतीं। क्या हुआ है, क्या मैं जानती हूँ ?'

हम भी तो वही कह रहे हैं। चंचलकुमारी को क्या हो गया है ? केवल चित्र देखने से क्या होता है ? प्रेम तो मनुष्य मनुष्य में है, चित्र क्या मनुष्य हो सकता है ? हाँ, हो सकता हैं। हाँ; हो सकता है, यदि तुम चित्र को छोड़ असल का ध्यान कर सको। हो सकता है, यदि पहले से ही तुम मन में कुछ गढ़ कर रख लो। उसके बाद उस चित्र को या (स्वप्न को) उस मन में गढ़ी हुई वस्तु का चित्र या स्वप्न समझो। चंचलकुमारी को क्या ऐसा ही कुछ है ? उस अठारह वर्ष की युवती के मन को किस तरह समझ जा सकता है ?

चंचल कुमारी का मन चाहे जैसा हो, पर मन की आग में एक फूंक देकर उसने अच्छा नहीं किया। क्यों नहीं; सामने भयानक विपद है।

| ४ |

चालाक बुढ़िया

जिस बुढ़िया ने तसवीर बेची थी वह लौट कर घर आयी। उसका घर आगरे में था। वह घूम-घूम कर देश विदेश में चित्र बेचा करती थी। बुढ़िया रूपनगर से आगरा गयी। वहाँ जा कर देखा कि उसका लड़का आया हैं। उसका लड़का दिल्ली में दूकानदारी करता था।

बुढ़िया बड़े कुसमय में चित्र बेचने रूपनगर गयी थी। चंचल कुमारी ने साहस के जिस काण्ड को वह देख आयी थी, उसे किसी के सामने न कहने से उसका मन बड़ा चंचल हो रहा था। यदि निर्मल कुमारी ने उसे पुरस्कार देकर उस बात को कहीं न कहने के लिए मना न किया होता तो बुढ़िया का मन इतना व्यग्र न होता। किन्तु जब उस बात को कहने की मनाही हो गयी, तो बुढ़िया का मन उसे कहने के लिए और भी व्याकुल हो उठा। बुढ़िया क्या करे, एक तो कसम खा कर आयी है। उस पर हाथ फैला कर मोहर ले कर उसका नमक खाया है। बात फैल जाने पर बादशाह के हाथों चंचल कुमारी के विशेष अनिष्ट होने की भी सम्भावना है, इसे भी वह समझती थी। इसलिए अकस्मात् वह किसी के सामने उस बात को कह न सकी। किन्तु बुढ़िया अब दिन को खाती नहीं—रात को सोती नहीं। अन्त में उसने मन ही मन तय किया कि वह उस बात को किसी के सामने न कहेगी। उसके बाद उसका लड़का भोजन करने बैठा। बुढ़िया ने तश्तरी में शोरबादार कबाब डालते हुए कहा, 'खा बेटा, खा, ऐसा कबाब रूपनगर से आने के वक्त एक रोज बना था, और कभी नहीं बना।'

खाते-खाते लड़के ने कहा, 'अम्मा! आपने कहा था कि तुम्हें रूपनगर का किस्सा सुनाऊँगी।'

माँ ने कहा, 'अरे बाप! ऐसी बात कभी जबान पर भी मत लाना। मैंने क्या कहा था? शायद मैंने हँसी में कहा होगा।'

बुढ़िया उस समय भूल गयी थी कि पहले एक दिन चंचल कुमारी की बात उसके पेट में बड़ी पीड़ा पहुँचा रही थी। उस दिन उसने लड़के के सामने आह! ओह! किया था। इस बार का उत्तर सुन कर लड़के ने कहा, 'अम्माँ, चुप क्यों रहूँगा। ऐसी कौन सी बात है?'

'बेटा, सुनने काबिल बात नहीं हैं।'

'तो रहने दीजिये।'

'और कुछ नहीं, रूपनगर वाली कुमारी की बात।'

'वह कुमारी बड़ी खूबसूरत है? यही ऐसी छिपाने की बात है?'

'यह नहीं—उस बाँदी का बड़ा ऊँचा दिमाग है। या अल्लाह मेरी जबान से क्या निकल गया!'

'कहाँ रूपनगर का किला—कहाँ वहाँ की राजकुमारी का दिमाग! इस बात को आप के कहने से क्या मतलब और मेरे सुनने से क्या मतलब?'

'बेटा! सिर्फ दिमाग! लौंडी औरङ्गजेब बादशाह को कुछ समझती ही नहीं।'

'बादशाह आलम को गाली दी होगी?'

'गाली! उससे भी बढ़ कर कुछ—'

'उससे भी बढ़ कर ! और क्या हो सकता है ? बादशाह आलम को तो मार सकती नहीं ।'

'उससे भी बढ़ कर ।'

'मार से भी बढ़ कर ।

'बेटा ! इसके आगे मत पूछना । मैंने उसका नमक खाया है ।'

'नमक खाया है ! किस तरह माँ ?'

'अशरफी दी है ।'

'क्यों ? माँ ?'

'उसके गुनाह की बात किसी से कहना मुनासिब नहीं है, इसीलिए ।'

'अच्छी बात हैं । मुझे भी एक अशरफी बखशीश दीजिये ।'

'क्यों, बेटा ?'

'नहीं तो बतलाइए वह बात क्या है ?'

'बात और कुछ नहीं, बादशाह की तसवीर को—तोबा ! तोबा ! क्या जबान से निकल गया ?'

'तसवीर को तोड़ डाला ?'

'अरे बेटा ! पैर से कुचल डाला । तोबा ! तोबा ! मुझसे नमकहरामी हो गयी ।'

'माँ ! इसमें तुम्हारी क्या नमकहरामी है । मुझसे कहने में क्या नमकहरामी है ? मैं तो तुम्हारा बेटा हूँ ।'

'देखना, बेटा, किसी से कहना मत ।'

'आप खातिर जमा रखिए । किसी से मैं नहीं कहूँगा ।'

तब बुढ़िया ने बहुत कुछ नमक-मिर्च मिला कर चित्र के पैरों तले कुचलने की सारी बात कह सुनायी ।

|५|

दरिया बीबी

बुढ़िया के लड़के का नाम था खिज्र शेख । वह तसवीर बनाता था । दिल्ली में उसकी दूकान थी । माँ के यहाँ दो दिन रह कर वह फिर दिल्ली चला गया । दिल्ली में उसकी एक बीबी थी । वही दूकान पर रहती थी । बीबी का नाम था फातिमा । खिज्र ने अपनी माँ से रूपनगर की जो बात सुनी थी, उसे उसने फातिमा को सुनाया । सब बात

सुना कर उसने फातिमा से कहा, 'तुम अभी दरिया बीबी के पास चली जाना। तुम उससे इस बात को बेगम के यहाँ बेच आने के लिए कहना। कुछ मिल ही जायगा।'

दरिया बीबी पास के मकान में रहती थी। घर के पिछवाड़े से उसके घर में जाने का रास्ता था। इसलिए फातिमा बीबी बेपर्द न हो कर भी दरिया बीबी के घर चली गई।

खिज्र या फातिमा के विशेष परिचय देने का प्रयोजन नहीं किन्तु दरिया बीबी का विशेष परिचय देना जरूरी है। दरिया बीबी का असली नाम दरिया-उन्निसा या ऐसा ही कुछ था। लेकिन उस नाम से उसे कोई पुकारता नहीं था। सब उसे दरिया बीबी ही कहते थे। उसके माँ-बाप नहीं थे, केवल बड़ी बहिन और एक बूढ़ी फूफी या खाला या ऐसी ही कोई एक और थी। घर में कोई मर्द नहीं रहता था। दरिया बीबी की उम्र सत्रह बरस से कम नहीं थी। लेकिन देखने में वह पन्द्रह बरस से अधिक की नहीं जान पड़ती थी। दरिया बीबी बड़ी खूबसूरत थी। खिले हुए फूल की तरह सदा हँसमुख रहा करती थी।

दरिया बीबी की बहिन बहुत बढ़िया सुरमा और इत्र बनाना जानती थी। उसी को बेच कर वे अपना दिन गुजर करती थीं। आप ही इक्के या डोले में बैठ कर बड़े आदमियों के घर बेच आती थीं। वे दुःखी थीं, रात होने पर पैदल भी जाती थीं। बादशाह के जनानखाने में कोई नहीं जाने पाता। बाहर की स्त्रियाँ भी नहीं—लेकिन दरिया बीबी के लिए वहाँ तक भी पहुँचने का उपाय था।

फातिमा ने आ कर दरिया बीबी को चंचल कुमारी का समाचार सुनाया और कह दिया कि इस समाचार को बेच कर धन लाना होगा।

दरिया बीबी बोली, 'रंगमहल के भीतर जाना होगा। परवाना कहाँ है?'

फातिमा ने कहा, 'तुम्हारे ही पास है।'

तब दरिया बीबी ने एक सन्दूक खोल कर उसमें में एक कागज निकाला। उसे उलट-पुलट कर देख कर कहा, 'यही है।'

उसके बाद कुछ सुरमा और परवाना ले कर वह बाहर निकली।

दूसरा भाग

नन्दन-नरक

| १ |

अदृष्ट गणना

चाँदनी के प्रकाश में; बालुओं के बीच से होकर बहने वाली नील सलिला यमुना के किनारे नगरियों में प्रधान महानगरी दिल्ली जलते हुए मणि की तरह चमक रही थी। हजारों संगमर्मर के बने मीनार, गुम्बज और बुर्ज ऊँचे उठ कर चन्द्रमा की तरह चाँदनी में चमक रहे थे। बहुत दूर कुतुबमीनार का ऊँचा शिखर धुओं से भरे ऊँचे खम्भे की तरह दिखाई देता था। पास ही जुम्मा मसजिद के चार मीनार नीले आकाश को छेदते हुए चान्दनी में चमक रहे थे। सड़कों पर कतार की कतार दूकानें थीं, दूकानों में सैकड़ों दीप मालियें जलती थीं। माली की दूकान के फूलों की महक, इत्र और गुलाब की सुगन्धि, घर-घर में संगीत ध्वनि, तरह-तरह के बाजों के स्वर, नगर वासियों की कभी ऊँची और कभी मधुर हँसी, गहनों की झनकार—यह सब मिल कर नन्दन कानन की छाया की तरह मोहित कर रहे थे। फूलों की भरमार, अतर गुलाब की रेल-पेल, वेश्याओं के पाजेब की झनकार, गायकों के कण्ठ के सातों स्वरों का चढ़ाव उतार, बाजों की धमक, सुन्दरी युवतियों के हाथों से बजते हुए तालों की आवाज, मदिरा की धारा, चंचल कटाक्षों की मार, खिचड़ी पोलाव की ढेरी, विकट, कपट, मधुर, चतुर, चार तरह की हँसी, रास्तों में घोड़ों के टापों की आवाज, पालकी ढोने वालों की कर्कश ध्वनि, हाथियों के गले के घण्टे की टन-टनाहट, इक्कों की झन-झनाहट और गाड़ियों की घन-घनाहट मची हुई थी।

नगर के बीच में गुलजार चाँदनी चौक था। वहाँ जगह-जगह राजपूत और तुर्क घोड़ों पर चढ़ कर पहरा दे रहे थे। संसार में जो कुछ बेशकीमत थे, वह सब दूकानों में सजे थे। कहीं नाचने वाली रास्ते के लोगों को जमा कर सारंगी के सुर में

गा रही थीं, नाच रही थीं। कहीं बाजीगर तमाशा दिखला रहा था। सबसे अधिक लोग ज्योतिषियों के पास जमा थे। मुगल बादशाहों के जमाने में ज्योतिषियों का जैसा आदर था जान पड़ता है, वैसा कभी नहीं रहा। हिन्दू-मुसलमान समान भाव से उनका आदर करते थे। मुगल बादशाह ज्योतिष-शास्त्र के अत्यन्त वशीभूत थे। उनकी गणना जाने बिना वे कभी कोई बड़ा काम नहीं करते थे। इस पुस्तक में जिस घटना का वर्णन किया गया है उसके कुछ दिन बाद औरङ्गजेब का छोटा लड़का अकबर राज-विद्रोही हुआ था। पचास हजार राजपूतों की सेना उसकी ओर थी परन्तु ज्योतिषयों की गणना पर निर्भर रह कर अकबर ने अपनी सेना चलाने में विलम्ब किया। इसी बीच औरङ्ग-जेब ने बड़े कौशल से उसकी चेष्टा को विफल कर दिया।

दिल्ली के चाँदनी चौक में, सड़क पर ज्योतिषी आसन बिछा, पोथी-पत्रा खोल और सिर पर पगड़ी बाँध कर बैठे थे। सैकड़ों-स्त्री पुरुष अपना भाग्यफल जानने के लिए उन्हें घेर कर बैठे थे। पर्दानशीन बीबियाँ भी एक बुढ़िया के साथ वहाँ जाने में संकोच नहीं करती थीं। एक ज्योतिषी के चारों ओर बहुत लोग इकट्ठे थे। उससे अलग घूँघट काढ़े एक स्त्री टहल रही थी। लेकिन साहस करके भीड़ के लोगों को ठेल कर वह नहीं जा सकती थी। इसलिए इधर-उधर देख रही थी। उसी समय उस जगह से हो कर एक आदमी घोड़े पर चढ़ कर जा रहा था।

घुड़सवार नवजवान था। देखने में अहले विलायत मुगल जैसा जान पड़ता था। वह बड़ा सुन्दर था, ऐसे सुन्दर आदमी मुगलों में भी दुर्लभ थे। कपड़े-लत्ते और पह-नावे से एक शरीफ आदमी जान पड़ता था। घोड़ा भी अच्छी नस्ल का था।

भीड़ के मारे वह घुड़सवार बहुत धीरे-धीरे घोड़े को चला रहा था। जो स्त्री इधर-उधर देख रही थी, उसने घुड़सवार को देखा। देखते ही उसके पास आ घोड़े की लगाम थाम कर उसे नीचे उतारा। बोली, 'खाँ साहब ! मुबारक साहब ! मुबारक !'

मुबारक उस घुड़सवार का नाम था। उसने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'या आल्लाह ! क्या मुझे पहचानते भी नहीं ?'

'दरिया ?'

'जी।'

'तुम यहाँ क्यों आयी हो ?'

'क्यों, मैं तो हर जगह जाती हूँ। तुम्हारी ओर से तो कोई रोक नहीं है ? तुम क्यों मना करते हो ?'

'मैं क्यों मना करूँगा ? तुम मेरी कौन होती हो ?'

उसके बाद बहुत धीमे स्वर में मुबारक ने कहा, 'क्या तुम्हें कुछ चाहिये ?'

कान में उँगली डाल कर दरिया ने कहा, 'तोबा ? तुम्हारा रुपया मेरे लिये हराम है। हम इत्र-सुरमा जानती हैं।'

'तो फिर मुझे क्यों रोका ?'

'नीचे उतरो तो कहूँ।'

मुबारक ने घोड़े से नीचे उतर कर कहा, 'अब बताओ।'

दरिया ने कहा, 'इस भीड़ में एक ज्योतिषी बैठे हैं। ये नये आये हैं। इनके जैसा कोई ज्योतिषी कभी नहीं आया। इनसे तुम्हें अपनी किस्मत जाननी होगी।'

'मेरी किस्मत जानने से अच्छा है तुम अपनी किस्मत के बारे में पूछो।'

'मैं अपनी किस्मत नहीं जानना चाहती। मैं बिना दिखलाये ही अपनी किस्मत का हाल जानती हूँ। मुझे तुम्हारी किस्मत जानने की जरूरत है।'

यह कह कर दरिया मुबारक का हाथ पकड़ कर उसे ले जाने लगी। मुबारक ने कहा, 'मेरा घोड़ा कौन पकड़ेगा ?'

कुछ लड़के सड़क पर खड़े लड्डू खा रहे थे। मुबारक ने कहा, 'तुममें से कोई एक लहमा भर मेरे घोड़े को पकड़ रखो। मैं आ कर तुम्हें लड्डू दूँगा।'

यह सुनते हीं दो-तीन लड़कों ने आकर घोड़े को पकड़ लिया। एक लड़का बिल्कुल नंगा था—वह घोड़े की पीठ पर जा बैठा। मुबारक उसे मारने चला। लेकिन उसे कुछ न करना पड़ा। घोड़े ने अपने पिछले पावों से पुस्त देकर लड़के को नीचे गिरा दिया। उसे जमीन पर गिरते देख और लड़के हाथ से लड्डू छीन छीन खाने लगे। तब निश्चिंत हो कर मुबारक अपनी भाग्यगणना कराने गया।

मुबारक को देख कर लोगों ने रास्ता छोड़ दिया। दरिया बीबी उसके साथ साथ गयी। ज्योतिषी ने बहुत देख-सुन कर कहा, 'आप जा कर शादी कीजिये।'

पीछे से भीड़ में छिप कर दरिया बीबी बोली, 'शादी कर ली है।'

ज्योतिषी ने कहा, 'किसने यह बात कही ?'

मुबारक ने कहा, 'एक पगली है—आप बतला सकते हैं मेरी शादी किससे होगी ?'

'आप किसी राजा की लड़की से शादी कीजिये !'

'उससे क्या होगा ?'

'इससे आपका दर्जा और ऊँचा बढ़ेगा।'

'और मौत।' फिर पीछे से आवाज आई।

'कौन है यह ?' ज्योतिषी ने पूछा।

'वही पगली।' मुबारक ने कहा।

'पगली नहीं। जान पड़ता है, आदमी भी नहीं। अब मैं और आपका हाथ नहीं देखूँगा।'

मुबारक की समझ में कुछ नहीं आया । घोड़े से कूद कर वह भीड़ में दरिया को खोजने लगे । लेकिन बहुत ढूँढ़ने पर भी वह न मिली । उसके बाद मुबारक उदास हो घोड़े पर चढ़ कर किले की ओर गया ।

लड़कों को कुछ लड्डू मिले ।

|२|

जेबुन्निसा

दरिया के समचार बेचने का क्या हुआ ? समाचार कैसे बेचा जाता है ? किसके हाथ वह बेचे ? इस बात को समझने के लिये मुगल बादशाह के रंगमहल का कुछ परिचय देना होगा ।

यह प्रसिद्ध है कि भारतवर्ष की महिलाएँ राज-काज चलाने में चतुर होती थीं । पश्चिम के देशों में केवल जेनोबिया, इसाबेला, एलिजबेथ या कैथोराइन के ही नाम सुनने में आते हैं, पर भारतवर्ष के बहुत से राजघराने की स्त्रियाँ राज्यशासन चलाने में दक्ष थीं । मुगल बादशाहों की पुत्रियाँ भी इस काम में बड़ी निपुण होती थीं । परन्तु जिस प्रकार वे राज-काज में कुशल होती थीं उसी प्रकार वे इन्द्रिय परबस और भोग विलास-परायण होती थीं । औरंगजेब के दो बहनें थीं, जहानआरा और रोशन-आरा । जहानआरा शाहजहाँ बादशाह को राज-काज में ख़ूब सहायता देती थी । शाह-जहाँ बिना उसकी सलाह लिये कोई काम नहीं करते थे । उसकी राय ले कर काम करने में उन्हें सफलता मिलती थी और उनका यश होता था । वह अपने पिता की भलाई चाहने वाली थी । लेकिन जैसी वह गुणवती थी उससे अधिक वह आरामतलब और ऐयाश भी थी । इन्द्रिय तृप्ति के लिये कितने ही लोग उसके कृपा-पात्र थे । यूरोपियन यात्री उन लोगों में ऐसे आदमी का नाम बतलाते हैं जिसे लिखकर मैं अपनी लेखनी को कलंकित नहीं कर सकता ।

रोशनआरा पिता के विरुद्ध रहती थी । वह औरंगजेब का पक्ष करती थी । वह भी जहानआरा की तरह राज-काज में निपुण थी और इन्द्रिय सम्बन्ध में जहान-आरा की तरह विचारशून्य और बेरोक-थाम की थी । जिस समय पिता को राजगद्दी से हटा कर तथा उसे कैद कर औरंगजेब राज्य लेने की चेष्टा में था, उस समय रोशन आरा उसकी प्रधान सहायिका थी । औरंगजेब भी रोशनआरा का बड़ा ऋणी था । औरंगजेब की बादशाहत में रोशनआरा दूसरी बादशाह थी ।

परन्तु रोशनआरा के दुर्भाग्यवश एक बहुत बलवान शत्रु उसके मुकाबले खड़ा हुआ। औरंगजेब के तीन लड़कियाँ थीं। दो छोटी लड़कियों की शादी दो भतीजों के साथ कर दी थी! बड़ी लड़की जेबुन्निसा॰ ने विवाह नहीं किया। वह भी अपनी फूफियों की देखादेखी बसन्त के भौंरे की तरह इधर-उधर फूलों का रस लेती थी।

बुआ और भतीजी दोनों बहुत जगह मदन मन्दिर में एक दूसरे की प्रतियोगिनी हो जाती थीं। इसलिये भतीजी ने बुआ को मटियामेट कर देने का संकल्प किया। बुआ की करतूत वह अपने बाप से कहने लगी। फल यह हुआ कि रोशनआरा पृथ्वी से लोप हो गयी और जेबुन्निसा को उसका दर्जा और उसके कृपा-पात्र मिले।

दर्जे की जो बात मैंने कही, उसका एक मतलब हैं। बादशाहों के अन्तःपुर में खोजों को छोड़ कर और कोई नहीं जा सकता था। और न किसी के जाने के लिये इजाजत थी। अन्तःपुर में पहरा देने के लिये स्त्रियों की एक सेना थी। जिस तरह हिन्दू राजा मुसलमानियों को द्वार पर पहरा देने के लिये रखते थे वैसे ही मुगल बादशाह भी करते थे। तातार जाति की सुन्दरी स्त्रियाँ मुगल बादशाहों के अन्तःपुर में पहरा देने का काम करती थीं। इस स्त्री-सेना की एक नायिका थी। वह सेनापति की जगह पर थी। उसका दर्जा ऊँचा समझा जाता था और उसी के मुताबिक उसकी तनख्वाह और इज्जत भी होती थी। इस पद पर रोशनआरा थी। उसके एक-ब-एक लोप होने पर जेबुन्निसा को वह पद दिया गया था। जो इस पद पर नियुक्त होती थी, वही अन्तःपुर के सब कामों की कर्त्ता-धर्त्ता होती थी। इसलिए जेबुन्निसा रंगमहल[1] की पूरी मालकिन थी। सब उसके नीचे थे। पहरेदार, खोजे, बाँदियाँ, द्वारपाल, रसोइये आदि सब उसके अधीन थे। इसलिए जिसे उसकी इच्छा होती उसे वह अन्दर आने देती।

दो तरह के लोग उसकी कृपा से अन्तःपुर में जाने पाते थे। एक तो उसके प्रेम-पात्र और दूसरे जो उसके हाथ खबर बेचते थे।

पहले कह आये हैं कि जेबुन्निसा बड़ी राजनीतिज्ञ थी। मुगल साम्राज्य रूपी जहाज का पतवार एक प्रकार से उसके ही हाथ में था। वह मुगल साम्राज्य के 'नियामक नक्षत्र' के नाम से प्रसिद्ध थी। यह जानी हुई बात है कि राजनीतिज्ञ सम्प्रदाय के लिये एक बहुत प्रयोजनीय पदार्थ है—संवाद। कहाँ क्या हो रहा है, गुप्त रूप से यह सब जानना चाहिये। दुर्मुख के मालिक रामचन्द्र से ले कर विस्मार्क तक इसके प्रमाण हैं। जेबुन्निसा इस बात को बहुत अच्छी तरह समझती थी। वह चारों ओर की खबरें रखती थी। खबर लाने के लिए उसने कितने ही आदमी नियत कर रखे थे। उनमें से तस-

---

॰ मुसलमान इतिहास में जेबुन्निसा या जयेब-उन्निसा का नाम प्रसिद्ध है। पादरी कक्र का कहना है कि उसका नाम फखरुन्निसा था।

१. बादशाहों के अन्तःपुर को रंगमहल या महल कहते थे।

वीर वाला खिज्र भी एक था। उसकी माँ जगह-जगह तसवीर बेचने जाया करती थी। खिज्र उससे हर जगह की खबरें लिया करता था। दरिया बीबी की बहन भी सुरमा और इत्र बेचने के लिए दिल्ली में घूम-घूम कर इधर-उधर की खबरें इकट्ठी किया करती थी। इन सब खबरों को दरिया जेबुन्निसा के पास पहुँचा आया करती थी। जेबुन्निसा उसे हर बार कुछ न कुछ इनाम देती थी।

यही था खबर बेचना। जेबुन्निसा ने दरिया को एक परवाना दे रखा था ताकि महल में खबर देने के लिए आने में उसे कोई रोक-टोक न हो। परवाने का आशय यह था कि सुरमा बेचने के लिये दरिया बीबी को रङ्गमहल में आने दिया जाय।

पर दरिया बीबी के रङ्गमहल में घुसते ही एक बाधा आ पहुँची। उसने देखा कि मुबारक महल में घुसा है। उस समय दरिया महल में नहीं गयी, कुछ देर ठहर कर गयी।

जा कर दरिया ने देखा कि जहाँ जेबुन्निसा का ऐश-महल है, मुबारक वहीं गया है। तब वह एक पेड़ की छाया में छिप कर देखने लगी।

|३|

ऐश्वर्य-नरक

दिल्ली महानगरी का सार दिल्ली का किला था। किले का सार मुगल बादशाहों के महलों की कतारें थीं। इन महलों के भीतर थोड़ी-सी जगह में जितना धन था, जितना रूप-सौन्दर्य था, जितना पाप था, उतना समस्त भारतवर्ष में न था। महलों का सार अन्तःपुर या रङ्गमहल। वहाँ कुबेर और कामदेव का राज्य था। चन्द्रमा और सूर्य भी वहाँ प्रवेश नहीं कर सकते थे। यमराज भी छिप कर ही वहाँ जाने पाते थे। वायु के लिये भी वहाँ प्रवेश नहीं था। वहाँ के घरों की बनावट विचित्र थी, घरों की सजावट भी विचित्र थी। रङ्गमहल में रहने वाली भी विचित्र थीं। ऐसे रत्नों जड़े संगमर्मर के घर और कहीं नहीं थे। नन्दन-वन को निन्दित करने वाली ऐसी पुष्प वाटिकायें भी कहीं नहीं थीं। उर्वशी, मेनका, रम्भा के गर्व को चूर करने वाली ऐसी सुन्दरियाँ भी कहीं नहीं थीं। इतना महापाप भी कहीं नहीं था।

इनमें जेबुन्निसा के ऐश-महल से हमारा मतलब है।

बड़ा सुन्दर ऐश-महल था। काले और सफेद पत्थरों का उसका फर्श था। संगमर्मर की उसकी दीवारें थीं। रत्नों की लता, रत्नों के पत्ते, रत्नों के फूल, रत्नों के फल

रत्नों के पक्षियों और रत्नों के ही भौंरे बनाये गये थे। कुछ दूर ऊपर जाकर बड़े-बड़े आईने टँगे थे। उनके चारों ओर सोने के काम किए हुए चौखटे लगे थे। ऊपर चाँदी के तारों की बनी चाँदनी टँग रही थी, जिसमें मोतियों की झालरें लगी थीं। ताजे चुने हुए फूलों की भी झालरें थीं। फर्श पर वर्षा-ऋतु में उगे हुए नये दूब से भी कोमल गलींचा बिछा हुआ था। उसके ऊपर हाथी दाँत का बना रत्नों से शोभित पलंग था। उसके ऊपर जरी का काम किया हुआ बिछौना और मखमल का तकिया था। पलंग पर कई रङ्ग के फूलदानों में ढेर के ढेर फूल रखे थे। गुलाबपाश और इत्रदानों में गुलाबजल और इत्र भरे थे। सुगन्ध-द्रव्यों से लगाये ढेर के ढेर पान के बीड़े रखे थे। एक जगह सोने की सुराही में बढ़िया शराब रखी थी। सब के बीच फूलों और रत्नों को मलिन करती हुई प्रौढ़ा सुन्दरी जेबुन्निसा हाथ में पानदान लिये खिड़की से आधी रात के तारों की शोभा देखती हुई मन्द-मन्द पवन से फूलों से शोभित अपने मस्तक को शीतल कर रही थी। इसी समय मुबारक खाँ वहाँ पहुँचे।

मुबारक खाँ जेबुन्निसा के पास जा कर बैठे और पान आदि प्रसाद पा कर धन्य-धन्य हुए।

जेबुन्निसा बोली, 'जो बिना बुलाए आवे वही प्रेम करता है।'

मुबारक ने कहा, 'बिना बुलाये आया हूँ, बेअदबी हो गयी है। लेकिन भिखारी बिना बुलाये ही आता है।'

'तुम्हारी क्या भीख है, प्राणाधिक!'

'भीख यही है कि मुल्ला के हुक्म से इस शब्द पर मेरा अधिकार हो।'

हँस कर जेबुन्निसा ने कहा, 'फिर वही पुरानी बात! शाहजादियाँ कभी शादी नहीं करतीं।'

'तुम्हारी छोटी बहनों ने तो शादी की है।'

'उन्होंने शाहजादों से शादी की है। शाहजादियाँ शाहजादों को छोड़ और किसी से शादी नही करतीं। क्या शाहजादी मामूली मनसबदार से कभी शादी कर सकती हैं?'

'तुम मालके-मुल्क हो। तुम बादशाह को जो कहो गी वह वही करेंगे। इस बात को सभी जानते हैं।'

'जो नामुनासिब है उसके लिये मैं बादशाह को मजबूर नहीं कर सकती।'

'और क्या यह मुनासिब है शाहजादी?'

'क्या?'

'यही महापाप?'

'कौन महापाप करता है?'

मुबारक ने सिर नीचा कर लिया। अन्त में कहा, 'क्या तुम नहीं समझती हो ?'

'यदि इसे पाप समझते हो तो अब मत आना।'

कातर हो कर मुबारक ने कहा, 'यदि यह मेरे किये हो सकता तो मैं नहीं आता। मैं तो तुम्हारी सुन्दरता के हाथों बिक चुका हूँ।'

'यदि तुम बिक गये हो—यदि तुम मेरे खरीदे हुए हो तो जो मैं कहती हूँ करो। चुप हो कर बैठो।'

'यदि मैं अकेला ही पाप का भागी होता तो मैं चुप हो कर बैठ जाता, किन्तु मैं तुम्हें अपनी जान से भी अधिक प्यार करता हूँ।'

जेबुन्निसा बड़े जोर से हँसी। कहा, 'शाहजादी का पाप।'

मुबारक ने कहा, 'पाप-पुण्य अल्लाह का हुक्म है।'

'अल्लाह ने यह सब हुक्म छोटे लोगों के लिये—काफिरों के लिये बनाये हैं। क्या मैं हिन्दू ब्राह्मण की लड़की हूँ या राजपूत की लड़की हूँ जो एक खाविन्द से शादी करके जिंदगी भर उसकी लौंडी बन कर आखिर में आग में जल मरूँ। अल्लाह अगर मेरी किस्मत में ऐसा लिखते तो वे मुझे कभी शाहजादी नहीं बनाते।'

यह सुन कर मुबारक मानो आसमान से गिरा। ऐसी खोटी बात उसने कभी नहीं सुनी थी। उस पापपुरी दिल्ली में भी कभी नहीं सुनी थी। यदि और कोई यह बात उससे कहती तो वह कहता है कि जा तेरे पर वज्र गिरे। जेबुन्निसा के रूप के समुद्र में वह डूब चुका था। उसे बुरे भले का ज्ञान नहीं था। वह केवल विस्मित ही रहा।

जेबुन्निसा कहने लगी, 'उस बात को जाने दो। और बात करो। देखना फिर मैं वह बात न सुनूँ। सुनो यदि—'

'मुझे डर दिखाने की क्या जरूरत है ? मैं जानता हूँ तुम जिस पर नाखुश होगी, एक क्षण भी उसका सिर धड़ पर न रहेगा। परन्तु तुम यह भी जान रखो कि मुबारक कभी मौत से नहीं डरता।'

'मौत से बढ़ कर क्या और कोई सजा नहीं है ?'

'है, तुम्हारी जुदाई।'

'बार-बार फिजूल बातें करने से वही बात होगी।'

मुबारक ने सोचा एक होने पर दूसरी भी जरूर होगी। यदि मैं पापिनी समझ कर जेबुन्निसा का परित्याग कर दूँ, तो निश्चय ही मुझे मरना होगा। जेबुन्निसा मुगल राज्य की सर्वेसर्वा है ! खुद औरंगजेब उसके कहने पर चलते हैं। लेकिन इसके लिये मुबारक दुःखी नहीं है, उसे इसी बात का दुःख है कि वह शाहजादी के रूप पर मुग्ध है। वह उसे किसी प्रकार भी नहीं छोड़ सकता। इस पाप पंक से निकलने की उनमें शक्ति नहीं।

अतएव मुबारक ने विनीत भाव से कहा, 'आप अपने इच्छानुसार मेरे ऊपर जितनी दया दिखायेंगी उतना ही मैं अपने जीवन को पवित्र समझूँगा। मेरी और भी कुछ इच्छा है—इसे गरीब का धर्म समझिये। क्या कोई भिखमङ्गा संसार की बादशाही की इच्छा रखता है ?'

तब खुश हो कर शाहज़ादी ने मुबारक को शराब का प्याला दिया। फिर मधुर प्रेमालाप करने के बाद उन्हें इत्र और पान दे कर बिदा किया।

रङ्गमहल से निकलने के पहले ही मुबारक को दरिया बीबी ने आ कर पकड़ लिया। बहुत धीमें स्वर में पूछा, 'क्यों, क्या शाहज़ादी के साथ शादी ठीक हो गई ?'

विस्मित हो कर मुबारक ने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'वही दरिया।'

'दुश्मन ! शैतान ! तुम यहाँ कैसे ?'

'जानते नहीं मैं खबर बेचा करती हूँ ?'

मुबारक काँप उठा। दरिया बीबी ने कहा, 'क्या शाहज़ादी के साथ शादी होगी ?'

'शाहज़ादी कौन है ?'

'शाहज़ादी जेबुन्निसा बेगम साहिबा। क्या शाहज़ादी राजपुत्री नहीं हैं ?'

'मैं यहीं तुम्हारा खून कर डालूँगा।'

'तो मैं हल्ला मचाऊँगी।'

'अच्छा, लो, मैं खून नहीं करूँगा। यह तो बताओ तुम किसके पास खबर बेचने आयी है ?'

'यह कहने के ही लिये तो यहाँ खड़ी हूँ। हज़रत जेबुन्निसा बेगम साहबा के पास !'

'क्या खबर बेचोगी ?'

'यही कि तुम आज बाजार में ज्योतिषी के यहाँ अपनी किस्मत दिखाने गये थे। ज्योतिषी ने कहा कि तुम्हारी शादी एक शाहज़ादी से होगी। इससे तुम्हारी तरक्की होगी।'

'दरिया बीबी ! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम मेरी बुराई करने पर उतारू हो गई हो।'

'क्या बिगाड़ा है ? तुमने मेरे साथ कुछ भी नहीं किया है ? तुमने जो कुछ किया है उससे बढ़ कर स्त्री के लिए और बुरी बात क्या हो सकती है ?'

'क्यों प्यारी ! मेरे जैसे बहुत हैं।'

'ऐसा पापी कोई नहीं है।'

'मैं पापी नहीं हूँ। लेकिन यहाँ खड़े-खड़े इतनी बात नहीं हो सकती। और कहीं मुझसे मुलाकात करना। मैं तुम्हें सब समझा दूँ गा।'

यह कह कर मुबारक फिर जेबुन्निसा के पास गया। जेबुन्निसा से कहा, 'मैं फिर आया हूँ। मेरी बेअदबी माफ कीजिये गा। यही कहने आया हूँ कि दरिया बीबी हाजिर है—इसी वक्त आप से मिलना चाहती है। वह पगली है। अगर वह आप से मेरी शिकायत करे तो उसके बारे में मुझसे पूछे बिना आप गुस्सा न कीजिए गा।'

जेबुन्निसा ने कहा, 'तुम्हारे ऊपर गुस्सा करना मेरी हिम्मत के बाहर की बात है। अगर कभी तुम्हारे ऊपर गुस्सा करूँ गी तो उससे मुझे ही दुख होगा। तुम्हारी शिकायत मैं अपने कानों से नहीं सुन सकती।'

'इस गुलाम पर ऐसी ही मिहरबानी फरमाते रहिये गा।' यह कह कर मुबारक चला गया।

|४|

संवाद-विक्रय

जो तातारी युवती हाथ में तलवार-ढाल ले कर जेबुन्निसा के महल के दरवाजे पर पहरा देती थी उसने दरिया को देख कर कहा, 'इतनी रात कौन ?'

दरिया बीबी बोली, 'तो क्या मैं यह पहरे वाली को बतलाऊँ गी। तू जा कर खबर दे।'

तातारी ने कहा, 'तुम यहाँ से निकल जाओ। मैं खबर देने नहीं जाऊँ गी।'

दरिया ने कहा, 'बिगड़ती क्यों हो, दोस्त, तुम्हारी नजरों से ही काबुल और पञ्जाब फतह हो सकता है। उस पर ढाल और तलवार लिए हो। तुम्हारे गुस्सा करने से भला कैसे चल सकता है ? यह मेरा परवाना देखो। जाओ, इत्तिला कर दो।'

पहरे वाली लाल ओठों पर एक मीठी हँसी के साथ बोली, 'तुम्हें भी पहचानती हूँ—तुम्हारे परवाने को भी पहचानती हूँ, तो क्या इतनी रात हजरत बेगम साहबा सुरमा खरीदें गी ? तुम कल सबेरे आना। इस वक्त खसम हो तो खसम के पास जाओ और अगर न हो तो—'

'तुम जहन्नुम में जाओ। तुम्हारी ढाल तलवार जहन्नुम में जाय—तुम्हारा दुपट्टा पाजामा जहन्नुम में जाय—क्या तुम यह समझती हो कि बिना जरूरत ही मैं इतनी रात गये आई हूँ ?'

तब तातारी ने चुपके से कहा, 'हजरत बेगम साहबा इस वक्त कुछ मजे में हों गी।'

दरिया ने कहा, 'अरे बाँदी, क्या यह मैं नहीं जानती हूँ ? तू भी मजा करो गी ? हाँ, कर।'

उसके बाद दरिया ने अपनी ओढ़नी के भीतर से एक शीशी शराब निकाली। पहरेवाली ने हाँ किया। दरिया ने शीशी को उसके मुँह में उड़ेल दिया। तातारी ने सूखी नदी की तरह उसे एक ही साँस में पी लिया। बोली, 'बिस्मिल्लाह ! क्या तोहफा शरबत है ! अच्छा, तुम खड़ी रहो, मैं इत्तिला किये देती हूँ।'

कमरे के भीतर जा कर पहरेवाली ने देखा कि जेबुन्निसा हँस-हँस कर फूलों से एक कुत्ता बना रही है। मुबारक की तरह उसका मुँह उसकी दुम बनी है। पहरेवाली को देख कर जेबुन्निसा ने कहा, 'नाचनेवालियों को बुला।'

रंगमहल की सब बेगमों के दिलबहलाव के लिए नाचनेवाली रखी गयी थीं। घर-घर में नाच-गाना होता था। जेबुन्निसा के दिलबहलाव के लिए नाचनेवालियों का एक दल था।

पहरेवाली ने फिर कोर्निश कर के कहा, 'जो हुक्म। दरिया बीबी हाजिर है। मैंने तो उसे भगा दिया था, पर वह कुछ सुनती ही नहीं।'

'कुछ इनाम दिया है क्या ?'

शर्मिन्दा हो कर पहरेवाली ने ओढ़नी के आँचल से अपना मुँह ढँक लिया। तब जेबुन्निसा ने कहा, 'अच्छा, नाचनेवालियों को रहने दे, दरिया को भेज दे।'

दरिया ने आ कर कोर्निश की। उसके बाद फूल के कुत्ते को देखने लगी। देख कर बेगम साहबा ने पूछा, 'कैसा बना है, दरिया ?'

दरिया ने फिर कोर्निश कर के कहा, 'ठीक मनसबदार मुबारक खाँ साहब की तरह बना है।'

'ठीक ! तू ले गी ?'

'किसे दें गी ? कुत्ते को या आदमी को ?'

जेबुन्निसा ने भौंहे जरा टेढ़ी की। उसके बाद गुस्से को सँभाल कर हँसते हुए, कहा, 'जैसी तेरी खुशी हो।'

'तो हजरत बेगम साहबा को कुत्ता मुबारक हो, मैं आदमी ही लूँ गी।'

'कुत्ता तो इस वक्त हाथ में है, आदमी तो हाथ में नहीं है। अभी कुत्ते को ही ले।'

यह कह कर जेबुन्निसा ने शराब की मस्ती में जिन फूलों से कुत्ता बनाया था, उन फूलों को उठा कर वह दरिया के ऊपर फेंकने लगी। दरिया ने अपनी ओढ़नी फैला

कर उन्हें ले लिया—नहीं तो बेअदबी होती। उसके बाद उसने कहा, 'हुज़ूर की मिहरबानी से मैंने कुता और आदमी दोनों को पाया।'

'कैसे ?'

'आदमी मेरा है।'

'कैसे ?'

'मेरे साथ उसकी शादी हुई है।'

'निकल जाओ यहाँ से।'

जेबुन्निसा ने कुछ फूल फेंक कर दरिया बीबी को मारा।

हाथ जोड़ कर दरिया बोली, 'मुल्ला और गवाह दोनों जिन्दा हैं। यकीन न हो तो बुला कर पूछ लीजिए।'

भौंहें टेढ़ी करके जेबुन्निसा बोली, 'मेरे हुक्म से उन्हें शूली दी जायगी।'

दरिया काँप उठी। यह शेरनी मुगल शाहजादी सब कुछ कर सकती है, वह इस बात को अच्छी तरह जानती थी। वह बोली, 'शाहजादी, मैं गरीब आदमी हूँ, खबर बेचने आयी हूँ। मुझे इस बात से कोई मतलब नहीं।'

'क्या खबर है, बोल ?'

'दो हैं, एक तो मुबारक खाँ के बारे में। हुक्म पाये बिना कहने की हिम्मत नहीं होती।'

'बोल।'

'वे आज रात को चौक के गणेश ज्योतिषी से अपनी किस्मत दिखाने गये थे।'

'ज्योतिषी ने क्या कहा ?'

'शाहजादी से शादी करो, इससे तुम्हारी तरक्की होगी।'

'झूठी बात ! मनसबदार कब ज्योतिषी के पास गया था ?'

'यहाँ आने के पहले ही।'

'कौन यहाँ आया था ?'

दरिया कुछ डरी। किन्तु हिम्मत कर के तसलीम करती हुई बोली, 'मुबारक खाँ साहब।'

'तूने कैसे जाना ?'

'मैंने आते हुए देखा है।'

'जो ऐसी बात कहता है उसे मैं शूली देती हूँ।'

दरिया सिहर गयी। बोली, 'बेगम साहबा, हुज़ूर को छोड़ कर और किसी के सामने यह बात जबान पर नहीं लाऊँ गी।'

'लाने से जल्लादों से तेरी जबान कटवा लूँ गी। बोल, दूसरी खबर क्या है ?'

'दूसरी खबर रूपनगर की है।'

उसके बाद दरिया ने चञ्चल कुमारी के तस्वीर तोड़ने की बात आद्योपांत कह सुनायी। सुन कर जेबुन्निसा ने कहा, 'यह खबर अच्छी है। कुछ इनाम पाओ गी।'

उसके बाद रङ्गमहल के खजानची के नाम इनाम का परवाना कटा। उसे ले कर दरिया भागी।

तातारी पहरेवाली ने उसे पकड़ा। तलवार को दरिया के कन्धे पर रख कर बोली, 'कहाँ भागी जा रही हो, दोस्त !'

'काम हो गया, घर जाऊँ गी।'

'तुम्हें इनाम मिला है, कुछ मुझे भी दो।'

'मुझे रुपये की बड़ी जरूरत है। लो, तुम्हें एक गाना सुना देती हूँ। सारङ्गी ले आओ।'

पहरेवाली के पास सारङ्गी थी। कभी-कभी वह बजाया करती थी। रङ्गमहल में गाने बजाने की बड़ी चहल-पहल थी। सब बेगमों के लिए नाचनेवालियों का एक-एक दल रहता था। अविवाहिताओं के लिए कोई गायिका नहीं थी। वे अपने ही आप गा-बजा लेती थीं। रङ्गमहल में रात को सुरों का ताँता बँधा ही रहता था। दरिया तातारी की सारङ्गी ले कर गाने बैठी। उसका गला बड़ा सुरीला था। बहुत अच्छा गाती थी। बड़ा मधुर गाना गाया। अन्दर से जेबुन्निसा ने पूछा, 'कौन गाती है ?'

पहरेवाली बोली, 'दरिया बीबी।'

हुक्म हुआ कि उसे अन्दर भेजो।

फिर दरिया ने जेबुन्निसा के पास जा कर कोर्निश की। जेबुन्निसा ने कहा, 'गाओ, यह बीन है।'

बीन ले कर दरिया गाने लगी। बहुत मधुर गाना गाया। शाहजादी ने एक से एक बढ़ कर गायिकाओं और गवैयों का गाना सुना था, पर ऐसा गाना कभी नहीं सुना था। दरिया का गाना खत्म होने पर जेबुन्निसा ने उससे पूछा, 'क्या तुम ने मुबारक के सामने भी कभी गाया है ?'

'उन्होंने मेरे इसी गाने को सुन कर मेरे साथ शादी की थी।'

जेबुन्निसा ने एक गुलदस्ता फेंक कर इतने जोर से दरिया को मारा कि उसके कर्णफूल से लग कर उसका कान कट गया और खून बहने लगा। तब जेबुन्निसा ने कुछ रुपये दे कर उसे विदा कर दिया। कहा, 'फिर मत आना।'

दरिया तसलीम कर के चली गयी। मन ही मन उसने कहा, 'फिर आऊँ गी, फिर जलाऊँ गी। फिर मार खाऊँ गी, रुपये लूँ गी ओर तुम्हारा सर्वनाश करूँ गी।'

उदयपुरी बेगम

औरङ्गजेब संसार प्रसिद्ध बादशाह था। संसार प्रसिद्ध साम्राज्य उसके अधिकार में था। स्वयं वह बुद्धिमान, कार्य कुशल, परिश्रमी तथा और और राज-गुणों से भूषित था। इतने असाधारण गुणों के रहते हुए भी संसार प्रसिद्ध बादशाह ने अपने संसार विख्यात साम्राज्य को एक प्रकार से ध्वंस करके अपनी मानव लीला समाप्त की।

इसका एकमात्र कारण यह था कि औरङ्गजेब बड़ा निर्दयी था। उसके समान धूर्त, कपटी, पाप में संकोच-शून्य, स्वार्थी, पर-पीड़क, प्रजा-पीड़क दो एक ही मिलेंगे। यह कपटी बादशाह अपनी जितेन्द्रियता का ढोंग करता था, लेकिन उसके रंगमहल में असंख्य सुन्दरी स्त्रियाँ मधुमक्खी की तरह दिन-रात भनभनाया करती थीं।

उसकी बेगमें भी अनगिनत थीं और बिना किसी सम्बन्ध के तनखाह पर रहने वाली और भी अनेक युवतियाँ थीं। इन पापिनियों के साथ इस ग्रन्थ का बहुत थोड़ा सम्बन्ध है; किन्तु किसी-किसी बेगम के साथ इस ग्रन्थ का घनिष्ट सम्बन्ध है।

मुगल बादशाह जिससे पहले शादी करते थे वही प्रधान बेगम होती थी। हिन्दू-द्वेषी औरङ्गजेब के दुर्भाग्य से उसकी बड़ी बेगम एक हिन्दू-कन्या थी। अकबर बादशाह ने राजपूत राजाओं की कन्याओं के साथ शादी करने की रीति चलायी थी। इस नियम के अनुसार सब बादशाहों के हिन्दू बेगमें थीं। औरङ्गजेब की प्रधान बेगम जोधपुरी बेगम थी।

जोधपुरी बेगम बड़ी बेगम होने पर भी औरङ्गजेब की प्यारी नहीं थी। जो उसकी परम प्यारी थी वह एक ईसाइन थी। वह इतिहास में उदयपुरी बेगम के नाम से मशहूर है। उदयपुर से इसका कोई सम्बन्ध था, इसलिए उसका नाम उदयपुरी बेगम नहीं था। एशिया के बहुत दूर पश्चिम भाग में जजिया जो इस समय रूस के राज्य में शामिल है, उसकी जन्मभूमि थी। लड़कपन में उसे एक गुलाम बेचने वाला भारतवर्ष में ले आया था। औरङ्गजेब के बड़े भाई दारा ने इसे खरीदा था। वह बालिका यौवन आने पर अद्वितीय सुन्दरी हुई। उसके रूप पर मुग्ध होकर दारा अत्यन्त वशीभूत हो गया। उदरपुरी मुसलमानिन न थी, ईसाइन थी। कहते हैं कि पीछे से दारा भी ईसाई हो गया था।

दारा को लड़ाई में हरा कर औरंगजेब गद्दी पर बैठा। अरंगजेब ने पहले दारा को हरा कर उसे कैद कर लिया। उसके बाद उसे मार डाला। दारा को मार कर नराधम औरंगजेब ने एक आश्चर्यजनक प्रसंग खड़ा कर दिया। उड़िया लोगों में एक कलंक की बात है कि बड़े भाई के मरने पर छोटा भाई अपनी भाभी से विवाह कर उसका

शोक हरण करता है। इसी श्रेणी के एक उड़िया से मैंने एक बार पूछा—'तुम लोग ऐसा दुष्कर्म क्यों करते हो ?' उसने झट से जवाब दिया, क्या घर की स्त्री को दूसरे को दें ! जान पड़ता है, भारतेश्वर औरंगजेब ने भी ऐसा ही सोचा था। उसने कुरान की आयतें उद्धृत कर यह प्रमाणित किया कि इस्लाम धर्म के अनुसार वह अपने बड़े भाई की स्त्री से विवाह करने के लिये वाध्य है। अतः उस दारा की दो प्रधान बेगमों को उसने अपनी अर्द्धाङ्गिनी बनाया। एक राजपूत कन्या थी, दूसरी उदयपुरी बेगम। इस आज्ञा को सुन कर राजपूत कन्या ने जो किया, उस अवस्था में कोई भी हिन्दू कन्या वही करती। किन्तु और किसी जाति की कन्या वैसा नहीं कर सकती। वह राजपूत कन्या विष खा कर मर गयी। ईसाइन हर्षपूर्वक औरंगजेब के गले का हार बनी। इतिहास ने इस गणिका के नाम की कीर्ति गा कर अपना नाम सर्थक किया है, पर जिसने धर्म रक्षा के लिये विष पान किया, उसका नाम लिखने में घृणा दिखलाई है। इतिहास का मूल्य यही है।

उदयपुरी जैसी अतुल रूपवती थी, वैसी ही वह शराब पीने वाली भी। दिल्ली के बादशाह मुसलमान होते हुए भी बड़े शराबी थे। उनके वंशवाले भी उनका पदानुसरण करते थे। रङ्गमहल में भी शराब की खूब चहल-पहल रहती थी। इस नरक में भी उदयपुरी का नाम जाहिर करने के लिये तैयार हुआ हूँ।

जेबुन्निसा अकस्मात् उदयपुरी के सोने के कमरे में नहीं जा सकी। क्यों नहीं, भारतेश्वर की प्रियतमा बेगम शराब के नशे में बेहोश थी, कपड़े-लत्ते बिखरे हुए थे, बाँदियों ने आकर फिर ठीक किया। जगा कर उसे होश में लाया और सचेत कर दिया। जेबुन्निसा ने आ कर देखा, कि उदयपुरी के बायें हाथ में सटक है, आँखें अधखुली हैं। ओठों पर मक्खियाँ उड़ रही हैं। वर्षा के झोंके से गिरे हुए फूल की तरह उदयपुरी बिछौने पर पड़ी है।

आ कर जेबुन्निसा कोर्निस कर के बोली, 'माँ, मिजाज तो अच्छा है ?'

उदयपुरी अस्फुट स्वर में लटपटाती जीभ से बोली, 'इतनी रात को क्यों ?'

'एक बड़ी जरूरी खबर है।'

'क्या मरहठा डाकू मर गया ?'

'उससे भी अच्छी खबर है।'

यह कह कर जेबुन्निसा ने खूब बढ़ा-चढ़ा कर और नमक-मिर्च मिला कर चञ्चलकुमारी के तसवीर तोड़ने की बात कह सुनाई ? उदयपुरी ने पूछा, 'यह कौन सी खुशखबरी है ?'

जेबुन्निसा ने कहा, 'भैंसी जैसी बदियाँ हजरत के लिये तम्बकू चढ़ाती हैं, इसे मैं नहीं देख सकती। रूपनगर की वही सुन्दरी राजकुमारी आ कर हजरत के लिये तम्बाकू चढ़ाये गी, बादशाह से यही भिक्षा माँगना।'

उदयपुरी ने कुछ न समझ कर नशे के झोंक में कहा, 'बहुत अच्छा।'

इसके कुछ देर बाद राज के कामों से थक कर बादशाह आराम करने के लिये उदयपुरी के घर में आये। उदयपुरी ने नशे के झोंक में चञ्चल कुमारी की सारी बात जैसा कि जेबुन्निसा से सुना था, बादशाह से कह सुनायी। उनसे यह प्रार्थना की कि वही आकर मेरी तम्बकू चढ़ावे। कहते ही औरंगजेब ने सौगंध खाकर स्वीकार कर लिया। क्यों नहीं, वह क्रोध के मारे चंचल हो रहे थे।

|६|

जोधपुरी बेगम

दूसरे दिन बादशाह का हुक्म जारी हुआ? रूपनगर के छोटे राजा के नाम एक हुक्मनामा भेजा गया। जिस अद्वितीय कुटिलता के डर से जयसिंह व यशवन्त सिंह आदि सेनापति और आजम शाह आदि शाहजादा सदा भयभीत रहते थे—जिस अभेद्य कुटिलता-जाल में फंस कर चतुर शिरोमणि शिवा जी भी दिल्ली में कैद कर लिये गये थे—उस हुक्म में भी वही कुटिलता भरी हुई थी। उसमें यह लिखा था कि बादशाह रूपनगर की राजकुमारी की अपूर्व सुन्दरता को सुन कर मुग्ध हुए हैं और रूपनगर के राव साहब की सज्जनता और राजभक्ति से बहुत प्रसन्न हैं। अतएव बादशाह की इच्छा है कि राजकुमारी का पाणिग्रहण कर उसे राजभक्ति का पुरस्कार दूँ। राजा साहब अपनी कन्या को दिल्ली भेज देने का उद्योग करें। शीघ्र ही शाही फौज वहाँ जा कर कन्या को दिल्ली ले आयेगी।

इस खबर के रूपनगर में पहुँचते ही चारो ओर चहल-पहल मच गयी। रूप नगर में कोई आनन्द की सीमा न रही। योधपुर अम्बर आदि बड़े-बड़े राजपूतगण मुगल बादशाहों को अपनी अपनी कन्या दे कर अपने को भाग्यशाली समझते थे। उसी जगह रूपनगर जैसे साधारण राजा के सौभाग्य का यह शुभ फल बड़ा ही आनन्द का विषय सिद्ध हुआ। बादशाहों के बादशाह—जिसकी बराबरी मनुष्य लोक में कोई नहीं कर सकता, वही दामाद होंगे। चञ्चल कुमारी पृथ्वीश्वरी होगी—इससे बढ़ कर और क्या सौभाग्य का विषय हो सकता है? राजा रानी, कुटुम्बी, रूपनगर की प्रजा आदि सभी आनन्द में मग्न हो गये। रानी ने देव-मन्दिर में पूजा की सामग्री भेज दी। इस सुअवसर पर किन-किन जमींदारों के कौन से गाँव निकालने होंगे, राजा उनकी सूची तैयार करने लगे।

केवल चंचल कुमारी की सखियों को आनन्द नहीं था। वे जानती थीं कि इस सम्बन्ध में मुगलद्वेषिनी चंचल कुमारी को सुख नहीं है।

यह खबर दिल्ली में भी फैली। बादशाही महल में इसका खूब प्रचार हुआ। सुन कर योधपुरी बेगम को बड़ा दुःख हुआ। वह हिन्दू कन्या थी। मुसलमान के घर में भारतेश्वरी हो कर भी उन्हें सुख नहीं था। वह औरङ्गजेब के महल में भी हिन्दू रहन सहन के अनुसार रहती थी। उनकी सेवा-टहल में हिन्दू लौंड़ियाँ रहती थीं। हिन्दू रसोइया के बनाये भोजन के सिवा वह और किसी का बनाया भोजन नहीं करती। इतना ही नहीं, औरङ्गजेब के महल में हिन्दू देवताओं की मूर्त्तियाँ स्थापित कर पूजा करती थी। विख्यात देवद्वेषी औरङ्गजेब इसे सहन कर लेता था। इससे ज्ञात होता है कि उन पर भी उसकी कुछ कृपा थी।

जोधपुरी बेगम ने यह खबर सुनी। बादशाह से मिलने पर विनीत भाव से उन्होंने कहा, 'जहाँपनाह! जिसके हुक्म से हर रोज बड़े-बड़े राजे महाराजे गद्दी से उतार दिये जाते हैं, क्या एक मामूली लड़की उसके क्रोध के योग्य है?'

शाहंशाह हँसे, किन्तु कुछ बोले नहीं। वहाँ कुछ भी नहीं हुआ।

उसके बाद योधपुरी राजकन्या ने मन ही मन कहा, 'हे भगवान! मुझे विधवा कर दो। यह राक्षस यदि और अधिक दिन जीयेगा तो हिन्दू नाम लोप हो जायगा।'

देवी नाम की उनकी एक लौंडी थी। वह योधपुर से उनके साथ आयी थी। देश छोड़े उसको बहुत दिन हो गये थे। वह और अधिक दिन मुसलमानी महल में रहना नहीं चाहती थी। बहुत दिनों से वहाँ से जाना चाहती थी। किन्तु उसे बहुत विश्वासी समझ कर योधपुरी उसे छुट्टी नहीं देती थी। आज उसे एकान्त में ले जा कर योधपुरी ने कहा, 'तुम बहुत दिनों से जाना चाहती थी, आज तुम्हें छोड़ दूँगीं। किन्तु तुम्हें मेरा एक काम करना होगा। काम तो बड़ा कठिन है, बड़ी मेहनत का काम है, बड़े साहस का काम है, और बड़े विश्वास का काम है। उसके लिये जो खर्च पड़ेगा, वह दूँगी और सदा के लिये तुम्हें छुट्टी दे दूँगी। क्या करोगी?'

देवी ने कहा, 'हाँ, क्या हुक्म है?'

जोधपुरी ने कहा, 'रूपनगर की राजकुमारी की तो खबर सुनी है न? उन्हीं के पास जाना होगा। चिट्ठी-पत्री नहीं दूँगी। जो मैं कहती हूँ, उसे मेरा नाम ले कर कहना, और मेरा यह पंजा दिखाना, वह विश्वास कर लेंगी। घोड़े पर चढ़ना तो जानती ही हो। घोड़े पर जाना होगा। घोड़ा मोल लेने का खर्च देती हूँ।'

'क्या कहना होगा?'

'राजकुमारी को कहना होगा कि हिन्दू कन्या होकर वह मुसलमान के घर न आवें। हम लोग आकर नित अपना मरण मना रही हैं। कहना कि तसवीर तोड़ने की बात बादशाह ने सुन ली है। वह आप को सजा देने के लिये ही दिल्ली बुला रहे हैं।

उन्होंने प्रतिज्ञा की है कि [illegible] वालों से उदयपुरी की तम्बाकू चढ़वायेंगे। कहना, विष खा कर मर जाना पर दिल्ली मत आना। और भी कहना कि डर की कोई बात नहीं है। दिल्ली का तख्त डगमगा रहा है, दक्खिन में मरहठे हड्डी तोड़ रहे हैं। राजपूत इकट्ठे हो रहे हैं। जजिया की ज्वाला से समस्त राजपूताना जल रहा है। राजपूताने में गो-हत्या हो रही है! कौन राजपूत इसे सहन कर सकेगा? सब राजे इकट्ठे हो रहे हैं। उदयपुर के राना वीर पुरुष हैं। मुगल-तातारियों में उनकी बराबरी का कोई नहीं है। यदि वे राजपूतों के अगुआ होकर हाथ में हथियार लेंगे—यदि एक ओर से शिवा जी और दूसरी ओर से राजसिंह हथियार ले कर खड़े हो जायेंगे तो दिल्ली का सिंहासन कितने दिन तक टिक सकता है?'

'ऐसी बात मत कहो, माँ! दिल्ली का तख्त तुम्हारे लड़के के लिये है। अपने लड़के के सिंहासन को तोड़ने के लिये आप सलाह दे रही हैं।'

'मैं ऐसा विश्वास नहीं करती कि मेरा लड़का तख्त पर बैठेगा। जितने दिनों तक राक्षसी जेबुन्निसा और डाइन उदयपुरी जीती रहेगी, उतने दिनों तक मुझे ऐसा विश्वास नहीं है। एक बार ऐसा ही विश्वास कर रोशनआरा के हाथ से बड़ी मार खायी थी। आज भी उसका चिह्न मेरे मुँह और आँखों पर मौजूद हैं।'

यह कह कर जोधपुरी रो उठी। उसके बाद कहा, 'उस बात से कुछ मतलब नहीं है। तुम मेरे सब मतलब को न समझ सकोगी। और तुम्हारे समझने से ही क्या होगा? जो मैं कहती हूँ, वही करो। राजकुमारी को राजसिंह की शरण लेने के लिये कहना। राजसिंह राजकुमारी को कभी विमुख नहीं करेंगे। कहना, मैं आशीर्वाद देती हूँ कि वे रानी की रानी बनें। रानी होने पर वह प्रतिज्ञा करें कि उदयपुरी उनका तम्बाकू चढ़ावेगी—जेबुन्निसा उन्हें पङ्खा झलेगी।'

'यह क्या कहती हो, माँ!'

'इस बात का तुम कुछ सोच विचार मत करो। बोलो, जो कुछ मैंने कहा है उसे कर सकती हो या नहीं?'

'मैं सब कर सकती हूँ।'

उसके बाद बेगम ने देवी को खर्च के लिए कुछ रुपये-पैसे तथा इनाम और पंजा दे कर विदा किया।

| ७ |

खुदा ने शाहजादी क्यों बनाया ?

फिर जेबुन्निसा के ऐश-महल में मुबारक पहुँचा। इस बार मुबारक गलीचे के ऊपर घुटने टेक, हाथ जोड़ कर, ऊपर सिर उठाये बैठा था। जेबुन्निसा रत्नों से जड़े पलंग पर मोती मूंगा की झालरें लगे हुए तकिये के सहारे लेट कर सोने की गुड़गुड़ी पर तम्बाकू पी रही थी। पश्चिम देश के महात्माओं की कृपा से उस समय भारतवर्ष में तम्बाकू आ गयी थी।

जेबुन्निसा कह रही थी, 'सब ठीक ठीक कहोगे न ?'

हाथ जोड़ कर मुबारक ने कहा, 'जो पूछियेगा, सब कहूँगा।'

'क्या तुमने दरिया के शादी की हैं ?'

'जब मैं अपने मुल्क में था तब शादी की थी।'

'इसीलिये मुझ पर मिहरबानी दिखा कर तुमने मेरे साथ निकाह करने की इच्छा की थी ?'

'बहुत दिन हुए मैंने उसे तलाक दे कर छोड़ दिया है।'

'क्यों छोड़ दिया है ?'

'वह पगली है। यह आप जरूर जानती होंगी।'

'मुझे तो वह कभी पगली नहीं जान पड़ी।'

'वह अपना मतलब पूरा करने के लिये हुजूर में हाजिर होती है। काम के वक्त वह कभी पगली नहीं दिखाई देती। लेकिन काम के बाद वह सदा पगली रहती है। आप किसी रोज उसे यों ही बुला कर देखियेगा।'

'क्या तुम उसे भेज सकते हो ? उससे कहना कि मुझे कुछ अच्छे सुरमे की जरूरत है।'

'मैं कल सबेरे यहाँ से कुछ दिनों के लिये एक दूर देश में जाऊँगा।'

'दूर देश जाओ गे ? यह तो तुमने मुझसे नहीं बताया ?'

'आज ही कहने की इच्छा थी।'

'कहाँ जाओगे ?'

'राजपूताना में रूपनगर नाम का एक किला है। वहाँ के राव साहब की लड़की को बेगम बनाने की शाहनशाह की इच्छा है। कल उसको लाने के लिये फौज जायेगी। मुझे फौज के साथ जाना होगा।'

'उसके बारे में मुझे कुछ कहना है, पर पहले मेरी एक बात का जवाब दे लो। क्या तुम गणेश ज्योतिषी के यहाँ अपनी किस्मत दिखाने गये थे ?'

'गया था।'

'क्यों गये थे ?'

'सभी जाते हैं, इसीलिए गया था। इसके लिये यही वाजिब जवाब है। लेकिन इसके सिवा और भी कारण था। दरिया मुझे वहाँ जबर्दस्ती ले गयी थी।'

'हूँ।'

कह कर जेबुन्निसा कुछ देर तक फूलों से खेलती रही। उसके बाद बोली, 'तुम गये क्यों ?'

मुबारक ने सारी बात ज्यों की त्यों बता दी। सुन कर जेबुन्निसा ने पूछा, 'क्या ज्योतिषी ने तुम से कहा था कि शाहजादी से शादी करो, उससे तुम्हारी तरक्की होगी ?'

'हिन्दू शाहजादी नहीं कहते। ज्योतिषी ने राजपुत्री से शादी करने के लिए कहा था।'

'शाहजादी क्या राजपुत्री नहीं होती ?'

'होती क्यों नहीं।'

'तो क्या इसीलिए उस दिन शादी करने की अपनी इच्छा जाहिर की थी ?'

'मैंने केवल धर्म समझ कर ही वह बात कही थी। आपको याद होगा कि अपनी किस्मत दिखाने के पहले से ही मैं यह बात कहता था।'

'क्या ? मुझे तो ऐसी कोई बात याद नहीं है। उसे जाने दो, उस बात से अब कोई मतलब नहीं। तुमसे मैंने इतनी बातें पूछी, इसलिए तुम गुस्सा मत करना। तुम्हारे गुस्सा करने से मुझे बड़ा दुःख होगा। तुम मेरे प्राणधिक हो। जब तक मैं तुम्हें देखती हूँ तब तक मैं सुखी रहती हूँ। तुम पलंग पर आ कर बैठो—मैं तुम्हें इत्र लगाऊँगी।'

उसके बाद जेबुन्निसा मुबारक को पलङ्ग पर बिठा कर अपने हाथ से इत्र लगाने लगी। फिर बोली, 'अब वही रूपनगर वाली बात कहूँगी। जानती नहीं कि रूपनगर वाली का पिता उसे छोड़ देगा या नहीं। अगर न छोड़े तो उसे जबर्दस्ती ले आना।'

मुबारक ने कहा, 'पर बादशाह ने तो हमें ऐसा हुक्म नहीं दिया है ?'

'मुझे ही यहाँ बादशाह मान लो। यदि बादशाह को ऐसा मतलब न हो तो फौज क्यो भेजी जाती ?'

'रास्ते में शायद कोई आफत आ जाय, इसलिये।'

'आलमगीर बादशाह की फौज जिस काम के लिये जायगी उस काम में उसे कामयाबी ही होगी। जिस तरह हो सके तुम रूपनगर वाली को ले आना! अगर इससे बादशाह नाखुश होंगे, तो मैं देख लूंगी।'

'मेरे हक में तो वही हुक्म ठीक है। तो भी यह न जान कर कि आपका ऐसा इरादा क्यों है, मेरी बाहों में दूनी ताकत आ जायगी।'

जेबुन्निसा ने कहा, 'मैं वही बात कहना चाहती थी। मेरी ही चालाकी से रूपनगरवाली को तलब किया गया है।'

'आपका क्या मतलब है ?'

'मतलब यही है कि उदयपुरी की खूबसूरती की तारीफ अब सही नहीं जाती। सुना है, रूपनगर वाली इससे भी बढ़ कर खूबसूरत है। यदि सचमुच वह ऐसी हो तो उदयपुरी के बदले वही बादशाह पर अपनी हुकूमत चलायेगी। रूपनगर वाली यह जान कर कि मैंने ही उसे बुलाया है मेरे वश में रहा करेगी। ऐसा होने पर मेरे एकाधिपत्य में जो एक काँटा है वह दूर हो जायगा। अच्छा है कि तुम जा रहे हो। मगर देखना कि वह उदयपुरी से ज्यादा खूबसूरत है—'

'मैंने हजरत बेगम साहबा को कभी देखा ही नहीं है।'

'अगर देखना चाहो तो मैं दिखा सकती हूँ। इस पर्दे के अन्दर छिपना होगा।'

'छिः !'

जेबुन्निसा हँस पड़ी। बोली, 'दिल्ली में तुम्हारे जैसे कितने बन्दर हैं ? अच्छा, इसे जाने दो, जो मैं कहती हूँ सुनो। उदयपुरी को मत देखो, उसकी तसवीर को दिखाती हूँ। लेकिन रूपनगर वाली को जरूर देखना। अगर उसे उदयपुरी से ज्यादा खूबसूरत देखना तो बतलाना कि किसकी मिहरबानी से वह बादशाह की बेगम बन रही है। और अगर देखना कि देखने में उतनी अच्छी नहीं है तो—'

जेबुन्निसा कुछ देर तक सोचती रही—मुबारक ने पूछा, 'अगर देखने में वह अच्छी न दीख पड़े तो क्या करूँगा ?'

'तुम शादी के लिये बड़े ख्वाहिशमन्द हो, उससे तुम अपनी शादी कर लेना, मैं वही करूँगी जिससे बादशाह भी इसमें अपनी राय दे देंगे।'

'क्या मुझ नाचीज को आप बिल्कुल प्यार नहीं करतीं ?'

'शाहजादी और प्यार ?'

'तो अल्लाह ने शाहजादियों को किस लिये बनाया है ?'

'आराम करने के लिये। प्यार और मुहब्बत में दुःख ही दुःख है।'

मुबारक को सुनने की इच्छा नहीं हुई। बात फेर कर कहा, 'जो बादशाह की बेगम होंगी, मैं उन्हें किस तरह देखूँगा।'

'किसी तरकीब से।'

'सुन कर बादशाह क्या कहेंगे ?'

'उसकी जवाबदेही मेरे ऊपर है।'

'आपने जो कहा है, वही करूँगा। लेकिन इस गरीब को प्यार करना होगा।'

'मैंने तो कह दिया कि तुम मेरी जान से भी ज्यादा प्यारे हो।'

'क्या मुहब्बत से कहा था ?'

'मैंने कह दिया कि मुहब्बत गरीब दुखियों का दुःख है। मैं उस दुख को सह नहीं सकती।'

मर्माहत हो कर मुबारक वहाँ से विदा हो गया।

तीसरा भाग

विवाह-विकल्प

|१|

बक और हंसी की कथा

निर्मल धीरे-धीरे जाकर राजकुमारी के पास बैठी। उसने देखा कि राजकुमारी अकेली बैठी रो रही है। उस दिन जो चित्र खरीदे गये थे, उनमें से एक को राजकुमारी के हाथ में देखा। निर्मल को देख कर राजकुमारी ने चित्र को उलट कर रख दिया। निर्मल समझ गयी कि वह किसका चित्र था। निर्मल राजकुमारी के और पास बैठ कर बोली, 'अब क्या उपाय है?'

'उपाय जो हो—पर मैं कभी भी मुगलों की दासी नहीं हो सकती।'

'मैं यह जानती हूँ कि तुम्हारी बिलकुल राय नहीं हैं, राजा आलमगीर बादशाह की आज्ञा किस प्रकार टालेंगे? सखि! अब कोई दूसरा उपाय नहीं है, इसलिए उसे स्वीकार करना ही पड़ेगा, और स्वीकार कर लेना तो सौभाग्य की बात है। जोधपुर अम्बर, राजा, बादशाह, उमराव, नवाब, सूबा जिसे देखो, पृथ्वी पर जितने बड़े-बड़े आदमी हैं सब की कन्याएँ क्या दिल्ली के तख्त पर बैठने की इच्छा नहीं करती हैं? पृथ्वीश्वरी बनने में तुम्हें इनकार क्यों है?'

क्रोधित हो कर चञ्चल ने कहा, 'तुम यहाँ से चली जाओ।'

निर्मल ने देखा कि उस ओर कुछ मतलब नहीं निकलना है। तब वह और रास्ता खोजने लगी, जिससे राजकुमारी का कुछ उपकार हो सके। वह बोली, 'लो मैं चली जाती हूँ। परन्तु मैं जिसका नमक खाती हूँ मुझे उसकी भलाई करनी ही होगी। यदि तुम दिल्ली नहीं जाओगी तो तुम्हारे बाप की क्या दशा होगी? इसे भी एक बार सोचा है?'

'सोच लिया है। यदि मैं दिल्ली नहीं जाऊँगी तो मेरे बाप के धड़ पर सिर न रहेगा। रूपनगर के किले का एक भी पत्थर न बचेगा। मैंने सोच लिया है—मैं पितृ-हत्या नहीं करूँगी।। बादशाह की फौज आते ही मैं उसके साथ दिल्ली चली जाऊँगी। मैंने यह निश्चय कर लिया है।'

निर्मल प्रसन्न हो गई। बोली, 'मैं भी तो यही राय दे रही थी।'

राजकुमारी ने फिर भौंहें टेढ़ी कीं। कहा, 'क्या तुमने यह समझ रखा है कि मैं दिल्ली जा कर मुसलमान बन्दरों के बिछौने पर सोऊँगी ? क्या हंसिनी बगुली की सेवा कर सकती है ?' निर्मल ने कुछ न समझ कर पूछा, 'तब क्या करोगी ?'

चंचल कुमारी ने अपने हाथ की एक अंगूठी निर्मल को दिखायी और कहा, 'दिल्ली के रास्ते में विष खा लूँगी।' निर्मल जानती थी, उस अंगूठी में विष था।

निर्मल ने कहा, 'और कोई उपाय नहीं हैं ?'

चंचल बोली, 'सखि, और उपाय क्या है ? संसार में ऐसा कौन वीर है जो मेरा उद्धार करके दिल्ली बादशाह से शत्रुता मोल लेगा ? राजपूताने के सभी कुलाङ्गार मुगलों के गुलाम हैं। अब न वह संग्राम हैं न वह प्रताप।'

'क्या कहती हो राजकुमारी ! यदि संग्राम अथवा प्रताप आज जीवित होते तो वे ही क्यों तुम्हारे लिये सर्वस्व न्योछावर कर दिल्ली के बादशाह से विवाद करते ? दूसरे के लिये कोई सहज हो सर्वस्व अर्पण नहीं कर देता। प्रताप नहीं, संग्राम नहीं—राजसिंह तो हैं—पर राजसिंह तुम्हारे लिये क्यों अपना सर्वस्व समर्पण कर देंगे। और तुम तो मारवाड़ घराने की हो।'

'यह क्या ? भुजाओं में बल रहते हुए कौन राजपूत शरणागत की रक्षा नहीं करता ? मैं यही सोच रही थी, निर्मल। मैं इस विषय में उन्हीं संग्राम और प्रताप सिंह के वंश-तिलक की शरण लूँगी। क्या वे मेरी रक्षा नहीं करेंगे ?'

कहते-कहते चंचल कुमारी ने उलटे हुए चित्र को सीधा कर दिया। निर्मल ने देखा कि वह राजसिंह का चित्र था। चित्र को देख कर राजकुमारी कहने लगी, 'देखो सखि ! राजक्रांति को देख कर क्या तुम विश्वास नहीं करती कि ये अगति की गति—अनाथों के रक्षक हैं। यदि मैं इनकी शरण लूँ तो क्या वे मेरी रक्षा न करेंगे ?'

निर्मल कुमारी बड़ी स्थिर बुद्धि वाली थी। चंचल उसे अपनी बहन से भी अधिक प्यार करती थी। निर्मल वहुत देर तक सोचती रही। अन्त में चंचल की ओर एकटक आँखें किये पूछा, 'राजकुमारी, जो वीर इस विपद से तुम्हारी रक्षा करेगा; उसे तुम क्या दोगी ?'

राजकुमारी समझ गयी। कातर हो कर कहा, 'क्या दूँगी सखी ! मेरे पास क्या है ? मैं तो अबला हूँ।'

'तुम्हारे लिये तुम्हीं हो।'

कुछ लजा कर चंचल ने कहा, 'दूर हट !'

'राजाओं के घर में तो ऐसा होता ही है। यदि तुम रुक्मिणी हो सको तो यदुपति आकर अवश्य तुम्हारा उद्धार करेंगे।'

चंचल कुमारी ने सिर झुका लिया। जिस प्रकार सूर्योदय के समय मेघमालाओं के ऊपर प्रकाश की तरंगों पर और भी चमकीली तरंगें आ-आकर क्षण-क्षण नूतन सौंदर्य की सृष्टि करती हैं, उसी प्रकार चंचल कुमारी के मुख पर, सुख, लज्जा, सुन्दरता का भाव भासित होने लगा। बोली, 'मेरा ऐसा कहाँ सौभाग्य है कि वे मुझे मिलेंगे। यदि मैं अपने को बेचना चाहूँगी तो क्या वे मुझे खरीदेंगे।'

'इसका विचार करने वाले वही हैं—हम नहीं। मैंने सुना है कि राजसिंह की बाँह में बल है। क्या उनके पास कोई दूत नहीं भेजा जा सकता ? क्या गुप्त रूप से ताकि कोई जान न सके उनके पास कोई दूत नहीं भेजा जा सकता ?'

कुछ सोच कर चंचल बोली, 'तुम मेरे गुरुदेव को बुला लाओ। उनके समान कौन मुझसे अधिक प्रेम करता है। लेकिन उनसे सब बात बतला कर मेरे पास लाना। मुझे सब बात कहने में लज्जा मालूम होगी।'

इसी समय सखियाँ यह खबर ले आयीं कि एक मोती बेचने वाली आयी है। राजकुमारी ने कहा, 'इस समय मुझे मोती खरीदने की फुरसत नहीं हैं। उसे लौटा दो।'

सखियों ने कहा, 'हमने उसे बहुतेरा लौटाया, पर वह किसी तरह भी नहीं जाती। जान पड़ता है वह किसी विशेष मतलब से आयी है।'

तब अन्त में चंचल कुमारी ने उसे बुला भेजा।

मोती वाली ने आ कर कितने झूठे मोती दिखाये। विरक्त हो कर राजकुमारी ने कहा, 'यही झूठे मोती दिखाने के लिये तुम इतना जिद्द कर रहीं थी ?'

मोती वाली ने कहा, 'ना, मेरे पास दिखाने के लिये और भी चीजें हैं। मगर मैं उसे आप को अकेले में ही दिखाऊँ गी !'

चंचल कुमारी ने कहा; 'मैं अकेले में तुमसे बातें नहीं कर सकती। एक सखी मेरे साथ जरूर रहेगी। निर्मल रह जाय और सब चली जाओ।'

उसके बाद सब बाहर चली गयीं। देवी ने—वह मोती वाली देवी के सिवा और कोई नहीं थी—जोधपुरी बेगम का पंजा दिखलाया। देख कर और पढ़ कर चंचल कुमारी ने पूछा, 'यह पंजा तुम्हें कहाँ मिला ?'

'जोधपुरी बेगम ने दिया है।'

'तुम उनकी कौन हो ?'

'मैं उनकी बाँदी हूँ।'

'तुम यह पंजा ले कर यहाँ क्यों आयी हो ?'

तब देवी ने सब बात समझा कर कह सुनायी। निर्मल और चंचल एक दूसरे का मुँह देखने लगीं।

चंचल ने देवी को इनाम देकर विदा कर दिया। जाते समय देवी जोधपुरी का पंजा अपने साथ न ले गयी, जान बूझ कर उसने वहीं छोड़ दिया। मन में सोचा, कहीं फेंक दूँगी तो किसी के हाथ लग जायगा। यही सोच कर वह पंजे को चंचल कुमारी के पास छोड़ गयी, उसके चले जाने पर चंचल कुमारी ने कहा, 'निर्मल, उसे बुलाओ। वह पंजा यहीं छोड़ गयी है।'

'भूल से नहीं छोड़ गयी है—जान पड़ता है वह जान बूझ कर रख गयी है।'

'मैं उसे लेकर क्या करूँगी ?'

'अभी इसे रखो, कभी न कभी इसे तुम जोधपुरी को लौटा सको गी।'

'कुछ भी हो, पर बेगम की बात से मेरा साहस और भी बढ़ गया। हम दोनों बालिकाएं आपस में क्या सलाह करती थीं, वह अच्छी है या बुरी, इसे हम लोग नहीं सोच सकती थीं। अब साहस हो गया। राजसिंह की शरण लेना ही हितकर है।'

'मैं तो इसे बहुत पहले से जानती थी।' यह कह कर निर्मल हँस पड़ी। चंचल भी सिर नीचा करके हँसी।

निर्मल उठ कर चली, पर उसके मन में कुछ भी भरोसा नहीं हुआ। वह रोते रोते चली गयी।

|२|

अनन्त मिश्र

अनन्त मिश्र चंचल कुमारी के पितृकुल के पुरोहित थे। वे चंचल कुमारी को अपनी कन्या की तरह प्यार करते थे। वे महामहोपाध्याय पण्डित थे। सब उन्हें आदर और भक्ति की दृष्टि से देखते थे। चंचल कुमारी के नाम का बुलावा सुन कर वे अन्तःपुर में आये। कुल पुरोहित के लिये कहीं रोक-टोक नहीं रहती। रास्ते में ही निर्मल ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया और सारी बात समझा कर छोड़ दिया।

चौड़े ललाट पर विभूति चन्दन लगाये, दीर्घकाय, गले में रुद्राक्ष की माला डाले, प्रसन्न वदन वह ब्राह्मण देव चंचल कुमारी के पास आकर खड़े हुए। निर्मल ने देखा था कि चंचल रो रही थी, पर चंचल कुमारी और किसी के सामने रोने वाली बालिका नहीं

थी। गुरुदेव ने देखा कि चंचल चुपचाप बैठी है। बोले, 'बेटी लक्ष्मी, मुझे किसलिये बुलाया है ?'

'अपनी रक्षा के लिये—और कोई मेरी रक्षा करने वाला नहीं।'

हँस कर अनन्त मिश्र बोले, 'समझ गया, रुक्मिणी के ब्याह में बूढ़े पुरोहित को द्वारका जाना होगा। अच्छा; देखो तो बेटी, लक्ष्मी के भाण्डार में कुछ है या नहीं ? राह खर्च मिलने से मैं उदयपुर की यात्रा करूँगा।'

चंचल ने उन्हें एक ज़री की थैली दी। उसमें अशर्फियाँ भरी थीं। पुरोहित महाराज ने पाँच अशर्फियाँ लेकर बाकी को लौटा दिया और कहा, 'रास्ते में अन्न खाना होगा-अशर्फी नहीं खा सकता। एक बात कहता हूँ, उसे कर सकोगी ?'

चंचल ने कहा, 'मुझे यदि आग में कूदने के लिये भी कहेंगे तो मैं अपनी रक्षा के लिये वह भी कर सकती हूँ। कहिये, क्या आज्ञा देते हैं ?'

'राणा राजसिंह के नाम एक पत्र लिख कर दे सकती हो ?'

कुछ सोच कर चंचल ने कहा, 'मैं बालिका हूँ, महल में रहने वाली हूँ, मुझसे उनकी कोई जान-पहचान नहीं—मैं किस प्रकार उनको पत्र लिखूँ ? किन्तु मैं जो उनसे भिक्षा माँगती हूँ, उसमें लज्जा करने की कोई बात नहीं। मैं पत्र लिखूँगी।'

'मैं लिख कर दूँ या आप ही लिखोगी ?'

'आप केवल बतला दें।'

निर्मल वहाँ आकर खड़ी थी। उसने कहा, 'यह नहीं हो सकता। यह बाभन की बुद्धि का काम नहीं है। यह लड़कियों की बुद्धि का काम है। हम पत्र लिखेंगी! आप तैयार हो कर आइये।'

मिश्र महाराज चले गये, पर घर नहीं गये। राजा विक्रमसिंह के पास जा कर दर्शन दिया। बोले, 'मैं देश-भ्रमण करने जा रहा हूँ, महाराज को आशीर्वाद देने आया हूँ।'

'किसलिये, कहाँ जायेंगे,' यह जानने के लिये राजा ने इच्छा प्रगट की। किन्तु ब्राह्मण देव ने कुछ बतलाया नहीं। तो भी उन्होंने स्वीकार किया कि वे उदयपुर तक जायेंगे और राणा से परिचित होने के लिये एक चिट्ठी लिख देने की प्रार्थना की। राजा ने पत्र लिख दिया।

अनन्त मिश्र राजा से पत्र लेकर फिर चंचल कुमारी के पास चले गये। उतनी देर में चंचल और निर्मल ने अपनी बुद्धि से एक पत्र लिख रखा था। पत्र लिख चुकने पर राजकुमारी ने एक डिबिया से एक सुन्दर मोती का कंकण निकाल कर ब्राह्मण के हाथ में दिया और कहा, 'जब राजा मेरे पत्र को पढ़ लें तब मेरे प्रतिनिधि स्वरूप आप इस राखी को उनके हाथ में बाँध दीजियेगा। राजपूतों के जो मुकुट-मणि हैं वे राजपूत कन्या की भेजी हुई राखी को कभी अस्वीकार नहीं करेंगे।'

मिश्र महाराज ने स्वीकार कर लिया। राजकुमारी ने उन्हें प्रणाम कर विदा किया।

|३|

मिश्रजी का नारायण-स्मरण

पहनने के कपड़े-लत्ते, छाता, डण्डा, चंदन की लकड़ी आदि नितांत प्रयोजनीय वस्तुओं एवं अपने एकमात्र नौकर को साथ ले कर अनंत मिश्र ने अपनी गृहिणी से विदा ले कर उदयपुर की ओर प्रस्थान किया। स्त्री ने बहुत हठ करके पूछा, 'क्यों जा रहे हो?'

मिश्र महाशय ने कहा, 'राजा के यहाँ कुछ वृत्ति मिलेगी।'

स्त्री उसी समय शांत हो गयी। विरह-यंत्रणा अब उसे अधिक न जला सकी। अर्थलाभ की आशा रूपी जल-धारा से प्रचण्ड विरहाग्नि शांत हो गयी। मिश्र महाशय ने अपने नौकर के ही साथ यात्रा की। उनकी यदि इच्छा होती तो वे अपने साथ बहुत आदमी ले जा सकते थे, पर अधिक आदमी साथ लेने से बात फैल जाती, इसलिये नहीं लिया।

रास्ता बड़ा दुर्गम था—विशेषकर पहाड़ी रास्ता तो एकदम सुनसान था, कहीं विश्राम करने की भी जगह नहीं थी। एकाहारी ब्राह्मण को जिस दिन जहाँ आश्रय मिलता, उस दिन रात को वह वहीं आतिथ्य स्वीकार कर लेते। दिन में रास्ता चलते। रास्ते में कुछ डाकुओं का भय था। ब्राह्मण के पास रत्न-कंकण था, इसलिये वह कभी अकेले नहीं चलते थे। साथी मिलने पर ही चलते थे। साथियों से सङ्ग छूटने पर आश्रय की तलाश करते। एक दिन एक मन्दिर में आतिथ्य स्वीकार किया। दूसरे दिन प्रातःकाल चलते समय उन्हें साथी नहीं तलाश करने पड़े। चार बनिये मंदिर की अतिथिशाला में रात को सोये थे। सबेरे उठ कर वे भी पहाड़ी रास्ते से चले। ब्राह्मण को देख कर उन्होंने पूछा, 'तुम कहाँ जाओगे?'

ब्राह्मण ने कहा, 'मैं उदयपुर जाऊँगा।'

बनिये ने कहा, 'हम भी उदयपुर जायेंगे। अच्छा हुआ, चलो एक ही साथ चलेंगे।'

आनंदित हो कर ब्राह्मणदेव उनके साथ हो लिये। पूछा, 'उदयपुर कितनी दूर है?'

बनिये ने कहा, 'करीब ही है, आज शाम तक उदयपुर पहुँच जायेंगे। यह सब जगह राणा के ही राज्य में है।'

इसी तरह बातचीत करते वे चले जा रहे थे। पहाड़ी रास्ता बड़ा दुर्गम एवं सुनसान था। दुर्गम रास्ता प्रायः शेष हो आया था, अब समतल भूमि में चलना था। यात्रियों ने एक अत्यन्त मनोरम घाटी में प्रवेश किया। उनके दोनों ओर बहुत कम ऊँचे दो पर्वत थे। उन पर हरे-हरे वृक्षादि अकाश को छू रहे थे। दोनों के बीच कलकल शब्द करने वाली छोटी नदी अपने नील काँच जैसे जल से किनारे के पत्थरों को धोती हुई बनारस की ओर बह रही थी। नदी के किनारे-किनारे आदमियों के चलने से पगडण्डी बन गयी थी। वहाँ उतरने पर किसी ओर से भी कोई यात्री को देख नहीं सकता था। केवल दोनों पर्वतों के ऊपर से ही कोई देख सकता था। उस सुनसान स्थान में आ कर एक बनिये ने ब्राह्मण से पूछा, 'तुम्हारे पास क्या रुपये पैसे हैं?'

प्रश्न सुनते ही ब्राह्मण देव चौंके और डर गये। उन्होंने मन में सोचा जान पड़ता है यहाँ डाकुओं का विशेष भय है। इसी से सावधान होने के लिये ही शायद बनिये पूछ रहे हैं। दुर्बलता अवलम्बन झूठ बोलना है। ब्राह्मण ने कहा, 'मैं भिक्षक हूँ, मेरे पास क्या रखा है?'

बनिये ने कहा, 'जो कुछ भी हो, उसे मुझे दे दो। नहीं तो तुम उसे अपने पास रख नहीं सकते।'

ब्राह्मण देव इधर-उधर करने लगे। एक बार मन में सोचा रत्न-कंकण को बचाने के लिए क्यों न बनियों को ही दे दूँ, फिर सोचा, ये मेरी जान पहचान के नहीं हैं, इनका क्या विश्वास? यह सोच कर ब्राह्मण ने पहले की तरह कहा, 'मैं भिक्षक हूँ, मेरे पास रखा ही क्या है?'

विपत्ति काल में जो आगा-पीछा करता है, वही मरता है। ब्राह्मण को आगा-पीछा करते देख छद्मवेशी बनियों ने समझा कि अवश्य ब्राह्मण के पास कुछ विशेष वस्तु है। उसी क्षण एक आदमी ने ब्राह्मण की गर्दन पकड़ कर उन्हें जमीन पर गिरा दिया और उसकी छाती पर घुटने टेक कर बैठ गया। उसने हाथ से उनका मुँह बन्द कर दिया। मिश्र महाराज का नौकर न जाने किस ओर भाग गया, किसी ने उसे देखा नहीं। ब्राह्मण देव बोल न सकने के कारण मन में ही नारायण का नाम स्मरण करने लगे। एक आदमी ने उनकी गठरी निकाली और उसे खोल कर देखने लगा। उसमें चंचल कुमारी का भेजा कंकण, दो पत्र और अशर्फियाँ मिलीं। डाकू ने उन्हें लेकर अपने साथियों से कहा, 'ब्रह्महत्या करने का कोई काम नहीं। जो कुछ उसके पास था, सब मिल गया। अब उसे छोड़ दो।'

एक डाकू ने कहा, 'छोड़ना न होगा। ऐसा करने से यह ब्राह्मण बड़ी गड़बड़

मचा देगा । आजकल राणा राजसिंह की बड़ी चलती है । उनके शासन में हम जैसे वीर पुरुष अब अन्न पैदा कर के नहीं खा सकते । इसे एक पेड़ से बाँध दो ।'

यह कह कर डाकुओं ने मिश्र महाराज के हाथ, पाँव और मुँह उनके ही कपड़ों से कस कर बाँध दिये और उन्हें पर्वत के नीचे एक छोटे से पेड़ के तने से बाँध दिया । उसके बाद चंचल कुमारी के दिये हुए कंकण और पत्र आदि को ले उस छोटी नदी के किनारे वाले रास्ते से जा कर वे पहाड़ में छिप गये । उसी समय पर्वत के ऊपर खड़े होकर एक घुड़सवार ने उन्हें देखा । डाकुओं ने घुड़सवारों को देखा नहीं, वे भागने में व्यस्त थे ।

अत्यन्त दुर्गम और आदमियों से सुनसान रास्ते से वे जा रहे थे । इस तरह कुछ दूर जा वे एक गुफा में घुसे । गुफा के भीतर खाने-पीने के सामान, चारपाई, भोजन बनाने के सब बर्तन आदि रखे थे । देखने से जान पड़ता था कि डाकू छिप कर कभी-कभी उस गुफा में रहते थे । यहाँ तक कि पानी से भरे घड़े भी वहाँ थे । डाकू वहाँ जाकर तम्बाकू चढ़ा, पीने लगे । एक आदमी ने कहा, 'मानिकलाल, रसोइ पीछे होगी, पहले माला का क्या होगा, इसी को आओ सोच लें ।'

मानिकलाल ने कहा, 'माल की ही बात पहले हो ले ।'

उसके बाद अशर्फियों को निकाल कर चार भागों में बाँटा गया । एक आदमी ने एक-एक भाग लिया । बिना बेचे कंकण का बँटवारा नहीं हो सका । इसलिए वह न बाँटा गया । दोनों पत्र को क्या किया जायगा, इसका विचार होने लगा । दलपति ने कहा, 'कागज का क्या होगा उसे जला कर फेंक दो ।'

यह कह कर उसने दोनों पत्रों को मानिकलाल को अग्नि देव को समर्पण करने के लिये दिया ।

मानिकलाल कुछ लिखना पढ़ना जानता था । दोनों पत्रों को पढ़कर वह बड़ा आनन्दित हुआ । कहा, 'ये पत्र जलाये नहीं जायेंगे । इनसे रुपये कमाये जायेंगे ।'

'क्या ? क्या ?' कह कर बाकी तीन आदमी हल्ला मचाने लगे । उसके बाद मानिकलाल ने चंचल कुमारी के पत्र का वृत्तान्त विस्तार पूर्वक उन्हें सुनाया । सुन कर डाकू बड़े आनन्दित हुए ।

मानिकलाल ने कहा, 'इस पत्र को राणा को देने से कुछ इनाम मिलेगा ।'

दलपति ने कहा, 'मूर्ख ! जब राणा पूछेंगे कि यह पत्र कहाँ मिले, तब क्या जवाब दोगे ? तब क्या तुम कहो गे कि हमने राहजनी करके इन्हें लिया है । तब राणा के यहाँ से इनाम के बदले प्राण-दण्ड मिलेगा । यह नहीं होगा । इस पत्र को ले जा कर बादशाह को दूँगा । बादशाह को ऐसी खबर देने से बहुत इनाम मिलेगा, मैं जानता हूँ । और इससे—'

दलपति की बात खत्म नहीं हुई थी। मुँह की बात मुँह में ही थी कि उसका सिर गर्दन से अलग हो कर जमीन पर जा गिरा।

|४|

मानिकलाल

घुड़सवार ने पर्वत के ऊपर से देखा कि चार आदमी एक आदमी को बाँध कर चले गये। आगे क्या हुआ था उसने उसे नहीं देखा था। तब तक वहाँ पहुँचा ही नहीं था। घुड़सवार चुपचाप यह देखने लगा कि वे किस रास्ते से जाते हैं। जिस समय वे नदी के किनारे से लौट कर पहाड़ में लोप हो गये, उस समय वह घुड़सवार घोड़े से उतर गया। उसके बाद घोड़े के बदन पर हाथ से थपकी लगा कर कहा—'विजय यहीं खड़े रहना, मैं आता हूँ, बोलना मत।' घोड़ा वहीं खड़ा रहा। घुड़सवार बहुत जल्दी-जल्दी पहाड़ के नीचे उतरा। पहाड़ बहुत ऊँचा नहीं था।

घुड़सवार ने मिश्र महाराज के पास जा कर उन्हें बन्धन से छुड़ा दिया। बन्धन खोल कर पूछा, 'क्या हुआ है, थोड़े में बतलाइये।' मिश्र महाराज ने कहा, 'चार आदमियों के साथ मैं आ रहा था। उनसे मेरी कोई जान-पहचान नहीं है, केवल रास्ते में बातचीत हुई है। वह कहते थे कि हम बनियाँ हैं। यहाँ आ कर वे मेरे पास जो कुछ था, ले कर भाग गये।'

प्रश्नकर्त्ता ने पूछा, 'क्या-क्या ले गये हैं ?'

ब्राह्मण ने कहा, 'एक मोतियों का कंकण, कुछ अशर्फियाँ और दो पत्र।'

प्रश्नकर्त्ता ने कहा, 'आप यहीं रहिए, तब तक मैं देख कर आता हूँ कि वे किस ओर गये हैं।'

ब्राह्मण ने कहा, 'आप जायेंगे जिस प्रकार ? वे चार आदमी हैं, आप अकेले हैं।'

आगन्तुक ने कहा, 'देखते नहीं, मैं राजपूत सैनिक हूँ।'

अनन्त मिश्र ने देखा कि वह आदमी सचमुच लड़ाकू है। उसकी कमर में तलवार और पिस्तौल तथा हाथ में ढाल थी। डर के मारे मिश्र जी ने और कुछ नहीं कहा।

राजपूत ने डाकुओं को जिस रास्ते से जाते हुए देखा था, वह उसी रास्ते से

बड़ी सावधानी से उनका पीछा करने लगा। परन्तु जङ्गल में घुसने पर उसे आगे रास्ता नहीं मिला, न डाकू ही दिखायी दिये।

तब राजपूत फिर पर्वत की चोटी पर चढ़ने लगा। कुछ देर इधर-उधर देखने पर देखा कि बन के भीतर छिप कर चार आदमी जा रहे हैं। कुछ देर तक वहीं खड़े हो कर वह देखने लगा कि वे कहाँ जाते हैं। देखा कि वे कुछ देर बाद पहाड़ के नीचे गये, उसके बाद फिर दिखायी नहीं दिये। तब उस राजपूत ने निश्चित किया कि या तो वे उसी जगह बैठ कर विश्राम कर रहे हैं या पेड़ों की छाया से दिखाई नहीं देते, नहीं तो इस पहाड़ के नीचे गुफा है, उसी में वे घुसे हैं।

राजपूत ने वृक्षों आदि के चिह्न से उस जगह तक पहुँचने का रास्ता ठीक कर लिया। उसके बाद वह नीचे उतर बन में घुस कर उन चिन्हों को देखते हुए चला। इस प्रकार उस स्थान पर देखा कि पहाड़ के नीचे एक गुफ़ा है। गुफा में आदमियों को बातें करते हुए उसने सुना।

वहाँ पहुँचने पर राजपूत कुछ आगा-पीछा करने लगा। सोचा वे चार आदमी है, मैं अकेला हूँ। इस समय गुफा में घुसना उचित है या नहीं। यदि वे गुफा द्वार को रोक कर मुझसे लड़ेंगे तो मेरी बचने की सम्भावना नहीं है, पर यह विचार राजपूत के मन में बहुत देर तक न रह सका। मौत से क्यों डरना? मृत्यु से डर कर राजपूत किसी कार्य से विचलित नहीं होता। किन्तु समस्या यह थी कि गुफा में घुसते ही उसके हाथों दो एक आदमी अवश्य मरेंगे। यदि वे वही डाकू न होंगे तो निरपराध की हत्या होगी।

यह सोच कर राजपूत अपना सन्देह मिटाने के लिए बहुत धीरे-धीरे गुफा के द्वार के पास खड़े हो कर भीतर के आदमियों की बात-चीत ध्यान से सुनने लगा। उस समय डाकू लूट के बांट की बात-चीत कर रहे थे। सुन कर राजपूत को विश्वास हो गया कि ये वही डाकू हैं। तब राजपूत ने गुफा में घुसना ही स्थिर किया।

धीरे से उसने अपने बर्छे को जङ्गल में छिपा दिया। जिस समय डाकू चंचल कुमारी के पत्र से धन प्राप्त करने की आशा में मग्न हो रहे थे, ठीक उसी समय राजपूत दबे पाँव से गुफा में घुस गया। दलपति गुफा के द्वार की ओर पीठ करके बैठा था। घुसते ही राजपूत ने अपनी तलवार दलपति के मस्तक पर चलायी। उसकी बाँह में इतना बल था कि एक ही वार से मस्तक जमीन पर जा गिरा।

एक दूसरा डाकू दलपति के पास ही बैठा था। राजपूत ने उसकी ओर फिर कर उसके सिर पर इतने ज़ोर से ठोकर मारी कि मूर्छित होकर वह जमीन पर गिर पड़ा। राजपूत ने बाकी और दो डाकुओं की ओर आँख उठा कर देखा कि एक उसको मारने के लिए पत्थर का टुकड़ा उठा रहा है। राजपूत ने उसकी ओर लक्ष्य करके पिस्तौल चलायी। वह घायल हो कर जमीन पर गिर पड़ा और उसी क्षण मर गया। शेष मानिक

लाल कोई चारा न देख गुफा के द्वार से लम्बी साँस लेता निकल भागा। राजपूत ने भी बड़ी तेजी से उसका पीछा किया। इसी समय राजपूत ने जो बर्छा छिपा कर रखा था वह मानिकलाल के पैर से लगा। मानिकलाल ने झट उसे उठा लिया और दाहिने हाथ में ले कर राजपूत की ओर फिर कर खड़ा हो गया। राजपूत को लक्ष्य करके मानिकलाल ने कहा, 'महाराज मैं आपको पहचानता हूँ, शान्त होईये, नहीं तो इसी बर्छे से छेद दूँगा।'

राजपूत ने हँस कर कहा, 'यदि तुम मुझ पर बर्छा चलाते तो मैं अपने बाँये हाथ से पकड़ लेता किन्तु तुम चला नहीं सकते, यह देखो।' यह कह कर राजपूत ने अपने हाथ की खाली पिस्तौल को डाकू के दाहिने हाथ की मुट्ठी को लक्ष्य करके छोड़ा। डाकू के हाथ से बर्छा छूट कर गिर पड़ा। राजपूत ने उसे उठा कर मानिकलाल के सिर के बाल पकड़ लिये और तलवार उठा कर उसे मारने को उद्यत हुआ।

तब मानिकलाल ने कातर स्वर में कहा, 'महाराज, मुझे जीवनदान दीजिये। मेरी रक्षा कीजिये। मैं आप की शरण में हूँ।'

राजपूत ने उसके बाल छोड़ दिये। तलवार नीची कर ली। कहा, 'तुम मरने से इतना क्यों डरते हो?'

मानिकलाल ने कहा, 'मैं मरने से नहीं डरता, किन्तु मेरी एक सात वर्ष की कन्या है उसकी माँ नहीं है, उसकी देख-रेख करने वाला और कोई नहीं है—केवल मैं उसे खिला-पिला कर बाहर निकलता हूँ और फिर शाम को जा कर खाने को दूँगा, तब वह खायेगी। मेरे मरने से वह भी मर जायगी। यदि मुझे मारना है तो पहले उसे मारिये।'

डाकू रोने लगा। फिर आँखों के आँसू पोंछ कर कहने लगा, 'महाराजाधिराज! मैं आप के चरण छू कर शपथ लेता हूँ कि आज से मैं फिर डकैती नहीं करूँगा। बहुत दिनों तक आप की दासता करूँगा और यदि मैं जीता रहूँगा तो एक न एक दिन इस क्षुद्र से आप का अवश्य उपकार होगा।'

राजपूत ने कहा, 'क्या तुम मुझे पहचानते हो?'

डाकू ने कहा, 'महाराजा राजसिंह को कौन नहीं पहचानता?'

तब राजसिंह ने कहा, 'मैंने तुम्हें जीवन दान दे दिया। किन्तु तुमने ब्राह्मण का धन अपहरण किया है, यदि मैं इसके लिए तुम्हें दण्ड न दूँगा तो मैं राजधर्म से पतित हो जाऊँगा।'

मानिकलाल ने विनीत भाव से कहा, 'महाराजाधिराज! इस पाप-कर्म में मैं पहले ही लिप्त हुआ हूँ। कृपा कर के मेरे लिए साधारण दण्ड दीजियेगा। लीजिये, मैं आप के सामने ही प्रायश्चित करता हूँ।'

यह कह कर डाकू ने अपनी कमर से एक छोटी-सी छुरी निकाली और उससे

अपनी तर्जनी उँगली काटने लगा। छुरी से मांस तो कट गया, पर हड्डी नहीं कटी। उसके बाद मानिकलाल ने एक चट्टान पर अपनी उँगली रख दी और उस पर छुरी को रख कर एक पत्थर के टुकड़े से मारा। उँगली कट कर जमीन पर जा गिरी। डाकू ने कहा, 'महाराज, इसी दण्ड को स्वीकार कीजिये।'

देख कर राजसिंह विस्मित हो गये। डाकू ने अपनी भौंहें जरा भी न सिकोड़ीं। राजसिंह ने कहा, 'यही काफी है, तुम्हारा नाम क्या है?'

डाकू ने कहा, 'इस अधम का नाम मानिकलाल सिंह है। मैं राजपूत कुल का कलंक हूँ।'

राजसिंह ने कहा, 'मानिकलाल, आज से मैंने तुम्हें अपने काम में ले लिया। तुमको अपनी घुड़सवार सेना में नियुक्त कर लिया। तुम अपनी कन्या को ले कर उदयपुर चलो, वहाँ तुम्हें रहने के लिए स्थान दूँगा।'

उसके बाद मानिकलाल ने राणा की पदधूलि माथे चढ़ायी। राणा को कुछ देर वहीं ठहरा कर वह वह गुफा में गया और वहाँ से लूटे हुए मोती का कंकण, अशर्फी और पत्र को ला कर राणा को दिया। बोला, 'ब्राह्मण से जो कुछ हमने लिया था, उसे आप के श्रीचरणों में अर्पण करता हूँ। ये दोनों पत्र आप के ही लिए हैं। इस दास ने उन्हें पढ़ लिया है, इस अपराध को क्षमा कीजियेगा।'

राणा ने पत्रों को हाथ में ले कर देखा। उन्हीं के नाम का लिखा सिरनामा था। बोले, 'मानिकलाल, पत्र पढ़ने के लिये यह स्थान ठीक नहीं है। मेरे साथ आओ, तुम्हारा जाना हुआ रास्ता है। तुम रास्ता दिखाओ।'

मानिकलाल आगे-आगे रास्ता दिखाते चला। राणा ने देखा कि डाकू एक बार भी अपने घायल हाथ की ओर नहीं देख रहा है और न उसके सम्बन्ध में कोई बात ही कर रहा है। शीघ्र ही राणा घने जङ्गल को पार कर उस वेगवती छोटी नदी के तीर पर एक मनोरम एकान्त स्थान में आये।

|९|

चंचल कुमारी का पत्र

जहाँ चट्टानों से टकराने वाली, कलकलनादिनी नदी के साथ सुन्दर मधुर वायु चहचहाते पक्षियों की ध्वनि को मिला रही थी, जहाँ जगह-जगह वनकुसुम फूल-फूल कर पहाड़ी वृक्षों की शोभा बढ़ा रहे थे, जहाँ रूप चमक रहा था, शब्द तरंगित हो रहा था, गन्ध मतवाला हो रहा था और मन प्रकृति के वशीभूत हो रहा था, वहीं एक बड़े

चट्टान पर बैठ कर राणा दोनों पत्रों को पढ़ने लगे।

पहले राजा विक्रमसिंह का पत्र पढ़ा। पढ़ कर उसे फाड़ कर फेंक दिया। मन में सोचा, ब्राह्मण को कुछ दे देने से ही पत्र का उद्देश्य पूरा हो गा। उसके बाद चञ्चल कुमारी का पत्र पढ़ने लगे। पत्र इस प्रकार था—

'राजन्, आप राजपूत कुल के शिरोमणि हैं, हिन्दू जाति के भूषण हैं। मैं एक अपरिचिता मंद बुद्धि बालिका हूँ। अत्यन्त दुखित न हो कर मैं कभी भी आपके पास पत्र लिखने का साहस न करती। मुझे दुखिया समझ कर मेरे दुस्साहस को क्षमा कीजिये गा।

'जो इस पत्र को ले कर आप के पास जा रहे हैं, वे मेरे गुरुदेव हैं, उनसे पूछने से आप जानें गे कि मैं राजपूत कन्या हूँ। रूपनगर एक छोटा-सा शहर है—अत्यन्त छोटा राज्य है—तो भी विक्रम सिंह सोलंकी राजपूत हैं। मध्यदेशाधिपति के सामने मेरी गणना राजकन्या में नहीं है। इसलिए राजपूत कन्या ही कह कर मैं आपकी दया की भिक्षा माँगती हूँ। क्यों नहीं, आप राजपूत पति हैं—राजपूत-कुलतिलक हैं।

'अनुग्रह कर मेरी विपदा को सुनिये। मेरे अभाग्यवश दिल्ली का बादशाह मेरा पाणिग्रहण करने की इच्छा कर रहा है। बहुत शीघ्र ही उसकी फौज मुझे दिल्ली ले जाने के लिए आयगी। मैं राजपूत की कन्या हूँ! क्षत्रिय के कुल से उत्पन्न हो कर कैसे मैं उसकी दासी बनूँ गी। राजहंस होकर मैं कैसे बगुले के साथ रहूँ गी? हिमालय नंदिनी हो कर किस प्रकार तालाब के कीचड़ के साथ मिल कर रहूँ गी? राजकुमारी हो कर किस प्रकार तुर्की बर्बर की आज्ञाकारिणी बनूँ गी। मैंने निश्चय किया है कि इस विवाह के पहले विष खा कर मर जाऊँ गी। महाराजाधिराज! आप मुझे अहंकारिणी मत समझिये गा। मैं जानती हूँ कि मैं एक छोटे से जमींदार की कन्या हूँ। जोधपुर, अम्बर आदि प्रतापशाली राजागण दिल्ली के बादशाह को अपनी कन्या देना कलंक नहीं समझते। कलंक समझना दूर रहे—वल्कि अपना गौरव समझते हैं। ऐसे बड़े-बड़े घरानों के सामने मैं किस गिनती में हूँ। आप पूछ सकते हैं कि मुझे इतना अहंकार क्यों है? किन्तु महाराज! क्या सूर्य के डूबने पर जुगनू नहीं चमकते? शिशिर से कमल के सकुच जाने पर क्या चमेली नहीं विकसित होती? जोधपुर, अम्बर आदि के कुल की लाज गंवाने पर क्या रूपनगर अपने कुल की रक्षा नहीं कर सकता? महाराज? भाटों के मुंह से सुना है कि वनवासी राणा प्रतापसिंह के साथ महाराज मानसिंह भोजन करने आये थे, पर महाराज ने भोजन नहीं किया। कहा था—जिसने अपनी बहिन मुसलमानों दे दी है, मैं उसके साथ कभी भोजन नहीं कर सकता। क्या उन्हीं महावीर के वंशधर को मुझे बतलाना पड़ेगा कि इस सम्बन्ध में राजपूत कुलकामिनी के लिए इहलोक और परलोक दोनों घृणास्पद हैं? महाराज, आज तक भी मुसलमान आप के कुल में क्यों नहीं शादी कर सके? आप का वंश वीर्यवान एवं महापराक्रमी है। केवल

इतना ही नहीं । [illegible] दिल्ली के बाद-शाह को अपनी कन्या देना गौरव समझते हैं, तो केवल उदयपुराधीश ही क्यों नहीं अपनी कन्या देते ? इसलिए कि वे अपने को राजपूत समझते हैं । मैं भी उसी राजपूत की कन्या हूँ । महाराज, मैं प्राण त्याग दूँ गी, पर कुल की लाज रखने की प्रतिज्ञा कर ली है ।'

'मैंने प्रतिज्ञा की है कि समय पड़ने पर मैं प्राण विसर्जन कर दूँगी । पर तो भी इस अठारह वर्ष की वयस में अपने यौवन-पूर्ण जीवन को रखने की इच्छा होती है । परन्तु कौन इस विपद में मेरी रक्षा करेगा ? मेरे पिता की तो कोई बात ही नहीं, उन्हें इतना साहस कहाँ कि आलमगीर के साथ झगड़ा करें ! और जो छोटे बड़े राजा हैं सब तो बादशाह के दास हैं । बादशाह के डर से काँप उठते हैं । केवल आप ही राजपूत कुल के एकमात्र प्रदीप हैं । केवल उदयपुराधीश ही बादशाह की बराबरी कर सकते हैं । मैंने आपकी शरण ली है । क्या आप मेरी रक्षा नहीं करेंगे ?

'कितने बड़े गुरुतर काम के लिये मैं आप से अनुरोध कर रही हूँ, मैं उसे नहीं जानती—यह बात नहीं है । यह भी नहीं कि बालिकाबुद्धि के वशीभूत हो कर मैं लिख रही हूँ । मैं जानती हूँ कि दिल्लीश्वर से विवाद करना सहज नहीं है । इस पृथ्वी पर कोई ऐसा नहीं है जो उनसे विवाद कर ठहर सके । महाराज, विचार करके देखिए, महाराणा संग्रामसिंह ने बाबर बादशाह को प्रायः राजगद्दी से उतार ही दिया था । महाराणा प्रतापसिंह ने अकबर बादशाह को मध्यदेश से निकाल ही दिया था । आप उसी सिंहासन पर आसीन हैं । आप उन्हीं संग्राम, उन्हीं प्रताप के वंशधर हैं । क्या आप में उनसे कम बल है ? सुनती हूँ कि महाराष्ट्र के एक पहाड़ी डाकू ने आलमगीर के छक्के छुड़ा दिये हैं । क्या उसी आलमगीर की राजस्थान के राजेन्द्र के सामने कोई गिनती है ।'

'आप कह सकते हैं कि मुझ में बल है, पर तुम्हारे लिये इतना कष्ट क्यों उठाने जाऊँ ? मैं क्यों अपरिचिता वाचाल स्त्री के लिये प्राणियों की हत्या करूँ ? भीषण समर में उतरूँ ? पर महाराज, सर्वस्व न्यौछावर कर क्या शरणागत की रक्षा करना राजधर्म नहीं है ? सर्वस्व समर्पण कर कुलकामिनी की रक्षा करना क्या रजपूत का धर्म नहीं है ?'

यहाँ तक तो पात्र राजकन्या के हाथ का लिखा था । शेष जो था, वह उनका लिखा नहीं था । उसे निर्मलकुमारी ने लिखा था । हम नहीं जानते कि राजकुमारी इसे जानती थीं या नहीं । उसका लिखा इस प्रकार था—

'महाराज ! एक और बात कहते लज्जा आती है, पर न कहने से नहीं चलता । मैंने इस विपद में पड़ कर प्रण किया है कि जो वीर मुगलों के हाथ से मेरी रक्षा करेंगे, यदि ये राजपूत होंगे और शास्त्रानुसार ग्रहण करेंगे तो मैं उनकी दासी बनूँगी ।

हे वीर श्रेष्ठ ! युद्ध में स्त्री-लाभ करना वीरों का धर्म है । समस्त क्षत्रिय कुल से युद्ध करके पाँडवों ने द्रौपदी को जीता था । काशीरज्य में एकत्र हुए राजमण्डली के सामने अपने बल-वीर्य को दिखा कर भीष्मदेव राजकन्याओं को जीत कर ले आये थे । राजन् ! क्या रुक्मिणी के विवाह की बात आपको याद नहीं है ? इस पृथ्वी पर आज भी आप अद्वितीय वीर हैं । क्या आप वीरधर्म से विमुख होंगे ?'

'तो भी जो मैं आप की रानी होने की इच्छा करती हूँ, यह मेरी दुराकांक्ष ही है । यदि मैं आपके ग्रहण योग्य नहीं हूँगी तो क्या आपके साथ और प्रकार से सम्बन्ध स्थापित करने की आशा कर सकती हूँ ? इसीलिये यह सोच कर कि आपकी भी वञ्चिता न रहूँ, मैंने गुरुदेव के हाथ राखी भेजी है । वे आपको राखी बाँध देंगे । उसके बाद आपका राजधर्म आपके हाथ में है । मेरे प्राण मेरे हाथ में हैं । यदि दिल्ली जाना ही होगा तो रास्ते में विष खा लूँगी ।'

पत्र पढ़ कर राजसिंह कुछ देर तक चिन्ता में मग्न रहे । फिर सिर उठा कर मानिकलाल से बोले, 'मानिकलाल, इस पत्र की बात तुम्हारे सिवा और कौन जानता है ?'

'जो जानते थे, महाराज ने गुफा में ही उन का वध कर दिया है ।'

'बहुत ठीक ! तुम अपने घर जाओ । उदरपुर आ कर मुझसे भेंट करना । इस पत्र की बात किसी के सामने मत कहना ।'

यह कह कर राजसिंह ने अपने पास से कुछ अशर्फियाँ निकाल कर मानिकलाल को दीं । मानिकलाल प्रणाम करके चला गया ।

| ६ |

माताजी की जय !

राणा अनन्त मिश्र को प्रतीक्षा करने के लिये कह गये थे । अनन्त मिश्र उनकी राह देख रहे थे । परन्तु उनका चित्त ठिकाने नहीं था । घुड़सवार के सैनिक वेश और उसकी तीव्र-दृष्टि के कुछ डर गये थे । एक बार तो घोर विपद में पड़ कर भाग्यवश उससे जान बच गयी थी । किन्तु सब कुछ लुट गया—चञ्चल कुमारी का आशा विश्वास लुट गया—-अब क्या कह कर वे उनके सामने अपना मुँह दिखायें ? इसी प्रकार ब्राह्मण देव सोच रहे थे । पहाड़ के ऊपर दो तीन आदमी खड़े हो कर कुछ सलाह कर रहे थे । देख कर ब्राह्मण देव डर गये । मन में सोचा—कहीं डाकुओं का और दल तो नहीं आ

पहुँचा ! उस बार तो जो कुछ मेरे पास था, उसी के लिए डाकू मेरी जान लेने को तैयार थे, इस बार यदि ये मुझे पकड़ेंगे तो क्या दे कर अपने प्राण बचाऊँ गा ? इसी तरह वे सोच रहे थे । इसी समय उन्होंने देखा कि पहाड़ के आदमी हाथ फैला कर उन्हें दिखा रहे हैं और आपस में न जाने क्या कह रहे हैं । यह देख कर ब्राह्मण देव का रहा सहा साहस भी जाता रहा । वे भागने के लिये उठ खड़े हुए । उधर पहाड़ पर के आदमियों में से एक नीचे उतरने लगा । देखते ही ब्राह्मण जान ले कर भाग चले ।

उसके बाद पकड़ो, पकड़ो, कहते हुए तीन चार आदमी उनके पीछे-पीछे दौड़े । ब्राह्मण भी खूब जोर से भागे । बेहोश थे, तन मन की सुधि नहीं थी, पर नारायण का नाम लेते हुए तीर की तरह भागते चले जा रहे थे, । जो आदमी उनके पीछे-पीछे दौड़ रहे थे, वे उन्हें फिर न देख पीछे लौट गये ।

वे आदमी और कोई नहीं थे, महाराणा के नौकर-चाकर थे । इस स्थल पर महाराणा से हमारी कैसे भेंट हो गयी, हम बतलाते हैं । राजपूत शिकार के बड़े प्रेमी होते हैं । आज महाराणा सौ घुडसवारों और नौकर-चाकरों को साथ लेकर शिकार खेलने निकले थे । शिकार खेलने के बाद वे उदयपुरी की ओर लौट रहे थे । राजसिंह सदा पहरेदारों से घिर कर रहना पसन्द नहीं करते थे । कभी कभी नौकरों को दूर छोड़ कर आप अकेले भेष बदल कर प्रजा के दु:ख सुख जानने के लिये बाहर निकल पड़ते थे । इसीलिए उनके राज्य की समस्त प्रजा बड़ी सुखी थी । अपनी ही आँखों से वे सब को देखते थे और अपने ही हाथों से सब के दु:ख दूर करते थे ।

आज शिकार खेल कर लौटते समय वे अपने नोकरों को पीछे रहने के लिए कह कर विजय नामक अपने तेज घोड़े पर चढ़ कर अकेले आगे निकल आये थे । इसी समय अनन्त मिश्र से उनकी भेंट हुई । उसके बाद जो कुछ हुआ उसका वर्णन पहले हो चुका है । राणा डाकुओं के अत्याचार को सुन कर अपने ही हाथों से ब्राह्मण के धन का उद्धार करने आये थे । दु:साध्य एवं विपत्तिपूर्ण काम ही उनके लिये आमोद का विषय था ।

इधर बहुत देर होते देख कुछ राज कर्मचारी राणा की खोज करने के लिए निकले । नीचे उतरते हुए उन्होंने देखा कि राणा का घोड़ा खड़ा है । देख कर मन में आशंका हुई कि राणा किसी विपद में फंसे हैं । नीचे चट्टान पर अनन्त मिश्र को बैठे देख कर उन्होंने सोचा कि यह आदमी अवश्य उनके विषय में जानता होगा । इसीलिए वे हाथ फैला कर उस ओर दिखा रहे थे और उनसे पूछने के लिये नीचे उतर रहे थे । इसी समय ब्राह्मण देव नारायण का नाम ले कर भाग चले, तब उन्होंने निश्चय किया कि यही आदमी अपराधी है । यह सोच कर उन्होंने ब्राह्मण का पीछा किया । ब्राह्मण ने एक झाड़ी में छिप कर किसीं तरह अपनी जान बचायी ।

उधर महाराणा चञ्चल कुमारी के पत्र को पढ़ने और मानिकलाल को विदा करने के बाद अनन्त मिश्र की तलाश में चले। वहाँ जा कर देखा कि ब्राह्मण देवता नहीं हैं। उनकी जगह पर उनके नौकर तथा उनके साथ के घुड़सवार पहाड़ तली में आ उपस्थित हुए हैं। राणा को देख कर सबों ने जय-जयकार के नारे लगाये। अपने स्वामी को देख कर विजय तीन ही छलांग में उनके पास जा खड़ा हुआ। राणा उसकी पीठ पर सवार हो गये। उनके वस्त्र को खून से रंगे देख कर सबों ने अनुमान किया कि अवश्य कोई घटना घटी है, परन्तु राजपूतों के लिये तो यह नित्य का व्यापार था, इसीलिये किसी ने कुछ पूछा नहीं।

राणा ने कहा, 'यहाँ एक ब्राह्मण बैठे थे। वह कहाँ चले गये? तुममें से किसी ने उन्हें देखा है?'

जो उनके पीछे दोड़े गये थे उन्होंने कहा, 'महाराज, वह आदमी भाग गया।'

'जल्दी से तलाश करके लाओ।'

नौकरों ने सब बातें विस्तार पूर्वक बतला कर निवेदन किया; 'हमने उसे बहुतेरा तलाश किया, पर मिला नहीं।'

घुड़सवारों में राणा के दो लड़के, उनकी जाति बिरादरी वाले तथा सरदार गण थे। राजा ने दोनों पुत्रों और सरदारों को एकान्त में ले जा कर कुछ बात-चीत की। फिर लौट कर सब से कहा, 'मेरे प्रियजनों, आज बहुत देर हो गई है। तुम सब को भूख-प्यास लगी होगी, इसमें सन्देह नहीं, लेकिन आज उदयपुर जा कर भूख-प्यास मिटाना हमारे भाग्य में नहीं बदा है। इसी पहाड़ी रास्ते से हमें फिर लौट चलना पड़ेगा। एक छोटी-सी लड़ाई लड़नी है—जिन्हें लड़ने की साध हो वे मेरे साथ आवें। मैं इस पहाड़ पर चढ़ूँगा। जिनकी लड़ने की इच्छा न हो वे उदयपुर लौट जायँ।'

यह कह कर राणा पहाड़ पर चढ़ने लगे। उसी समय 'महाराणा की जय, 'माताजी की जय' कहते हुए उनके साथ के सौ घुड़सवार भी पीछे-पीछे पहाड़ पर चढ़ने लगे। ऊपर जा कर 'हर' 'हर' कहते हुए वे रूपनगर की ओर घोड़ा दौड़ाये चले। घोड़ों की टापों की आवाज से इस घाटी में और भी गम्भीर ध्वनि होने लगी।

निराशा

इधर अनन्त मिश्र के प्रस्थान करने के बाद ही रूपनगर में बड़ी हलचल मच गयी। मुगल बादशाह के दो हजार घुड़सवार सैनिक रूपनगर के किले में आ पहुँचे। चञ्चल कुमारी को ले जाने के लिये आये थे। सुन कर निर्मल का मुँह सूख गया। जल्दी से चंचल कुमारी के पास जा कर वह बोली, 'सखि, अब क्या होगा ?'

चंचल कुमारी ने मुस्कराते हुए कहा, 'किसका क्या होगा ?'

'तुम्हें ले जाने के लिये वे आ गये हैं। मिश्र जी अभी ही उदयपुर गये हैं। अभी उनके पहुँचने में विलम्ब है। राजसिंह का उत्तर आते-आते तो वे तुम्हें ले जायँगे। क्या होगा, सखि !'

'अब इसका कोई कोई उपाय नहीं मेरे लिये। वही अन्तिम उपाय है। मैंने निश्चय कर लिया है कि दिल्ली के रास्ते में विष खा कर प्राण दे दूँगी। इसीलिये मैं उतनी व्यग्र नहीं हूँ। केवल एक बार मैं पिताजी से अनुरोध करूँगी कि वे मुगल सेनापति से सात दिन की मुहलत लें।'

समय देख कर चंचल कुमारी ने पिता के चरणों में निवेदन किया, 'मैं तो रूपनगर से अब सदा के लिये जाती हूँ। अब मैं फिर अभी आपके श्री चरणों के दर्शन कर सकूँगी, फिर कभी अपनी बाल सखियों के पास खेल कूद सकूँ, 'इसकी सम्भावना नहीं ! मैं केवल सात दिन की मुहलत की भिक्षा माँगती हूँ। सात दिनों तक मुगल सेना यहीं ठहरी रहें। सात दिन के अन्दर आप सब से मिल-जुल कर सदा के लिये विदा ले लूँगी।'

राजा रो पड़े, बोले, 'अच्छा, मैं सेनापति से अनुरोध करूँगा। लेकिन कह नहीं सकता कि वे कुछ सुनेंगे या नहीं।'

राजा ने जा कर सेनापति से निवेदन किया। सेनापति ने सोच कर देखा कि बादशाह ने तो कोई समय निश्चिय नहीं किया है। उन्होंने कहा नहीं है कि इतने दिन के भीतर आना होगा। लेकिन सात दिन तक ठहरने का उन्हें साहस नहीं हुआ और बेगम के अनुरोध को भी टालते नहीं बना। अन्त में पांच दिन तक ठहरने के लिये वे राजी हुए। चंचल कुमारी को इससे कुछ भरोसा नहीं हुआ।

इधर उदयपुर से कोई समाचार नहीं आया। मिश्रजी लौटे नहीं। तब चंचलकुमारी ने सिर उठा कर हाथ जोड़ कर कहा, 'हे अनाथनाथ ! देवाधिदेव। अबला को मारना मत।'

रात को निर्मल आकर चंचल कुमारी के साथ सोई। सारी रात एक दूसरे को छाती से लगा रो-रोकर दोनों ने काटी। निर्मल ने कहा, 'मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।' कितने दिनों से ही वह यह बात कहती आ रही थी।

चंचल ने कहा, 'तुम मेरे साथ कहाँ चलोगी ? मैं तो मरने जा रही हूँ।'

निर्मल ने कहा, 'मैं भी मरूँगी। तुम मुझको छोड़कर चली जाओगी; तो क्या मैं बच सकूँगी ?'

चंचल ने कहा, 'छिः ! ऐसी बात मत कहो। मेरे दुःख को और अधिक क्यों बढ़ा रही हो ?'

निर्मल ने कहा, 'चाहे तुम मुझे ले जाओ या न ले जाओ, पर मैं जरूर तुम्हारे साथ चलूँगी।'

दोनों ने रो-रोकर रात बितायी।

|८|

मेहरजान

जितने दिन तक मुगल सेना रूपनगर में छावनी बना कर रही, उतने दिन बड़े राग-रङ्ग में कटे। मुगल सेना के साथ साथ वेश्याओं का भी दल जाता था। जब लड़ाई नहीं होती थी तब शामियाने के अन्दर खूब नाच-गाना होता। रूपनगर में आनन्द करने ही के लिये सिपाही आये थे। इसलिये रात को शामियाने के भीतर नाचने-गाने की बड़ी चहल-पहल रहती थी।

वेश्याओं में एक की सहसा बड़ी प्रसिद्धि फैली। दिल्ली में किसी ने मेहरजान का नाम नहीं सुना था। लेकिन जिनका बड़ा नाम था वे भी रूपनगर में आकर मेहरजान की बराबरी न कर सकीं। वेश्या होकर भी मेहरजान नेकचलन थी, इससे उसका नाम और भी बढ़ा।

मुगल सेनापति सैयद हसनअली ने उसका गाना सुनने की इच्छा प्रकट की। लेकिन मेहरजान पहले राजी नहीं हुई। बोली, 'मैं बहुत आदमियों के सामने नहीं नाच-गा सकती।'

सैयद हसनअली खाँ ने मंजूर किया कि वहाँ कोई नहीं रहेगा। तब वेश्या ने आकर उनको नाच-गाना सुनाया। खुश हो कर वे उसे इनाम देने लगे, किन्तु उसने लिया नहीं। बोली, 'मुझे धन नहीं चाहिये। यदि आप मुझ से खुश हैं तो मैं जो इनाम

माँगती हूँ, उसे दीजिये। नहीं तो, मैं और कुछ इनाम नहीं चाहती।

सैयद हसनअली ने पूछा, 'तुम क्या इनाम चाहती हो ?'

मेहरजान ने कहा, 'मैं आपके घुड़सवारों में भर्ती होना चाहती हूँ।'

अवाक् होकर हसनअली मेहरजान के मुसकुराते हुए सुन्दर मुँह की और देखते रहे। मेहरजान ने उनको निरुत्तर देख कर कहा, 'मैं घोड़ा, हथियार और बर्छी के दाम दे दूँगी।'

हसनअली ने कहा, 'औरत और घुड़सवार सिपाही !'

मेहरजान ने कहा, 'नुकसान ही क्या है ? लड़ाई तो होगी ही नहीं, और होने से भी मैं भागूँगी नहीं।'

'लोग क्या कहेंगे ?'

'इसे मैं और आप जानेंगे, और तो कोई जाने गा नहीं।'

'तुम ऐसा क्यों चाहती हो ?'

'किसी लिये भी चाहती हूँ—बादशाह का इसमें कोई नुकसान नहीं है।'

हसनअली पहले तो किसी तरह भी राजी नहीं हुए। लेकिन मेहरजान ने भी उनका पिण्ड नहीं छोड़ा। अन्त में हसनअली राजी हो गये। मेहरजान की अर्जी मंजूर हुई।

यह मेहरजान वही दरिया बीबी थी।

|९|

प्रभुभक्ति

यहाँ एक बार मानिकलाल की चर्चा करनी है। मानिकलाल राणा से विदा ले कर फिर उस गुफा में लौट गया। अब डकैती करने की तो उसकी इच्छा नहीं थी, पर वह देखने गया कि उसके साथी मर गये हैं या जीते हैं। यदि कोई नहीं मरा होगा तो उसकी सेवा-शुश्रूषा कर बचाना होगा। यह सोचते हुए मानिकलाल गुफा में घुसा।

जा कर देखा तो दो आदमी मरे पड़े हैं। जो केवल मूर्छित हो कर पड़ा था, वह होश में आने पर न जाने जहाँ चला गया। मानिकलाल उदास हो कर बन में से लकड़ी ले आया और दो चितायें बना कर उन पर दोनों शवों को रखा। फिर गुफा से पत्थर और लोहा ला उनसे आग पैदा कर के चिता में आग लगा दी। इस प्रकार मित्रों की अन्त्येष्टि क्रिया करके वह वहाँ से चला आया। उसके बाद मन में विचार किया, जिस

ब्राह्मण को दुःख दिया था, चलो देखें उसकी क्या हालत है। जिस जगह अनन्त मिश्र को बाँध कर रख गया था, वहाँ आ कर उसने देखा तो ब्राह्मण देव नहीं हैं। देखा कि पहाड़ी नदी का निर्मल जल कुछ मैला हो गया है और कई जगहों पर पेड़ों की डालियाँ और लता गुल्मादि टूट कर छिन्न-भिन्न हो गये हैं। इन सब चिह्नों को देख कर मानिक-लाल ने सोचा कि जान पड़ता है कि इस जगह पर बहुत से आदमी आये थे! उसने पहाड़ पर घोड़ों की टापों के कई एक निशान देखे। विशेषकर घोड़ों की टापों से जहाँ लतायें आदि कट गयी थीं वहाँ अर्द्ध गोलाकार चिह्न साफ-साफ दीख पड़ते थे। मानिक लाल बहुत सोच विचार-कर इस निर्णय पर पहुँचा कि यहाँ बहुत से घुड़सवार आये थे। चतुर मानिकलाल उसके बाद देखने लगा कि घुड़सवार किस ओर से आये और किस ओर गये हैं। देखा, कुछ चिह्न दक्षिण की ओर गए हैं, कुछ उत्तर की ओर गये हैं। कुछ दूर दक्षिण की ओर जा कर चिह्न फिर उत्तर की ओर गये हैं। इससे उसने निश्चित किया कि घुड़सवार उत्तर की ओर से यहाँ तक आ कर फिर उत्तर की ओर लौट गये हैं।

इस सिद्धांत पर पहुँच कर मानिकलाल घर चला गया। उस जगह से मानिक-लाल का घर दो या तीन कोस पर था। घर पहुँच कर उसने भोजन बनाया-खाया। उसके बाद कन्या को गोदी में ले कर घर में ताला लगा वह बाहर निकला।

मानिकलाल के कोई नहीं था। केवल ननद की माँ की चाची की एक लड़की थी। सौजन्य से अथवा आत्मीयता की साध मिटाने के लिए वह उसे बुआ कहा करता था।

मानिकलाल कन्या को ले कर उसी बुआ के पास गया। बोला, 'बुआ!'

बुआ बोली, 'कौन? बच्चा मानिकलाल! कैसे आये?'

मानिकलाल ने कहा, 'बुआ, मेरी इस लड़की को अपने पास रख सकती हो?'

'कितनी देर के लिए?'

'यही कोई दो महीने के लिए।'

'मैं गरीब दुखिया हूँ, बेटी को इतने दिन तक कहाँ से खिलाऊँगी?'

'क्या बुआ तुम्हें किसी चीज की कमी है? क्या तुम अपनी नतिनी को दो महीने भी नहीं खिला सकतीं?'

'कैसे? एक लड़की को दो महीने खिलाने में एक मोहर लगेगा।'

'अच्छा, मैं एक मोहर दूँगा—तुम लड़की को दो महीने रखो। मैं उदयपुर जाऊँगा और वहाँ राणा के दरबार में एक अच्छी नौकरी मिली है।'

यह कह कर मानिकलाल ने राणा की दी हुई अशर्फियों में से एक अशर्फी निकाल कर बुआ के सामने फेंक दी और कन्या को उसके पास रख कर कहा, 'जा बेटी, नानी की गोद में जा कर बैठ।'

बूआ को कुछ और लोभ हुआ। वह अच्छी तरह जानती थी कि एक मोहर में एक बच्चे को एक वर्ष तक खिलाया-पिलाया जा सकता है। मानिकलाल केवल दो महीने के लिये करार कर रहा है। इससे बूआ को कुछ लाभ ही हो रहा था। इसके सिवा उसने राज दरबार में नौकरी कर ली है, किसी दिन वह बड़े ओहदे पर भी पहुँच सकता है, तो क्या वह बुआ को और कुछ नहीं देगा ? आदमी को काबू में रखना अच्छा है।

तब बुआ ने मोहर ले कर कहा, 'बच्चा, तुम्हारी लड़की को खिला-पिला कर सयानी कर दूँ गी, यह कौनसी बड़ी बात है। तुम निश्चिन्त रहो। आओ, मेरी बेटी, आओ।' कह कर बुआ ने कन्या को गोदी में उठा लिया।

कन्या के लिए यह बन्दोबस्त कर के मानिकलाल निश्चिन्त हो गाँव के बाहर निकला। किसी से कुछ न कह कर वह रूपनगर जाने के लिए पहाड़ी रास्ते से चला।

मानिकलाल यह विचार कर कहा था कि पहाड़तली में बहुत से घुड़सवार क्यों आये थे। राणा भी तो अकेले ही घूम रहे थे। लेकिन यह सम्भव ही नहीं है कि वे उदयपुर से अकेले ही आये हों। इसलिए वे राणा के साथ के ही घुड़सवार होंगे। यह भी देखा था कि वे उत्तर की ओर से आये थे और उदयपुर की ओर जा रहे थे। जान पड़ता है, राणा शिकार खेलने में रह गये और वे सब उदयपुर लौटे जा रहे थे उसके बाद फिर देखा कि वे उदयपुर नहीं गये। फिर उत्तर की ओर क्यों लौट आये ? उत्तर की ओर तो रूपनगर है। जान पड़ता है कि चंचल कुमारी का पत्र पढ़ कर राणा अपने साथ के घुड़सवारों को ले कर उनका निमन्त्रण पूरा करने गये हैं। यदि वे नहीं गये होंगे तो उनका राजपूत पति नाम झूठा है। मैं उनका नौकर हूँ—मैं उनके पास जाऊँ गा। परन्तु वे घोड़े पर चढ़ कर गये हैं। मेरे पैदल जाने में तो बहुत देर होगी। हाँ, एक बात है कि पहाड़ी रास्ते पर घोड़े उतना तेज नहीं चलते और मानिकलाल पैदल चलने में आँधी है। मानिकलाल रात-दिन रास्ता चलने लगा। ठीक समय पर वह रूपनगर पहुँच गया। वहाँ पहुँच कर उसने देखा कि दो हजार घुड़सवार छावनी डाले पड़े हैं। किन्तु राजपूत सेना का कोई चिह्न नहीं दिखायी दिया। यह भी सुना कि दूसरे दिन सबेरे मुगल सेना राजकुमारी को ले जायेगी।

मानिकलाल बुद्धि में एक छोटा-सा सेनापति था। राजपूतों का कोई पता न पाकर वह दुःखित नहीं हुआ। मन में कहा, 'मुगल उनका पता नहीं पा सकते, पर मैं स्वामी की तलाश कर लूँ गा।'

एक नगरनिवासी से मानिकलाल ने पूछा, 'क्या तुम मुझे दिल्ली का रास्ता दिखला सकते हो ? मैं तुम्हें कुछ इनाम दूँ गा।'

उस आदमी ने राजी हो आगे चल कर मानिकलाल को रास्ता दिखला दिया। मानिकलाल ने उसे इनाम दे कर विदा कर दिया। उसके बाद चारों ओर अच्छी तरह देखते-भालते वह दिल्ली के रास्ते से चला। मानिकलाल ने स्थिर किया कि राजपूत लोग

अवश्य दिल्ली के रास्ते में कहीं न कहीं छिपे हैं। पहले तो कुछ देर तक मानिकलाल को राजपूत सेना का कुछ चिह्न नहीं मिला। आगे चल कर एक जगह पर देखा कि रास्ता तंग है। दोनों ओर दो पहाड़ आध कोस तक समानांतर से चले गये हैं। उसके बीच में बहुत तंग रास्ता है। दाहिनी ओर का पहाड़ बहुत ऊँचा और दुर्गम था। वह एकदम सीधा खड़ा था। बायीं ओर का पहाड़ कम ऊंचा और ढालुआ था। उस पर चढ़ना सुगम था। इस पहाड़ के स्थान पर एक सुरंग थी। उसमें से हो कर एक रास्ता चला गया था।

नेपोलियन आदि डाकू बड़े दक्ष सेनापति थे। राजा होने से लोग उन्हें डाकू नहीं कहते। मानिकलाल राजा नहीं था। इसलिए हम उसे डाकू ही कहने के लिए बाध्य हैं। किन्तु राजा डाकुओं की ही तरह इस छोटे से डाकू की भी आँखें सेनापति की आँखें थीं। दोनों पहाड़ों के बीच के तंग रास्ते को देख कर उसने मन में सोचा कि यदि राणा आये हैं तो वह यहीं कहीं हों गे। जब मुगल सेना इस तंग रास्ते से जायगी तब इसी पर्वत की चोटी से राजपूत घुड़सवार वज्र की तरह उस पर टूट पड़ें गे। दाहिनी ओर का पहाड़ दुर्गम था, उस पर घुड़सवारों का चढ़ना उतरना मुश्किल था। इसलिए राजपूत सेना उस पर नहीं रह सकती, परन्तु बायीं ओर के पहाड़ पर से उतरना बड़ा सुगम था। मानिकलाल उसी पर चढ़ गया। उस समय शाम हो गयी थी।

ऊपर चढ़ कर वह कहीं किसी को न देख सका। उसने इधर-उधर खोजने का इरादा किया। फिर मन में सोचा, राणा के सिवा तो मुझे और कोई राजपूत नहीं पहचानता। मुझे मुगलों का जासूस समझ कर कोई छिपा हुआ राजपूत मार भी सकता है। यह सोच कर वह फिर आगे नहीं बढ़ा। वहीं खड़े होकर पुकारा, 'महाराणा की जय हो।'

यह शब्द सुनते ही चार पाँच हथियारबन्द राजपूत छिपे स्थान से उठ खड़े हुए और हाथ में तलवार ले कर मानिकलाल को काटने के लिये उद्यत हुए।

एक आदमी ने कहा, 'मारना मत।'

मानिकलाल ने देखा, 'स्वयं राणा ही हैं।'

राणा ने कहा, 'मारना मत। यह हमारे ही दल का है।' सिपाही फिर छिप गये।

राणा ने मानिकलाल को अपने पास बुलाया। वह उनके पास चला गया। एक एकान्त जगह में उसे बैठने के लिये कह कर राणा भी वहीं जा कर बैठ गये। तब राणा ने उससे पूछा, 'तुम यहाँ किसलिये आये?'

मानिकलाल ने कहा, 'जहाँ स्वामी जायँगे वहीं दास भी जायगा और विशेष कर जब आप ऐसे विपद जनक कार्य में लगे हैं तब दास को भी आप के किसी काम में लग जाना चाहिये, इसी आशा से आया हूँ। मुगलों के साथ दो हजार और आपके साथ

केवल एक सौ सिपाही हैं। तब मैं किस प्रकार निश्चिन्त रह सकता था। आपने मुझे जीवन दान दिया है—क्या एक दिन में ही उस उपकार को भूल जाऊँ ?'

राणा ने पूछा, 'तुमने कैसे जाना कि मैं यहाँ आया ?'

तब मानिकलाल ने आदि से अन्त तक सब हाल कह सुनाया। सुन कर राणा सन्तुष्ट हुए। बोले, 'आये हो तो अच्छा ही किया है। मैं तुम्हारे जैसे एक चतुर आदमी की खोज में था। जो मैं कहता हूँ उसे तुम कर सकोगे ?'

मानिकलाल ने कहा, 'आदमी जो कुछ कर सकता है, उसे मैं जरूर कर सकूँ गा।'

राणा ने कहा, 'हम लोग केवल एक सौ सिपाही हैं। मुगलों की सेना में दो हजार हैं। हम लोग लड़ाई में जूझ कर अपनी जान दे सकते हैं, पर जीत नहीं सकते। लड़ाई करके हम लोग राजकन्या का उद्धार नहीं कर सकते। पहले राजकन्या को बचाना होगा, उसके बाद लड़ाई की जायगी। युद्ध क्षेत्र में राजकन्या रहेंगी तो वह घायल हो सकती हैं, इसलिये पहले उनकी रक्षा करनी चाहिये।'

मानिकलाल ने कहा, 'मैं एक क्षुद्र जीव हूँ, यह सब मैं कुछ नहीं समझ सकता। मुझे क्या करना होगा, आज्ञा दीजिये।'

राणा ने कहा, 'तुम्हें कल मुगल सिपाही का भेष धर कर मुगल सेना के साथ आना होगा।'

राणा ने खूब समझा बुझा दिया। मानिकलाल ने सुन कर कहा, 'महाराज की जय हो ! मैं यह काम पूरा करूँगा, मुझे एक घोड़ा बखशीश दीजिये।'

'मेरे साथ एक सौ सिपाही हैं और एक सौ ही घोड़े हैं। और घोड़े नहीं हैं कि तुम्हें दूँ। और किसी का घोड़ा तो नहीं दे सकता, मेरे घोड़े को ले सकते हो।'

'प्राण रहते तो उसे मैं नहीं ले सकता। अच्छा, मुझे जरूरी हथियार दीजिये।'

'हथियार कहाँ पाऊँगा ? जो कुछ है, वही हम लोगों के लिये काफी नहीं हैं। किसके हथियार छीन कर तुम्हें दूँ ? मेरे हथियार ले सकते हो !'

'यह नहीं हो सकता। अच्छा, मुझे पोशाक दीजिये।'

'तो कुछ पहन कर हम लोग यहाँ आये हैं उसके सिवा और कोई पोशाक नहीं है। मैं कुछ भी नहीं दे सकता।'

'महाराज ! तो यह हुक्म दीजिये कि जिस तरह हो सके मैं इन चीजों को जुटा लूँ।'

राजा ने हँस कर कहा, 'क्या चोरी करोगे ?'

मानिकलाल ने अपनी जीभ काटी। कहा, 'मैंने शपथ खाई है कि फिर कभी यह काम न करूँ गा।'

'तब क्या करोगे ?'

'ठगी करूँगा।'

राणा ने हँस कर कहा, 'युद्ध के समय सभी चोर हैं—सभी ठग हैं—मैं भी बादशाह की बेगम को चुराने आया हूँ—चोर की तरह छिपा हूँ। जिस तरह हो सके तुम इन चीजों को इकट्ठा कर लो।'

प्रसन्न चित्त हो मानिकलाल राणा को प्रणाम करके चला गया।

|१०|

रसिका पानवाली

उस समय शाम हो गई थी। रूप नगर के बाजार में जा कर मानिकलाल ने देखा कि बाजार बहुत सुन्दर है। दूकानों में जलते हुए सैकड़ों चिरागों की रोशनी से सारा बाजार जगमगा रहा था। खाने-पीने की चीजों को देख कर जीभ से पानी गिरा जाता था। फूल और फूल-मालायें अपने लाल पीले रङ्गों से आँखों को तृप्त करती थीं और अपनी भीनी-भीनी सुगन्धि से मन को मुग्ध कर रही थीं। मानिकलाल घोड़े और हथियार की तलाश में निकला था, पर इसके लिये वह अपने पेट को धोखा देना नहीं चाहता था। मानिकलाल खाने के लिये एक दूकान पर गया। वहाँ पाँच छः सेर पूरी मिठाइयों पर हाथ साफ कर उसने डेढ़ सेर पानी पीया। उसके बाद दूकानदार को दाम चुका कर पान खाने चला।

मानिकलाल ने देखा कि एक पान की दूकान पर बड़ी सजावट है। उसमें बहुतेरे फानूसों में चिराग जल रहे हैं। दीवारों पर तरह-तरह के रंग-बिरंगे कागज काट कर चिपकाये गये है—कई रङ्ग के चित्र लटकाये गये हैं—जिन्हें आज कल की भाषा में हम अश्लील कह सकते हैं और प्राचीन भाषा में जो 'आदि रसाश्रित' कहलाते थे! बीच में एक गलीचे पर दूकान की मालकिन पानवाली बैठी थी। उसकी उमर तीस बरस से अधिक थी, रूप-रङ्ग भी कोई बुरा नहीं था। गोरा रङ्ग था, बड़ी-बड़ी आँखें थी, चञ्चल कटाक्ष थे, मीठी हँसी थी। वह हँसी सदा उसके अनार जैसे दाँतों की पंक्तियों में अठखेलियाँ किया करती थी। हँसी के साथ उसके बदन पर के गहने भी हिलते जाते थे। कितने गहने सोने के और कितने चाँदी के थे। मानिकलाल ने देख-सुन कर वहीं से पान लेने की इच्छा की।

पानवाली स्वयं पान नहीं बेचती थी। उसकी एक दासी पान लगाती और

बेचती थी। वह केवल पैसे जमा करती थी और अपनी मीठी हँसी से ग्राहकों के मन को लुभाती थी।

दासी ने पान लगा कर दिया। मानिकलाल ने दूने दाम दिये। उसने फिर पान माँगा। जब तक पान लगाए जा रहे थे तब तक मानिलाल पानवाली से मीठी-मीठी बातें करने लगा। उसने पानवाली के रूप की प्रशंसा तो पीछे की, पहले उसकी दूकान की सजावट और गहनों की खूब तारीफ की। पानवाली भी उसके रङ्ग में रङ्ग गई। वह भी अपने मीठे-मीठे पानों के साथ अपनी मीठी-मीठी बातें बेचने लगी। तब मानिक लाल जा कर दूकान में बैठ गया और पान चबाते-चबाते पानवाली का हुक्का ले कर पीने लगा। पान खाते खाते उसने दूकान का सारा मसाला खतम कर दिया। दासी दूसरी दूकान से मसाला लाने गई। मौका पाकर मानकिलाल ने पानवाली से कहा, 'बीबी, तुम बड़ी चालाक हो। मैं एक चालाक स्त्री की खोज में था। मेरा एक दुश्मन है किसी तरह उसे फँसाना है। यह काम कैसे होगा, मैं तुम्हें समझा कर बतला देता हूँ। यदि तुम मेरी मदद करो तो मैं तुम्हें एक अशर्फी इनाम दूँगा।'

'क्या करना होगा ?'

मानिकलाल ने न जाने चुपके से क्या कहा। पानवाली बड़ी रंगीली थी, झट राजी हो गई, बोली, 'अशरर्फी की मुझे जरूरत नहीं हैं, मुझे केवल तुम्हारी मीठी-मीठी बातें ही चाहिये।'

मानिकलाल ने कलम, दावात और कागज मँगाये। दासी पड़ोस के एक बनिये की दूकान से सब माँग लाई। मानिकलाल ने पानवाली के साथ परामर्श कर यह पत्र लिखा, 'प्राणनाथ ! जब तुम शहर घूमने आये थे, तुमको देख कर मेरा मन मुग्ध हो गया। यदि मैं तुम्हें एक बार फिर न देख लूँगी तो मेरे प्राण न रहेंगे। सुनती हूँ तुम लोग कल चले जाओगे। इसलिये आज जरूर मुझे अपना मुखड़ा दिखाना, नहीं तो मैं अपने गले में छुरी भोंक दूँगी। जो इस पत्र को ले जा रहा है, उसी के साथ आना। वह रास्ता दिखा कर तुम्हें ले आयेगा।'

पत्र लिख जाने पर मानिकलाल ने उस पर मुहम्मद खाँ का सिरनामा लिखा। पानवाली ने पूछा, 'यह कौन आदमी है ?'

'एक मुगल सवार।'

वास्तव में मानिकलाल मुगल सवारों में किसी को भी नहीं पहचानता था, किसी का नाम भी नहीं जानता था। उसने मन में सोचा कि दो हजार मुगलों में अवश्य किसी न किसी का नाम मुहम्मद होगा और सभी मुगल खाँ होते ही हैं। इसीलिये साहस करके उसने चिट्ठी पर मुहम्मद खाँ का नाम लिखा।

लिखना हो जाने पर मानिकलाल ने कहा, 'क्या उसे यहीं ले आऊँ ?'

पानवाली ने कहा, 'नहीं, इस घर में नहीं। एक दूसरा घर किराये पर लेना होगा।'

उसी क्षण दोनों ने बाजार में जाकर एक घर किराये पर लिया। पानवाली ने मुगल के स्वागत के लिये उसे खूब सजाया। मानिकलाल पत्र को लेकर मुगलों की छावनी में पहुँचा। छावनी में बड़ी गड़बड़ी थी, किसी किस्म की पाबन्दी न थी, कोई नियम नहीं था। उसके भीतर खासा बाजार बस गया था। रात-दिन बड़ी चहल-पहल मची रहती थी। किसी मुगल को देखते ही मानिकलाल पूछता, 'क्यों जनाब, मुहम्मद खाँ किन साहब का नाम है? उसके नाम एक खत है।' कोई-कोई तो कुछ जवाब ही नहीं देते थे, कोई कोई कहते, 'कहीं तलाश कर लो।' अन्त में एक मुगल ने कहा, 'मैं मुहम्मद खाँ को तो नहीं जानता, पर मेरा नाम नूर मुहम्मद खाँ है! खत को जरा दिखाओ। देखने से बतला सकता हूँ कि मेरा है या नहीं।'

प्रसन्न हो कर मानिकलाल ने उसे पत्र दे दिया। वह जानता था, जो ह मुगलो हो, इस जाल में जरूर फँस जायगा। मुगल ने भी सोचा—चाहे जिस किसी का खत क्यों न हो, ऐसा बढ़िया मौका पाकर मैं बीबीजान को क्यों न देख आऊँ। बोला, 'हाँ, खत तो मेरा ही है। चलो, मैं तुम्हारे साथ चलता हूँ।'

यह कह कर मुगल खेमे में चला गया और बालों को संवार, इत्र लगा और पोशाक पहन कर बाहर निकला। बाहर आ कर उससे पूछा, 'ओ नौकर, वह जगह यहाँ से कितनी दूर है?'

मानिकलाल ने हाथ जोड़ कर कहा, 'हजूर बहुत दूर है। घोड़े पर जाने से अच्छा होगा।'

'बहुत अच्छा', कह कर खाँ साहब घोड़े पर चढ़ने चले।

मानिकलाल ने फिर हाथ जोड़ कर कहा, 'हुजूर बड़े घर की बात है, हथियार बन्द हो कर जाना ही अच्छा है।'

नये शौकीन खाँ साहब ने सोचा, 'हाँ, ठीक है, मैं जंगी जवान हूँ, बिना हथियार के क्यों जाऊँ? उसके बाद सब हथियारों से लैस हो कर वह घोड़े पर सवार हुए।

निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच कर मानिकलाल ने कहा, 'इसी जगह उतरना होगा। मैं आप के घोड़े को थामे रहता हूँ, आप अन्दर चले जाइये।'

खाँ साहब उतर गये। मानिकलाल ने घोड़े को पकड़ लिया। खाँ साहब मय हथियार के घर के अन्दर चले जा रहे थे, फिर मन में सोचा, हथियार बाँध कर औरत से बातचीत करना अच्छा नहीं मालूम पड़ेगा, यह सोच कर लौट आये और हथियारों को मानिकलाल के पास रख गये। मानिकलाल तो यही चाहता था।

घर में जा कर खाँ साहब ने देखा कि एक तख्तपोश के ऊपर एक बढ़िया बिछौना बिछा हुआ है, उसके ऊपर एक सुन्दरी बैठी है। इतर गुलाब की महक से सारा

घर गूंज रहा है। चारों ओर फूल छिटकाये हुये हैं। सामने एक गुड़गुड़ी पर खुशबूदार तम्बाकू सजा कर रखी है। जूता खोल कर खाँ साहब तख्तपोश पर बैठ गये। बीबी से कुछ मीठी मीठी बातें कीं। उसके बाद पोशाक को खोल कर रख दिया और फूल के पंखे को हाथ में ले कर हवा झलने लगे। फिर गुड़गुड़ी के नैचे को मुँह में लगा कर शौक से तम्बाकू पीने लगे। बीबी ने भी दो-चार प्रेम की बातें कर के उन्हें मोहित कर लिया।

खाँ साहब के एक फूँक तम्बाकू पीते ही मानिकलाल ने आकर दरवाज़ा खटखटाया। बीबी ने कहा, 'कौन है?'

आवाज बदल कर मानिकलाल ने कहा, 'मैं हूँ।'

तब उस चालाक स्त्री ने डर कर खाँ साहब से कहा, 'गज़ब हो गया! मेरे खाविन्द आ गये। मैंने सोचा था, वे अभी नहीं आयेंगे। तुम इस तख्तपोश के नीचे छिप जाओ और मैं उन्हें लौटा देती हूँ।'

मुगल ने कहा, 'यह क्या? मर्द हो कर डर कर छिप जाऊँ? कोई हो, आने दो, अभी कत्ल कर दूँगा।'

जीभ काट कर पानवाली ने कहा, 'यह क्या! मेरे स्वामी को मार कर मेरे खाने-कपड़े का भी रास्ता बन्द कर दोगे? यही तुम्हारी मुहब्बत का नतीजा है? जल्दी से तख्तपोश के नीचे चले जाओ। मैं अभी उन्हें वापस भेज देती हूँ।'

इधर मानिकलाल बार-बार दरवाज़ा खटखटा रहा था। अन्त में खाँ साहब तख्तपोश के नीचे छिप गये। शरीर मोटा था, इसलिये आसानी से नीचे न जा सके। दो एक जगह चमड़ा छिल गया। क्या करे बेचारा, प्रेम के लिये सब कुछ सहना पड़ता है। उसके बाद जा कर पानवाली ने दरवाज़ा खोल दिया।

मानिकलाल के घर में घुसते ही, पहले सिखाये अनुसार पानवाली ने कहा, 'तुम फिर क्यों चले आये? तुमने कहा था कि फिर नहीं आयेंगे।'

मानिकलाल ने पहले की ही तरह आवाज़ बदल कर कहा, 'चाभी यहीं छूट गई है।'

पानवाली ने चाभी खोजने के बहाने खाँ साहब की छोड़ी हुई पोशाक को हाथ में ले लिया। पोशाक ले कर दोनों बाहर निकल आये और दरवाजे की जंजीर चढ़ा ताला लगा दिया? खाँ साहब उस समय तख्तपोशाक के नीचे चूहों के दाँतों के शिकार हो रहे थे।

उसे घर में बन्द कर मानिकलाल ने उसकी पोशाक पहन ली। उसके बाद उसके हथियारों से लैस हो कर उसके घोड़े पर चढ़ कर मुसलमानी छावनी में उसकी जगह लेने चला गया।

चौथा भाग

युद्ध

|१|

चंचल की बिदाई

सबेरे मुगल सेना लैस हो गयी। रूपनगर के किले के सिंहद्वार के सामने बर्छे ढाल, कवचादि से शोभित दढ़ियल घुड़सवारों की कतार खड़ी हुई। पाँच-पाँच घुड़सवारों की एक-एक कतार थी। कतार के पीछे कई कतारें थीं। भौंरों से घिरे हुए विकसित कमल की तरह उनके मुखमण्डल शोभित हो रहे थे, उनके घोड़ों का गर्दन हिलाना बड़ा सुहावना मालूम होता था। लगामें खींचने पर वे अधीर हो उठते थे। घोड़े हिलते-डुलते, नाचते हुए चलने के लिये मचल रहे थे।

सवेरे उठ कर चंचल कुमारी ने स्नान किया और अपने सब रत्न के गहने पहने। निर्मल ने गहनों को पहनाया। चंचल ने कहा, 'सखि, फूल की माला भी पहना दो। मैं चिता पर चढ़ने जा रही हूँ।'

आँखों से गिरते हुए आँसुओं को रोक कर निर्मल ने कहा, 'सखि, मैं रत्न के गहनों को पहना रही हूँ, तुम उदयपुरेश्वरी होने जा रही हो।'

चंचल ने कहा, 'पहनाओ, निर्मल! कुरूपा होकर क्यों मरूँगी? मैं राजा की कन्या हूँ, राजकन्या की तरह सुन्दर हो कर मरूँगी। सुन्दरता के समान और कौन राज्य है? बिना सौन्दर्य के क्या राज की शोभा होती है? पहनाओ।'

निर्मल ने गहनों को पहनाया। फूले हुए वृक्ष की शोभा को भी निन्दित करने वाली चंचल की शोभा को देख कर निर्मल रो उठी, कुछ बोली नहीं। उसके बाद निर्मल का गला पकड़ कर चंचल भी रोने लगी।

चंचल बोली, 'निर्मल, अब तुमसे फिर भेंट नहीं होगी। विधाता ने इतनी विडम्बना क्यों की? देखो, क्षुद्र कांटे का पेड़ जहाँ उगता है वहीं रहता है। मैं क्यों रूपनगर में नहीं रह सकी?'

निर्मल ने कहा, 'तुम जहाँ कहीं रहोगी वहीं मुझसे तुम्हारी भेंट होगी। मेरी भेंट हुए बिना तुम्हारा मरना नहीं होगा और न तुम्हारी भेंट हुए बिना मेरा मरना होगा।'

'मैं तो दिल्ली के रास्ते में मरूँगी।'

'तब दिल्ली के रास्ते में ही मैं तुमसे मिलूँगी।'

'यह क्या, निर्मल तुम कैसे जाओगी?'

चंचल कुमारी अपना वेश-भूषा समाप्त कर महादेव जी के मन्दिर में गयीं। नित्य की भाँति भक्ति-भाव से शिव को पूजा की। पूजा के प्रारम्भ में कहा, 'देवादेव महादेव! मैं मरने जा रही हूँ; किन्तु पूछती हूँ कि प्रभो! बालिका की मृत्यु से तुम्हें इतनी प्रसन्नता क्यों है? मेरे जीवित रहने से क्या तुम्हारी सृष्टि नहीं रहेगी? यदि यही मन में था तो क्यों मुझे राजा की कन्या बना कर संसार में भेजा?'

महादेव की पूजा करके चंचल कुमारी माता के चरणों की वन्दना करने गयीं। माता को प्रणाम कर चंचल बहुत रोयीं। फिर जाकर पिता के चरणों में प्रणाम कर वह खूब रोयीं। उसके बाद सब सखियों से अलग-अलग मिल कर चंचल ने बिदा ली। सबों ने रो-रोकर कुहराम सा मचा दिया। चंचल ने किसी को गहना, किसी को खिलौना, किसी को रुपये पैसे इनाम में दिये। किसी से बोली, 'रोओ मत, मैं फिर आऊँगीं।' किसी से बोली, 'रोओ मत, देखती नहीं मैं पृथ्वीश्वरी होने जा रही हूँ।' किसी से बोली, 'रोओ मत, यदि रोने से दुःख जाता तो रो कर मैं रूपनगर के पहाड़ को आँसूओं में डुबा देती।'

सबसे बिदा लेकर चंचल पालकी में चलने चली। एक हजार घुड़सवार पालकी के आगे और एक हजार पीछे थे। उस रत्नखचित चांदी की पालकी पर जरी का पर्दा लगा था। आसा सोटा लेकर चोपदार अपनी मधुर वाक्यवलि से ग्रामीण दर्शकों को आनन्दित कर रहे थे। चंचल कुमारी पालकी पर चढ़ीं। किले के भीतर से शंख की ध्वनि हुई। फूलों की वर्षा से पालकी भर गयी। सेनापति ने चलने का हुक्म दिया। उसके बाद अकस्मात रास्ता तालाब के पानी की तरह घुड़सवारों से भर गया। लगामों को दाँतों से पीसते हुए नाचते-नाचते घोड़े चले। घुड़सवारों के हथियार झनझनाने लगे।

प्रातःकाल की वायु से प्रफुल्लित हो कर घुड़सवारों में कोई-कोई गा रहे थे। उनमें से सबसे आगे का एक सवार गा रहा था—

शरम भरम से पियारी,
सोमरस वंशीधारी,
झरत नयन से वारि,
न समझे गोपकुमारी।

जोहन बैठे मुरारी,
निहारत राह तुम्हारी ॥'

राजकुमारी के कानों में इस गाने की ध्वनि पहुँची। उन्होंने सोचा—हाय, यदि सवार का गाना कहीं सच होता ! उस समय राजकुमारी राजसिंह को सोच रही थी। वह नहीं जानती थी कि मानिकलाल उनके पीछे यह गीत गा रहा है। मानिकलाल ने बड़े कौशल से पालकी के पीछे जगह ले ली थी।

|२|

निर्मल कुमारी का अथाह जल में कूदना

इधर निर्मल कुमारी ने बड़ा हंगामा किया। चंचल तो रत्नजटित पालकी में चढ़ कर चली गयी। आगे-पीछे दो हजार घुड़सवार अल्लाह की महिमा की ध्वनि से रूपनगर के पहाड़ को गुञ्जायमान करते चले। निर्मल का रोना नहीं रुका। चंचल के बिना निर्मल बड़ी बेचैन हो उठी। महल की ऊँची छत पर चढ़ कर निर्मल देखने लगी। देखा, एक चौथाई कोस में अजगर की तरह घुड़सवारों की कतार पहाड़ी रास्ते से कभी ऊपर कभी नीचे होतीं हुई चली जा रही है। प्रात:काल के सूर्य की किरणों से उनके कन्धों पर उठे हुए बर्छे चमक रहे हैं। बहुत देर तक निर्मल एकटक देखती रही। देखते-देखते आँखें जलने लगीं। उसके बाद आँखों को मीचती हुई छत पर से वह नीचे उतरी। उतर कर सबसे पहले उसने अपने गहनों को कहीं छिपा दिया, किसी ने देखा नहीं। जमा किये धन में से कुछ रुपये निकाल कर अपने पास ले लिये। बस इतना ही ले कर राजमहल से निकल पड़ी। उसके बाद जिस रास्ते में घुड़सवार जा रहे थे, उसी रास्ते से वह अकेली उनके पीछे-पीछे चली।

| ३ |

रण-पण्डित मुबारक

बड़े भारी अजगर की भाँति घूमती-फिरती वह घुड़सवारों की सेना पहाड़ी रास्ते से जा रही थी। जिस दर्रे के पास पर्वत के ऊपर चढ़ कर मानिकलाल ने राजसिंह से भेंट की थी, उसी तङ्ग रास्ते में, बिल में घुसते हुए अजगर की तरह घुड़सवारों की सेना ने प्रवेश किया। घोड़ों की अनगिनत टापों की आवाज से पहाड़ गूँजने लगा। इतना ही नहीं, सवारों के हथियारों की मन्द-मन्द झंकार से उस निर्जन प्रदेश में रोमांचकारी प्रतिध्वनि होने लगी। बीच-बीच में घोड़ों के हिन-हिनाने और सवारों के चिल्लाने से और भी भयङ्कर शब्द हो रहा था। पहाड़ के नीचे जो लता और छोटे छोटे वृक्षादि थे, उनके पत्ते शब्द के आघात से काँपने लगे। उस निर्जन प्रदेश में जो जङ्गली पशु, पक्षी, कीट पतङ्गादि निर्भय होकर रहते थे, वे शब्द सुन कर भाग चले। इस प्रकार घुड़सवारों की कतार उस दर्रे से हो कर चली। अकस्मात् 'धम्' करके एक भयानक शब्द हुआ। जिस जगह शब्द हुआ वहाँ के घुड़सवार कुछ देर तक स्तम्भित होकर खड़े रहे। देखा, पहाड़ की चोटी पर से एक बड़ी चट्टान गिर कर सेना के बीच में पड़ी है। उससे दब कर एक घुड़सवार मरा है और एक आदमी घायल हुआ है।

सब देखते रहे कि मामला क्या है, पर किसी की समझ में नहीं आया। तब तक फौज में एक और चट्टान गिरी। एक दो, तीन, चार, फिर दस, पचीस—फिर एक साथ सैकड़ों चट्टानों की वर्षा होने लगी। बहुत से सवार और घोड़े मर कर तथा घायल होकर गिर पड़े और उनसे वह तङ्ग रास्ता एकदम बन्द हो गया। घोड़े सवारों को ले कर भागने लगे, पर आगे-पीछे रास्ता, सवारों की ठेलम-ठेल से रुका हुआ था। घोड़ों के ऊपर घोड़े, सवारों के ऊपर सवार गिरने लगे। सवार आपस में ही एक दूसरे को मार कर रास्ता साफ करने लगे। कतार टूट गयी, सेना में बड़ी हलचल मच गयी।'

'कहारों होशियार हो जाओ, बाईं ओर चलो,' मानिकलाल ने जोर से चिल्ला कर कहा। जहाँ पालकी में राजकुमारी ओर उनके पीछे मानिकलाल था उसके आगे ही यह कोलाहल मचा था। कहारों को अपनी जान की लगी थी, घोड़े पीछे हट-हट कर उन पर चढ़े चले आ रहे थे। इस पहाड़ी रास्ते की बायीं ओर एक तङ्ग दर्रा था जिससे होकर एक ही घुड़सवार जा सकता था। ज्योंही उसके पास पालकी पहुँची त्योंही यह कोलाहल मचा। यह सब राजसिंह का किया हुआ बन्दोबस्त था। चतुर मानिकलाल ने प्राण भय से भयभीत कहारों को यह रास्ता दिखा दिया।

मानिकलाल की बात सुनते ही कहार अपनी और राजकुमारी की जान बचाने के लिये झट से पालकी को लेकर उस रास्ते से चले।

घोड़ा लेकर मानिकलाल भी साथ-साथ चला। नजदीक के सवारों ने देखा कि जान बचाने के लिये यही एक रास्ता है। तब एक और घुड़सवार मानिकलाल के पीछे पीछे उस राह से चला। इतने ही में ऊपर से एक बड़ा चट्टान लुढ़कता हुआ, अपने शब्द से पहाड़ी प्रदेश को कँपाता हुआ उस दर्रे के मुँह पर आ गिरा और वहीं रुक गया। उससे दब कर दूसरा घुड़सवार घोड़ा समेत चूर-चूर हो गया। अब और कोई उस रास्ते से न जा सका। अकेले मानिकलाल पालकी के साथ अपने इच्छित मार्ग से चला जा रहा था।

उस समय सेनापति हसन अली खाँ मनसबदार सबसे पीछे थे। उस तङ्ग रास्ते के द्वार पर खड़े हो कर अपनी देख-रेख में सेना को चला रहे थे। उसके बाद जब सारी फौज उस तङ्ग रास्ते में घुस आयी तो वह उसके पीछे धीरे-धीरे आ रहे थे। देखा, अनस्मात् फौज की कतार बड़े कोलाहल के साथ पीछे की ओर हट रही है। कारण पूछने पर कोई अच्छी तरह समझा कर न बतला सका। तब सवारों को डाँट डपट कर फिर लौटाने लगे और आप सब से आगे हो कर देखने चले कि मामला क्या है।

किन्तु तब तक सेना रुकी नहीं रही। इस पहाड़ की दाहिनी ओर वाला पहाड़ बहुत ऊँचा और दुर्गम था। वह इस प्रकार ऊँचा खड़ा था कि रास्ते में अंधकार सा हो गया था। राजपूतों ने उस पर चढ़ने का रास्ता ढूँढनिकाला था और उनके पचास जवान उस पर चढ़ कर छिपे बैठे थे। एक-एक आदमी ने दूसरे से चालीस पचास हाथ की जगह लेकर सारी रात पत्थरों के टुकड़े इकट्ठे कर अपने सामने एक-एक राशि लगा रखी थी। इस समय एक-एक पल पर पचासों आदमी पचास चट्टान नीचे घुड़ सवारों पर फेंक रहे थे। एक एक बार पचास-पचास घोड़े या घुड़सवार मरते और घायल होते थे। कौन मर रहे हैं; वे देख नहीं सकते थे। देखने पर भी दुर्गम पहाड़ की चोटी पर चढ़े दुश्मनों को मारना किसी प्रकार सम्भव नहीं था। इसलिए सिवा भागने के मुगल और किसी बात की चेष्टा नहीं करते थे। जो हजार सवार पालकी के आगे थे उनमें जो मरने और घयाल होने से बचे उन्होंने भाग कर अपनी जान बचायी।

पचास राजपूत दाहिनी ओर के ऊँचे पहाड़ पर से पत्थर बरसा थे, और पचास आदमी स्वयं राजसिंह के साथ बाईं ओर वाले कम ऊँचे पहाड़ की चोटी पर छिपे थे। अब तक कुछ भी नहीं कर रहे थे। किन्तु इसी समय उनके कार्य करने का अवसर आया। जहाँ पत्थरों की घनघोर वर्षा हो रही थी, वहीं मुबारक था। वे पहले तो सिपाहियों के पहाड़ी रास्ते से शृङ्खला में निकल जाने का यत्न कर रहे थे। किन्तु

उन्होंने देखा कि छोटे से रास्ते से हो कर राजकुमारी की पालकी चली गयी, केवल एक घुड़सवार उसके साथ गया और एक बड़े चट्टान से उस रास्ते का मुँह बंद हो गया। यह देख कर उनके मन में संदेह हुआ कि मामला और कुछ नहीं है किसी दुष्ट ने राजकुमारी को भगा ले जाने के इरादे से यह सब किया है। तब उन्होंनें करीब के सिपाहियों को बुला कर कहा—चाहे जान चली जाय, परवाह नहीं, पर सौ सिपाही पालकी के पीछे-पीछे जाओ। घोड़े को कुदा-कुदा कर इस पत्थर को पार कर जाओ। चलो मैं भी चलता हूँ। मुबारक घोड़े पर आगे-आगे चले। वे घोड़े को कुदा कर उस रास्ते के द्वार पर पड़े पत्थर पर चढ़ गये। और फिर घोड़े को कुदा कर नीचे उतर पड़े। उनकी देखा-देखी उनके साथ के सवार भी उसी तरह उस तङ्ग रास्ते में घुस गये।

राजसिंह पहाड़ की चोटी पर से यह सब देख रहे थे। जब तक मुगल उस छोटे से रास्ते में एक एक कर घुस रहे थे तब तक उन्होंनें किसी से कुछ नहीं कहा। पर जब वे बिलकुल घुस गये तब पचासों सवारों को लेकर राजसिंह ऊपर से टूट पड़े और लगे मारने। सहसा ऊपर से आक्रमण देख कर मुगल सेना तितर-बितर हो गयी। उनमें से बहुतेरों ने अपने प्राण त्याग दिये। राजपूत सवार ऊपर से मुगलों पर टूट पड़े। जो नीचे थे वह दब कर मर गये, पाँच सात आदमी किसी तरह बच गये। उन्हें लेकर मुबारक लौटे। राजपूतों ने उनका पीछा नहीं किया।

मुबारक के साथ मुगल सवार वेशधारी मानिकलाल भी बाहर निकल आया। आकर एक मरे हुए सवार के घोड़े पर चढ़ वह छिन्न भिन्न मुगल सेना के बीच कहाँ छिप गया, कोई देख न सका।

जिस रास्ते से मुगल उस पहाड़ी मार्ग में घुसे थे, मानिकलाल उसी रास्ते से बाहर निकला। जिन्होंने उसे देखा उन्होंने समझा कि वह भाग रहा है। मानिकलाल गली के रास्ते से बाहर निकल कर तीर की तरह घोड़ा दौड़ा कर रूपनगर के किले की ओर चला।

मुबारक ने फिर पत्थर के टुकड़े को लांघ कर लौट आने का हुक्म दिया। कहा, 'इस पर चढ़ने में कोई तकलीफ नहीं है। सब कोई घोड़े के साथ पहाड़ पर चढ़ जाओ। डाकू बहुत थोड़े है। आज उनका नामो निशान मिटा दूँगा।'

तब पाँच सात मुगल 'दीन' 'दीन' पुकारते हुए बाई ओर के पहाड़ पर चढ़ने लगे। मुबारक सेनापति था। मुगलों के साथ दो तोपें थीं। एक को ठेलठाल कर वे पहाड़ पर चढ़ाने लगे। जो दूसरी छोटी तोप थी उसे जंजीर में बांध हाथी से खिचवा कर उस पत्थर के बड़े टुकड़े पर रखा जिसने तङ्ग रास्ते का मुँह रोक रखा था।

|४|

जयशीला चचंल कुमारी

तब 'दीन' 'दीन' पुकारते हुए काल रूप यम के तमाम पाँच सौ मुगल सवार पहाड़ पर चढ़ गये। पहाड़ बहुत कम ऊँचा था। चोटी पर पहुँचने में उन्हें देर न लगी। किन्तु पहाड़ की चोटी पर आ कर उन्होंने देखा तो कहीं कोई न था। जिस दर्रे से जा कर हार मान वे लौट आये थे, मुबारक ने अनुमान किया कि डाकू उसी दर्रे में हैं। उसकी विवेचना के अनुसार वे डाकू राजपूतों के सिवा और कोई नहीं थे। मुबारक ने मन में स्थिर किया कि दर्रे के दूसरे दरवाजे को बन्द कर डाकुओं का विनाश करूँगा। हसन अली उस दरवाजे पर तोप लगाये बैठे हैं, यह सोच कर वे उस दर्रे के किनारे-किनारे अपनी सेना ले चले। क्रमशः रास्ता चौड़ा होता आया। तब पहाड़ के पास आ कर मुबारक ने देखा कि चालीस से कम ही राजपूत पालकी के साथ जा रहे हैं। खून से उनके शरीर लथ पथ हो रहे हैं। मुबारक समझ गये कि इन लोगों को बाहर जाने का रास्ता अवश्य मालूम है। इन पर नजर रखते हुए धीरे-धीरे जाने में दर्रे के द्वार पर पहुँच जाऊँ गा। पहाड़ पर ऐसा होने से मैं भी उस तरह का कोई दूसरा रास्ता ढूँढ लूँगा जिस तरह राजपूत पहाड़ पर से उतरे थे। राजपूत पहले ऊपर थे। पीछे नीचे उतर आये थे। इसके हजारों चिह्न दिखायी पड़ते थे। कुछ दूर जाकर देखा कि पहाड़ ढालुआ है। सामने बाहर निकलने का रास्ता है। मुबारक ने सवारों को तीर की तरह चला कर पहाड़ के नीचे आ दर्रे का दरवाजा बन्द कर दिया। राजपूत दर्रे से तीरछे हो कर जा रहे थे। इसलिये वे पहले उसके द्वार पर नहीं सहुँच सके। मुगलों ने राह को रोक कर दर्रे के मुँह पर तोप लगा दी और करीब पहुँचते हुए राजपूतों का उपहास करने के लिये बज्र की तरह गरज उठे। 'दीन' 'दीन' के शब्द से पहाड़ गुँजायमान होने लगा। जवाब में दर्रे के दूसरे मुँह पर तोप लेकर बैठे हसन अली ने भी आवाज की। तोप की भयंकर आवाज पहाड़ से टकराने लगी। सुन कर राजपूत काँप उठे। उनके पास तोप नहीं थी।

राजसिंह ने देखा कि अब किसी प्रकार रक्षा का उपाय नहीं है। उनकी सेना की बीस गुनी सेना ने रास्ते के दोनों मुँहों को बन्द कर दिया है और कोई दूसरा रास्ता नहीं। केवल यमपुरी का रास्ता खुला है। राजसिंह ने स्थिर किया कि इसी रास्ते से जाऊँगा, तब सैनिकों को एकत्र कर वह कहने लगे, 'भाइयो, मित्रो जो कोई मेरे साथ हो, मैं सरल अन्तःकरण से तुम लोगों से क्षमा चाहता हूँ। मेरे ही दोष से

यह विपद आयी है, पहाड़ से उतर कर ही मैंने गलती की। इस गली के दोनों मुँह बन्द हैं—दोनों मुँहों पर तोपों की आवाज सुनता हूँ ! दोनों मुँहों पर हमसे बीस गुने मुगल खड़े हैं, इसमें संदेह नहीं। अतः हमारे बचने की कोई सम्भावना नहीं, तो इसमें क्षति ही क्या है । राजपूत होकर कौन मरने से मुँह मोड़ेगा ? सब मरेंगे, एक भी नहीं बचेगा। पर मार करके मरेंगे। जो मरने के पहले आगे के दो मुगलों को मारकर न मरेगा वह राजपूत नहीं है। राजपूतो ! सुनो, इस रास्ते से घोड़े नहीं जा सकते। सब घोड़ों को छोड़ दो। आओ, हम सब हाथ में तलवार लेकर तोप पर चढ़ चलें तोप तो हमारी ही होगी—उसके बाद देखा जायगा कि कितने मुगलों को मार कर हम मर सकते हैं।'

तब राजपूत घोड़े से उतर पड़े और तलवार निकाल कर हाथ में ले 'महारानी की जय,' कहते हुए एक जगह खड़े हो गये। उनकी दृढ़ पतिज्ञ मुख कान्ति को देखकर राजसिंह ने निश्चय किया कि चाहे प्राण रक्षा न हो, पर एक भी राजपूत नहीं हटेगा। सन्तुष्ट होकर राजसिंह ने कहा, 'दो दो की कतार में हो जाओ।'

घोड़े की पीठ पर वे एक एक की कतार में जा रहे थे, अब पैदल दो दो की कतार में चले। राणा सबसे आगे चले। अपनी मृत्यु को निकट देख कर प्रफुल्लि-चित्त थे।

इसी समय सहसा पहाड़ी रास्ते को कंपाते हुए राजपूतों ने गम्भीर शब्दों में 'माता जी की जय' 'काली माई की जय' के नारे लागाये।

अत्यन्त हर्षसूचक गम्भीर स्वर को सुन कर राजसिंह ने पीछे फिर कर देखा कि बात क्या है ? देखा, दोनों ओर राजपूत सेना कतार बाँध कर आ रही है। बीच में विशाल-लोचना, सहास्य वदना कोई देवी आ रही है। जान पड़ता था किसी देवी ने मानवीमूर्ति धारण किया है अथवा किसी मानवी को विधाता ने देवी रूप में गढ़ दिया है। राजपूतों ने मन में सोचा कि चित्तौर की अधिष्ठात्री, राजपूतकुलरक्षिणी भगवती ने इस संकट काल में राजपूतों की रक्षा करने के लिये स्वयं रणभूमि में पदार्पण किया है। इसीलिये वे जयध्वनि कर रहे थे।

राजसिंह ने देखा—यह तो मानवी है, पर साधारण मानवी नहीं है। पुकार कर पूछा, 'देखो, पालकी कहाँ है ?'

एक आदमी ने पीछे से कहा, 'पालकी इधर है।'

राणा ने कहा, 'देखो, पालकी खाली तो नहीं है ?'

सैनिक ने कहा, 'पालकी खाली है। कुमारी जी महाराज के सामने है।'

चंचल कुमारी ने तब राजसिंह को प्रणाम किया। राणा ने पूछा, 'राजकुमारी, आप यहाँ क्यों ?'

चंचल बोली, 'महाराज, आप को प्रणाम करने के लिये आयी हूँ। प्रणाम करती

हूँ। एक भिक्षा माँगती हूँ, मैं याचिका हूँ—स्त्रियों की शोभा जो लज्जा है, वह मुझ में नहीं है, क्षमा कीजियेगा। जो भी माँगती हूँ उससे निराश मत कीजियेगा।'

चंचल कुमारी ने हँसी व हाथ जोड़ कर कातर स्वर में यह बात कही। राजसिंह ने कहा, 'तुम्हारे लिये इतनी दूर आया हूँ। मेरे पास तुम्हारे लिये कुछ अदेय नहीं है। रूपनगर की राजकन्या! क्या माँगती हो?'

चंचल कुमारी ने फिर हाथ जोड़ कर कहा, 'मैंने अपने को चंचल बुद्धि बालिका कह कर आपको आने के लिये लिखा था, किन्तु मैं आप ही अपने मन को नहीं समझ सकी हूँ। मैं इस समय मुगल सम्राट के ऐश्वर्य की बात सुन कर मुग्ध हो गयी हूँ। आप अनुमति दीजिये, मैं दिल्ली जाऊँगी।'

राजसिंह विस्मित और प्रसन्न हुए। बोले, 'तुम दिल्ली जाना चाहती हो तो जाओ, मुझे कोई आपत्ति नहीं है, लेकिन तुम जा नहीं सकोगी। यदि मैं इस समय तुम्हें छोड़ दूँ तो मुगल समझें कि मैंने डर कर तुम्हें छोड़ दिया है। पहले लड़ाई हो लेने दो, उसके बाद तुम जाना। यह मत समझो कि तुम्हारे मन की बात मैंने नहीं समझी। मेरे जीते जी तुम्हें दिल्ली नहीं जाना होगा। जावनो, आगे बढ़ो।'

उसके बाद चंचल कुमारी ने मन्द-मन्द हँसते हुए, मर्मभेदी मृदुल कटाक्ष के साथ अपने दाहिने हाथ की कनिष्ठा अंगुल में पहनी हुई हीरा जड़ी अंगूठी को बायें हाथ की दो अंगुलियों से घुमाते हुए राजसिंह की ओर देख कर कहा, 'महाराज, इस अंगूठी में विष है। यदि आप मुझे दिल्ली न जाने दगे तो मैं विष खा लूँगी।'

राजसिंह तब हँसे। बोले, 'राजकुमारी मैं बहुत देर से सोच रहा हूँ, तुम रमणी कुल में धन्य हो। लेकिन जो तुम सोच रही हो वह नहीं हो सकता। आज राजपूत बच नहीं सकते। आज राजपूतों को मरना ही होगा। नहीं तो राजपूत के नाम में एक बड़ा कलंक लग जायगा। जब तक मर नहीं जाते तब तक तुम हमारी बन्दिनी हो। हम लोगों के मर जाने पर जहाँ तुम्हारी इच्छा हो, जाना!'

चंचल कुमारी हँसी और अत्यन्त प्रेम-प्रफुल्ल, भक्तिपूर्ण, साक्षात महादेव के ओमघ वाण की नाईं एक कटाक्ष वाण राजसिंह के ऊपर छोड़ा। मन में कहने लगीं,- वीरचूड़ामणि! आज मैं तुम्हारी दासी हुई। यदि तुम्हारी दासी न हो सकूँगी तो चंचल कभी भी अपने प्राण नहीं रख सकती। बोली, 'महाराज, जिसे दिल्लीश्वर ने रानी बनाने की इच्छा की थी वह किसी की बन्दिनी नहीं हो सकती। लीजिये, मैं मुगल सेना के सामने जा रही हूँ—देखें मुझे रोक रखने का किसमें साहस है?'

यह कह कह चंचल कुमारी—वह जीवित देवी मूर्ति—राजसिंह के पास से होकर दर्रे के मुँह की ओर चलीं। उन्हें छूने को किस में सामर्थ्य थी? हँसते हँसते; हिलते डोलते वह स्वर्णमूर्त्ति उस दर्रे के मुँह में चली गयी।

अकेली चंचकुमारी उस धधकती हुई अग्नि के सदृश क्रुद्ध मुगल सेना के सामने

जा खड़ी हुई। जहाँ रास्ते को रोक कर तोप खड़ी थी—वज्रध्वनि के साथ आग उगल रही थी—वह अलौकिक सुन्दरी खड़ी हुई। देखकर विस्मित हो मुगल सेना ने समझा शायद पहाड़ पर की परी आई है।

मनुष्य की भाषा में बात करके चंचल कुमारी ने उनका भ्रम दूर कर दिया। बोली 'इस सेना का सेनापति कौन है ?'

स्वयं मुबारक दर्रे में राजपूतों की प्रतीक्षा कर रहे थे। उन्होंने कहा, 'ये सब मुझ नाचीज की ही मातहत में हैं, आप कौन हैं ?'

राजकुमारी ने कहा, 'मैं एक साधारण स्त्री हूँ। आप से मेरी एक भिक्षा है। यदि आप एकान्त में सुनें तो मैं कहूँ।'

मुबारक ने कहा, 'तब इस दर्रे से आगे चलिये।'

चंचल कुमारी वहां से आगे की ओर चली और मुबारक उसके पीछे-पीछे।

जहाँ कोई आदमी बात न सुन सके वहाँ आकर चंचल कुमारी कहने लगी, 'मैं रूपनगर की राजकन्या हूँ। बादशाह ने मेरे साथ शादी करने की इच्छा से मुझे लिवा जाने के लिये सेना भेजी है। क्या आप इस बात का विश्वास करते हैं ?'

'आप को देख कर ही उस बात का विश्वास होता है।'

'मुगल से शादी करने की मेरी इच्छा नहीं है। ऐसा करने से मैं अपने धर्म से पतित हो जाऊँगी। किन्तु मेरे पिता बलहीन हैं, इसीलिये उन्होंने मुझे आपके साथ भेज दिया। उनकी ओर से किसी प्रकार का भरोसा न देख कर मैंने राजसिंह के पास दूत भेजा था। मेरे दुर्भाग्यवश वे केवल पचास सिपाही ले कर आये हैं। उनका बलवीर्य तो आपने देख ही लिया न ?'

मुबारक चौंक कर बोले, 'एं! पचास सिपाहियों ने इतने मुगलों को मार दिया ?'

'कुछ आश्चर्य नहीं—मैंने सुना है हल्दीघाटी में भी इसी प्रकार की एक घटना घटी थी। खैर, जो कुछ हो, इस समय राजसिंह आपसे हार गये हैं। उन्हें परास्त देख कर ही मैं अपने आप गिरफ्तार होने आयी हूँ। मुझे आप दिल्ली ले चलिये, लड़ाई करने की अब जरूरत नहीं।'

मुबारक ने कहा, 'समझ गया, आप अपने सुख को छोड़ कर राजपूतों के प्राण बचाना चाहती हैं। क्या उनकी भी यही इच्छा है ?'

'ऐसा कभी हो सकता है ? मुझे यदि आप ले चलेंगे तो भी वे युद्ध करना नहीं छोड़ेंगे। मेरा आप से अनुरोध है कि मुझसे सहमत हो आप उनके प्राणों की रक्षा कीजिये।'

'यह मैं कर सकता हूँ, पर डाकुओं को जरूर सजा देनी चाहिए। मैं उन सबों को कैद करूँगा।'

'आप सब कर सकते हैं केवल यही नहीं कर सकते। आप उन्हें जान से मार सकते हैं, किन्तु कैद नहीं कर सकते। उन सबों ने मरने की दृढ़ प्रतिज्ञा कर ली है—वे सब मरेंगे।'

'यह मैं मानता हूँ—पर क्या आपने दिल्ली जाने का निश्चय कर लिया है?'

'आप के साथ जाने का निश्चय कर लिया है, पर दिल्ली पहुँचूँगी या नहीं, इसमें संदेह है।'

'यह क्यों?'

'आप लोग लड़ कर मरना जानते हैं, तो क्या हम स्त्रियाँ केवल यों ही मरना जानती हैं?'

'हमारे तो शत्रु हैं, इसलिये हम मरते हैं। संसार में क्या आपके भी शत्रु हैं?'

'मैं स्वयं—'

'हमारे शत्रुओं के पास तो कई तरह के हथियार रहते हैं—और आप के पास?'

'विष।'

'कहाँ है?'

यह कह कर मुबारक चञ्चल कुमारी के मुँह की ओर देखने लगे। यदि और कोई वहाँ होता तो वह अपने मन में कहता कि आँखों को छोड़ कर और कहीं विष है क्या? किन्तु मुबारक उस ढङ्ग के आदमी नहीं थे। वह राजसिंह की ही तरह सच्चे वीर पुरुष थे। उन्होंने कहा, 'माँ, आप आत्महत्या क्यों करेंगी? यदि आप दिल्ली जाना न चाहेंगी तो किसकी सामर्थ्य है कि आपको ले जाय? यदि स्वयं दिल्लीश्वर भी होते तो आपके ऊपर जोर नहीं दिखा सकते, हमलोग किस गिनती में हैं। आप निश्चिन्त रहें। किन्तु इन राजपूतों ने बादशाह की फौज पर हमला किया है, मैं मुगल सेनापति हो कर उन्हें कैसे माफ कर दूँगा?'

'माफ करने की कोई बात नहीं है, आप लड़ाई कीजिये।'

इसी समय राजपूतों को ले कर राजसिंह वहाँ आ पहुँचे। तब राजकुमारी कहने लगीं, 'लड़ाई कीजिये, राजपूतों की कन्यायें भी मरना जानती हैं।'

मुगल सेनापति के साथ निर्लज्जा चञ्चल क्या बात कर रही है उसे सुनने को राजसिंह राजकुमारी की बगल में आ खड़े हुए। उसके बाद चञ्चल ने हाथ बढ़ा कर हँसते हुए कहा, 'महाराजाधिराज! आपकी कमर में जो तलवार लटक रही है उसे राज-प्रसाद स्वरूप दासी को देने की दया दिखलाइये।'

राजसिंह ने हँस कर कहा, 'मैं समझता हूँ, तुम सचमुच भैरवी हो।'

यह कह कर राजसिंह ने कमर से तलवार निकाल कर चञ्चल कुमारी के हाथ में दे दी।

देखकर मुगल जोर से हँसा । चंचल कुमारी की बात का कुछ जवाब नहीं दिया। केवल राजसिंह के मुंह की ओर देख कर बोला, 'उदयपुर के वीर कितने दिनों से स्त्रियों द्वारा रक्षित होते आ रहे हैं ?'

राजसिंह के दीप्त नेत्रों से आग की चिनगारियाँ निकलने लगीं । उन्होंने कहा, 'जब से मुगल बादशाह अबलाओं पर अत्याचार करने लगे हैं तबसे ही राजपूत कन्याओं की बाहों में बल आ गया है ।'

उसके बाद राजसिंह ने सिंह की नाईं गर्दन हिलाते हुए स्वजन वर्ग की ओर फिर कर कहा, 'राजपूत वाग्युद्ध में कुशल नहीं होते । साधारण सैनिकों के साथ वाग्युद्ध करने का समय भी नहीं है, व्यर्थ समय गँवाने से कोई मतलब नहीं । चींटियों की तरह इन मुगलों को पीस डालो ।'

तब तक दोनों सेनायें शीघ्र बरसने वाली घटा की नाईं स्तम्भित खड़ी थीं। अपने-अपने मालिकों की आज्ञा बिना कोई कुछ नहीं कर सकते थे । इसी समय राणा की आज्ञा पाकर 'माता जी की जय' कहते हुए राजपूत जल-प्रवाह की भांति मुगल सेना पर टूट पड़े । इधर मुबारक की आज्ञा पा कर मुगल 'अल्ला हो अकबर' कहते हुए उनको रोकने के लिये उद्यत हुए । किन्तु सहसा दोनों सेनायें चुपचाप खड़ी हो गयीं । देखा, उस रणभूमि में दोनों सेनाओं के बीच तलवार उठा कर स्थिरमूर्ति चंचल कुमारी खड़ी है, वहाँ से हटती नहीं है ।

चंचल कुमारी जोर-जोर से बोलने लगीं, 'जब तक कोई एक दल यहाँ से हट नहीं जाता तब तक मैं यहाँ से हिल नहीं सकती । पहले मुझे न मार कर कोई भी हथियार नहीं चला सकता ।'

राजसिंह ने क्रोधित होकर कहा, 'तुम यह अनुचित कर रही हो । अपने ही हाथों से क्यों राजपूत-कुल में कलंक लगा रही हो ? लोग कहेंगे कि आज राजसिंह ने स्त्री की सहायता से अपनी जान बचायी है ।'

'महाराज ! आपको मरने से कौन रोकता है ? केवल पहले मैं मरना चाहती हूँ। जो इस अनर्थ की जड़ है, उसे ही सबसे पहले मरने का अधिकार है ।'

चंचल वहाँ से टली नहीं, मुगलों ने बन्दूकें उठा ली थीं, फिर नीचे कर लीं । चंचल कुमारी के कार्य को देख कर मुबारक मुग्ध हो गये । तब दोनों सेनाओं को सम्बोधन करते हुए मुबारक ने कहा, 'मुगल बादशाह औरतों के साथ लड़ाई नहीं करते । इसलिए मेरा कहना है कि हमलोग इस सुन्दरी से हार मान कर लड़ाई छोड़ कर चले जायँ। राणा राजसिंह के साथ लड़ाई में हार-जीत का फैसला किसी और मैदान में होगा । मैं राणा से अनुरोध करता हूँ कि उस बार साथ में औरत न ले आयें ।'

चंचल कुमारी मुबारक के लिये चिन्तित हुई । मुबारक उस समय उनके पास ही अपने घोड़े पर चढ़ रहे थे । चंचल कुमारी ने उनसे कहा, 'साहब, मुझे छोड़ कर क्यों

जा रहे हैं ? मुझे ले जाने के लिये दिल्लीश्वर ने आपको ही भेजा था । यदि आप न ले जायेंगे तो बादशाह क्या कहेंगे ?'

मुबारक ने कहा, 'बादशाह से भी बड़े एक हैं, उन्हीं के सामने इसका जवाब दूंगा ।'

'वह तो परलोक की बात है, इस लोक में क्या होगा ?'

मुबारक इस लोक में किसी से नहीं डरता । ईश्वर आपको सकुशल रखें । अब मैं चलता हूँ ।'

यह कह कर मुबारक घोड़े पर चढ़े । वह अपनी सेना को पीछे लौट जाने का हुक्म दे रहे थे कि इसी समय पीछे की ओर एकबारगी ही सौ मुगल सिपाही धराशायी हो गये ।

मुबारक ने देखा, घोर विपद आयी ।

|५|

हरण और अपहरण में दक्ष मानिकलाल

मानिकलाल पहाड़ी रास्ते से निकलते ही घोड़े को दौड़ा कर सीधे रूपनगर के किले में जा पहुँचा । रूपनगर के राजा के कुछ सिपाही थे । वे वेतन भोगी नौकर नहीं थे । खेती-बारी करते थे, राजा की बुलाहट आने पर ढाल, तलवार, लाठी-सोंटा लेकर आ हाजिर होते । सबके पास एक-एक घोड़ा था । मुगल सेना के आने पर राजा ने उन्हें बुला भेजा था । प्रकाश रूप में बुलाने का कारण था मुगल सेना का सम्मान और खबरदारी आदि करना, गुप्त रूप में यह अभिप्राय था कि यदि मुगल सेना कोई उपद्रव खड़ा करेगी तो उनका निवारण किया जायगा । बुलाते ही राजपूत, ढाल, तलवार और घोड़े ले कर किले में आ उपस्थित हुए । राजा ने अपने अस्त्रागार से उन्हें हथियार दे कर सजाया । उन्होंने मुगल सेना की नाना विधि आवभगत करते हुए हँसी खुशी के साथ कितने ही दिन बिताये । उसके बाद जब उस दिन प्रातःकाल मुगल सेना अपनी छावनी उठा कर राजकुमारी को साथ ले चली तो रूपनगर के सैनिकों को भी अपने-अपने घर जाने की आज्ञा मिली । तब उन्होंने अपने घोड़ों को सजाया । उसके बाद हथियारों को राजा के अस्त्रागार में जमा करने के लिये ले आये । जाने के समय स्वयं राजा उन्हें स्नेह-सूचक शब्दों में बिदा दे रहे थे । उसी समय मानिकलाल पसीने से तर-बतर घोड़े पर सवार हो कर वहाँ आ उपस्थित हुआ ।

मानिकलाल उसी मुगल सिपाही के वेश में था। एक मुगल सिपाही घबराया हुआ किले में लौट आया है, यह देख कर सब को विस्मय हुआ। राजा ने पूछा, 'क्या खबर है ?'

मानिकलाल ने प्रणाम करने कहा, 'महाराज, बड़ी गड़बड़ी मच गयी है। पाँच हजार डाकुओं ने आ कर राजकुमारी को घेर लिया है। जनाब हसन अली खाँ साहब ने मुझे आप के पास भेजा है। वे जी-जान से लड़ाई कर रहे हैं, पर कुछ और सिपाहियों की मदद के बिना उनकी रक्षा नहीं हो सकती। उन्होंने आप से मदद माँगी है !'

सैनिकों से कहा, 'तुम्हारे घोड़े तैयार हैं, हथियार हाथ में ही हैं। तुम सब सवार हो कर इसी समय लड़ने चले जाओ। मैं स्वयं तुम्हें ले कर चलता हूँ।'

मानिकलाल ने कहा, 'यदि आप मेरे कसूर को माफ करें तो मैं एक अर्ज करूँ। मुझे इनको ले कर आगे-आगे चलने दीजिये। महाराज, आप कुछ और सिपाहियों को एकत्र कर पीछे से आइये। डाकुओं की संख्या पाँच हजार है। कुछ और सिपाहियों के बिना कुशल पाने की सम्भावना नहीं है।'

स्थूल बुद्धि राजा ने इसे स्वीकार कर लिया। हजार सिपाहियों को ले कर मानिकलाल आगे आगे चला। राजा और सिपाही जुटाने के लिये किले में ही रह गये। मानिकलाल रूपनगर की सेना को ले कर युद्धक्षेत्र की ओर चला।

राह चलते-चलते मानिकलाल ने एक छोटा ना लाभ प्राप्त किया। रास्ते के एक किनारे में एक पेड़ के नीचे एक स्त्री पड़ी थी। शायद किसी दुःख से पीड़ित था। घुड़सवार सेना को दौड़ते हुए जाते देख कर वह उठ बैठी। खड़े होने की चेष्टा नहीं की। वह भागना चाहती थी, पर भाग न सकी। उसे निर्बल देख कर मानिकलाल घोड़े से उतर कर उसके पास गया। जा कर देखा, स्त्री अत्यन्त सुन्दरी है। उससे पूछा, 'तुम कौन हो ? यहाँ कैसे पड़ी हो ?'

युवती ने पूछा, 'आप लोग किसके सिपाही हैं ?'

मानिकलाल ने कहा, 'मैं राणा राजसिंह का सेवक हूँ।'

युवती ने कहा, 'मैं रूपनगर के राजा की दासी हूँ।'

'तब तुम यहाँ कैसे आयीं ?'

'राजकुमारी को मुगल दिल्ली ले जा रहे हैं। मैं उनके साथ जाना चाहती थी, किन्तु मुझे साथ ले जाने के लिये वे राजी नहीं हुई। मुझे छोड़ कर चली आई हैं। इसीलिये मैं पैदल उनके पास जा रही थी।'

मानिकलाल ने कहा, 'इसी से थक कर यहाँ बैठी हो ?'

निर्मल कुमारी ने कहा, 'बहुत दूर से पैदल चली आ रही हूँ, अब नहीं चल सकती।'

रास्ता कुछ अधिक नहीं था, पर निर्मल कभी पैदल नहीं चली थी, उसके लिये इतना ही बहुत था।

'तो अब क्या करोगी ?'

'क्या करूँगी ! यहीं मरूँगी ?'

'छिः ! मरोगी क्यों ? क्यों नहीं राजकुमारी के साथ जातीं ?'

'किस तरह जाऊँ ? देखते नहीं, मुझसे पैदल चला नहीं जाता !'

'क्यों, घोड़े पर चलो।'

निर्मल ने हँस कर कहाँ, 'घोड़े पर !'

'क्या हर्ज है ?'

'क्या मैं सवार हूँ ?'

'न सही !'

'अच्छा, कुछ आपत्ति नहीं, तो भी एक बात है—मैं घोड़े पर चढ़ना नहीं जानती।'

'उसके लिये कोई रुकावट नहीं पड़ेगी !'

'तुम्हारा घोड़ा मिट्टी का है या कल का बना है ?'

'मैं तुम्हें पकड़े रहूँगा।'

निर्मल निर्लज्ज हो कर रसीली बातें कर रही थी, सुन कर मुँह फिरा लिया। उसके बाद भौहें टेढ़ी की। क्रोध करके बोली, 'आप अपना काम देखिये। मैं इसी पेड़ के नीचे पड़ी रहूँगी। राजकुमारी से भेंट करने की मुझे जरूरत नहीं।'

मानिकलाल ने देखा, युवती बड़ी सुन्दरी है। वह अपना लोभ संवरण न कर सका। बोला, 'हाँ, यह तो बताओ, तुम्हारा ब्याह हुआ है ?'

रसीली निर्मल मानिकलाल के रङ्ग को देख कर हँसी। बोली, 'नहीं।'

'तुम्हारी जाति क्या है ?'

'मैं राजपूत की लड़की हूँ।'

'मैं राजपूत का लड़का हूँ। मेरे भी स्त्री नहीं है, एक छोटी लड़की है, मैं उसके लिये एक माँ की खोज में हूँ। क्या तुम उसकी माँ बनोगी ? मुझसे ब्याह करोगी ? ऐसा होने से मेरे साथ घोड़े पर चढ़ने में कोई आपत्ति न होगी।'

'शपथ करो।'

'क्या शपथ करूँ।'

'तलवार छू कर शपथ करो कि तुम मेरे साथ विवाह करोगे।'

मानिकलाल ने तलवार छू कर कहा, 'यदि आज की लड़ाई में बच जाऊँगा तो मैं तुमसे विवाह करूँगा।'

निर्मल ने कहा, 'तो चलो, घोड़े पर चढ़ती हूँ।'

मानिक लाल ने तब प्रसन्न हो कर निर्मल को घोड़े पर चढ़ा लिया और बहुत सावधानी से उसे पकड़ कर घोड़े को आगे बढ़ाया।

|६|

फलभोगी राणा

युद्धक्षेत्र के पास ही एक एकान्त स्थान में निर्मल को उतार, उसे वहीं बैठने को कह कर मानिकलाल वहाँ गया जहाँ राजसिंह और मुबारक में युद्ध हो रहा था। वह ठीक मुबारक खाँ के पीछे जा खड़ा हुआ।

मानिकलाल यह देख कर नहीं गया था कि वहाँ लड़ाई हो रही है। राजसिंह ने दर्रे में प्रवेश किया तभी अकस्मात् उसे शङ्का हुई कि मुगल दर्रे के इस द्वार को बन्द करके राजसिंह को विनष्ट कर देंगे। इसीलिये वह रूपनगर सैन्य संग्रह करने के लिये गया था। इसीलिये वह इस ओर रूपनगर की सेना लेकर आ खड़ा हुआ। आते ही उसने सोचा, यदि राजपूत मेरे प्रति अविश्वास करेंगे तो मरने में कुछ विलम्ब नहीं है। तब मानिकलाल ने मुबारक की सेना की ओर उँगली दिखा कर कहा, 'यही सब डाकू हैं—इन्हे मार गिराओ।'

सिपाहियों में किसी किसी ने कहा, 'यह तो मुसलमान हैं?'

मानिकलाल ने कहा, 'क्या मुसलमान लुटेरे नहीं होते? हिन्दू ही चोर डाकू होते हैं? मारो इन्हें।'

मानिकलाल का हुक्म पाते ही एक साथ हजार बन्दूकों से शब्द हुआ।

मुबारक ने पीछे फिर कर देखा कि कहीं से हजार घुड़सवार आ कर उन पर हमला कर रहे हैं। मुगलों ने डर कर फिर लड़ाई नहीं की। जिधर पाया उसी ओर वे भाग चले। मुबारक उन्हें नहीं रोक सके तब राजपूतों ने 'माता जी की जय' कहते हुए उनका पीछा किया।

मुबारक की सेना तितर-बितर हो कर पहाड़ पर चढ़ कर भागने लगी। रूप नगर की सेना उसके पीछे पीछे दौड़ती हुई पहाड़ पर चढ़ने लगी। सेना को लौटाने जाते हुए मुबारक सहसा अदृश्य हो गये।

इसी समय मानिकलाल ने विस्मित राजसिंह के पास आ प्रणाम किया। राणा ने पूछा, 'मानिकलाल, यह क्या मामला है? कुछ समझ में नहीं आता। तुम कुछ जानते हो?'

मानिकलाल ने हँस कर कहा, 'जानता हूँ, जब मैंने देखा कि महाराज दर्रे के रास्ते में उतरे हैं तभी मैं समझ गया कि अब सर्वनाश हुआ, प्रभु की रक्षा के लिये हमें एक और ठगी करनी चाहिये।'

यह कह कर मानिकलाल ने राणा को जो-जो हुआ था, कह सुनाया। प्रसन्न हो कर राणा ने मानिकलाल को गले से लगा लिया और कहा, 'मानिकलाल! तुम वास्तव में प्रभुभक्त हो। तुमने जो काम किया है, यदि मैं कभी उदयपुर लौट कर चलूँगा, तो उसका समुचित पुरस्कार दूँगा, किन्तु तुमने मुझे बड़ी लालसा से वञ्चित कर दिया। आज मैं मुसलमानों को दिखा देता कि राजपूत किस तरह मरना जानते हैं।'

मानिकलाल ने कहा, 'महाराज! मुगलों को शिक्षा देने के लिये आप का दास ही काफी है। उसकी गिनती राजकार्य में नहीं है। अब उदयपुर का रास्ता लीजिये। राजधानी को छोड़ कर पहाड़-पहाड़ घूमना ठीक नहीं। इस समय राजकुमारी को लेकर आप स्वदेश की यात्रा कीजिये।'

राजसिंह ने कहा, 'मेरे कितने ही साथी अभी भी उस ओर पहाड़ पर ही हैं—उन्हें नीचे उतार कर साथ ले जाना होगा।'

मानिकलाल ने कहा, 'मैं उन्हे लेकर आऊँगा। आप आगे चलिये। रास्ते में हमसे फिर भेंट होगी।'

राजा ने सहमत होकर चञ्चल कुमारी के साथ उदयपुर की ओर प्रस्थान किया।

|७|

स्नेहमयी बुआ

राणा को विदा कर मानिकलाल रूपनगर की सेना के पीछे-पीछे पहाड़ पर चढ़ा। रूपनगर की सेना से भगाये जाने पर मुगलों में जो जहाँ पाया वहीं भाग गया। तब मानिकलाल ने रूपनगर की सेना के सिपाहियों से कहा—अब क्यों व्यर्थ परिश्रम कर रहे हो? काम हो गया, रूपनगर चले जाओ। सैनिकों ने भी देखा—ठीक ही है, सामने दुश्मन नहीं दीख पड़ते हैं। वह यह भी समझ गये कि मानिकलाल ने उनके साथ एक चाल चली थी। अब जो हो गया, सो हो गया। दूसरा कोई उपाय न देख कर वे लूट-पाट मचाने लगे और लूट के माल को ले कर प्रसन्न चित्त हो, हँसते हँसते

बादशाह की जय-ध्वनि करते हुए विजय गर्व के साथ अपने घर की ओर चले। एक क्षण में ही पहाड़ी रास्ता सुनसान हो गया। केवल घायल तथा मरे हुए आदमी और घोड़े पड़े थे। यह देख कर जो राजपूत ऊँचे पहाड़ पर से पत्थर फेंक रहे थे वे नीचे उतर आये। कहीं किसी को न देख कर उन्होंने समझा कि राणा बाकी सिपाहियों को लेकर चले गये हैं। वे भी राणा की खोज में उसी रास्ते से चले। रास्ते में ही राजसिंह से भेंट हो गई। सब कोई एक साथ उदयपुर की ओर चले।

सब इकट्ठे हो गये, केवल मानिकलाल नहीं था। मानिकलाल निर्मल को लेकर व्यस्त था। सब किसी को भेज कर वह निर्मल के पास चला आया। उसे कुछ खिला-पिला कर गाँव से एक पालकी कहार ले आया। पालकी में निर्मल को चढ़ा कर चला। वह उस रास्ते से नहीं गया जिस रास्ते से राजसिंह जा रहे थे। माल के साथ पकड़े जाने की उसकी इच्छा नहीं थी।

मानिकलाल निर्मल को ले कर बुआ के घर गया। बुआ से बोला, 'बुआ, एक दुलहिन ले आया हूँ। दुलहिन देख कर बुआ कुछ उदास हुई। मन में सोचा—लाभ की जो इच्छा की थी, बहू आ कर उसमें बाधा देगी। क्या करे, दो अशर्फियाँ ली हैं, एक दिन बहू को खिलाये-पिलाये बिना कैसे जाने दे। इसलिये बोली, 'बड़ी अच्छी बहू है?'

मानिकलाल कहा, 'बुआ, आज तक भी बहू के साथ मेरा विवाह नहीं हुआ।'

बुआ ने समझा, तब यह कोई रखेलिन है। बोली, 'तो मेरे घर में—'

'उसकी चिन्ता क्या है? ब्याह करा दो, आज ही ब्याह हो जाय।'

निर्मल ने लज्जा से सिर नीचा कर लिया।

बुआ फिर बोली, 'यह तो बड़ी खुशी की बात है। तुम्हारा ब्याह नहीं कराऊँगी? लेकिन विवाह के लिये तो कुछ खर्च चाहिये।'

मानिकलाल ने कहा, 'उसकी चिन्ता क्या?'

लड़ाई होने पर लूट-पाट भी होती है। मानिकलाल युद्ध-क्षेत्र से लौटते समय मरे हुए मुगल सवारों के कपड़े टटोल कर कुछ अशर्फियाँ अपने साथ लेता आया था। उनमें से कुछ अशर्फियों को झट से बुआ के आगे फेंक दिया। बुआ ने प्रसन्न होकर उन्हें उठा लिया और सन्दूक में रख दिया। उसके बाद विवाह का उद्योग करने के लिये बाहर निकली। विवाह की सामग्री में फूल, चन्दन और पुरोहित जुटाने में बुआ को सन्दूक में से अशर्फी नहीं निकालनी पड़ी। शास्त्रानुसार मानिकलाल निर्मल का स्वामी बना। आगे चल कर राणा के सैनिकों में मानिकलाल को विशेष उच्च पद मिला और अपने गुणों से उसने सब का सम्मान प्राप्त किया।

पाँचवाँ भाग

अग्नि-आयोजन

|१|

शाहजादी से दुखी भली

मुबारक रणभूमि से जाकर पहाड़ पर अदृश्य हो गये। अदृश्य होने का कारण था कि जिस रास्ते वे अपनी सेना लिये आ रहे थे उसमें एक कुँआ था। किसी ने पहाड़ पर रहने की गरज से जल के लिये उस कुएँ को खुदवाया था। इस समय उसके चारो ओर घास-पात जम गये थे जिनसे वह बिलकुल ढंक गया था। मुबारक ने उसे न देख कर ऊपर से घोड़ा चला दिया। बस क्या था, घोड़ा समेत वे कुएँ में जा गिरे। कुएँ में पानी नहीं था, पर गिरने की चोट लगने से घोड़ा मर गया। मुबारक सावधान थे, इसलिये उन्हें अधिक चोट नहीं लगी। किन्तु कुएँ से निकलने का कोई उपाय नहीं सूझा। इसलिये वे जोर-जोर से चिल्लाये कि शायद शब्द सुन कर कोई उन्हें निकालने आये, पर लड़ाई के शोर-गुल में किसी ने भी उनकी आवाज नहीं सुनी। किसी ने शायद दूर से कहा, 'निश्चिन्त रहो, आ कर निकालूँगा।' शायद वह भी भ्रम था।

युद्ध समाप्त होने पर जब शोर-गुल बन्द हो गया तो किसी ने कुँए पर से कहा, 'बचे तो हो ?'

मुबारक ने उत्तर दिया, 'हाँ, तुम कौन हो ?

उसने कहा, 'मैं जो होऊँ, क्या अधिक चोट लगी है ?'

'नहीं, मामूली है।'

'मैंने एक लकड़ी में दो चार कपड़े बांध कर रस्सी की तरह बना लिया है। बंट कर उसे खूब मजबूत कर लिया है। उसे लटका रहा हूँ, दोनों हाथों से लकड़ी के दोनों सिरों को पकड़ो, मैं ऊपर खींच लेता हूँ।'

विस्मित हो कर मुबारक ने कहा, 'यह तो किसी स्त्री की आवाज है! तुम कौन हो ?'

स्त्री ने कहा, 'मेरा गला नहीं पहचानते ?'

'पहचानता हूँ, दरिया ! इस वक्त कहाँ से ! कैसे ?'

दरिया ने कहा, 'तुम्हारे ही लिये। अभी निकालती हूँ, ऊपर आओ।'

यह कह कर दरिया ने कपड़े में बँधी हुई लकड़ी को नीचे लटका दिया। तलवार से कुँए के मुँह पर जमी हुई घास को काट कर दूर फेंक दिया। मुबारक ने दोनों हाथों से लकड़ी के दोनों सिरों को पकड़ लिया। दरिया खींच कर ऊपर लाने लगी। ताकत तो थी नहीं कि जल्दी-जल्दी खींच ले, इसलिए उसे रुलाई आने लगी। उसके बाद एक झुकी हुई डाली पर कपड़े की रस्सी को रख कर वह लेट कर खींचने लगी। मुबारक ऊपर आये। दरिया को देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ। बोले, 'यह क्या ? यह वेश क्यों ?'

दरिया ने कहा, 'मैं शाही सवार बनी हूँ।'

'क्यो ?'

'तुम्हारे ही लिये ?'

'क्यों ?'

'नहीं तो तुम्हें और कौन बचाता ?'

'तो क्या इसीलिए दिल्ली से यहाँ आयी हो ? क्या इसीलिए सवार बनी हो ? तुम्हारे बदन पर खून देखता हूँ। तुम्हें चोट लगी है। किसके लिये तुमने ऐसा किया ?'

'तुम्हारे ही लिये ऐसा किया है, नहीं तो तुम्हें बचाता कौन ? शाहजादी तुम्हें कैसा प्यार करती है ?'

मुबारक ने कुछ लज्जित हो कर सिर नीचे करके कहा, 'शाहजादी प्यार नहीं करती है।'

दरिया ने कहा, 'हम गरीब दुःखी हैं—हम प्यार करती हैं। अभी बैठो, तुम्हारे लिये मैंने एक पालकी ठीक कर रखी हैं—घोड़े पर चढ़ना ठीक नहीं होगा।'

जो पालकियाँ मुगल सेना के साथ थीं उनके कहार डर कर भाग गये थे। दरिया मुबारक को कुएँ में गिरते हुए देख कर पहले पालकी तलाश करने गयी। भागे हुए कहारों को खोज कर दो पालकियाँ ले आई। एक में घायल मुबारक को चढ़ाया, दूसरे में स्वयं चढ़ी।

उसके बाद मुबारक को ले कर दरिया दिल्ली की ओर चली। पालकी पर चढ़ते समय मुबारक ने दरिया का मुखचुम्बन किया और कहा, 'अब मैं तुम्हें कभी नहीं छोड़ूंगा।'

एक उपयुक्त स्थान में ले जाकर दरिया ने मुबारक की शुश्रूषा की। दरिया की चिकित्सा से मुबारक भला चंगा हो गया।

दिल्ली पहुँच कर मुबारक दरिया का हाथ पकड़ कर उसे अपने घर ले गया। दोनों ने कुछ दिन बड़े सुख से बिताये। आगे चल कर जो फल हुआ, वह बड़ा भयानक था। दरिया के लिये भयानक था, मुबारक के लिये भी भयानक था, जेबुन्निसा के लिए भी भयानक था, औरंगजेब के लिये भी भयानक था।

|२|

राजसिंह का पराभव

राजसिंह उदयपुर चले आये। चंचल कुमारी के लिए ही युद्ध हुआ था। इसीलिए चंचल कुमारी को ला कर राजमहल में रखा। लेकिन वे उन्हें उदयपुर में रखें या रूपनगर उनके पिता के पास भेज दें, इसकी मीमांसा करना उनके लिए कठिन था जब तक उन्होंने इस बात की मीमांसा नहीं कर ली, तब तक उन्होंने राजकुमारी से मुलाकात नहीं की।

इधर चंचल कुमारी राजा की गति-विधि को देख कर बहुत विस्मित हुई। सोचा—राजा मेरे साथ विवाह करेंगे, इसका तो कोई लक्षण नहीं दीख रहा हैं। यदि विवाह नहीं करेंगे तो क्यों मैं उनके अन्त:पुर में रहूँ ? और फिर जाऊँ भी कहाँ ?

राजसिंह कुछ भी मीमांसा न कर सके। कुछ दिन बाद वे राजकुमारी के मन का भाव जानने के लिए उनके पास गये। जाते समय वे उस पत्र को अपने साथ लेते गये, जिसे राजकुमारी ने अनन्त मिश्र के हाथ भेजा था और जिसे उन्होंने मानिकलाल से पाया था।

राणा के बैठ जाने पर राजकुमारी ने प्रणाम किया और सलज एवं विनीत भाव से एक किनारे खड़ी हो गयी। विश्वमोहिनी मूर्त्ति को देख कर राणा कुछ मुग्ध हुए। किन्तु उसी क्षण मोह को छोड़ कर बोले, 'राजकुमारी इस समय तुम्हारा क्या अभिप्राय हैं ? यही जानने के लिए मैं तुम्हारे पास आया हूँ। अपने पिता के घर जाने की इच्छा है या यहीं रहने का विचार है ?'

सुनते ही चंचल कुमारी का हृदय टूट गया। वह कुछ बोल न सकी। चुपचाप खड़ी रही।

तब राणा ने चंचल कुमारी का पत्र निकाल कर उन्हें दिखाया और पूछा, 'यह तुम्हारा ही पत्र है न ?'

चंचल ने कहा, 'जी हाँ ।

'पर सब एक हाथ का लिखा नहीं जान पड़ता । दो हाथ का लिखा मालूम पड़ता है । खास तुम्हारे हाथ का लिखा हुआ कौन सा हिस्सा है ?'

'पहला हिस्सा मेरे हाथ का लिखा है ।'

'तब अन्तिम हिस्सा दूसरे के हाथ का लिखा है ?'

इसी अन्तिम हिस्से में विवाह का प्रस्ताव था ।

चंचल कुमारी ने उत्तर दिया,'मेरे हाथ का लिखा नहीं है ।'

राजसिंह ने पूछा, 'किन्तु तुम्हारी सलाह से ही लिखा गया था ?'

प्रश्न बड़ा कठोर था । किन्तु चंचल कुमारी ने अपने उन्नत स्वभाव के अनुसार उपयुक्त उत्तर दिया । कहा, 'महाराज ! क्षत्रिय राजा विवाह के लिए ही कन्याओं का हरण कर सकते हैं । किसी दूसरे कारण से कन्या-हरण महापाप है । महापाप करने के लिये मैं आप से कैसे अनुरोध करूँ ?'

'मैंने तुम्हारा हरण नहीं किया है । तुम्हारे कुल और जाति की रक्षा के लिए मुसलमानों के हाथ से तुम्हारा उद्धार किया है । इस समय तुम्हें तुम्हारे पिता के पास भेज देना ही राजधर्म है ।'

चंचल कुमारी कुछ बातें करने के बाद युवती सुलभ लज्जा के वश में हो गयी थी ! इस बार मुँह उठा कर राजसिंह की ओर देख कर बोली, 'महाराज ! अपना राजधर्म आप ही जानते हैं । अपने धर्म को मैं भी जानती हूँ । मैं इतना ही जानती हूँ कि जब मैंने अपने को आप के चरणों में समर्पित कर दिया है तब धर्मतः मैं आप की रानी हो गयी । आप मुझे ग्रहण करें अथवा न करें, धर्मतः अब मैं और किसी को वरन नहीं कर सकती । जब धर्मतः आप मेरे स्वामी हैं, तब आपकी आज्ञा शिरोधार्य करती हूँ । यदि आप मुझे रूपनगर लौट जाने को कहेंगे तो मैं अवश्य चली जाऊँगी । वहाँ जाने पर मेरे पिता फिर मुझे बादशाह के पास भेजने के लिये बाध्य होंगे । मेरी रक्षा करने की उनमें शक्ति नहीं है । यदि आप का यही अभिप्राय है तो रणभूमि में जब मैंने आप से कहा था कि महाराज ! मैं दिल्ली जाऊँगी, तब आप ने मुझे क्यों नहीं जाने दिया ?'

'केवल तुम्हारी और अपनी मान-रक्षा के लिये ।'

'अच्छा, अब तो मैं आप की शरण में हूँ । क्या अब दिल्ली जाने को मुझे आज्ञा देंगे ।'

'यह भी नहीं हो सकता । तब तुम यहीं रहो ।'

'क्या आप की अतिथि बन कर रहूँ ? संन्यासिनी होकर रहूँ ? रूपनगर की राजकन्या यहाँ महारानी के सिवा और किसी रूप में नहीं रह सकती ।'

'तुम्हारी जैसी विश्वमोहिनी सुन्दरी जिस राजा की रानी बनेगी, सब लोग उसे भाग्यवान कहेंगे । तुम अत्यन्त रूपवती हो, इसी लिए तुम्हें रानी बनाने में मैं संकोच करता हूँ । सुनता हूँ शास्त्र में लिखा है कि रूपवती स्त्री शत्रुवत् होती है—

ऋणकारी पिता शत्रुमाता च व्यभिचारिणी ।
भार्या रूपवती शत्रुः पुत्रः शत्रुरपण्डितः ॥

चंचल कुमारी ने जरा मुस्करा कर कहा, 'बालिका की वाचालता को क्षमा कीजिएगा । क्या उदयपुर की सब रानियाँ कुरूपा हैं ?'

राजसिंह ने कहा, 'तुम्हारे समान कोई रूपवती नहीं है ।'

चंचल कुमारी ने कहा, 'मेरा एक नम्र निवेदन है, इस बात को रानियों से मत कहियेगा । यह राणा के भी डर का कारण हो सकता है ।'

राजसिंह बड़े जोर से हँसे । इतनी देर तक चंचल कुमारी खड़ी थी अब स्थिर बैठ गयी । मन ही मन कहा—अब ये मेरे सामने महाराणा नहीं हैं, इस समय ये मेरे वर हैं ।

बैठ कर चंचल कुमारी ने कहा, 'महाराज, बिना आज्ञा के आप के सामने बैठ गयी हूँ, इस अपराध को आप को क्षमा करना होगा । मैं आप के सामने ज्ञान सीखने के लिए बैठी हूँ, शिष्य को बैठने का अधिकार है । महाराज, रूपवती स्त्री किस प्रकार शत्रुवत् होती है, यह मैं अभी तक नहीं समझ सकी ।'

'यह सहज ही समझ में आ जायगा । रूपवती स्त्री होने से उसके लिए अनेक प्रकार के विवाद उठ खड़े होते हैं । देखो, अभी तक तुम मेरी स्त्री नहीं हुई हो, तो भी तुम्हारे लिए मेरे और औरङ्गजेब में विवाद आरम्भ हो गया । हमारे वंश की महारानी पद्मिनी की कहानी सुनी है न ?'

'इस ऋषिवाक्य में मेरी बड़ी श्रद्धा नहीं हुई । सुन्दरी रानी न होने से राजा लोग किन विपत्तियों से छुटकारा पा सकते हैं ? एक तुच्छ स्त्री के लिए आप ऐसा क्यों कर रहे हैं । चाहे मैं सुन्दरी हूँ चाहे कुरूपा, मेरे लिए जो विवाद खड़ा होने वाला था वह तो खड़ा हो गया ।'

'और भी एक बात है । रूपवती स्त्रियों में पुरुषों की बहुत अधिक आसक्ति होती है । यह राजा के लिए बड़ा निन्दनीय है, क्योंकि इससे राज के कामों में बहुत बाधा पहुँचती है ?'

'राजा लोग सैकड़ों रानियों की मण्डली में रह कर भी राज के कामों से नहीं चूकते । मेरी जैसी बालिका के प्रेम में लीन हो कर महाराजा राजसिंह राजकाज छोड़ देंगे यह तो बड़ी अश्रद्धा की बात है ।'

'अश्रद्धा की तो कोई बात नहीं है। शास्त्रों में लिखा है वृद्धस्य तरुणी विषम।'

'क्या महाराज वृद्ध हैं ?'

'जवान नहीं हूँ।'

'जिसकी भुजाओं में बल है, राजपूत कन्या के लिए वही जवान है। दुर्बल युवक को राजपूत कन्यायें वृद्धों में गिनती हैं।'

'मैं सुन्दर नहीं हूँ।'

'कीर्ति ही राजाओं की सुन्दरता है।'

'रूपवान, बलवान और युवा राजपूतों की कमी नहीं है।'

'मैंने अपने को आप के चरणों में समर्पित कर दिया है। अब दूसरे की स्त्री होने से मैं व्यभिचारिणी कही जाऊँ गी। मैं अत्यन्त निर्लज्जा की तरह बातें कर रही हूँ। पर मन में विचार कर के देखिये कि दुष्यन्त द्वारा त्याग किये जाने पर शकुन्तला को वाध्य हो कर लज्जा छोड़नी पड़ी थी। मेरी भी आज प्रायः यही दशा है। यदि आप मेरा त्याग कर दें गे तो मैं राजसमुन्दर में[1] डूब कर मर जाऊँगी।'

राजसिंह ने इस प्रकार वाग्युद्ध में हार मान कर कहा, 'तुम्हीं मेरी उपयुक्त रानी हो। तुमने विपद में पड़ कर मेरा वरण किया था, इस समय मुझसे उद्धार पाने की तुम्हारी इच्छा है या नहीं, मेरी इस उम्र में तुम मुझसे प्रेम करो गी या नहीं—मेरे मन में इन्हीं सब बातों का सन्देह था। आज की तुम्हारी बातचीत से वह सब सन्देह दूर हो गया। तुम मेरी रानी हो गी। तो भी एक बात जानना चाहता हूँ, क्या तुम्हारे पिता इससे सहमत हों गे ? उनकी राय के बिना मैं विवाह नही करना चाहता। क्योंकि यद्यपि तुम्हारे पिता का राज्य छोटा है और उनकी सेना थोड़ी है, पर यह संसारप्रसिद्ध है कि विक्रम सोलंकी वीर पुरुष एवं कुशल सेना-नायक हैं। मुगलों के साथ मेरी लड़ाई होगी तो होवे। लड़ाई होने पर तुम्हारे पिता की सहायता मेरे लिये मङ्गलजनक होगी। उनकी राय लिये बिना विवाह करने से वे कभी भी मेरी सहायता नहीं करेंगे। बल्कि उनकी राय के बिना विवाह करने से वे मुगलों की सहायता करेंगे और मेरे शत्रु हो जायेंगे। यह ठीक नहीं। मेरी इच्छा है कि उन्हें पत्र लिख कर उनकी राय जान लूँ, तब तुम्हारे साथ विवाह करूँ। क्या वे इससे सहमत होंगे ?'

'न होने का तो कोई कारण नहीं देखती हूँ। मेरी भी इच्छा है कि माता पिता का आशीर्वाद ले कर चरणों की सेवा करूँ। मेरी भी इच्छा है कि उनके पास आदमी भेजा जाय।'

---

१. राजसिंह द्वारा बनवाया तालाब।

तब राजसिंह ने विक्रम सोलंकी के नाम विनयपूर्वक एक पत्र लिख कर दूत के हाथ भेज दिया। चंचल कुमारी ने भी माता का आशीर्वाद पाने की इच्छा से एक पत्र लिखा।

|३|

आग लगाने का प्रयोजन

रूपनगर के स्वामी का उत्तर यथासमय पहुँचा। उत्तर बड़ा भयानक था! उसका भाव यह था—'राजसिंह को उन्होंने लिखा था, आप राजपूताना के मुकुट स्वरूप हैं। इस समय आप राजपूतों के नाम में कलंक लगाने के लिये प्रस्तुत हैं। आपने बल-पूर्वक मेरा अपमान कर मेरी कन्या का अपहरण किया है। मेरी कन्या पृथ्वीश्वरी होती, आप ने उससे उसे वंचित कर दिया। आपसे शत्रुता करना अब मेरा कर्तव्य है। मेरी राय से आप मेरी कन्या का पाणिग्रहण नहीं कर सकते।

'आप कह सकते हैं कि पूर्वकाल के क्षत्रिय राजा कन्याओं का हरण कर विवाह करते थे। स्वयं भीष्म, अर्जुन ने कन्या हरण किया था पर आपस में उनके जैसा बल-वीर्य कहाँ है? यदि आपकी भुजाओं में बल है तो हिन्दुस्थान में मुगल क्यों बादशाहत कर रहे हैं? सियार होकर सिंह का अनुकरण करना शोभा नहीं देता। मैं भी राजपूत हूँ और भलिभाँति जानता हूँ कि मुसलमान को कन्या देने से मेरा गौरव नहीं बढ़ जायगा किन्तु न देने से मुगल रूपनगर के पहाड़ का एक भी पत्थर नहीं छोड़ेंगे। यदि मैं आत्मरक्षा कर सकता, यदि मैं जानता कि कोई मेरी सहायता करेगा तो मैं भी इससे सहमत नहीं होता। जब मैं जान जाऊँगा कि आप में वह क्षमता है तो मैं अपनी कन्या का पाणिग्रहण आपसे करा दूँगा।

'सच है, पूर्वकाल के क्षत्रिय कन्याओं का हरण कर विवाह करते थे, परन्तु ऐसी ठगी और चतुराई वे नहीं जानते थे। आपने मेरे यहाँ आदमी भेज कर; झूठ बोल कर मेरी ही सेना की सहायता से मेरी कन्या का अपहरण किया, नहीं तो आप में इतनी सामर्थ्य नहीं थी। इससे मेरा कितना अनिष्ट हुआ है, इसे सोच कर देखिए। जब मुगल बादशाह यह जानेंगे कि मेरी सेना ने युद्ध किया है, तब वे समझेंगे कि मेरे ही कुचक्र से मेरी कन्या का अपहरण हुआ। अत: वे पहले अवश्य रूपनगर विध्वंस कर आपको दण्ड देने की व्यवस्था करेंगे। मैं भी लड़ना जानता हूँ, पर किसमें सामर्थ्य है कि मुगलों

की सेना के सामने खड़ा हो ? इसीलिये सब राजपूतों ने उनके सामने अपना सिर झुका लिया है। मैं किस गिनती में हूँ ?

'मैं नहीं जानता कि उनके सामने सच बात कह देने से मेरा छुटकारा हो सकता है या नहीं ? यदि आप मेरी कन्या के साथ विवाह कर लेंगे और उसे बादशाह को देने का कोई रास्ता नहीं रह जायगा, तो मेरे और मेरी कन्या के बचने का कोई उपाय न रहेगा।

'आप मेरी कन्या के साथ विवाह मत कीजिये। करने से आप दोनों शाप के भाजन बनेंगे। मैं शाप देता हूँ कि यदि ऐसा हो तो मेरी कन्या विधवा हो जाय, सहगमन से वंचित रहे, चिरदुखिनी हो। आपकी राजधानी में कुत्ते सियार वास करें।'

विक्रम सोलंकी ने यह भीषण शाप देने के बाद नीचे एक पंक्ति लिख दी—'यदि अब भी आपको उपयुक्त पात्र विवेचना करने का कारण पा जाऊँगा तो मैं अपनी इच्छा से आपको कन्या दान कर दूँगा।'

चंचल कुमारी की माता ने पत्र का कोई उत्तर नहीं दिया। उसके पिता के पत्र को राजसिंह ने चंचल कुमारी को सुनाया। चंचल कुमारी को चारों ओर अन्धकार दिखायी दिया।

चंचल कुमारी को अधिक देर तक चुप रहते देख कर राणा ने उनसे पूछा, 'अब क्या करना होगा, विवाह करना ठीक होगा या नहीं ?'

चंचल कुमारी ने आँखों से आँसू गिराते हुए कहा, 'पिता के अभिशाप को ग्रहण कर क्यों कोई भी कन्या विवाह करने का साहस कर सकती है ?'

'यदि अपने पिता के घर जाने का तुम्हारा अभिप्राय हो तो मैं तुम्हें भेज सकता हूँ।'

'पिता के घर जाना अथवा दिल्ली जाना समान ही है। उससे तो अच्छा विष-पान है।'

'मेरी एक बात सुनो। तुम मेरी योग्य रानी हो। मैं तुम्हें सहसा छोड़ भी नहीं सकता। किन्तु तुम्हारे पिता का आशीर्वाद पाये बिना तुम्हारे साथ विवाह भी नहीं कर सकता। मैं आशीर्वाद पाने की आशा बिल्कुल नहीं छोड़ना चाहता। मुगलों के साथ अवश्य युद्ध होगा। एकलिंग मेरे सहायक हैं। मैं उसी युद्ध में या तो मर जाऊँगा या मुगलों को पराजित करूँगा !'

'मेरा दृढ़ विश्वास है कि मुगल आपसे अवश्य पराजित हो जायँगे।'

'वह अत्यन्त दुःसाध्य काम है, यदि मैं इसमें सफल हो जाऊँगा तो अवश्य तुम्हारे पिता का आशीर्वाद पा जाऊँगा।'

❀ राणा के कुलदेवता महादेव

'तब तक ?'

'तब तक तुम मेरे अन्तःपुर में रहो। रानियों की भाँति तुम्हारे लिये अलग महल रहेगा। तुम्हारी सेवा के लिये दास-दसियाँ रहेंगी। मैं यह बात फैला दूँगा कि मैं थोड़े दिनों में ही तुम्हें अपनी रानी बनाऊँगा इसलिये सभी तुम्हें महारानी कह कर सम्बोधन करेंगे। जब तक तुम्हारे साथ मेरा शास्त्रानुसार व्याह नहीं होता तब तक मैं तुमसे साक्षात् नहीं करूँगा। क्या कहती हो ?'

चंचल कुमारी ने सोच कर देखा कि इससे बढ़ कर और कोई व्यवस्था नहीं हो सकती ! इसलिये वे राजी हो गयीं ! राजसिंह ने जैसा स्वीकार किया था वैसा ही बन्दोबस्त किया।

|४|

आग लगाने का प्रयोजन

मानिकलाल से निर्मल ने सुना कि चंचल कुमारी राजमहिषी हुई हैं ? लेकिन कब विवाह हुआ, इसके बारे में मानिकलाल ने कुछ नहीं कहा। तब निर्मल स्वयं चंचल कुमारी को देखने आयी।

बहुत दिनों के बाद निर्मल को देख कर चंचल कुमारी को आनन्द हुआ। उस दिन उन्होंने निर्मल को जाने नहीं दिया। रूपनगर को छोड़ने पर जो घटना हुई थी दोनों ने परस्पर एक दूसरे को बतलाई। निर्मल के सुख को जान कर चंचल कुमारी अत्यन्त प्रसन्न हुई। क्यों नहीं, मानिकलाल को राणा से बहुत पुरस्कार मिला था, उसके पास बहुत रुपये हो गये थे। इसके बाद उसे राणा की कृपा से प्रतिष्ठित पद एवं राज-सम्मान मिला है। निर्मल को ऊँचा महल, धन, दौलन, दासदासी सब कुछ मिल गया हैं। मानिक लाल उसका खरीदा हुआ गुलाम है। प्रसंगवश चंचल कुमारी के दुःख को सुन कर निर्मल अत्यन्त मर्माहत हुई। वह चंचल के माता, पिता, राजसिंह और उन पर बड़ी विरक्त हुई। उसने चंचलकुमारी को महारानी कहने से इनकार कर दिया और प्रतिज्ञा की कि राजसिंह से मुलाकात होने पर उन्हें दो चार बातें सुनाऊँगी। चंचल कुमारी ने कहा, 'उस बात को अभी रहने दो। मेरी जान-पहचान का यहाँ कोई नहीं है, अपना सगा कोई नहीं है। मैं इस अवस्था में नहीं रह सकती। यदि भगवान ने तुम्हें मिला दिया है तब मैं तुम्हें नहीं छोड़ सकती। तुम्हें मेरे पास ही रहना होगा।'

सुनते ही पहले तो निर्मल को ऐसा जान पड़ा मानो उसकी छाती पर पहाड़ टूट कर गिर पड़ा। अभी तो स्वामी मिला है, नया प्रेम है, नया सुख है। यह सब छोड़ कर

क्या उससे चंचल कुमारी के पास रहा जायगा ? निर्मल कुमारी सहसा राजी न हो सकी। कोई झूठा उत्तर नहीं दिया। किन्तु असल बात को छोड़ कर वह कुछ न कह सकी। बोली, 'पीछे कहूँगी।'

चंचल कुमारी की आँखों में जल भर आया। मन ही मन कहा—निर्मल ने भी मेरा त्याग कर दिया। हे भगवान। तुम मेरा त्याग मत करना। उसके बाद चंचल कुमारी हँसी। बोली, 'निर्मल, तुम मेरे लिये अकेली रूपनगर से पैदल चल कर मरने आई थी और आज तुम अपना स्वामी ले कर फूली हो।'

निर्मल ने सिर नीचा कर लिया। अपने को सौ-सौ बार धिक्कारा। बोली, 'मैं उस बेला आऊँगी। जिसे अपना मालिक बनाया है उससे एक बार पूछना तो होगा। और एक लड़की गले पड़ी है, उसके लिये भी तो कोई बन्दोबस्त करना पड़ेगा।'

'न हो लड़की को यहीं लेते आना।'

'उस खन—खन पन—पन का यहाँ कुछ काम नहीं है। एक बुआ है घर में, उसे ही बैठा कर आऊँगी।'

इसके बाद निर्मल ने बिदा ली। घर जा कर मानिकलाल को वृत्तान्त कह सुनाया। मानिकलाल को भी निर्मल को भेजने में बड़ा कष्ट हुआ।

|६|

वह प्रयोजन क्या है ?

निर्मल पालकी में बैठ कर दास-दासियों को साथ ले राणा के अन्तःपुर की ओर जा रही थी। बीच रास्ते में बड़ा चौक था। उसके एक मकान में लोगों की बड़ी भीड़ थी। निर्मल की पालकी बेशकीमती कपड़े के पर्दे से ढँकी थी। उसने आदमियों की कोलाहल को सुन कर कौतूहलवश पर्दा उठा कर देखा। एक दासी को इशारे से बुला कर पूछा—क्या मामला है ? उसने कहा—सुना, एक विख्यात ज्योतिषी इस मकान में रहते हैं। हजारों आदमी प्रतिदिन उनके पास अपनी भाग्य-गणना कराने आते हैं। जो अपनी भाग्य-गणना कराने आये हैं, उनसे ही यह भीड़ हो गई है। निर्मल ने और भी सुना कि यह ज्योतिषी सब प्रकार की गणना करते हैं। जिसको जो कहा है, वह सच निकला है। निर्मल ने तब दासियों से कहा, 'नोकरों से कहो कि सब आदमियों को हटा दें। मैं अन्दर जा कर गणना कराऊँ गी। किन्तु मेरा परिचय देने की जरूरत नहीं।'

नौकरों के बर्छे की नोकों से सब लोग हट गये। निर्मल की पालकी ज्योतिषी के घर में चली गई। जो अपनी भाग्य-रेखा दिखा रहा था, उसके हट जाने पर निर्मल वहाँ

जा कर बैठ गई। ज्योतिषी को प्रणाम कर उन्हें कुछ दर्शनी दी। ज्योतिषी ने पूछा, 'माँ, तुम क्या गणना कराने आई हो ?'

निर्मल ने कहा, 'जो मैं पूछती हूँ, उसे गिन कर बतला दीजिये।'

'तुम्हारा प्रश्न क्या है, बोलो ?'

'मेरी एक प्यारी सखी है।'

ज्योतिषी ने कुछ लिख कर कहा, 'उसके बाद ?

'उसका अभी व्याह नहीं हुआ है।'

ज्योतिषी ने फिर कुछ लिखा, बोले, 'उसके बाद ?'

'उसका विवाह कब होगा ?'

ज्योतिषी ने फिर कुछ लिखा, उसके बाद खड़िया को रख दिया। फिर लग्न-सारिणी देखी। शंकु पट्ट देखा। निर्मल से बहुतेरे प्रश्न पूछे। बड़ी-बड़ी गणना की पोथियाँ उलटी-पलटी। अन्त में निर्मल की ओर देख कर गर्दन हिलाई।

निर्मल ने पूछा, 'क्या विवाह नहीं होगा।'

'प्राय: इसी प्रकार का उत्तर शास्त्र में लिखा मिलता है।'

'प्राय: क्यों ?'

'यदि ससागरा पृथ्वी पति की रानी आ कर कभी तुम्हारी सखी की सेवा करे तो उसका विवाह हो सकता है, नहीं तो नहीं हो सकता। उसे असम्भव ही समझ कर मैं कहता हूँ कि विवाह नहीं होगा।'

'असम्भव ही है' कह कर निर्मल ज्योतिषी को कुछ दक्षिणा दे कर चली गई।

|६|

आग जलाने का प्रस्ताव

चंचल कुमारी के हरण से भारतवर्ष में जो आग जली उससे चाहे मुगल साम्राज्य अथवा राजपूताना दोनों में कोई ध्वंस होता। केवल महाराणा की दया दाक्षिण्य से ही ऐसा हो सका। ऐसी आश्चर्यमय घटनाओं का विस्तार से वर्णन करना उपन्यास का उद्देश्य नहीं हो सकता। तो भी कुछ-कुछ न कहने से इस ग्रन्थ का परिशिष्ट समझ में नहीं आयेगा।

रूपनगर की राजकुमारी के हरण का सम्वाद दिल्ली पहुँचा। दिल्ली में बड़ी हल-चल मच गई। क्रोध के मारे बादशाह ने अपने सेनानायकों में किसी को पदच्युत किया,

किसी को कैद कर लिया, किसी को मार डाला। किन्तु प्रधान अपराधी चंचल कुमारी और राजसिंह को सजा देना उतना सहज नहीं था। क्योंकि यद्यपि मेवाड़ का राज्य छोटा था, पर तो भी उससे लड़ना लोहे के चने चबाना था। चारों ओर दुर्गम पहाड़ों की पाँतियाँ उसे घेरे थीं, राजपूत सभी वीर पुरुष थे और स्वयं राजसिंह हिन्दू वीर चूड़ामणि थे। इस अवस्था में राजपूत क्या कर सकते थे उसे प्रतापसिंह ने अकबर को भलीभाँति सिखा दिया था। दुनिया के बादशाह के घूँसे खा कर उन्हें भी कुछ दिनों के लिये घूँसे बाजी करनी पड़ी।

किन्तु किसी का क्रोध सहन करने वाला आदमी औरंगजेब नहीं था। हिन्दुओं के अनिष्ट करने के लिये ही उसका जन्म हुआ था। हिन्दुओं का अपराध उसके लिये विशेष असह्य था। एक हिन्दू मरहट्ठे ने उसका बार-बार अपमान किया। मरहट्ठों का वह कुछ नहीं कर सका, राजपूतों का भी कुछ नहीं कर सकता, इसलिये राजसिंह का अपराध समस्त हिन्दू जाति को दुःख देने का कारण बना।

हमलोगों को आज कल इनकमटैक्स असह्य जान पड़ता है। इससे बढ़ कर एक और टैक्स मुसलमानी अमलदारी में था। वह इससे अधिक असह्य था, क्योंकि यह टैक्स मुसलमानों से नहीं लिया जाता था। इसका नाम था जजिया। परम राजनीतिज्ञ अकबर ने इसकी अनिष्टकारिता को देख कर इसको उठा दिया था। उसी समय से यह बन्द था। अब हिन्दू-द्वेषी औरङ्गजेब ने उसे फिर जारी करके हिन्दुओं के दुःख को और भी बढ़ा दिया।

इसके पहिले ही बादशाह ने जजिया को जारी कर दिया था, पर इसके वसूल करने में किसी किस्म की लड़ाई नहीं हुई थी। हिन्दू भयभीत हो कर बहुत दुःख पाने लगे। हाथ जोड़ कर हजारों की संख्या में हिन्दुओं ने बादशाह से माफी माँगी, पर औरङ्गजेब के हृदय में दया का लेश भी नहीं था। शुक्रवार को जब बादशाह मसजिद में नमाज पढ़ने गये तो उनके सामने लाखों हिन्दू एकत्र हो कर रोये। दुनिया के बादशाह ने दूसरे हिरण्यकशिपु के सदृश आज्ञा दी कि हाथियों के पैरों से इन्हें कुचलवा दो। वह आदमियों की भीड़ हाथियों के पैरों से कुचलवा कर हटा दी गई।

औरङ्गजेब के अधीन भारतवर्ष ने जजिया टैक्स अदा किया। ब्रह्मपुत्र से ले कर सिन्धु नदी तक हिन्दू देवी देवताओं की मूर्तियाँ तोड़ कर चूर-चूर कर दी गयीं। आकाश को छूने वाले प्राचीन मन्दिर तोड़-तोड़ कर धूल में मिला दिये गये। उनके स्थान पर मसजिदें बनाई गईं, काशी में विश्वनाथजी का मन्दिर तोड़ दिया गया। मथुरा में केशव जी का मन्दिर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। बङ्गाल में जो कुछ बङ्गालियों की मूर्तियाँ थीं वह सदा के लिये नष्ट कर दी गयीं। औरङ्गजेब ने इस समय आज्ञा दी कि राजपूताना के राजपूत भी जजिया दें। राजपूत उनकी प्रजा नहीं थे, किन्तु हिन्दू कह कर ही उन पर यह दण्ड लगाया गया। पहले तो राजपूतों ने देने से इनकार कर दिया। परन्तु

उदयपुर को छोड़ कर सारे राजपूताना के राजा [illegible] की भाँति गति-हीन थे। जयपुर के जयसिंह, जिनका बाहुबल मुगल साम्राज्य का प्रधान अवलम्बन था, इस समय इस लोक में नहीं थे। विश्वासघाती बन्धु-हन्ता औरङ्गजेब के कौशल से विष-द्वारा वे मार डाले गये थे। उनका वयस्क पुत्र दिल्ली में कैद था। अतः जयपुर ने जजिया दिया।

योधपुर के यशवन्त सिंह भी परलोकगत थे। उनकी रानी ही इस समय राज-प्रतिनिधि थीं। स्त्री हो कर भी उन्होंने बादशाह के कर्मचारियों को भगा दिया। औरङ्गजेब उनके विरुद्ध युद्ध करने को तैयार हो गया। रानी युद्ध की आशंका से डरीं। लेकिन उन्होंने जजिया नहीं दिया ?

राजसिंह ने भी प्रतिज्ञा की कि किसी भी तरह जजिया नहीं दूँगा। उन्होंने औरङ्गजेब के नाम एक पत्र लिखा। उसके सम्बन्ध में राजपूताना के इतिहास वेत्ताओं ने लिखा है।

The Rana remonstrated by letter in the name of the nation of which he was the head, in a style of such uncompromising dignity, such lofty yet temperate resolve, so much of soul stirring rebuke mingled with a bondless and tolerating benevolence such elevating excess of the Divinity with such pure philanthropy that it may challenge competition with any epistoraly production of any age, climate or condition.*

इस पत्र ने औरङ्गजेब की क्रोधाग्नि में घी का काम किया।

बादशाह ने राजसिंह के ऊपर हुक्म जारी किया कि जजिया तो देना ही पड़ेगा, इसके अतिरिक्त अपने राज्य में गोहत्या भी करने देना होगा और सभी देवमन्दिर तोड़ दिये जायँगे। तब राजसिंह युद्ध की तैयारी करने लगे।

औरङ्गजेब भी युद्ध की तैयारी करने लगा। इस प्रकार की भयंकर तैयारी उसने की, जैसी कभी नहीं की थी ! चीन के सम्राट अथवा फारस के बादशाह भी यदि उसके विरुद्ध खड़े होते तो वह इतनी बड़ी तैयारी नहीं करता, पर इस छोटे से राज्य के विरुद्ध उसने इतनी भयानक तैयारी की ! आधे एशिया के अधिपति जरक्सीज ने जिस प्रकार छोटे से ग्रीस राज्य को जीतने की तैयारी की थी, सत्रहवीं शताब्दी के जरक्सीज ने क्षुद्र राजा राजसिंह को पराजित करने के लिये उसी प्रकार की तैयारी की। यह दोनों घटनायें तुलनीय हैं। तीसरी घटना इसकी बराबरी की नहीं है। ग्रीस देश के इतिहास को हम मर-मर कर कंठस्थ करते हैं, किन्तु राजसिंह के इतिहास के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते। यह आधुनिक शिक्षा का फल है।

---

*Tod's Rajasthan Vol. 1—Page 381.

छठवाँ भाग

अग्नि-उत्पादन

|१|

अरणिकाष्ठ-उर्वशी

राजसिंह ने जो कड़ा पत्र लिखा, उसके भेजने से ही अग्नि प्रज्वलित हो जायगी। इस समय यह कठिन समस्या आ उपस्थित हुई कि इस पत्र को औरङ्गजेब के पास कौन ले जाय ! यद्यपि दूतों का वध नहीं किया जाता तथापि औरङ्गजेब ने कई दूतों का वध किया था, इसे सभी जानते थे। इसलिये जिसे प्राण का भय था, और जिसे अपने प्राण बचाने का कौशल नहीं मालूम था, ऐसे आदमी को राजा भेजना नहीं चाहते थे। तब मानिकलाल ने आकर प्रार्थना की कि मुझे इस काम के लिये भेजिये। राजसिंह ने उपयुक्त पात्र पा कर उसे ही इस काम में नियुक्त किया।

यह खबर सुन कर चञ्चल ने निर्मल कुमारी को बुला भेजा। उससे बोली, 'तुम भी अपने स्वामी के साथ क्यों नहीं चली जाती ?'

विस्मित हो कर निर्मल ने कहा, 'कहाँ जाऊँ ? दिल्ली ?'

'एक बार बादशाह के रङ्गमहल में घूम-फिर आओ।'

'सुनती हूँ वह नरक के तुल्य है।'

'क्या तुम्हें कभी नरक नहीं जाना होगा ? बेचारे मानिकलाल पर जो तुम अत्याचार करती हो उसके लिये तुम्हें नरक ही जाना होगा।'

'मुझे सुन्दर देख कर क्यों विवाह किया ?'

'इसलिये कि तुम पेड़ के नीचे पड़ी पड़ी मर रही थीं।'

'मैंने तो उसे बुलाया नहीं था। इस समय मैं भूत का बोझ सिर पर ले दिल्ली जा कर क्या करूँगी ? बतलाओ न !'

'उदयपुरी को निमन्त्रण पत्र दे आना होगा।'

'किसलिये ?'

'तम्बाकू चढ़ाने के लिये।'

'हाँ ठीक है, यह बात तो याद थी ही नहीं। जब तक पृथ्वीश्वरी तुम्हारी सेवा नहीं करेगी तब तक तुम्हारा भूत का बोझा नहीं उतरेगा।'

'दूर हो पापिष्ठा ! मैं ही इस समय भूत का बोझ हो रही हूँ। या तो बादशाह की बेगम मेरी दासी बनेगी या मैं ही विष खा कर मर जाऊँगी। ज्योतिषी ने तो यही कहा है ?'

'तो क्या पत्र द्वारा निमन्त्रण देने से बेगम आयेगी ?'

'नहीं, मेरा उद्देश्य लड़ाई छेड़ना है। मेरा विश्वास है कि यदि लड़ाई छिड़ जायेगी तो अवश्य महाराणा की विजय होगी और बेगम बाँदी होगी। दूसरा उद्देश्य यह है कि तुम सब बेगमों को पहचान जाओगी।'

'तो किस प्रकार मैं यह काम कर सकूँगी, बतला दो ?'

'मैं बतला देती हूँ, तुम जानती हो कि जोधपुरी बेगम का पंजा मेरे पास है। उसी पंजे को ले कर तुम जाओ। इसी के द्वारा तुम महल में प्रवेश कर सकती हो, जोधपुरी बेगम से भेंट कर सकती हो। उन्हें सब वृत्तान्त विस्तार से सुनाना। मैं उदयपुरी के नाम जो पत्र लिख रही हूँ, उसे जोधपुरी को दिखाना। तुम किसी तरह इस पत्र को उदयपुरी के पास भेजवा देना। जहाँ कहीं अपनी बुद्धि से काम नहीं चले, वहाँ अपने स्वामी से थोड़ी बुद्धि उधार ले लेना।'

'हः ! मेरी जैसी स्त्री है तो उसका संसार चलता है।'

हँसते-हँसते निर्मल पत्र ले कर चली गई और यथासमय स्वामी के साथ और आदमियों को साथ ले कर दिल्ली की यात्रा की।

|२|

अरणिकाष्ठ-पुरूरवा

उद्योग करने में मानिकलाल ही बढ़ कर था। उसने उसका नमूना एक दिन निर्मल कुमारी को दिखाया। निर्मल ने विस्मय से देखा कि मानिकलाल की कटी उँगली के स्थान पर एक नयी उँगली जम गई है। उसने मानिकलाल से पूछा, 'यह क्या ?'

मानिकलाल ने कहा, 'गढ़वाई है।'

'किसकी ?'

'हाथी दाँत की ! ऐसा कल-कब्जा लगाया है कि मालूम नहीं पड़ता, फिर उस

पर से बकरी की पशमी खाल मढ़ दी है। इच्छानुसार यह पहनी और खोली जा सकती है !'

'इसकी जरूरत क्या है ?'

'दिल्ली में इसे जानोगी। दिल्ली में नकली वेश बनाने की जरूरत पड़ेगी। नकली वेश में कटी उँगली नहीं चल सकती।'

निर्मल हँसी। उसके बाद मानिकलाल ने एक पिंजरे में पालतू तोता ले लिया। यह तोता बोलने में बड़ा चतुर था। दूत का काम करने में बड़ा निपुण था। जो लोग आधुनिक यूरोपियन युद्ध की खबर ले जाने वाले कबूतरों के विषय में जानते हैं, वे इसे समझ सकते हैं। पूर्वकाल में इस जाति के सिखाये हुए तोतों से बड़ा काम लिया जाता था। मानिकलाल ने निर्मलकुमारी को तोते का गुण विशेष रूप से बतला दिया !

ऐसा नियम था कि दिल्ली के बादशाह के पास दूत भेजने पर कुछ भेंट भी भेजनी पड़ती थी। इंग्लैंड, पुर्तगाल आदि देश के राजा भी भेंट भेजते थे। राजसिंह ने भी मानिकलाल के साथ कुछ द्रव्य भेजा। लेकिन यह लड़ाई का दौत्य था इसलिए विशेष सामग्री नहीं भेजी और द्रव्यों के साथ सफेद पत्थर की बनी रत्नजड़ी कितनी ही चीजें भी भेजीं। मानिकलाल उन्हें अलग एक गाड़ी में लाद कर चला।

निश्चित दिन को राणा की आज्ञालिपि और पत्र ले कर निर्मल कुमारी के साथ दास-दासी, हाथी-घोड़े, ऊँट, बैल, गाड़ी, एक्का, पालकी, रिसाला आदि ले कर बड़ी तैयारी के साथ मानिकलाल ने यात्रा की, जाने बहुत में दिन लगे। दिल्ली से कुछ दूर इधर ही मानिकलाल, तम्बू डाल निर्मल तथा और अन्य लोगों को वहीं रख कर एक विश्वासी आदमी को साथ ले कर दिल्ली चला और साथ में उन पत्थर की चीजों को ले लिया। बनावटी उँगली को निर्मल कुमारी के पास रख गया। बोला, 'कल आऊँगा।'

निर्मल ने पूछा, 'क्या बात है ?'

मानिकलाल ने निर्मल को एक पत्थर की चीज दिखा कर उसमें एक चिन्ह दिखाया। कहा, 'सब में इसी तरह चिन्ह लगा दिये हैं।'

'क्यों ?'

'दिल्ली में मेरा तुम्हारा साथ अवश्य छूट जायगा। यदि मुगलों की रोक-टोक के कारण तुम मुझे न पा सकी तो तुम पत्थर की चीज खरीदने के लिए आदमी भेजना। जिस दूकान की चीजों में तुम इस तरह के चिन्ह देखना उसी दूकान में मुझे खोजना।'

इस प्रकार परामर्श कर के मानिकलाल अपने विश्वासी आदमी और पत्थर की चीजों को ले कर दिल्ली चला। वहाँ जा कर एक दूकान किराये पर ली। उसमें पत्थर की चीजों को सजा कर और साथ के आदमी को दूकान पर बैठा कर फिर छावनी में लौट आया।

इसके बाद सारी फौज और रिसाले को ले कर निर्मल कुमारी के साथ फिर दिल्ली गया और वहाँ एक जगह पड़ाव डाल कर बादशाह के पास खबर भेजी।

|३|

अग्नि-चयन

शाम को औरङ्गजेब दरबार में बैठा। मानिकलाल वहाँ जा कर उपस्थित हुआ। दिल्ली के बादशाहों के आम व खास महलों का वर्णन अनेक ग्रन्थों में हुआ है। यहाँ उनके वर्णन करने की आवश्यकता नहीं है। मानिकलाल ने जा कर कोर्निश की। उसके बाद उठ कर खड़ा हो गया। फिर एक पैर उठा कर कोर्निश की। इस प्रकार तीन बार उठते-बैठते वह तख्त-ताऊस के पास चला गया। अभिवादन करने के बाद मानिकलाल ने राजसिंह की भेजी हुई भेंट को बादशाह के सामने अर्पित किया। भेंट को देख कर औरङ्गजेब रुष्ट हुआ पर मुँह से कुछ बोला नहीं। भेजी हुई चीजों में दो तलवारें थीं। एक मियान के बाहर थी, दूसरी मियान के अन्दर। औरङ्गजेब ने मियान के बाहरवाली तलवार को ले कर बाकी सब चीजों को लौटा दिया।

मानिकलाल ने राजसिंह का पत्र दिया। पत्र को पढ़ कर औरंगजेब क्रोध के मारे लाल हो गया। लेकिन क्रोधित होने पर वह अपने गुस्से को बाहर के लोगों पर प्रकट नहीं होने देता था। उसके बाद मानिकलाल से आदर के साथ अनेक बातें पूछीं। उसके रहने के लिए उत्तम वासस्थान देने को बख्शी को आज्ञा दी। मानिकलाल को यह कह कर बिदा कर दिया कि राणा के पत्र का उत्तर कल दिया जायगा। उसी समय दरबार बरख्वास्त कर दिया गया। दरबार से उठते ही औरङ्गजेब ने मानिकलाल को मार डालने की आज्ञा दी। आज्ञा तो हो गई, पर जो मानिकलाल को मारने के लिये नियुक्त किये गये थे, उन्हें बहुत तलाश करने पर भी मानिकलाल नहीं मिला। जो उनकी आव-भगत करने के लिए नियुक्त किये गये थे उन्हें भी वह न मिला। दिल्ली का कोना-कोना छान माला गया पर कहीं भी मानिकलाल का पता न चला। उसे मार डालने की आज्ञा होने के पहले ही मानिकलाल खिसक गया था। जब मानिकलाल की इतनी खोज हो रही थी तब वह अपनी पत्थर की दूकान पर नकली वेश में बैठा सौदा बेच रहा था। खोजने वालों ने जब मानिकलाल को नहीं पाया तब वे उन्हें पकड़ कर कोतवाल के पास ले गये जो उस समय छावनी में मौजूद मिले। निर्मल कुमारी भी पकड़ी गयी।

कोतवाल को किसी से भी मानिकलाल का पता नहीं चला। डराने-धमकाने अथवा मारने से भी कुछ न हुआ। वे क्या बतलाते, उन्हें तो मानिकलाल का कुछ पता ही न था।

अन्त में कोतवाल ने निर्मल कुमारी से पूछताछ आरम्भ की। परदानशीन कह कर ही उसे इतनी देर तक दूर रखा गया था। कोतवाल ने निर्मल कुमारी से मानिकलाल के बारे में पूछा तो उसने उत्तर दिया, 'राणा के एलची को मैं नहीं पहचानती।'

कोतवाल ने कहा, 'उसका नाम मानिकलाल सिंह है।'

'मैं किसी मानिकलालसिंह को नहीं पहचानती।'

'तब तुम कौन हो ?'

'मैं जोधपुरी बेगम साहिबा की हिन्दू बाँदी हूँ।'

'जोधपुरी बेगम साहबा की बाँदी तो कभी महल के बाहर नहीं निकलती।'

'मैं भी कभी नहीं आती, बल्कि इस बार हिन्दू दूत का आना सुन कर बेगम साहिबा ने मुझे उनके तम्बू में भेजा है।'

'यह क्या ? क्यों ?'

'कृष्ण जी के चरणामृत के लिये, उसे सभी कोई रखते हैं।'

'तुमको मैं अकेली देखता हूँ। तुम महल के बाहर आयी कैसे ?'

'इसके बल से।'

यह कह कर निर्मल कुमारी ने जोधपुरी बेगम का पञ्जा अपने वस्त्रों में से निकाल कर दिखलाया, जिसे कोतवाल ने तीन बार सलाम किया और निर्मल को कहा, 'अब तुमको कोई भी कुछ नहीं कहे गा। जाओ।'

तब निर्मल ने कहा, 'कोतवाल साहब, एक मेहरबानी और करनी होगी। मैं कभी महल के बाहर नहीं आती। आज इतना धर-पकड़ देख कर मुझे बहुत डर लगता है। यदि आप कृपा कर के एक आदमी या नौकर मेरे साथ कर दें, जो कि मुझे महल तक पहुँचा दे तो बहुत अच्छा हो।'

कोतवाल ने तुरन्त ही एक हथियारबन्द राजकर्मचारी को समझा-बुझा कर निर्मल के साथ बादशाह के अन्तःपुर में भेज दिया। बादशाह की बड़ी रानी का पञ्जा देख कर किसी ने किसी प्रकार की आपत्ति नहीं की। निर्मल कुमारी ने बड़ी चालाकी से पूछते-पूछते जोधपुरी बेगम का पता लगा लिया। उन्हें प्रणाम कर उस पंजे को दिखाया। देखते ही बेगम बड़ी सावधानी से उसे एकांत में ले जा कर पूछ-ताछ करने लगीं। कहा, 'तुमने यहाँ पञ्जा कहाँ पाया ?'

निर्मल कुमारी ने कहा, 'मैं सब बात विस्तार से बतला रही हूँ।'

निर्मल कुमारी ने पहले अपना परिचय दिया। उसके बाद देवी के रूपनगर जाने की बात, उसके पंजा दे आने की बात, उसके बाद चंचल और निर्मल के सम्बन्ध

में जो-जो हुआ था, सब कह सुनाया । मानिकलाल का भी परिचय दिया । उसने बतलाया कि मैं मानिकलाल के साथ चंचल कुमारी का पत्र ले कर आयी हूँ । उसके बाद जिस प्रकार दिल्ली आ कर विपद में फँसी वह भी कहा । जिस प्रकार उससे छुटकारा मिला तथा जिस प्रकार महल में प्रवेश कर सकी, वह सब भी बतलाया । उसके बाद चंचल कुमारी ने उदयपुरी बेगम के लिये जो पत्र लिखा था, उसे दे दिया । अन्त में पूछा, 'यह पत्र किस प्रकार उदयपुरी बेगम के पास पहुँचा सकती हूँ, यही उपाय जानने के लिये आप के पास आई हूँ ।'

बेगम ने कहा, 'उसके लिये उपाय है । जेबुन्निसा बेगम के हुक्म की देरी है । इस समय उनका हुक्म लेने से गड़बड़ी मच जायगी, रात को जब वह पापिष्ठा शराब पी कर बेहोश हो जायगी तब इसका उपाय किया जायगा । इस समय तुम मेरी हिन्दू बाँदियों में जा कर रहो, वहाँ तुम्हें शुद्ध अन्न-जल मिलेगा ।'

|४|

समिध्-संग्रह—उदयपुरी

रात अधिक बीत गयी थी, जोधपुरी बेगम ने निर्मल को उचित उपदेश देकर उसे एक तातारी पहरेवाली के साथ जेबुन्निसा के पास भेज दिया । जेबुन्निसा के महल में जाकर निर्मल कुमारी इत्र-गुलाब और तम्बाकू की सुगन्धि से मुग्ध हो गयी । महल की सजावट और रत्नों से जड़े पलंग आदि को देख कर विस्मित हुई । सब से अधिक वह जेबुन्निसा के रत्न के फूलों से चमकते हुए गहनों को देख कर चकित हुई । इन अलंकारों को पहने हुए जेबुन्निसा देव-लोक की अप्सरा के समान शोभित हो रही थी ।

किन्तु इस समय इस अप्सरा की आँखें चढ़ी थीं, चेहरा लाल था, चित्त चंचल था । इस समय उस पर अंगूरी शराब का पूर्ण अधिकार था । निर्मल कुमारी उनके सामने जा कर खड़ी हो गयी । जेबुन्निसा ने पूछा, 'तू कौन है ?'

निर्मल कुमारी ने कहा, 'मैं उदयपुर के राजा की रानी की दूती हूँ ।'

'मुगल बादशाह के तख्त-ताऊस को लेने आयी हो ?'

'नहीं, चिट्ठी ले कर आयी हूँ ।'

'चिट्ठी क्या होगी ? क्या जला कर रोशनाई बनाऊँगी ?,

'नहीं उसे उदयपुरी बेगम को दूँगी ।'

'वह जीती है या मर गयी है ?'

'जान पड़ता है वह जीती है।'

'ना, वह मर गयी है। इस दूती को कोई उसके पास ले जाय।'

जेबुन्निसा के उन्मत्त प्रलाप का उद्देश्य था कि इसे यमलोक भेज दिया जाय। लेकिन तातारी पहरेवाली इस आशय को समझ न सकी। साधारण अर्थ समझ कर वह निर्मल कुमारी को उदयपुरी बेगम के पास ले गयी।

वहाँ जाकर निर्मल कुमारी ने देखा कि उदयपुरी की आँखें उज्ज्वल हैं, चेहरे पर हँसी की झलक है और चित्त प्रफुल्ल है। निर्मल ने एक लम्बा सलाम किया। उदयपुरी ने पूछा, 'आप कौन हैं।'

निर्मल ने कहा, 'मैं उदयपुर की रानी की दूती हूँ, उनकी चिट्ठी ले कर आयी हूँ।'

उदयपुरी ने कहा, 'नहीं, नहीं, तुम फारस देश के बादशाह हो। मुगल बादशाह के हाथों से मुझे छुड़ाने के लिये आये हो?'

निर्मल कुमारी ने हँसी रोंक कर चंचल कुमारी का पत्र उदयपुरी के हाथ में दे दिया। उदयपुरी उसे पढ़ने का स्वांग कर कहने लगी 'क्या लिखती है? लिखती है—अय नाजनी, मेरी प्यारी, तुम्हारी दौलत और सूरत की तारीफ सुन कर मैं बेहोश और दीवानी हो गयी हूँ। तुम जल्द आ कर मेरे कलेजे को ठण्डा करो। अच्छा वही करूँगी। जरूर हुजूर के साथ आऊँगी, आप कुछ देर ठहरें, तब तक मैं थोड़ी-सी शराब पीलूँ। क्या आप भी शराब का मुलाहजा कीजियेगा? बड़ी अच्छी शराब है, फिरङ्गी के एलची ने इसे नजर दी है। ऐसी शराब आप के मुल्क में नहीं होती।'

उदयपुरी शराब का प्याला अपने मुँह तक ले गयी! उसी समय निर्मल कुमारी बाहर निकल कर जोधपुरी के पास चली आयी। उसने जोधपुरी के पूछने पर जो-जो हुआ था सब कह सुनाया। सुन कर जोधपुरी ने हँसते हुए कहा, 'कल वह पत्र को अच्छी तरह पढ़ेगी। तुम अभी भाग जाओ, नहीं हो कल बड़ी गड़बड़ मचेगी। मैं तुम्हारे साथ एक विश्वासी खोजा देती हूँ। वह तुम्हें महल के बाहर ले जा कर तुम्हारे स्वामी की छावनी तक पहुँचा आयेगा। यदि वहाँ तुम्हारा कोई अपना आदमी हो, तो उसे साथ ले कर आज ही दिल्ली के लिये बाहर चली जाना। यदि छावनी में कोई न मिले तो इसी के साथ दिल्ली के बाहर चली जाना। जान पड़ता है तुम्हारे स्वामी दिल्ली के बाहर जाकर तुम्हारी राह देख रहे हैं। राह में यदि उनसे मुलाकात न हो, तो यह खोजा ही तुम्हें उदयपुर तक पहुँचा आयेगा। यदि तुम्हारे पास खर्च-वर्च न हो तो मैं उसे भी दिये देती हूँ। लेकिन खबरदार, देखना कहीं मैं न पकड़ी जाऊँ।'

निर्मल ने कहा, 'हजरत! आप उसके लिये बेफिक्र रहिये। मैं राजपूत की लड़की हूँ।'

उसके बाद जोधपुरी ने वंशी नामक एक खोजा को बुला कर जो-जो करना था, उसे समझा कर बतला दिया। पूछा, 'अभी कर सकते हो न ?'

वंशी ने कहा, 'हाँ कर सकता हूँ, लेकिन बेगम साहब का एक दस्तखती परवाना पाये बिना ऐसा करने का साहस नहीं होता।'

जोधपुरी ने कहा, 'जैसा परवाना चाहिये लिखा लाओ, मैं उस पर बेगम साहब की दस्तखत करा लाऊँगी ?

खोजा परवाना लिखा लाया। उसे तातारी पहरेवाले के हाथ में दे कर जोधपुरी ने कहा, 'इस पर बेगम साहब का दस्तखत करा लाओ।'

पहरेवाली ने पूछा, 'अगर वह पूछें किस का परवाना है ?'

जोधपुरी ने कहा; 'कहना मेरे कोतल का परवाना है, लेकिन साथ में कलम-दावात लेते जाना और पंजे की छाप लेना मत भूलना।'

पहरेवाली ने कलम दावात के साथ परवाने को ले जा कर जेबुन्निसा के सामने रख दिया। जेबुन्निसा ने पूछा, 'किसका परवाना है ?'

पहरेवाली ने कहा, 'मेरे कोतल का परवाना है।'

'तूने क्या चुराया था ?'

'हजरत उदयपुरी बेगम का पेशवाज।'

'अच्छा किया, कोतल के बाद पहन लेना। यह कह कर बेगम साहब ने परवाने पर दस्तखत कर दिया। पहरेवाली ने मोहर की छाप लेकर परवाने को जोधपुरी बेगम को दे दिया। वंशी उसी परवाने के साथ निर्मल को लेकर जोधपुरी के महल से चला। निर्मल कुमारी भी प्रसन्न हो कर खोजा के साथ चली।

किन्तु सहसा वह प्रसन्नता दूर हो गयी। रङ्गमहल के फाटक के पास आ कर भयभीत और स्तम्भित हो कर वंशी ने कहा, 'विपद ! भागो, भागो !! भागो !'

यह कह कर खोजा लम्बी साँस ले कर भाग गया।

| ५ |

समिध संग्रह—स्वयं यम

निर्मल की समझ में नहीं आया कि क्यों भागना होगा। उसने इधर-उधर देखा; पर भागने का कोई कारण उसे नहीं मिला। केवल इतना ही देखा कि फाटक के पास पूरी उम्र का एक श्वेत-वस्त्र-धारी आदमी खड़ा है। मन में समझा, शायद यह भूत है,

इसी लिए इसे देख कर खोजा भाग गया है। स्वयं निर्मल भूत से नहीं डरती थी, इस लिये वह न भाग कर इधर-उधर कर रही थी। इसी बीच वह श्वेत-वस्त्र-धारी आदमी निर्मल के पास आकर खड़ा हुआ। निर्मल को देख कर उसने पूछा, 'तुम कौन हो ?'

'चाहे मैं जो हूँ।'

उस आदमी ने फिर पूछा, 'तुम कहाँ जा रही थी ?'

'बाहर।'

'क्यों ?'

'मुझे जरूरत है।'

बिना जरूरत के कोई कुछ नहीं करता, मैं यह जानता हूँ। पर तुम्हें क्या जरूरत है ?'

'मैं नहीं बतलाऊँगी।'

'तुम्हारे साथ कौन आ रहा था ?'

'मैं नहीं बतलाऊँगी।'

'तुम हिन्दू-स्त्री जान पड़ती हो, तुम्हारी जाति क्या है ?'

'राजपूत।'

'क्या तुम जोधपुरी बेगम के साथ रहती हो ?'

निर्मल ने दृढ़ प्रतिज्ञा की थी कि किसी को जोधपुरी बेगम का नाम न बतलाऊंगी, शायद बतलाने से उनका कोई अनिष्ट हो। अतएव उसने कहा, 'मैं यहाँ नही रहती, आज ही आयी हूँ।'

'उस आदमी ने पूछा, 'कहाँ से आयी हो ?'

निर्मल ने सोचा, झूठ क्यो बोलूँ, यह आदमी मेरा क्या कर सकता है। किस के डर से राजपूत की लड़की झूठ बोले ? अत: उसने कहा, 'मैं उदयपुर से आयी हूँ।'

तब उस आदमी ने पूछा, 'क्यों आयी हो ?'

निर्मल ने सोचा, इसे इतना परिचय क्यों दूँ ? बोली, 'आप को इतना परिचय देकर क्या होगा ? इतनी पूछ-ताछ न कर यदि आप मुझे इस फाटक से बाहर निकाल दें तो मेरा बड़ा उपकार हो।'

उस आदमी ने कहा, 'तुम से पूछ-ताछ कर यदि तुम्हारे उत्तर से सन्तुष्ट हो जाऊँगा, तो तुम्हें फाटक से पार कर दूँगा।'

'आप कौन हैं आपका परिचय पाये बिना मैं आप को सब बातें कैसे बतला सकती हूँ।'

उस आदमी ने कहा, 'मैं आलमगीर बादशाह हूँ।'

तब निर्मल को उस चित्र की, जिसको चंचल कुमारी ने पैरों तले कुचला था, याद आयी। जीभ दवा कर निर्मल ने मन-ही-मन कहा, 'हाँ वही तो है।'

तब निर्मल ने जमीन छू कर बादशाह को सलाम किया। हाथ जोड़ कर बोली, 'हुक्म फरमाइये।'

बादशाह ने पूछा, 'यहाँ किसके पास आयी थी ?'

'हजरत उदयपुरी बेगम साहबा के पास।'

'क्या कहा ? उदयपुर से उदयपुरी के पास ? क्यों ?'

'एक चिट्ठी थी।'

'किसकी चिट्ठी ?'

'महाराणा की रानी की।'

'कहाँ है वह चिट्ठी ?'

'हजरत बेगम साहबा को दे दी है।'

बादशाह को बड़ा विस्मय हुआ। बोले, 'मेरे साथ आओ।'

निर्मल को साथ लेकर बादशाह उदयपुरी के महल में गये। दरवाजे पर निर्मल को खड़ा करके, तातारी पहरे वालियों से कहा, 'इसे छोड़ना मत।'

उदयपुरी के सोने के कमरे में जा कर देखा वह प्रगाढ़ निद्रा में सोयी है। उसके बिछौने पर वह चिट्ठी पड़ी है। औरंगजेब ने उसे ले कर पढ़ा। चिट्ठी उस जमाने के नियम के अनुसार फारसी भाषा में लिखी गयी थी।

पत्र पढ़ कर ग्रीष्म ऋतु की संध्या की भाँति भीषण क्रान्ति ले कर औरंगजेब बाहर आया। निर्मल से उसने कहा, 'तू किस तरह इस महल में आयी ?'

निर्मल ने हाथ जोड़ कर कहा, 'बाँदी का कसूर माफ करें, मैं इस सवाल का जवाब नहीं दे सकती।'

औरंगजेब विस्मित हो गया। उसने कहा, 'इतनी हिमाकत ? मैं दुनिया का बादशाह हो कर पूछ रहा हूँ, और तू जवाब नहीं देती !'

निर्मल ने हाथ जोड़ कहा, 'दुनिया हुजूर की है, लेकिन जीभ मेरी है, जो मैं नहीं कहना चाहती, उसे दुनिया का बादशाह मुझसे नहीं कहलवा सकते।'

'अच्छा, वह मैं नहीं कर सकता; पर जिस जबान की तू इतनी तारीफ कर रही है, उसे मैं तातारी पहरे वालियों से कटवा कर कुत्तों के सामने फेंक दे सकता हूँ।'

'दिल्लीश्वर की जो मरजी। पर उससे आप जिस बात को जानना चाहते हैं, उसका रास्ता तो सर्वदा के लिये बन्द हो जायगा।'

'इसीलिये तुम्हारी जबान को छोड़ दिया है। तुम्हारे लिये यही हुक्म देता हूँ कि तातारियाँ तुम्हें आग जला कर दागेंगी। मेरे कहने से जो नहीं बतला रही हो, आग जलाने पर उसे बतलाओगी।'

निर्मल कुमारी हँस कर बोली, 'हिन्दू लड़की आग से जल कर मरने से नहीं डरती। हिन्दुस्तान के बादशाह ने क्या यह कभी नहीं सुना है कि हिन्दू स्त्री अपने पति

के साथ हँसते-हँसते चिता में जल कर मर जाती है। आप जो जलने का भय दिखा रहे हैं, मेरी माँ, दादी आदि इसी आग में जल कर मरी हैं। मेरी भी यही कामना है कि अपने स्वामी के साथ ही जीते जी जल कर मरूँ।

बादशाह ने कहा, 'वाह वा! वाह वा! इसका फैसला पीछे करूँगा। इस समय तुम इस महल के एक कमरे में बन्द रहो। भूख-प्यास लगने पर खाने-पीने को कुछ नहीं मिलेगा। अगर तुम्हारी जान जाने लगे तो किवाड़ पर धक्का मारना। पहरे वाली दरवाजा खोल कर तुम्हें मेरे पास ले आयेगी। तब मेरी सब बातों का उत्तर दे कर तुम खाना-पीना पाओगी।'

'शाहनशाह! क्या आप ने कभी नहीं सुना है, कि व्रत का पालन हिन्दू स्त्रियाँ कैसे करती हैं? व्रत नियमादि के लिये वे एक दिन, दो दिन, तीन दिन तक बिना अन्न-जल के रहती हैं। क्या आप ने सुना नहीं है कि वे उपवास कर इच्छापूर्वक प्राण त्याग करती हैं। जहाँपनाह, यह दासी वह भी कर सकती है। इच्छा हो तो मेरी मौत तक इन्तजार कर के देख लीजिये।'

औरंगजेब ने देखा कि इस स्त्री को भय दिखाने से कुछ न होगा, इसे मार डालने से भी कुछ न होगा। लेकिन इसको लोभ दिखा कर भी परीक्षा करनी चाहिये। अतः उससे बोला, 'अच्छा तुम्हें दुःख न दूँगा, तुम्हें धन-दौलत दे कर बिदा करूँगा। तुम सब बातें सच सच बतला दो।'

'राजपूत की कन्या जिस प्रकार मृत्यु को तुच्छ समझती है, उसी प्रकार धन-दौलत से भी घृणा करती है। मैं एक साधारण स्त्री हूँ, मुझे यों ही बिना कुछ दिये बिदा कर दीजिये।'

'दिल्ली के बादशाह के लिये कुछ भी अदेय नहीं है, क्या तुम्हें उससे कुछ भी नहीं माँगना है?'

'माँगना यही है कि मुझे अब चले जाने दीजिये।'

'केवल यही नहीं पा सकती। इसके सिवा संसार में और कुछ माँगने में तुम्हें किस बात का डर है?'

'एक चीज माँगनी है, पर दिल्ली के बादशाह के खजाने में वह रत्न नहीं है।'

'ऐसी कौन सी चीज है?'

'हम हिन्दू हैं, हम संसार में धर्म से ही डरते हैं, और धर्म की ही कामना रखते हैं। दिल्ली के बादशाह म्लेच्छ हैं। वे धनवान हैं, पर उनमें वह शक्ति नहीं, कि मेरी चाही हुई चीज दे सकें, या ले सकें।'

दिल्लीश्वर निर्मल कुमारी का साहस और चतुरता देख कर क्रोध छोड़ कर विस्मित हो गये थे, पर इस कटूक्ति को सुन कर फिर क्रुद्ध हो उठे। बोले, 'अच्छा, अच्छा, यह बात तो मैं भूल ही गया था।' तब उन्होंने एक तातारी को हुक्म दिया,

'जा बावर्चीखाने से कुछ गोमांस ले आ, और दो-तीन आदमी इसे पकड़ कर इसके मुँह में ठूँस दो।'

निर्मल इससे भी नहीं टली। बोली, 'जानती हूँ, आप लोग इस विद्या में प्रवीण हैं। इसी विद्या के बल से ही सोने का हिन्दुस्तान आप लोगों ने छीन लिया है। जानती हूँ, गौओं के मुण्ड को लड़ाई में हिन्दुओं के सामने रख कर मुसलमानों ने उन्हें परास्त किया है। नहीं तो राजपूतों के बाहुबल के सामने मुसलमानों का बाहुबल समुद्र के सामने गड़ही के समान है। मैं आप को एक और बात याद दिला रही हूँ। क्या आपने सुना नहीं है कि राजपूत कन्याएँ अपने साथ विष लिये बिना एक पग भी नहीं चलतीं? मेरे पास इतना तेज विष है, कि आप के नौकरों के गोमांस लाने और मेरे मुँह में डालने के पहले ही मैं उसे खा कर मर जाऊँगी। मेरे जीते-जी कोई मेरे मुँह में गोमांस नहीं डाल सकता। जहाँपनाह! अपने बड़े भाई दारा शिकोह को मार कर आप उनकी दो बेगमों को लेने गये थे, क्या आप उन्हें ला सके? मैं जानती हूँ नीच इसाइन आप के साथ आयी, और हिन्दू बेगम दिल्ली के बादशाह के मुँह पर सात जूते लगा कर स्वर्ग चली गयी। मैं भी आप के मुँह पर सात जूते जड़ कर स्वर्ग चली जाऊँगी।'

बादशाह विस्मय-विमुग्ध रह गये। वे पृथ्वीपति के नाम से प्रसिद्ध थे। जिनकी यश:पताका संसार भर में फहरा रही थी, जिनके डर से सारा हिन्दुस्तान थर-थर काँपता था, वही आज इस अनाथ, असहाय अबला द्वारा अपमानित हुए—परास्त हुए। औरङ्गजेब ने अपनी हार मानी। मन में कहा—यह अमूल्य रत्न है, इसको नष्ट नहीं करना चाहिये। मैं इसे अपने वश में करूँगा। उसने मधुर स्वर में उससे कहा, 'प्यारी, तुम्हारा नाम क्या है?'

निर्मल कुमारी ने हँस कर कहा, 'यह क्या जहाँपनाह! और भी राजपूत बेगम रखने की इच्छा है? तो इस इच्छा को भी छोड़ना होगा। मैं विवाहित हूँ, मेरे स्वामी अभी जीवित हैं।'

'उस बात को अभी रहने दो। अभी कुछ दिन तुम रङ्गमहल में रहो। मेरे इस हुक्म की उदूली मत करो।'

'आप मुझे क्यों रोक रहे हैं?'

'तुम इस वक्त अपने देश जा कर मेरी बुराई करोगी। मैं तुम्हारे साथ इस समय वह बर्ताव करना चाहता हूँ कि तुम मेरी तारीफ करो। उसके बाद मैं तुम को छोड़ दूँगा।'

'यदि आप न छोड़ेंगे तो मुझमें जाने की शक्ति नहीं है। किन्तु यदि आप मेरी दो-चार बातें सुन लेंगे तो मैं कुछ दिन तक यहाँ रह सकती हूँ।'

'क्या बात है?'

'पवित्र हिन्दू अन्न-जल के सिवा मैं और किसी का छुआ हुआ अन्न-जल नहीं ग्रहण कर सकती।'

'अच्छा, इसे मंजूर कर लिया।'

'कोई मुसलमान मुझे छू नहीं सकेगा।'

'इसे भी मंजूर कर लिया।'

'मैं किसी राजपूत बेगम के साथ रहूँ गी।'

'यह भी होगा। मैं तुम्हें जोधपुरी बेगम के पास उसके महलों में रख दूँगा।'

निर्मल कुमारी के लिये बादशाह ने वैसा ही बन्दोबस्त किया।

|६|

पुनः समिध-संग्रह

दूसरे दिन औरंगजेब ने जेबुन्निसा के साथ निर्मल कुमारी को साथ ले कर रङ्ग-महल में जाँच की कि किसने इसे रङ्गमहल के अन्दर आने दिया है। रङ्गमहल में रहने वाले सभी खोजों और बांदियों को बुला कर पूछा। जिन्होंने निर्मल को आने दिया था, उन्होंने निर्मल को पहचाना। लेकिन यह सोच कर कि यह बहुत ही बुरा काम हो गया है, किसी ने भी अपना अपराध स्वीकार नहीं किया। औरंगजेब और जेबुन्निसा को कुछ भी पता न चला।

उसके बाद औरंगजेब और जेबुन्निसा ने महल के पहरेदारों से कहा कि इसके आने से तो उतना नुकसाक नहीं हुआ है, पर मेरे हुक्म के बिना इसे बाहर नहीं जाने देना होगा। लेकिन इसको किसी तरह का दुःख मत देना और न इसका अपमान ही करना। बेगमों की तरह इसकी इज्जत करनी होगी। यह जोधपुरी बेगम की केवल हिन्दू बाँदियों का अन्न-जल ग्रहण करेगी। कोई मुसलमान इसे छूने नहीं पायेगा।

उसके बाद सब ने निर्मल कुमारी को सलाम किया। जेबुन्निसा उसे बड़े आदर के साथ अपने महल में ले गयी और उससे तरह-तरह की बातें की। लेकिन निर्मल से किसी भीतरी बात का पता न चला।

उसी दिन दोपहर के बाद तातारी पहरेवाली ने जोधपुरी बेगम को आ कर खबर दी कि तातार से एक सौदागर चीजें बेचने के लिये किले में आया है। कितनी ही चीज उसने महल में भेज दी है। चीज अच्छी नहीं है, किसी बेगम ने भी पसन्द नहीं की। क्या आप कोई चीज खरीदेंगी?'

मानिकलाल चुन-चुन कर खराब चीजों को ही अपने साथ ले आया था—

ताकि कोई बेगम न तो पसन्द करे और न खरीदे ही। जिस समय पहरेवाली ने यह खबर दी, उस समय निर्मल कुमारी जोधपुरी बेगम के पास ही थी। उसने जोधपुरी को आँख के इशारे से बतलाया कि आप खरीदना मंजूर कर लें।

पहली रात को निर्मल कुमारी और औरंगजेब से जो-जो बातें हुई थीं, निर्मल ने वह सब जोधपुरी बेगम को सुनाया था। सुन कर जोधपुरी ने निर्मल की बड़ी प्रशंसा की थी और उसे बहुत आशीर्वाद दिया था। इस समय निर्मल का अभिप्राय जान कर उन्होंने चीजें मँगाने का हुक्म दिया।

पहरेवाली के चली जाने पर निर्मल कुमारी ने जोधपुरी से मानिकलाल का संकेत संक्षेप में बतला दिया। तब जोधपुरी ने कहा कि 'तब तक तुम अपने स्वामी के नाम एक पत्र लिखो, मैं पत्थर की चीजें पसन्द करती हूँ। इसी सुअवसर पर उन्हें तुम्हारी खबर देनी होगी।' यथासमय पत्थर के बर्तन सामने हाजिर किये गये।

निर्मल ने देखा कि सभी चीजों पर मानिकलाल के चिह्न अङ्कित हैं। जब तक निर्मल कुमारी का पत्र लिखना समाप्त नहीं हुआ, तब तक जोधपुरी चीजों को पसन्द करती रहीं। उन चीजों में सब से अच्छी एक चीज थी और वह था एक बेशकीमती डिब्बा। जिस पर तरह-तरह के बेलबूटे बने थे। उसमें ताला-चाभी लगाने के लिये सोने की जंजीर लगी हुई थी। निर्मल के पत्र लिखने के बाद जोधपुरी ने औरों की नजर बचा कर उस पत्र को उसी डिब्बे में बन्द कर दिया।

जोधपुरी ने सब चीजों को पसन्द कर अपने पास रख लिया और डिब्बे को नापसन्द कर लौटा दिया। लौटाते समय जान-बूझ कर उसकी चाभी लौटाना भूल गयीं।

छद्मवेशी सौदागर मानिक लाल ने देखा कि केवल डिब्बा लौट आया; पर उसकी चाभी नहीं लौटी तो उसे कुछ आशा हुई। अपनी चीजों के दाम गिन कर और डिब्बे को साथ ले कर मानिकलाल अपनी दूकान पर चला आया। वहाँ एकान्त में निर्मल कुमारी का पत्र पढ़ा।

पत्र में जो कुछ लिखा था उसे विस्तारपूर्वक पढ़ कर मतलब समझा मतलब की बात उसमें लिखी थी, पत्र पा कर निर्मल के सम्बन्ध में निश्चित हो, वह अपने देश लौट जाने की तैयारी करने लगा। लेकिन यह सोच कर कि आज ही दूकान उठाने से शायद कोई सन्देह करे, उसने और कुछ दिन ठहरने का निश्चय किया।

सन्धि-संग्रह—जेबुन्निसा

अब एक बार निर्मल कुमारी को छोड़ कर मुगल वीर मुबारक की खबर लेनी होगी। जो लोग रूपनगर से हार कर लौट आये थे, औरङ्गजेब ने उनमें से किसी को पदच्युत किया और किसी को दण्ड दिया। लेकिन मुबारक उन लोगों में नहीं थे। औरंगजेब ने सबके मुँह से उनकी वीरता को प्रशंसा सुन कर उन्हें उनके पद पर बहाल रखा।

जेबुन्निसा ने भी उसकी तारीफ सुनी। उसने सोचा कि मुबारक मेरे पास खुद आ कर अपनी बहादुरी का परिचय देगा; लेकिन मुबारक नहीं गया।

मुबारक दरिया को अपने घर ले आये थे। उसके लिये खोजा और बाँदी मुकर्रर की। उसके पहनने के लिये बढ़िया-बढ़िया पोशाकें दीं, सुन्दर-सुन्दर गहने दिये। मुबारक पवित्र विवाहिता स्त्री को ले कर अपनी गृहस्थी चलाने लगे।

जब जेबुन्निसा ने देखा कि मुबारक अपनी खुशी से उसके पास नहीं आये तब उसने उनको बुलाने के लिये विश्वासी खोजा असीरूद्दीन को भेजा। फिर भी मुबारक नहीं आये। जेबुन्निसा को बड़ा गुस्सा हुआ। इतनी हिमाकत! शाहजादी मिहरबानी करके उसे याद करती है—तो भी नफर नाजिर नहीं होता! ऐसी गुस्ताखी।

कई दिनों तक जेबुन्निसा गुस्से में रही। मन में कहती थी, मेरे लिये तो सब बराबर हैं। लेकिन जेबुन्निसा यह नहीं जानती थी कि शाहजादियाँ भी भूल करती हैं। खुदा ने शाहजादी और गरीब की लड़की को एक साँचे में ढाला है—धन, दौलत, तख्त ताऊस आदि कर्म-फल-मात्र हैं और कोई दूसरा अन्तर नहीं है।

कुछ दिनों बाद जेबुन्निसा का गुस्सा ठंडा पड़ा। वह मुबारक के लिए व्याकुल हो उठी! उसने अपना मान त्याग कर फिर मुबारक को बुला भेजा। मुबारक ने कहा, 'शाहजादी से मेरा तसलीमात कहना; शाहजादी से बढ़ कर मेरी किस्मत के समान दुनिया में और कुछ नहीं है, केवल एक खुदा और दीन है। मुझ से बढ़ कर गुनहगार भी कोई नहीं है। अब मैं महल के भीतर नहीं जा सकता। मैंने दरिया को अपने घर में ला रखा है।'

जवाब सुन कर जेबुन्निसा मारे गुस्से के आग-बबूला हो गई। उसने मुबारक और दरिया का सर्वनाश करने का संकल्प किया। यही बादशाही दस्तूर था।

महल में निर्मल कुमारी के रहने से जेबुन्निसा को अपने अभिप्राय साधन में विशेष सुविधा मिली। निर्मल कुमारी औरंगजेब के आदर की वस्तु हो गयी थी। इसमें काम-

देव महाराज की कोई कारसाजी नहीं थी, यह शैतान का काम था। प्रतिदिन औरंगजेब अवसर पा कर, ऐश और आराम के समय, रूपनगर की नाजनी को बुला कर बातचीत करता। बातचीत का प्रधान उद्देश्य था राजसिंह के राज-सम्बन्धी बातों का पता लगाना। तो भी चतुर चूड़ामणि औरंगजेब इस ढंग से बातें करता था कि कोई जल्दी न समझ सके कि वह युद्ध के समय की बात पूछ रहा है। लेकिन चतुराई में कोई निर्मल को धोखा नहीं दे सकता था। औरंगजेब की सब बातों का मतलब वह समझती थी और मतलब की सब बातों का झूठा जवाब देती थी।

इस लिए औरङ्गजेब उसकी बातचीत से सन्तुष्ट नहीं होता था। वह मन में यही विचार करता था कि मेवाड़ को मैं युद्ध के समुद्र में डुबा दूँगा। इससे निसन्देह राजसिंह का राज्य न रहेगा। लेकिन इससे मेरा मान भी यथावत नहीं रहेगा। उसकी रानी को रूपनगर से निकाले बिना मेरा मान नहीं रहेगा; क्योंकि राज्य पाने पर भी उसे बेगम बनाने की मुझे आशा नहीं है। क्योंकि राजपूतों की स्त्रियाँ बात-बात पर चिता में जल कर मर जाती हैं, बात-बात पर विष खा लेती हैं। मेरे हाथ में आने के पहले वह शैतानी प्राण त्याग कर देगी। लेकिन यदि मैं इस बाँदी को काबू में कर सकूँगी तो उसे भी वश में ला सकूँगा। इसकी सहायता से क्या रानी को फँसा कर नहीं ला सकता हूँ? क्या यह बाँदी काबू में आ नहीं सकती है? मैं दिल्ली का बादशाह हो कर क्या इस बाँदी को वशीभूत नहीं कर सकता? यदि मैं न कर सकूँ तो मेरी बादशाहत फिजूल है।

उसके बाद इशारा पा कर जेबुन्निसा ने निर्मल कुमारी को गहने पहनाये। उसे बेगमों की पोशाक पहनायी गयी। निर्मल जो कहती वही किया जाता। जो चाहती, वही मिलता। पर बाहर से कुछ नहीं पा सकती थी।

इन सब बातों को ले कर जोधपुरी और निर्मल में विवाद चल रहा था। एक बार हँस कर निर्मल ने जोधपुरी से कहा,

'सोने का पिंजरा सोने की चिड़िया,
सोने की जंजीर पैर में।
सोने का खाना, सोने का दाना,
मट्टी क्यों सिर्फ खैर में।

जोधपुरी ने कहा, 'तुम लेती क्यों हो?'

निर्मल ने कहा, 'उदयपुर जाकर दिखाऊँगी कि मुगल बादशाह को ठग कर ले आयी हूँ।'

जेबुन्निसा औरङ्गजेब का दाहिना हाथ थी। औरङ्गजेब का आदेश पाकर वह निर्मल को साथ रखने लगी। असल मतलब तो शाहजादी के हाथ में रहा—बादशाह ने मधुर भाषण का भार अपने ऊपर रखा। वे निर्मल के साथ हँसी मजाक करते, निर्मल

इसे बुरा नहीं मानती थी, उसका उचित जवाब देती थी। लेकिन उसका जवाब रूपनगर के पहाड़ की तरह कर्कश होता था।

जेबुन्निसा के सामने जो कुछ कहने में आपत्ति नहीं थी, निर्मल ने उसे अकपट भाव से कहा। और-और बातों के साथ रूपनगर की लड़ाई की बात भी चली। निर्मल ने युद्ध के पहले भाग को बिलकुल ही नहीं देखा था, लेकिन चञ्चल कुमारी से उसके विषय में सब कुछ सुन चुकी थी। जैसी बात सुनी वैसी जेबुन्निसा को सुनायी। जिस प्रकार मुबारक ने मुगल सेना को पीछे हटा कर चञ्चल कुमारी के सामने अपनी हार मानी थी, जिस प्रकार उसने लड़ाई छोड़ देने को कहा था, निर्मल ने वह सब कहा। राजपूतों की रक्षा के लिये जो चञ्चल कुमारी ने इच्छापूर्वक दिल्ली आना चाहा था, उसे भी कहा। उसके विष खा लेने की बात और मुबारक के चञ्चल कुमारी को न ला सकने की बात भी कही।

सुन कर जेबुन्निसा ने मन ही मन कहा—मुबारक साहब, इसी हथियार से तुम्हारा सिर गर्दन से अलग कर दूँगी। अवसर पा कर जेबुन्निसा ने औरङ्गजेब को युद्ध की सारी बातें कह सुनायीं।

सुन कर औरङ्गजेब ने कहा—अगर वह नफर इस कदर नमकहराम है तो आज ही उसको जहन्नुम रशीद करूँगा। यह बात नहीं, कि औरङ्गजेब ने इस काण्ड को नहीं समझा। जेबुन्निसा की बदचलनी की बात वह पहले से ही सुनते आ रहे थे। दुनिया में कितने ही ऐसे आदमी हैं जिनके बारे में लोग कहते हैं—वे कुत्ते को तो मारते हैं, पर अपनी हाँड़ी नहीं फेंक देते। मुगल बादशाह उन्हीं आदमियों .की श्रेणी में थे। वे अपनी लड़की अवथा बहिन की बदनामी की बात सुन कर भी उन्हें कुछ कहते न थे, लेकिन जो उनकी लड़की अथवा बहिन के कृपापात्र थे, उनका पता पाने पर कौशल से उनका सर्वनाश ही कर डालते थे। औरङ्गजेब बहुत दिन से यह सन्देह करता था कि मुबारक जेबुन्निसा का प्रीति-भाजन है, पर अब तक निश्चित रूप से समझ नहीं पाया था। इस समय लड़की की बात सुन कर औरङ्गजेब समझ गया कि दोनों में कुछ खट-पट हो गयी है।

शाहजादी को जिस चींटी ने काटा है उसे वह पैरों से कुचलना चाहती है। औरङ्गजेब इससे सहमत हो गया। लेकिन उसने एक बार निर्मल के मुँह से सब बातें सुननी चाहीं। अतः निर्मल को बुलवाया। भीतर की बात निर्मल कुछ नहीं जानती थी, इसलिये सब सच-सच कह दिया। उसके बाद बख्शी को बुला कर मुबारक के बारे में हुक्म जारी किया। बख्शी का हुक्म पा कर आठ आदमी मुबारक को पकड़ लाये। मुबारक हँसते हुए बख्शी के सामने हाजिर हुए। उन्होंने देखा कि बख्शी के सामने दो लोहे के पिञ्जरे रखे हैं। उनमें एक-एक विषधर फन काढ़े गरज रहा है।

आजकल जिसे प्राणदण्ड की सजा मिलती है, उसे फांसी पर लटका दिया

जाता है, बध करने का कोई दूसरा उपाय नहीं है। मुगलों के शासन में बध करने के बहुत से ढंग थे। किसी का सिर काट दिया जाता, किसी को शूली दी जाती, किसी को साँप के कटवा कर उसका प्राण हरण किया जाता था। जिसे गुप्त रूप से बध करना होता उसे विष दिया जाता था।

मुबारक ने हँसते हुए बख्शी के पास आ कर, अपने दोनों ओर पिंजरे में विषधर साँपों को देख कर पहले की भाँति हँसते हुए कहा, 'क्या मुझे इस दुनिया से चला जाना होगा ?'

'बादशाह का यही हुक्म है।'

'ऐसा हुक्म क्यों हुआ ? कुछ पता है ?'

'क्या आप कुछ नहीं जानते ?'

'अन्दाज से तो पता लगा लिया है—अब क्या देर है ?'

'कुछ नहीं।'

उसके बाद मुबारक ने जूता खोल कर पिंजरे के ऊपर अपना पैर रखा। गर्ज कर साँप ने पिंजरे के छेद से काट लिया।

विष की ज्वाला से मुबारक ने अपना मुँह जरा विकृत किया। बख्शी से कहा, 'साहब, अगर कोई पूछे कि मुबारक कैसे मरा, तो मिहरबानी करके कहना कि शाहजादी जेबुन्निसा की इच्छा से।'

बख्शी ने भयभीत हो कातर स्वर में कहा, 'चुप ! चुप !! इस पर भी पैर रखो !'

यदि एक साँप के काटने से आदमी नहीं मरता था तो उसे दूसरे साँप से कटवा कर मार डालने का नियम था। मुबारक को यह मालूम था। उन्होंने दूसरे पिंजरे पर भीं पैर रखा। दूसरे साँप ने उन्हें काट कर अपना तेज विष छोड़ दिया।

उसके बाद विष की ज्वाला से जर्जर हो, घुटने टेट हाथ जोड़ कर मुबारक कहने लगे, 'अल्ला हो अकबर ! अगर मैंने कभी तुम्हारी रहम पाने का काम किया हो तो इस वक्त मुझ पर रहम करो।'

इसके बाद ईश्वर का ध्यान करते हुए साँप के विष की ज्वाला से जर्जरित हो मुगल वीर मुबारक ने अपने प्राण त्याग दिये।

सब समान

रङ्गमहल में सब तरह की खबरें आती थीं। सब खबरें जेबुन्निसा रखती थीं, वह नायब बादशाह थीं। मुबारक के कमरे की खबर भी आ पहुँची।

जेबुन्निसा ने मन में सोचा था कि इस खबर को सुन कर मैं अत्यन्त सुखी होऊँगी। पर हुआ ठीक इसके बिपरीत। खबर सुनते ही उसकी आँखों से आँसुओं की धारा बह चली—इस ऊसर जमीन से कभी भी पानी नहीं निकला था। आँखों से आँसू निकल कर उसके गालों पर उमड़ चले। अन्त में उसे चीत्कार कर के रोने की इच्छा हुई। वह दरवाजा बन्द कर हाथी दाँत के पलंग पर लेट कर रोने लगी।

शाहजादी! हाथी दाँत के बने रत्न खचित पलंग पर लेट कर रोने से भी तो तुम्हारी आँखों के आँसू नहीं थमते। तुम दिल्ली के बाहर जा कर गाँव की टूटी-फूटी झोपड़ी में देखो, कितने आदमी फटे-पुराने चीथड़ों पर लेट कर आनन्द की हँसी हँस रहे हैं। तुम्हारी तरह कोई नहीं रो रहा है।

जेबुन्निसा को पहले ऐसा जान पड़ा कि उसने स्वयं अपने सुख की हानि की है। क्रमशः उसे मालूम होने लगा, सब समान नहीं होते। शाहजादियाँ भी प्रेम करती हैं। जान कर अथवा अनजान से, नारी की देह पाने से ही इस पाप को हृदय में आश्रय देना पड़ता हैं। जेबुन्निसा ने अपने आप ही पूछा—मैं उसको इतना प्यार करती थो? अब तक यह बात मैं क्यों न जान सकी थी? किसी ने मुझसे कहा क्यों नहीं कि तुम ऐश्वर्य मद से अन्धी हो गयी हो? इन्द्रियों की दासी हो कर प्रेम को नहीं पहचान सकती हो। तुम्हें उपयुक्त दण्ड मिला है। कोई तुम पर दया नहीं करेगा।

किसी ने उससे कहा नहीं, पर स्वयं उसके मन में यह सब बातें उदय होने लगीं। साथ-साथ मन में यह भी प्रतीत होने लगा, कि धर्म-अधर्म भी कोई वस्तु है। यदि है, तो बड़ा अधर्म का काम मैंने कर दिया। अन्त में डर हुआ कदाचित् इस पाप का कोई कठिन दण्ड देनेवाला भी हो। क्या वह शाहजादी समझ कर जेबुन्निसा को छोड़ देगा; सम्भव नहीं।

जेबुन्निसा के मन में बड़ा भय हुआ।

दुःख, शोक और भय से जेबुन्निसा ने दरवाजा खोल कर अपने विश्वासी खोजा असिरुद्दीन को बुलाया। उसके आने पर उसने पूछा, 'साँप के विष से मरे हुए आदमी की क्या दवा है?'

असिरुद्दीन ने कहा, 'मरने पर फिर दवा कैसी?'

'कभी भी सुना नहीं ?'

'कानों से सुना है, पर आँखों से देखा नहीं है। हातिम मालने ऐसी ही दवा की थी।'

जेबुन्निसा ने एक लम्बी साँस ली। बोली, 'तुम हातिम माल को पहचानते हो ?'

'हाँ, पहचानता हूँ।'

'वह कहाँ रहता है।'

'दिल्ली में ही।'

'उसका मकान जानते हो ?'

'हाँ, जानता हूँ।'

'इस वक्त वहाँ जा सकते हो ?'

'हुक्म पाते ही जा सकता हूँ।'

'आज मुबारक अली (घिग्घी बँध गयी) साँप के काटने से मर गया है।'

'हाँ, जानता हूँ।'

'जानते हो, उसे कहाँ दफनाया गया है ?'

'देखा तो नहीं है, पर जिस कब्रिस्तान में दफनाते हैं, उसे मैं जानता हूँ। उसमें नयी कब्र को ढूँढ़ निकालूँगा।'

'मैं तुम्हे दो सौ अशर्फियाँ देती हूँ। एक सौ तुम लेना और बाकी एक सौ हातिम माल को देना। मुबारक अली की कब्र को उखाड़ कर, उसमें से उसकी लाश निकाल कर दवा करना। यदि जी जाय तो उने मेरे पास ले आना।'

अशर्फी लेकर खोजा उसी समय रवाना हुआ।

|९|

समिध संग्रह-दरिया

एक बार और रंगमहल में पत्थर की चीजों को बेच कर मानिकलाल ने निर्मल की खबर ली। इस बार भी वह पत्थर का डिब्बा बन्द मिला। निर्मल ने खोल कर देखा, उसमें वही खबर ले जाने वाला कबूतर था। निर्मल ने उसे पास रख लिया। पत्र द्वारा पहले ही भाँति खबर भेजी। लिखा—सब कुशल है, इस समय तुम चले जाओ। मैंने पहले ही कह दिया है कि मैं बादशाह के साथ जाऊँगी।

उसके बाद मानिकलाल ने अपनी दूकान उठा कर उदयपुर की यात्रा की। अभी सवेरा होने में थोड़ी रात बाकी थी। दिल्ली में बहुत से दरवाजे थे। शायद कोई कुछ सन्देह करे इसलिए वह अजमेरी दरवाजे से न जा कर दूसरे दरवाजे से चला। रास्ते की बगल में एक मामूली कब्रिस्तान था। एक कब्र के पास दो आदमी खड़े थे। मानिकलाल और उसके साथियों को देख कर वे भाग चले। तब मानिकलाल ने घोड़े से उतर कर करीब जा कर देखा कि उन्होंने एक कब्र खोद कर उसमें से लाश निकाली है। मानिकलाल बड़े ध्यान से उषा के प्रकाश में उस लाश को देखा। उसके बाद न जाने क्या समझ कर वह उस लाश को घोड़े पर लाद कर और कपड़े से ढँक कर आप पैदल चला।

मानिकलाल दिल्ली के दरवाजे से बाहर निकला। कुछ देर बाद सूर्योदय हुआ। तब मानिकलाल ने लाश को घोड़े से उतार कर जंगल में छिपा कर रख दिया। उसने अपने झोले से कुछ दवा निकाल कर किसी अनुपात के साथ मिलाया। उसके बाद छुरी से उस लाश पर जगह-जगह घाव कर उसमें वह दवा भर दी, और जीभ तथा आँखों में भी थोड़ी सी मल दी। कुछ देर बाद फिर वैसा ही किया। इस प्रकार तीन-चार बार दवा लगाने से उस मृत-व्यक्ति ने साँस ली। चौथी बार में उसे होश हुआ। पाँचवीं बार में वह बैठ कर बातें करने लगा।

मानिकलाल कहीं से थोड़ा-सा दूध ले आया था। उसे मुबारक को पिलाया। दूध पीने के बाद मुबारक को कुछ बल आया और उसे सब बातें याद हो आयीं। उन्होंने मानिकलाल से पूछा, 'मुझे किसने बचाया है। क्या आप ने ही ?'

'हाँ।'

'क्यों बचाया ? मैं आपको तो पहचानता हूँ। आपके साथ मैं रूपनगर के पहाड़ पर लड़ाई लड़ चुका हूँ। उसमें आपने मुझे हरा दिया था।'

मैं भी आप को पहचानता हूँ। आपने ही महाराणा को पराजित किया था। आपकी यह हालत क्यों हुई ?'

'इस समय कहने की बात नहीं है, पीछे कहूँ गा। आप कहाँ जा रहे हैं ? उदयपुर ?'

'हाँ।'

'आप मुझे भी अपने साथ ले चलें गे ? अब मुझे दिल्ली नहीं लौटना है। मुझे बादशाही सजा मिली है।'

'मैं आप को साथ ले जा सकता हूँ, लेकिन आप इस समय बड़े दुर्बल हैं।'

'शाम तक ताकत आ जायगी। क्या आप ठहरेंगे ?'

'हाँ, ठहर सकता हूँ।'

मानिकलाल ने मुबारक को थोड़ा और दूध पिलाया। वह गाँव से एक घोड़ा खरीद लाया। उस पर मुबारक को चढ़ा कर उदयपुर चला।

रास्ते में जाते मुबारक ने मानिकलाल को जेबुन्निसा की सब बातें कह सुनायीं। मानिक समझ गया कि मुबारक जेबुन्निसा की क्रोधाग्नि में पड़ गये हैं।

इधर असिरुद्दीन ने लौट कर जेबुन्निसा से कहा, 'किसी तरह भी मुबारक जिलाया न जा सकेगा।'

जेबुन्निसा ने इत्र से तर की हुई रूमाल अपनी आँखों में लगाया। अब पत्थर पर लोट कर गँवार स्त्री की तरह वह माथा पीट-पीट कर रोने लगी।

जो दु:ख किसी के सामने प्रकट करने योग्य नहीं, उसका सहना कष्टकर है। शाहजादी को वही दु:ख था। जेबुन्निसा ने सोचा, खुदा ने मुझे किसान की बेटी क्यों नहीं बनाया ?

इसी समय कमरे के द्वार पर बड़ा गोल-माल मचा। कोई कमरे में आने के लिए जिद कर रहा था। पहरेवाली उसे आने नहीं देती थीं। जेबुन्निसा ने दरिया की आवाज सुनी। पहरेवाली उसे रोक न सकी। दरिया ने पहरेवाली को ठेल-ठाल कर कमरे में प्रवेश किया। उसके हाथ में तलवार थी। उसने जेबुन्निसा को काटने के लिए तलवार उठायी। पर अकस्मात् तलवार को फेंक कर जेबुन्निसा के सामने नाचने लगी। बोली, 'बहुत अच्छा !—आँखों में आँसू !'

यह कह कर बड़े जोर से हँसने लगी। जेबुन्निसा ने पहरेवाली को बुला कर दरिया को पकड़ने के लिए कहा। पहरेवाली उसे पकड़ न सकी। लम्बी साँस ले कर वह भाग गई। पहरेवाली ने उसे पीछे से पकड़ कर उसका कपड़ा खींच लिया। दरिया कपड़ा छोड़ कर नङ्गी हो कर भाग गई। उस समय वह पगली हो रही थी। उसने मुबारक के मरने की खबर सुनी थी।

सातवाँ भाग

अग्नि जली

| १ |

अग्नि-ज्वाला

राजसिंह के राज्य को विनष्ट करने के लिए औरंगजेब ने चढ़ाई करने में जो देरी की उसका कारण था भयङ्कर तैयारी। औरंगजेब ने दुर्योधन और युधिष्ठिर की भाँति ब्रह्मपुत्र से ले कर वाह्लीक तक, काश्मीर से ले कर केरल और पांड्य तक जितनी सेनायें थीं, उन सब को इस महायुद्ध के लिए एकत्र किया। दक्षिण से एक बड़ी सेना ले कर बादशाह का लड़का शाहआलम उदयपुर को डुबाने आया। दूसरा लड़का आजमशाह बंगाल से बड़ी फौज ले कर उदयपुर की पर्वतमाला के द्वार पर आ उपस्थित हुआ। पश्चिम मुलतान से पञ्जाबी, काबुली, काश्मीरी योद्धाओं को ले कर तीसरे पुत्र अकबर शाह ने भी उस अनन्त सेना सागर में अपनी भी सेना का सागर मिला दिया। उत्तर की ओर से स्वयं बादशाह ने दिल्ली से अजेय शाही सेना को ले कर पृथ्वी से मेवाड़ का नाम विलुप्त करने के अभिप्राय से मेवाड़ में पदार्पण दिया। समुद्र के बीच में ऊँचे पर्वत शिखर के समान मुगल-सेना रूपी सागर के बीच उदयपुर शोभा पा रहा था।

अनेक साँपों से घिर जाने पर गरुड़ को जितना भय होता है, मुगल सेना को देख कर राजसिंह को उतना ही भय हुआ। भारतवर्ष में इस प्रकार सेना की तैयारी कुरुक्षेत्र युद्ध के बाद हुई थी या नहीं, कहा नहीं जा सकता। जिस सेना की चीन, फारस, रूस आदि देशों को जीतने के लिये आवश्यकता न पड़ती, औरङ्गजेब ने क्षुद्र उदयपुर जीतने के लिए उसी सेना को राजपूताने में ला कर खड़ा कर दिया। संसार में केवल एक बार ऐसी घटना हुई थी। जब फारस का राज्य सबसे बड़ा था, तब वहाँ के बादशाह जरक्सीज ने पचास लाख आदमी ले कर छोटे से भूमि खण्ड-ग्रीस को जीतने के लिए चढ़ाई की थी। थर्मापोली में लियोनी डास, सालामिस में थेमिस्टोकल्स एवं

प्लामिया में पौसानिया ने उनके गर्व को चूर-चूर कर दिया। कुत्ते सियार की तरह जरक्सीज की सेना भाग चली। उसी प्रकार की यह दूसरी घटना संसार में घटी। कितने लाख सैनिकों को लेकर भारतपति के एक छोटे से भू-खण्ड को जीतने के लिए चढ़ाई की थी। राजसिंह ने क्या किया, यह जान लेना चाहिए।

युद्ध विद्या यूरोप की विद्या है। भारतवर्ष में इसका किसी समय भी विशेष विकास नहीं हुआ। इतिहास और पुराणों में जो-जो आर्य वीरों की ख्याति हम सुनते हैं; उनका कौशल केवल तीरन्दाजी, और लठैती में था। इतिहास लेखक ब्राह्मण थे। वे युद्ध-विद्या नहीं जानते थे, चाहे इस कारण से, अथवा युद्ध-विद्या हमारे यहाँ प्राचीन काल में थी ही नहीं, चाहे इस कारण से, हमें इतिहासों में रामचन्द्र, अर्जुन आदि के सेना पतित्व का पूरा परिचय नहीं मिलता। अशोक, चन्द्रगुप्त, विक्रमादित्य, शकादित्य, शिला दित्य किसी के सेनापतित्व का परिचय हमें नहीं मिलता। जिन्होंने भारतवर्ष को जीता था, उन मुहम्मद कासिम, महमूद गजनवी; शहाबुद्दीन, अलाउद्दीन, बाबर, तैमूर और नादिर आदि के सेनापतित्व का कुछ परिचय नहीं मिलता। जान पड़ता है मुसलमान इतिहास लेखक भी इसे नहीं जानते थे। अकबर के जमाने से सेनापतित्व का कुछ-कुछ परिचय मिलने लगा है। अकबर, शिवाजी, अहमदशाह अब्दाली, हैदर अली, हरि सिंह के सेनापतित्व तथा रण-पांडित्य का विवरण मिलता है। भारतवर्ष के इतिहास में पांडित्य का जितना वर्णन है उससे राजसिंह किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। यूरोप में भी इस प्रकार रण-कुशल थोड़े ही पैदा हुए हैं। थोड़ी सी सेना की सहायता से जैसा महान् कार्य राजसिंह ने किया वैसा कार्य विलियम के सिवा संसार में और किसी ने नहीं किया।

उस अपूर्व सेनापतित्व का पूरा परिचय देने का यह उपयुक्त स्थान नहीं है। अतः उसका संक्षेप में वर्णन इस प्रकार है।

औरंगजेब की महती सेना के चार भागों में बँट जाने पर रण-पण्डित को जो कुछ करना चाहिये था राजसिंह ने भी वही किया। पर्वत-माला के बाहर जो समतल भूमि थी उसको छोड़ कर राणा ने पहाड़ पर अपनी सेनाएँ खड़ी कीं। उन्होंने अपनी सेना को तीन भागों में बाँट दिया। एक भाग को अपने बड़े लड़के जयसिंह के अधीन पहाड़ की चोटी पर रखा। दूसरे भाग को अपने दूसरे बेटे भीमसिंह के अधीन पश्चिम की ओर रखा। उस ओर का रस्ता खुला रखा कि अन्यान्य राजपूत उस ओर से आ कर सहायता करेंगे। तीसरे भाग को ले कर स्वयं वे नयन नामक गिरि संकट में रहे।

आजमशाह अपनी सेना ले कर जहाँ उपस्थित हुआ वहाँ पर्वत की श्रेणियों से उसका मार्ग रुक गया। चढ़ने का कोई उपाय नहीं था। ऊपर से गोलों और पत्थरों की वर्षा हो रही थी। जिस प्रकार श्राद्ध के भोजन-गृह के द्वार को बन्द कर देने पर कुत्ते

ठेलमठेल मचाते हैं, उसी प्रकार प्रवत के द्वार पर आजमशाही सेना ठेलमठेल कर रही थी, पर आगे जाने का कोई रास्ता नहीं था।

अजमेर में औरंगजेब से अकबर की भेंट हुई। बाप बेटे अपनी सेनाओं को मिला कर जिधर रास्ता खुला था उसी ओर चले। इसी का नाम गिरि संकट था। एक का नाम था, दोवारी, दूसरे का नाम था, दयेलवारा और तीसरे का नाम था नयन। दोवारी में पहुँचने पर औरंगजेब ने अकबर को उस रास्ते से पचास हजार सैनिक ले कर आगे-आगे जाने की अनुमति दी और उसने स्वयं उदय सागर नामक विख्यात सरोवर पर छावनी डाल कर विश्राम करने की चेष्टा की। शाहजादा अकबर पहाड़ी रास्ते से उदय पुर की ओर चले। किसी ने भी उनका रास्ता न रोका। महलों की पंक्तियाँ, उपवनों की श्रेणियां, तालाब आदि सब उन्होंने देखे, पर एक भी आदमी नहीं दिखायी दिया। तब अकबर ने वहाँ अपना खेमा डाला। मन में सोचा, शायद मेरी फौज के आने से यहाँ के आदमी भाग गये हैं। मुगल छावानी में आमोद-प्रमोद होने लगा। कोई भोजन में, कोई खेल में और कोई नमाज़ में गर्क हुआ। इसी समय जैसे सोए पथिक के ऊपर बाघ कूद कर टूट पड़ता है, वैसे ही कुमार जयसिंह अकबर पर टूट पड़े। बाघ ने प्रायः समस्त मुगल सेना को अपने जबड़े में डाल लिया। कोई बचा नहीं। पचास हजार मुगल में बहुत थोड़े लौटे। शाहजादा गुजरात की ओर भाग गये। मोअज़म शाह जिनका दूसरा नाम आलम था दक्षिण से सेना ले कर अहमदाबाद को घेर कर पर्वत माला के पश्चिम भाग में आ उपस्थित हुए। उस पहाड़ी रास्ते का नाम गणराव था। उसी रास्ते से आगे बढ़ कर काकरौली के समीपवर्ती सरोवर राज प्रसाद के निकट जाकर देखा कि आगे रास्ता नहीं है। रास्ता बना कर भी वह आगे नहीं जा सकते। आगे जाने से तो राजपूत पीछे का रास्ता बन्द कर देंगे। रसद ले आने का कोई उपाय न रहेगा। अन्न बिना सब मर जायेंगे। जो यथार्थ सेनापति हैं वे अच्छी तरह जानते हैं कि हाथ की मार से युद्ध नहीं होता, पेट की मार से युद्ध होता है। जो यथार्थ सेनापति हैं वे जानते हैं कि पेट चलाने का उपाय रख हाथ चलाना चाहिये। सिक्ख आज भी रोकर कहते हैं कि रसद बन्द हो जाने से ही हम पराजित हुए। सर बार्टल फ्रियर ने एक बार कहा था कि बङ्गाली युद्ध करना नहीं जानते, यह समझ कर उनसे घृणा मत करना। बङ्गाली एक दिन सब खाद्य सामग्री छिपा सकते हैं।

शाहआलम लड़ाई करना जानते थे इसलिए वे आगे नहीं बढ़े।

राजसिंह के सेना संघटन के गुण के कारण (यही सेनापति का प्रधान कार्य है) दक्षिण और बङ्गाल की सेना वर्षा काल के बन्दरों की तरह जड़वत् बैठ गयी। मुलतान की सेना छिन्न-भिन्न होकर आँधी की धूल के समान कहीं की कहीं उड़ गयी। खाली बादशाह दुनिया के बादशाह आलमगीर बच गये।

| २ |

नयनाग्नि जली

शाहजादा अकबर शाह को आगे भेज कर खुद बादशाह ने उदय सागर के तीर पर अपना खेमा डाला था। पाश्चात्य यात्रियों ने मुगलों की दिल्ली को देख कर कहा था; कि दिल्ली एक बड़ी छावनी है। पक्षान्तर में यह भी कहा जा सकता है कि मुगलों की छावनी एक दिल्ली नगरी थी। शहर में जैसे चौक होते हैं, वैसे ही बड़े-बड़े चौक बना कर खेमे डाले जाते थे। इसी प्रकार अनेक खेमों की कतारों से कपड़े की एक महा-नगरी बन जाती थी। सब के बीच में बादशाह के तम्बुओं का चौक रहता। दिल्ली में जिस प्रकार महलों की श्रेणियों के बीच बादशाह वास करते थे, उसी तरह यहाँ भी दरबार आम-खास, गुसलखाना और रङ्गमहल रहता था। ये सब शाही खेमे केवल कपड़ों के बने नहीं होते थे। वे लोहे और पीतल के भी बने होते थे। ये दो तल्ले से तीन-तल्ले भी होते थे। सामने दिल्ली के फाटक के समान एक बड़ा फाटक रहता था। बादशाही तम्बुओं के चारों ओर पाँच कोस के ईर्द-गिर्द जो कपड़े की चहार दीवारी रहती थी, उस पर कई तरह के बेल-बूटे के काम किये रहते। जिस तरह किले की दीवार में बुर्ज और गुम्बद रहते, उसी भाँति यहाँ भी रहते। कपड़े की दीवारें पीतल के खम्भों के सहारे खड़ी की जातीं। खेमों की बाहरी दीवारें लाल या सफेद रङ्ग की होती थीं, अन्दर उन पर चित्र अङ्कित किये रहते थे। दीवार वाले तम्बू के ऊपर सोने का गुम्बद रहता, नीचे एक बहुमूल्य गलीचा बिछा रहता बीच में रत्न-जटित सिंहासन रहता। चारों ओर तातारी सुन्दरियाँ पहरा देतीं।

राजमहलों की कतारों के बाद अमीर उमरावों के खेमे रहते। ये कई कोस तक फैले रहते, किसी का रङ्ग लाल, किसी का पीला, किसी का हरा, और किसी का नीला रहता। सभी के स्वर्ण-कलश सूर्य चन्द्रमा की किरणों से झलकते थे। उसके आस पास चारों ओर दिल्ली के चौक की तरह सड़कें बनतीं, बाजार बसाये जाते। सहसा बादशाह के आने पर उदय-सागर के किनारे इस प्रकार की एक महानगरी की सृष्टि हुई। देख कर लोगों को बड़ा विस्मय हुआ।

बादशाह जब छावनी में आते तब रङ्गमहल की सब बेगमें भी साथ में आतीं। इस बार भी बेगमें आयीं। जोधपुरी, उदयपुरी, जैबुन्निसा सभी आयीं। दिल्ली में जिस तरह उनके रहने के लिए अलग-अलग महल रहते, उसी तरह खेमे के रंगमहल में भी उनके लिये अलग-अलग स्थान रहते।

इसी आनन्दमय शिविर में बादशाह रात को जोधपुरी महल में आ कर बातचीत कर रहे थे। निर्मल कुमारी भी वहीं थी।

'इमली बेगम' कह कर बादशाह ने निर्मल कुमारी को पुकारा। इसके पहले वे उसे निर्मल बेगम कह कर पुकारते थे। लेकिन शब्द उच्चारण करने की कठिनाई के कारण उन्होंने उसे इमली बेगम कहना शुरू किया। बादशाह ने निर्मल कुमारी से पूछा, 'इमली बेगम, तुम मेरी हो या राजपूत की ?'

निर्मल ने हाथ जोड़ कर कहा, 'दुनिया के बादशाह दुनिया का फैसला करते हैं ! इस बात का भी फैसला वही करें।'

'मेरा कहना यही है कि तुम राजपूत की कन्या हो, राजपूत तुम्हारा स्वामी है, तुम राजपूत रानी की सखी हो, अत: तुम राजपूत की ही हो।'

'जहाँपनाह, क्या आप का फैसला ठीक हुआ ? मैं राजपूत की कन्या हूँ सही, पर जोधपुरी भी वही हैं। आप की दादी, परदादी भी वही थीं। क्या वे मुगल बादशाह का मंगल चाहने वाली न थीं।'

'ये मुगल बादशाहों की बेगम हैं, तुम राजपूत की स्त्री हो।'

'मैं भी शाहनशाह आलमगीर बादशाह की इमली बेगम हूँ।'

'तुम रूपनगर की सखी हो।'

'और जोधपुरी की भी ?'

'तब क्या तुम मेरी ?'

'जो आप समझें।'

'मैं तुमसे एक काम लेना चाहता हूँ। उससे मेरा उपकार होगा और राजसिंह का अनिष्ट। जो काम तुमसे लेने की मैं इच्छा करता हूँ, क्या तुम उसे कर सकोगी।'

'क्या काम है, यह जाने बिना मैं कुछ नहीं कह सकती, मैं किसी देवता या ब्राह्मण का अनिष्ट नहीं कर सकती।'

'मैं तुम्हें वैसा काम करने को नहीं कहूँगा। मैं उदयपुर नगर को दखल करूँगा, राजसिंह का महल दखल करूँगा। इसमें कुछ सन्देह नहीं है, पर राजमहल दखल होने पर भी रूपनगरी को हस्तगत कर सकूँगा या नहीं, इसमें सन्देह है। तुम्हें इसी काम में मेरी सहायता करनी होगी।'

'मैं ! आपके सामने गंगा-जमुना जी की शपथ खा कर कहती हूँ कि यदि आप उदयपुर का राजमहल दखल करेंगे तो मैं चंचल कुमारी को ला कर आप के हाथों सौंप दूँगी।'

'मैं तुम्हारी बात का विश्वास करता हूँ। क्योंकि तुम जानती हो, कि जो मुझे धोखा देता है, मैं उसे टुकड़े-टुकड़े कर कुत्ते को खिला दे सकता हूँ।'

'खिला दे सकेंगे या नहीं, इसका विचार हो गया है। किन्तु मैं शपथ खा कर कहती हूँ कि मैं आपको धोखा नहीं दूँगी। तो भी मुझे सन्देह है कि महल दखल करने पर आप उन्हें जीवित पायेंगे या नहीं। राजपूत स्त्रियों की यह रीति है, कि शत्रुओं के हाथों

में पड़ने के पहले वे आग में जल मरतो हैं। मैं उन्हें जीवित नहीं पाऊँगी, यही समझ कर मैं आप की बात को स्वीकार कर रही हूँ। नहीं तो मेरे द्वारा चंचल कुमारी का कोई अनिष्ट होना सम्भव नहीं।'

'इससे उसका क्या अनिष्ट होगा ? वह तो बादशाह की बेगम होगी।'

निर्मल उत्तर देने जा रही थी, इसी समय खोजे ने आ कर निवेदन किया, 'पेशकार दरबार में हाजिर हैं। वे कुछ जरूरी अर्जियाँ पेश करना चाहते हैं। हजरत शाहजादा अकबर साहब की खबर आयी है।'

औरंगजेब अत्यन्त व्यस्त हो कर दरबार में गया। पेशकार ने अर्जी पेश की। औरङ्गजेब ने सुना कि अकबर की पचास हजार सेना छिन्न-भिन्न हो कर प्रायः निहत हो चुकी है। जो सैनिक मरने से बचे, वे न जाने कहाँ भाग गये।

औरंगजेब ने उसी समय छावनी उठा देने की आज्ञा दी।

अकबर की खबर रङ्गमहल में भी पहुँची। सुनकर निर्मल कुमारी पेशवाज पहन, दरवाजा बन्द कर जोधपुरी बेगम के सामने नाचने लगी।

वेशभूषा बदल कर जब निर्मल कुमारी बैठी तब बादशाह ने उसे तलब किया। निर्मल के हाजिर होने पर बादशाह ने कहा, 'हम खेमे उठा रहे हैं—लड़ाई में जायेंगे। तुम क्या इस समय उदयपुर जाना चाहती हो ?'

'नहीं, इस समय मैं फौज के साथ जाऊँगी। जाते-जाते जहाँ सुविधा देखूँगी, वहीं से चली जाऊँगी।'

औरङ्गजेब ने कुछ दुःखित होकर कहा, 'क्यों जाओगी ?'

निर्मल ने कहा, 'शाहनशाह का हुक्म है।'

प्रसन्न हो कर औरङ्गजेब ने कहा, 'यदि मैं तुम्हें न जाने दूँ तो क्या तुम सदा के लिये मेरे रङ्गमहल में रहना पसन्द करोगी ?'

निर्मल कुमारी ने हाथ जोड़ कर कहा, 'मेरे स्वामी हैं।'

औरङ्गजेब ने कुछ इधर-उधर करते हुए कहा, 'यदि तुम इसलाम धर्म ग्रहण करो और अपने स्वामी को छोड़ दो तो तुम्हें उदयपुरी से भी अधिक इज्जत के साथ रखूँगा।'

निर्मल ने मुस्कराते हुए कहा, 'जहाँपनाह ! यह नहीं हो सकता।'

'क्यों नहीं हो सकता ? कितनी ही राजपूत कन्यायें मुगलों के घर आयी हैं।'

'उनमें से कोई अपने स्वामी को छोड़ कर नहीं आयी है।'

'यदि तुम्हारे स्वामी न होते, तो क्या तुम चली आती ?'

'यह बात क्यों पूछ रहे हैं ?'

'क्यों, यह कहते में शर्म करती हो ? मैंने ऐसी बात किसी से नहीं कही है। मैं बुड्ढा हो गया हूँ पर कभी किसी को प्यार नहीं किया। इस जन्म में केवल तुमको ही

मैं प्यार करता हूँ। इसलिये यदि तुम कहो, कि स्वामी के न रहने पर मैं आप की बेगम होती तो मेरा यह स्नेह-शून्य हृदय—ज्वालामुखी पहाड़ जैसा जलता हुआ हृदय—कुछ शीतल हो जाय।'

निर्मल ने औरङ्गजेब की बात का विश्वास किया, क्योंकि औरङ्गजेब का कण्ठ-स्वर उसे विश्वास करने योग्य प्रतीत हुआ। निर्मल ने औरङ्गजेब के लिये किञ्चित् दुःखित हो कर कहा, 'जहाँपनाह! इस बाँदी ने ऐसा कौन सा काम किया है जिससे आप इतना प्यार करते हैं?'

'यह मैं नहीं कह सकता। तुम सुन्दरी हो। पर सौन्दर्य पर मुग्ध होने की मेरी उम्र नहीं है और सुन्दरी होने पर भी तुम उदयपुरी से अधिक सुन्दरी नहीं हो, पर तुम्हारे सिवा किसी में ऐसी सच्चाई नहीं देखी। इसलिये तुम्हारी बुद्धि, चतुरता और साहस को देख कर तुम्हें अपनी उपयुक्त बेगम बनाने की इच्छा हुई है। जो हो आलमगीर बादशाह कभी किसी के वशीभूत नहीं हुआ और न किसी के कटाक्ष से मोहित हुआ।'

'शाहनशाह! मुझसे एक बार रूपनगरी की राजकन्या ने पूछा था कि तुम किससे ब्याह करना चाहती हो? मैंने कहा था, आलमगीर बादशाह से। उन्होंने मुझसे पूछा—क्यों? मैंने उनसे कहा कि लड़कपन में मैंने एक शेर पाला था। उसे वश में करने में मुझे बड़ा आनन्द मिलता था। बादशाह को वश करने में भी मुझे आनन्द मिलेगा, पर दुर्भाग्यवश अविवाहिता अवस्था में आपसे मेरी भेंट नहीं हुई। मैंने दीन दरिद्र को अपना स्वामी बनाया है। उसी से सुखी हूँ। अब मुझे बिदा कर दीजिये।'

औरङ्गजेब ने दुःखित होकर कहा, 'दुनिया के बादशाह होने पर भी कोई सुखी नहीं होता, किसी की लालसा नहीं मिटती। संसार में मैंने केवल तुम्हें ही प्यार किया है, किन्तु तुम्हें पा न सका। मैंने तुम्हें प्यार किया है, इसलिये तुम्हें रोक न रखूँगा—छोड़ दूँगा। जिससे तुम्हें सुख मिले, वही करूँगा। जिसमें तुम्हें दुःख होगा, वह न करूँगा। तुम जाओ, मुझे याद रखना। यदि मुझसे तुम्हारा कुछ उपकार हो तो मुझे बतलाना। मैं उसे अवश्य पूरा करूँगा।'

निर्मल में कोर्निश की। बोली, 'केवल एक भीख रह गयी। अब दोनों पक्षों में सन्धि कराने के लिये मैं आपसे अनुरोध करूँ तो आप मेरी बात अवश्य सुनियेगा।'

औरङ्गजेब ने कहा, 'उस बात का विचार उसी समय होगा।'

तब निर्मल ने औरङ्गजेब को अपना कबूतर दिखा कर कहा, 'आप इस सिखाये हुए कबूतर को अपने पास रख लीजिये। जब कभी आप इस दासी को याद करें तब इस कबूतर को छोड़ दीजियेगा। इसी के द्वारा मैं अपना निवेदन आपको जनाऊँगी। मैं इस समय फौज के साथ रहूँगी। जब मेरे बिदा होने का समय आवे तब बेगम साहबा को मुझे बिदा देने की अनुमति दे दीजियेगा।'

इसके बाद औरङ्गजेब फौज चलाने की तैयारी में लगा।

पर उसके मन में बड़ा विषाद हुआ। निर्मल के समान साहसिकता एवं सत्यता मुगल बादशाह ने कभी किसी स्त्री में देखी नहीं थी—यदि कोई राजा—शिवाजी अथवा राजसिंह, यदि कोई सेनापति—दिलेर अथवा तब्बर यदि कोई शाहजादा—आजम या अकबर इतने साहस से इतनी स्पष्ट बात कहते तो औरङ्गजेब कभी नहीं सह सकता। किन्तु वही बात रूपवती युवती निर्मल के मुँह से उसे मिठी लगी। बूढ़े के अपर काम देव का जितना अत्याचार हो सकता था उतना हुआ। औरङ्गजेब प्रेमांध की नाईं वियोग के शोक से शोकाकुल न हो केवल किञ्चित् दु:खित हुआ। औरङ्गजेब मार्क घण्टोनी अथवा अग्निवर्ण न था, किन्तु मनुष्य कभी पत्थर भी नहीं हो सकता।

|३|

बादशाह आग में

सबेरे शाही फौज ने कूच किया। सबसे आगे रास्ता साफ करने वाले सैनिक रास्ता साफ करते जाते थे। उनके हथियार से—कुदालो, कुल्हाड़ी, दाव और कटारी। वे सामने के पेड़ों को काटते हुए, ऊँची जमीन की काट कर समतल करते हुए आगे-आगे जा रहे थे उसी चौड़े रास्ते से गाड़ियों पर लाद कर धड़-धड़ हड़-हड़ करती हुई तोपें जा रही थीं। साथ में गोलन्दाजों की सेना थी। असंख्य गोलन्दाजी गाड़ियों के हड़-हड़ धड़-धड़ शब्द से कान बहरे हुए जाते थे। उनके हजारों पहियों के घूमने से जो धूल उड़ती थी उससे आँखें अन्धी हुई जाती थी। कालान्तक यम के समान सब प्रकार की तोपों को देख कर हृदय काँप उठता था। गोलन्दाज सेना के पीछे शाही खजाना था। शाही खजाना साथ-साथ चलता था। दिल्ली में किसी पर विश्वास न कर औरङ्गजेब अपना धन किसी को नहीं सौंपता। उसके शासन का मूल मन्त्र था सबके प्रति अविश्वास। यह भी स्मरण करने की बात है, कि इस बार दिल्ली से चल कर औरङ्गजेब दिल्ली नहीं लौटा। पच्चीस वर्ष तक इधर-उधर छावनियों में घूम कर उसने दक्षिण में अपना प्राणत्याग किया।

अनन्त धन और रत्नों के ढेर से लदे हाथियों के पीछे बादशाही दफ्तर खाना था। गाड़ी, हाथी और ऊँटों पर लदे थोक के थोक खाता पत्र थे। कतार के पीछे कतार—असंख्य अनन्त गाड़ियाँ थीं। पीछे गंगाजल ढोने वाले ऊँटों की कतारें थीं। गंगाजल जैसा मीठा पानी किसी नदी का न था। इसलिये मुगल बादशाह अपने साथ

गंगाजल भी रखते थे। जल के बाद नाना प्रकार के भोजन के सामान-आटा, घी, चावल, मसाले, चीनी, चिड़िया, चौपाये आदि से लदी गाड़ियाँ थीं। उनके साथ हजारों बावर्ची थे। उसके पीछे तो पखाना था। उसके पीछे अगणित घुड़सवारों की सेना थी।

यह सेना का पहला भाग हुआ। उसके दूसरे भाग में स्वयं बादशाह थे। उनके आगे-आगे ऊँटों पर बड़े-बड़े कड़ाहों में धूप, गुग्गुल, चन्दन, कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ जल रहे, जिनकी सुगन्धि से कोसों तक पृथ्वी और आकाश सुगन्धित हो रहा था। उसके पीछे खास अहदियों की सेना थी। वे ऐबक घोड़ों पर सवार कतार बाँधे हुए चले जा रहे थे। बीच में खुद बादशाह जवाहरत से सजे हुए उच्चैश्रवा के समान बड़े भारी घोड़े पर सवार थे। उनके ऊपर बहुमूल्य मोतियों का झालर वाला सफेद छत्र शोभित हो रहा था। बादशाह के जलुस से पीछे रङ्गमहल में रहने वाली त्रैलोक्यमोहिनी सुन्दरियों का समुदाय था जिसे सेना का सार, दिल्ली का सार और बादशाही का सार कह सकते हैं। उन सुन्दरी बेगमों में कोई कोई ऐरावत के सदृश ऊँचे हाथियों पर सोने के हौदों में जिनमें बेल-बूटेदार मखमल के गद्दे बिछे थे और जिनकी अंबारियों पर रेशमी पर्दे पड़े थे, सवार थीं। उस समय उनकी ऐसी तड़क-भड़क थी जैसे बादलों में छिपे चन्द्रमा की होती है। उन सुन्दरियों की जवाहरात से लदी लटें काली नागिन सी लहरा रही थीं। उनकी काली काली बड़ी-बड़ी आँखों में कालाग्नि के समान कटाक्ष खेल रहे थे, जिनके ऊपर धनुष सी तनी हुई भौंहें थीं, और नीचे सुरमा की काली लकीरें थीं। उनकी बिजली जैसी चमक से सारी सेना विशृङ्खल हो उठती थी। सुन्दरियों के होठों पर पान की लाली के साथ मधुर मुसकान थी। ऐसी सुन्दरी युवतियाँ एक या दो नहीं थीं। हाथियों पर हाथी, हाथियों के पीछे हाथी थे। सबके ऊपर वैसे ही हौदे कसे थे। सभी हौदों में वैसी ही सुन्दरियाँ थीं, सबकी आँखों में बादलों में चमकती बिजली की छटा थी। काली जमीन उनके प्रकाश से चमक उठी। कोई-कोई पालकी में थी। उनके बाहर किमखाब और भीतर जरदोजी मखमल के परदे थे। किनारे-किनारे मोतियों की झालरें झूल रही थीं और उनके खम्भों पर चाँदी सोने की पत्तर मढ़ी थी। भीतर कामदार मखमल के मुलायम गद्दे बिछे थे, जिनके किनारों पर बेल बूटे बने थे। उनके भीतर रत्नों से सजी सुन्दरियाँ थीं। जोधपुरी, निर्मल कुमारी, उदयपुरी और जेबुन्निसा हाथियों पर सवार थीं। उदयपुरी हँसती थी, जोधपुरी अप्रसन्न थी, निर्मल चुहल और छेड़-छाड़ में मशगूल थी। जेबुन्निसा गर्मी के दिनों में उखड़ी हुई लता की भाँति मुरझायी सी दिखरायी देती थीं। वह सोच रही थी कि क्या इस सेना के समुद्र में डूब कर मैं मर नहीं सकती ?

इन मनमोहिनी सुन्दरियों के झुण्ड के पीछे सहेलियों और दासियों का दल था। सभी घोड़ों पर सवार थीं, सबकी लटें लटक रही थीं, लाल होठ थे, बिजली जैसे

कटाक्ष थे। ये सब भी मनमोहिनी थीं। इनके पीछे भी गोलन्दाजों की सेना थी। लेकिन इनकी तोपें छोटी-छोटी थीं। शायद बादशाह ने निश्चय किया था कि कामिनियों के कमनीय कटाक्षों के बाद बड़ी तोपों का क्या प्रयोजन है?

तीसरे भाग में पैदल सेना थी। उसके बाद दासी, कुली, मजूर-नर्तकी आदि बाहरी आदमी, खाली घोड़े, एवं तम्बू आदि थे।

जैसे घोर गर्जन करती हुई, बड़े-बड़े गाँवों को डुबोती हुई, मगर, घड़ियाल और भंवर से भारी भयनाक बरसाती नदी छोटी सी बालू की राशि को बहाती हुई चली जाती है, उसी तरह बड़ी कोलाहल करती हुई वह असंख्य मुगल सेना राजसिंह के राज्य को डुबाने के लिये चली जा रही थी।

पर अकस्मात् एक रुकावट आ खड़ी हुई, जिस रास्ते से सेना लेकर अकबर गया था, उसी रास्ते से औरङ्गजेब भी जा रहा था। अभिप्राय यह था कि अकबर की सेना के साथ अपनी सेना मिला देंगे। बीच में यदि कुमार जयसिंह की सेना मिलेगी तो रास्ते में ही उसे मार भगायेंगे। उसके बाद दोनों उदयपुर में प्रवेश कर राज्यों को विध्वंस कर देंगे। परन्तु पहाड़ पर चढ़ने के पहले औरङ्गजेब ने देखा कि ऊपर पहाड़ की घाटी में उसके रास्ते के पास ही सेना लेकर राजसिंह बैठे हैं। राजसिंह ने नयन नामक गिरि-संकट के पहाड़ी रास्ते को रोक रखा था, पर जब उन्होंने अपने दूत से अकबर का हाल सुना तब रणकुशलता की अद्भुत प्रतिभा दिखाते हुए वे अपनी सेना के साथ माँस-लोभी बाज पक्ष की भाँति ऊपर कहे हुए पहाड़ी रास्ते पर आ डटे।

औरङ्गजेब ने देखा कि राजसिंह की बुद्धिमानी के कारण मेरा सर्वनाश हुआ जा रहा है; क्योंकि जिस रास्ते से मुगल जा रहे थे उस रास्ते से और आगे बढ़ने में राजसिंह को बगल में छोड़ कर जाना पड़ता। शत्रु की सेना को अपनी बगल में छोड़ कर जाने की अपेक्षा बड़ी विपद् और क्या हो सकती है, क्योंकि जो बगल में छापा मारे उसे लड़ाई में हराना कठिन है। बगल से आक्रमण करने वाला ही अपने शत्रु की सेना को तहस-नहस कर देता है। सालमाक्क और ओस्तरलीज में ऐसी ही घटना हुई थी। औरङ्गजेब भी इस स्वयं-सिद्ध रणकुशलता को जानता था। वह यह भी जानता था कि बगल के शत्रु से युद्ध तो किया ही जा सकता है, किन्तु ऐसा करने में अपनी ही सेना को घुमा कर शत्रु की सेना के सामने कर देना होगा। लेकिन इस तंग पहाड़ी रास्ते में इतनी बड़ी सेना के घुमाने का यथेष्ट स्थान और समय भी नहीं था, क्योंकि सेना को घुमाते ही राजसिंह पहाड़ पर से नीचे उतर कर सेना को दो भागों में विभक्त एक-एक को अलग-अलग नष्ट कर सकते थे। इस प्रकार युद्ध में दुस्साहस करना ठीक नहीं। उसके बाद यह भी हो सकता है कि शायद राजसिंह युद्ध ही न करें औरङ्गजेब को निर्विघ्न चले जाने भी दें। उससे तो और भी विपद की सम्भावना है। औरङ्गजेब के चले जाने पर राजसिंह पहाड़ पर से उतर कर उसके पीछे हो जायेंगे। ऐसा होने

पर वे, जो कुछ मुगलों का माल-असबाब पीछे पीछे आ रहा है, उसे लूट-पाट लेंगे। इस तरह रसद का रास्ता बन्द हो जायगा। सामने कुमार जयसिंह की सेना है। राजसिंह और जयसिंह की दोनों सेनाओं के बीच में पड़ कर फंदे में पड़े हुए चूहे की तरह दिल्ली के बादशाह सेना के साथ मार डाले जायंगे।

इस समय दिल्ली के बादशाह की अवस्था जाल में पड़ी हुई मछली की तरह थी। किसी प्रकार निस्तार पाने का उपाय न था। वे लौट सकते थे पर ऐसा करने पर राजसिंह पीछा करेंगे। वे उदयपुर के राज्य को अथाह जल में डुबाने आये थे। यह बात तो दूर रही, इस समय उदयपुर के राजा उनके पीछे ताली बजा कर धावा करेंगे और सारा संसार हँसेगा। मुगल बादशाहों के अपरिमित गौरव के सामने इससे बढ़ कर उनकी अवनति की बात और क्या हो सकती है? औरङ्गजेब ने सोचा, सिंह होकर क्या मैं चूहे के डर से भाग जाऊँ? किसी प्रकार भी उसने भागने की बात को मन में स्थान न दिया।

तब और क्या हो सकता है? केवल एक भरोसा था। शायद उदयपुर जाने के लिये कोई और रास्ता हो। औरङ्गजेब के हुक्म से घुड़सवार और पैदल दूसरे रास्ते का पता लगाने के लिये चारों ओर छूटे। औरङ्गजेब ने निर्मल को भी बुला कर पूछा। निर्मल ने कहा—मैं पर्दानशीन हूँ, मैं क्या जानूँ कि रास्ता किधर है? किन्तु थोड़ी ही देर के बाद खबर आयी कि उदयपुर जाने के लिये एक और रास्ता है। एक मुगल सौदागर से मुलाकत हुई है। वह रास्ता दिखा देगा। एक मनसबदार वह रास्ता देख आया है। वह एक पहाड़ी तंग रास्ता है। लेकिन सीधा है, उससे शीघ्र ही बाहर निकला भी जा सकता है। उधर कोई राजपूत नहीं दिखाई देता। जिस मुगल ने यह खबर दी है, वह कहता है कि उस ओर कोई राजपूत सेना नहीं है।

औरङ्गजेब ने कुछ देर तक सोच कर कहा, 'नहीं, हो सकता है।'

मनसबदार बक्त खाँ, जो रास्ता देख कर आया था, बोला, 'जिस मुगल ने पहले-पहल मुझे इस रास्ते का पता बतलाया था, उसे मैंने पहाड़ के ऊपर भेज दिया है। उसे यदि कोई राजपूत सेना दिखायी पड़ेगी, तो वह मुझे इशारा करेगा।'

औरंगजेब ने पूछा, 'क्या वह मेरा सिपाही है?'

'नहीं, वह एक सौदागर है। उदयपुर शाल बेचने गया था, इस समय छावनी में बेचने आया था।'

'अच्छा, तब उसी रास्ते फौज ले चलो।'

तब बादशाह का हुक्म पाकर फौज लौट पड़ी, क्योंकि कुछ दूर पीछे लौट कर उस तङ्ग रास्ते से जाना होगा। इसमें भी बड़ी विपद् थी, तब जाल में फँसी मछली किस ओर जाय? जिस परम्परा से मुगल सेना आ रही थी, उसकी रक्षा न हो सकी। जो भाग आगे था, वह पीछे पड़ गया। जो पीछे था वह आगे हो गया। बादशाह ने

हुक्म दिया कि तम्बू खेमे वाले मजूर, कुली और जो बाहरी आदमी हैं, इस समय उदय सागर की ओर चले जायँ। उसके बाद सेना के पीछे-पीछे वे आवें। वही हुआ। स्वयं औरंगजेब पैदल और गोलन्दाजों की सेना ले कर उस तङ्ग रास्ते से चला। आगे-आगे बख्त खाँ था।

देखते ही राजसिंह सिंह के समान उछल कर पहाड़ से नीचे उतर कर मुगल सेना पर टूट पड़े। इतने में सेना के दो भाग हो गये, जैसे छुरी से फूल की माला के दो टुकड़े हो जाते हैं। एक हिस्सा औरंगजेब के साथ उस तङ्ग रास्ते में चला गया और दूसरा पहले के रास्ते पर था, पर राजसिंह के सामने था।

मुगलों की एक विपद पर दूसरी विपद यह थी कि जहाँ पर हाथी, घोड़े और डोले के ऊपर महल की बेगमें थी वहीं पर बेगमों के सामने राजसिंह अपनी सेना के साथ आ उपस्थित हुए। देखते ही, जैसे गरुड़ को देख कर काल सर्पिणियों का दल काँप उठे, वैसे ही राजसिंह को देख कर बेगमें आर्त्तस्वर में चिल्ला उठीं। यहाँ पर लड़ाई बिलकुल नहीं हुई। जो अहदी उनकी रक्षा के लिये नियुक्त थे, उनमें कोई हथियार नहीं उठा सका; क्योंकि शायद बेगमों को चोट लग जाय। राजपूतों ने बिना लड़ाई के ही अहदियों को कैद कर लिया। समस्त बेगमें तथा उनकी दसियाँ बिना युद्ध के ही राजसिंह को बन्दिनी हो गयीं।

मानिकलाल राजसिंह के निकट ही रहता था, वह राजसिंह का अतिशय प्रिय था। मानिकलाल ने आ हाथ जोड़ कर निवेदन किया, 'महाराज अब इन बिल्लियों को लेकर क्या कीजिये गा? आज्ञा हो तो दूध पीने के लिये इन्हें उदयपुर भेज दें।'

राजसिंह ने हँस कर कहा, 'इतना दूध, दही उदयपुर में नहीं है। सुनते हैं दिल्ली की बिल्लियों के पेट बड़े होते हैं। केवल उदयपुरी को रानी चचंल कुमारी के पास भेज दो। उन्होंने उसके लिये मुझसे विशेष रूप से कहा था। बाकी सब औरंगजेब की सम्पत्ति हैं, उन्हें औरंगजेब के पास भेज दो।'

मानिकलाल ने हाथ जोड़ कर कहा, 'लूट के माल में सिपाहियों का भी कुछ हिस्सा रहता है।'

राजसिंह ने हँसते हुए कहा, 'जिसे लेने की तुम्हें इच्छा हो ले लो। लेकिन मुसलमान स्त्रियाँ हिन्दुओं के लिए अस्पृश्य हैं?'

'वे नाचना गाना तो जानती हैं?'

'नाच गान में मस्त होने से क्या राजपूत तुम्हारी जैसी वीरता दिखा सकते हैं? सब को छोड़ दो। केवल उदयपुरी को उदयपुर भेज दो।'

'इतने बड़े समुद्र में से उस रत्न को कैसे खोज निकालूँ गा? मैं तो पहचानता नहीं। यदि आज्ञा हो तो हनुमान की नाई इस गन्धमादन को ले जाकर रानी से पास

रख दूँ । वह [illegible] जिसे रखना होगा रख लेगी, बाकी को लौटा देंगी । वे सब उदयपुर में सुरमा-शीशी बेच कर अपना दिन गुजारेंगी ।'

इसी समय एक बड़े हाथी की पीठ पर से निर्मल कुमारी ने राजसिंह और मानिकलाल दोनों को देखा । हाथ उठा कर उसने दोनों को प्रणाम किया । देख कर राजसिंह ने मानिकलाल से पूछा, 'यह कौन बेगम है ? हिन्दू जान पड़ती है । सलाम न कर हमें प्रणाम किया है ।'

देख कर मानिकलाल बड़े जोर से हँसा । उसने कहा, 'महाराज ! यह तो बाँदी है, बेगम कैसे हुई ? उसे पकड़ कर लाना होगा ।'

यह कह कर मानिकलाल ने निर्मल को हाथी से उतर कर अपने पास आने के लिए हुक्म दिया । निर्मल कुछ न कह कर हँसने लगी । मानिकलाल ने उससे पूछा, 'यह क्या ? तुम बेगम कब से बनी ?'

निर्मल ने मुँह बिचका और आँखें नचा कर कहा, 'मैं हजरत इमली बेगम हूँ, मुझे तसलीम दो ।'

'अच्छा, मैं तसलीम देता हूँ, पर मैं जानता हूँ, कि तुम बेगम नहीं हो । तुम्हारे बाप-दादे भी बेगम नहीं थे, भला, यह वेश क्यों बनाया ?'

'पहले मेरा हुक्म तामील करो, फालतू बात अभी रहने दो ।'

'हरे राम ! बेगम साहबा का जरा रोब तो देखो ।'

'मेरा हुक्म है कि उदयपुरी बेगम साहबा सामने के पाँच कलसदार हौदे वाले हाथी पर तशरीफ रखती हैं, उन्हें मेरे सामने हाजिर करो ।'

कहते ही उसी क्षण मानिकलाल ने उदयपुरी को हाथी से उतर जाने के लिये कहा । घूँघट में मुँह को छिपा कर रोती हुई उदयपुरी नीचे उतरी । मानिकलाल एक खाली पालकी उदयपुरी के हाथी के पास ले जा कर उसमें उदयपुरी को बैठा कर ले आया । उसके बाद मानिकलाल ने निर्मल कुमारी के कान में कहा, 'इमली बेगम साहबा ! एक और बात है ।'

'चुप रह बदतमीज ! मेरा नाम इमली बेगम है ।'

'चाहे जो बेगम हो, यह बताओ कि तुम जेबुन्निसा बेगम को पहचानती हो ?'

'नहीं पहचानती ? वह मेरी बेटी लगती है । देखो, जिस हाथी पर सोने का तीन कलसा वाला हौदा है उसी पर जेबुन्निसा बेगम साहबा बैठी हैं ।'

मानिकलाल उसे भी हाथी पर से उतार डोले में चढ़ा कर ले आया ।

इसी समय हौदे के जरदोजी परदे के बाहर मुँह निकल कर एक बेगम ने पुकारा । मानिकलाल ने निर्मल से पूछा, 'यह तुम्हें कौन पुकार रही है ?'

निर्मल ने देख कर कहा, 'हाँ, यह हजरत जोधपुरी बेगम साहबा हैं । किन्तु

इनको यहाँ लाना न होगा। मुझे हाथी पर बैठा कर उनके पास ले चलो। सुन आऊँ, वह क्या कहती हैं।'

मानिकलाल ने वही किया। निर्मल कुमारी जोधपुरी के हाथी पर चढ़ कर उनके इन्द्रासन-तुल्य हौदे में गयी। जोधपुरी ने कहा, 'मुझे अपने साथ ले चलो।'

'क्यों माँ ?'

'क्यों ? यह तो मैंने तुमसे कई बार कह दिया है। मैं इस म्लेच्छपुरी में इस महापाप के भीतर अब नहीं रह सकती।'

'यह नहीं हो सकता, तुम्हारा जाना नहीं होगा। यदि आज मुगल साम्राज्य टिका रहेगा, तब तुम्हारा ही लड़का दिल्ली का बादशाह होगा। हम वही चेष्टा करेंगे—उनके राज्य में सब सुख से रहें गे।'

'बेटी, ऐसी बात कभी मुँह से मत निकलना। यदि इस बात को बादशाह सुन लें गे तो मेरा लड़का एक दिन भी न बचेगा। विष दे कर उसे मरवा डालें गे।'

मैं इस समय की बात नहीं कह रही हूँ। शाहजादे का जो हक है, उसे समय आने पर वे जरूर पायेंगे। आप मुझे और कोई आज्ञा मत दीजिए। यदि अभी आप मेरे साथ जायँगी तो आपके पुत्र का अनिष्ट हो सकता है।'

जोधपुरी बेगम ने सोच कर कहा, 'यह बात सच है, तुम्हारी बात मान ली। मैं नहीं जाऊँगी, तुम ही जाओ।'

उसके बाद निर्मल जोधपुरी को प्रणाम कर चली गई।

उदयपुरी और जेबुन्निसा उपयुक्त सेना से घिर कर निर्मल कुमारी के साथ उदयपुरी भेजी गयीं।

|४|

भीषण अग्निचक्र

तब राजसिंह ने, हाथी, घोड़े पालकी पर चढ़ी हुई बेगमों और महल की अन्य स्त्रियों को उसी तङ्ग रास्ते से जाने दिया। जिसमें औरङ्गजेब घुसा था। उनके चले जाने पर दोनों सेनायें रुक गयीं। औरङ्गजेब की बाकी सेना आगे नहीं बढ़ सकी थी, क्योंकि राजसिंह सेना लेकर रास्ता रोक कर बैठे थे। परन्तु औरङ्गजेब की समुद्र के समान विशाल सेना युद्ध के लिए उद्योग करने लगी। वे अपने घोड़े पीछे फिरा कर राजपूतों के सामने आये। तब राजसिंह ने वहाँ से हट कर रास्ता छोड़ दिया। उनके साथ लड़ाई

नहीं की। उसके बाद मुगल सेना औरङ्गजेब की आज्ञा से उसी रास्ते में घुसी, जिस रास्ते में औरङ्गजेब गया था। राजसिंह कुछ और आगे बढ़ गये।

उसके बाद बादशाही तोपखाना आया। उसका कोई रखवाला नहीं था। इसलिए राजपूतों ने उसे लूट लिया। उसके बाद खाने की रसद को भी लूट कर जो अपने काम की चीजें थीं, उन्हें अपनी रसद में मिला लिया। जो हिन्दुओं के व्यवहार की चीजें नहीं थीं, उन्हें डोम-दुसाधों ने ले जा कर कुछ खाया, कुछ पहाड़ पर फेंक दिया, कुछ कुत्ते, सियारों और जंगली जानवरों को खिला दिया! राजपूतों ने बादशाह के दफ्तरखाने को हाथी से नीचे उतार लिया। कुछ कागजों को तो जला दिया, कुछ को फाड़ कर फेंक दिया। उसके बाद मालखाने को देख कर राजपूत धन के लोभ में आ गये। इस मालखाने में जितना धन-वैभव था संसार में उतना और कहीं नहीं था। मालखाने के पीछे गोलन्दाजों की सेना थी। राजसिंह ने अपनी सेना को सम्बोधित कर के कहा, 'तुम लोग घबराओ मत, यह सब हमारे ही हैं। आज इन्हें छोड़ दो। अब इस समय युद्ध करने का समय नहीं है।'

राजसिंह निश्चेष्ट हो रहे। इस बीच औरङ्गजेब की सारी सेना उस तंग रास्ते में चली गयीं।

उसके बाद मानिकलाल को एकांत में ले जाकर राजसिंह ने कहा, 'मैं उस मुगल पर अत्यन्त सन्तुष्ट हूँ! मैंने कभी नहीं सोचा था कि मुझे इतनी सुविधा मिलेगी। मेरा जैसा अभिप्राय था उससे तो युद्ध कर मुगलों को विनष्ट करना होता, पर अब बिना युद्ध के ही मैं मुगलों को विनष्ट कर सकता हूँ। मुबारक को मेरे पास ले आना, उसका सम्मान करूँगा।'

मुबारक मानिकलाल से अपना जीवन पा कर उसके साथ उदयपुर आया था। राजसिंह उसके वीरत्व को भलीभाँति जानते थे। अतः उन्होंने अपनी सेना में एक उपयुक्त पद पर उसे नियुक्त किया था। लेकिन मुगल समझ कर वे उसका पूरा विश्वास नहीं करते थे। इससे मुबारक कुछ दुःखित रहता था। आज उसी दुःख से उसने गुरुतर कार्य का भार अपने ऊपर लिया था और उसने उस गरुतर कार्य को सम्पन्न भी किया। मुबारक ही वह छद्म-वेशी मुगल सौदागर था।

राजसिंह की आज्ञा पा कर मानिकलाल मुबारक को ले आया। राजसिंह ने मुबारक की बड़ी प्रशंसा की। बोले, 'यदि तुम इतना साहस कर इतनी चतुराई से मुगल सौदागर का वेश बना मुगल सेना को उस तंग रास्ते में न ले जाते तो अनेक प्राणियों की हत्या होती। यदि तुम्हें कोई पहचान लेता तो तुम बड़ी विपद में फँसते।'

मुबारक ने कहा, 'महाराज! जो आदमी सब के सामने मर गया है; जो सबके सामने कब्र में गाड़ दिया गया है, उसे पहचान सकने पर भी कोई नहीं पहचानता। इसी साहस से मैं गया था।'

राजसिंह ने कहा, 'अब यदि मेरा कार्य सिद्ध न हो तो दोष मेरा है। तुम जो पुरस्कार माँगो गे मैं तुम्हें दूँ गा।'

मुबारक ने कहा, 'महाराज, बे-अदबी माफ हो, मैंने मुगल हो कर मुगलों के राज्य-विध्वंस का उपाय कर दिया है। मैंने बादशाह का नमक खा कर नमकहरामी की है। मैं मृत्यु से भी अधिक कष्ट पा रहा हूँ, अब मुझे किसी पुरस्कार की लालसा नहीं है। मैं आप से केवल एक पुरस्कार चाहता हूँ। मुझे तोप के मुँह पर रख कर उड़ा देने का आदेश दें। अब मुझे जीने की इच्छा नहीं है।'

राजसिंह ने विस्मित होकर कहा, 'यदि इस काम के करने में तुम्हें इतना कष्ट था, तो तुमने यह काम किया ही क्यों? मुझे बतलाया क्यों नहीं? मैं इस काम के लिए दूसरे को नियुक्त करता। मैं किसी के मन को इतना दुःख देना नहीं चाहता।'

मुबारक ने मानिकलाल को दिखा कर कहा, 'इन्हीं महात्मा ने मुझे जीवन-दान दिया है। इन्हीं का अनुरोध था कि मैं ही इस काम को पूरा करूँ। मेरे न होने से यह कार्य सिद्ध न होता। मुगल के सिवा मुगल किसी हिन्दू का कभी विश्वास नहीं करते। इसे अस्वीकार करने पर मुझे कृतघ्नता के पाप में पड़ना पड़ता। इसीलिए मैंने इस काम को पूरा कर दिया है, अब मैंने मरने का ही निश्चय कर लिया है। मुझे तोप के मुँह पर रख कर उड़ा देने की आज्ञा दीजिये, या मुझे बाँध कर बादशाह के पास भेज दीजिए, अथवा आप यह अनुमति दीजिए कि मैं किसी प्रकार मुगल सेना में घुस कर आप के साथ युद्ध करके प्राण त्याग करूँ।'

राजसिंह बहुत सन्तुष्ट हुए। बोले, 'कल तुम्हें मुगल सेना में घुसने की अनुमति दूँगा। एक दिन और ठहर जाओ। मुझे तुमसे केवल एक बात पूछनी है। वह यह, कि औरङ्गजेब ने तुम्हें मौत की सजा हुक्म का क्यों दिया था?'

'वह महाराज के सामने कहने योग्य बात नहीं है।'

'अच्छा, मानिकलाल के सामने?'

'कह दिया है।'

'और एक दिन ठहर जाओ।'

यह सुन कर राजसिंह ने मुबारक को बिदा कर दिया।

उसके बाद मानिकलाल ने मुबारक को एकांत में ले जा कर पूछा, 'साहब! यदि आप मरना ही चाहते हैं, तब मुझे शाहजादी को पकड़ने के लिए क्यों कहा?'

मुबारक ने कहा, 'सिंह जी! मैंने गलती की थी। मैं अब शाहजादी को ले कर क्या करूँ गा? मन में सोचा था, कि जिस शैतानी ने मेरे प्रेम के बदले मुझे साँप से कटवा कर मरवा डाला था, उसे उसके कर्मों का फल चखाऊँ गा। परन्तु मनुष्य आज जिस बात को चाहता है, कल उसे उसकी चाह नहीं रहती। अब मैंने मरने का निश्चय

कर लिया है। अब शाहजादी को अपने किये का फल चाहे मिले या न मिले, इससे मेरा कुछ बने-बिगड़ेगा नहीं। अब मैं कुछ भी देखने के लिये न आऊँगा।'

'यदि आप जेबुन्निसा को रखने के लिये अनुमति न देंगे, तो मैं बादशाह से कुछ घूस ले कर उसे छोड़ दूँगा।'

'उसे फिर एक बार देखने की मेरी इच्छा है। एक बार उससे पूछने की इच्छा है कि संसार में उसे धर्माधर्म में विश्वास है या नहीं। एक बार सुनने की इच्छा है कि मुझे देख कर वह क्या कहती है? एक बार जानने की इच्छा है कि मुझे देख कर वह क्या करती है?'

'तो आप अब भी उसके प्रति अनुरक्त हैं।'

'बिलकुल नहीं। केवल एक बार उसे देखूँगा। आपसे केवल यही एक भिक्षा है।'

आठवाँ भाग

आग में कौन-कौन जला

|१|

बादशाह का जलना

इधर बादशाह बड़े असमञ्जस में पड़ गये। उस तङ्ग रास्ते में उनकी सारी सेना के जाने के थोड़ी ही देर बाद शाम हो गयी किन्तु वे रास्ते के दूसरे मुँह पर पहुँच न सके। उस ओर से कोई समाचार भी न मिला। शाम होते ही उस तङ्ग रास्ते में भयङ्कर अन्धकार छा गया। रोशनी का कुछ ऐसा प्रबन्ध भी न था कि सारी सेना के लिये रास्ते में उजेला किया जा सके। बादशाह और बेगमों के पास किसी तरह रोशनी की गयी, बाकी सेना घोर अन्धकार में पड़ी रही। रास्ते में पत्थर के टुकड़े पड़े थे, इससे वह और भी दुर्गम हो गया था। कितने ही घोड़े टकरा कर सवारों के साथ गिर पड़े और पीठ पर दूसरे घोड़ों की टाप पड़ने से वे घोड़े और सवार घायल हो गये अथवा मर गये। हाथी के पैरों से टूट कर कितने ही पत्थर के टुकड़े इधर-उधर लुढ़कने लगे। हाथी बेरोक-टोक इधर-उधर घूमने लगे। घोड़ों पर सवार स्त्रियाँ घोड़ों पर से गिर कर घोड़ों और हाथियों के पैरों से कुचल-कुचल कर आर्त्तनाद करने लगीं। पालकी ढोने वाले कहारों के पैर घायल हो गये और उनसे खून निकलने लगा! पैदल सिपाही आगे नहीं बढ़ सकते थे, पत्थरों से टकरा कर उनके पाँव घायल हो गये। तब औरङ्गजेब ने सेना को रोक कर वहीं पर खेमे डालने की आज्ञा दी।

पर वहाँ खेमे डालने की जगह नहीं थी। बहुत कष्ट से बेगमों और बादशाह के लिये तम्बू डाले गये। और किसी के लिये तम्बू नहीं डाले गये। जो जहाँ था वह वहीं पड़ा रहा। हाथी के सवार हाथियों पर, घोड़े के सावर घोड़ों पर और पैदल अपने पाँवों पर खड़े रहे। कोई कोई चट्टानों पर बैठने की जगह कर जरा पाँव फैला कर

बैठे। लेकिन प[illegible] इस प्रकार बैठने की सुविधा न मिली।

सबसे बड़ी विपद तो यह थी कि किसी को कुछ खाने को नहीं मिला। हाथ में जो कुछ खाने-पीने का सामान था उसे राजपूतों ने लूट लिया था। जिस रास्ते में वह सेना इस समय थी, वहाँ अन्न की तो बात दूर रहे, घोड़ों के लिये घास का मिलना भी कठिन था। दिन भर मिहनत करने के बाद किसी को भी कुछ खाने को न मिला। क्या बादशाह, क्या बेगम—सब भूख और नींद के मारे व्याकुल हो गये। मुगल सेना में बड़ी गड़बड़ी मच गयी।

इसी समय बादशाह को उदयपुरी और जेबुन्निसा के हरण किये जाने का समाचार मिला। वे क्रोध के मारे आग की तरह जल उठे। अकेले सारी सेना को मारना असम्भव था, नहीं तो औरङ्गजेब उस समय सब को मार डालता। जिस प्रकार अपनी मांद में घिरा हुआ सिंह पिंजरे में बन्द सिंहनी को देख कर गरज उठता है उसी प्रकार औरंगजेब गरजने लगा।

रात अधिक बीत जाने पर सेना का कोलाहल जब कुछ कम हुआ तब बहुतों ने इस तरह की आवाज सुनीं, जिससे मालूम हुआ कि पहाड़ के ऊपर बहुत से पेड़ उखाड़े जा रहे हों। पर ठीक न समझ सकने पर अथवा उसे भौतिक शब्द जान कर सब लोग चुप हो रहे।

|२|

बादशाह की ज्वाला

सबेरा होते ही औरङ्गजेब ने फौज चलाने का हुक्म दिया। वह विशाल चतुरंगिनी सेना तोपों को साथ लेकर रास्ते के मुँह की खोज में चली। भूख-प्यास से सभी व्याकुल हो रहे थे। बाहर निकल कर खाने-पीने की आशा में सभी कतार तोड़ कर चले। औरङ्गजेब उदयपुरी और जेबुन्निसा को छुड़ाने तथा अन्त में उदयपुर को जला कर भस्म कर देने के लिये क्रोध की अग्नि में अपने आप जल रहा था। वह किसी भी तरह धीरज धारण न कर सका। मुगल सेना दौड़-धूप कर रास्ते के मुँह पर आ उपस्थित हुई। आकर देखा, कि घोर विपद सामने खड़ी है। राजपूतों ने रात में पेड़ों को काट कर रास्ते के मुँह पर जमा कर दिया था। उससे रास्ता एकदम बन्द हो गया था। हाथी, घोड़े, पैदल तो दूर रहे, सियार कुत्तों के आने-जाने का भी रास्ता नहीं था।

मुगल सेना में बड़ी खलबली मच गयी। स्त्रियों का रोना सुन कर औरङ्गजेब का पाषाण-हृदय भी काँप उठा।

सेना का रास्ता साफ करने वाले सबसे आगे रहते हैं। लेकिन यह सेना उलटी गति से इस रास्ते में आयी थी। इसलिये रास्ता साफ करने वाले पीछे रह गये थे। औरङ्गजेब ने पहले उन्हें आगे ले आने की आज्ञा दी, लेकिन उनके आगे आने में बड़ी देर थी, उनकी प्रतीक्षा में तो आज भी उपवास रखना पड़ेगा। अतः औरङ्गजेब ने हुक्म दिया कि पैदल सिपाही और दूसरे आदमी भी एकत्र हो कर पेड़ों की इस दीवार पर चढ़ जायँ और पेड़ों को हटा कर किनारे फेंक दें। इस काम के लिये उसने हाथियों से भी काम लेने की आज्ञा दी। अतः हजारों पैदल और सैकड़ों हाथी पेड़ों को फेंकने के लिये छूटे, पर ज्योंही वे पेड़ों की दीवार के पास गये त्योंही उन पर पहाड़ के ऊपर से शिला वृष्टि होने लगी। पैदलों में किसी का सिर, किसी का हाथ, किसी का पैर टूट-कर चूर हो गये। किसी का सारा शरीर ही पिस गया। हाथियों में किसी का सिर फूटा, किसी के दाँत टूटे, किसी का मेरुदण्ड और किसी का पञ्जर छिन्न-भिन्न हो गया। सब हाथी चिग्घाड़ते हुए और पैदल सिपाहियों को अपने पैरों से कुचलते हुए भाग चले। हाथियों से ही औरङ्गजेब की सेना भयभीत हो गयी। सब ने आँखें उठा कर देखा, पहाड़ पर हजारों राजपूत सिपाही चींटियों की तरह कतार बांधे खड़े हैं। जो मुगल पत्थरों की चोट से घायल नहीं हुए थे वे राजपूतों की गोली खा कर मरे। औरंगजेब के सिपाही पेड़ों की बनी उस ऊँची दीवार के पास एक क्षण भी नहीं ठहर सके।

सुन कर औरंगजेब ने सेनापति को बहुत बुरा-भला कहा और फिर से पेड़ों को हटा फेंकने की आज्ञा दी। तब 'दीन दीन!' कहते हुए मुगल फिर छूटे और फिर राजपूतों की गोली खा कर धराशायी हुए। इस प्रकार कई बार उद्योग करने पर भी मुगल-सेना पेड़ों को न हटा सकी।

तब हताश हो कर औरंगजेब ने अपनी सेना को पीछे लौट जाने को आज्ञा दी। रास्ते के जिस मुँह से हो कर वे आये थे, उसी मुँह से उन्हें बाहर निकलना था। सारी सेना भूख, प्यास और परिश्रम से थक गयी थी। औरंगजेब अपने जीवन में यह पहली ही बार भूख प्यास से अधीर हुआ था। बेगमों की भी यही बात थी, किन्तु इस समय दूसरा उपाय नहीं था। पहाड़ पर चढ़ना कठिन था; क्योंकि दोनों ओर के पहाड़ बिलकुल सीधे खड़े थे। इसी लिये पीछे लौटना पड़ा।

औरंगजेब पीछे लौट कर फिर रास्ते के उसी मुँह पर जा उपस्थित हुआ जिससे हो कर वह दोपहर को गुजरा था। उसने वहाँ जा कर देखा कि साक्षात् मृत्यु उसे सेना सहित अपने मुँह में डाल लेने के लिये खड़ी है। रास्ते का वह मुँह भी उसी प्रकार पेड़ों से बन्द कर दिया गया है। निकलने का कोई उपाय नहीं। पहाड़ के ऊपर राजपूत पूर्ववत् कतार बाँधे खड़े हैं।

किन्तु बाहर न निकलने से तो सारी सेना के साथ मृत्यु के गाल में अवश्य जाना होगा। अतः समस्त सेनापतियों को बुला कर, उन्हें आशा, बिनती, उत्साह, भय आदि दिखा कर रास्ता साफ करने के लिये उनसे प्राण तक दे देना भी स्वीकार करा लिया। सेनापति सेना लेकर फिर पेड़ों को हटाने चले। इस बार एक सुविधा थी। रास्ता साफ करने वाले भी वहीं उपस्थित थे। मुगल अपनी मृत्यु को तृणवत् समझ कर वृक्षों को छिन्न-भिन्न करने लगे; किन्तु थोड़ी देर तक ही वे वैसा कर सके। पहाड़ पर से लोहे और पत्थरों की जो वर्षा हो रही थी उसमें मुगल सैनिक वैसे ही डूब गये जैसे भादों की वर्षा में धान के खेत डूब जाते हैं।

उसके बाद सबसे बड़ी विपद यह थी कि सामने ही राजसिंह की छावनी थी। उन्होंने दूर से ही मुगलों को लौटते देख कर, सामने तोपों को सजा कर खड़ा कर दिया।

राजसिंह की तोपें छूटने लगीं। वृक्षों की दीवार को पार कर राजसिंह के गोले चले। हाथी, घोड़े, पैदल, सेनापति सब चूर-चूर हो गये। जिस प्रकार आग के डर से साँप बिल में छिप जाता है, उसी प्रकार मुगल-सेना उस पहाड़ी रास्ते में छिप गयी। शाहनशाह बादशाह ने अपने हीरक जटिल ताज को सिर से उतार कर फेंक दिया। लगा कि उसने घुटने टेक कर पहाड़ की कन्दरा को दबा कर अपने सिर पर रख लिया। दिल्ली के बादशाह आज राजपूत राजा के सामने पिंजरे में बन्द चूहे के समान हो रहे हैं। इस समय यदि उन्हें एक चूहे का माँस भी मिल जाय तो उनके प्राण बच सकते हैं।

अब भारतपति ने उस क्षुद्र राजपूत कन्या को अपन उद्धार करगे वाली समझ कर उसके कबूतर को उड़ा दिया।

|३|

उदयपुरी का जलना

निर्मल कुमारी ने उदयपुरी बेगम और जेबुन्निसा बेगम को उपयुक्त स्थान में रख कर महारानी चञ्चल कुमारी के पास जाकर प्रणाम किया और उनसे सब हाल आद्यो-पान्त कह सुनाया। सब को विस्तार-पूर्वक सुन कर चञ्चल कुमारी ने उदयपुरी को बुलाया। उदयपुरी के आने पर उन्होंने अलग बैठने का आसन दिया और उसका सम्मान करने के लिये वह स्वयं उठ खड़ी हुई। उदयपुरी अत्यन्त दुःखित और विनीत भाव से चञ्चल कुमारी के पास आयी थी, पर उनका सौजन्य देख कर मन में

सोचा, क्षुद्र प्राण हिन्दू डर से ही इतना सौजन्य दिखलाते हैं । तब म्लेच्छ, कन्या ने कहा, 'तुम मुगलों से मृत्यु की कामना क्यों करती हो ?'

चंचल कुमारी ने हँस कर कहा, 'हम उनसे मृत्यु की कामना नहीं करते । हम लोग तो इसी आशा से आये हैं कि यदि उनके पास वह सामग्री हो तो हमें दें । वे भूल गये हैं कि हम हिन्दू हैं, हम मुसलमानों का दान नहीं ग्रहण करते ।'

उदयपुरी ने घृणा से कहा, 'उदयपुर के राजाओं ने पूर्वपुरुषानुक्रम से इस दान को मुसलमानों से स्वीकार किया है । सुल्तान अलाउद्दीन की बात छोड़ दो । मुगल बादशाह अकबर शाह और उनके बेटे से भी राणा राजसिंह के पूर्वपुरुषों ने यह दान स्वीकार किया है ।'

'बेगम साहिबा ! आप भूलती हैं, उसे दान कह कर हमने स्वीकार नहीं किया है । ऋण समझ कर ही लिया है । अकबर बादशाह के ऋण को स्वयं प्रताप सिंह चुका गये । आपके ससुर के ऋण को चुकाने के लिये हम इस समय उद्यत हैं । उसकी पहली किस्त लेने के लिये ही आपको बुलाया है । मेरा तम्बाकू जल गया है, कृपा करके मेरे लिये तम्बाकू चढ़ा लाइये ।'

चंचल कुमारी ने बेगम के प्रति जैसा सौजन्य दिखलाया था, यदि वह उसका व्यवहार करती तो जान पड़ता है उसे यह अपमान न सहना पड़ता, पर उसने अपने कड़वे वचनों से तेजस्विनी चंचल कुमारी के गर्व को और भी जगा दिया । इसलिये अब उसे उसका फल चखना पड़ा । उस निमन्त्रण-पत्र की तम्बाकू चढ़ाने वाली की बात उसे याद आ गयी । उदयपुरी के सारे शरीर से पसीना छूटने लगा । तो भी उसने अपने स्वाभाविक गर्व से कहा, 'बादशाह की बेगम तम्बाकू नहीं चढ़ाती ।'

'जब तुम बादशाह की बेगम थी तब तम्बाकू नहीं चढ़ाती थी । इस समय तुम मेरी बाँदी हो । तुम्हें तम्बाकू चढ़ाना होगा, मेरा हुक्म है ।'

उदयपुरी मारे क्रोध के रोने लगी । बोली, 'तुम्हारी इतनी हिमाकत कि आलमगीर बादशाह की बेगम को तम्बाकू चढ़ाने के लिए कहती हो ?'

'मेरा विश्वास है कि कल स्वयं बादशाह आलमगीर यहाँ आकर महाराणा के लिये तम्बाकू चढ़ायेंगे । यदि उनको यह विद्या मालूम न हो तो तुम कल उन्हें सिखा देना । आज तुम सीख लो ।'

तब चंचल कुमारी ने दासी को हुक्म दिया कि इससे तम्बाकू चढ़वा लो ।

उदयपुरी उठी नहीं ।

तब दासी ने कहा, 'चिलम उठाओ ।'

तो भी उदयपुरी नहीं उठी । तब दासी उसका हाथ पकड़ कर उठाने लगी ।

अपमान के डर से काँपती हुई शाहनशाह की प्रेयसी चिलम उठाने गयी, पर चिलम तक पहुँची नहीं । अपनी जगह से उठ कर एक पाँव बढ़ाते ही वह थर-थर

काँपती हुई पत्थर के फर्श पर गिर पड़ी। दासी ने झट उसे पकड़ लिया, इससे चोट न लगी। उदयपुरी फर्श पर मूर्च्छित हो कर लेट गयी।

तब चंचल कुमारी की आज्ञा से जिस बेशकीमत पलङ्ग पर बेशकीमत बिछौना बिछाया गया था, वह उस जगह मँगाया गया। वहाँ महल की स्त्रियों ने उदयपुरी की शुश्रूषा की। थोड़ी ही देर में उसे होश हुआ। चंचल कुमारी ने हुक्म दिया कि अब कोई बेगम का किसी प्रकार अपमान न करे। खाने, पीने तथा सेवा आदि के लिये चंचल कुमारी ने निर्मल कुमारी को अपने से भी अधिक प्रबन्ध करने के लिये कहा।

निर्मल ने कहा, 'यह सब तो होगा, पर इससे उसकी तृप्ति न होगी।'

'क्यों अब क्या चाहिये ?'

'राजमहल में उसका मिलना कठिन है।'

'शराब ? जब वह शराब माँगे तब थोड़ा-सा गोबर दे देना।'

उदयपुरी सेवा से सन्तुष्ट हुई किन्तु रात को उपयुक्त समय आने पर उसने निर्मल कुमारी को बुला कर कहा, 'इमली बेगम ! थोड़ी-सी शराब मँगाइये।'

निर्मल ने 'देती हूँ' कह कर चुपके से राज वैद्य के पास खबर भेजी। राजवैद्य ने एक बूँद औषधि भेज दी और कहला भेजा कि थोड़ा सा शरबत बनवा कर उसमें इस दवा को मिला देना और इसी को शराब कह कर उसे पीने के लिये दे देना। निर्मल ने वैसा ही किया। उदयपुरी उसे पीकर अत्यन्त प्रसन्न हुई। कहा, 'बड़ी अच्छी शराब है।'

थोड़ी देर में वह नशे में चूर हो कर सो गयी।

|४|

जेबुन्निसा का जलना

जेबुन्निसा अकेली बैठी है। दो चार दासियाँ उसकी देख-भाल के लिए हैं। निर्मल कुमारी भी दो-एक बार आ कर उसकी खबर ले जाया करती है। क्रमशः जेबुन्निसा ने उदयपुरी के अपमान की बात सुनी। सुन कर उसे अपने लिये बड़ी चिन्ता हुई।

अन्त में निर्मल कुमारी उसे भी चंचल कुमारी के पास ले गयी। वह न गर्वित, न विनीत भाव में चंचल कुमारी के पास जा उपस्थित हुई। उसने मन में स्थिर कर लिया था कि मैं आलमगीर बादशाह की लड़की हूँ, इसे कभी न भूलूँगी।

चंचल कुमारी ने बड़े आदर से उसे अलग उपयुक्त आसन पर बिठाया और तरह तरह की बातें कीं। जेबुन्निसा ने भी बड़े सौजन्य से उनकी बातों का उत्तर दिया।

दोनों में किसी ने भी कोई ऐसी बात न कही, जिससे [illegible] पैदा होता। अन्त में चंचल कुमारी ने उसके लिये उचित सेवा का प्रबन्ध कर उसे पान और इत्र दिया।

किन्तु जेबुन्निसा ने उठ कर कहा, 'महारानी ! मैं यहाँ क्यों लायी गयी हूँ, क्या मैं सुन सकती हूँ ?'

'वह बात आपको नहीं बतलायी जायगी, न बतलाना ही ठीक है। एक ज्योतिषी की आज्ञा से आप यहाँ लायी गयी हैं। आज रात को आप को अकेली सोना होगा। दरवाजा खुला रखना होगा, पहरे वाले दूर से पहरा देंगे, आप का कोई अनिष्ट न होगा। ज्योतिषी ने कहा है कि आज आपको एक स्वप्न दिखायी देगा। आप स्वप्न में जो कुछ देखें उसे मुझे बतलाइयेगा, यही मेरी प्रार्थना है।'

सुन कर जेबुन्निसा ने चिन्तित हो चंचल कुमारी से बिदा ली। निर्मल कुमारी के यत्न से जेबुन्निसा के खाने पीने और सोने आदि का प्रबन्ध ठीक शाही रङ्गमहल के के समान हुआ। जेबुन्निसा सोने गयी, पर उसे नींद नहीं आयी। चंचल कुमारी की आज्ञा से द्वार खोल कर वह अकेली सोयी, क्योंकि ऐसा न करने से उसे डर था कि कहीं उसकी भी गति उदयपुरी जैसी न हो। किन्तु सारी रात अकेली सोने में डर लगता था। मन में सोचा शायद मेरे ऊपर गुप्त रूप से कोई अत्याचार न किया जाय ? इसी लिये ऐसा बन्दोबस्त किया गया होगा। उसने निश्चय किया, कि सोऊँगी नहीं, सारी रात जागती रहूँगी।

किन्तु न सोने की प्रतिज्ञा करने पर भी दिन में अधिक परिश्रम पड़ने के कारण उसे झपकी आने लगी। बीच-बीच में आँखें लग कर खुल जाती थीं। झपकी आने पर उसे विश्वास था कि नींद नहीं आयेगी। कभी-कभी वह तन्द्रा के वशीभूत हो जाती थी। बीच-बीच में चौंक कर उठ भी जाती थी। नींद आते ही उसे अपनी अवस्था की याद आ जाती। कहाँ दिल्ली की शाहजादी थी और कहाँ उदयपुर में कैद हूँ ! कहाँ मुगल बादशाह की रंगभूमि की प्रधान अभिनेत्री, मुगल बादशाह के आकाश की चाँदनी, और जिसके बाहुबल से काबुल से लेकर बीजापुर-गोलकुण्डा तक शासित होता है उसकी दाहिनी भुजा थी और कहाँ पहाड़ों की गुफा में बसे हुए उदयपुर की कोठरी में पींजरे में बन्द चूहे की भाँति पड़ी हूँ ! रूपनगर के राजा की लड़की की वन्दिनी हूँ, हिन्दू के घर में अस्पृश्य कुत्ती की भाँति पड़ी हूँ ! क्या इससे बढ़ कर मृत्यु अच्छी नहीं है ? क्यों नहीं अच्छी है ? जिस मृत्यु को मैंने प्राणाधिक मुबारक को दी है वह न अच्छी होगी तो और क्या अच्छा होगा ? जिस मुबारक को दिया, क्या मैं भी उसी अमूल्य मृत्यु के योग्य हूँ ? हाय मुबारक ! हाय मुबारक ! हाय मुबारक ! क्या तुम्हारा अपूर्व वीरत्व साधारण साँप के विष को जीत न सका ? क्या वह अनिन्द्य सुन्दर मूर्ति भी साँप के विष से काली पड़ गयी ? क्या उदयपुर में वैसा साँप न मिलेगा, जो इस काल-भुजङ्गिनी को आ कर

डस ले ? मानुषी काल-भुजङ्गिनी क्या फन-वाली भुजङ्गिनी के डसने से नहीं मरेगी ? हाय मुबारक ! मुबारक ! मुबारक ! तुम एक बार सशरीर दर्शन देकर मुझे काल-सर्पिणी से कटवाओ। देखो, मैं मरती हूँ या नहीं ?

ठीक यही बात सोच कर मानो मुबारक को सशरीर देखने की इच्छा से जेबुन्निसा ने आँखें खोलीं। देखा, सामने मुबारक खड़ा है, जेबुन्निसा ने चीख मार फिर दोनों आँखें बन्द कर लीं।

|९|

ईंधन से आग बढ़ी

दूसरे दिन जब जेबुन्निसा पलंग छोड़ कर उठी तो वह पहचानी नहीं जाती थी। एक तो उसका चेहरा यों ही सूखा और फीका पड़ गया था, दूसरे रात को उसे न जाने क्या हो गया ?

दिन भर आग के पास बैठने पर मनुष्य की जैसी दशा होती है, चिता पर चढ़ कर उतरने वाली की जैसी दशा होती है, वैसी ही आज जेबुन्निसा की है ! वह क्षण-क्षण जल रही थी। जेबुन्निसा ने कपड़े पहन कर नियम और अनुरोध की रक्षा के लिये कुछ जल-पान किया। उसके बाद उदयपुरी से मुलाकात करने आयी। देखा, उदयपुरी अकेली बैठी है, सामने कुमारी मेरी की मूर्त्ति और ईसा का क्रास रखा है। बहुत दिन हुए उदयपुरी ईसा और उनकी माता को भूल गयी थी। आज दुर्दिन में उनकी याद आई। वह ईसाई धर्म के ये दोनों चिह्न अपने पास रखती थी। बरसात में गरीब के छाते की तरह आज उन्हें बाहर निकाला। जेबुन्निसा ने देखा उदयपुरी की आँखों से अविरल आँसुओं की धारा बह रही है। उदयपुरी आज जैसी सुन्दर दीख पड़ती थी, वैसी वह जेबुन्निसा को कभी न दीख पड़ी थी। वह सम्भवत: परम सुन्दरी थी, किन्तु गर्व, भोग विलास, इत्यादि की ज्वाला से उसका सौंदर्य कुछ विकृत हो गया। आज आँसुओं की धारा से वह विकृति धुल गयी थी और अपूर्व सौंदर्य का पूर्ण विकास हुआ था।

उदयपुरी जेबुन्निसा को देख कर कहने लगी, 'मैं बाँदी थी, बाँदी की दर में खरीदी गयी थी, क्यों नहीं मैं बाँदी ही रही ? क्यों मेरे भाग्य में इतना ऐश्वर्य लिखा था ?'

इतना कह कर उदयपुरी जेबुन्निसा के मुँह की ओर देख कर कहने लगी, 'तुम्हारी अवस्था ऐसी क्यों है ? कल तुम्हारे साथ क्या हुआ ? क्या काफिरों ने तुम्हारे साथ भी अत्याचार किया ?'

दीर्घ निःश्वास लेकर जेबुन्निसा ने कहा, 'काफिर की इतनी हिम्मत नहीं हो सकती ? यह सब अल्लाह ने किया है ।'

'सब यही कहते हैं, क्या मैं सुन सकती हूँ कि कल क्या-क्या हुआ ?'

'यह बात इस जगह जबान पर नहीं ला सकती । मरते वक्त कह कर जाऊँगी ।

'जो कुछ हो, खुदा करे राजपूत की हिमाकत की सजा मिले ।'

'राजपूतों का इसमें कोई दोष नहीं है ।'

यह कह कर जेबुन्निसा चुप हो रही । उदयपुरी ने भी कुछ नहीं कहा । अन्त में चंचल कुमारी से भेंट करने के लिये जेबुन्निसा ने उदयपुरी से बिदा माँगी ।

उदयपुरी ने कहा, 'क्यों, क्या उसने तुमको बुलाया है ?'

'नहीं ।'

'तब भिखमंगिन की तरह उसके पास क्यों जा रही हो ? तुम बादशाह की लड़की हो ।'

'मुझे अपना विशेष प्रयोजन है ।'

'यदि मिले तो उससे पूछना कि कितनी अशर्फियाँ ले कर यह गँवार हमें छोड़ देंगे ?'

'अच्छा, पूछूँगी', कह कर जेबुन्निसा चली गयी । उसके बाद चंचल कुमारी की अनुमति ले कर उनसे मुलाकात की । चंचल कुमारी ने पहले दिन की ही तरह उसका सम्मान किया । अन्त से पूछा, 'क्यों अच्छी नींद तो आयी थी ?'

'ना, जैसी आपने आज्ञा दी थी उसके पालन करने से भयभीत हो मुझे नींद नहीं आयी ।'

'तो कुछ सपना भी नहीं देखा ?'

'सपना नहीं देखा, पर प्रत्यक्ष कुछ देखा है ।'

'अच्छा या बुरा ?'

'नहीं कह सकती, कि वह अच्छा था, या बुरा, पर क्या मैं उसके विषय में आप से एक बात पूछ सकती हूँ ?'

'पूछिये ।'

'क्या उसे फिर देख सकती हूँ ?'

'ज्योतिषी को पूछे बिना कुछ नहीं कह सकती । मैं पाँच सात दिन के बाद ज्योतिषी के पास आदमी भेजूँगी ।'

'क्या आज आदमी नहीं भेजा जा सकता ?'

'इतनी जल्दी किस बात की पड़ी है शाहजादी ?'

'यदि आप उसे इसी क्षण दिखा दें तो मैं आप की बाँदी हो कर रहूँगी ।'

'आप विस्मय जनक बात कह रही हैं, ऐसी कौन सी चीज वह है ?'

जेबुन्निसा ने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसकी आँखों से आँसू गिरने लगे। चंचल कुमारी को तनिक भी दया नहीं आयी। बोली, 'आप पाँच सात दिन और सब्र कीजिये, मैं इसका विचार करूँगी।'

उस समय जेबुन्निसा हिन्दू मुसलिम का भेद भूल गयी थी। उसे जहाँ नहीं जाना चाहिये था वह वहीं चली गयी। जिस पलंग पर चंचल कुमारी बैठी थी, जेबुन्निसा उसके पास जा खड़ी हुई। उसने टूटी लता की भाँति उनके पैरों पर अपना मुँह रख दिया और अपने आँसुओं से उन्हें भिगो दिया। बोली, 'मेरो प्राण-रक्षा करो, नहीं तो मर जाऊँगी।'

चंचल कुमारी ने उसे उठा कर बैठाया। उन्होंने अपने मन में हिन्दू मुसलमान का कोई भेद नहीं रखा। उन्होंने कहा, 'शाहजादी! कल रात को जिस तरह दरवाजा खोल कर आप सोयी थीं, आज भी उसी तरह सोइयेगा। अवश्य आप की मनोकामना पूरी होगी।'

यह कह कर उन्होंने जेबुन्निसा को विदा कर दिया। इधर उदयपुरी जेबुन्निसा की राह देख रही थीं, पर जेबुन्निसा ने फिर उसके साथ मुलाकात न की। निराश होकर स्वयं उदयपुरी ने चंचल कुमारी के पास जाने की अनुमति माँगी।

भेंट होने पर उदयपुरी ने चंचल कुमारी से पूछा, 'कितनी अर्शफियाँ ले कर आप हमें छोड़ देंगी।'

चंचल कुमारी ने कहा, 'यदि बादशाह भारतवर्ष की सब मसजिदों को मयदिल्ली की जामा-मसजिद के साथ तोड़ दें और तख्त ताऊस को यहाँ रख जायें और प्रति वर्ष हमें राज कर देना स्वीकार करें, तो मैं तुम लोगों को छोड़ सकती हूँ!'

उदयपुरी क्रोध से अधीर हो गयी। बोली, 'गँवार के घर इतनी हिमाकत? आश्चर्य है?'

यह कह कर उदयपुरी उठ कर जाने लगी। चंचल कुमारी ने हँस कर कहा, 'बिना हुक्म कहाँ जाती हो? तुम गँवार राजा की रानी की बाँदी हो, क्या यह भूल गयी हो?'

उसके बाद एक दासी को हुक्म दिया, 'इस नयी बाँदी को रानियों के पास ले जाकर दिखाओ। पूछने पर परिचय देना कि यह दाराशिकोह की खरीदी हुई बाँदी है।'

उदयपुरी रोती हुई दासी के साथ चली। दासी औरङ्गजेब की प्रेयसी को राजसिंह की और रानियों के पास ले जा कर दिखाने लगी।

निर्मल ने आ कर चंचल से कहा, 'महारानी, आप असल बात को भूल रही हैं, किस लिये उदयपुरी को पकड़ मँगवाया है? क्या ज्योतिषी की बात आप को याद नहीं है?'

चंचल कुमारी ने हँस कर, कहा 'वह बात भूली नहीं हूँ। लेकिन उस दिन बेगम

बड़ी कातर हो गयी थी, इसलिये उसे अधिक दुःख नहीं दिया, पर बेगम अपने आप मेरी दया को भुला रही है।'

| ६ |

शाहजादी भस्म हुई

आधी से अधिक रात बीत गयी है। सब लोग चुपचाप सो रहे हैं। बादशाह की लड़की जेबुन्निसा पलङ्ग पर लेट कर आँखों से आँसू बहा रही है। कभी दावाग्नि से घिरी हुई शेरनी के समान क्रोधित होती है, फिर मानो वाण से विद्ध हरिणी की भाँति कातर हो जाती है। रात अच्छी नहीं थी, बड़े जोरों की हवा चल रही थी। आसमान-पर बादल घिरे थे। खिड़की से देखने पर गिरिशिखर अन्धकारमय दीख पड़ते थे। जहाँ पर राजपूतों की छावनी थी केवल वहीं एक स्थान पर बहुत से चिराग जल रहे थे। सर्वत्र सुनसान था, घोर अन्धकार छाया हुआ था। कभी-कभी सिपाहियों के हाथ से छूटी हुई बन्दूकों की भीषण आवाज सुन पड़ती थी ! कभी-कभी बादल गरजते थे। कभी-कभी तोपों के एक साथ छूटने से तुमुल कोलाहल सुन पड़ता था। उस आधी रात को इन भयङ्कर स्वरों को सुन कर जेबुन्निसा अपने मन में सोचती थी—यह मुगलों-की तोपों की ही आवाज है। मेरे पिता की तोपें गरज रहीं हैं; मेरे बाप के पास ऐसी सैकड़ों तोपें हैं, क्या एक भी तोप मेरे हृदय की शान्ति के लिये नहीं है। किस प्रकार से तोप के मुँह परछाती रख कर तोप के गोले से अपनी ज्वाला शान्त कर सकती हूँ ? कल हाथी पर चढ़ कर लाखों सैनिकों की कतार देखी थी, लाखों हथियारों की झनकार सुनी थी। क्या उन शस्त्रों में से एक भी मेरी ज्वाला शान्त नहीं कर सकता ? वह चेष्टा भी तो मैंने नहीं की। हाथी पर से कूद कर उसके पैरों से दब कर मर जा सकती थी, पर वह चेष्टा भी तो नहीं कर सकी ? अब भी तो मेरे शरीर पर कितने हीरे हैं, क्यों नहीं उसे पीस कर खा लेती। पर नहीं, अब मुझमें इतनी शक्ति नहीं कि उद्योग करके मरूँ।

इसी समय खिड़की से आकर हवा के एक झोंके ने कमरे के सब चिरागों को बुझा दिया। अन्धकार में जेबुन्निसा के मन में भय का सञ्चार हुआ। वह सोचने लगी—डर किस बात का ? अभी ही तो मरने की इच्छा कर रही थी। जो मरना चाहता है उसे किस बात का डर ? कल मैंने मरे हुए आदमी को देखा है और अब भी जीवित हूँ। यह निश्चित हैं कि जहाँ वह मरा मनुष्य है, वहाँ मैं जाऊँगी; तो डर किस बात का है ? बहिश्त जाना तो मेरे भाग्य में नहीं लिखा है, पर जहन्नुम में जरूर जाना होगा।

तब डर किस बात का ? पर आज तक मैंने इन बातों का कुछ भी विश्वास नहीं किया ! जहन्नुम और बहिश्त को मैं नहीं जानती। न मैं खुदा को जानती हूँ और न दीन को ही। केवल भोग-विलास को ही जानती हूँ। अल्लाह ! रहीम ! तुमने मुझे धन ऐश्वर्य क्यों दिया ? ऐश्वर्य से मेरा जीवन विषमय हो गया। इसीलिये मैंने तुम्हें पहचाना नहीं। मैं नहीं जानती थी कि ऐश्वर्य में सुख नहीं है। तुम तो जानते हो ? जान-बूझ कर मुझे क्यों व्यर्थ दुःख दिया ? मेरे समान दुखिया कौन है ?

पलङ्ग पर चींटी थी या कोई कीड़ा चढ़ आया था। उसने जेबुन्निसा को काटा। जिस कोमलांग पर कामदेव भी नर्म हाथ से पुष्पवाण छोड़ते थे उसी को काट कर कीड़े ने खून बाहर निकाल लिया। जेबुन्निसा ज्वाला से कातर हो गयी। मन में हँसी। सोचा—एक चींटी के काटने से मैं इतनी कातर हो जाती हूँ—इस अनन्त दुःख के समय भी कातर हो रही हूँ। मैं चींटी के काटने को सह नहीं सकती, पर अपने प्राणाधिक प्रिय को साँप से कटवा कर मार डाला। क्या ऐसा कोई मेरा हितैषी नहीं जो मेरे लिये वैसा ही विषधर साँप ला दे ? वह या तो साँप को ला दे या मुबारक को।

प्राय: ऐसा होता है कि अधिक मानसिक पीड़ा के समय, अधिक देर तक चिन्ता में निमग्न रहने से एकाएक मन की बात मुँह से निकल जाती है। जेबुन्निसा की कई एक अन्तिम बातें मुँह से निकल गयीं। उसने अन्धकार में अपने कमरे में किसी को पुकारा; 'साँप को ला दे नहीं तो मुबारक को।'

मानो किसी ने अन्धकार में उत्तर दिया, 'क्या मुबारक को पाकर तुम नहीं मरोगी ?'

'यह क्या ? कह कर जेबुन्निसा पलङ्ग पर उठ बैठी। जिस प्रकार गीत की ध्वनि सुन कर हरिणी उन्मत्त हो बैठती है; उसी प्रकार जेबुन्निसा उठ बैठी। बोली, 'यह क्या ? यह क्या ? मैंने क्या सुना ? यह किसकी आवाज है ?'

उत्तर सुन पड़ा, 'किसकी आवाज ?'

जेबुन्निसा ने कहा, 'किसकी ! क्या बहिश्त गया हुआ आदमी भी बोल सकता है ? कहीं यह केवल छाया तो नहीं है ? तुम किस तरह बहिश्त से आते-जाते ही मुबारक ? कल तुम दिखायी दिये थे, आज तुम्हारी बात सुनी। तुम मर गये हो या जीते हो ? क्या असीरुद्दीन ने मुझसे झूठी बात कही थी ? चाहे तुम जीवित हो या मृत, क्या तुम एक क्षण के लिए मेरे पलङ्ग पर आकर नहीं बैठ सकते ? यदि तुम केवल छाया हो तो भी मुझे डर नहीं। एक बार आओ, बैठो तो सही।'

'क्यों ?'

जेबुन्निसा ने कातर हो कर कहा, 'मैं कुछ कहूँगी। जो मैंने कभी नहीं कहा था वही कहूँगी।'

मुबारक अँधकार में ही जेबुन्निसा के पलङ्ग पर उसकी बगल में आ बैठा।

जेबुन्निसा की बाँह से उसकी बाँह छू गई। हर्ष से जेबुन्निसा का शरीर रोमाञ्चित हो गया—आनन्द से हृदय भर गया। अन्धकार में गालों पर मोती सी आँसू बह चले। जेबुन्निसा ने आदर से मुबारक का हाथ अपने हाथ पर रखा। बोली, 'तुम छाया नहीं हो प्राणप्यारे! मुझे तुम बातों में भुला सकते हो, पर मैं भूल नहीं सकती।' उसके बाद जेबुन्निसा सहसा पलङ्ग पर से नीचे उतर कर मुबारक के पैरों पर गिर पड़ी और बोली, 'मुझे क्षमा करो, मैं ऐश्वर्य के गर्व में पागल हो गई थी। मैंने शपथ करके ऐश्वर्य को त्याग दिया है। यदि तुम मुझे क्षमा करो, तो मैं दिल्ली नहीं जाऊँगी। बोलो, तुम जीवित हो?'

मुबारक ने लम्बी साँस ले कर कहा, 'मैं जीवित हूँ। एक राजपूत ने मुझे कब्र से निकाल कर मेरी चिकित्सा की। मुझे प्राण-दान दिया। उसी के साथ यहाँ तक आया हूँ।'

जेबुन्निसा ने पैर नहीं छोड़े। उसकी आँखों के आँसुओं से मुबारक के पैर भींग गये। मुबारक उसका हाथ पकड़ कर उठाने लगा। किन्तु जेबुन्निसा उठी नहीं। बोली, 'मेरे ऊपर दया करो, मुझे क्षमा करो।'

मुबारक ने कहा, 'तुम्हें क्षमा कर दिया है; नहीं तो मैं तुम्हारे पास हर्गिज न आता।'

जेबुन्निसा ने कहा, 'यदि आये हो, यदि मुझे क्षमा कर दिया है तो मुझे ग्रहण करो; ग्रहण करने के बाद यदि चाहो तो मुझे साँप के मुँह में डाल दो, नहीं तो जो तुम कहो वही मैं करूँगी। पर मुझे त्याग मत देना। मैं तुम्हारे सामने शपथ करती हूँ कि अब मैं दिल्ली नहीं जाऊँगी। आलमगीर बादशाह के महल में फिर प्रवेश नहीं करूँगी। मैं शाहजादे से विवाह करना नहीं चाहती, तुम्हारे साथ जहाँ कहीं तुम जाओगे, जाऊँगी।'

मुबारक सब कुछ भूल गया। साँप के डँसने की ज्वाला भूल गई, मरने की इच्छा भूल गई। दरिया भूल गई। जेबुन्निसा के पहले के प्रेमशून्य वाक्य भूल गये। केवल जेबुन्निसा की रूप-राशि उसकी आँखों में बस रही थी। जेबुन्निसा की प्रेम-परिपूर्ण कातरोक्ति उसके कानों में गूँज रही थी। शाहज़ादी के दर्प को चूर होते देख, मुबारक का मन पसीज गया। तब मुबारक ने पूछा, 'क्या तुम अब इस गरीब को स्वामी कह कर ग्रहण करोगीं?

जेबुन्निसा ने हाथ जोड़ कर सजल नेत्रों से कहा, 'क्यों मेरा ऐसा सौभाग्य हो सकता है?'

शाहज़ादी शाहज़ादी नहीं रह गई थी। वह अब केवल साधारण स्त्री थी। मुबारक ने कहा, 'तब निःसङ्कोच मेरे साथ आओ।'

चिराग जलाने का सब सामान उसके पास था। मुबारक ने चिराग जला कर उसे फानूस में रखा और बाहर आ खड़ा हुआ। उसके कहने के अनुसार जेबुन्निसा ने वेश-भूषा बनाई। उसके बाद मुबारक हाथ पकड़ कर उसे कमरे से बाहर ले आया।

वहाँ पहरेवालियाँ मुकर्रर थीं। मुबारक के इशारे पर उनमें से दो मुबारक और जेबुन्निसा के साथ चलीं। मुबारक ने जाते हुए जेबुन्निसा को समझाया कि राजा के महलों में पुरुषों के आने का कोई उपाय नहीं, विशेष कर मुसलमानों की तो कोई बात ही नहीं। इसीलिये मैं रात को आने के लिये वाध्य हुआ हूँ। महारानी के विशेष अनुग्रह से मैं आ सका और उन्होंने ही इन दो पहरे वालियों का बन्दोवस्त कर दिया है। हम लोगों को सिंहद्वार तक पैदल जाना होगा। बाहर मेरे लिये घोड़ा और तुम्हारे लिये पालकी तैयार है।

पहरेवालियों की सहायता से दोनों सिंहद्वार तक आ-कर अपनी-अपनी सवारी पर चढ़े। उदयपुर में भी दो चार मुसलमान सौदागर बसते थे। उन्होंने राणा की अनुमति से नगर के पास एक मसजिद बना ली थी। मुबारक जेबुन्निसा को उसी मसजिद में ले गया। वहाँ मुल्ला, वकील और गवाह मौजूद थे। उनकी सहायता से मुबारक और जेबुन्निसा का विवाह सम्पन्न हुआ।

|७|

बादशाह को जल-भिक्षा

दूसरे दिन चंचल कुमारी के पास जा कर जेबुन्निसा बैठी और प्रसन्नचित्त हो, उनसे बातें करने लगी। दो दिन रात भर जगने से उसका शरीर शिथिल हो गया था। अधिक समय तक चिन्ता करने से वह मलिन हो गई थी। जो जेबुन्निसा फूलों और रत्नों से मंडित हो कर शीशमहल के प्रत्येक दर्पण में अपना रूप देख-देख कर हँसती थी, अब वह जेबुन्निसा न रही। वह समझती थी कि शाहजादी का जन्म केवल भोग-विलास के लिये होता है, पर अब वह शाहजादी न रही। जेबुन्निसा अब समझ गई कि शाहजादी भी स्त्री होती है। शाहजादी का हृदय भी नारी के हृदय के समान ही होता है। स्नेह-शून्य स्त्री का हृदय जल-शून्य नदी के समान होता है—बालू से भरे सूखे सरोवर के सदृश होता है।

जेबुन्निसा ने गर्व त्याग कर विनीत भाव से चंचल कुमारी को कल रात की सारी घटना कह सुनाई। चंचल कुमारी पहले से ही सब बात जानती थी। सब बातें सुन चुकने पर हाथ जोड़ कर जेबुन्निसा ने चंचल कुमारी से कहा, 'महारानी, अब मुझे कैद में रखने का क्या प्रयोजन? मैं अब भूल गई कि मैं औरङ्गजेब की कन्या हूँ। यदि आप मुझे उनके पास भेजेंगी भी तो वहाँ जाने की मेरी इच्छा नहीं है। जाने पर भी सम्भवतः मेरी जान नहीं बच सकती। अतः आप मुझे छोड़ दीजिये। मैं अपने स्वामी के साथ उनके देश तुर्किस्तान चली जाऊंगी।'

सुन कर चंचल कुमारी ने कहा, 'इस बात का उत्तर देना मेरे वश की बात नहीं है। कर्त्ता-धर्त्ता स्वयं महाराणा हैं। उन्होंने आप को मेरे पास रखने के लिये भेजा है, इसलिये मैं आप को रख रही हूँ। यह जो घटना हो गई, उसके दायी महाराणा के सेनापति मानिकलाल सिंह हैं। मैं मानिकलाल की बहुत बाधित हूँ। इसीलिये उनके कहने से मैंने इतना किया है, पर आप को छोड़ देने का मुझे कोई आदेश नहीं मिला है। अत: उस विषय में कोई बात नहीं स्वीकार कर सकती।'

उदास हो कर जेबुन्निसा ने कहा, 'क्या आप महाराणा को मेरी यह प्रार्थना नहीं बता सकतीं ? उनकी छावनी तो यहाँ से बहुत दूर नहीं है। रात को पहाड़ पर उनकी छावनी की रोशनी देखी थी।'

चंचल कुमारी ने कहा, 'पहाड़ जितने करीब दिखाई पड़ते हैं उतने करीब वे नहीं होते। हम लोग पहाड़ी मुल्क में रहते हैं, इस बात को अच्छी तरह जानते हैं। आप भी तो काश्मीर गई हैं, आप को यह बात याद होगी। जो हो, उनके पास आदमी भेजना मुश्किल नहीं है, पर मुझे विश्वास नहीं है कि राणा इस बात से सहमत होंगे। यदि यह सम्भव होता कि उदयपुरी क्षुद्र-सेना एक ही युद्ध में मुगल राज्य का विध्वंस कर सकती है, यदि बादशाह के साथ हमारी सन्धि होने की सम्भावना न होती, तो वे अवश्य आप को अपने स्वामी के साथ चले जाने की अनुमति दे सकते। किन्तु जब एक न एक दिन सन्धि करनी ही होगी, तो आप लोगों को अवश्य बादशाह के पास लौटा देना होगा।'

'ऐसा होने से तो आप अवश्य मुझे मृत्यु के मुँह में डाल देंगी। मेरे विवाह की बात जान लेने पर बादशाह मुझे अवश्य जहर खाने को देंगे और मेरे स्वामी की तो कोई बात हीं नहीं। वे कभी दिल्ली नहीं जाने पायेंगे। जाने पर अवश्य उनकी मृत्यु होगी। महारानी, इस विवाह का क्या फल मिला ?'

'ऐसा उपाय किया जायेगा, जिससे किसी प्रकार का उत्पात न होने पाये।'

इस प्रकार बातचीत हो रही थी कि इसी समय निर्मल कुमारी कुछ घबराई सी वहाँ आई। चंचल कुमारी को प्रणाम करने के बाद निर्मल ने जेबुन्निसा का अभिवादन किया। उसके बाद चंचल ने पूछा, 'निर्मल, इतनी घबराई हुई क्यों हो ?'

'एक विशेष समाचार है।'

जेबुन्निसा उठ कर चली गई। चंचल कुमारी ने पूछा, 'क्या युद्ध की कोई नई खबर है ?'

'हाँ।'

'यह तो मैंने लोगों से सुन लिया है कि वह चूहे की तरह बिल में घुसा है और महाराणा ने उस बिल का मुँह बन्द कर दिया है। सुना है, वह चूहा बिल में अब-तब की हालत में है।'

'उसके बाद एक और बात है। चूहा भूख से बड़ा व्याकुल है। मेरा वह कबूतर

आज लौट आया है। बादशाह ने उसे छोड़ दिया है, उसके पाँव में एक रुक्का बन्धा है।'

'रुक्का देखा है ?'

'देखा है।'

'किसके नाम का है ?'

'इमली बेगम के।'

'क्या लिखा है ?'

निर्मल ने पत्र निकाल कर उसका थोड़ा सा अंश पढ़ कर सुनाया—

'जैसा मैं तुम्हें प्यार करता था, वैसा किसी को भी प्यार नहीं किया। तुम्हीं मेरा कहना मानती थी। आज तुमने लोगों से सुना होगा कि पृथ्वी का अधीश्वर भूख से तड़प रहा है। दिल्ली का बादशाह आज रोटी के एक टुकड़े का भिखारी है। क्या तुम कोई उपकार कर सकती हो ? यदि कर सको तो करना ? इस समय के तुम्हारे उपकार मैं कभी न भूलूँगा।'

सुन कर चंचल कुमारी ने पूछा, 'क्या उपकार करोगी ?'

निर्मल ने कहा, 'यह मैं नहीं कह सकती। और तो कुछ नहीं कर सकती, केवल बादशाह और जोधपुरी बेगम के लिये कुछ भोजन भिजवा दूँगी।'

'किस तरह ? वहाँ तो आदमी के जाने के लिये रास्ता नहीं है।'

'अभी यह नहीं कह सकती। आप मुझे एक बार छावनी में जाने की अनुमति दीजिए। देख आऊँ मैं क्या कर सकती हूँ।'

चंचल कुमारी ने अनुमति दे दी। निर्मल कुमारी हाथी पर चढ़ कर रक्षकों को साथ ले छावनी में अपने स्वामी को देखने गयी। जाते ही मानिकलाल से मुलाकात हुई। मानिकलाल ने पूछा, 'युद्ध करने आई हो क्या ?'

'किसके साथ युद्ध करूँगी ? क्या तुम्हारे साथ !'

'ना, आलमगीर बादशाह के साथ।'

'मैं उसकी इमली बेगम हूँ, उसके साथ क्या लड़ाई करूँगी ? मैं उसको बचाने के लिये आई हूँ। मैं जो आज्ञा देती हूँ उसे मन लगा कर सुनो।'

उसके बाद मानिकलाल और निर्मलकुमारी में कुछ बातचीत हुई, बहुत गुपचुप। कोई और उसे सुन न सका।

मानिकलाल निर्मल कुमारी को उदयपुर भेज कर आप राजसिंह से भेंट करने के लिये उनके डेरे में गया।

आग बुझाने की सलाह

महाराणा से भेंट होने पर मानिकलाल ने उन्हें प्रणाम किया और हाथ जोड़ कर कहा, 'यदि इस दास को आप किसी दूसरे युद्ध-क्षेत्र में भेज दें तो आपकी बड़ी कृपा हो।'

राणा ने पूछा, 'क्यों, यहाँ क्या हुआ है ?'

मानिकलाल ने कहा, 'यहाँ तो कोई काम नहीं है। कोई काम है तो सिर्फ भूखे मुगलों का सूखा मुँह देखना और उनका आर्त्तनाद सुनना। यह काम कभी-कभी पेड़ पर चढ़ कर मैं कर आता हूँ। किन्तु यह काम अब तो कोई भी कर सकता है। मैं सोच रहा हूँ कि इतने आदमी, हाथी घोड़े और ऊँट इस तङ्ग रास्ते में मर जायँगे तो उनकी दुर्गन्धि से उदयपुर में कोई न बचेगा—महामारी फैल जायगी।'

महाराणा ने कहा, 'तो तुम्हारे कहने का यह मतलब है कि मुगलों का भूखों मारना अनुचित है।'

'लड़ाई में लाखों आदमियों को मरते देख कर दुःख नहीं होता। बैठे-बैठे एक आदमी को भी भूखों मरते देख कर दुःख होता है।'

'तब उनके लिए क्या किया जाय ?'

'महाराज ! मेरे पास इतनी बुद्धि नहीं है, कि मैं आपको कोई परामर्श दूँ। मेरी बुद्धि में तो इस समय सन्धि करना ही उत्तम जान पड़ता है। जठराग्नि से जल कर मुगल जितने नर्म पड़ेंगे, भरे पेट होने पर उतने नर्म नहीं पड़ेंगे। मेरी समझ में तो मंत्रियों और सेनापतियों को बुला कर इस विषय में मीमांसा करना उत्तम जान पड़ता है।'

राजसिंह ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया। इतने आदमियों को भूखों मारने की उनकी भी इच्छा नहीं थी। हिन्दू क्षुधार्त्त को अन्न देना अपना धर्म समझते हैं। अतएव हिन्दू शत्रु को भी भूखों मारना नहीं चाहते।

राणा की छावनी में राज-सभा बैठी। सभी प्रधान-प्रधान सेनापति और मन्त्री-गण एकत्र हुए। राजमन्त्रियों में प्रधान थे दयालसाह। वे भी उपस्थित थे, मानिक भी था।

राजसिंह ने विचारणीय विषय सब को सुना कर समझा दिया। उसके बाद सभासदों की राय माँगी। बहुतों ने कहा, 'मुगल इसी जगह भूख से तड़प कर मर-खप जायँ। औरङ्गजेब को पकड़ कर उसी से सबकी कब्र बनवायेंगे। दुसाधों को बुलवा कर मिट्टी डलवा देंगे। मुगलों ने बार-बार राजपूतों का जो भयंकर अनिष्ट किया है उसे याद कर किसी की इच्छा नहीं होती कि मुगलों का मुट्ठी में पा कर उन्हें छोड़ दिया जाय।'

इसके उत्तर में महाराणा ने कहा, 'अच्छा, मैंने मान लिया कि हम मुगलों को मार कर वहीं गाड़ देंगे। किन्तु औरंगजेब की सेना को मार डालने से ही तो मुगलों का अन्त नहीं हो जायगा। शाहआलम के साथ दक्षिण की विजयी सेना पहाड़ के दूसरी ओर हथियार बन्द खड़ी है। और भी दो मुगल सेनाएँ बाकी दोनों ओर बैठी हैं। क्या हम-लोग इन सब को मार कर खतम कर सकते हैं? यदि न कर सकेंगे तो एक दिन अवश्य सन्धि करनी पड़ेगी। यदि सन्धि करनी ही है तो इससे बढ़िया अवसर कब मिलेगा? इस समय औरङ्गजेब के प्राण कण्ठ तक आ गये हैं। इस समय उससे जो माँगूँगा वही पाऊँगा। यह अवसर निकल जाने पर क्या फिर कभी आ सकता है?'

दयालसाह ने कहा, 'न आवे, पर इस महापापिष्ठ पृथ्वी के कण्टक-स्वरूप औरङ्गजेब का वध करके पृथ्वी का पुनरुद्धार करना होगा। इससे बढ़ कर और कोई पुण्य-कार्य नहीं है।'

'सभी मुगल बादशाहों को देखा। सबके सब पृथ्वी के कण्टक थे। क्या औरङ्ग-जेब शाहजहाँ से भी बढ़ कर नराधम है? खुसरो ने हमारा जितना अनिष्ट किया है, औरङ्गजेब ने उतना नहीं किया है। इसका क्या ठिकाना कि शाहआलम अपने पिता-पितामह की तरह अत्याचार न करेगा? यदि तुम यह विश्वास करो—जैसा कि मैं भी विश्वास करता हूँ कि हम लोग इन चारों मुगल सेनाओं को पराजित कर सकते हैं, तो अच्छी तरह सोच कर देख लो, कितने आदमियों की हत्या करने पर हमारी यह आशा फलवती होगी। अगणित राजपूत मारे जायंगे, कितने आदमी बाकी बचेंगे? हम थोड़े हैं, मुसलमान बहुत हैं। हमारी संख्या कम हो जाने पर यदि मुगल फिर हमला करेंगे तो किससे बाहुबल से हम उन्हें भगायेंगे?'

'महाराज, यदि समस्त राजपूताना एकत्र हो जाय तो मुगलों को सिन्ध के पार भगा देने में कितनी देर लगेगी?'

'यह बात सच है, किन्तु क्या ऐसा कभी हुआ है? अब भी मैं चेष्टा करता हूँ, पर सफलता नहीं मिलती। फिर मैं ऐसा विश्वास कैसे करूँ?'

'सन्धि होने पर भी औरङ्गजेब सन्धि की रक्षा करेगा, ऐसा तो विश्वास नहीं होता। ऐसा झूठा और पाखण्डी कभी पैदा नहीं हुआ। छुटकारा पाते ही वह सन्धि-पत्र को फाड़ कर फेंक देगा और जो कर रहा, वही करेगा।'

'ऐसा सोच कर क्या कभी सन्धि की जा सकती है?'

इस प्रकार बहुत तरह के विचार प्रकट किये गये। अन्त में सब ने राणा की बातों की यथार्थता स्वीकार की। सन्धि करना ही स्थिर हुआ।

फिर किसी ने आपत्ति की; 'औरङ्गजेब ने तो सन्धि करने के लिये दूत नहीं भेजा है। सन्धि करने की गरज उसकी है या हमारी?'

राजसिंह ने कहा, 'दूत कैसे आयेगा ? उस रास्ते से एक चींटी भी तो नहीं आ सकती ।'

दयालसाह ने पूछा, 'तब आप लोगों का ही दूत वहाँ कैसे जायगा ? उस बार तो औरङ्गजेब ने ही दूत को मार डालने की आज्ञा दी थी ? उसका क्या ठिकाना कि इस बार भी वह वैसी आज्ञा न देगा ?'

राजसिंह ने कहा, 'यह निश्चित है कि इस बार वह दूत का वध नहीं करेगा, क्योंकि इस समय झूठी सन्धि करने से भी उसका हित होगा । तो भी दूत वहाँ कैसे भेजा जाय, इसी की गड़बड़ी है ।'

तब मानिकलाल ने निवेदन किया, 'यह भार मेरे ऊपर दिया जाय । मैं महाराज का पत्र औरङ्गजेब को दे आऊँगा और उसका उत्तर ले आऊँगा ।'

सबने मानिकलाल की बात पर विश्वास किया; क्योंकि सभी जानते थे कि कौशल और साहस में मानिकलाल अद्वितीय हैं । अतः पत्र लिखने का हुक्म हुआ । दयालसाह ने पत्र तैयार कराया । उसका सारांश यह था कि बादशाह मेवाड़ से अपनी सारी सेना उठा ले जायँ । मेवाड़ में गो-हत्या और मन्दिर का तोड़ना बन्द कर दें और जजिया का दावा न करें ! ऐसा करने पर राजसिंह रास्ता छोड़ देंगे और बादशाह को बेरोक-टोक चले जाने देंगे ।

सब सभासदों को पत्र पढ़ कर सुनाया गया । सुन कर मानिकलाल ने कहा, 'बादशाह की स्त्री और कन्या हमारे यहाँ कैद हैं । वह क्या हमारे ही यहाँ रहेंगी ?'

कहते ही सभा में बड़े जोर की हँसी हुई । सब ने एक स्वर से कहा, 'उन्हें छोड़ा नहीं जायगा ।' किसी ने कहा, 'रहें वे महाराणा के आँगन में झाड़ू लगायँगी ।' किसी ने कहा, 'उन्हें ढाके भेज दिया जाय, वहाँ हिन्दू हो कर हरिनाम जपा करेंगी ।' किसी ने कहा, 'उनके बदले में औरङ्गजेब एक एक करोड़ रुपया दे ।' इसी तरह के अनेक प्रस्ताव हुए । महाराज ने कहा, 'दो मुसलमान बाँदियों के लिये सन्धि नहीं छोड़ी जा सकती । लिख दो, उन दोनों को भी लौटा दिया जायगा ।'

उसी प्रकार लिखा गया । पत्र मानिकलाल के जिम्मे सौंपा गया उसके बाद सभा विसर्जित हुई ।

बड़वानल में एक बूँद पानी

सभा भंग होने पर भी मानिकलाल वहाँ से नहीं गया। सब के चले जाने पर मानिकलाल ने चुपके से राजसिंह से कहा, 'मुबाराक के इनाम की बात भी महाराज को इसी समय याद दिला देता हूँ।'

राजसिंह ने कहा, 'वह क्या चाहता है ?'

'बादशाह की जो कन्या हमारे यहाँ कैद है, वह उसी को चाहता है।'

'पर यदि उसे बादशाह के पास नहीं लौटा दूँगा तो शायद सन्धि न हो सकेगी ? और मैं स्त्री को किस तरह दुःख दूँगा।'

'दुःख देना ही होगा। कल रात को शाहजादी के साथ मुबारक की शादी हो गयी।'

'यदि यह बात शाहजादी बादशाह से कहे, तो सब गड़बड़ी मिट सकती है।'

'एक नहीं, दोनों के सिर काटे जायँगे।'

'क्यों ?'

'शाहजादियों का शाहजादे के सिवा और किसी से ब्याह नहीं होता। इस शाहजादी ने एक मामूली आदमी के साथ ब्याह कर मुगल बादशाह के कुल में कलंक लगाया है और विशेष कर बादशाह को जनाये बिना उनसे ब्याह किया है। अतः दिल्ली के रङ्गमहल की प्रथा के अनुसार उसे विष खाना होगा और जब मुबारक साँप के विष से न मरेगा तब वह हाथी के पाँव तले कुचलवा दिया जायगा या सूली पर चढ़ा दिया जायगा। यदि यह भी अपराध क्षमा कर दिया, तो भी उसने महाराज का जो उपकार किया है उसके लिये औरंगजेब उसे अवश्य सूली पर चढ़ायेगा। इसके अतिरिक्त उसने बिना उसकी अनुमति के शाहजादी से विवाह किया है। इसलिये भी उसे अवश्य सूली पर चढ़ना होगा।'

'क्या मैं इसका कुछ प्रतिकार कर सकता हूँ ?'

'आप एक यह भी शर्त रख सकते हैं कि पुत्री और दामाद को माफ किये बिना सन्धि नहीं हो सकेगी।'

'ऐसा करने के लिये मैं राजी हूँ। उन दोनों के लिये मैं बादशाह के पास अलग एक पत्र भेजूंगा। उसे भी तुम इसी पत्र के साथ ले जाना। औरंगजेब अपनी पुत्री को तो क्षमा कर सकता है, पर मुबारक को क्षमा कर देने के लिये राजी होने पर भी मुझे

विश्वास नहीं है कि उसे छोड़ देगा। जो कुछ हो, यदि मुबारक इससे सन्तुष्ट होगा तो मैं ऐसा करने को तैयार हूँ।'

ऐसा कह कर राजसिंह ने अपने हाथ से एक पत्र लिख कर मानिकलाल को दिया। मानिकलाल दोनों पत्रों को लेकर उदयपुर चला गया।

उदयपुर जा कर मानिकलाल ने पहले निर्मलकुमारी को सब समाचार सुनाया। सुन कर निर्मल सन्तुष्ट हुई। उसने भी बादशाह के नाम एक पत्र लिखा। उसका सारांश यह था—

'बादशाह

बाँदी की बेशुमार कोर्निशें! हुजूर ने बाँदी को जो हुक्म दिया था उसे पूरा कर दिया। इस समय हुजूर की सम्मति जानना चाहती हूँ। मेरी अन्तिम प्रार्थना को याद कीजियेगा और सन्धि कर लीजियेगा।'

उस पत्र को भी निर्मल ने मानिकलाल को दे दिया। उसके बाद निर्मल ने जेबुन्निसा को सब बातें कह सुनायीं। वह भी इससे सन्तुष्ट हुई। इधर मानिकलाल ने मुबारक को सब बातें बता दीं। मुबारक ने कुछ नहीं कहा। मानिकलाल ने उसे सावधान करने के लिये कहा, 'साहब! बादशाह के पास यदि आप लौट कर जायँगे तो मुझे विश्वास नहीं है, कि वे आपको क्षमा कर देंगे।'

मुबारक ने कहा, 'न करें।'

दूसरे दिन प्रातःकाल मानिकलाल निर्मल कुमारी का कबूतर माँग ले गया और उसके पाँव में उसने पत्र को लपेट कर बाँध दिया। छोड़ते ही कबूतर आसमान में खिल गया। उड़ता हुआ वह वहाँ पहुँचा जहाँ औरंगजेब मुँह ऊपर उठाये आसमान की ओर देख रहा था। कबूतर ने वह पत्र उसे दे दिया।

|१०|

उदयपुरी का भस्म होना

कबूतर शीघ्र ही औरंजेब का उत्तर ले कर आया। राजसिंह ने जो जो चाहा औरंगजेब ने सब मंजूर कर लिया, पर एक गड़बगी खड़ी कर दी। लिखा—चंचल-कुमारी को देना होगा। राजसिंह ने लिखा—तब आपको सेना के साथ कब्र में गाड़ देना मेरा निश्चित मत है। इसलिये औरंगजेब को यह इच्छा छोड़नी पड़ी। उसने सन्धि की बात से सहमत होकर उसी आशय का एक सन्धि-पत्र मुन्शी से लिखवाया और अपनी मुहर की छाप लगा कर अपने हाथ से उस पर 'मंजूर' लिख दिया। मुबारक

और जेबुन्निसा के सम्बन्ध में एक अलग पत्र लिख कर उन्हें क्षमा कर देने के लिये राजी हुआ, पर एक शर्त लगा दी, कि मुबारक किसी के सामने इस विवाह की बात प्रकट न करे। इसके साथ ही उसने यह भी स्वीकार किया कि मैं यह उपाय कर दूँगा। जिसमें जेबुन्निसा स्वामीदर्शन से वंचित न रहे।

सन्धि पत्र पाकर राजसिंह ने मुगल-सेना को छोड़ देने की आज्ञा दी। राजपूतों ने हाथी लगा कर सारे पेड़ों को हटा कर फेंक दिया। राजसिंह ने यह सोच कर कि मुगलों को इस समय भोजन कहाँ से मिले गा, हाथियों पर खाने के बहुत से सामान लाद कर भेज दिये और अन्त में जेबुन्निसा, उदयपुरी और मुबारक को बादशाह के पास भेज देने के लिए उदयपुर आज्ञा भेजी। तब निर्मल ने इशारे से चञ्चल कुमारी के कान में कहा, 'बेगम ने तुम्हारी दासी का काम कहाँ किया ?'

यह कह कर निर्मल ने उदयपुरी से कहा, 'मैं आपको निमन्त्रण देने दिल्ली गयी थी। आपने निमन्त्रण को स्वीकार नहीं किया।'

उदयपुरी ने कहा, 'मैं तुम्हारी जीभ के टुकड़े-टुकड़े करवा डालूँ गी। तुम्हारा इतना साहस, कि मुझसे तम्बाकू चढ़ाओ। तुम्हारे जैसे छोटे आदमियों में वह साहस कहाँ कि बेगम को रोक रखें ? क्यों, अब तो छोड़ देना पड़ा ! किन्तु मेरा जो अपमान तुम लोगों ने किया है, उसका फल तुम्हें चखाऊँ गीं। उदयपुर का नामोनिशान भी न रहने दूँ गी।'

तब चंचल कुमारी ने स्थिर भाव से कहा, 'सुना है, राणा ने बादशाह पर दया दिखा कर आप लोगों को छोड़ दिया है। उसके बदले आप एक मीठी बात भी कहना नहीं जानती। इसलिए आप छोड़ी न जायेंगी। आप घर में जा कर मेरे लिए तम्बाकू चढ़ा लाइए।'

जेबुन्निसा ने कहा, 'यह क्या महारानी ! आप इतनी निर्दय हैं ?'

चञ्चल कुमारी ने कहा, 'आप जा सकती हैं, आपको कोई नहीं रोक सकता पर इसको मैं अभी नहीं जाने दूँ गी।'

जेबुन्निसा ने बहुत विनती की। अन्त में उदयपुरी ने विनीत भाव धारण किया, पर चञ्चल कुमारी शांत थी। दया करके केवल इतना ही कहा, 'मेरे लिए एक बार तम्बाकू चढ़ा लाइए, तब जाने पाइए गा।'

तब उदयपुरी ने कहा, 'तम्बाकू चढ़ाना मैं नहीं जानती।'

चञ्चल कुमारी ने कहा, 'बाँदियाँ सिखला देंगी।'

लाचार हो कर उदयपुरी राजी हुई। बाँदियों ने दिखला दिया। उदयपुरी ने चञ्चल कुमारी के लिए तम्बाकू चढ़ायी।

उसके बाद चञ्चल कुमारी ने उसे सलाम करके बिदा कर दिया और कहा, 'यहाँ जो-जो हुआ है, वह सब आप लोग बादशाह से कहिये गा और याद दिलाइए गा कि मैंने

एक ही लात मार कर उनकी तस्वीर की नाक तोड़ दी थी। और भी कहिये गा, यदि वे फिर भी किसी हिन्दू स्त्री का अपमान करने की इच्छा करें गे तो मैं केवल तस्वीर की ही नाक तोड़ कर सन्तुष्ट न हूँ गी।'

तब उदयपुरी ग्रीष्म ऋतु के मेघ के समान सजल हो कर बिदा हो गई।

बेगम, पुत्री और भोजन पाकर औरंगजेब डंडा खाये हुए कुत्ते की तरह दुम दबा कर राजसिंह के सामने से भाग गया।

|११|

प्यासी चातकी

बेगमों के चले जाने पर चञ्चल कुमारी को फिर अन्धकार दिखायी दिया। सोचा, मुगल तो हार गये, बादशाह की बेगम ने मेरी सेवा की, पर राजसिंह ने कुछ नहीं कहा। चञ्चल कुमारी को रोती हुई देख कर निर्मल पास आ कर बैठी। उनके मन की बात समझ कर निर्मल ने कहा, 'क्यों नहीं महाराज को उस बात की याद दिला देती ?'

चञ्चल ने कहा, 'क्या तुम पगली हो गयी हो ? स्त्री हो कर उस बात को बार-बार कैसे कहूँ ?'

'तब क्यों नहीं रूपनगर अपने पिता को लिखतीं कि वे आ कर तुम्हें ले जायँ ?'

'क्यों ? उस पत्र के बाद फिर पत्र लिखूँ।'

'बाप के ऊपर भी क्रोध किया जाता है ?'

'क्रोध नहीं ! एक बार लिख कर जो शाप मैंने पाया है, उसे सोच कर अभी भी छाती फटती है। क्या फिर लिखने का साहस होता है।'

'वह तो विवाह के लिए लिखा था।'

'अब किस लिए लिखूँ ?'

'यदि महाराणा कोई एक बात स्थिर नहीं करते हैं तो मेरी समझ में पिता के घर जा कर उनसे पूछना ही अच्छा है। अब औरङ्गजेब इधर देखे गा भी नहीं।' इसीलिए पत्र लिखने के लिए कह रहीं हूँ। पिता के सिवा और कोई दूसरा उपाय नहीं है।'

चञ्चल कुछ कहने जाती थी, पर बात मुँह से बाहर नहीं निकाली, वह रोने लगी। निर्मल भी वह बात कह कर कुछ झेंप सी गयी।

आँखों के आँसू पोंछ कर चञ्चल लज्जा से कुछ मुस्कराई। निर्मल भी हँसी।

उसके बाद निर्मल ने हँस कर कहा, 'मैं कभी बादशाह के सामने झेंपी नहीं थी। मैं तुम्हारे सामने झेंप गयी। यह दिल्ली के बादशाह के लिए बड़ी लज्जा की बात है। इमली बेगम की भी लज्जा की बात है। जरा इमली बेगम का मुस्कुराना एक बार देखो। दावात कलम ले कर लिखना शुरू करो, मैं बोलती जा रही हूँ।'

चञ्चल ने पूछा, 'किसको लिखूँ ? माँ को या बाप को ?'

निर्मल ने कहा, 'बाप को।'

चञ्चल लिखने लगी। निर्मल बोलने लगी, 'इस समय मुगल बादशाह महाराणा से'—बादशाह तक लिख कर चञ्चल कुमारी ने कहा, 'महाराणा के हाथ से नहीं लिखूँगी। राजपूत से लिखूँगी।' निर्मल कुमारी ने हंस कर कहा, 'अच्छा यही लिखो।' उसके बाद निर्मल के कथनानुसार चञ्चल लिखने लगी, 'राजपूत से हार मान कर राजपूताना से भाग गया है। इस समय उनके लिये हमारे ऊपर जोर दिखलाने की कोई सम्भावना नहीं। अब आप अपनी सन्तान को क्या आज्ञा देते हैं ? मैं आप के ही अधीन—'

उसके बाद निर्मल कहा, 'महाराणा के अधीन नहीं।'

चञ्चल ने कहा, 'दूर हो जा पापिष्ठा !'

उसने यह बात नहीं लिखी।

निर्मल ने कहा, 'तब लिखो, किसी के अधीन नहीं।'

अन्त में चञ्चल ने वही लिखा।

इस प्रकार पत्र लिख जाने पर निर्मल ने कहा, 'इसी समय इसे रूपनगर भेज दो।' पत्र रूपनगर भेज दिया गया। उत्तर में रूपनगर के राजा ने लिखा, 'मैं दो हजार सैनिकों को ले कर उदयपुर आ रहा हूँ। राणा को द्वार खोल रखने को कहना।'

इस विचित्र उत्तर का क्या अर्थ हो सकता है, यह निर्मल और चञ्चल कुछ भी स्थिर न कर सकीं। अन्त में उन्होंने तय किया कि जब फौज की बात इसमें लिखी है, तब इसे महाराणा को बता देना चाहिये। निर्मल कुमारी ने मानिकलाल के पास खबर भेज दी।

राणा भी बड़े असमंजस में पड़ गये। चञ्चल कुमारी को वह भूले नहीं थे। उन्होंने विक्रम सोलंकी को पत्र लिखा था। उसने चंचल कुमारी के विवाह की बात लिखी थी। विक्रमसिंह ने अपनी कन्या को शाप दिया था। राणा ने उन्हें यह बात याद दिलायी। उन्होंने स्वीकार किया था जब वे राजसिंह को उपयुक्त पात्र पायें गे तब आशीर्वाद के साथ अपनी कन्या राजसिंह को दे दें गे। राजसिंह ने उन्हें यह बात भी याद दिलायी। अन्त में उसने पूछा, 'अब आपका क्या अभिप्राय है।'

इस पत्र के उत्तर में विक्रमसिंह ने लिखा, 'मैं दो हजार सैनिक ले कर आपके पास आ रहा हूँ। रास्ता छोड़ दीजिए गा।'

राजसिंह भी चंचल कुमारी की तरह इस समस्या को न समझ सके। सोचा— केवल दो हजार सैनिकों के साथ आ कर वह क्या कर सकते हैं, मैं सावधान हूँ। अतः उन्होंने विक्रमसिंह के लिए रास्ता छोड़ देने की आज्ञा दी।

|१२|

आग फिर जली

वहाँ से लौट आ कर औरङ्गजेब ने उदय सागर के तीर पर छावनी डाली और वहीं रात को विश्राम किया। सैनिकों और मजदूरों को आज खाना नसीब हुआ, उनकी जान में जान आई। उसके बाद सिपाहियों में गाना-बजाना और हँसी-मजाक होने लगा। एक मुगल ने कहा, 'हिन्दू के राज्य में हम आये हैं, इसलिये हमें एकादशी व्रत करना पड़ा।' यह सुन कर एक मुगलानी ने कहा, 'बच गये हो, यही अच्छा है। हम लोगों ने समझा था, तुम इस संसार में नहीं हो, इसलिये हमने एकादशी व्रत किया था।'

एक गायिका कुछ शौकीन मुगलों के पास गाना गा रही थी। गाते-गाते बीच में उसका ताल कट गया। गायिका ने कहा, 'आप लोगों की जो वीरता मैंने देखी है, उससे हिन्दुतान में रहने का साहस नहीं होता। उड़ीसा जाने का विचार किया है। इसी लिये ताल काटना सीख रही हूँ।' कोई कोई उदयपुरी के वृत्तान्त का वर्णन कर दुख प्रकट कर रहे थे। एक खैरख्वाह हिन्दू ने उसकी तुलना रावण के सीता हरण से की। किसी ने उत्तर दिया, 'बादशाह अपने साथ इतने बन्दर ले आये थे, पर तो भी क्यों नहीं सीता का उद्धार कर सके।' किसी ने कहा, 'हम सिपाही हैं, बढ़ई नहीं हैं, पेड़ काटने की विद्या हम नहीं जानते। इसीलिये हार गये।' किसी ने कहा, 'तुम खेत काटने की विद्या जानते हो, पेड़ कैसे काटोगे?' इसी तरह की बातें हो रही थीं।

इधर बादशाह ने छावनी के रंगमहल में प्रवेश किया। जेबुन्निसा हाथ जोड़ कर खड़ी हो गयी। औरंगजेब ने जेबुन्निसा से कहा, 'मैं मानता हूँ, जो तुमने किया है वह अपनी इच्छा से नहीं किया है। इसलिए तुम्हें माफ कर दिया। पर खबरदार, शादी की बात किसी को मालूम न होने पाये।'

उसके बाद उदयपुरी ने अपने अपमान की बात आद्योपान्त विस्तार से सुनायी। बातों में नमक मिर्च भी खूब मिलाया। सुन कर औरङ्गजेब बड़ा क्रोधित हुआ। लेकिन आज वह अपना क्रोध पी कर रह गया।

दूसरे दिन दरबार में बैठ कर आम दरबार खुलने के पहले मुबारक को एकान्त में बुलाकर औरंगजेब ने कहा, 'मैंने तुम्हें माफ कर दिया। क्योंकि तुम मेरे दामाद हो। अपने दामाद को छोटे पद पर नहीं रख सकता। अतः मैंने तुम्हें दो हजारी मनसबदार बनाया है। जल्द ही परवाना बाहर होगा। पर तुम्हारा इस समय यहाँ रहना नहीं हो सकता। क्योंकि शाहजादा अकबर मेरी ही तरह जाल में फंसे हैं, उनको छुड़ाने के लिए दिलेर खाँ सेना लेकर जा रहे हैं। वहाँ तुम्हारे जैसे योद्धा की सहायता की आवश्यकता है। तुम आज ही रवाना हो जाओ।'

मुबारक यह सुन कर प्रसन्न नहीं हुए, क्योंकि वे जानते थे कि औरंगजेब से किसी का आदर सत्कार नहीं होता। किन्तु मन में जो स्थिर कर लिया था, उसे सोच कर दुःखित नहीं हुए। अत्यन्त विनीत भाव से बादशाह से विदा ले वे दिलेर खाँ की छावनी में जाने की तैयारी करने लगे।

उसके बाद औरंगजेब ने एक विश्वासी आदमी के हाथ दिलेर खाँ के पास एक पत्र भेजा। पत्र का सांराश यह था कि मुबारक को दो हजारी मनसबदार बना कर तुम्हारे पास भेज रहा हूँ। ऐसा उपाय करना कि वह एक दिन भी जीवित न बचे। युद्ध में मर जाय तो अच्छा है, नहीं तो दूसरे प्रकार से मार डालना।

फिर आम दरवाजा में बैठ कर औरङ्गजेब ने अपना अभिप्राय प्रकट किया, कहा, 'हमने बाँदियों के हाथ में पकड़ कर सन्धि कर ली, वह सन्धि मानने योग्य नहीं है। एक मामूली राजा और बादशाह में सन्धि किस बात की ? मैंने सन्धि पत्र को फाड़ कर फेंक दिया है। उसने रूपनगरी छोकरी को मेरे पास नहीं भेजा। उसके पिता ने उसे मुझे दे दिया है। अतएव राजसिंह को उससे रखने का कोई अधिकार नहीं। यदि वह नहीं लौटावेगा तो मैं उन्हें क्षमा नहीं कर सकता। अतः जैसी लड़ाई चल रही थी वैसी ही फिर जारी रहेगी। राणा के राज्य में गाय देखते ही मुसलमान मार डालेंगे। मन्दिर को देखते ही उसे तोड़ डालेंगे। जजिया सब जगह से अदा किया जायगा।'

यही सब हुक्म जारी हुए। इधर दिलेर खाँ को दाइसार के रास्ते से मारवाड़ से उदयपुर आने की चेष्टा करते देख कर राजसिंह ने औरङ्गजेब के पास आदमी भेजा और पूछा कि सन्धि के बाद यह लड़ाई क्यों ? औरङ्गजेब ने कहा, 'एक मामूली राजा के साथ बादशाह की सन्धि ? यदि तुम रूपनगरी की कुमारी को बादशाह के पास नहीं भेज दोगे तो बादशाह तुम्हे क्षमा नहीं करेंगे।'

सुन कर राजसिंह ने हँस कर कहा, 'मैं अभी भी जीवित हूँ।'

रूपनगरी कुमारी के अपहरण किये जाने की बात औरङ्गजेब को शूल के समान चुभती थी। उसने राजसिंह से अपनी अभीष्ट सिद्ध न होते देखकर रूप नगर के राव साहब के पास भी एक परवाना भेजा। उसमें लिखा, 'तुम्हारी लड़की अभी तक मेरे पास नहीं आयी। शीघ्र ही उसे मेरे पास भेज दो, नहीं तो रूप नगर का नामो-निशान

बाकी न रखूँगा। औरङ्गजेब का विश्वास था कि पिता के जिद्द करने पर राजकुमारी उसके पास आने को तैयार हो जायगी।

परवाना पा कर विक्रम सिंह ने उत्तर लिखा, 'मैं दो हजार सैनिक लेकर शीघ्र ही हुजूर की खिदमत में हाजिर हूँगा।'

औरंगजेब ने सोचा, 'फौज क्यों? अपने मन को इस तरह समझाया कि शायद मेरी सहायता करने के लिए विक्रम सिंह सेना ले कर आ रहा है।'

|१३|

मुबारक का जलना

सौन्दर्य की कैसी विचित्र महिमा है! जेबुन्निसा को देख कर मुबारक सब कुछ भूल गया। रूपगर्विता जेबुन्निसा को देख कर उसकी यह दशा होती या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता, किन्तु वह जेबुन्निसा अब दर्पशून्या, विनीता और अश्रुमयी हो गयी है मुबारक का पहला प्रेम फिर लौट आया। दरिया-दरिया में डूब गयी। स्त्री के प्रेम में जब मनुष्य अन्धा हो जाता है तब उसको धर्माधर्म का ज्ञान नहीं रह जाता। उसके समान विश्वास-घातक और पापिष्ट कोई नहीं होता।

हजारों दीपकों के प्रकाश से प्रतिबिम्बित जल के चारों ओर पर्वत माला को देखते हुए इन्द्रभवन के समान एक खेमे में बैठ कर मुबारक ने जेबुन्निसा का हाथ अपने हाथ में लिया। बड़े दुःख के साथ मुबारक ने कहा, 'तुम्हें फिर पाया है, किन्तु दुःख है कि दस दिन भी सुख से नहीं रह सकता।'

'क्यों? कौन रोक सकता है? बादशाह?'

'सन्देह तो होता है, पर बादशाह की बात अभी नहीं कह रहा हूँ। मैं कल लड़ाई में जाऊँगा। युद्ध में मरना जीना दोनों होता है, पर मेरा मरना ही निश्चय है। मैंने राजपूतों के युद्ध में जैसा बन्दोबस्त देखा है उससे मेरा दृढ़ विश्वास है कि पहाड़ी लड़ाई में हम उन्हें नहीं हरा सकते। मैं एक बार हार आया हूँ, फिर दूसरी बार हार कर नहीं आ सकता। मुझे अवश्य ही मरना होगा।'

दोनों की आँखों से आँसू बहने लगे। मुबारक ने सोचा—क्यों मरूँ, नहीं, मरूँगा नहीं। बहुत देर तक सोचता रहा। सामने गगनस्पर्शी पर्वत-मालाओं से घिरा उदय सागर का जल था। उसमें दीप मालाओं से प्रकाशित पटनिर्मिता महानगरी की छाया पड़ रही थी, पर उन दोनों को अन्धकार ही अन्धकार दिखायी दिया।

सहसा जेबुन्निसा ने कहा, 'इधर अन्धेरे में छावनी की चारदीवारी के नीचे कोई है ? तुम्हारे लिये मेरा मन सदा शङ्कित रहा करता है ।'

'देख आता हूँ,' कह कर मुबारक चला गया और किले की दीवार के नीचे जाकर देखा, वास्तव में कोई छिपा है। मुबारक ने उसे पकड़ लिया। हाथ पकड़ कर उसे ऊपर उठाया। जो छिपा था, वह उठ कर खड़ा हो गया। उसे खींच कर वह किले में चिराग के उजेले से ले आया। देखा एक स्त्री हैं। वह आँचल से अपना मुँह छिपाये थी। मुबारक उसे एक पहरेवाली के जिम्मे रख कर स्वयं जेबुन्निसा के पास चला गया और सब बातें विस्तार से कहीं। जेबुन्निसा ने कौतूहलवश उसे कमरे में ले आने को कहा। मुबारक उसे कमरे में ले आया।

जेबुन्निसा ने पूछा, 'तुम कौन हो ? क्यों छिपी थी ? मुँह पर से कपड़ा हटाओ।'

उस स्त्री ने मुँह पर से कपड़ा हटा लिया। दोनों ने विस्मय के साथ देखा, दरिया बीबी है।

बड़े आनन्द के समय बिना मेघ के बिजली गिरते देख कर जैसे आदमी विह्वल होता है जेबुन्निसा और मुबारक की ठीक वही दशा हुई। तीनों में किसी ने भी कुछ नहीं कहा।

बहुत देर के बाद लम्बी साँस ले कर मुबारक ने कहा, 'या अल्लाह ! मुझे मरना ही होगा।'

तब जेबुन्निसा ने अत्यन्त कातर स्वर में कहा, 'तब मुझे भी ?'

दरिया ने कहा, 'तुम कौन हो ?'

मुबारक ने उससे कहा, 'मेरे साथ आओ।'

तब अत्यन्त दीन भाव से मुबारक ने जेबुन्निसा से बिदा ली।

|१४|

नयी चिनगारी

राजसिंह राजनीति और युद्ध-नीति में अद्वितीय पण्डित थे। जब तक मुगल अपनी समस्त सेना को लेकर राजा के राज्य को छोड़ कर नहीं चले गये, तब तक उन्हों ने अपनी छावनी नहीं उठायी। और न अपनी सेना को अपने स्थान से हटाया। वह छावनी में ही थे कि समाचार आया कि दो हजार सैनिक ले कर विक्रम सिंह आ रहे हैं। राजसिंह युद्ध के लिए तैयार हो गये।

एक सवार ने आगे आ कर दूत-रूप में राजसिंह के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की। राजसिंह की अनुमति पाकर पहरेवाला उसे अन्दर ले आया। उसने राजसिंह को प्रणाम कर कहा कि रूपनगर के राजा आप के दर्शन करने की लालसा से मय अपनी सेना के आये हैं।

राजसिंह ने कहा, 'यदि छावनी के भीतर आ कर मिलना चाहते हैं, तो उनसे कहना, अकेले आ कर मिलें। यदि सेना के साथ मिलना चाहते हैं तो उन्हें छावनी के बाहर रहने के लिये कहना। मैं अपनी सेना के साथ आ रहा हूँ।'

विक्रम सोलंकी अकेले छावनी में मुलाकात करने को राजी हो गये। उनके आने पर राजसिंह ने उन्हें आदरपूर्वक आसन दिया। विक्रम सिंह ने राजा को कुछ भेंट दी। उदयपुर के राजा राजपूतों में प्रधान थे, इसीलिये उन्हें भेंट दी जाती थी। पर राजा राजसिंह ने भेंट नहीं ली। कहा, 'आप को यह नजर मुगल बादशाह को ही देनी चाहिये।'

विक्रमसिंह ने कहा, 'महाराज राजसिंह के जीवित रहने पर मुझे विश्वास है कि अब कोई राअपूत मुगल बादशाह को नजर न देगा! महाराज मुझे क्षमा कीजिये। मैंने आप को न जान कर ही ऐसा पत्र लिखा था। आपने मुगलों को जिस तरह मार भगाया है उससे विश्वास होता है कि यदि समस्त राजपूत सङ्गठित होकर आप के अधीन कार्य करें तो शीघ्र ही मुगल साम्राज्य का मूलोच्छेद किया जा सकता है। मेरे पत्र के अन्तिम भाग को याद कीजिये। मैं आप को केवल नजर देने नहीं आया हूँ। आप को और दो सामग्री देने आया हूँ। एक, यह दो हजार घुड़सवारों की सेना, दूसरी अपनी यह तलवार। आज भी इन भुजाओं में कुछ बल है। आप मुझे जिस काम में नियुक्त करेंगे, जान दे कर भी मैं उसे पूरा करूँगा।'

राजसिंह अत्यन्त प्रसन्न हुए। अपना आन्तरिक आनन्द उन्होंने विक्रमसिंह को बताया। कहा, 'आज आपने ठीक सोलंकियों की तरह बातें की हैं। दुष्ट मुगल दल तो मेरे हाथों मौत के घाट पार हो रहा था, पर सन्धि करके उसने अपनी जान बचा ली। अब जान बच जाने पर कहता है कि मैंने सन्धि नहीं की है, फिर युद्ध करने को तैयार है। दिलेर खाँ सेना लेकर शाहजादे की सहायता करने जा रहा है। आप बड़े सुअवसर में आये। दिलेर खाँ को रास्ते में ही रोक रखना होगा। वह यदि जायगा तो अकबर के साथ मिल कर कुमार जयसिंह को विपद में डाल देगा। इसलिये मैं गोपीनाथ राठौर को भेज रहा था, किन्तु उनकी सेना बहुत थोड़ी है। मैं अपनी कुछ सेना उनके साथ दूँगा। मानिकलाल नामक एक और सुदक्ष सेनापति हैं। वह उसे साथ ले जायगा। किन्तु औरङ्गजेब पास ही हैं इसलिये मैं यहाँ से नहीं जा सकता हूँ, और न मानिकलाल के साथ अधिक सेना ही दे सकता हूँ। मेरी इच्छा है कि आप अपनी घुड़सवार सेना के साथ उस

युद्ध में जाइये। आप तीनों आदमी मिल कर रास्ते में ही दिलेर को मय उसकी सेना के मार डालिये।'

विक्रमसिंह ने प्रसन्न हो कर कहा, 'आपकी आज्ञा शिरोधार्य है।'

यह कह कर विक्रमसिंह सोलंकी ने युद्ध में जाने के लिये राणा से विदा ली। चंचल कुमारी के सम्बन्ध में कुछ बातचीत न हुई।

| १६ |

मुबारक और दरिया

गोपीनाथ राठौर, विक्रमसिंह सोलंकी और मानिकलाल दिलेर खाँ को विध्वंस करने की कामना से चले। जिस रास्ते से दिलेर खाँ आ रहा था, उसी रास्ते में तीनों आदमी तीन जगहों में छिप रहे। लेकिन वे एक दूसरे के पास ही रहे। विक्रमसिंह सोलंकी घुड़सवार सेना लेकर जा रहे थे, इसलिये वे पहाड़ के ऊपर न जा सके। पहाड़ी होते हुए भी उन्हें घोड़े रखने पड़ते थे। उसका कारण यह था कि बिना घोड़ों के मैदान पर रहने वाले शत्रुओं और डाकुओं का पीछा नहीं कर सकते थे और एक बात थी, ऐसे छोटे-छोटे राजा, कभी-कभी रात को मौका पाने पर खुद भी एक-आध डकैती कर लिया करते थे। पहाड़ पर उनके सैनिक घोड़ों को छोड़ कर पैदल का काम करते थे। इस बार मुगलों का पीछा करना होगा इसीलिये वे घोड़े ले आये थे। पर इससे उन्हें पहाड़ी लड़ाई में अब असुविधा हुई। अतएव पहाड़ पर न चढ़ कर उन्होंने समतल भूमि की तलाश की। उन्हें इच्छानुसार समतल भूमि मिल गयी। उसके आस-पास जंगल था। जंगल के पीछे उन्होंने घुड़सवारों को एक कतार में खड़ा कर दिया। वे स्वयं सबसे आगे रहे उसके बाद मानिकलाल राजसिंह के पैदल सैनिकों को ले कर छिपा। सबसे पीछे गोपीनाथ राठौर रहे।

दिलेर खाँ अकबर की दुर्दशा का ख्याल कर सतर्क हो कर आ रहे थे। आगे आगे घुड़सवारों को भेज कर पता लगा लिया करते कि कहीं राजपूत छिपे तो नहीं हैं। अतः विक्रमसिंह सोलंकी के घोड़ों का पता उन्हें लग गया। तब दिलेर खाँ ने उन घुड़सवारों को भगा देने के लिये कुछ सैनिकों को भेजा। विक्रमसिंह सोलंकी और कामों में तो बड़े स्थूल बुद्धि थे, किन्तु लड़ाई में धूर्त और कुशल लड़ाकू थे। कभी-कभी धूर्तता ही युद्ध में बड़ा काम देती है। वे मुगल सेना के साथ युद्ध कर के भाग गये।

दिलेर खाँ मानिकलाल को पार कर आगे निकल गये। वे यह जान न सके कि मानिकलाल पास ही छिपा है। मानिकलाल की ओर से भी कुछ शब्द न हुआ।

विक्रमसिंह सोलंकी को भगा कर दिलेर खाँ ने सोचा कि सब राजपूत भाग गये। वह पहले की तरह सावधान हो कर नहीं जा रहे थे। मानिकलाल ने समझा अभी उपयुक्त समय नहीं है, वह चुपचाप रहा।

उसके बाद जहाँ गोपीनाथ राठौर छिपे थे, वहीं पर दिलेर पहुँचा। वहाँ पर पहाड़ी रास्ता बहुत तंग हो आया था। उसी तंग रास्ते से दिलेर की सेना जाने लगी। उसी समय गोपीनाथ राठौर निकल कर उसके सामने सेना के साथ आ खड़ा हुआ जैसे पथिक के सामने बाधा खड़ी हो जाती है।

दिलेर ने मुबारक को हुक्म दिया कि सामने के सिपाहियों को ले जा कर इन्हें मार भगाओ। मुबारक आगे बढ़े, पर गोपीनाथ को भगा देना मुबारक के सामर्थ्य की बात न थी। तंग रास्ते में थोड़े से ही लोग खड़े हो सकते थे। राजपूत मुगलों को एक-एक करके मारने लगे। उधर दिलेर सामने रास्ता न पाकर बीच रास्ते में ही खड़ा रहा।

मानिकलाल ने सोचा कि यही उपयुक्त समय है। वह अपनी सेना के साथ पहाड़ पर से उतर कर बज्र की तरह दिलेर पर टूट पड़ा। दिलेर की सेना जी जान से लड़ने लगी। ठीक इसी समय विक्रमसिंह सोलंकी दो हजार घुड़सवारों के साथ दिलेर की सेना के पीछे आ पहुँचे। तब तीनों ओर के हमले से मुगल सेना एक क्षण भी न ठहर सकी। भाग कर अपनी जान बचायी। बहुतों को भागने का भी रास्ता न मिला।

केवल गोपीनाथ के सामने से कुछ मुगल वीर हटे नहीं। मौत को तृण समान जान कर वे युद्ध कर रहे थे। वे मुगल सेना के चुने चुने योद्धा थे। मुबारक उसके नेता थे। किन्तु वे सब भी अधिक देर तक न ठहर सके। अन्त में सिर्फ दो चार आदमी बच रहे। दूर से यह देख कर मानिकलाल वहीं आ पहुँचा। राजपूतों से उसने कहा, 'इन्हें मत मारो। ये वीर पुरुष हैं, इन्हें छोड़ दो।'

एक क्षण के लिये राजपूत थम गये, तब मानिकलाल ने कहा, 'तुम चले जाओ। मैंने छोड़ दिया। मेरे कहने से तुम्हें कोई कुछ न कहेगा।'

एक मुगल ने कहा, 'हम लोग युद्ध में कभी पीठ नहीं दिखाते। आज भी नहीं दिखायेंगे।'

वे दो चार मुगल लड़ने को तैयार हो गये। तब मानिकलाल ने कहा, 'खाँ साहब, अब लड़ कर क्या कीजियेगा?'

मुबारक ने कहा, 'मरूँगा।'

'क्यों मरोगे?'

'क्या आप नहीं जानते कि मृत्यु के सिवा मेरी और कोई गति नहीं है?'

'तब शादी क्यों की?'

'मरने के लिये।'

इसी समय बन्दूक की आवाज पहाड़ों में गूँज उठी। शब्द के कानों में पहुँचने के पहले ही मुबारक के सिर में गोली लगी। वह जमीन पर गिर पड़ा। मानिकलाल ने देखा, मुबारक मर गया है। उसने ऊपर देखा तो पहाड़ पर एक स्त्री हाथ में बन्दूक लेकर खड़ी है। उसकी बन्दूक से धुंआ निकलता हुआ देखा गया। उन्मादिनी दरिया थी।

मानिकलाल ने उस स्त्री को पकड़ने के लिये आज्ञा दी। वह हँसती हुई भाग गई। उसी दिन से किसी ने दरिया बीबी को संसार में नहीं देखा।

लड़ाई के बाद जेबुन्निसा ने सुना कि मुबारक लड़ाई में मारा गया। तब उसने अपने गहने-कपड़े उतार फेंके। उदय सागर के किनारे पथरीली जमीन पर बैठ कर रोने लगी।

|१६|

पूर्णाहुति–इष्टलाभ

युद्ध के अन्त में विजयश्री लेकर विक्रमसिंह सोलंकी राजसिंह की छावनी में लौट आये। राजसिंह ने आदर के साथ उनका आलिङ्गन किया। विक्रमसिंह सोलंकी ने कहा, 'एक बात बाकी रह गयी। वह यह है, मैं मनसा, वाचा, कर्मणा से आप को आशीर्वाद देकर अपनी कन्या आप को दान करना चाहता हूँ। क्या आप उसे ग्रहण करेंगे?'

राजसिंह ने कहा, 'तो उदयपुरी चलिये।'

उसी रात को राजसिंह ने चंचलकुमारी का पाणिग्रहण किया। फिर औरङ्गजेब राजसिंह का सर्वनश करने के लिये तैयार हुआ। आजम आ कर औरङ्गजेब के साथ मिल गया। राजसिंह ने दुर्गादास के साथ मिल कर औरङ्गजेब पर आक्रमण किया। औरङ्गजेब फिर हार कर और अपमानित होकर डंडे खाये हुए कुत्ते की तरह दुम दबा कर भाग गया। राजपूतों ने उनका सब कुछ लूट लिया, औरङ्गजेब के बहुत से सैनिक मारे गये।

औरङ्गजेब और आजम ने भाग कर राणाओं की छोड़ी हुई राजधानी में आ कर आश्रय लिया। पर वहाँ भी जान न बची। सुबलदास नामक एक राजपूत सेनापति ने पीछे से जा कर अजमेर और चित्तौड़ के बीच सेना खड़ी कर दी। फिर रसद बन्द हो जाने का डर था, इसलिये खाँ रूहेला के साथ बारह हजार फौज देकर सुबल दास से लड़ने के लिये भेज दिया, और स्वयं अजमेर भाग गया। फिर कभी उदयपुर

की ओर आँख उठा कर भी नहीं देखा। उसके मन की लालसा उसके जीवन के साथ गयी।

इधर सुबलदास ने खाँ रुहेला को मार भगाया। हार मान कर खाँ रुहेला भी अजमेर भाग गया। दूसरी ओर राजसिंह के दूसरे पुत्र कुमार भीमसिंह ने गुजरात के आस-पास मुगलों के राज्य में प्रवेश कर समास्त गाँव, नगर, यहाँ तक कि मुगल सूबेदार की राजधानी भी लूट ली। कई स्थानों को अपने कब्जे में कर उन्होंने सौराष्ट्र तक राजसिंह का अधिकार स्थापित किया। किन्तु दुःखित प्रजा ने राजसिंह से निवेदन किया। करुण-हृदय राजसिंह ने उसके दुःखों से दुखित हो कर भीमसिंह को वापिस बुला लिया। दया के वश हो उन्होंने फिर हिन्दू राज्य नहीं स्थापित किया। किन्तु राजमंत्री दयालशाह उस प्रकृति के आदकी न थे। वे लड़ाई चाहते थे। वे मालवा के मुसलमानों का सर्वनाश करने लगे। औरङ्गजेब ने हिन्दू धर्म के ऊपर बहुत अत्याचार किया था। उसके प्रतिशोध में वे काजियों के सिर मुड़वा कर बाँध रखने लगे। कुरान देखते ही कुआँ में फेंक देने लगे।

दयालशाह ने अपनी सेना को कुमार जयसिंह की सेना के साथ मिला कर आजम को पकड़ा और चित्तौड़ के पास उससे युद्ध किया। आजम भी हार कर भाग गया।

चार वर्ष तक युद्ध होता रहा। पद-पद पर मुगल हारते रहे। अन्त में औरङ्गजेब ने सचमुच सन्धि कर ली। राणा ने जो-जो चाहा औरङ्गजेब ने सब स्वीकार कर लिया। और भी कुछ अधिक स्वीकार किया। मुगलों ने ऐसी शिक्षा कभी नहीं पायी थी।

उपसंहार

ग्रन्थकार का निवेदन

ग्रन्थकार का यह विनीत निवेदन है कि कोई पाठक यह न समझे कि हिन्दू मुसलमानों में किसी प्रकार का तारतम्य दिखलाना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है। हिन्दू होने से ही कोई अच्छा नहीं होता, और न मुसलमान होने से ही कोई बुरा होता है। अच्छे बुरे दोनों में हैं वरन् यह भी स्वीकार करना होगा, जब मुसलमानों का इतने दिनों तक भारत पर प्रभुत्व था, तब राजकीय विषय में वे उस समय के हिन्दुओं से अवश्य श्रेष्ठ थे। किन्तु यह भी सत्य नहीं है कि सब मुसलमान सब हिन्दू राजाओं से श्रेष्ठ ही थे, कई जगह हिन्दू मुसलमानों से श्रेष्ठ थे। अन्यान्य गुणों के अतिरिक्त जो धर्मशील हैं, चाहे हिन्दू हों चाहे मुसलमान—वे ही श्रेष्ठ हैं। अन्यान्य गुणों के होते हुए भी जो धर्महीन हैं, वे हिन्दू हों या मुसलमान; वे ही निकृष्ट हैं। औरंगजेब धर्मशून्य था, इसलिए उसके समय से ही मुगल राज्य का अधःपतन आरम्भ हुआ। राजसिंह धार्मिक थे इसीलिए एक छोटे से राज्य के मालिक होते हुए भी वे मुगल बादशाह को अपमानित और पराजित कर सके थे। यही इस ग्रन्थ का प्रतिपाद्य विषय है। जैसा राजा हो वैसे ही राजा के अनुचरों को होना चाहिए। उदयपुरी और चंचल कुमारी की तुलना, जेबुन्निसा और

निर्मलकुमारी की तुलना, और मानिकलाल तथा मुबारक की तुलना से यह जाना सकता है।

औरंगजेब की तुलना स्पेन के द्वितीय फिलिप से की जा सकती है। दोनों ही विशाल साम्राज्य के अधिपति थे। दोनों ही ऐश्वर्य, सेना, बल और गौरव में और राजाओं अपेक्षा की अधिक ऊँचे थे। दोनों में सहनशीलता, सतर्कता आदि राजगुण विद्यमान थे। पर दोनों ही निष्ठुर, क्रूरदाम्भिक और प्रजापीड़क थे। इसीलिये दोनों ने ही अपने साम्राज्य विनाश का बीज बोया। दोनों ही अपने क्षुद्र-शत्रुओं द्वारा पराजित और अपमानित हुए—फिलिप अंग्रेजों द्वारा और औरंगजेब मरहठा और राजपूतों द्वारा। मरहठा शिवाजी तथा उस समय की इङ्गलैंड की नेत्री एलिजाबेथ परस्पर तुलनीय हैं। पर इनकी अपेक्षा ओलंदाज विलियम और राजपूत राजसिंह विशेष प्रकार से तुलनीय हैं। दोनों की कीर्ति इतिहास में अतुलनीय है। विलियम ने यूरोप में देशहितैषी, धर्मात्मा वीर पुरुषों के अग्रगण्य के रूप में ख्याति प्राप्त की। इस देश का कोई अपना इतिहास नहीं, इसलिये राजसिंह को भारत के बहुत कम लोग जानते हैं।

